संक्षिप्त—

महाभारत

दूसरा भाग।

(भीष्म-पर्व से स्वर्गारोहन-पर्व पर्यन्त)

पं० राजाराम प्रोफेसर डी.ए.वी. कालेज लाहौर।

कृत

भाषाटीका संयुक्त

सँव्वत १९७३—सन् १९१६

बाम्बे मैशीन प्रेस, लाहौर में छपा।

प्रथमवार १०००] [मूल्य ६)

विषय पृष्ठ

६ भीष्म पर्व।

युद्ध के पूरे समाचार लाकर सुनाने में नियुक्त किये गए संजय का धृतराष्ट्र के पास आकर भीष्म के वध का समाचार सुनाना, धृतराष्ट्र का शोक और संजय को विस्तार से भीष्म के युद्ध वर्णन की प्रेरणा ८०७

दुर्योधन का दुःशासन को भीष्म की रक्षा की आज्ञा, भीष्म का युद्ध के लिए योद्धाओं को प्रोत्साहन, कौरव सेना का वर्णन और उसकी व्यूह रचना, पाण्डव सेना का वर्णन और उसकी व्यूह रचना, दोनों दलों का युद्धोत्साह से आमने सामने आना, ८०९

दुर्योधन का आचार्य के सम्मुख अपने और पाण्डवों के मुख्य २ योद्धाओं का वर्णन करके भीष्म का प्रोत्साहन, भीष्म का सिंहनाद और शंखनाद, दोनों दलों में शंख आदि युद्ध वादित्रों की गर्जना, अर्जुन की दोनों दलों के मध्य में रथ ले चलने की श्रीकृष्ण को प्रेरणा, श्रीकृष्ण का वहां रथ जा खड़ा करना, अर्जुन का गुरु, ज्ञाति, सम्बन्धी बान्धव और इष्ट मित्रों को मरने के लिए खड़े देख कर उदास हो युद्ध से हटने का भाव उत्पन्न होना, श्रीकृष्ण का उस को कर्तव्योपदेश (गीता द्वारा फिर खड़ा करना) ८१४

युधिष्ठिर का रथसे उतर कर भीष्म द्रोण आदि को अभिवादन करके उन से युद्ध की आज्ञा और विजय के आशीर्वाद लेना, श्रीकृष्ण की कर्ण को अपने साथ मिलाने की प्रेरणा, युयुत्सु का पाण्डवों के पक्ष में मिलना, ८२९

युद्ध का आरम्भ, द्वन्द्व युद्धों का वर्णन, संकुल युद्ध का वर्णन, ८३७

भीष्म का घोर युद्ध, अभिमन्यु और भीष्म का युद्ध, उत्तर और शाल्व का युद्ध, शाल्व से उत्तर का वध, शंख और शाल्व का युद्ध, भीष्म की भीषणता, प्रथम दिन के युद्ध की समाप्ति ८४०

रात को पाण्डवों की मन्त्रणा, दूसरे दिन धृष्टद्युम्न की क्रौञ्च व्यूह रचना, दुर्योधन

विषय पृष्ठ

दसवां दिन-शिखण्डी को आगे करके पाण्डवों का घोर संग्राम, भीष्म की भयंकरता, अर्जुन का शिखण्डी को उत्तेजना पूर्वक भीष्म के सामने खड़ा करना, और उसकी रक्षा पर स्वयं खड़े होना ९४७

भीष्म का घोर संग्राम, अर्जुन का पराक्रम, भीम की भीमता, भीष्म के दिव्य अस्त्र, पंचालों का भीष्म को घेरना, भीष्म की भयंकरता, श्रीकृष्ण की अर्जुन को उत्तेजना, अर्जुन का युद्ध वेग ९५०

भीष्म का युद्धवेग, अर्जुन के बाणों का वेग और भीष्म के सारे शरीर का बाणों से भर जाना, भीष्म का रथ से गिरना, और शर शय्या पर लेटना, ९५५

उसी समय युद्ध बंद करके कुरु पाण्डवों का भीष्म को अभिवादन करना, अर्जुन का भीष्म के लिए बाणों का सिरहाणा देना, वैद्यों का चिकित्सा के लिए आना, भीष्म का आर्यवीरोचित

विषय पृष्ठ

वचन पूर्वक उन को विदा करना, ९६०

भीष्म का जल मांगना, अर्जुन का बाणों से जल निकाल कर देना, भीष्म का दुर्योधन को उपदेश ९६३

७ द्रोणपर्व।

संजय का धृतराष्ट्र के प्रति संक्षेप से द्रोण पर्व का वर्णन ९६९

सविस्तर वर्णन-ग्यारहवें दिन का युद्ध, द्रोण का सेनापति हो कर दुर्योधन को वरदान, और उस के वर मांगने पर युधिष्ठिर को अर्जुन परोक्ष में जीता पकड़ने की प्रतिज्ञा, अर्जुन का द्रोण की प्रतिज्ञा से डरे हुए युधिष्ठिर को आश्वासन, युद्ध का आरम्भ, द्रोण का पराक्रम, द्रोण का युधिष्ठिर को पकड़ने का उद्यम, अर्जुन का उसको रोकना, सेनाओं का अवहार ९७५

बारहवें दिन का युद्ध-त्रिगर्तों का अर्जुन के साथ युद्ध के लिए शपथ लेना, कौरवों का सुपर्ण और पाण्डवों का मण्डलार्ध व्यूह रचना, अर्जुन का संशप्तकों से युद्ध, युधि-

विषय	पृष्ठ
ष्ठिर को पकड़ना चाहते द्रोण को सत्याजित्‌ने रोकना, द्रोण से सत्याजित्‌ के मारा जाने पर भय से युधिष्ठिर का भाग जाना, फिर भी युधिष्ठिर को पकड़ना चाहते द्रोण से पंचालों का वध, भीम और दुर्योधन का युद्ध, भीम पर भगदत्त का मत्त हाथी, भीम का हाथी से बचना,	९८१
अर्जुन का संशप्तकों को मार कर भगदत्त से आजुटना, अर्जुन से हाथी समेत भगदत्त का वध, युद्ध की भयंकरता, सेनाओं का अवहार	९८७
तेरहवां दिन–दुर्योधन का आचार्य को उपालम्भ और उत्तेजना, आचार्य की दुर्योधन को सान्त्वना, अर्जुन को संशप्तकों का आह्वान, द्रोण का चक्र व्यूह रचना, पाण्डव सेना का विनाश, अभिमन्यु का चक्र व्यूह को भेदकर अन्दर प्रवेश करना, कौरव योद्धाओं का अभिमन्यु को घेरना	९९३
अभिमन्यु के पीछे आते भीमआदि को जयद्रथ का रोकना, अकेले अभिमन्यु का घोर संग्राम, अभिमन्यु का दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण को मारना, छः महा रथियों का मिलकर अभिमन्यु पर अभिक्रमण, अभिमन्यु का वध, युधिष्ठिर का शोक,	९९८
अभिमन्यु के शोक से अर्जुन का विलाप, कृष्ण का अर्जुन को आश्वासन, युधिष्ठिर का अर्जुन के प्रति अभिमन्यु के वध का प्रकार कहना, अर्जुन का कोप, और शपथ सहित जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा, अर्जुन की प्रतिज्ञा से भाते हुए जयद्रथ को दुर्योधन और द्रोण का आश्वासन	१००८
चौदहवां दिन–द्रोण का चक्र शकट व्यूह के भीतर पद्म व्यूह रच कर व्यूह के मुख पर आ खड़े होना, अर्जुन का पाण्डव व्यूह के मुख पर खड़े होना,	१०१७
अर्जुन का जयद्रथ के प्रति धावा, दुःशासन का अर्जुन को रोकना, घोर संग्राम, दुःशासन को हराकर अर्जुन का	

विषय पृष्ठ

आगे बढ़ना, द्रोण और अर्जुन का सामना और वार्तालाप, आचार्य से अनुज्ञा ले और प्रदक्षिणा कर के अर्जुन का आगे बढ़ना, अर्जुन का कौरव सेना के अन्दर घुसना, युधामन्यु और उत्तमौजा का उसकी रक्षा करते हुए साथ प्रवेश करना, १०१९

कृतवर्मा आदि कौरव वीरों का अर्जुन को रोकना, घोर संग्राम, अर्जुन का उनको हरा कर सेनाओं को चीरते हुए आगे बढ़े जाना, दुर्योधन का आचार्य के पास अपनी घबराहट बतलाना, द्रोण का उस को उत्तर, और उत्साह दिला कर युद्ध के लिए भेजना, १०२३

सेनामुख पर द्रोण और धृष्टद्युम्न का युद्ध, द्रोण और सात्यकि का युद्ध, उधर अर्जुन का आगे बढ़ते जाना, अर्जुन का रणांगण में घोड़ों की प्यास बुझाने के लिए बाणों से जल का स्रोत निकालना, श्रीकृष्ण का घोड़ों को खोल फेर कर जल पिलाना, और फिर

विषय पृष्ठ

आगे बढ़ना, १०२७

इसी अवसर में कुछ अन्तर से दुर्योधन का आगे निकल जाना, दुर्योधन का महावीरों को संग ले अर्जुन को रोकना, अति भयंकर संग्राम का आरम्भ, १०३०

अर्जुन का वृत्तान्त जानने के लिए युधिष्ठिर की सात्यकि को प्रेरणा, सात्यकि का उत्तर, कि अर्जुन की आप की रक्षा के लिए आपका त्याग न करने की आज्ञा है, युधिष्ठिर का अपनी रक्षा का उसे भरोसा देना. सात्यकि का गमन १०३४

इधर द्रोण का भयंकर युद्ध, युधिष्ठिर का सात्यकि की रक्षा का विचार, और भीम को उस के पीछे भेजना, भीम का सात्यकि और अर्जुन के निकट पहुंच उन के कल्याण का युधिष्ठिर को संकेत देना, १०३७

अर्जुन से बचाने के लिए छः महा रथियों का जयद्रथ को अपने घेरे में छिपाना, कृष्ण का योगमाया से अन्धकार रच कर सूर्य को छिपाना,

विषय पृष्ठ

सूर्य के छिपने पर जयद्रथ का प्रकट होना, कृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन ने जयद्रथ का सिर काटना, कृष्ण का अन्धकार को मिटा कर सूर्य को प्रकट करना, घोर संग्राम में अर्जुन भीम और सात्यकि का लौटना, युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण का बधाई देना १०४०

जयद्रथ के वध से दुःखित हुए दुर्योधन का द्रोण के निकट आ उपालम्भ पूर्वक शोक करना, द्रोण का उपालम्भ पूर्वक दुर्योधन को आश्वासन देकर रण के लिए गमन, १०४५

रात्रियुद्ध, धृष्टद्युम्न और कर्ण का युद्ध, कर्ण के महापराक्रम को देख युधिष्ठिर की अर्जुन को प्रेरणा, श्रीकृष्ण का रोकना, कृष्ण और अर्जुन की प्रेरणा से घटोत्कच का कर्ण से रण, १०४९

घटोत्कच का अलम्बुस को मारना, कर्ण और घटोत्कच का युद्ध, दुर्योधन की प्रेरणा से अलायुध का कर्ण की सहायता करना, घटोत्कच से अलायुध का वध, कर्ण और घटोत्कच का महा संग्राम, कर्ण का इन्द्रशक्ति से घटोत्कच को मारना, १०५५

घटोत्कच के वध से पाण्डवों का शोक, श्रीकृष्ण का हर्ष, अर्जुन का हर्ष का कारण पूछना, श्रीकृष्ण का कर्ण का बल कथन पूर्वक कारण बतलाना, रात्रि युद्ध की प्रवृत्ति, विश्राम और चन्द्रोदय पर फिर युद्धारम्भ, १०५९

दुर्योधन की आचार्य को उत्तेजना, १०६२

द्रोण से द्रुपद के तीनों पोतों का वध, द्रोण द्रुपद और विराट का वध, १०६५

पन्द्रहवां दिन—द्रोण और धृष्टद्युम्न का पूरी शक्तियों के साथ घमसान का युद्ध, दिन के अन्त में द्रोण के बाणों का चुक जाना, धृष्टद्युम्न का तलवार से आचार्य का सिर काटना, १०६५

द्रोणाचार्य की मृत्यु सम्ब.

विषय पृष्ठ

ग्विनी अद्भुत कथाओं की समीक्षा १०६९

दुर्योधन की अश्वत्थामा को पञ्चालों और पाण्डवों के विरुद्ध उत्तेजना, अश्वत्थामा का शोक विलाप और कोप, और घोर युद्ध की घोषणा, अश्वथात्मा का नारायण अस्त्र छोड़ना, श्रीकृष्ण का उस से अपने सैनिकों को बचाना, अश्वत्थामा और धृष्टद्युम्न का युद्ध, अश्वत्थामा और सात्यकि का युद्ध, अश्वत्थामा से सुदर्शन आदि राजाओं का वध, अश्वत्थामा और भीमसेन का युद्ध, भीमसेन की घबराहट, अर्जुन और अश्वत्थामा का युद्ध, दोनों ओर से दिव्य अस्त्रों का प्रयोग, सेना का अवहार १०८१

८ कर्णपर्व

कर्णपर्व का संक्षिप्त वृत्तान्त, धृतराष्ट्र का शोक और सविस्तर सुनने की इच्छा, संजय का सविस्तर वर्णन करना, सोलहवां दिन—कुरु पाण्डवों

विषय पृष्ठ

की व्यूह रचना, १०८९

कर्ण और नकुल का युद्ध, नकुल का पराजय, अर्जुन का कर्ण की ओर बढ़ना, दुर्योधन आदि का उस को रोकना, उन को जीत कर अर्जुन का आगे बढ़ना, कर्ण और अर्जुन का घोर युद्ध, सेनाओं का अवहार १०९३

सत्तरहवां दिन—अर्जुन से भिड़ने के लिए शल्य को अपना सारथि बनाने की दुर्योधन से कर्ण की प्रार्थना, दुर्योधन की प्रार्थना से शल्य का कठिनता से इसे स्वीकार करना, १०९६

सारथि बन कर शल्य से चलाए रथ पर बैठ कर कर्ण का रण के लिए निर्गमन, अर्जुन का संशप्तकों से युद्ध, कर्ण और युधिष्ठिर का युद्ध, युधिष्ठिर का पराजय ११०३

अर्जुन का युधिष्ठिर की रक्षा के लिए लौटना, मार्ग में धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा से ग्रस्त देख अश्वत्थामा से युद्ध कर के धृष्टद्युम्न की रक्षा करना, ११०७

विषय पृष्ठ

अर्जुन का मार्ग में भीम को मिल कर युधिष्ठिर के पास आना, युधिष्ठिर का कर्ण को मार कर आए जान अर्जुन की प्रशंसा करना, अर्जुन का संशप्तकों से अपना युद्ध बतला कर कर्ण के बध की प्रतिज्ञा करना, युधिष्ठिर का अर्जुन को झिड़क कर अपना गांडीव कृष्ण को देदेने की प्रेरणा, और उस के गांडीव को धिक्कारना, ११११०

गांडीव के धिक्कार को सुन कर युधिष्ठिर को मारने के लिए तय्यार हुए अर्जुन से कृष्ण का उस से कारण पूछना, अर्जुन का कारण बतलाना, कृष्ण का समाधान, कि गुरु का झिड़कना ही वध है ११११५

युधिष्ठिर को झिड़क कर आत्म बध के लिए तय्यार हुए अर्जुन को श्रीकृष्ण का उस के स्थान पर आत्म प्रशंसा का विधान, अर्जुन का आत्म प्रशंसा के अनन्तर युधिष्ठिर से क्षमापन, अर्जुन से किये अवमान से वन जाना चाहते हुए युधिष्ठिर को कृष्ण की सान्त्वना ११२१

अर्जुन की चिन्ता, कृष्ण का अर्जुन को प्रोत्साहन और उत्तेजन, अर्जुन की कर्ण वध की प्रतिज्ञा ११२८

कर्ण का घोर संग्राम, भीम दुःशासन का समागम, संवाद, और संग्राम, दुःशासन का वध, और भीम का दुःशासन की वक्षी का रक्त पान, अर्जुन से कर्ण पुत्र वृषसेन का वध, ११३३

कर्ण अर्जुन का समागम, कुरु-पाण्डवों का कर्ण अर्जुन को प्रोत्साहन, शल्य और कर्ण का संवाद, कृष्ण और अर्जुन का संवाद, ११४०

कर्ण अर्जुन का युद्धारम्भ, दोनों ओर से दिव्य अस्त्रों का प्रयोग, कर्ण का अर्जुन को लक्ष्य करके नागास्त्र का प्रयोग, कृष्ण का रथ को नीचा करके अर्जुन के सिर को बचाना, ११४३

विषय	पृष्ठ
अर्जुन का अस्त्र प्रयोग, कर्ण के पहिये का भूमि में धंसना, कर्ण की अर्जुन को थोड़ी देर ठहरने की प्रार्थना, कृष्ण का उत्तर, कर्ण का पहिये को निकालने के लिए भूमि पर उतरना, इस अवसर में कृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन का कर्ण के सिर को काटना, पाण्डवों का हर्ष	११४७
दुर्योधन का शोक, शल्य का उस को समाश्वासन, कर्ण वध के अनन्तर कृष्ण और अर्जुन का युधिष्ठिर के निकट गमन, कृष्ण युधिष्ठिर का संवाद,	११५३

९ शल्यपर्व

विषय	पृष्ठ
शल्य पर्व का संक्षिप्त वृत्तान्त, उस को सुन कर मूर्छित हुए धृतराष्ट्र का विदुर से समाश्वासन, धृतराष्ट्र का और विलाप, और संजय को सविस्तर सारा वृत्तान्त कहने की प्रेरणा	११५८
कृपाचार्य की दुर्योधन को सन्धि करने की सम्मति देना, दुर्योधन का कृप के प्रति कारण कह कर सन्धि का अस्वीकार करना, युद्ध की तय्यारी, दुर्योधन का अश्वत्थामा की मति से शल्य को सेनापति बनाना.	११६२
अठारहवां दिन-दोनों ओर की सेनाओं का युद्ध, शल्य का वध	११६८
युधिष्ठिर का घेरे में आना, अर्जुनादि का वहां पहुंच कर उस को निकालना, कौरवों का भागना, दुर्योधन का सेनाओं को प्रोत्साहन कर के मोड़ना, धृष्टद्युम्न से शाल्व का वध,	११७१
कृतवर्मा और सात्यकि का युद्ध, कृपाचार्य का कृतवर्मा को बचाना, शकुनि और सहदेव का युद्ध, भीम सेन से दुर्योधन के छोटे भाइयों का वध	११७५

विषय	पृष्ठ
सहदेव से शकुनि और उलूक का बध, कौरवों का क्षय, दुर्योधन का भागना, और तालाब में छिपना,	११७९
गदापर्व-पाण्डवों का दुर्योधन को ढूंढना, व्याधों से उस का पता पाकर पाण्डवों का तालाब पर आना,	११८४
युधिष्ठिर दुर्योधन संवाद	११८७
दुर्योधन का तालाब से बाहर आना, और द्वन्द्व युद्ध मांगना, युधिष्ठिर का स्वीकार करना और एक को भी जीतने से उसको उसका राज्य देदेने का वचन देना, कृष्ण का युधिष्ठिर पर आक्षेप, भीम का कृष्ण को उत्तर, कृष्ण का भीम की प्रशंसा करना, भीम और दुर्योधन का आमने सामने आना	११९१
गदा युद्ध के आरम्भ में बलभद्र का आगमन, उसके पूजा पाकर बैठने पर फिर युद्धारम्भ, भीम और दुर्योधन के गदा युद्ध का वर्णन, अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण का भीम दुर्योधन के बल आदि का वर्णन, द्यूतसभा में भीम की दुर्योधन के ऊरु भेदने की प्रतिज्ञा स्मरण कराने पर भीम का गदा से दुर्योधन के ऊरु भेदना,	११९५
भीमसेन का दुर्योधन की अनीतियों को स्मरण कर के बायें पाद से उस के सिर को ताड़ना, युधिष्ठिर का उस को रोकना और दुर्योधन को समाश्वासन, भीम की अनीति को देख कर बलराम का क्रोध, कृष्ण की उस को सान्त्वना देना, तब बलराम का द्वारका गमन, युधिष्ठिर का कृष्ण और भीम से संलाप, पाण्डव और पाञ्चालों का अपने २ शिविरों में गमन, दूसरे दिन युधिष्ठिर की प्रेरणा से धृतराष्ट्र और गान्धारी के आश्वासन के लिए कृष्ण का हस्तिना पुर गमन, श्रीकृष्ण का उनको आश्वासन देकर लौटना	१२०३
संजयका धृतराष्ट्र के प्रति दुर्योधन का विलाप कथन, दुर्योधन	

विषय	पृष्ठ
का माराजाना सुन कर अश्वत्थामा, कृप और कृतवर्मा का दुर्योधन के पास आना, अश्वत्थामा और द्रोण का संवाद, अश्वत्थामा की रात के समय पाण्डवों के वध की प्रतिज्ञा, दुर्योधन के वचन से कृपाचार्य का अश्वत्थामा को सेनापति बनाना	१२१२
अश्वत्थामा कृप और कृतवर्मा का वन में बड़ के नीचे सोना, अश्वत्थामा का अकेले उल्लू से बहुत से कौरवों का वध देख कर अश्वत्थामा का ऐसे ही सोए हुए पाण्डवों के मारने का निश्चय, तब कृप कृतवर्मा को उठा कर अपना अभिप्राय कहना	१२१९
कृपाचार्य का उसको कर्तव्य बतलाना, अश्वत्थामा का उस के वचन का अनादर करके सोए हुए पाण्डु पाञ्चालों के वध की प्रतिज्ञा, सोए हुवों को मारना अधर्म है, कृपाचार्य के इस प्रतिषेध का अनादर कर के अश्वत्थामा का पाण्डवों को मारने की इच्छा से चल पड़ना, और कृप कृतवर्मा का सौहार्द से उसके पीछे जाना	१२२२
शिबिर के द्वार पर कृप और कृतवर्मा को स्थापन करके अन्दर प्रविष्ट हुए अश्वत्थामा से धृष्टद्युम्न आदि पञ्चालों का और द्रौपदी के पुत्रों का वध, भय से बाहर निकलना चाहते हुवों का कृप कृतवर्मा से वध, दुर्योधन के पास जाकर अश्वत्थामा का सोए शत्रुओं के वध का निवेदन, दुर्योधन का प्राण त्याग	१२२८
धृष्टद्युम्न के सारथि का युधिष्ठिर को जाकर रात का वृत्तान्त बतलाना, युधिष्ठिर का मृत जनों को देख कर विलाप, द्रौपदी का आना, द्रौपदी की भीम को अश्वत्थामा के मस्तक की मणि लाने की प्रेरणा, भीम का नकुल को सारथि बना कर अश्वत्थामा के वध के लिए प्रस्थान	१२३५
कृष्ण अर्जुन का भीम के पीछे रक्षा के लिए गमन, गंगातट पर	

विषय पृष्ठ

व्यास के निकट अश्वत्थामा को देखना, अश्वत्थामा का ब्रह्म शिर अस्त्र का प्रयोग, अर्जुन का प्रत्यस्त्र प्रयोग, व्यास और नारद के बीच में खड़ा होजाने से अर्जुन का अस्त्र संहार, व्यास का अश्वत्थामा से मस्तक मणि दिलाना, भीम का उस मणि को द्रौपदी के पास लाकर द्रौपदी का समाश्वासन, द्रौपदी के कहने पर युधिष्ठिर का उस मणि को अपने मस्तक पर धारणा, १२४०

११ स्त्रीपर्व

पुत्रादि के लिए शोक करते हुए धृतराष्ट्र को संजय और विदुर से समाश्वासन, धृतराष्ट्र का गान्धारी आदि स्त्रियों समेत मृत जनों के देखने के लिए रणांगण में गमन, १२४५

युधिष्ठिर का कृष्ण आदि के साथ धृतराष्ट्र के समीप आकर अभिवादन, धृतराष्ट्र के अभिप्राय को जान कर कृष्ण का लोहे का भीम धृतराष्ट्र के आगे करना, धृतराष्ट्र का दृढ आलिंगन से उसे तोड़ना, धृतराष्ट्र का शोक, कृष्ण का धृतराष्ट्र के क्रोध को हटाना, १२४८

कृष्ण का धृतराष्ट्र से संवाद, पाण्डवों का गान्धारी को अभिवादन, गांधारी का भीम के अन्याय्य कर्मों को कहना, पाण्डवों का कुन्ती के पास जाना, कुन्ती द्रौपदी का शोक, गान्धारी का द्रौपदी को आश्वासन १२५१

धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर आदि का स्त्रियों सहित रण भूमि में प्रवेश, स्त्रियों का विलाप, उत्तरा का अभिमन्यु के सिर को गोदी में रख कर विशेष विलाप १२५७

सब वीरों का दाह संस्कार, गंगा में जलाञ्जलिदान के समय कुन्ती का युधिष्ठिर को कर्ण का सहोदर होना बतलाना, युधिष्ठिर का शोक, १२५९

विषय पृष्ठ

१२ शान्तिपर्व

युधिष्ठिर की शोक से राज त्याग ने की इच्छा, अर्जुन, भीम और द्रौपदी की उस को प्रेरणा १२६३

युधिष्ठर का उत्तर, व्यासादिका युधिष्ठिर को कर्तव्योपदेश १२७१

पाण्डवों का पुर में प्रवेश, राज्य का पूरा प्रबन्ध कर के पाण्डवों का कृष्ण सहित भीष्म के निकट गमन, युधिष्ठिर को धर्मोपदेश देने के लिए श्रीकृष्ण की भीष्म से प्रार्थना १२७९

भीष्म के धर्मोपदेश, राज धर्म, १२८४

वर्णाश्रम धर्म १२९०

देशरक्षा की पद्धति १२९४

राजा को पुरोहित की आवश्यकता १२९८

राजा के मित्र, मन्त्री और ज्ञाति कैसे हों, और उन से कैसे बर्तें १३००

राज्य प्रबन्ध १३०३

युद्ध के नियम और शौर्य की प्रशंसा १३०६

सामाजिक धर्म, राज्य धर्म, और ज्ञाति धर्म १३१०

आपद्धर्म, आत्मोद्धार, १३१५

ब्राह्मण का आपद्धर्म, पाप की प्रवृत्ति का मूल १३१९

धर्माचरण की प्रेरणा १३२१

देह से भिन्न जीव का उपपादन और दुःख निवृत्ति का उपाय १३२३

चारों आश्रमों के धर्म, १३०७

धर्म की पहचान १३३२

मिश्रित धर्म १३३४

सुलभा जनक संवाद द्वारा मोक्ष धर्म का उपदेश १३३६

१३ अनुशासनपर्व

युधिष्ठिर की भीष्म से पुनः धर्मोपदेश की प्रार्थना, भीष्म का युधिष्ठिर के प्रति कर्मों की महिमा का वर्णन, प्रारब्ध और पुरुषार्थकी महिमा, १३४९

लक्ष्मी कैसे स्त्री पुरुषों में रहती है १३५२

शुभाशुभ कर्मों के फल १३५५

गृहस्थ धर्म १३५८

सार्व जनिक कर्म १३६०

सदाचार १३६५

युधिष्ठिर का हस्तिनापुर में

विषय पृष्ठ

आना, और समय पर फिर भीष्म के पास जाना, भीष्म का देहत्याग १३६९

१४ अश्वमेधपर्व

कृष्ण का द्वारका गमन, १३७६
अश्वमेध यज्ञ के अर्थ धन लाने के लिए पाण्डवों की चढाई, परीक्षित् का जन्म, पाण्डवों का आगमन, १३८०
अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ, १३८६
पृथिवी की परिक्रमा के लिए घोड़ा छोड़ना और अर्जुन का रक्षक नियत होना, अर्जुन का सफलता पूर्वक घोड़े को लौटा लाना १३८९
यज्ञ का अनुष्ठान, और समाप्ति १३९४

१५ आश्रमवासपर्व

युधिष्ठिर से धृतराष्ट्र और गान्धारी का सम्मान, १४००
धृतराष्ट्र का वन गमन का निश्चय, धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर का संवाद १४०२
धृतराष्ट्र, विदुर, गान्धारी और कुन्ती का वनप्रस्थान, पाण्डवों का कुन्ती से घर में रहने के लिए आग्रह, कुन्ती का उत्तर, पाण्डवों का वापिस लौटना, धृतराष्ट्र आदि का कुरुक्षेत्र में जाकर व्यास से दीक्षा ले कर शतयूपाश्रम में वास १४०८
पाण्डवों का उन के दर्शनों के लिए आश्रम गमन, १४१८
पाण्डवों का आश्रम मण्डल के दृश्यों का देखना. और कुछ अधिक एक मास वास कर के हास्तिनापुर आना, १४२१
धृतराष्ट्र, विदुर, गान्धारी और कुन्ती की मृत्यु १४२४
पाण्डवों का शोक १४२७

१६ मौसलपर्व

यादवों को शाप, यादवों की तीर्थ यात्रा, समुद्र तीर पर डेरे लगाना, सुरा पान, सात्यकि और कृतवर्मा का वाकलह, क्रुद्ध हुए सात्यकि द्वारा कृतवर्मा का शिरश्छेद, यादवों में परस्पर युद्धारम्भ, श्रीकृष्ण के रोकते २ युद्ध का भयंकर रूप धारण, यादवों का परस्पर

विषय	पृष्ठ
विनाश, श्रीकृष्ण का स्वलोक गमन	१४३०
दारुक का पाण्डवों को समाचार देना, अर्जुन का द्वारका गमन	१४३९
कुमारों को संग लाना, पञ्चनद स्थान पर डाकुओं से हार खाना, बचे हुए धन आदि लेकर हस्तिनापुर आना	१४४२

१७ महाप्रस्थानिकपर्व

विषय	पृष्ठ
पाण्डवों का महाप्रस्थान, तीर्थ यात्रा,	१४४८
हिमाचल पर गलना, युधिष्ठिर का कुत्ते को संग लिये सदेह स्वर्ग गमन	१४५०

१८ स्वर्गारोहणपर्व

विषय	पृष्ठ
युधिष्ठिर का स्वर्ग नरक दर्शन	१४५६
सब की उत्तम गति	१४६०
कथा की समाप्ति और माहात्म्य	१४६२

—:०:—

६ भीष्मपर्व

अ० १ (व० १३-१४) संजय से धृतराष्ट्र का युद्ध वृत्तान्त सुनना

मूल—अथ गावल्गणिर्विद्वान् संयुगादेत्य भारत। आचष्ट निहतं भीष्मं भरतानां पितामहं ॥ १ ॥ संजय उवाच—संजयोहं महाराज नमस्ते भरतर्षभ। हतो भीष्मः शान्तनवो भरतानां पितामहः ॥ २ ॥ ककुदं सर्वयोधानां धाम सर्वधनुष्मतां। शरतल्पगतः सोऽद्य शेते कुरुपितामहः ॥ ३ ॥ यस्य वीर्यं समाश्रित्य द्यूतं पुत्रस्तवा करोत्। स शेते निहतो राजन् संख्ये भीष्मः शिखण्डिना ॥ ४ ॥ पाण्डवानां महासैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे। प्रावेपत भयोद्विग्नं सिंहं दृष्ट्वेव गोगणः ॥ ५ ॥ परिरक्ष्य स सेनां ते दशरात्रमनीकहा। जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करं॥६॥

अर्थ—* अब गवल्गण के पुत्र (संजय) विद्वान् ने रण भूमि से आ कर बतलाया, कि भरतों के पितामह भीष्म मारे गए ॥ १ ॥ संजय बोला—हे भरत वर महाराज ! मैं संजय आप को नमस्कार करता हूं, भरतों के पितामह भीष्म मारे गए ॥ २ ॥ सब योधों के शिरोमणि, सब धनुर्धारियों के तेज पुञ्ज, कुरुओं के पितामह आज बाणों की शय्या पर शयन कर रहे हैं

---

* कुरुक्षेत्र में जब दोनों ओर की सेनाएं पहुंच गईं, और युद्ध आरम्भ हो गया। तब युद्ध में पहुंच कर वहां का हरएक समाचार ठीक २ और पूरा २ लाने के लिये धृतराष्ट्र ने सञ्जय को नियुक्त किया। सञ्जय दोनों दलों से पूरे २ ठीक समाचार ला कर धृतराष्ट्र को सुनाता था। उस समय धृतराष्ट्र और सञ्जय में जो बात चीत और प्रश्नोत्तर होते थे, कवि ने युद्ध का वर्णन उन्हीं की बात चीत के रूप में ज्यों का त्यों दिखलाया है।

॥ ३ ॥ जिस के बलवीर्य का आश्रय कर, आप के पुत्र ने जुआ खेला था, हे राजन् ! वही भीष्म युद्ध में शिखण्डी से निहत हो कर शयन कर रहे हैं ॥ ४ ॥ युद्ध में जिस को तय्यार देख कर पाण्डवों की बड़ी सेना भय भीत होकर इस प्रकार कांपने लगती थी, जैसे शेर को देख कर गौओं का समुदाय, वही शत्रुओं के नाश करने वाले भीष्म दस दिन तेरी सेना की रक्षा कर के बड़ा दुष्कर कर्म करके सूर्य की भांति अस्त होगए हैं।५-६।

मूल–धृतराष्ट्र उवाच–कथं कुरूणां वृषभो हतो भीष्मः शिखण्डिना । कथमाचक्ष्व मे योधा हीना भीष्मेण संजय ॥ ७ ॥ आर्तिं परमाविशति मनः शंससि मे हतं । कुरूणा वृषभं वीर मकम्पं पुरुषर्षभं ॥ ८ ॥ कथं चातिरथस्तेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना । भीष्मो विनिहतो युद्धे देवैरपि दुरासदः ॥ ९ ॥ अश्मसार मयं नूनं हृदयं सुदृढं मम । यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ॥ १० ॥ यस्मिन् सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभ । अप्रमेयणिदुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ॥ ११ ॥ धर्मादधर्मो बलवान् संप्राप्त इति मे मतिः । यत्र वृद्धं गुरुं हत्वा राज्य मिच्छन्ति पाण्डवाः ॥ १२ ॥ योधेन्न हतवीरा मे सेना पुत्रस्य संजय । अगोपमि वचोद्भ्रान्तं गोकुलं तद्बलं मम॥१३॥अगाधे सलिले मग्नां नावं दृष्ट्वेव पारगाः । भीष्मे हते भृशं दुःखान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः॥१४॥ यद्वृत्तं तत्र संग्रामे मन्दस्याबुद्धि संभवं । अपनीतं सुनीतं यत् तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १५ ॥ यत्कृतं तत्र संग्रामे भीष्मेण जय मिच्छता । तेजोयुक्तं कृतास्त्रेण शंस तच्चाप्य शेषतः ॥ १६ ॥ यथा तदभवद्युद्धं कुरुपाण्डव सेनयोः । क्रमेण येन यस्मिंश्च काले यच्च यथाऽभवत् ॥ १७ ॥

अर्थ—धृतराष्ट्र बोले—कैसे शिखण्डी ने कुरुश्रेष्ठ भीष्म का वध किया, कैसे मेरे योधे भीष्म से हीन हो गए, हे संजय यह कहो ॥ ७ ॥ मेरा मन बड़ा व्याकुल हुआ जाता है, तुम बतलाते हो, कि किसीसे न कांपने वाला पुरुषश्रेष्ठ कुरुवीर मारा गया है ॥ ८ ॥ कैसे उस अतिरथ भीष्म को युद्ध में पञ्चालराज के पुत्र शिखण्डी ने मार डाला, जिस को देवता भी नहीं दबा सकते थे ॥ ९ ॥ मेरा हृदय निःसंदेह फुलाद का बना हुआ दृढ है, जो पुरुषवर भीष्म को मरा सुन कर फट नहीं जाता है ॥ १० ॥ जिस दुर्जय भरतवर में अप्रमेय सत्य मेधा और नीति है, कैसे वह युद्ध में मारा गया ॥ ११ ॥ मैं जानता हूं, कि धर्म से अधर्म का बल बढ़ गया, जब कि वृद्ध गुरु को मार कर पाण्डव राज्य चाहते हैं ॥ १२ ॥ हे संजय मेरे पुत्र की सेना हतवीरा (जिस के पति पुत्र और भाई मारे गए) स्त्री की भांति हो गई है, और गोप से हीन गोकुल की भांति घबराहट में है ॥ १३ ॥ भीष्म के मरने पर मेरे पुत्र दुःख से इस प्रकार शोक कर रहे होंगे, जैसे पार जाने वाले अगाध जल में डूबती नौका को देख कर करते हैं ॥ १४ ॥ हे संजय मेरे मूर्ख पुत्र की कुबुद्धि के कारण अपनीति वा सुनीति जो हुई है और जो कुछ उस का फल हुआ है, वह मुझे सब कहो ॥ १५ ॥ और जो कुछ उस संग्राम में विजय पाने के लिये भीष्म ने तेजो युक्त काम किया है, वह भी सारा कहो ॥ १६ ॥ कौरव पाण्डव सेनाओं का जिस क्रम से जिस काल में जो जैसा युद्ध हुआ है, वह सब कहो ॥ १७ ॥

अ०२(व०१५-२२)दोनों दलों का युद्ध के लिये सामने सामने आना

मूल—संजय उवाच—शृणु मे विस्तरेणेदं विचित्रं परमाद्भुतं।

भरतानामभूद् युद्धं यथा तल्लोमहर्षणं ॥ १ ॥ तेष्वनीकेषु यत्तेषु व्यूढेषु च विधानतः ।दुर्योधनो महाराज दुःशासन मथाब्रवीत्॥२॥ दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः। अनीकानि च सर्वाणि शीघ्रं त्वमनुचोदय ॥ ३ ॥ अयं स मामभिप्राप्तो वर्ष पूगाभिचिन्तितः । पाण्डवानां ससैन्यानां कुरूणां च समागमः ॥ ४ ॥ नातः कार्यतमं मन्ये रणे भीष्मस्य रक्षणात् । हन्याद् गुप्तो ह्यसौ पार्थान् सोमकांश्च ससृंजयान् ॥ ५ ॥ ततो रजन्यां व्युष्टायां शब्दः समभवन्महान् । क्रोशतां भूमिपालानां युज्यतां युज्यतामिति ॥ ६ ॥ शंखदुन्दुभिघोषैश्च सिंहनादैश्च भारत । हयहेषित नादैश्च रथनेमिस्वनैस्तथा ॥ ७ ॥ गजानां बृंहतां चैव योधानां चापि गर्जतां । क्ष्वेलितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् ॥ ८ ॥ ततः प्रकाशे सैन्यानि सम दृश्यन्त भारत । त्वदीयानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ ९ ॥ श्वेतोष्णीषं श्वेतहयं श्वेतवर्माणमच्युतं । अपश्याम महाराज भीष्मं चन्द्र मिवोदितं ॥ १० ॥ हेमतालध्वजं भीष्मं राजते स्यन्दने स्थितं । श्वेताभ्र इव तीक्ष्णांशुं ददृशुः कुरु पाण्डवाः ॥ ११ ॥

अर्थ---संजय बोले—यह विचित्र बड़ा अद्भुत वृत्तान्त सुनिये, जैसा कि भरतों का वह लोमहर्षण युद्ध हुआ ॥ १ ॥ वह सम्पूर्ण सेनाएं जब यथाविधान व्यूह रच कर तय्यार हो गईं, तब दुर्योधन दुःशासन से बोला ॥ २ ॥ हे दुःशासन भीष्म की रक्षा के लिये बहुत शीघ्र रथों को जोड़िये और सारी सेनाओं को प्रेरिये ॥ ३ ॥ यह आज मुझे अनेक वर्षों से चाहा हुआ सेना समेत पाण्डवों और कौरवों का समागम प्राप्त हुआ है ॥ ४ ॥ भीष्म की रक्षा से बढ़ कर मैं कोई कार्य नहीं देखता हूं, रक्षित हुए वह

पाण्डवों सोमकों और सृंजयों को मारेगा ॥ ५ ॥ रात के प्रभात होने पर 'रथ जोड़ो रथ जोड़ो' पुकारते हुए राजाओं का बहु बड़ा शब्द होने लगा ॥ ६ ॥ शंख और दुन्दुभियों की ध्वनियों, योधाओं के सिंहनादों, घोड़ों की हिनहिनाहटों, रथ के पहियों की ध्वनियों, हाथियों की चिंघाड़ों, गर्जते हुए योधाओं के सिंहनाद भुज शब्द और चिल्लाहटों से बड़ा घोर शब्द होने लगा॥ ७-८॥ अनन्तर पूरा प्रकाश होने पर आप की और पाण्डवों की बड़ी सेनाएं शस्त्र धारे हुए दृष्टिपथ में आने लगीं ॥ ९ ॥ उन के बीच में हे महाराज श्वेत पगड़ी, श्वेत घोड़े और श्वेत कवच से युक्त अच्युत भीष्म को हमने उदय होते हुए चन्द्र की भांति देखा ॥ १० ॥ सुनहरी ताल के झंडे वाले रुपहरी रथ पर स्थित भीष्म को कौरव पाण्डव श्वेत मेघ पर से चमकते सूर्य की भांति देखने लगे ॥ ११ ॥

मूल—मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत । दीप्यमानाश्च संपेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः ॥ १२ ॥ सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव । समानीय महीपालानिदं वचन मब्रवीत् ॥ १३ ॥ एष वः शाश्वतः पन्थाः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः । संभावयध्व मात्मान मव्यग्रमनसो युधि ॥ १४ ॥ नाभागोऽथ ययातिश्च मान्धाता नहुषो नृगः । संसिद्धाः परमं स्थानं गताः कर्मभिरीदृशैः ॥ १५ ॥ अधर्मः क्षत्रियस्यैष यद् व्याधिमरणं गृहे । यदयोनिधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः ॥ १६ ॥ एवमुक्ता महीपाला भीष्मेण भरतर्षभ । निर्ययुः स्वान्यनीकानि शोभयन्तो रथोत्तमैः ॥ १७॥ स तु वैकर्तनः कर्णः सामात्यः सह बन्धुभिः । न्यासितः समरे शस्त्रं भीष्मेण भरतर्षभ ॥ १८ ॥ अपेतकर्णाः पुत्रास्ते राजानश्चैव

तावकाः । निर्ययुः सिंहनादेन नादयन्तो दिशो दश ॥ १९ ॥ शंखदुन्दुभिघोषैश्च वारणानां च बृंहितैः । नेमिघोषै रथानां च दीर्यतीव वसुन्धरा ॥ २० ॥ हयानां हेषमाणानां योधानां चैव गर्जतां । क्षणेनैव नभो भूमिः शब्देनापूरितं तदा ॥ २१ ॥ पुत्राणां तव दुर्धर्ष पाण्डवानां तथैव च । समकम्पन्त सैन्यानि परस्परसमागमे ॥ २२ ॥

अर्थ—उस दिन चन्द्र मघा नक्षत्र में था, और सातों महाग्रह चमकते हुए एक राशि में चल रहे थे ॥ १२ ॥ युद्धारम्भ से पहले सारे धर्मों का मर्म जानने वाले तेरे पिता देवव्रत सब राजाओं को बुला कर यह वचन बोले ॥ १३ ॥ "हे क्षत्रियो ! यह तुम्हारा सनातन मार्ग है, जो हमारे बड़ों और उन के भी बड़ों ने किया है, इस मार्ग पर एकाग्रमन से चल कर युद्ध में अपना सम्मान करो ॥ १४ ॥ नाभाग, ययाति, मान्धाता, नहुष और नृग ऐसे ही कर्मों से सिद्धि पाकर परम स्थान को प्राप्त हुए हैं ॥ १५ ॥ क्षत्रिय के लिये यह अधर्म है, जो घर में रोग से मरना है, जो लोहे से मरना है, वह इस का सनातन धर्म है"॥ १६ ॥ भीष्म से ऐसे कहे राजा लोग अपनी २ सेनाओं को सजा कर उत्तम रथों पर चढ़ कर निकले ॥ १७ ॥ हे भरतवर भीष्म ने कर्ण से उस के मन्त्रियों और बन्धुओं समेत शस्त्र रखवा दिये ॥ १८ ॥ सो तेरे पुत्र, और उन के साथ कर्ण भिन्न सब राजे सिंहनाद से दसों दिशाओं को गुंजाते हुए निकले ॥ १९ ॥ शंख और दुन्दुभियों की ध्वनियों, हाथियों की चिंघाड़ों और रथों की घार की ध्वनियों से भूमि मानो फटी जाती थी ॥ २० ॥ हिनहिनाते घोड़ों और गर्जते हुए योधाओं के शब्द से क्षण भर

में पृथिवी और आकाश भर गए॥२१॥ हे दुर्धर्ष जूंही कि तेरे पुत्रों और पाण्डवों के सैनिकों का मिलाप हुआ, उन के अंग फड़क ने लगे।२२।

मूल—धृतराष्ट्र उवाच-अक्षौहिण्यो दशैका च व्यूढा दृष्ट्वा युधिष्ठिरः। कथमल्पेन सैन्येन प्रत्यव्यूहत पाण्डवः॥ २३ ॥ यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्व मासुरं। कथं भीष्मं स कौन्तेयः प्रत्यव्यूहत सञ्जय ॥ २४ ॥ सञ्जय उवाच—धार्तराष्ट्राण्यनीकानि दृष्ट्वा व्यूढानि पाण्डवः। अभ्यभाषत धर्मात्मा धर्मराजो धनञ्जयं ॥ २५ ॥ महर्षेर्वचनात् तात वेदयन्ति बृहस्पतेः। संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून् ॥ २६ ॥ सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह। अस्माकं च तथा सैन्यमल्पीयः सुतरां परैः ॥ २७ ॥ अर्जुन उवाच—एष व्यूहामि ते व्यूहं राजसत्तम दुर्जयं। अचलं नाम वज्राख्यं विहितं वज्रपाणिना ॥ २८ ॥ यः स वात इवोद्भूतः समरे दुःसहःपरैः। स नः पुरो योत्स्यते वै भीमः प्रहरतांवरः ॥ २९ ॥ नहि सोस्ति पुमांल्लोके यः संक्रुद्धं वृकोदरं। द्रष्टु मत्युग्र कर्माणं विषहेत नरर्षभं ॥ ३० ॥ एवं ते पुरुषव्याघ्रा पाण्डवा युद्धनन्दिनः। व्यवस्थिताः प्रति व्यूह्य तव पुत्रस्य वाहिनीं ॥ ३१ ॥ उभेसेने तुल्यमिवोपयाते उभे व्यूहे हृष्टरूपे नरेन्द्र। उभे सेने बृहत्यौ भीमरूपे तथैवोभे भारत दुर्विषह्ये ॥ ३२ ॥

अर्थ—धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय युधिष्ठिर ने ग्यारह अक्षौहिणी सेना को व्यूह रचना में खड़ी देख कर अपनी थोड़ी सेना से किस प्रकार व्यूह रचना की ॥ २३ ॥ हे सञ्जय जो भीष्म मानुष दैव गान्धर्व और आसुर व्यूहों को जानता है, किस प्रकार अर्जुन ने उस के सामने की व्यूह रचना की ॥ २४ ॥ सञ्जय

बोले—धर्मात्मा युधिष्ठिर दुर्योधन की सेना की व्यूहरचना देख कर अर्जुन से बोले ॥ २५ ॥ हे तात महर्षि बृहस्पति के वचन से बहुत लोग जानते हैं, कि थोड़ों को इकट्ठे रख कर लड़ाना चाहिये, बहुत हों, तो भले ही फैलादें ॥ २६ ॥ थोड़ों का बहुतों के साथ सूचीमुख व्यूह होना चाहिये, और शत्रुओं की अपेक्षा हमारी सेना बहुत थोड़ी है ॥ २७ ॥ अर्जुन बोले—हे राजसत्तम यह आप के निमित्त वज्रव्यूह रचता हूं, जो दुर्जय है, अचल है, इन्द्र ने जिस का विधान किया है ॥ २८ ॥ सब योद्धाओं में श्रेष्ठ भीमसेन हम सब लोगों के आगे रह कर युद्ध करेंगे, जो उठी आंधी की भांति रण में शत्रुओं से सहारे नहीं जाते हैं ॥ २९ ॥ लोक में ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो अत्यन्त उग्र काम करने वाले वीरवर क्रुद्ध हुए भीमसेन को सहारसके ॥ ३० ॥ इस प्रकार युद्ध में हर्ष मनाने वाले वह पाण्डव आपके पुत्र की सेना के सामने का व्यूह रच कर खड़े होगए ॥ ३१ ॥ दोनों सेनाएं एक जैसा निकट आगईं, दोनों ओर के व्यूह आनन्द में भरे थे, दोनों सेनाएं बड़ी और भयंकर रूप धारे थीं, और दोनों ही हे भारत दबाई न जाने वाली थीं ॥ ३२ ॥

अ० ३ (व० २५) अर्जुन की उदासी (गीता)

मूल—धृतराष्ट्र उवाच—धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः। मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच—दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा । आचार्य मुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ पश्यैतां पाण्डु पुत्राणा माचार्य महतीं चमूं । व्यूढां द्रुपद पुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥ अत्र शूरा

महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि । युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥ धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् । पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥ युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् । सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः॥६॥ अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम । नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥ भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः । अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः॥८॥ अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः । नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥ अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितं । पर्याप्तं त्विद मेतेषां बलं भीमाभिरक्षितं ॥ १० ॥ अयनेषु च सर्वेषु यथाभाग मवस्थिताः । भीष्म मेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एवहि ॥ ११ ॥ तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः । सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥ ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवाणकगोमुखाः । सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥ ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ । माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥ पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः । पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥ अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥ काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः । धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥ द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते । सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ १८ ॥ स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् । नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

अर्थ—धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में युद्ध की इच्छा से आमने सामने आ डटे मेरे पक्ष वालों और पाण्डवों ने (तब) क्या किया ॥ १ ॥ सञ्जय बोले—तब पाण्डवों की सेना को व्यूह रचना में खड़ी देख कर राजा दुर्योधन (द्रोण-) आचार्य के पास गए और कहने लगे ॥ २ ॥ हे आचार्य! पाण्डवों की इस बड़ी सेना पर दृष्टि डालिये, जिस को आप के शिष्य बुद्धिमान् द्रुपद पुत्र (=धृष्टद्युम्न) ने व्यूह रूप में खड़ा किया है ॥ ३ ॥ इस में बड़े धनुर्धारी शूरवीर हैं, जो युद्ध में भीम और अर्जुन के तुल्य हैं--युयुधान (=सात्यकि), विराट, महारथ द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान, पराक्रमी काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज, नरश्रेष्ठ शैब्य, पराक्रमी युधामन्यु, बलवान् उत्तमौजा, सुभद्रा का पुत्र और द्रौपदी के पुत्र, यह सब महारथ हैं॥४-६॥ अब हे द्विजोत्तम ! हमारे जो प्रधान योद्धा हैं,उन को भी जानिये, जो मेरी सेना के नायक हैं, उन को, आप के जानने के लिये कहता हूं ॥ ७ ॥ आप, भीष्म, कर्ण, युद्धों में विजयपाने वाला कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र (भूरिश्रवा) ॥ ८ ॥ और भी बहुत से शूरवीर मेरे निमित्त अपने जीवन देने को तय्यार हैं, यह सब नाना शस्त्रों से प्रहार कर सकते हैं, और युद्ध में प्रवीण हैं ॥ ९ ॥ यह हमारी सेना, जो भीष्म से रक्षा की हुई है, अपरिमित (अथाह) है, और उन की, जो भीम से रक्षा की हुई है, परिमित (गिनी मिनी) है ॥ १० ॥ अब आप सभी सारे मार्गों (नाकों=व्यूह के अन्दर प्रवेश के मार्गों) पर अपने २ स्थान पर डटे रह कर भीष्म की ही सब ओर से रक्षा

करें ॥ ११ ॥ उसी समय कुरुवृद्ध प्रतापी पितामह (=भीष्म) ने दुर्योधन का हर्ष बढ़ाने के लिये ऊंचा सिंहनाद कर के शंखध्वनि की ॥ १२ ॥ तब एकबारगी ही (सारे रणस्थल)में शंख,नगारे, ढोल, मृदंग और नरसिंहे बजने लगे, (उन सब का) वह शब्द एक रौला बन गया ॥ १३ ॥ तब (दूसरी ओर पाण्डवों की सेना में) श्वेत घोड़ों से युक्त बड़े रथ पर स्थित श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अपने २ दिव्य शंखों की ध्वनि की ॥ १४ ॥ कृष्ण ने पाञ्चजन्य, अर्जुन ने देवदत्त, और भयंकर कर्मों वाले भीमने पौण्ड्र महाशंख को बजाया ॥ १५ ॥ कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्त विजय, नकुल ने सुघोष और सहदेव ने मणिपुष्पक (शंख) बजाया ॥ १६ ॥ महा धनुर्धारी काशिराज (पुरुजित्) महारथ शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, अपराजित (जो कहीं कभी हारा नहीं, वह) सात्यकि, द्रुपद, द्रौपदी के पुत्र, और महाबाहु सुभद्रा नन्दन (=अभिमन्यु) इन सब ने हे पृथिवीनाथ सब ओर अपने २ शंख अलग २ बजाए ॥ १७—१८ ॥ उस घमसान के शोर से आकाश और भूमि गूंजने लगे, और आप के पक्ष वालों के हृदय फटने लगे ॥ १९ ॥

मूल—अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः । प्रवृत्ते शस्त्र संपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ २० ॥ हृषीकेशं तदा वाक्य मिदमाह महीपते । (अर्जुन उवाच) सेनयोरु भयोर्मध्ये रथं स्थापयमेऽच्युत ॥ २१ ॥ यावदेतान् निरीक्षेऽहं योद्धु कामानव-स्थितान् । कैर्मया सह योद्धव्य मस्मिन् रण समुद्यमे ॥ २२ ॥ यो-त्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः । धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रिय चिकीर्षवः ॥ २३ ॥ सञ्जय उवाच—एवमुक्तो हृषीकेशो

गुडाकेशेन भारत । सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमं॥२४॥ भीष्म द्रोण प्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षितं । उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥ २५ ॥ तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान् । आचार्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा ॥ २६ ॥ श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि । तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ॥२७ ॥ कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदन्निद मब्रवीत् ।

अर्थ—अब जब शस्त्र चलने पर ही थे, तब तुम्हारे पक्ष वालों को क्रम से खड़े देख कर वानर के झंडे वाले पाण्डव (अर्जुन) ने अपना धनुष उठाया, और श्रीकृष्ण से यों कहने लगा(अर्जुन बोला) हे अच्युत ! दोनों सेनाओं के मध्य में मेरे रथ को खड़ा करो॥ २१ ॥ ताकि मैं इन खड़े हुए युद्ध करने की लालसा वालों को देखलूं, कि वह कौन २ हैं, जिन्होंने युद्ध के इस भारी उद्योग में मेरे साथ लड़ना है॥ २२ ॥ और कि मैं उन सब लड़ने वालों को देखूं, जो यहां इकट्ठे हुए हैं, जो कि युद्ध में दुर्बुद्धि दुर्योधन का प्रिय करना चाहते हैं ॥ २३ ॥संजय बोले-हे भारत! अर्जुन के ऐसा कहते ही श्रीकृष्ण दोनों सेनाओं के मध्य में,भीष्म द्रोण तथा अन्य सब राजाओं के सामने, रथ श्रेष्ठ को खड़ा कर के कहने लगे, हे पार्थ ! देख लो, यह कौरव यहां इकट्ठे हुए हैं ॥ २५ ॥ तब अर्जुन ने वहां दोनों सेनाओं में चाचे ताए, दादे, आचार्य, मामे, भाई पुत्र, पोते, ससुर, सखा सुहृद् खड़े देखे । उन सब बन्धुओं को वहां खड़े देख कर ॥ २६—२७ ॥ अर्जुन महती कृपा से भर गया,और उदास हो कर यों बोला-

मूल—अर्जुन उवाच—दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुप-

स्थितं ॥ २८ ॥ सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति । वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥ गांडीवं स्रंसते हस्तात् त्वक् चैव परिदह्यते । न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥ निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव । न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥ न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च । किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥ येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च । तइमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥ आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः । मातुलाः श्वशुराःपौत्राः स्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥ ३४ ॥ एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन । अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किंनु महीकृते ॥ ३५ ॥ निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन । पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥ तस्मान्नार्हाः वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान् । स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥ यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः । कुलक्षये कृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकं ॥ ३८ ॥ कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुं । कुलक्षय कृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥ कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः । धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नम धर्मोऽभि भवत्युत ॥ ४० ॥ अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः । स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥ संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च । पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्त पिण्डोदकक्रियाः॥ ४२ ॥ दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः। उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥ उत्सन्न कुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन । नरके नियतं वासो भवतीत्यनु

सुश्रम ॥ ४४ ॥ अहोबत महत् पापं कर्तुं व्यवसिता वयं । यद्राज्य सुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥ यदि मामप्रतीकार मशस्त्रं शस्त्रपाणयः । धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥४६॥ संजय उवाच—एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् । विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्न मानसः ॥ ४७ ॥

अर्थ—अर्जुन बोले--युद्ध करने के लिये यहां उपस्थित हुए इस आत्मीय वर्ग को देख कर हे कृष्ण ॥ २८ ॥ मेरे अंग ढीले पड़ते जाते हैं, मुंह सूखता है, देह कांपता है, रोमाञ्च होता जाता है ॥ २९ ॥ (हाथ से) गांडीव फिसला जाता है, त्वचा सारी जल रही है, मैं खड़ा नहीं होसक्ता हूं, मेरा मन मानो चक्र खा रहा है ॥ ३० ॥ हे केशव ! मैं उलटे लक्षण देख रहा हूं, अपने ही बन्धुजन को युद्ध में मार कर मैं कोई भलाई (की बात) नहीं देखता हूं ॥ ३१ ॥ हे कृष्ण ! मैं (ऐसा) विजय नहीं चाहता, न राज्य और सुख चाहता हूं, हे गोविन्द ! हमें राज्य से क्या और भोगों से वा जीवन से भी क्या (लाभ) ॥ ३२ ॥ (जब कि) जिन के लिये राज्य, भोग और सुख हमें प्यारा है, [वही यह प्राणों और धनों को त्याग कर युद्ध में खड़े हैं॥ ३३ ॥ आचार्य, चाचे ताए, पुत्र, दादे, मामे, ससुर, पोते, साले और सम्बन्धी ॥ ३४ ॥ हे मधुसूदन यह मुझे मारें भी, तौ भी मैं इन को मारना नहीं चाहता हूं— हां (सारी) त्रिलोकी के राज्य के अर्थ भी (मारना नहीं चाहता) क्या फिर केवल इस पृथिवी के अर्थ ॥ ३५ ॥ धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर हे जनार्दन ! हमें क्या प्रीति (खुशी) होगी, इन आततायियों को भी मार कर हमें पाप ही लगेगा ॥ ३६ ॥ इस लिये धृतराष्ट्र के पुत्र जो अपने

भाई बन्धु हैं, उन को मारडालना हमें उचित नहीं, क्योंकि आत्मीय वर्ग को मार कर हे माधव ! हम किस तरह सुखी होसकते हैं ॥ ३६ ॥ यद्यपि यह कुलक्षय के दोष और मित्रद्रोह के पातक को नहीं देखते हैं, क्योंकि लोभ से इन के चित्त मलीन हुए हुए हैं ॥ ३७ ॥ तौ भी हम तो कुलक्षय करने के दोष को जानते हैं, हमें इस पाप से क्यों नहीं बचना चाहिये ॥ ३८ ॥ कुल के क्षय होने पर सनातन कुल धर्म नाश होजाते हैं, और धर्म के नष्ट होने पर (शेष) सारे कुल को अधर्म दबा लेता है ॥ ३९ ॥ अधर्म के व्यापने से हे कृष्ण कुल की स्त्रियां दूषित होजाती हैं, स्त्रियों के दूषित होने पर हे यादव वर्णसंकर होजाता है ॥ ४० ॥ (वर्ण-) संकर उन कुलघातियों के और कुल के नरक के लिये ही होता है, क्योंकि उन के पितर पिण्डकर्म और उदक कर्म के लुप्त होजाने से (स्वर्ग से) गिर पड़ते हैं ॥ ४१ ॥ सो कुलहत्यारेपापियों के वर्णसंकर बनाने वाले इन दोषों से परम्परा से चले आते जातिधर्म और कुलधर्म नष्ट होजाते हैं ॥ ४३ ॥ और जिन के कुल धर्म नष्ट होगए हैं, उन का, हे जनार्दन ! शास्त्र बतलाता है, कि निःसंदेह नरक में वास होता है ॥ ४४ ॥ अहो खेद ! हम भारी पाप करने के लिये तय्यार होगए, जो राज्य के सुखों के लोभ से बन्धुजन को मारने को उद्यत हुए ॥ ४५ ॥ धृतराष्ट्र के पुत्र यदि हाथों में शस्त्र ले कर रण में मुझे मार डालें, और मैं न शस्त्र उठाउं और न बदला लूं, तो वह मेरे लिये कल्याणतर हो ॥ ४६ ॥ यह कह कर अर्जुन अपने धनुष बाण को फैंक कर शोक से भरे हुए मन वाला रण में रथ की बैठक में बैठ गया ॥ ४७ ॥

अ० ४ (व० २६) श्रीकृष्ण का अर्जुन को उपदेश

मूल—सञ्जय उवाच—तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुले-

क्षणं । विषीदन्त मिदं वाक्य मुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच—कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितं । अनार्यजुष्टमस्वर्ग्य मकीर्ति करमर्जुन॥ २ ॥ क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युप पद्यते । क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥ अर्जुन उवाच— कथं भीष्म महं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन । इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हा वरिसूदन ॥ ४ ॥ गुरून हत्वाहि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके । हत्वाऽर्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिर प्रदिग्धान् ॥ ५ ॥ न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदिवा नो जयेयुः । यानेव हत्वा न जिजीविषा मस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥ कार्पण्यदोषोपहत स्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः । यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नं॥ ७ ॥ नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोक मुच्छोषणमिन्द्रियाणां । अवाप्य भूमा वसपत्न मृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यं ॥ ८ ॥ संजय उवाच—एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप । न योत्स्य इति गोविन्द मुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥ तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत । सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्त मिदं वचः ॥ १० ॥

अर्थ—सञ्जय बोले—इस प्रकार कृपा से भरे हुए, आंसुओं से भरे हुए आकुल नेत्रों वाले, उदास हुए उस अर्जुन से श्रीकृष्ण यह वचन बोले ॥ १ ॥ हे अर्जुन इस विकट समय में यह मोह तुझे कहां से आ प्राप्त हुआ, जिसमें आर्यों को न फंसना चाहिये, जो (परलोक में) स्वर्ग का नाशक, और (लोक में) अपयश का लाने वाला है॥ २ ॥ हे कुन्ती के पुत्र हे शत्रुओं

के तपाने वाले ! कायर न बनो, यह तुम्हारे योग्य नहीं है, हृदय की दुर्बलता बड़ी निकम्मी होती है, इसे परित्याग कर के खड़े होजाओ ॥ ३ ॥ अर्जुन बोले-हे शत्रुओं के मारने वाले मधुसूदन ! कैसे मैं अपने पूजनीय भीष्म और द्रोण का रण में बाणों के साथ सामना करूंगा ॥ ४ ॥ इन महानुभाव गुरुओं को न मार कर, इस लोक में मुझे भिक्षान्न भोजन करना पड़े, वह भी अच्छा है, भला भला चाहने वाले गुरुओं को मार कर क्या यहां ही मैं रुधिर से लिबड़े भोगों को भोगूं ॥ ५ ॥ मैं नहीं समझता, कि हम उन को जीतें, वा वह हम को जीतें, इन दोनों में कोई भी बात हमारे लिये अच्छी है, क्योंकि जिन को मार कर हम जीना नहीं चाहते, वही धृतराष्ट्र के पक्ष वाले हमारे सामने खड़े हैं ॥ ६ ॥ (अपनों को सामने देख कर हृदय में उठी) दीनता के दोष ने मेरे (क्षात्र-) स्वभाव को दबा लिया है, मेरा अब क्या कर्तव्य है, इस में मेरा मन झकोले खा रहा है, मैं आप से पूछता हूं, जो मेरे भले की बात हो, वह एक निश्चितरूप से मुझे बतलाइये, मैं आप का शिष्य हूं, आप की शरण पड़ा हूं, मुझे शिक्षा दीजिये ॥ ७ ॥ क्योंकि मैं नहीं देखता हूं, कि इन्द्रियों के सुखा देने वाली मेरी इस बेचैनी को जो दूर कर सके, चाहे पृथिवी पर निष्कण्टक और ऐश्वर्य पूर्ण राज्य मिल जाए, वा देवताओं का भी आधिपत्य मिलजाए।८।सञ्जय बोले-हे परंतप! अर्जुन कृष्ण गोविन्द से इतना कह कर तदनन्तर 'मैं नहीं लडूंगा' कह कर चुप होगए ॥ ९ ॥ तब हे भारत दोनों सेनाओं के मध्य में उदास हुए अर्जुन से श्रीकृष्ण हंस कर यह वचन बोले ॥ १० ॥

मूल—श्रीभगवानुवाच-अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च

भाषसे । गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ ११ ॥ नत्वे वाहं जातुनासं न त्वं नेमे नराधिपाः । न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परं ॥ १२ ॥ देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा । तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥ मात्रा-स्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुखदुःखदाः । आगमापायिनोऽनि-त्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥ यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ । समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥नास तो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः । उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्व-नयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ १६ ॥ अविनाशि तु तद् विद्धि येन सर्व मिदं ततं । विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥ अन्त-वन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः । अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद् युध्यस्व भारत॥ १८ ॥ य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्य ते हतं । उभौतौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥ न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः । अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥ वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययं । कथं स पुरुषः पार्थ कं घा-तयाति हन्तिकं ॥ २१ ॥ वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि । तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥ नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः । न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ २३॥अच्छे-द्योऽय मदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च । नित्यः सर्वगतः स्थाणु-रचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥ अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्यो-ऽयमुच्यते । तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

अर्थ—श्रीभगवान् बोले—(हे अर्जुन !) तुम बात तो

पण्डितों के समान बोलते हो, और शोक उन के लिये करते हो, जिन के लिये शोक उचित नहीं है, पण्डितजन मरों जीतों पर शोक नहीं करते हैं ॥ ११ ॥ क्योंकि न ही किसी समय मैं नहीं था, न तुम नहीं थे, न ये राजे नहीं थे, और न ही हम सबइस से पीछे नहीं होंगे (किन्तु सदा से हैं, और सदा रहेंगे) ॥१२॥ जैसे इस देह में देहवाले को बचपन जवानी और बुढ़ापा होता है, वैसे दूसरे देह की प्राप्ति होती है, अतएव इस में बुद्धिमान् घबराते नहीं हैं ॥ १३ ॥ हे कौन्तेय ! विषय इन्द्रियों के संयोग कभी नर्मी कभी गर्मी कभी सुख कभी दुःख देते हैं, यह आने जाने वाले हैं, अतएव अनित्य हैं, हे भारत ! इन को सहन करो (इन में हर्ष विषाद न मानो) ॥ १४ ॥ क्योंकि हे पुरुषवर ! जिस पुरुष को यह (विषय इन्द्रियों के संयोग) पीड़ा नहीं देते, जो सुख दुःख में एक समान है, धीर है, वह मोक्ष के लिये समर्थ होता है ॥ १६ ॥ जो असत् है, उस का भाव नहीं होता, और जो सत् है, उस का अभाव नहीं होता, इन दोनों का निर्णय तत्त्वदर्शियों ने देखा है (यह संभव ही नहीं कि आत्माका विनाश होसके) ॥ १७ ॥ उस को तो अविनाशी जानो जिसने यह सब (देह जाल अपने चारों ओर) तना है, इस अखण्ड का खण्ड कोई कर नहीं सकता है ॥ १८ ॥ और बुद्धि की दौड़ से भी परे रहने वाले इस अखण्ड आत्मा के यह देह तो अन्त वाले ही हैं, इस लिये युद्ध कर हे भारत ! ॥ १८ ॥ जो इस (अखण्ड आत्मा) को मार ने वाला जानता है,और जो इस को मारा जाने वाला मानता है, वह दोनों ही (आत्मा को) नहीं जानते हैं, क्योंकि यह न मारता है, न मारा जाता है ॥ १९ ॥ यह न कभी

उत्पन्न होता है, न कभी मरता है, और न ही यह हो कर फिर नहीं होगा (किन्तु फिर २ होता रहेगा) यह अजन्मा, नित्य, सदा रहने वाला सनातन (अनादि) है, शरीर के मारा जाने पर नहीं मारा जाता है ॥ २० ॥ तब हे पार्थ जो इस को अविनाशी नित्य अजन्मा अपरिणामी जानता है, वह पुरुष कैसे किसी को मरवाता वा मारता है ॥ २१ ॥ यह तो, जिस तरह एक मनुष्य जीर्ण वस्त्रों को त्याग कर नए पहनता है, इसी तरह आत्मा पुराने शरीरों को त्याग कर नए पाता है ॥ २२ ॥ शस्त्र इस (आत्मा) को काटते नहीं, आग जलाती नहीं, पानी भिगोता नहीं, वायु सुखाता नहीं ॥ २३ ॥क्योंकि इस का काटना, जलाना, भिगोना, सुखाना हो नहीं सकता, यह अनादि अनन्त एक रस अडोल सब का अन्तरात्मा है ॥ २४ ॥ यह इन्द्रियों के सामने नहीं, विचार से भी परे है, इस में कोई परिवर्तन नहीं होता, इस लिये इस को ऐसा जान कर तुझे बेचैन होना उचित नहीं ॥ २५ ॥

मूल—अथचैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतं। तथापित्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । तस्मादपरिहार्येर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥ अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत । अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिदेवना॥ २८ ॥ आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्य वद्वदति तथैव चान्यः । आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित ॥ २९ ॥ देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत। तस्मात सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥ स्वधर्म मपि चावेक्ष्य न विकम्पितु मर्हसि । धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥ यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतं ।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशं ॥ ३२ ॥ अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि । ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पाप मवाप्स्यसि॥ ३३ ॥ अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययां । संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादति रिच्यते ॥ ३४ ॥ भयाद्रणा दुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः । येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवं ॥ ३५ ॥ अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः । निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किं ॥ ३६ ॥ हतोवाप्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीं । तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥ सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ । ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

अर्थ—और यदि तुम इस को (देह के साथ) सदा जन्मने वाला और सदा मरने वाला मानते हो, तो भी तुम्हें हे महाबाहो ! इस का शोक करना उचित नहीं है ॥ २६ ॥ क्योंकि जो जन्मा है, उस का मृत्यु अटल है, और जो मरा है, उस का जन्म अटल है,अतएव इस न रुकने वाली बात में तुम्हें शोक करना उचित नहीं हैं ॥ २७ ॥ हे भारत ! जब यह जीवधारी बीच में प्रकट हो गए हैं, इन का आदि बे मालूम है, अन्त बे मालूम है, तब इस में रोना धोना कैसा ॥ २८ ॥ आश्चर्य सा इसे कोई देखता है, और आश्चर्य सा कोई बतलाता है, आश्चर्य सा ही कोई इसे सुनता है, सुन कर भी इसे कोई नहीं जानता है (जानने वाला लाखों में कोई विरला मिलता है) ॥ २९ ॥ यह आत्मा हे भारत सब के देह में अवध्य है, इस लिये किसी भी देहधारी का तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये॥ ३० ॥ अपने धर्म की ओर ध्यान दे कर भी तुझे डोलना नहीं चाहिये, क्योंकि क्षत्रिय के लिये धर्म-

युद्ध से बढ़ कर और कोई कल्याण नहीं है ॥ ३१ ॥ अपने आप प्राप्त हुए ऐसे युद्ध को भाग्यवान् क्षत्रिय पाते हैं, जो मानो खुला स्वर्गद्वार है॥३२॥ इस समय यदि तुम इस धर्मयुद्ध से मुंह मोड़ोगे, तो अपने धर्म और कीर्ति को खो कर पाप के भागी बनोगे।३३। लोक में तुम्हारी नाश न होने वाली अकीर्ति फैल जाएगी, और माननीय की अकीर्ति मरने से बढ़ कर है ॥ ३४ ॥ महारथ समझेंगे, कि तुमने डर कर लड़ाई से मुंह मोड़ा है, तुम जिनके सामने बड़े प्रतिष्ठित थे, उन्हीं के सामने बड़े हल्के होजाओगे ॥ ३५ ॥ तुम्हारे शत्रु तुम्हारे सामर्थ्य की निन्दा करते हुए न कहनेयोग्य बातें कहेंगे, इस से बढ़ कर दुःख क्या होगा ॥ ३६ ॥ (और युद्ध करने में तो) या मर कर स्वर्ग को प्राप्त होगे, वा जीतकर पृथिवी को भोगोगे, इस लिये हे कौन्तेय! युद्ध के लिये दृढ निश्चय करके उठो ॥ ३७ ॥ सुख दुःख, लाभ हानि, जय पराजय को सम मान कर युद्ध के लिये तय्यार होजाओ, इस प्रकार तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा* ॥ ३८ ॥

---

* इतना ही उपदेश श्रीकृष्ण ने युद्ध में अर्जुन को दिया है। युद्ध में विषण्ण हुए अर्जुन को खड़ा करने के लिये जितने हेतु होसकते हैं, वह इस में आगए हैं। आत्मतत्त्व का वर्णन भी पूरा आगया है, और ऐसे ही ढंग पर है, जो युद्धोपयोगी है। अर्जुन के सखा, हितैषी परम विद्वान् योगिराज श्रीकृष्ण की अर्जुन को इतनी ही प्रेरणा सुपर्याप्त थी, श्रीकृष्ण की इतनी प्रेरणा अर्जुन को नहीं उठासकती थी, ऐसा कहना श्रीकृष्ण के आत्मबल को अस्वीकार करना है।उस समय अवसर भी इतने ही उपदेश का था। क्योंकि उसी दिन इस घटना के पीछे एक और भी घटना हुई, अर्थात् युधिष्ठिर ने भीष्म आदि से आज्ञा मांगी, और तिस पीछे युद्ध भी सवेरे ही आरम्भ हो गया इस

अ०५(व०४३)युधिष्ठिर का भीष्म आदि से युद्ध की आज्ञा लेना

मूल—संजय उवाच—ततो धनंजयं दृष्ट्वा बाणगांडीव धारिणं। पुनरेव महानादं व्यसृजन्त महारथाः ॥ १ ॥ पाण्डवाः सृंजयाश्चैव ये चैषा मनुयायिनः। दध्मुश्च मुदिताः शंखान् वीराः सागर संभवान् ॥ २ ॥ ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा युद्धाय समवस्थिते। ते सेने सागरप्रख्ये मुहुः प्रचलिते नृप ॥ ३ ॥ विमुच्य कवचं वीरो निक्षिप्य च वरायुधं। अवरुह्य रथात् क्षिप्रं पद्भ्यामेव कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ पितामह मभिप्रेक्ष्य धर्मराजो युधिष्ठिरः। वाग्यतः प्रययौ येन प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीं ॥ ५ ॥ तं प्रयान्तमभिप्रेक्ष्य कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः। अवतीर्य रथात्तूर्णं भ्रातृभिः सहितोऽन्वयात् ॥ ६ ॥ किं ते व्यवसितं राजन् यदस्मानपहाय वै। पद्भ्यामेव प्रयातोसि प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीं ॥ ७ ॥ क्व गमिष्यासि राजेन्द्र निक्षिप्त कवचायुधः। दंशितेष्वरि सैन्येषु भ्रातृनुत्सृज्यपार्थिव॥८॥ एवमाभाष्यमाणोपि भ्रातृभिः कुरुनन्दनः। नोवाच वाग्यतः किञ्चिद्गच्छत्येव युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥ तानुवाच महाप्राज्ञो वासुदेवो महामनाः। अभिप्रायोस्य विज्ञातो मयेति प्रहसन्निव ॥१०॥ एष भीष्मं तथा द्रोणं गौतमं शल्यमेव च। अनुमान्य गुरून् सर्वान् योत्स्यते पार्थिवोऽरिभिः ॥ ११ ॥ अनुमान्य यथाशास्त्रं यस्तु युध्येन्महत्तरैः। ध्रुवस्तस्य जयो युद्धे भवेदिति मतिर्मम॥ १२ ॥

अर्थ—संजय बोले—अनन्तर अर्जुन को फिर बाण और गांडीव धारे देख कर सब महारथ सिंहनाद करने लगे ॥ १ ॥

के साथ उस ग्रन्थ का सम्बन्ध भी सीधा प्रतीत होता है, जो सारी गीता और उस के माहात्म्य के पीछे आरम्भ होता है। इस लिये रण में इतना उपदेश श्रीकृष्ण वासुदेव का है,शेष सारा गीता भाग इसी का विस्तार श्रीकृष्ण द्वैपायनकृत है।

पाण्डव, सृंजय और उन के अनुगामी सब वीर प्रसन्न होकर अपने२ शंख बजाने लगे॥२॥उस समय हे राजन् ! युद्ध के लिये तय्यार खड़ी समुद्र तुल्य उन दोनों सेनाओं को फिर आगे बढ़ती देख कर, धर्मराज वीर युधिष्ठिर अपना कवच उतार और शस्त्र रख कर रथ से उतर, भीष्म की ओर देखता हुआ हाथ जोड़े पाप्यादा चुपचाप सीधा शत्रुसेना की ओर चलने लगा॥३—५॥ उस को जाते देख अर्जुन भाइयों समेत रथ से उतर शीघ्र उस के पीछे दौड़ा ॥ ६ ॥ " क्या आप करने लगे हैं, हे राजन् ! जो हमें छोड़ कर पैदल सीधा शत्रु सेना की ओर जारहे हैं ॥ ७ ॥ हे राजेन्द्र कवच और शस्त्रों को फैंक कर, भाइयों को भी छोड़ कर, युद्ध के निमित्त खड़ी हुई शत्रुसेना में कहां जाएंगे " ॥ ८ ॥ भाइयों के ऐसा कहने पर कुरुनन्दन युधिष्ठिर ने कोई उत्तर न दिया, और मौन धारे आगे ही बढ़ता गया ॥ ९ ॥ तब महाप्राज्ञ विशाल हृदय श्रीकृष्ण हंस कर बोले, मैंने इस का अभिप्राय जान लिया है ॥ १० ॥ यह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, और शल्य इन समस्त गुरुजनों से अनुमति (अनुज्ञा) ले कर शत्रुओं से युद्ध करेंगे ॥ ११ ॥ जो शास्त्र की आज्ञानुसार अनुमति ले कर बड़ों के साथ युद्ध करता है, वह अवश्य विजयी होता है, यह मेरा निश्चय है ॥ १२ ॥

मूल—दृष्ट्वा युधिष्ठिरं दूराद्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः । मिथः संकथयाञ्चक्रुरेषोहि कुलपांसनः ॥ १३ ॥ व्यक्तं भीत इवाभ्येति राजासौ भीष्ममन्तिकं । युधिष्ठिरः ससोदर्यः शरणार्थमयाचकः ॥ १४ ॥ सोऽवगाह्य चमूं शत्रोः शरशक्ति समाकुलां । भीष्ममेवाभ्ययात तूर्णं भ्रातृभिः परिवारितः ॥ १५ ॥ तमुवाच ततः पादौ

कराभ्यां पीड्य पाण्डवः। भीष्मं शान्तनवं राजा युद्धाय समुपस्थितं ॥ १६ ॥ आमन्त्रये त्वां दुर्धर्ष त्वया योत्स्यामहे सह। अनुजानीहि मां तात आशिषश्च प्रयोजय ॥ १७ ॥ भीष्म उवाच-प्रीतो हं पुत्र युध्यस्व जयमाप्नुहि पाण्डव। यत्तेऽभिलषितं चान्यत् तदवाप्नुहि संयुगे ॥ १८ ॥ व्रियतां च वरः पार्थ किमस्मत्तोऽभि कांक्षसि। एवंगते महाराज न तवास्ति पराजयः ॥१९॥ अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्। इति सत्यं महाराज बद्धोस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ २० ॥ ततो युधिष्ठिरो वाक्यं भीष्मस्य कुरुनन्दन। शिरसा प्रतिजग्राह भूयस्तमभिवाद्यच ॥२१॥

अर्थ—दुर्योधन के सैनिक दूर से युधिष्ठिर को देख कर आपस में कहने लगे, देखो यह कुल कलंक राजा युधिष्ठिर सचमुच भयभीत हो कर भीष्म के पास भाइयों समेत शरण मांगने जा रहा है ॥ १३—१४ ॥ पर वह भाइयों से घिरा हुआ बाण और शक्ति से युक्त शत्रुसेना को लंघ कर, शीघ्र भीष्म के पास जा पहुंचा ॥ १५ ॥ और युद्ध के लिये तय्यार खड़े भीष्म के चरणों को अपने हाथों से पकड़ कर राजा युधिष्ठिर यह बोला ॥ १६ ॥ हे दुर्धर्ष ! मैं आप से आज्ञा मांगता हूं, हम जो आप के साथ युद्ध करेंगे, उस की अनुमति दीजिये और आशीर्वाद दीजिये ॥ १७ ॥ भीष्म बोले—हे पुत्र ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं, युद्ध करो, और जय प्राप्त करो, और जो कुछ तुम्हें और अभिलषित है, उसे भी युद्ध में प्राप्त करो ॥ १८ ॥ हे युधिष्ठिर वर मांगो, जो हम से चाहते हो, हे महाराज ! ऐसे आचरण में तुम्हारा पराजय हो नहीं सकता ॥ १९ ॥ पुरुष अर्थ का दास है, अर्थ किसीका दास नहीं है, यह सत्य है, हे महाराज ! मैं अर्थ से कौरवों

का बन्धा हुआ हूं ॥ २० ॥ तब हे कुरुनन्दन ! युधिष्ठिर ने फिर सिर झुका कर प्रणाम कर के, भीष्म के इस वाक्य को स्वीकार किया ॥ २१ ॥

मूल—प्रायात् पुनर्महाबाहु राचार्यस्य रथं प्रति। पश्यतां सर्व सैन्यानां मध्येन भ्रातृभिः सह ॥ २२ ॥ सद्रोण मभिवाद्याथ कृत्वा चाभि प्रदक्षिणं । उवाच राजा दुर्धर्ष मात्म निःश्रेयसं वचः ॥ २३ ॥ आमन्त्रयेत्वां भगवन् योत्स्ये विगतकल्मषः। कथं जयें रिपून् सर्वाननुज्ञातस्त्वया द्विज ॥ २४ ॥ द्रोण उवाच—तद्युधिष्ठिर तुष्टोस्मि पूजितश्च त्वयानघ । अनुजानामि युध्यस्व विजयं समवाप्नुहि ॥ २५ ॥ करवाणि च ते कामं ब्रूहि त्वमभिकाङ्क्षितं । एवं गते महाराज युद्धादन्यत् किमिच्छसि ॥ २६ ॥ अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् । इति सत्यं महाराज बद्धोस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ २७ ॥ युधिष्ठिर उवाच—जयमाशास्व मे ब्रह्मन् मन्त्रयस्व च मद्धितं । युद्धस्व कौरवस्यार्थे वर एष वृतो मया ॥ २८ ॥ द्रोण उवाच—ध्रुवस्ते विजयो राजन् यस्य मन्त्री हरिस्तव । अहं त्वामभि जानामि रणे शत्रून् विमोक्ष्यसे ॥ २९ ॥ यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः। अनुमान्य तमाचार्यं प्रायाच्छारद्वतं प्रति ॥ ३० ॥ सोऽभिवाद्य कृपं राजा कृत्वाचापि प्रदक्षिणं । उवाच दुर्धर्षतमं वाक्यं वाक्यविदांवरः ॥ ३१ ॥ अनुमानये त्वां योत्स्येहं गुरो विगतकल्मषः । जयेयं च रिपून् सर्वाननुज्ञातस्त्वयाऽनघ ॥ ३२ ॥ गौतम उवाच—प्रीतस्तेऽभिगमेनाहं जयं तव नराधिप । आंशिष्ये सदोत्थाय सत्यमेतद्ब्रवीमि ते॥३३॥ अनुमान्य कृपं राजा प्रययौ येन मद्रराट् ॥ ३४ ॥ स शल्य माभि वाद्याथ कृत्वाचाभि प्रदक्षिणं । उवाच राजा दुर्धर्ष मात्मनिःश्रेयसं

वचः ॥ ३५ ॥ अनुमानयेत्वां दुर्धर्ष योत्स्ये विगतकल्मषः। जयेयं तु परान् राजन्ननुज्ञातस्त्वया रिपून् ॥ ३६ ॥ शल्य उवाच-तुष्टोऽस्मि पूजितश्चास्मि यत्र काङ्क्षसि तदस्तु ते । अनुजानामि चैव त्वां युध्यस्व जयमाप्नुहि ॥ ३७ ॥ अनुमान्याथ कौन्तेयो मातुलं मद्रकेश्वरं । निर्जगाम महासैन्याद् भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ३८ ॥

अर्थ—अनन्तर वह महाबाहु भाइयों समेत सारी सेनाओं के सामने आचार्य के रथ की ओर गए ॥ २२ ॥ दुर्धर्ष द्रोण को प्रणाम किया और प्रदक्षिणा कर के राजा अपने कल्याण के निमित्त यह वचन बोले ॥ २३ ॥ हे भगवन् आप से आज्ञा मांगता हूं, युद्ध करूंगा, कैसे मैं निर्दोष रह कर सारे शत्रुओं को जीतसकूं, यह मुझे अनुज्ञा दीजिये ॥ २४ ॥ द्रोण बोले—हे निष्पाप युधिष्ठिर तुम्हारी इस पूजा से मैं प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हें अनुज्ञा देता हूं, युद्ध करो और जय प्राप्त करो ॥ २५ ॥ ऐसी अवस्था में हे महाराज ! युद्ध के सिवाय जो तुम्हारी कामना हो, वह कहिये, मैं पूरी करूंगा ॥ २६ ॥ पुरुष अर्थ का दास है, अर्थ किसी का दास नहीं, यह सत्य, हे महाराज ! अर्थ से मैं कौरवों की ओर बन्धा हूं ॥ २७ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे ब्रह्मन! आप से यह वर चाहता हूं, कि आप कौरवों की ओर से युद्ध करें, परन्तु मुझे जय की असीस दीजिये, और मेरे भले की सलाह देते रहिये ॥ २८ ॥ द्रोण बोले—हे राजन् ! आप का विजय अटल है, जिस के कि श्रीकृष्ण मन्त्री हैं,मैं भी तुम्हें आशीर्वाद देता हूं, कि रण में शत्रुओं को जीतोगे ॥ २९ ॥ जिधर धर्म है, उधर कृष्ण हैं, जिधर कृष्ण है उधर जय है। द्रोणाचार्य से अनुज्ञा ले कर फिर वह कृपाचार्य के पास गया ॥ ३० ॥

दुर्धर्ष कृपाचार्य को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर के वाग्मिवर युधिष्ठिर बोले ॥ ३१ ॥ हे गुरो मैं आप से अनुमति ले कर निर्दोष हो कर युद्ध करना चाहता हूं, हे निष्पाप आप की अनुज्ञा से मैं शत्रुओं को जीतूं ॥ ३२ ॥ कृपाचार्य बोले—हे महाराज ! आप के आने से मैं प्रसन्न हुआ हूं, मैं यह आप को सत्य कहता हूं, कि नित्यप्रति उठ कर आप की जय मांगूंगा ॥ ३३ ॥ कृपाचार्य की अनुमति ले कर फिर वह मद्रराज के पास गए ॥ ३४ ॥ दुर्धर्ष शल्य को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर के राजा अपने कल्याण के निमित्त वचन बोले ॥ ३५ ॥ हे दुर्धर्ष ! आप से अनुज्ञा मांगता हूं, युद्ध करूंगा, हे राजन् आप से अनुज्ञा पाकर मैं निर्दोष रह कर शत्रुओं को जीतूं ॥ ३६ ॥ शल्य बोले—तुम्हारी पूजा से मैं प्रसन्न हूं, तुम्हारी कामना पूरी हो, मैं तुम्हें अनुज्ञा देता हूं, युद्ध करो और जय प्राप्त करो ॥ ३७ ॥ अपने मामे मद्रराज की अनुमति ले कर युधिष्ठिर भाइयों समेत उस महासेना से निकल आया ॥ ३८ ॥

मूल—वासुदेवस्तु राधेय माहवेऽभिजगामह । तत एनमुवाचेदं पाण्डवार्थे गदाग्रजः ॥ ३९ ॥ श्रुतं मे कर्ण भीष्मस्य द्वेषात् किल न योत्स्यते। अस्मान् वरय राधेय यावद्भीष्मो न हन्यते॥४०॥ हतेतु भीष्मे राधेय पुनरेष्यसि संयुगं । धार्तराष्ट्रस्य साहाय्यं यदि पश्यसि चेत्समं ॥ ४१ ॥ कर्ण उवाच—न विप्रियं करिष्यामि धार्तराष्ट्रस्य केशव । त्यक्तप्राणं हि मां विद्धि दुर्योधन हितैषिणं ॥ ४२ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं कृष्णः संन्यवर्तत भारत ।युधिष्ठिर पुरोगैश्च पाण्डवैः सह संगतः ॥ ४३ ॥ अथसैन्यस्य मध्येतु प्राक्रोशत् पाण्डवाग्रजः । योऽस्मान् वृणोति तमहं वरये साह्य कारणात्

॥ ४४ ॥ अथ तान् समभिप्रेक्ष्य युयुत्सुरिदमब्रवीत् । प्रीतात्मा धर्मराजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरं ॥ ४५ ॥ अहं योत्स्यामि भवतः संयुगे धृतराष्ट्रजान् । युष्मदर्थे महाराज यदि मां वृणुषेऽनघा॥४६॥ युधिष्ठिर उवाच—एह्येहि सर्वे योत्स्यामस्तव भ्रातॄनपण्डितान् । युयुत्सो वासुदेवश्च वयं च ब्रूम सर्वशः ॥ ४७ ॥ वृणोमि त्वां महाबाहो युध्यस्व मम कारणात् । त्वयि तन्तुश्च पिण्डश्च धृतराष्ट्रस्य दृश्यते ॥ ४८ ॥ भजस्वास्मान् राजपुत्र भजमानान् महाद्युते । न भविष्यति दुर्बुद्धिर्धार्तराष्ट्रोत्यमर्षणः ॥ ४९ ॥ ततो युयुत्सुः कौरव्यान् परित्यज्य सुतांस्तव । जगाम पाण्डुपुत्राणां सेनां विश्राव्य दुन्दुभिं ॥ ५० ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा संप्रहृष्टः सहानुजः । जग्राह कवचं भूयो दीप्तिमत्कनकोज्वलं ॥ ५१ ॥ प्रत्यपद्यन्त ते सर्वे स्वरथान् पुरुषर्षभाः । ततो व्यूहं यथापूर्वं प्रत्यव्यूहन्त ते पुनः ॥ ५२ ॥ गौरवं पाण्डुपुत्राणां मान्यान् मानयतां च तान् । दृष्ट्वा महीक्षितस्तत्र पूजयां चक्रिरे भृशं ॥ ५३ ॥ सौहृदं च कृपांचैव प्राप्तकालं महात्मनां । दयां च ज्ञातिषु परां कथयाञ्चक्रिरे नृपाः ॥ ५४ ॥ साधु साध्विति सर्वत्र निश्चेरुः स्तुति संहिताः । वाचः पुण्याः कीर्तिमतां मनो हृदय हर्षणाः ॥ ५५ ॥ म्लेच्छाश्चार्याश्च ये तत्र ददृशुः शुश्रुवुस्तथा। वृत्तं तत्पाण्डुपुत्राणां रुरुदुस्ते सगद्गदाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—उधर गद के बड़े भाई श्रीकृष्ण पाण्डवों के निमित्त कर्ण के पास गए और कहने लगे ॥ ३९ ॥ हे कर्ण मैंने सुना है, कि भीष्म के द्वेष से तुम अभी युद्ध न करोगे, सो हे कर्ण यदि तुम दोनों ही पक्षों को समान जानते हो,तो जब तक भीष्म मारे नहीं जाते, तब तक तुम हमें स्वीकार करो, भीष्म के मरने पर

फिर दुर्योधन की सहायता करना ॥ ४०-४१ ॥ कर्ण बोले-हे कृष्ण मैं दुर्योधन का अप्रिय नहीं करूंगा, तुम मुझे दुर्योधन के निमित्त प्राण त्यागने वाला हितैषी समझो ॥ ४२ ॥ हे भारत यह उत्तर सुन कर कृष्ण लौट आए, और युधिष्ठिर आदि पाण्डवों में आमिले ॥ ४३ ॥ अनन्तर युधिष्ठिर सेना के मध्य में उच्च स्वर से बोले, जो इस युद्ध में हमारी सहायता के लिये हमें स्वीकार करेगा, मैं उसे ग्रहण करूंगा ॥ ४४ ॥ तब युयुत्सु उन को इस प्रकार देख कर प्रसन्न चित्त हो राजा युधिष्ठिर से यह बोले ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! यदि आप मुझे वरण करें, तो मैं आप के निमित्त संग्राम में धृतराष्ट्र के पुत्रों से युद्ध करूंगा॥४६॥ युधिष्ठिर बोले—आइये, आइये,हे युयुत्सो ! हम सब तेरे नादान भाइयों के साथ युद्ध करेंगे,श्रीकृष्ण जी और हम सब मिल कर आप को बुलाते हैं ॥ ४७ ॥ हे महाबाहो ! हम आप को हमारे निमित्त युद्ध करने के लिये वरण करते हैं, धृतराष्ट्र का पिण्ड और वंश रक्षा तेरे अधीन दीखती है॥ ४८ ॥हे महातेजस्वी राज-पुत्र हम तुम्हें ग्रहण करते हैं, तुम हमें ग्रहण करो, अति क्रोधी नीच बुद्धि दुर्योधन अब जीता नहीं बचेगा ॥ ४९ ॥ इस के अनन्तर युयुत्सु आप के पुत्रों और कौरवों को त्याग कर दुन्दुभि बजवा कर पाण्डवों की सेना में चले गए ॥ ५० ॥ तब भाइयों समेत राजा युधिष्ठिर ने प्रसन्न होकर फिर चमकता हुआ सुनहरी कवच पहन लिया ॥ ५१ ॥ और वे सब पुरुषसिंह फिर अपने२ रथों पर चढ़े। और पहले जैसा फिर व्यूह रचा ॥ ५२ ॥ इस प्रकार मान्य पुरुषों का मान करते हुए पाण्डवों के गौरव को देख कर राजा लोग उन की अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥५३॥

महात्मा पाण्डवों के यथा समय सुहृद्भाव, कृपा और ज्ञातियों पर परम दया की कथाओं को आपस में कहने लगे ॥ ५४ ॥ उन कीर्तिमान् पुरुषसिंहों को चारों ओर से मन और हृदय हर्षित करने वाले स्तुतियुक्त 'साधु साधु' के पुण्य शब्द सुनाई पड़ने लगे ॥ ५५ ॥ म्लेच्छ वा आर्य जिन २ ने पाण्डु पुत्रों के चरित्र को देखा वा सुना, वह गद्गद हो कर आंसु की धारा बहाने लगे।५६।

अ० ६ (न्र०४४-४६) युद्धारम्भ, द्वन्द्व युद्ध और संकुल युद्ध

मूल—ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रगृहीत शरासनाः । सहसैन्याः समापेतुः पुत्रस्य तव शासनात्॥ १ ॥युधिष्ठिरेण चादिष्टाः पार्थिवास्ते सहस्रशः । विनदन्तः समापेतुः पुत्रस्य तव वाहिनीं ॥ २ ॥ पूर्वाह्णे तस्य रौद्रस्य युद्धमन्हो विशांपते । प्रावर्तत महाघोरं राज्ञां देहावकर्तनं ॥ ३ ॥ कुरूणां सृंजयानां च जिगीषूणां परस्परं । सिंहानामिव संहादो दिवमुर्वीं च नादयन् ॥ ४ ॥ अथ शान्तनवो राजन्नभ्य धावद्धनञ्जयं । सात्यकिस्तु महेष्वासः कृतवर्माण मभ्ययात् ॥ ५ ॥ अभिमन्युर्महेष्वासं बृहद्बल मयोधयन् । भीमसेनस्तव सुतं दुर्योधन मयोधयत् ॥ ६ ॥ युधिष्ठिरः स्वयं राजा मद्रराजानमभ्ययात् । धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोण मभ्यद्रवत भारत ॥ ७ ॥ राक्षसं रौद्र कर्माणं क्रूरकर्मा घटोत्कचः । अलंबुषं प्रत्यु दियाद्बलं शक्र इवाहवे ॥ ८ ॥ शिखण्डी समरे राजन् द्रौणिमभ्युद्ययौ बली । भगदत्तं रणे शूरं विराटो वाहिनीपतिः ॥ ९ ॥ बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं कृपः शारद्वतो ययौ । द्रुपदस्तु ततो राजन् सैन्धवं वै जयद्रथं ॥ १० ॥ एवं द्वन्द्व सहस्राणि रथवारण वाजिनां । पदातीनां च समरे तव तेषां च संकुले ॥ ११ ॥ मुहूर्तमिव तद् युद्-

मासीन्मधुरदर्शनं । तत उन्मत्तवद्राजान्न प्राज्ञायत किञ्चन॥१२॥ न पुत्रः पितरं जज्ञे पिता वा पुत्र मौरसं । न भ्राता भ्रातरं तत्र स्वस्रीयं न च मातुलः ॥ १३ ॥ न मातुलं च स्वस्रीयो न सखायं सखा तथा ॥ १४ ॥

अर्थ—तब आप के पुत्र की आज्ञा पाते ही आप के पक्ष वाले सभी राजे धनुष बाण पकड़ कर सेनाओं समेत (पाण्डवों की सेना पर) जा पड़े ॥ १ ॥ और युधिष्ठिर से आज्ञा दिये हुए सहस्रों राजे सिंहनाद करते हुए तुम्हारी सेना पर आ पड़े ॥२॥ उस भयंकर युद्ध के पहले पहर में राजाओं के शरीरों को काटने वाला महाघोर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ ३ ॥ एक दूसरे को जीतने की इच्छा करते हुए कौरवों और सृंजयों के सिंहनाद से भूमि और आकाश भर गए ॥ ४ ॥ हे राजन् भीष्म अर्जुन की ओर दौड़े, महाधनुर्धारी सात्यकि कृतवर्मा पर चढ़ आए ॥ ५ ॥ अभिमन्यु बृहद्बल को युद्ध कराने लगे, भीमसेन दुर्योधन को युद्ध कराने लगे ॥ ६ ॥ स्वयं राजा युधिष्ठिर मद्रराज पर चढ़े, और धृष्टद्युम्न द्रोण की ओर बढ़े ॥७ ॥ भयंकर कर्मों वाले अलंबुष राक्षस पर घटोत्कच चढ़ आया, जैसे बल राक्षस पर इन्द्र ॥ ८ ॥ बलवान् शिखण्डी अश्वत्थामा पर चढ़ आया, और सेनापति विराट भगदत्त की ओर बढ़ा ॥ ९ ॥ केकयराज बृहत्क्षेत्र की ओर कृपाचार्य गए, और द्रुपद सिन्धुराज जयद्रथ की ओर गए ॥ १० ॥ इस प्रकार उस संकुल युद्ध में रथ हाथी घोड़े और प्यादों के सहस्रों जोड़ आमने सामने हुए॥ ११ ॥ थोड़ी देर तक तो वह युद्ध बड़ा सुहावना प्रतीत हुआ, फिर बड़ा घमसान होगया, कुछ नहीं जाना जाता था ॥ १२ ॥पुत्र पिता को नहीं जानता था,न ही पिता सगे

पुत्र को जानता था, न भाई भाई को, न भानजा मामे को, न मामा भानजे को, न सखा सखा को पहचानता था ॥ १३-१४॥

मूल—रथानीकं नरव्याघ्राः केचिद्भ्यपतन् रथैः। अभज्यन्त युगैरेव युगानि भरतर्षभ॥ १५ ॥ प्रभिन्नास्तु महाकायाः सन्निपत्य गजागजैः। बहुधाऽदारयन् क्रुद्धा विषाणैरितरेतरं ॥ १६ ॥ अभिनीताश्च शिक्षाभिस्तोत्रांकुशसमाहताः। अप्रभिन्नाःप्रभिन्नानां संमुखाभि मुखाययुः ॥ १७ ॥ ऋष्टितोमर नाराचैर्निर्विद्धा वर वारणाः। प्रणेदुर्भिन्न मर्माणो निपेतुश्च गतासवः ॥ १८ ॥ प्राद्रवन्त दिशः केचिन्नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ १९ ॥ गजानां पाद रक्षास्तु व्यूढोरस्काः प्रहारिणः। ऋष्टिभिश्च धनुर्भिश्च विमलैश्च परश्वधैः ॥ २० ॥ गदाभिर्मुसलैश्चैव भिन्दिपालैः सतोमरैः।आयसैः परिघैश्चैव निस्त्रिंशैर्विमलैः शितैः॥ २१ ॥ प्रगृहीतैः सुसंरब्धा द्रवमाणास्ततस्ततः। व्यदृश्यन्त महाराज परस्पर जिघांसवः॥२२॥ राजमानाश्च निस्त्रिंशाः संसिक्तानरशोणितैः। प्रत्यदृश्यन्त शूराणा मन्योऽन्य माभिधावतां ॥ २३ ॥ अवक्षिप्ताव धूताना मसीनां वीर बाहुभिः। संजज्ञे तुमुलः शब्दः पततां परमर्मसु ॥ २४ ॥ हयैरपि हयारोहाश्चमरा पीड धारिभिः। हंसैरिव महावेगै रन्योऽन्य मभिविद्रुताः ॥ २५ ॥ अश्वैरग्र्यजवैः केचिदाप्लुत्य महतो रथान्। शिरांस्यादादिरे वीरा रथिनामश्वसादिनः॥ २६ ॥ बहूनपि हयारोहान् भल्लैः सन्नतपर्वभिः। रथी जघान संप्राप्य बाणगोचर मागतान् ॥ २७ ॥

अर्थ—कई पुरुष सिंह रथों से रथियों की सेना पर आपड़े, हे भरतवर वहां जुओं से जुए टूटन लगे॥१५॥बड़े २ डील वाले मद चूते हाथी हाथियों से भिड़ कर क्रुद्ध हो एक दूसरे को दांतो

से फाड़ने लगे ॥ १६ ॥ तोत्र अंकुस मार कर चलाए, सुशिक्षित हाथी, जिन के मद नहीं फूटा था, वह भी मद वालों के अभिमुख गए ॥ १७ ॥ बरछे, तोमर और भालों से बींधे हुए मत्त हाथी मर्मों के टूटने से शोर मचाने और निर्जीव हो कर गिरने लगे॥१८॥ कई भयंकर ध्वनि करते हुए चारों ओर भागने लगे ॥ १९ ॥ हाथियों के पांदरक्षक विशाल छातियों वाले योधे बर्छे, धनुष, निर्मल कुल्हाड़े, गदा, मूसल, भिन्दिपाल, तोमर, लोहे के परिघ, और निर्मल तीक्ष्ण तलवारें हाथों में लिये एक दूसरे को मारने की इच्छा से जोश से दौड़ते हुए दीखने लगे ॥ २०—२२ ॥ एक दूसरे की ओर दौड़ते हुए शूरवीरों की चमकती तलवारें मनुष्यों के लहू से भरी दीखती थीं ॥ २३ ॥ बीरों की भुजाओं से खींच कर मारी हुई, दूसरों के मर्मों पर पड़ती हुई तलवारों का तुमल शब्द होने लगा॥ २४ ॥ घुड़सवार भी हंसों की भांति चंवर और सेहरा धारे हुए वेगवान् घोड़ों से एक दूसरे पर चढ़ दौड़े ॥ २५ ॥ कई वीर उत्तम वेग वाले घोड़ों के द्वारा बड़े रथों पर कूद कर रथ सवारों के सिर काटने लगे ॥ २६ ॥और कहीं एक ही रथी बाण की मार में आए बहुत से भी घुड़सवारों को तीक्ष्ण पर्व वाले बाणों से अकेला मार रहा था ॥ २७ ॥

अ०७(व०४७-४९) भीष्म का अभिमन्यु और अर्जुन से युद्ध

मूल—गतपूर्वाह्ण भूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे । वर्तमाने तथा रौद्रे महावीर वरक्षये ॥ १ ॥ दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विविंशतिः । भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण चोदिताः॥२॥ एतैराति रथैर्गुप्तः पञ्चभिर्भरतर्षभः । पाण्डवाना मनीकानि विजगाहे

महारथः ॥ ३ ॥ चेदिकाशिकरूषेषु पञ्चालेषु च भारत । भीष्मस्य बहुधा तालश्चलत्केतुर दृश्यत ॥ ४ ॥स शिरांसि रणेऽरीणां रथांश्च सयुगध्वजान् । निचकर्त महावेगैर्भल्लैः सन्नत पर्वभिः॥ ५ ॥ नृत्यतो रथमार्गेषु भीष्मस्य भरतर्षभ । भृशमार्तस्वरं चक्रुर्नागा मर्माणि ताडिताः ॥ ६ ॥अभिमन्युः सुसंक्रुद्धः पिशंगैस्तुरगोत्तमैः । संयुक्तं रथमास्थाय प्रायाद् भीष्मरथं प्रति ॥ ७ ॥ स तालकेतोस्तीक्ष्णेन केतुमाहत्य पत्रिणा । भीष्मेण युयुधे वीरस्तस्य चानुरथैः सह॥८॥ कृतवर्माणमेकेन शल्यं पञ्चभिराशुगैः । विध्वा नवभिरानर्च्छच्छि-ताग्रैः प्रपितामहं ॥ ९ ॥ पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक्प्रणिहितेन च । ध्वजमेकेन निष्पाद्य जाम्बूनद परिष्कृतं ॥ १० ॥दुर्मुखस्य तु भल्लेन सर्वावरणभेदिना । जहार सारथेः कायाच्छिरः सन्नत पर्वणा॥११॥ धनुश्चिच्छेद भल्लेन कार्तस्वर विभूषितं । कृपस्य निशिताग्रेण तांश्च तीक्ष्ण मुखैः शरैः ॥ १२ ॥ लब्धलक्षतया कार्ष्णेः सर्वे भीष्म मुख्या रथाः। मन्यवन्त मवन्यन्त साक्षादिव धनञ्जयं ॥१३॥ तस्य लाघव मार्गस्य महा[illegible] मभं । दिशः पर्यपतच्चापं गांडीव मिव घोषवत् ॥ १४ ॥

अर्थ—उस कठोर भयंकर दिन में सवेर से बहुत दिन चढ़े तक बहुत से महाबीर मारेगए ॥ १ ॥ उस समय दुर्मुख, कृतबर्मा, कृपाचार्य, शल्य और विविंशति ये दुर्योधन की आज्ञा पाकर भीष्म के निकट जाकर उस की रक्षा करने लगे ॥ २ ॥ महा-रथी भीष्म इन पांच अतिरथों से रक्षित होकर पाण्डवों की सेना को गाहन करने लगे ॥ ३ ॥ भीष्म का ताल का झंडा, चेदिका-शि, करूष और पञ्चालों की सेनाओं में घूमता दीखने लगा ॥ ४ ॥ वह बीर रण में तीक्ष्ण पर्व वाले बड़े वेग वाले भालों से

शत्रुओं के सिर, रथ, जुए और झंडे काट २ कर पृथिवी पर गिराने लगे ॥ ५ ॥ भीष्म रथ के मार्गों में नृत्य करते हुए के समान दीखते थे, बहुत से हाथी उन के बाणों से मर्मों में पीड़ित हो कर अत्यन्त आर्तनाद करने लगे ॥ ६ ॥ यह देख कर अभिमन्यु अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने पिंगल वर्ण के उत्तम घोड़ों से युक्त रथ पर चढ़ कर भीष्म के रथ की ओर आए ॥ ७ ॥ उस वीर ने आते ही भीष्म के झंडे को एक तीक्ष्ण बाण से टकोर कर भीष्म और उस के अनुरथियों के साथ युद्ध आरम्भ किया॥८॥ कृतवर्मा को एक तथा शल्य को पांच बाण मार कर तीक्ष्णनोंको वाले नौ बाणों से भीष्म को पीड़ित किया ॥ ९ ॥ अनन्तर भली भांति जोड़ कर पूरी तरह खींच कर छोड़े एक बाण से दुर्मुख की सुवर्ण भूषित ध्वजा काट कर गिरादी और कवच के फोड़ने वाले तीक्ष्ण पर्व वाले एक भाले से उस के सारथि का सिर काट कर गिरा दिया ॥ १०—११ ॥ और तीक्ष्ण नोक के बाण से कृपाचार्य के सुवर्णभूषित बाण को काट कर तेज़ बाणों से उन सब को ताड़ने लगे ॥ १२ ॥ लक्ष्य से न चूकने के कारण भीष्म आदि सब रथियों ने पराक्रमी अभिमन्यु को साक्षात् अर्जुन के तुल्य जाना ॥ १३ ॥ फुर्ती से चलता उस का धनुष अलात के तुल्य चारों ओर घूमता और गांडीव के तुल्य टंकार करता था ॥ १४ ॥

मूल—तमासाद्य महावेगैर्भीष्मो नवभिराशुगैः । विव्याध समरे तूर्णं मार्जुनिं परवीरहा ॥ १५ ॥ ध्वजं चास्य त्रिभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमौजसः । सारथिं च त्रिभिर्बाणै राजघान यतव्रतः ॥ १६ ॥ तथैव कृतवर्मा च कृपः शल्यश्च मारिष । विध्वा नार्क-

पयन् कार्ष्णि मैनाक मिवपर्वतं ॥ १७ ॥ स तैः परिवृतः शूरो धार्तराष्ट्रैर्महारथैः । ववर्ष शरवर्षाणि कार्ष्णिः पञ्च रथान् प्रति ॥ १८ ॥ तत्रास्य सुमहद्राजन् बाह्वोर्बलं मदृश्यत । यतमानस्य समरे भीष्ममर्दयतः शरैः ॥ १९ ॥ पराक्रान्तस्य तस्यैव भीष्मोपि प्राहिणोच्छरान् । स तांश्चिच्छेद समरे भीष्मचापच्युतान् शरान् ॥ २० ॥ ततो ध्वज ममोघेषुर्भीष्मस्य नवभिः शरैः । चिच्छेद समरे वीरस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ २१ ॥ स राजतो महास्कन्धस्तालोहेम विभूषितः । सौभद्राविशिखैश्छिन्नः पपात भुवि भारत॥ २२ ॥ तं तु सौभद्रविशखैः पातितं भरतर्षभ । दृष्ट्वा भीमो ननादोच्चैः सौभद्र मभिहर्षयन् ॥ २३ ॥ अथ भीष्मो महास्त्राणि दिव्यानि सुबहूनि च। प्रादुश्चक्रे महारौद्रे रणे तस्मिन् महाबलः॥ २४ ॥ ततः शर सहस्रेण सौभद्रं प्रपितामहः । अवाकिरदमेयात्मातदद्भुतमिवा भवत् ॥ २५ ॥ ततो दश महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः । रक्षार्थमभ्यधावन्त सौभद्रं त्वरिता रथैः ॥ २६ ॥ विराटः सहपुत्रेण धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । भीमश्च केकयाश्चैव सात्यकिश्च विशांपते ॥ २७ ॥ प्रगृहीताग्र हस्तेन वैराटिरपि दन्तिना । अभ्यद्रवत राजानं मद्राधिपति मुत्तरः ॥ २८ ॥ तस्य वारणराजस्य जवेनापततो रथे। शल्यो निवारयामास वेगमप्रतिमं शरैः ॥ २९ ॥ तस्य क्रुद्धः स नागेन्द्रो बृहतः साधुवाहिनः। पदा युगमधिष्ठाय जघान चतुरोहयान् ॥३०॥ स हताश्वे रथे तिष्ठन् मद्राधिपति रायसीं । उत्तरान्तकरीं शक्तिं चिक्षेप भुजगोपमां ॥ ३१ ॥ तया भिन्नतनुत्राणः प्रविश्य विपुलं तमः। स पपात गजस्कन्धात् प्रयुक्तांकुशतोमरः ॥ ३२ ॥ असि मादाय शल्योपि अवप्लुत्य रथोत्तमात् । तस्य वारणराजस्य चिच्छेदाथ महाकरं ॥ ३३ ॥ भिन्नवर्मा शरशतैश्छिन्न हस्तः स वार-

णः । भीममार्तस्वरं कृत्वा पपातच ममारच ॥ ३४ ॥ एतद्दृष्ट्वाशकं कृत्वा मद्रराजो नराधिप । आरुरोह रथं तूर्ण भास्वरं कृतवर्मणः ॥ ३५ ॥

अर्थ—उस के निकट जाकर शत्रुवीरों के मारने वाले भीष्म ने बड़े वेग वाले नौ बाणों से अभिमन्यु को बींध दिया॥ १५ ॥ और इस महा पराक्रमी के झंडे को तीन भालों से काट दिया, और तीन बाण उस के सारथि को मारे ॥ १६ ॥ इसी प्रकार कृतवर्मा, शल्य और कृपाचार्य ने बाणों का प्रहार किया, पर मैनाक की भांति अचल खड़े अभिमन्यु को चला नहीं सके॥१७॥ दुर्योधन के महारथों से घिरा हुआ अभिमन्यु पांचों रथियों के ऊपर बाणों की वर्षा बरसाने लगा ॥ १८ ॥ हे राजन् ! जिस समय युद्ध में वह अपने बाणों के साथ भीष्म को पीड़ा देता हुआ यत्न कर रहा था, उस समय उस की दोनों भुजाओं का बल बहुत बड़ा प्रकाशित हुआ ॥ १९ ॥ उस पराक्रमी के ऊपर भीष्म भी बाण बरसाने लगे, और वह भी भीष्म के धनुष से छूटे हुए उन बाणों को मार्ग में ही काटने लगा ॥ २० ॥ इस के अनन्तर उस अचूक बाणों वाले वीर ने नौ बाणों के साथ भीष्म के धनुष को काट डाला, उसे देख लोग धन्य धन्य कहने लगे ॥ २१ ॥ वह सुवर्ण भूषित रुपहरी ताल अभिमन्यु के बाणों से कट कर पृथिवी पर आगिरा ॥ २२ ॥ उस को अभिमन्यु के बाणों से गिराया देख कर,भीम अभिमन्यु को हर्षित करने के निमित्त सिंहनाद करने लगे ॥ २३ ॥ तब उस महा भयंकर रण में महाबली भीष्म ने भी दिव्य महास्त्रों को प्रकट किया ॥२४॥ और उस अपरिमेय बल वाले ने अनेक बाणों से अभिमन्यु को

ढांप दिया, यह बहुत अद्भुत हुआ ॥ २५ ॥ तब पाण्डवों के दस महारथी महा धनुर्धारी अभिमन्यु की रक्षा के लिये वेग से दौड़ कर आए ॥ २६ ॥ विराट अपने पुत्र समेत, धृष्टद्युम्न, भीम, केकय-राज पांचों भाई, और सात्यकि ॥ २७ ॥ विराटपुत्र उत्तर कुंडलीकृत सूंड वाले हाथी पर चढ़ कर मद्रराज (शल्य) पर चढ़ा ॥ २८ ॥ रथ की ओर वेग से आते हुए उस हस्तिराज के अतुल वेग को शल्य ने अपने बाणों से रोक दिया ॥ २९ ॥ तौ भी उस हस्तिराज ने क्रुद्ध हो कर उत्तम चाल वाले उस बड़े रथ के जुए पर पाद प्रहार कर के चारों घोड़ों को मार डाला ॥ ३० ॥ राजा शल्य ने मरे घोड़ों वाले रथ पर से उत्तर का नाश करने के लिये सर्प के समान लोहे की बरछी फैंकी ॥३१॥ उत्तर के कवच को काट कर अन्दर धंस गई वह मूर्छित हो कर हाथी के कन्धे से गिर पड़ा,और उस के हाथ से तोमर और अंकुस गिर पड़े ॥ ३२ ॥ तब शल्य ने तलवार ले कर रथ से कूदकर उस हस्ति-राज के बड़े सूंड को काट डाला ॥ ३३ ॥ वह हाथी पहले ही अनेक बाणों से छिदा हुआ था, अब सूंड के कटने से भयंकर आर्त ध्वनि करता हुआ गिर पड़ा और मर गया ॥ ३४ ॥ राजा शल्य इस प्रकार का काम करके शीघ्रता से कृतवर्मा के प्रकाश-मान रथ पर जा चढ़ा ॥ ३५ ॥

मूल—उत्तरं वै हतं दृष्ट्वा वैराटिर्भ्रातरं तदा । कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्य मवस्थितं ॥ ३६ ॥ शंखः क्रोधात् प्रज-ज्वाल हविषा हव्यवाडिव ॥ ३७ ॥ स विस्फार्य महच्चापं सम-न्तात् परि रक्षितः । सृजन् बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति ॥ ३८ ॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य मत्तवारण विक्रमं । तावकानां रथाः

सप्त समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ३९ ॥ मद्रराजं परीप्सन्तो मृत्योर्द-ष्ट्रान्तरं गतं ॥ ४० ॥ बृहद्बलश्च कौसल्यो जयत्सेनश्च मागधः। तथा रुक्मरथो राजन् पुत्रः शल्यस्य मानितः ॥ ४१ ॥ विन्दानु विन्दावावन्त्यौ कांबोजश्च सुदक्षिणः। बृहत्क्षत्रस्य दायादः सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ ४२ ॥ ते तु बाणम यं वर्ष शंखमूर्ध्नि न्यपातयन् । निदाघान्तेऽनिलोद्धूता मेघा इव नगेजलं ॥ ४३ ॥ ततः क्रुद्धो महेष्वासः सप्त भल्लैः सुतेजनैः। धनूंषि तेषामाच्छिद्य ननर्द पृतनापतिः ॥ ४४ ॥ ततो भीष्मो महाबाहुर्विनद्य जलदो यथा । तालमात्रं धनुर्गृह्य शंख मभ्यद्रवद्रणे ॥ ४५ ॥ तमुद्यन्त मुदीक्ष्याथ महेष्वासं महाबलं। संत्रस्ता पाण्डवी सेना वातवेगाहतेव नौः ॥ ४६ ॥ ततोऽर्जुनः संत्वरितः शंखस्यासीत् पुरःसरः । भीष्माद्रक्ष्योऽयम-द्येति ततो युद्ध मवर्तत ॥ ४७ ॥ अथ शल्यो गदापाणिरवतीर्य महारथात्। शंखस्य चतुरो वाहानहनद् भरतर्षभ ॥ ४८ ॥ सहता श्वाद्रथात्तूर्णं खड्गमादाय विद्रुतः। बीभत्सोश्च रथं प्राप्य पुनः शा-न्ति मविन्दत ॥ ४९ ॥ ततो भीष्म रथात्तूर्ण मुत्पतन्ति पतत्रिणः। यैरन्तरिक्षं भूमिश्च सर्वतः समवस्तृता ॥५० ॥ पञ्चालानथ मत्स्यांश्च केकयांश्च प्रभद्रकान् । भीष्मः प्रहरतांश्रेष्ठः पातयामास पत्रिभिः॥५१॥

अर्थ—अपने भाई को मारा गया देख कर और शल्य को कृतवर्मा के साथ रथ पर बैठा देख कर विराट का दूसरा पुत्र शंख*क्रोध से घृत से अग्नि के समान भड़क उठा ॥ ३६-३७ ॥

---

* इस से आगे विराट के पुत्र श्वेत का युद्ध प्राक्षिप्त है, इस विराट पुत्र का अर्थ नीलकण्ठ ने शंख किया है, तब आगे शंख का ही युद्ध होना चाहिये, न कि श्वेत का । श्वेत का पूर्व कहीं नाम भी नहीं आया है, श्वेत और शंख के युद्ध श्लोकों की भी प्रायः समता है। श्वेत युद्ध को रख कर प्रथम दिन के युद्ध की समाप्ति भी दो बार होजाती है, जिस से निःसंदेह यह प्राक्षिप्त सिद्ध होता है ।

वह बड़े धनुष को घुमाता हुआ, चारों ओर से (रथियों से) रक्षित हुआ बाणों की वर्षा करता हुआ शल्य के रथ की ओर गया॥३७॥ उस को मतवारे हाथी के समान आता देख कर, शल्य को मृत्यु की दाढ़ से बचाने के निमित्त, आप के पक्ष के सात रथियों-को-सलराज बृहद्बल, मगधराज जयत्सेन, शल्य पुत्र रुक्मरथ, अवन्ति के विन्द अनुविन्द, कंबोज के सुदक्षिण, और बृहत्क्षत्र के पुत्र सिन्धुराज जयद्रथ ने शंख को घेर लिया॥ ३९—४२ ॥ वह शंख के सिर पर बाणों की वर्षा करने लगे, जैसे गर्मी के अन्त में आन्धियों से चलाए मेघ पर्वत पर जल बरसाते हैं॥ ४३ ॥ तब क्रुद्ध हुआ महा धनुर्धारी सेनापति शंख बड़े तीक्ष्ण सात भालों से उन के धनुषों को काट कर गर्जा ॥ ४४ ॥ तब महाबाहु भीष्म मेघ की भांति गर्ज कर तालमात्र धनुष को ग्रहण कर शंख की ओर दौड़े॥४५॥ उस महाबली महाधनुर्धारी को आता देख कर पाण्डवी सेना भयभीत होकर वायु के वेग से ताड़न की नौका की भांति इधर उधर होने लगी ॥ ४६ ॥ उस समय शंख की रक्षा करना कर्तव्य कर्म जान, अर्जुन शंख के आगे होगए, तब युद्ध आरम्भ हुआ ॥ ४७ ॥ इधर शल्य ने हाथ में गदा ले रथ से उतर कर शंख के चारों घोड़ों को मार डाला ॥ ४८ ॥ शंख हाथ में तलवार लिये मरे घोड़ों वाले रथ से झट उतरा, और दौड़ कर अर्जुन के रथ पर चढ़ कर आराम लिया ॥ ४९ ॥ इस के अनन्तर भीष्म के रथ से शीघ्रता से बाण उड़ने लगे, जिन्होंने आकाश और पृथिवी को सब ओर से ढक लिया ॥ ५० ॥ भीष्म उन बाणों से पञ्चाल, मत्स्य, केकय और प्रभद्रक वीरों को गिराने लगे ॥ ५१ ॥

मूल—उत्सृज्य समरे राजन् पाण्डवं सव्यसाचिनं । अभ्य-द्रवत पांचाल्यं द्रुपदं सेनया वृतं ॥ ५२ ॥ प्रियं संबन्धिनं राजन् शरानवाकिरन् बहून् । अग्निनेव प्रदग्धानि वनानि शिशिरात्यये ॥ ५३ ॥ शरदग्धान्य दृश्यन्त सैन्यानि द्रुपदस्य ह । अत्यतिष्ठद् रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ ५४ ॥ मध्यान्दिने यथाऽऽदित्यं तपन्त मिव तेजसा । न शेकुः पाण्डवेयस्य योधा भीष्मं निरीक्षितुं ॥ ५५ ॥ वीक्षां चक्रुः समन्तात्ते पाण्डवाः भयपीड़िताः । त्रातारं नाध्यगच्छन्त गावः शीतार्दिता इव ॥ ५६ ॥ हते विप्रद्रुते सैन्ये निरुत्साहे विमर्दिते । हाहाकारो महानासीत् पाण्डु सैन्येषु भारत ॥ ५७ ॥ ततो भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः । मुमोच बाणान् दीप्ताग्रानहीनाशी विषानिव ॥ ५८ ॥ शरैरेकायनीकुर्वन् दिशः सर्वा यतव्रतः । जघान पाण्डव रथानादिश्यादिश्य भारत ॥ ५९ ॥ ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः । प्राप्तेचास्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ६० ॥ भीष्मं च समुदीर्यन्तं दृष्ट्वा पार्था महाहवे । अवहार मकुर्वन्त सैन्यानां भरतर्षभ ॥ ६१ ॥

अर्थ—हे राजन् ! अनन्तर भीष्म अर्जुन को छोड़कर बाण वर्षा करते २ अपने प्यारे संबन्धी सेनायुक्त राजा द्रुपद की ओर दौड़े, उस के बाणों से द्रुपद की सेनाएं इस तरह जलने लगीं, जैसे ग्रीष्म में अग्नि से वन जलते हैं, भीष्म वहां धूम से रहित अग्नि की भांति प्रतीत होने लगे ॥ ५२—५४ ॥ पाण्डवों के सैनिक उस समय दोपहर के समय तेज से अत्यन्त तपते हुए सूर्य की भांति भीष्म की ओर दृष्टि नहीं उठा सकते थे ॥ ५५ ॥ पाण्डवों के सैनिक शीत से पीड़ित गौओं की भांति अपने चारों

ओर देखते हुए अपना बचाने वाला नहीं पाते थे ॥५६॥ सैनिक मारे जाने लगे, भागने लगे, उत्साह से रहित हुए, मले जाने लगे, उस समय पाण्डवी सेना में बड़ा हाहाकार मच गया ॥ ५७ ॥ शन्तनुनन्दन भीष्म धनुष को गोल खींच कर जलती नोकों वाले सांपों की भांति विषैले बाण लगातार छोड़ रहे थे ॥५८॥ वह ब्रह्मचारी सारी दिशाओं को एक मार्ग वाला बनाते हुए पाण्डव-रथियों का नाम ले २ कर मारने लगे ॥ ५९ ॥ तब सैनिक मथे गए, तित्तर बित्तर होगए, सूर्य अस्त होगया, कुछ जान नहीं पड़ता था ॥ ६० ॥ उस समय पाण्डवों ने भीष्म को उस महा संग्राम में महा प्रचण्ड देख कर (और सन्ध्या का समय देखकर) अपनी सेना लौटाली ॥ ६१ ॥

अ० ८ (व० ५०-५१) दूसरे दिन के व्यूह

मूल—कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रथमे भरतर्षभ । भीष्मे च युद्ध संरब्धे हृष्टे दुर्योधने तथा ॥ १ ॥ धर्मराजस्ततस्तूर्ण मभिगम्य जनार्दनं । भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सर्वैश्चैव जनेश्वरैः॥ २ ॥ वार्ष्णेय मब्रवीद् राजन् दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमं ॥ ३ ॥ कृष्ण भीष्मः सुसंरब्धः सहितः सर्व पार्थिवैः । क्षपयिष्यति नो नूनं यादृशोऽस्य पराक्रमः ॥ ४ ॥ स त्वं पश्य महाभाग योगेश्वर महारथं । भीष्मं यः शमयेत्संख्ये दावाग्निं जलदो यथा ॥ ५ ॥ अब्रवीत तत्र गोविन्दो हर्षयन् सर्व पाण्डवान्। माशुचो भरतश्रेष्ठ न त्वं शोचितुमर्हसि॥६॥ यस्य ते भ्रातरः शूराः सर्व लोकेषु धन्विनः । अहं च प्रियकृद्राजन् सात्यकिश्च महायशाः॥ ७ ॥ विराट द्रुपदश्चेमौ धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । तथैव सबलाश्चेमे राजानो राजसत्तम ॥ ८ ॥ एष ते पा-

र्षतो नित्यं हितकामः प्रियेरतः । सैनापत्य मनुप्राप्तो धृष्टद्युम्नो महाबलः ॥ ९ ॥ तत उद्धर्षयन् सर्वान् धृष्टद्युम्नोऽभ्य भाषत॥१०॥ रणे भीष्मं कृपं द्रोणं तथा शल्यं जयद्रथं । सर्वानद्य रणे दृप्तान् प्रतियोत्स्यामि पार्थिव ॥ ११ ॥ समुद्यते पार्थिवेन्द्रे पार्षते शत्रुसूदने । तमब्रवीत ततः पार्थः पार्षतं पृतनापतिं ॥ १२ ॥ व्यूहः क्रौञ्चारुणो नाम सर्वशत्रु निवर्हणः । यं बृहस्पतिरिन्द्राय तदा देवासुरेऽब्रवीत ॥ १३ ॥ तं यथावत प्रतिव्यूहं परानीक विनाशनं । अदृष्टपूर्वं राजानः पश्यन्तु कुरुभिः सह ॥ १४ ॥

अर्थ—हे भरतवर पहले दिन में सेनाओं के लौटाने पर,भीष्म के जोश और दुर्योधन में हर्ष भर जाने पर ॥ १ ॥ युधिष्ठिर अपने भाइयों और दूसरे राजाओं समेत कृष्ण के निकट आ भीष्म के विक्रम का ध्यान कर के यह वचन बोले ॥ २—३ ॥ हे कृष्ण भीष्म का जैसा पराक्रम है, यह दूसरे राजाओं के साथ मिल कर जोश में आए हुए हमारा नाश करेंगे ॥ ४ ॥ हे महाभाग योगेश्वर आप ऐसे महारथ को देखिये, जो भीष्म को युद्ध में ऐसा ठंडा करदे, जैसे अग्नि को मेघ कर देता है ॥ ५ ॥ तिस पर कृष्णजी सब पाण्डवों का हर्ष बढ़ाते हुए बोले। हे भरतश्रेष्ठ शोक मत कीजिये, आप को शोक करना उचित नहीं ॥६॥ जिस के भाई लोकप्रसिद्ध शूरवीर धनुर्धारी हैं, और महायशस्वी सात्यकि, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, यह बलवन्त राजे और मैं यह सब आप की भलाई में लगे हैं ॥ ७–८ ॥ यह महाबली धृष्टद्युम्न जो सदा आप की भलाई चाहने वाले और प्रिय में रत हैं, यह आप के सेनापति बने हैं ॥ ९ ॥ तब धृष्टद्युम्न सब को उत्साहित

करते हुए बोले ॥ १० ॥ हे राजन् ! मैं रण में भीष्म कृप,द्रोण, शल्य जयद्रथ इन अभिमानियों के साथ युद्ध करूंगा ॥ ११ ॥ शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न के तय्यार होने पर युधिष्ठिर उस से यह बोले ॥ १२ ॥ सारे शत्रुओं का नाशक जो क्रौञ्चारण नाम व्यूह है, जो देवासुर युद्ध में बृहस्पति ने इन्द्र को बतलाया था ॥ १३ ॥ शत्रसेना के नाशक उस व्यूह को यथावत् रचो,कौरव और दूसरे राजे उस को देखें, जिस को उन्होंने पहले नहीं देखा है ॥ १४ ॥

मूल—यथोक्तः स नृदेवेन विष्णुर्वज्रभृता यथा । प्रभाते सर्व सैन्यानामग्रे चक्रे धनञ्जयम् ॥ १५ ॥ शिरोऽभूद् द्रुपदो राजा महत्या सेनया वृतः।कुन्तिभोजश्च चैद्यश्च चक्षुर्भ्यां तौ जनेश्वरौ ॥ १६ ॥ दाशार्णकाः प्रभद्राश्च दाशेरकगणैः सह । अनूपकाः किराताश्च ग्रीवायां भरतर्षभ ॥ १७ ॥ पटच्चरैश्च पौंड्रैश्च राजन् पौरवकैस्तथा । निषादैः सहितश्चापि पृष्ठमासीद् युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥ पक्षौ तु भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । द्रौपदेयाभिमन्युश्च सात्यकिश्च महारथाः ॥ १९ ॥ पिशाचा दारदाश्चैव पुंड्राः कुंडीविषैः सह । मारुता धेनुकाश्चैव तंगणाः परतंगणाः ॥ २० ॥ बाल्हिका तित्तराश्चैव चोलाः पाण्ड्याश्च भारत । एते जनपदा राजन् दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ॥ २१ ॥ अग्निवेशास्तु हुण्डाश्च मालवा दानभारयः । शबरा उद्भसाश्चैव वत्साश्च सह नाकुलैः ॥२२॥ नकुलो सहदेवश्च वामं पक्षं समाश्रिताः। जघनं पालयामास विराटः सह केकयैः ॥ २३ ॥ काशिराजश्च शैब्यश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ॥ २४ ॥ एवमेनं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः । सूर्योदयं त इच्छन्तः स्थिता युद्धाय दंशिताः ॥ २५ ॥

अर्थ—इन्द्र ने विष्णु सदृश युधिष्ठिर से कहे हुए धृष्टद्युम्न ने सवेरा होते ही अर्जुन को सब सेनाओं के आगे किया ॥१५॥ बड़ी सेना समेत राजा द्रुपद उस के मस्तक बने । कुन्तिभोज और चेदिपति उस के नेत्र स्थानी बने ॥ १६ ॥ दाशार्णक प्रभद्र दासेरकगण, अनूपक और किरात ग्रीवास्थानी बने ॥ १७ ॥ पटच्चर पौण्ड्र पौरवक और निषादों समेत युधिष्ठिर उस के पृष्ठ स्थान पर ठहरा ॥ १८ ॥ भीमसेन, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पुत्र, अभिमन्यु, और सात्यकि यह महारथ उस के पक्ष स्थानी बने ॥ १९ ॥ पिशाच, दरद, पुण्ड्र, कुण्डीविष, मारुत, धेनुक, तंगण, परतंगण, बाल्हिक, तित्तिर, चोल, पाण्ड्य, यह राजे हे राजन् दक्षिण पक्ष में स्थित हुए ॥ २० ॥ अग्निवेश, हुण्ड, मालव, दानभारि, शबर, उद्वस, वत्स, नाकुल, नकुल और सहदेव बाएं पक्ष में स्थित हुए केकयों के साथ विराट काशिराज और शैब्य ३० सहस्रों रथों से उस के जघन स्थानी हुए॥ २१–२४ ॥ इस प्रकार इस महाव्यूह को सजा कर, युद्ध के लिये तय्यार होकर सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगे ॥ २५ ॥

मूल—क्रौञ्चं दृष्ट्वा ततो व्यूह मभेद्यं तनयास्तव । आचार्य मुपसंगम्य कृपं शल्यं च पार्थिव ॥ २६ ॥ अन्यांश्च सुबहून् शूरान् युद्धाय समुपागतान् । प्राहेदं वचनं काले हर्षयंस्तनयस्तव ॥२७॥ एकैकशः समर्था हि यूयं सर्वे महारथाः । पाण्डुपुत्रान् रणे हन्तुं स सैन्यान् किमु संहताः ॥ २८ ॥ अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितं । पर्याप्त मिदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितं ॥ २९ ॥ संस्थानाः शूरसेनाश्च वेत्रिका कुकुरास्तथा । आरोचका त्रिगर्त्ताश्च मद्रका यवनस्तथा ॥ ३० ॥ शत्रुंजयेन सहितास्तथा दुःशासनेन च।

विकर्णेन च वीरेण तथा नन्दोपनन्दकैः॥ ३१ ॥चित्रसेनेन सहिताः सहितापारि भद्रकैः। भीष्ममेवाभि रक्षन्तु सहसैन्य पुरस्कृताः॥३२॥ ततो भीष्मश्च द्रोणश्च तव पुत्राश्च मारिष । अव्यूहन्त महाव्यूहं पाण्डूनां प्रतिबाधकं ॥ ३३ ॥

अर्थ—उस क्रौञ्च नाम के अभेद्य व्यूह को देख कर दुर्योधन द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और शल्य और युद्ध के लिये तय्यार दूसरे राजाओं के निकट जा सब को हर्षित करने वाला यह वचन बोले ॥ २६—२७ ॥ हे महारथियो तुम सब अकेले २ भी रण में सेनासमेत पाण्डुपुत्रों के मारने को समर्थ हो, क्या फिर मिले हुए ॥ २८ ॥ भीष्म से रक्षा की हुई हमारी यह सेना अपरिमित है, और भीम से रक्षा की हुई इन की यह सेना मिनीगिनी है ॥ २९ ॥ संस्थान, शूरसेन, वेत्रिक, कुकुर, आरोचक, त्रिगर्त, मद्रक, यवन, यह सब शत्रुंजय, दुःशासन, विकर्ण समेत, और चित्रसेन के साथ नन्द उपनन्द और पारिभद्रक यह सब अपनी२ सेनाओं सहित भीष्म की ही रक्षा करें॥ ३०—३२ ॥ तब भीष्म, द्रोण और तेरे पुत्रों ने मिल कर पाण्डवों का बाधक महा व्यूह रचा ॥ ३३ ॥

अ० ९ (व० ५२) भीष्मार्जुन युद्ध

मूल—ततो युद्धं समभवत् तुमुलं लोमहर्षणं । तावकानां परेषां च व्यतिषक्त रथ द्विपं ॥ १ ॥ सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे । कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते ॥ २ ॥एतेषु नरवीरेषु चेदिमत्स्येषु चाभिभूः । ववर्ष शरवर्षाणि वृद्धः कुरुपितामहः ॥ ३ ॥ अर्जुनस्तु नरव्याघ्रो दृष्ट्वा भीष्मं महारथं । वार्ष्णेय

मब्रवीत् क्रुद्धो याहि यत्र पितामहः ॥ ४ ॥ एष द्रोणः कृपःशल्यो विकर्णश्च जनार्दन । धार्तराष्ट्राश्च सहिता दुर्योधन पुरोगमाः ॥५॥ पाञ्चालान् विहनिष्यन्ति रक्षिता दृढ धन्विना ॥ ६ ॥ तमब्रवीद् वासुदेवो यत्तो भव धनञ्जय । एष त्वां प्रापयिष्यामि पितामहरथं प्रति ॥ ७ ॥ एवमुक्त्वा ततः शौरी रथं तं लोक विश्रुतं । प्रापयामास भीष्मस्य रथं प्रति नजेश्वर ॥ ८ ॥ तमापतन्तं वेगेन प्रभिन्न मिव वारणं । सहसा प्रत्युदीयाय भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनं ॥ ९ ॥ कोहि गांडीव धन्वानमन्यः कुरुपितामहात् । द्रोण वैकर्त नाभ्यांवा रथी संयातु-मर्हति ॥ १० ॥ ततो द्रोणं महेष्वासं गांगेयस्य प्रियेरतं । अभ्यवर्तत पाञ्चाल्यः संयुक्तः सह सोमकैः ॥ ११ ॥

अर्थ—तब रौंगटे खड़ा करने वाला घमसान का युद्ध होने लगा, जिस में आप के पक्ष वालों के और शत्रुओं के रथ और हाथी आपस में मिल जुल गए ॥ १ ॥ शत्रुओं के दबाने वाले कुरुपितामह भीष्म, महारथी अभिमन्यु, भीमसेन, सात्यकि, कैकेय, विराट, धृष्टद्युम्न और चेदि तथा मत्स्य क्षत्रियों पर बाण बरसाने लगे ॥ २—३ ॥ नरसिंह अर्जुन महारथ भीष्म को देख क्रोध में आकर श्रीकृष्ण से बोले वहां चलो जहां पितामह हैं ॥ ४ ॥ देखो यह द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, और धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि, भीष्म से रक्षित हुए यह सब मिल कर पञ्चालों का विनाश करेंगे ॥ ५—६ ॥ श्रीकृष्ण उन से बोले, हे धनञ्जय सावधान हो जाओ, यह मैं आप को पितामह के रथ के निकट ले चलता हूं ॥ ७ ॥ यह कह कर श्रीकृष्ण उस लोकाविख्यात रथ को भीष्म के रथ के निकट ले गए ॥ ८ ॥ मत्त हाथी की भांति वेग से आपड़ते हुए अर्जुन का सामना करने के लिये भीष्म झट आगे बढ़े।९।

कुरुपितामह भीष्म द्रोणाचार्य और कर्ण से अतिरिक्त कौन और गांडीव धनुष वाले के सामने जा सकता है ॥ १० ॥ उसी समय राजा द्रुपद सोमकों को संग ले कर भीष्म के प्रिय में लगे हुए द्रोणाचार्य के सामने जा डटा ॥ ११ ॥

मूल–तेषां महारथानां स मध्यं प्राप्य धनञ्जयः । चिक्रीड धनुषा राजँल्लक्षं कृत्वा महारथान् ॥ १२ ॥ ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममाह जनेश्वरः । पीड्यमानं स्वकं सैन्यं दृष्ट्वा पार्थेन संयुगे ॥ १३ ॥ एष पाण्डुसुतस्तात कृष्णेन सहितोबली । यततां सर्व सैन्यानां मूलं नः परिकृन्तति ॥ १४ ॥ त्वत्कृते चैव कर्णोपि न्यस्तशस्त्रो विशांपते । न युध्यति रणे पार्थं हितकामः सदा मम॥१५॥ स तथा कुरु गांगेय यथा हन्येत फाल्गुनः ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्ततो राजन् पितादेवव्रतस्तव । धिक्क्षात्रं धर्म मित्युक्त्वा प्रायात् पार्थरथं प्रति ॥ १७ ॥ उभौ श्वेत हयौ राजन् संसक्तौ प्रेक्ष्यपार्थिवाः सिंहनादान् भृशं चक्रुः शंखान् दध्मुश्च भारत ॥ १८ ॥ द्रौणिर्दुर्योधनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजः । परिवार्यरणे भीष्मं स्थिता युद्धाय मारिष ॥ १९ ॥ तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयं । स्थिता युद्धाय महते ततो युद्ध मवर्तत ॥ २० ॥ उभौ परम संहृष्टावुभौ युद्धाभिनन्दिनौ । निर्विशेष मयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ २१ ॥ भीष्मचापविमुक्तानि शरजालानि संघशः। शीर्यमाणान्य दृश्यन्त भिन्नान्यर्जुन सायकैः ॥ २२ ॥ तथैवार्जुन मुक्तानि शर जालानि सर्वशः । गांगेय शर नुन्नानि प्रापतन्त महीतले ॥२३॥

अर्थ–हे राजन् ! अर्जुन कौरव महारथों के मध्य में पहुंच कर, उन को लक्ष्य करके, धनुष से खेलने लगे ॥ १२ ॥ उस समय राजा दुर्योधन अपनी सेना को अर्जुन से पीड़ित देख कर

भीष्म से बोले ॥ १३ ॥ हे तात ! कृष्ण के साथ मिल कर यह बलवान् पाण्डुसुत सामने आए हमारे सारे सैनिकों की जड़ उखाड़ रहा है ॥ १४ ॥ हे महाराज ! कर्ण जो मेरा सदा हित चाहने वाला है, वह भी तुम्हारे कारण शस्त्र छोड़े हुए है, रण में अर्जुन से लड़ नहीं रहा ॥ १५ ॥ सो हे महाराज ! वह उपाय कीजिये, जिससे अर्जुन मारा जाए ॥ १६ ॥ हे राजन् ! यह बात सुन तुम्हारे पिता देवव्रत 'क्षात्रधर्म को धिक्कार है' ऐसा कह कर अर्जुन के रथ के निकट गए ॥ १७ ॥ दोनों श्वेत घोड़ों वालों को आपस में जुटे देख कर राजा लोग बलवत् सिंहनाद करके शंख बजाने लगे ॥ १८ ॥ अश्वत्थामा, दुर्योधन और आप के पुत्र विकर्ण भीष्म (की रक्षा के लिये उस को) चारों ओर से घेर कर रण में लड़ने लगे ॥ १९ ॥ वैसे ही पाण्डव अर्जुन को घेर कर युद्ध के लिये खड़े हुए तब युद्ध होने लगा ॥ २० ॥ दोनों युद्ध के प्यारे, दोनों परम प्रसन्न हुए प्रहार और संहार (स्वयं चलाना और दूसरे का काटना) करते हुए एक तुल्य युद्ध करने लगे ॥ २१ ॥ भीष्म के धनुष से जो बाण समूह छूट रहे थे, वे अर्जुन के बाणों से कट कर गिरते दीख पड़ते थे॥२२॥ वैसे ही अर्जुन जो बाणजाल छोड़ते थे, वह भीष्म के बाणों से कट कर भूतल पर गिरते थे ॥ २३ ॥

मूल—यतमानौ तु तौ वीरा वन्योऽन्यस्य वधं प्रति। न शक्नुतां तदान्योन्य मभि संधातु माहवे ॥ २४ ॥ तौ मण्डलानि चित्राणि गत प्रत्या गतानि च । अदर्शयेतां बहुधा सूतसामर्थ्य लाघवात् ॥ २५ ॥ चिन्ह मात्रेण भीष्मं तु प्रजज्ञुस्तत्र कौरवाः। तथा पाण्डुसुताः पार्थं चिन्ह मात्रेण जज्ञिरे ॥ २६ ॥ तयोर्नृवरयोर्दृष्ट्वा

तादृशं ते पराक्रमं । विस्मयं सर्वभूतानि जग्मुर्भारत संयुगे॥२७॥ न तयोर्विवरं कश्चिद् रणे पश्यति भारत । धर्मे स्थितस्य हि यथा न कश्चिद् वृजिनं क्वचित् ॥ २८ ॥ उभौ च शरजालेन तावदृश्यौ बभूवतुः । प्रकाशौ च ततस्तूर्णं बभूवतुरुभौ रणे ॥ २९ ॥ नहि शक्यो रणे जेतुं भीष्मः पार्थेन धीमता । सधनः सरथः साश्वः प्रवपन् सायकान् रणे ॥ ३० ॥ तथैव पाण्डवं युद्धे देवैरपि दुरासदं । न विजेतुं रणे भीष्म उत्सहेत धनुर्धरं ॥ ३१ ॥ त्वदीयास्तु तदा योधाः पाण्डवेयाश्च भारत । अन्योऽन्यं समरे जघ्नुस्तयोस्तत्र पराक्रमे ॥ ३२ ॥

अर्थ—दोनों वीर एक दूसरे को मारने का यत्न करते हुए भी एक दूसरे को लक्ष नहीं बना सके॥२४॥ सारथियों की फुर्ती के कारण वह अद्भुत मण्डल और जाने आने की चालें दिखलाने लगे ॥ २५ ॥ कौरव केवल चिन्ह मात्र से भीष्म को पहचानते (और उस की सहायता करते) वैसे पाण्डुपुत्र चिन्ह मात्र से ही अर्जुन को पहचानते थे ॥ २६ ॥ उन दोनों नरसिंहों के ऐसे पराक्रम को देख कर युद्ध में सब लोग विस्मित होरहे थे ॥२७॥ जैसे धर्म में स्थित पुरुष का कोई पापकर्म नहीं दीख पड़ता, वैसे ही उन दोनों का रण में कोई छिद्र नहीं दीख पड़ता था ॥२८॥ वह दोनों वीर कभी बाणों के जाल से छिप जाते थे, कभी प्रकट होजाते थे ॥ २९ ॥ घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर हाथ में धनुष लिये (खेत में बीजों के बोने की भांति) बाणों को बोते हुए भीष्म को रण में अर्जुन किसी प्रकार जीत नहीं सकते ॥३० ॥ वैसे ही देवताओं से भी न दबने वाले धनुर्धारी अर्जुन को भीष्म

भी रण में जीतने का उत्साह नहीं कर सकते ॥ ३१ ॥ उस समय उन दोनों के पराक्रम के आश्रित तुम्हारे और पाण्डवों के योद्धा युद्ध में,वह उन की और वह इन की मार काट कर रहे थे ॥३२॥

अ० १० (वं० ५३) द्रोण धृष्टद्युम्न युद्ध

मूल—द्रोणस्तु निशितैर्बाणैर्धृष्टद्युम्न मविध्यत । आददे च शरं घोरं पार्षतान्तचिकीर्षया ॥ १ ॥ तत्राद्भुत मपश्याम धृष्टद्युम्न स्य पौरुषं । यदेकः समरे वीरस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ २ ॥ तं च दीप्तं शरं घोर मायान्तं मृत्यु मात्मनः । चिच्छेद शरवृष्टिं च भारद्वाजे मुमोच ह ॥ ३ ॥ तत उच्चुक्रुशुः सर्वे पाञ्चालाः पाण्डवैः सह । धृष्टद्युम्नेन तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करं ॥ ४ ॥ ततः शक्तिं महावेगां स्वर्णवैदूर्यभूषितां । द्रोणस्य निधनाकाङ्क्षी चिक्षेप स पराक्रमी ॥ ५ ॥ तामापतन्तीं सहसा शक्तिं कनक भूषितां । त्रिधा चिच्छेद समरे भारद्वाजो हसन्निव ॥ ६ ॥ शक्तिं विनि हतां दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् । ववर्ष शरवर्षाणि द्रोणं प्रति जनेश्वर ॥ ७ ॥ शरवर्षं ततस्तत्तु सन्निवार्य महायशाः । द्रोणो द्रुपद पुत्रस्य मध्ये चिच्छेद कार्मुकं ॥ ८ ॥ अथान्यद्धनुरादाय धृष्टद्युम्नो महारथः । द्रोणं युधि पराक्रम्य शरैर्विव्याध पञ्चभिः ॥ ९ ॥ रुधिराक्तौ ततस्तौ तु शुशुभाते नरर्षभौ । वसन्त समये राजन् पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १० ॥ अमर्षितस्ततो राजन् पराक्रम्य चमूमुखे । द्रोणो द्रुपद पुत्रस्य पुनश्चिच्छेद कार्मुकं ॥ ११ ॥ सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् । अथास्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ १२ ॥ पातयामास समरे सिंहनादं ननाद च । ततोऽपरेण भल्लेन हस्ताच्चाप मथाच्छिनत् ॥ १३ ॥स छिन्नधन्वा विरथो हता-

श्वो हत सारथिः । गदा पाणि रवारोहत् ख्यापयन् पौरुषं महत ॥ १४ ॥ तामस्य विशिखैस्तूर्णं पातयामास भारत । रथादनवरूढ-स्य तदद्भुत मिवाभवत् ॥ १५ ॥ ततः स विपुलं चर्म शतचन्द्रं च भानुमत् । खड्गं च विपुलं दिव्यं प्रगृह्य सुभुजो बली ॥ १६ ॥ अभिदुद्राव वेगेन द्रोणस्य वध काङ्क्षया ॥ १७ ॥ तत्राद्भुत मप-श्याम भारद्वाजस्य पौरुषं । लाघवं चास्त्रयोगं च बलं बाह्वोश्च भारत ॥ १८ ॥ यदेनं शरवर्षेण वारयामास पार्षतं । न शशाक ततो गन्तुं बलवानपि संयुगे ॥ १९ ॥निवारितस्तुद्रोणेन धृष्टद्युम्नो महारथः । न्यवारयच्छरौघांस्तांश्चर्मणा कृतहस्तवत ॥ २० ॥ ततो भीमो महाबाहुः सहसाऽभ्यपतद् बली । साहाय्यकारी समरे पार्षतस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ स द्रोणं निशितैर्बाणै राजन् वि-व्याध सप्तभिः । पार्षतं च रथं तूर्णं स्वकमारोहयत् तदा ॥२२॥ ततो दुर्योधनो राजन् भानुमन्त मचोदयत् । सैन्येन महता युक्तं भारद्वाजस्य रक्षणे ॥ २३ ॥ ततः सा महती सेना कलिंगानां जनेश्वर । भीममभ्युद्ययौ तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात ॥ २४ ॥ पाञ्चाल्य मथ संत्यज्य द्रोणोऽपि रथिनां वरः । विराट द्रुपदौ वृद्धौ वारयामास संयुगे ॥ २५ ॥ धृष्टद्युम्नोऽपि समरे धर्मराजानमभ्य-यात् ॥ २६ ॥ ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणं । कलिंगानां च समरे भीमस्य च महात्मनः ॥ २७ ॥

अर्थ—इधर द्रोण बड़े तीक्ष्ण बाणों से धृष्टद्युम्न को बींधने लगे, और धृष्टद्युम्न का नाश करने के लिये एक घोर बाण हाथ में लिया ॥ १ ॥ वहां हमने धृष्टद्युम्न का अद्भुत पुरुषार्थ देखा, कि वह वीर अकेला पर्वत की भांति अचल खड़ा रहा ॥ २ ॥ और अपनी मृत्यु के तुल्य आते हुए उस प्रचण्ड घोर बाण को

काट दिया, और द्रोण पर बाण वर्षा करने लगा ॥ ३ ॥ धृष्टद्युम्न से किये इस दुष्कर कार्य को देख कर पाञ्चाल और पाण्डव सिंहनाद करने लगे ॥ ४ ॥ अनन्तर उस पराक्रमी धृष्टद्युम्न ने द्रोण के मारने की इच्छा से सुवर्ण भूषित बड़े वेग वाली एक शक्ति चलाई ॥ ५ ॥ वेग से आती सुवर्ण भूषित शक्ति को देख कर द्रोण ने हंसते २ उसे तीन टुकड़े कर पृथिवी पर गिरा दिया ॥ ६ ॥ शक्ति को कटा देख कर प्रतापी धृष्टद्युम्न द्रोण पर फिर बाण वर्षा करने लगे ॥ ७ ॥ उस बाण वर्षा को रोक कर यशस्वी द्रोण ने धृष्टद्युम्न के धनुष को ही मध्य में से काट दिया ॥ ८ ॥ तब धृष्टद्युम्न ने एक और बड़ा धनुष लिया और युद्ध में पराक्रम के साथ पांच बाणों से द्रोण को बींधा ॥ ९ ॥ अब रुधिर से लिबड़े हुए वह दोनों नरवीर वसन्त में फूले हुए केसुओं की भांति शोभा पा रहे थे ॥ १० ॥ अनन्तर द्रोणाचार्य ने क्रोध में आ कर सेना के आगे बढ़ कर पराक्रम के साथ उस के धनुष को फिर काट डाला ॥ ११ ॥ और इस के सारथि को भाला मार कर रथ की बैठक से नीचे गिरा दिया, और उस के चारों घोड़ों को चार तीक्ष्ण बाणों के साथ भूमि पर गिरा दिया और सिंहनाद करने लगा। और फिर दूसरे भाले से उस के हाथ से बाण को भी काट गिराया ॥ १२--१३ ॥ धनुष के टूट जाने और सारथि और घोड़ों के मारा जाने से रथहीन हुआ धृष्टद्युम्न बड़ा पौरुष दिखलाता हुआ हाथ में गदा ले कर रथ से उतरा ॥१४॥ परन्तु रथ से उतरते ही उतरते द्रोणाचार्य ने उस की गदा को बाणों से काट कर गिरा दिया, यह बड़ा आश्चर्य सा हुआ॥१५॥

तिस पीछे धृष्टद्युम्न सौ चन्द्र वाली एक बड़ी ढाल और चमकता हुआ निर्मल खड्ग ले कर द्रोण को मारने की इच्छा से वेग से दौड़ा ॥ १६—१७ ॥ वहां हमने द्रोणाचार्य का पौरुष, फुर्ती, अस्त्रयोग, और भुजाओं का बल अद्भुत देखा ॥ १८ ॥ जब कि उसने धृष्टद्युम्न को बाणवर्षा से वहीं का वहीं रोक दिया, धृष्टद्युम्न ऐसे बलवान् हो कर भी द्रोणाचार्य के निकट न पहुंच सके ॥ १९ ॥ किन्तु वहीं रुक कर अपने हाथ की फुर्ती से ढाल पर उस बाण वर्षा को रोकने लगे ॥ २० ॥ उसी समय महाबाहु भीम धृष्टद्युम्न की सहायता के लिये झट पट आ पहुंचा ॥ २१ ॥ उसने आते ही द्रोण को तीक्ष्ण बाणों से बींध कर धृष्टद्युम्न को झट अपने रथ पर चढ़ा लिया ॥ २२ ॥ यह देख राजा दुर्योधन ने एक बड़ी सेना के साथ भानुमान् को द्रोण की रक्षा के लिये भेजा ॥ २३ ॥ आप के पुत्र की आज्ञा पाकर कलिंगों की वह बड़ी सेना शीघ्रता से भीमसेन के सम्मुख गई ॥ २४ ॥ इधर रथिवर द्रोण धृष्टद्युम्न को छोड़ कर विराट और द्रुपद को जा रोकने लगे ॥ २५ ॥ धृष्टद्युम्न भी युधिष्ठिर से जा मिला ॥ २६ ॥ और वहां भीम के संग कलिंगों का रोएं खड़ा करने वाला भयंकर युद्ध होने लगा ॥ २७ ॥

अ० ११ (वृ० ५४) भीम कलिंग युद्ध

मूल—विमर्दः सुमहानासीदल्पानां बहुभिः सह । कालिंगैः सह चेदीनां निषादैश्च विशांपते ॥ १ ॥ कालिंगस्तु महेष्वासः पुत्रश्चास्य महारथः । शक्रदेव इतिख्यातो जघ्नतुः पाण्डवं शरैः ॥ २ ॥ ततो भीमं महाबाहुर्विधुन्वन् रुचिरं धनुः । योधयामास

कालिंगो स्वबाहुबल माश्रितः ॥ ३ ॥ शक्रदेवस्तु समरे विसृजन् सायकान् बहून् । अश्वान् जघान समरे भीमसेनस्य सायकैः॥४॥ तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भीमसेन मरिन्दमं । शक्रदेवोऽभिदुद्राव शरैरव किरन् शितैः ॥ ५ ॥ हताश्वेतु रथेतिष्ठन् भीमसेनो महाबलः । शक्रदेवाय चिक्षेप सर्व शैक्यायसीं गदां ॥ ६ ॥ स तया निहतो राजन् कालिंगतनयो रथात् । विरथः सह सूतेन जगाम धरणी तलं ॥ ७ ॥ हत मात्मसुतं दृष्ट्वा कालिंगानां जनाधिपः । रथैरनेक साहस्रैर्भीमस्या वारयद् दिशः ॥ ८ ॥ प्रगृह्य च शरं घोर मेकं सर्पविषोपमं । प्राहिणोद् भीमसेनाय वधा काङ्क्षी जनेश्वरः ॥९॥ समापतन्तं वेगेन प्रेरितं निशितं शरं। भीमसेनो द्विधा राजंश्चिच्छेद विपुलासिना ॥ १० ॥कालिंगोऽथ ततः क्रुद्धो भीमसेनाय संयुगे। तोमरान् प्राहिणोच्छीघ्रं चतुर्दश शिलाशितान् ॥ ११ ॥ तान प्राप्तान् महाबाहुः खगतानेव पाण्डवः । चिच्छेद सहसा राजन्नसम्भ्रान्तो वरासिना ॥ १२ ॥ भानुमन्तं ततो भीमः प्राद्रवत् पुरुषर्षभः। भानुमांस्तु ततो भीमं शरवर्षेण छादयन् ॥ १३ ॥ ततो भीमो महाबाहुर्नर्दित्वा विपुलं स्वनं । मासिर्वेगवदाप्लुत्य दन्ताभ्यां वारणोत्तमं ॥ १४ ॥ आरुरोह ततो मध्यं नागराजस्य मारिष॥१५॥ ततो मुमोच कालिंगः शक्तिं तामकरोद् द्विधा । खड्गेन पृथुना मध्ये भानुमन्त मथाच्छिनत् ॥ १६ ॥

अर्थ–अब बहुत से कलिंग और निषाद वीरों के साथ थोड़े से(भीम के साथी)चादिवीरों का युद्ध में अत्यन्त नाश होने लगा॥१॥ और महा धनुर्धारी कलिंगराज और उस का पुत्र शक्रदेव दोनों भीम पर बाण प्रहार करने लगे ॥ २ ॥ इधर भीम भी अपने भुजबल का सहारा लिये सुन्दर धनुष को कंपाते हुए शक्रदेव के

संग युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥ शक्रदेव ने युद्ध में बहुत से बाण चला कर संग्राम में भीमसेन के चारों घोड़ों को मार डाला ॥४॥ शत्रुनाशी भीम को रथहीन देख कर शक्रदेव तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करते हुए उस की ओर दौड़े ॥ ५ ॥ इधर मरे घोड़ों वाले रथ पर बैठे हुए ही महाबली भीम ने भयंकर गदा चलाई॥ ६ ॥ हे राजन् ! उस गदा से कालिंगपुत्र सूत समेत मारा जा कर धरणी तल पर आ गिरा ॥ ७ ॥ कालिंगराज ने अपने पुत्र को मरा हुआ देख कर सहस्रों रथों के साथ भीमसेन को चारों ओर से घेर लिया ॥ ८ ॥ और सर्पविष के समान एक भयंकर बाण भीमसेन के मारने के लिये छोड़ा ॥ ९ ॥ वेग से आते हुए उस तीक्ष्ण बाण को भीमसेन ने बड़े खड्ग से काट कर दो टुकड़े कर दिया ॥ १० ॥ तब क्रोध में आ कर भीमसेन ने शिला पर तीक्ष्ण किये हुए चौदह तोमर चलाए ॥ ११ ॥ भीष्म ने घबराए बिना लगने से पहले आकाश में ही उन को एक उत्तम असिद्वारा काट गिराया ॥ १२ ॥ तब भीम भानुमान् की ओर दौड़ा, भानुमान् ने भीम को बाण वर्षा से ढांप दिया ॥१३॥ तब महाबाहु भीम बलवत् सिंहनाद करके तलवार ले वेग के साथ कूदकर हाथी के दोनों दान्त पकड़ कर हाथी की पीठ पर जा चढ़ा ॥ १४—१५ ॥ कालिंगराज ने उस पर शक्ति चलाई, जिस को भीम ने दो टुकड़े कर दिया और एक बड़े खड्ग से भानुमान् को काट गिराया ॥ १६ ॥

मूल—गुरुं भारसहं स्कन्धे नागस्यासि मपातयत् । छिन्न स्कन्धः स विनदन् पपात गजयूथपः॥ १७ ॥ ततस्तस्मादवप्लुत्य

गजाद् भरत भारतः। खड्गपाणिर दीनात्मा तस्थौ भूमौ सुदंशितः ॥ १८ ॥ स चचार बहून् मार्गानभिघ्नः पातयन् गजान्। अग्नि चक्रमिवाविद्धं सर्वतः प्रत्य दृश्यत ॥ १९ ॥ अश्व वृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाभिभूः। पदातीनां च सर्वेषु विनिघ्नन् शोणितो क्षितः ॥ २० ॥ केचिद्ग्रासिना छिन्ना पाण्डवेन महात्मना। विनेदुर्भिन्न मर्माणो निपेतुश्च गतासवः ॥ २१ ॥ छिन्नगात्रावरकरैर्निहतैश्चापि वारणैः। आसीद् भूमिः समास्तीर्णा पतितैर्भूधरैरिव ॥ २२ ॥ विमृद्यैवं महानागान् ममर्दाश्वान् महाबलः। अश्वारोह वरांश्चैव पातयामास संयुगे ॥ २३ ॥ खलीनान्यथ योक्त्राणि कक्ष्याश्च कनकोज्ज्वलाः। परिस्तोमाश्च प्रासाश्च ऋष्टयश्च महा घनाः ॥ २४ ॥ कवचान्यथ चर्माणि चित्राण्यास्तरणानि च। तत्र तत्राप विद्धानि व्यदृश्यन्त महाहवे॥ २५ ॥ आप्लुत्य रथिनः कांश्चित परामृश्य महाबलः। पातयामास खड्गेन स ध्वजानपि पाण्डवः ॥ २६ ॥

अर्थ—फिर अपने बड़े खड्ग को उस हाथी की गर्दन पर चलाया, गर्दन के कटने से वह गजयूथपति चिंघाड़ मारता हुआ भूमि पर आ गिरा ॥ १७ ॥ पर भीम (गिरने से पहले ही) हाथ में तलवार लिये उस हाथी से कूद कर कवच से ढके हुए निर्भय हो कर भूमि पर खड़े होगए ॥ १८ ॥ और अपने चारों ओर हाथियों को मार गिराते हुए अनेक मार्गों से घूमने लगे, उस समय वह घूमते हुए अग्नि चक्र की भांति चारों ओर दीखते थे ॥ १९ ॥ कभी हाथी, कभी घोड़े, कभी रथी कभी प्यादों को मारते हुए रुधिर से भीग रहे थे ॥ २० ॥ उस की बड़ी तलवार से कटे हाथी मर्मों के छिन्न भिन्न होने से चिंघाड़ें मारते

हुए मर २ कर भूमि पर गिरने लगे ॥ २१ ॥ मरे हुए हाथी हाथियों के कटे हुए धड़, और सूंडों से भूमि गिरे हुए पर्वतों से व्याप्तसी प्रतीत होती थी ॥ २२ ॥ इस प्रकार वह महाबली हाथियों का संहार करके घोड़ों और घुड़सवारों को युद्ध में गिराने लगे ॥ २३ ॥ उस महा संग्राम में जहां तहां लगामें, बागें, सोने के तंग, परिस्तोम, भाले, बहु मूल्य बरछे, कवच, ढालें, बिचित्र काठियां पड़ी दीखती थीं ॥ २४–२५ ॥ वह महाबली पाण्डुपुत्र कूद २ कर रथों पर चढ़ कर खड्ग से ध्वजों समेत रथियों को गिराने लगे ॥ २६ ॥

मूल—ततः कालिंग सैन्यानां प्रमुखे भरतर्षभ । श्रुतायुष मभिप्रेक्ष्य भीमसेनः तमभ्ययात् ॥ २७ ॥ ततः श्रुतायुर्बलवान् भीमाय निशितान् शरान् । प्रेषयामास संक्रुद्धो दर्शयन् पाणिलाघवं ॥ २८ ॥ क्रुद्धश्चाप मायम्य बलवद् बाकिनांवरः । कालिंग मवधीत् पार्थो भीमः सप्तभिरायसैः ॥ २९ ॥ क्षुराभ्यां चक्र रक्षौ च कालिंगस्य महाबलौ । सत्यदेवं च सत्यं च प्राहिणोद् यम सादनं ॥ ३० ॥ततः पुनरमेयात्मा नाराचैर्निशितैस्त्रिभिः । केतुमन्तं रणे भीमोऽगमयद् यमसादनं ॥ ३१ ॥ ततः कालिंगाः संक्रुद्धा भीमसेन ममर्षणं । अनेकैर्बहु साहस्रैः क्षत्रियाः समवारयन् ॥ ३२ ॥ ततो भीमो महाबाहुः खड्गहस्तो महाभुजः । संप्रहृष्टो महाघोषं शंखं प्रध्मापयद् बली ॥ ३३ ॥ मार्गान् बहून् विचरता धावता च ततस्ततः । मुहुरुत्पतताचैव संमोहः समपद्यत ॥ ३४ ॥ धृष्टद्युम्नस्तुतं दृष्ट्वा कालिंगैः समभिद्रुतं । भीमसेन ममेयात्मा त्राणायाजौ समभ्ययात् ॥ ३५ ॥ तौ दूरात् सात्यकिं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्न वृकोदरौ । कालिंगान् समरे वीरौ योधयेतां मनस्विनौ ॥ ३६ ॥ स तत्र

गत्वा शैनेयो जवेन जयतां वरः । पार्थ पार्षतयोः पार्ष्णिं जग्राह पुरुषर्षभः ॥ ३७ ॥ ततः शान्तनवो भीष्मः श्रुत्वा तं निनदं रणे । अभ्ययात् त्वरितो भीमं व्यूढानीकः समन्ततः ॥ ३८ ॥ तं सात्यकिर्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । अभ्यद्रवन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतं ॥ ३९ ॥ प्रत्यविध्यत तान् सर्वान् पिता देवव्रतस्तव । हयान् कांचनसन्नाहान् भीमस्यन्यहनच्छरैः ॥ ४० ॥ हताश्वे स रथे तिष्ठन् भीमसेनः प्रतापवान् । शक्तिं चिक्षेप तरसा गांगेयस्य रथं प्रति ॥ ४१ ॥अप्राप्ता मथ तां शक्तिं पिता देवव्रतस्तव।त्रिधा चिच्छेद समरे सा पृथिव्या मशीर्यत ॥ ४२ ॥ ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य बलवान् गदां । भीमसेनस्ततस्तूर्णं पुप्लुवे मनुजर्षभ ॥ ४३ ॥ सात्यकोऽपि ततस्तूर्णं भीमस्य प्रियकाम्यया । गांगेय सारथिं तूर्णं पातयामास सायकैः ॥ ४४ ॥ भीष्मस्तु निहते तस्मिन् सारथौ रथिनांवरः।वातोपमानैस्तैरश्वै रपनीतो रणाजिरात्॥४५॥ भीमसेनस्ततो राजन्नपयाते महाव्रते । प्रजज्वाल यथा वन्हिर्दहन् कक्ष मिवैधितः ॥ ४६ ॥ धृष्टद्युम्नस्तमाराप्य स्वरथे रथिनांवरः । पश्यतां सर्व सैन्याना मपोवाह यशस्विनं ॥ ४७ ॥

अर्थ—अनन्तर कलिंग सैनिकों के आगे २ श्रुतायु को देख कर भीमसेन उस की ओर दौड़े ॥ २७ ॥ उसी समय क्रुद्ध हुए बलवान् श्रुतायु ने हाथ की फुर्ती दिखला कर भीम की ओर तीक्ष्ण बाण छोड़े ॥ २८ ॥ तब बलिवर भीम ने क्रुद्ध हो कर धनुष को तान कर सात बाण श्रुतायु पर चलाए ॥ २९ ॥ और उस के चक्र रक्षक महाबली सत्यदेव और सत्य को एक २ क्षुर चला कर यम के घर भेज दिया॥ ३० ॥ और उस के अनन्तर तीन तीक्ष्ण

बाणों से केतुमान् को यम के घर पहुंचाया ॥ ३१ ॥ यह देख कवच पहने हुए अनेक सहस्रों कालिंग क्षत्रियों ने भीमसेन को घेर लिया ॥ ३२ ॥ तब बलवान् महाबाहु भीमसेन ने तलवार खींच ली, और परम हर्षित होकर बड़ी ध्वनि वाला शंख बजाया॥३३॥ अनेक मार्गों से काम करते हुए इधर उधर दौड़ते हुए और बार२ उछलते हुए भीम इस घेरे में घबरागए ॥३४॥ पर ज्यूंही कि धृष्ट-द्युम्न ने उसे कालिंगों से घिर गया देखा, वह उस के बचाने के लिये झट उस क्षेत्र में पहुंचा ॥ ३५ ॥ धृष्टद्युम्न और भीम ने कालिंगों के साथ युद्ध में जुटे रह कर दूर से, सात्यकि को भी आते देखा ॥ ३६ ॥ वह शिनिपुङ्गव वेग से वहां पहुंचा और भीम और धृष्टद्युम्न की पीठ की रक्षा करने लगा ॥ ३७ ॥ वहां रण में बड़े शोर को सुन कर भीष्म अपना सेना व्यूह रच कर (कालिं-गों की रक्षा के लिये) झट वहां पहुंचे॥ ३८ ॥यह देख सात्यकि, भीमसेन और धृष्टद्युम्न भीष्म के सुवर्ण भूषित रथ की ओर दौड़े ॥ ३९ ॥ उन सब को तेरे पिता भीष्म बींधने लगे, और अपने बाणों से सुनहरी तंग वाले भीम के घोड़ों को मार डाला ॥४० ॥ प्रतापी भीमसेन ने मरे घोड़ों वाले रथ पर खड़े हो कर भीष्म की ओर वेग से शक्तिबाण चलाया ॥ ४१ ॥ भीष्म ने उस शक्ति को अपने पास पहुंचने से पहले ही तीन टुकड़े कर दिया, वह पृथिवी पर गिर पड़ी ॥ ४२ ॥ तब भीमसेन एक बड़ी लोहे की गदा ले कर छलांग मार भीष्म के रथ की ओर दौड़ा ॥ ४३ ॥ इधर सात्यकि ने भीम का प्रिय करने के लिये अपने बाणों से भीष्म के सारथि को मार गिराया ॥ ४४ ॥ सारथि के मरते ही उस के घोड़े वायु वेग से उड़ कर भीष्म को रणांगन से निकाल

ले गए ॥ ४५ ॥ भीष्म के निकल जाने पर भीम वन को जलाते हुए आग्नि की भांति चमकने लगे ॥ ४६ ॥ उसी समय धृष्टद्युम्न उस को अपने रथ पर चढ़ा कर सारी सेनाओं के देखते ही देखते घेरे से निकाल ले गए ॥ ४७ ॥

अ० १२ (व० ५५) अभिमन्यु और लक्ष्मण का युद्ध

मूल—धृष्टद्युम्नं तु संयुक्तं द्रौणिना वीक्ष्य भारत । सौभद्रोऽभ्यपतत् तूर्णं विकिरन्निशितान् शरान् ॥ १ ॥ लक्ष्मणस्तव पुत्रस्तु सौभद्रं समवस्थितं । अभ्यवर्तत संहृष्टस्ततो युद्ध मवर्तत ॥२ ॥ दौर्योधनिः सुसंक्रुद्धः सौभद्रं परवीरहा । विव्याध समरे राजंस्तदद्भुत मिवा भवत् ॥ ३ ॥ अभिमन्युः सुसंक्रुद्धो भ्रातरं भरतर्षभ । शरैः पञ्चाशतै राजन् क्षिप्रहस्तोऽभ्यविध्यत ॥ ४ ॥ लक्ष्मणोपि ततस्तस्य धनुश्चिच्छेद पत्रिणा । मुष्टिदेशे महाराज ततस्ते चुक्रुशुर्जनाः ॥ ५ ॥ तद्विहाय धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा । अन्यदादत्तवांश्चित्रं कार्मुकं वेगवत्तरं ॥ ६ ॥ तौ तत्र समरे युक्तौ कृतप्रति कृतैषिणौ । अन्योऽन्यं विशिखैस्तीक्ष्णैर्जघ्नतुः पुरुषर्षभौ॥७॥ ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा पुत्रं महारथं । पीडितं तव पौत्रेण प्रायात् तत्र प्रजेश्वरः ॥ ८ ॥ सन्निवृत्ते तव सुते सर्व एव जनाधिपाः। आर्जुनिरथवंशेन समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ९ ॥ स तैः परिवृतः शूरैः शूरो युधि सुदुर्जयैः । न स्म प्रव्यथते राजन् कृष्ण तुल्य पराक्रमः ॥ १० ॥ सौभद्रमथ संसक्तं दृष्ट्वा तत्र धनञ्जयः। अभिदुद्राव वेगेन त्रातुकामः स्वमात्मजं ॥ ११ ॥ रथेभ्यश्च गजेभ्यश्च हयेभ्यश्च नराधिपाः । पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्तेऽर्जुन सायकैः ॥ १२ ॥ सगदानुद्यतान् बाहून् स खड्गांश्च विशांपते । स

प्रासांश्च सतूणीरान् सशरान् सशरासनान् ॥ १४ ॥ सांकुशान् सपताकांश्च तत्र तत्रार्जुनो नृणां । निचकर्त शरै रुग्रै रौद्रं वपुरधारयत ॥ १५ ॥ ध्वजानां चर्मणां चैव व्यजनानां च सर्वशः। राशयः स्मात्र दृश्यन्ते विनिकीर्णा रणक्षितौ ॥ १६ ॥ नासीत तत्र पुमान् कश्चित तव सैन्यस्य भारत । योऽर्जुनं समरे शूरं प्रत्युद्यायात कथंचन ॥ १७ ॥ यो यो हि समरे पार्थं प्रत्युद्याति विशांपते । स संख्ये विशिखैस्तीक्ष्णैः परलोकाय नीयते ॥ १८ ॥ तेषु विद्रवमाणेषु तत्र योधेषु सर्वशः । अर्जुनो वासुदेवश्च दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ॥ १९ ॥ ततोऽवहारः सैन्यानां तत्र तेषां च भारत। अस्तं गच्छति सूर्येऽभूत सन्ध्याकाले च वर्तति ॥ २० ॥

अर्थ—दूसरी ओर धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा के साथ जुटा देख कर अभिमन्यु अपने तीक्ष्ण बाणों को चलाते हुए झट वहां पहुंचे ॥ १ ॥ इधर तेरा पोता (दुर्योधन का पुत्र) लक्ष्मण अभिमन्यु को खड़ा देख कर हर्ष के साथ उस के सामने हुआ, तब उन दोनों का युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ २ ॥ लक्ष्मण ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर रण में अभिमन्यु को वींध दिया, वह अद्भुत सा हुआ।३। और अभिमन्यु ने क्रुद्ध हो कर हाथ की फुर्ती से पचास बाणों से लक्ष्मण को विद्ध किया॥४॥लक्ष्मण ने अपने बाण से अभिमन्यु के धनुष की मुट्ठी काट डाली, तब तेरे योधे सिंहनाद करने लगे ॥ ५ ॥ शत्रुवीरों के मारने वाले अभिमन्यु ने उस कटे हुए धनुष को त्याग कर और एक वेगवान् विचित्र धनुष ग्रहण किया॥६॥ वहां युद्ध में जुटे हुए वह दोनों प्रहार और संहार करते हुए तीक्ष्ण बाणों से एक दूसरे को मारने लगे ॥ ७ ॥ अनन्तर राजा दुर्योधन अपने पुत्र को आप के पोते (अभिमन्यु) के बाणोंसे पी-

हित देख कर वहां पहुंचे ॥ ८ ॥ दुर्योधन के उधर लौटने पर सभी राजाओं ने अपने रथ समूह से अभिमन्यु को चारों ओर से जा घेरा ॥ ९ ॥ कृष्ण के तुल्य पराक्रम वाला अभिमन्यु युद्ध में उन दुर्जय शूरवीरों से घिर कर भयभीत न हुआ ॥ १० ॥ अर्जुन अपने पुत्र अभिमन्यु को इस प्रकार घिरा देख कर उस के त्राण के लिए वेग से दौड़ कर वहां पहुंचे ॥ ११ ॥ अब वहां अर्जुन के बाणों से गिराए जाते हुए राजे रथों हाथियों और घोड़ों के ऊपर से गिरते दीखने लगे ॥ १२ ॥ अर्जुन वहां रौद्र रूप धार कर ऐसे ताक २ कर अपने उग्र बाण मारने लगे, कि प्रहार करने के लिए ऊपर की उठी रण वीरों की भुजाएं गदा सहित, खड्ग सहित, भालों सहित, तर्कशों सहित, बाणों सहित, धनुषों सहित, अंकुशों सहित, झंडों सहित कट २ कर जहां तहां गिरने लगीं ॥ १३—१५ ॥ रण भूमि में वहां झंडों के, ढालों के, छत्रों के, ढेर के ढेर बिखरे हुए दीखने लगे ॥ १६ ॥ हे भारत ! वहां आप की सेना का कोई भी पुरुषवीर अर्जुन के सामने जाने का साहस नहीं कर सकता था ॥ १७ ॥ हे राजन्! संग्राम में जो कोई अर्जुन के सामने जाता, वह झट तीक्ष्ण बाणों से परलोक में पहुंचा दिया जाता था ॥ १८ ॥ आप के वे योधे सब ओर से भाग निकले, तब अर्जुन और कृष्ण ने अपने उत्तम शंख बजाए ॥ १९ ॥ तब सूर्य के अस्त होने पर सन्ध्या समय दोनों ओर की सेनाएं निवृत्त हुईं ॥ २० ॥

अ० १३ (व० ५६) तीसरे दिन का युद्ध

मूल—प्रभातायां तु शर्वर्यां भीष्मः शान्तनवस्तदा । अनी-

कान्यनु संयाने व्यादिदेशाथ भारत ॥ १ ॥ गारुडं च महाव्यूहं चक्रे कुरुपितामहः । व्यूढं दृष्ट्वा तु तत्सैन्यं सव्यसाची परंतपः॥२॥ धृष्टद्युम्नेन सहितः मत्स्यव्यूहत संयुगे । अर्धचन्द्रेण व्यूहेन व्यूहं तमतिदारुणं ॥ ३ ॥ ततः प्रवृत्तं युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपं । तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरं ॥ ४ ॥ उदतिष्ठद्रजो भौमं छादयानं दिवाकरं । न दिशः प्रदिशो वापि जज्ञिरेऽत्र समागताः ॥ ५ ॥ अनुमानेन संज्ञाभिर्नाम गोत्रैश्च संयुगे । अवर्तत तदा युद्धं तत्र तत्र विशांपते ॥ ६ ॥ न व्यूहो भिद्यते तत्र कौरवाणां कथञ्चन । रक्षितः सत्यसन्धेन भारद्वाजेन संयुगे ॥ ७ ॥ तथैव पाण्डवानांच रक्षितः सव्यसाचिना । नाभिद्यत महाव्यूहो भीमेन च सुरक्षितः ॥ ८ ॥ सेनाग्रादपि निष्पत्य प्रायुध्यंस्तत्र मानवाः । उभयोः सेनयो राजन् व्यतिपक्तरथद्विपाः ॥ ९ ॥

अर्थ—रात के प्रभात होने पर भीष्म ने सेनाओं को चढ़ाई की आज्ञा दी ॥ १ ॥ और गरुड़ नामी महा व्यूह रचा, अर्जुन ने उन की व्यूह रचना देख कर, धृष्टद्युम्न के साथ मिल कर उन के विरुद्ध अपनी सेना का अतिदारुण चन्द्रव्यूह रचा ॥२-३॥ तब एक दूसरे को मारते हुए आप के लोगों का और शत्रुओं का युद्ध प्रवृत्त हुआ. रथ हाथी सब आपस में जुट गए ॥ ४ ॥ भूमि से उड़ी धूल ने सूर्य को छिपा दिया, आपस में जो जुटे थे, उन को दिशाएं प्रदिशाएं कुछ न सूझती थीं ॥ ५ ॥ तब (झंडे आदि के) चिन्हों से, संकेतों से, वा नाम गोत्र के सुनने से रण में यहां वहां युद्ध होने लगा ॥६॥ न कौरवों का व्यूह, जिस की रक्षा सच्ची प्रतिज्ञा वाले द्रोणाचार्य कर रहे थे,टूटसका ॥ ७ ॥ न ही पाण्डवों का व्यूह टूटा, जिस की रक्षा अर्जुनऔर

भीम कर रहे थे ॥ ८ ॥ सेना के अग्र से आगे निकल कर वीर लड़ने लगे, इस प्रकार दोनों सेनाओं के हाथी रथ आपस में जुटे ॥ ९ ॥

मूल—ततस्ते पार्थिवाः क्रुद्धाः फाल्गुनं वीक्ष्य संयुगे । रथैरनेक साहस्रैः समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १० ॥ शस्त्राणा मथतां वृष्टिं शलभानामिवायतिं । रुरोध सर्वतः पार्थः शरैः कनकभूषणैः ॥ ११ ॥ सात्यकिश्चाभिमन्युश्च महत्या सेनया वृतौ।गान्धारान् समरे शूरान् जग्मतुः सह सौबलान् ॥ १२ ॥ ततो धर्मसुतो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ । मिषतां सर्व सैन्यानां द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ १३ ॥ कुर्वाणौ सुमहत् कर्म भीमसेन घटोत्कचौ । दुर्योधनस्ततोऽभ्येत्य तावुभाव प्यवारयत् ॥ १४ ॥ तत्राद्भुत मपश्याम हैडिम्बस्य पराक्रमं । अतीत्य पितरं युद्धे यदयुध्यत भारत॥१५॥ भीमसेनस्तु संक्रुद्धो दुर्योधन ममर्षणं । हृद्यविध्यत् पृषत्केन प्रहसन्निव पाण्डवः ॥ १६ ॥ ततो दुर्योधनो राजा प्रहारवर पीडितः । निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ १७ ॥ तं विसंज्ञं विदित्वा तु त्वरमाणोऽस्य सारथिः । अपोवाह रणाद् राजंस्ततः सैन्य मभज्यत ॥ १८ ॥ ततस्तां कौरवीं सेनां द्रवमाणां समन्ततः । निघ्नन् भीमः शरैस्तीक्ष्णै रनु वव्राज पृष्ठतः ॥ १९ ॥ ततो दुर्योधनो राजा समाश्वस्य विशांपते । न्यवर्तयत तत्सैन्यं द्रवमाणं समन्ततः ॥ २० ॥ सन्निवृत्तांस्ततस्तांस्तु दृष्ट्वा राजा सुयोधनः । अब्रवीत त्वरितो गत्वा भीष्मं शान्तनवं वचः ॥ २१ ॥

अर्थ—अनन्तर वह सब राजे रणभूमि में अर्जुन को देख कर क्रोध से भर गए, और सहस्रों रथ ले कर उसे चारों ओर से जा घेरा ॥ १० ॥ टिड्डीदल की भांति चारों ओर से आती

उस बाणवृष्टि को अर्जुन ने अपने सुवर्ण भूषित बाणों से चारों ओर से रोक दिया ॥ ११ ॥ सात्यकि और अभिमन्यु महती सेना के साथ शकुनि और उस की रणवीर गान्धारसेना की ओर गए ॥ १२ ॥ तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर और दोनों माद्रीपुत्र सारी सेनाओं के देखते हुए द्रोण की सेना की ओर दौड़े॥१३॥ भीमसेन और घटोत्कच ने जहां बड़ा भारी संग्राम मचाया, दुर्योधन वहां पहुंच कर उन दोनों को रोकने लगे ॥ १४ ॥ वहां हमने घटोत्कच का अद्भुत पराक्रम देखा, कि युद्ध में पिता(भीम) को लंघ गया ॥ १५ ॥ भीमसेन ने क्रुद्ध हो कर हंस कर क्रोधी दुर्योधन के हृदय में बाण मार कर उसे विद्ध किया ॥ १६ ॥ तब राजा दुर्योधन उस प्रहार से पीड़ित हो कर रथ की बैठक पर बैठ गया और उसे मूर्छा आगई ॥ १७ ॥ उस को मूर्छित जान कर उस का सारथि झट पट उसे रण से निकाल ले गया, तब सेना भाग निकली ॥ १८ ॥ तब चारों ओर भागती हुई कौरवी सेना को बाणों से मारता हुआ भीमसेन उस के पीछे दौड़ा ॥ १९ ॥ तब हे राजन् ! राजा दुर्योधन ने होश संभाली और चारों ओर भागती हुई उस सेना को लौटाया ॥ २० ॥ उन सैनिकों को लौटा हुआ देख कर राजा दुर्योधन शीघ्रता से भीष्म के निकट पहुंच यह बचन बोले ॥ २१ ॥

मूल—नानुरूप महं मन्ये त्वयि जीवति कौरव।द्रोणे चास्त्र विदां श्रेष्ठे द्रवते यद् वरूथिनी ॥ २२ ॥ यदि नाहं परित्याज्यो युवाभ्या मिह संयुगे। विक्रमेणानुरूपेण युध्येतां पुरुषर्षभौ॥२३॥ भीष्म उवाच—बहुशोसि मया राजंस्तथ्य मुक्तो हितं वचः।

अजेयाः पाण्डवाः युद्धे देवैरपि सवासवैः ॥ २४ ॥ यत्तु शक्यं मया कर्तुं वृद्धेनाद्य नृपोत्तम । करिष्यामि यथाशक्ति प्रेक्षेदानीं स बान्धवः ॥ २५ ॥ एवमुक्ते तु भीष्मेण पुत्रास्तव जनेश्वर । दध्मुः शंखान् मुदा युक्ता भेरीः संजघ्निरे भृशं ॥ २६ ॥

अर्थ—हे कौरव आप के और अस्त्र जानने वालों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य के जीते हुए जो यह सेना भाग निकलती है, मैं यह आप के योग्य कार्य नहीं समझता ॥ २२ ॥ यदि युद्ध में मैं आप दोनों का त्याज्य नहीं हूं, तो अपने योग्य पराक्रम से युद्ध दिखलाओ ॥ २३ ॥ भीष्म बोले—हे राजन् ! मैंने अनेकबार आप को सच्चा हित वचन कहा है, कि पाण्डव युद्ध में इन्द्रसहित देवताओं से भी नहीं जीते जासकते ॥२४॥ किन्तु हे नृपोत्तम ! जो कुछ मैं वृद्ध अब करसकता हूं, यथाशक्ति करूंगा, बान्धवों के संग मिल कर आप देखें ॥ २५ ॥ भीष्म के ऐसा कहने पर आप के पुत्रों ने हर्ष से शंख बजाए और भेरियें बजाईं ॥ २६ ॥

अ० १४ (व० ५९) भीष्मार्जुन युद्ध

मूल—प्रावर्तत ततो युद्धं तुमुलं लोमहर्षणं । अस्माकं पाण्डवैः सार्धं मनयात् तव भारत ॥ १ ॥ तिष्ठ स्थितोस्मि विद्ध्येनं निवर्तस्व स्थिरो भव । स्थिरोस्मि प्रहरस्वेति शब्दोऽश्रूयत सर्वशः ॥ २ ॥ पतितान्युत्तमांगानि बाहवश्च विभूषिताः । व्यचेष्टन्त महीं प्राप्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३ ॥ न दृष्टं न श्रुतं वापि युद्धमेतादृशं नृप । यथा तव सुतानां च पाण्डवानां च भारत ॥ ४ ॥ नासीद्रथपथस्तत्र योधैर्युधि निपातितैः । गजैश्च पतितैर्नीलैःगिरिशृङ्गै रिवावृतः ॥ ५ ॥ तत्र भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलका-

मुक्तः। मुमोच बाणान् दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥ ६ ॥ तमेकं समरे शूरं पाण्डवाः सृंजयैः सह। अनेकशतसाहस्रं समपश्यन्त पाण्डवाः ॥ ७ ॥ पूर्वस्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्रतीच्यां ददृशुर्जनाः। उदीच्यां चैनमालोक्य दक्षिणस्यां पुनः प्रभो ॥ ८ ॥ न चैवं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति वीक्षितुं। विशिखानेव पश्यन्ति भीष्मचापच्युतान् बहून् ॥ ९ ॥ अमानुषेण रूपेण चरन्तं पितरं तव। शलभा इव राजानः पतन्ति विधिचोदिताः ॥ १० ॥ नहि मोघः शरः कश्चिदासीद् भीष्मस्य संयुगे। नरनागाश्वकायेषु बहुत्वाल्लघुयोधिनः ॥ ११ ॥ यो यो भीष्मं नर व्याघ्रमभ्येति युधि कश्चन। मुहूर्त दृष्टः समया पतितो भुवि दृश्यते ॥१२॥

अर्थ—अनन्तर पाण्डवों के संग हमारा रोएं खड़ा करने वाला घोर युद्ध प्रवृत्त हुआ, जो आप के नीति को हाथ में न रखने से चल रहा है ॥ १ ॥ ' खड़ा रह, खड़ा हूं, इस को बींध, लौट आ, तय्यार होजा, तय्यार हूं, प्रहार कर ' इत्यादि शब्द चारों ओर से सुनाई देने लगे ॥ २ ॥ सैंकड़ों और सहस्रों सिर और भूषणोंयुक्त भुजाएं गिरने लगीं, और भूमि पर गिर कर चेष्टा हीन होने लगीं ॥ ३ ॥ ऐसा युद्ध हे राजन् न कभी देखा न सुनाथा, जैसा कि आप के पुत्रों का और पाण्डवों का हुआ ॥ ४ ॥ रथों के चलने का मार्ग नहीं रहा, युद्ध में गिराए हाथियों से भूमि भर गई, मानों नीले पर्वत शिखर पड़े हुए हैं ॥ ५ ॥ वहां भीष्म धनुष को गोल खींच कर विषधर सर्पों के से प्रचण्ड बाण छोड़ रहे थे ॥ ६ ॥ उस अकेले शूर वीर को पाण्डव और सृंजय लाखों जैसा देख रहे थे ॥ ७ ॥ पूर्व दिशामें देख कर लोग उसे झट पश्चिम में देखते थे, फिर उत्तर में देख कर झट दक्षिण में देखते थे ॥ ८ ॥ पाण्डवदल के लोग भीष्म की

ओर दृष्टि उठा कर नहीं देख सकते थे, किन्तु उस के धनुष से निकल कर गिरते बाण समूह को ही देख रहे थे ॥ ९ ॥ अमानुष रूप से घूमते हुए भीष्म रूप अग्नि में दैव से प्रेरे हुए राजे पतंगों की भांति गिर रहे थे ॥ १० ॥ फुर्ती से लड़ते हुए भी भीष्म का कोई बाण बहुतायत के कारण हाथी घोड़े मनुष्यों के शरीरों पर लग कर व्यर्थ नहीं जाता था ॥ ११ ॥ जो कोई युद्ध में शूरवीर भीष्म के सामने जाता, एक क्षण में वह भूमि पर गिरता हुआ मैंने देखा है ॥ १२ ॥

मूल—एवं सा धर्मराजस्य बध्यमाना महाचमूः । भीष्मेणातुलवीर्येण व्यशीर्यत सहस्रधा ॥ १३ ॥ प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः ॥ ३ ॥ वाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथ मुत्तमं॥ १४ ॥ अयं स कालः संप्राप्तः पार्थ यस्तेभिकाङ्क्षितः । प्रहरस्व नरव्याघ्र न चेन्मोहाद् विमुह्यसे ॥ १५ ॥ एमसुक्तः प्रत्युवाच वासुदेवं धनञ्जयः । नोदयाश्वान् यतो भीष्मो विगाह्यैतद् बलार्णवं ॥ १६ ॥ ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठ सिंहवद्विनदन्मुहुः । धनञ्जयरथं शीघ्रं शर वर्षैरवाकिरत् ॥ १७ ॥ क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः । शरवर्षेण महता संछन्नो न प्रकाशते॥ १८ ॥ वासुदेवस्त्व सम्भ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्त्ववान् । चोदयामास तानश्वान् विचितान् भीष्म सायकैः ॥ १९ ॥ अदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलं । मोघं कुर्वन् शरांस्तस्य मंडलान्याचरल्लघु ॥ २० ॥ तथा भीष्म स्तु सुदृढं वासुदेव धनंजयौ । विव्याध निशितैर्बाणैः सर्वगात्रेषु भारत ॥ २१ ॥ वार्ष्णेयं च शरैस्तीक्ष्णैः कंपयामास रोषितः । मुहुरभ्यर्दयन् भीष्मः प्रहस्य स्वनवत्तदा ॥ २२ ॥ अमृष्यमाणो

भगवान् केशवः परवीरहा । अचिन्त्यश्चाप्रमेयात्मा नास्ति यौधिष्ठिरं बलं ॥ २३ ॥ द्रवते च महासैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः । सोहं भीष्मं निहन्म्यद्य पाण्डवार्थाय दंशितः ॥ २४ ॥ अर्जुनो हि शरैस्तीक्ष्णैर्बध्यमानोपि संयुगे । कर्तव्यं नाभिजानाति रणे भीष्मस्य गौरवात् ॥ २५ ॥

अर्थ–इस प्रकार अतुल पराक्रमी भीष्म से मारी जाती हुई वह युधिष्ठिर की बड़ी सेना अनेकों भागों में बट कर भागने लगी ॥ १३ ॥ सेना को भागता देख कर कृष्ण रथ को रोक कर अर्जुन से बोले ॥ १४ ॥ यह वह समय आ पहुंचा है, हे अर्जुन जो आप को अभीष्ट है, इसी अवसर पर हे वीरवर प्रहार करो, यदि तुम (अपनत्व के) मोह से मोहित नहीं हो ॥ १५ ॥ यह सुन कर अर्जुन कृष्ण से बोले, इस सेनासागर को लंघ कर जहां भीष्म हैं, वहां घोड़ों को हांक ले चलो ॥ १६ ॥ अनन्तर भीष्म सिंहवत् गर्ज कर अर्जुन के रथ पर बाणवर्षा करने लगे ॥ १७ ॥ थोड़ी देर वह रथ घोड़ों और सारथि समेत बाणवर्षा से ऐसा ढक गया, कि दीखता नहीं था॥ १८ ॥ पराक्रमी कृष्ण धैर्य धर कर बिन घबराए भीष्म की बाणवर्षा के अन्दर ही घोड़ों को हांकते चले गए ॥ १९ ॥कृष्ण ने घोड़ों के चलाने में अपना उत्तम बल दिखलाया, जब कि फुर्ती के साथ ऐसे चक्रों से घूमता हुए निकल गए, कि भीष्म के बाण बहुधा व्यर्थ रहे॥ २० ॥ तौ भी भीष्म ने भी अपनी फुर्ती से तीक्ष्ण बाणों से कृष्ण और अर्जुन को सारे अंगों में बींध दिया ॥ २१ ॥ और क्रोध में भर ऊंचे हंस कर कृष्ण को अपने तीक्ष्ण बाणों से कंपा दिया और बार २ तंग किया ॥ २२ ॥ शत्रुवीरों के मारने वाले भगवान्

कृष्ण इसे न सहारते हुए सोचने लगे, इस तरह तो युधिष्ठिर की सेना की समाप्ति होजाएगी ॥ २३ ॥ महात्मा युधिष्ठिर की से. भाग रही है, सो मैं आज स्वयं तय्यार हो कर युधिष्ठिर के निमित्त भीष्म को मारता हूं ॥ २४ ॥ अर्जुन तीक्ष्ण बाणों से युद्ध में मारा जाता हुआ भी भीष्म के गौरव से कर्तव्य को नहीं पहचानता है ॥ २५ ॥

मूल–ततः सुनाभं वसुदेवपुत्रः सूर्यप्रभं वज्रसमप्रभावं । क्षुरान्तमुद्यम्य भुजेन चक्रं रथादवप्लुत्य विसृज्य वाहान् ॥२६॥ संकंपयन् गां चरणैर्महात्मा वेगेन कृष्णः प्रससार भीष्मं ॥ २७ ॥ रथादवप्लुत्य ततस्त्वरावान् पार्थोऽप्यनुद्रुत्य यदुप्रवीरं । बलान्निजग्राह हरिं किरीटी पदेऽथ राजन् दशमे कथञ्चित् ॥ २८ ॥ अवस्थितं च प्रणिपत्य कृष्णं प्रीतोऽर्जुनः काञ्चन चित्रमाली । उवाच कोपं प्रतिसंहरेति न हास्यते कर्म यथाप्रतिज्ञं ॥ २९ ॥ ततः प्रतिज्ञां समयं च तस्य जनार्दनः प्रीतमना निशम्य । स्थितः प्रिये कौरवसत्तमस्य रथं सचक्रः पुनरारुरोह ॥ ३० ॥ स तान भीष्मून् पुनराददानः प्रगृह्य शंखं द्विषतां निहन्ता । विनादयामास ततो दिशश्च स पाञ्चजन्यस्य रवेण शौरिः ॥ ३१ ॥ ततो भुजाभ्यां बलवद्विकृष्य चित्रं धनुर्गांडिव मप्रमेयं । माहेन्द्रमस्त्रं विधिवत् सुघोरं प्रादुश्चकाराद्भुत मन्तरिक्षे ॥ ३२ ॥ तेनोत्तमास्त्रेण ततो महात्मा सर्वाण्यनीकानि महाधनुष्मान् । शरौघजालैर्विमलाग्निवर्णैर्निवारयामास किरीटमाली ॥ ३३ ॥ शिलीमुखाः पार्थधनुःप्रमुक्ता रथान् ध्वाजाग्राणि धनूंषि बाहून् । निकृत्य देहान् विविशुः परेषां नरेन्द्रनागेन्द्रतुरंगमाणां ॥ ३४ ॥ ततो दिशः सोऽनुदि-

शश्च पार्थः शरैः सुधारैः समरे वितत्य । गांडीव शब्देन मनांसि तेषां किरीटमाली व्यथयाञ्चकार ॥ ३५ ॥ तस्मिंस्तथा घोरतमे प्रवृत्ते शंखस्वना दुन्दुभिनिःस्वनाश्च । अन्तर्हिताः गांडिवनिस्वनेन बभूवुरुग्राश्वरथप्रणादाः ॥ ३६ ॥ हतप्रवीराणि बलानि दृष्ट्वा किरीटिना शत्रु भयावहेन । वित्रास्य सेनां ध्वजिनीपतीनां सिंहो मृगाणामिव यूथसंघान् ॥ ३७ ॥ विनेदतुस्तावति हर्षयुक्तौ गांडीव धन्वा च जनार्दनश्च । तदैन्द्र मस्त्रं विततं च घोर मसह्यमुद्वीक्ष्य युगान्तकल्पं॥ ३८ ॥ अथापयानं कुरवः स भीष्माः स द्रोण दुर्योधन बाल्हिकाश्च । चक्रुर्निशां सन्धिगतां समीक्ष्य विभावसोर्लोहितरागयुक्तां ॥ ३९ ॥ अवाप्य कीर्तिं च यशश्च लोके विजित्य शत्रूंश्च धनञ्जयोपि । ययौ नरेन्द्रैः सहसोदरैश्च समाप्त कर्मा शिबिरं निशायां ॥ ४० ॥ रणे रथानामयुतं निहत्य हता गजा सप्तशतार्जुनेन । प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे निपातिताः क्षुद्रकमालवाश्च ॥ ४१ ॥

अर्थ—तब श्रीकृष्ण घोड़ों की लगाम छोड़, वज्र तुल्य प्रभाव वाले, सूर्य तुल्य चमकते हुए क्षुरधार से युक्त सुनाभचक्र को हाथ में ले कर, रथ से कूद कर, अपने पाओं से पृथिवी को कंपाते हुए वेग से भीष्म की ओर दौड़े ॥ २६—२७ ॥ यह देख अर्जुन भी रथ से कूद कर शीघ्रता से श्रीकृष्ण के पीछे भागे, और बड़ी कठिनता से दसवें पद पर श्रीकृष्ण को जा रोका ॥ २८ ॥ कृष्ण को प्रणाम कर अर्जुन प्रसन्न हो कर बोले, क्रोध को मिटाइये, ऐसा करने से प्रतिज्ञानुसार करने का त्याग न होगा (श्रीकृष्ण ने अर्जुन और दुर्योधन को सहायता देते

समय एक ओर बिना शस्त्र अपने आप को रक्खा था) ॥२९॥ तब उस से अपनी प्रतिज्ञा और संकेत को सुन कर प्रसन्न मन हुए श्रीकृष्ण चक्रसमेत फिर रथ पर आचढ़े ॥ ३० ॥ शत्रुओं के मारने वाले कृष्ण ने फिर उन्हीं बागों को आ पकड़ा, और पाञ्चजन्य शंख को पकड़ कर उस की ध्वनि से दिशाओं को गुंजा दिया ॥ ३१ ॥ तब अर्जुनने अप्रमेय गांडीव धनुष को बल से खींचा, और अन्तरिक्ष में बड़ा भयंकर माहेन्द्र अस्त्र प्रकट किया ॥ ३२ ॥ उस उत्तम अस्त्र से वह महाधनुर्धारी विमल अग्नि के तुल्य बाण समूहों से कौरवों की सेनाओं को रोकने लगे॥ ३३॥ अर्जुन के धनुष से छूटे बाण शत्रुओं के हाथी घोड़े रथ और मनुष्यों के रथ झंडे धनुष भुजा और देहों को काट २ कर भूमि में धंसने लगे ॥ ३४ ॥ अर्जुन तीक्ष्ण धार वाले बाणों से सारी दिशाओं और प्रदिशाओं को ढक कर गांडीव के शब्द से उन के मनों को पीड़ित करने लगे ॥ ३५ ॥ उस घोरतम युद्ध के प्रवृत्त होने पर शंख दुन्दुभि और रथों की ध्वनियें गांडीव की ध्वनि से दब गईं॥ ३६ ॥शत्रुओं के लिये भय लाने वाले अर्जुन से सेनाओं के वीरों को मरते देख कर, और जैसे शेर मृगों के यूथ को भगाता है, इस प्रकार सेनापतियों की सेना को भगा कर और प्रलय तुल्य घोर असह्य ऐन्द्र अस्त्र को फैला हुआ देख कर गांडीवधारी अर्जुन और कृष्ण हर्ष से सिंहनाद करने लगे ॥ ३७—३८ ॥ इस के अनन्तर भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, बाल्हीक ने रात को अग्नि का लाल रंग ले सन्धि में आया देख सेना को लौटाया ॥ ३९ ॥ अर्जुन भी यश और कीर्ति को पा कर और शत्रुओं को जीत कर अपने भाइयों और राजाओं

समेत कैम्प को गया ॥ ४० ॥ आज अर्जुन ने रण में दसहजार रथी, सात सौ हाथी सवार, प्राच्य और सौवीरगण सारे और क्षुद्रकमालव युद्ध में गिराए ॥ ४१ ॥

अ० १९ (व० ६०-६१) चौथे दिन का युद्ध, भीष्मार्जुन युद्ध साम्यमनिपुत्रवध

मूल-व्युष्टां निशां भारत भारतानामनीकिनीनां प्रमुखे महात्मा। ययौ सपत्नान् प्रतिजातकोपो वृतः समग्रेण बलेन भीष्मः ॥ १ ॥ तं द्रोणदुर्योधनबाल्हिकाश्च तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ । जयद्रथश्चातिबलो बलौघैर्नृपास्तथाऽन्ये प्रययुः समन्तात् ॥ २ ॥ तं व्यालनानाविधगूढसारं ददर्श दूरात् कपिराजकेतुः । विनिर्ययौ केतुमता रथेन नरर्षभः श्वेतहयेन वीरः ॥ ३ ॥ द्रौणिर्भूरिश्रवाः शल्यश्चित्रसेनश्च मारिषः । पुत्रः सांयमनेश्चैव सौभद्रं पर्यवारयन् ॥ ४ ॥ संसक्तमतितेजोभिस्तमेकं ददृशुर्जनाः। पञ्चभिर्मनुजव्याघ्रैर्गजैः सिंहशिशुं यथा ॥ ५ ॥ नाभिलक्ष्यतया कश्चिन्न शौर्ये न पराक्रमे । बभूव सदृशः कार्ष्णेर्नास्त्रे नापि च लाघवे ॥ ६ ॥ स द्रौणिं त्रिषुणैकेन विध्वा शल्यं च पञ्चभिः । ध्वजं सांयमनेश्चैव सोऽष्टाभिश्चिच्छेद ततः ॥ ७ ॥ रुक्मदण्डां महाशक्तिं प्रेषितां सौमदत्तिना । शितेनोरगसंकाशां पत्रिणापजहार तां ॥ ८ ॥ शल्यस्य च महाघोरानस्यतः समरे शरान् । निवार्यार्जुनदायादो जघान चतुरो हयान् ॥ ९ ॥

अर्थ—हे भारत ! महात्मा भीष्म क्रोध से युक्त थे, वह सवेरा होते ही सेनापति के रूप में सारी सेना से युक्त हो कर शत्रु के विरुद्ध चढ़े ॥ १ ॥ उन के संग द्रोण, दुर्योधन, बाल्हिक,

दुर्मर्षण, चित्रसेन, महाबली जयद्रथ, और दूसरे राजे अपनी २ सेनाओं के साथ चारों ओर से चले ॥ २ ॥ उन के आज के इस व्यालनामी व्यूह को, जिस में सेना की नाना प्रकार से रक्षा का प्रबन्ध है। वीर अर्जुन दूर से देख कर, श्वेत घोड़ों से युक्त झंडे वाले रथ से निकला ॥ ३ ॥ अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन, और सांयमनि का पुत्र, इन्होंने अभिमन्यु को घेरा डाला ॥ ४ ॥ इन पांच अतितेजस्वी शूरवीरों के साथ उस अकेले को लोगों ने इस प्रकार जुटे हुए देखा, जैसे हाथियों के सामने शेर का बच्चा हो ॥ ५ ॥ पूरा निशाना मारने में, शौर्य में, पराक्रम में, अस्त्र में, और फुर्ती में कोई उस की बराबरी नहीं करसकता था ॥ ६ ॥ उस ने एक बाण से अश्वत्थामा को, और पांच से शल्य को बींध कर आठ से सांयमनि के झंडे को काट गिराया ॥ ७ ॥ सोमदत्त के पुत्र ने उस की ओर सोने की दण्डवाली सर्प तुल्य एक बड़ी शक्ति चलाई, जिस को उस ने तीक्ष्ण बाण से काट गिराया ॥ ८ ॥ और रण में बड़े वेग वाले बाण चलाते हुए शल्य को रोक कर उस के चारों घोड़ों को मार गिराया ॥ ९ ॥

मूल—ततस्त्रिगर्ता राजेन्द्र मद्राश्च सह केकयैः। पञ्चविंशति साहस्रास्तव पुत्रेण चोदिताः ॥ १० ॥ सहपुत्रं जिघांसन्तं परिवव्रुः किरीटिनं ॥ ११ ॥ तौ तु तत्र पितापुत्रौ परिक्षिप्तौ महारथौ। ददर्श राजन् पाञ्चाल्यः सेनापतिररिन्दम ॥ १२ ॥ स वारणरथौघानां सहस्रैर्बहुभिर्वृतः। ययौ तं मद्रकानीकं केकयांश्च परंतप ॥ १३ ॥ ततः समद्रकान् हत्वा दशैव दशभिः शरैः। पृष्ठ रक्षं जघानाशु भल्लेन कृतवर्मणः ॥ १४ ॥ दमनं चापि दायादं

पौरवस्य महात्मनः । जघान विमलाग्रेण नाराचेन परंतपः॥१५ ॥ ततः सांयमनेः पुत्रः पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदं । अविध्यत् त्रिंशता-बाणैर्दशभिश्चास्य सारथिं ॥ १६ ॥ सोऽतिविद्धो महेष्वासो नि-चकर्तास्य कार्मुकं । अश्वांश्चास्यावधीद् राजन्नुभौ तौ पार्ष्णि सारथी ॥ १७ ॥ स प्रगृह्य महाघोरं निस्त्रिंशवरमायसं । पदाति-स्तूर्ण मानच्र्छद् रथस्थं पुरुषर्षभः॥ १८ ॥ तस्य पाञ्चालदायादः प्रतीपमभिधावतः । त्वरन् सेनापतिः क्रुद्धो बिभेद गदया शिरः ॥ १९ ॥ तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महारथे । हाहाकारो महा नासीत् तव सैन्यस्य मारिष ॥ २० ॥

अर्थ—हे राजेन्द्र ! तब त्रिगर्त मद्र और केकय पचीस सहस्र योद्धाओं ने दुर्योधन की आज्ञा पाकर पुत्र समेत अर्जुन को जा घेरा ॥ १० ॥ सेनापति धृष्टद्युम्न ने उन दोनों पिता पुत्रों को घिरे हुए देखा ॥ १२ ॥ वह कई सहस्र हाथी और रथों के साथ मद्र और केकय योद्धाओं पर चढ़ आया ॥ १३ ॥ आते ही उस ने अपने दस बाणों से दस मद्र वीरों को मार कर, बड़ी फुर्ती करके भाले से कृतवर्मा के पृष्ठरक्षक को मार गिराया ॥ १४ ॥ और फिर पौरव के पुत्र दमन को निर्मल नोक वाले बाण से मार गिराया ॥ १५ ॥ अनन्तर सांयमनि के पुत्र ने रणबांकुरे धृष्टद्युम्न को तीस बाणों से और दस से उस के सारथि को विद्ध किया ॥ १६ ॥ अत्यन्त विद्ध हुए उस महा धनुर्धारी ने इस के धनुष को काट डाला, इस के घोड़ों को और इस के पृष्ठ-रक्षक और सारथि को मार डाला ॥ १७ ॥ तब सांयमनि पुत्र महाघोर फौलादी तलवार ले कर पैदल हो कर रथ पर बैठे (धृष्टद्युम्न) की ओर भागा ॥ १८ ॥ आगे से क्रुद्ध हुए सेना-

पति धृष्टद्युम्न ने शीघ्रता के साथ गदा से उस का सिर फोड़ दिया ॥ १९ ॥ उस महारथी महाधनुर्धारी राजपुत्र के मरने पर आप की सेना में हाहाकार मच गया ॥ २० ॥

अ० १६ (व० ६१-६२) भीम युद्ध

मूल—ततः सांयमनिः क्रुद्धो दृष्ट्वा निहतमात्मजं । अभिदुद्राव वेगेन पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदं ॥ १ ॥ तथैव पार्षतं शूरं शल्यः समितिशोभनः । आजघानोरसि क्रुद्धस्ततो युद्ध मवर्तत ॥ २ ॥ तत्राद्भुत मपश्याम पार्षतस्य पराक्रमं । न्यवारयत यस्तूर्णं शल्यं समितिशोभनं ॥ ३ ॥ नान्तरं दृश्यते तत्र तयोश्च रथिनोस्तदा । मुहूर्तमिव तद्युद्धं तयोः सममिवाभवत् ॥ ४ ॥ ततः शल्यो महाराज धृष्टद्युम्नस्य संयुगे । धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ५ ॥ अथैनं शरवर्षेण छादयामास संयुगे । गिरिं जलागमे यद्वत् जलदा जलवृष्टिभिः ॥ ६ ॥ अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो धृष्टद्युम्ने च पीडिते । अभिदुद्राव वेगेन मद्रराजरथं प्रति ॥ ७ ॥ ततो मद्राधिपरथं कार्ष्णिः प्राप्याति कोपनः। आर्तायनि ममेयात्मा विव्याध निशितैः शरैः ॥ ८ ॥ ततस्तु तावका राजन् परीप्सन्तोऽर्जुनिं रणे । मद्रराजरथं तूर्णं परिवार्यावतस्थिरे ॥ ९ ॥ दुर्योधनो विकर्णश्च दुःशासन विविंशती । दुर्मर्षणो दुःसहश्च चित्रसेनोऽथ दुर्मुखः ॥ १० ॥ सत्यव्रतश्च भद्रं ते पुरुमित्रश्च भारत । तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ११ ॥ द्रौपदेयाभिमन्युश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ । धार्तराष्ट्रान् दशरथान् दशैव प्रत्यवारयन् ॥ १२ ॥

अर्थ—अनन्तर सांयमनि अपने पुत्र को मरा देख, क्रुद्ध

हो, युद्ध दुर्मद धृष्टद्युम्न की ओर वेग से दौड़े ॥ १ ॥ वैसे ही रणबांकुरे शल्य ने भी क्रुद्ध हो धृष्टद्युम्न की छाती पर प्रहार किया, तब दोनों का युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ २ ॥ वहां हमने धृष्टद्युम्न का अद्भुत पराक्रम देखा, जिसने कि रणबांकुरे शल्य को झट रोक लिया ॥ ३ ॥ वहां दोनों रथियों में से कोई भी ठहरता नहीं दीखता था, इस प्रकार कुछ देर तक उन का युद्ध बराबरसा रहा ॥ ४ ॥ अनन्तर शल्य ने बुझे हुए एक तीक्ष्ण भाले से धृष्टद्युम्न के धनुष को काट गिराया ॥ ५ ॥ और बाणवर्षा से युद्ध में उस को छिपा दिया, जैसे वर्षा में मेघ जलवृष्टि से पर्वत को छिपाता है ॥ ६ ॥ धृष्टद्युम्न के पीड़ित होने पर क्रुद्ध हुए अभिमन्यु वेग से मद्रराज के रथ की ओर दौड़े ॥ ७ ॥ मद्रराज के रथ के निकट जा कर क्रोध से भरे हुए अभिमन्यु ने तीक्ष्ण बाणों से उस को विद्ध किया ॥ ८ ॥ तब आप के पक्ष वाले दुर्योधन, विकर्ण, दुःशासन, विविंशति, दुर्मर्षण, दुःसह, चित्रसेन, दुर्मुख, सत्यव्रत और पुरुमित्र, ये अभिमन्यु को रण में वश करना चाहते हुए शल्य के चारों ओर आ खड़े हुए। आप के इन दस रथियों के सामने उधर से भी क्रुद्ध हुए भीमसेन, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पांचों पुत्र, अभिमन्यु, और नकुल सहदेव यह दस ही सामने आ जमे ॥ ९—१२ ॥

मूल—अथ दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः । विधित्सुः कलहस्यान्तं गदां जग्राह पाण्डवः ॥ १३ ॥ दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो मागधं समचोदयत ।अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनां।१४। गजानीकेन सहितस्तेन राजा सुयोधनः । मागधं पुरतः कृत्वा भी-

मसेनं समभ्ययात् ॥ १५ ॥ आपतन्तं च तं दृष्ट्वा गजानीकं वृकोदरः । गदापाणिरवारोहद् रथात् सिंह इवोन्नदन् ॥ १६ ॥ अद्रिसारमयीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदां । अभ्यधावद् गजानीकं व्यादितास्य इवान्तकः ॥ १७ ॥ स गजान् गदयानिघ्नन् व्यचरत् समरे बली । भीमसेनो महाबाहुः सवज्र इव वासवः ॥ १८ ॥ ततस्तु द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः । नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ १९ ॥ पृष्ठं भीमस्य रक्षन्तः शरवर्षेण वारणान् । अभ्यवर्षन्त धावन्तो मेघा इव गिरीन् यथा ॥ २० ॥ मागधोऽथ महीपालो गजमैरावणोपमं । प्रेषयामास समरे सौभद्रस्य रथं प्रति ॥ २१ ॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य मागधस्य महागजं । जघानैकेषुणा वीरः सौभद्रः परवीरहा ॥ २२ ॥ तस्यावार्जितनागस्य कार्ष्णिः पर पुरञ्जयः । राज्ञो रजतपुंखेन भल्लेनापाहरच्छिरः ॥२३॥ विगाह्य तद्गजानीकं भीमसेनोपि पाण्डवः । व्यचरत् समरे मृद्नन् गजानिन्द्रो गिरीनिव ॥ २४ ॥ एकप्रहारनिहता भीमसेनेन दन्तिनः । अपश्याम रणे तस्मिन् गिरीन् वज्र हतानिव ॥ २५ ॥ तं हि वीरं महेष्वासं सौभद्रप्रमुखा रथाः । पर्यरक्षन्त युध्यन्तं वज्रायुध मिवामराः ॥ २६ ॥ शोणिताक्तां गदां बिभ्रदुक्षितां गजशोणितैः । कृतान्त इव रौद्रात्मा भीमसेनो व्यदृश्यत ॥२७॥ गदया वध्यमानास्ते मार्गणैश्च समन्ततः। स्वान्यनीकानि मृद्नन्तः प्राद्रवन् कुञ्जरास्तव ॥ २८ ॥

अर्थ—महाबली भीम ने दुर्योधन को देख कर कलह का अन्त करने की इच्छा से गदा ग्रहण की ॥ १३ ॥ उधर दुर्योधन ने क्रुद्ध हो कर मागधों की दस सहस्र हाथी सेना को

आज्ञा दी । और उस गजसेना के सहित मगधराज के आगे दुर्योधन स्वयं भीमसेन के सम्मुख गए ॥ १५ ॥ गजसेना को आते देख, भीमसेन हाथ में गदा ले कर सिंह की भांति गर्जता हुआ रथ से उतरा ॥ १६ ॥ अत्यन्त कठोर और भारी लोहमयी गदा ले कर भीम, मुख खोले यम की भांति गजसेना पर टूट पड़े ॥ १७ ॥ महाबाहु भीम गदा से हाथियों का संहार करते हुए वज्र हाथ में लिये इन्द्र की भांति घूमने लगे ॥ १८ ॥ उस समय द्रौपदी के पुत्र, महारथ अभिमन्यु, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न यह सारे भीम के पृष्ठरक्षक बन कर घूम २ कर पर्वतों पर मेघों की भांति हाथियों पर बाणों की वर्षा करने लगे ॥ १९—२० ॥ मगधराज ने ऐरावत के तुल्य एक महा गज को अभिमन्यु के रथ की ओर चलाया ॥ २१ ॥ मगधराज के महागज को आता देख कर शत्रुवीरों के मारने वाले अभिमन्यु ने एक ही बाण से उस को मार डाला ॥२२॥हाथी के गिर जाने पर रुपहरी नोक वाले भाले से राजा का सिर काट गिराया ॥ २३ ॥ उधर भीमसेन भी गजसेना के अन्दर घुस कर पर्वतों को इन्द्र की भांति रण में हाथियों को मारते हुए घूमने लगे॥२४॥ भीमसेन के एक ही प्रहार से मारे गए हाथी वज्र से तोड़े गए पर्वतों की भांति हमने रण में गिरते देखे ॥ २५ ॥ युद्ध करते हुए उस महा धनुर्धारी की चारों ओर से अभिमन्यु आदि रथी रक्षा करने लगे, जैसे इन्द्र की देवता ॥ २६ ॥ हाथियों के लहू से भीगी हुई लहू भरी गदा को धारे रुद्रमूर्ति भीमसेन यम की भांति दीखने लगे ॥ २७ ॥ गदा से और चारों

ओर के बाणों से मारे जाते हुए हाथी अपनी ही सेना को मर्दन करते हुए भाग निकले ॥ ५८ ॥

अ० १७ (व० ६३-६४) भीम. घटोत्कच के युद्ध

[चौथे दिन का युद्ध समाप्त]

मूल—हते तस्मिन् गजानीके पुत्रो दुर्योधनस्तव । भीमसेनं घ्नतेत्येवं सर्वसैन्यान्यचोदयत् ॥ १ ॥ ततः सर्वाण्यनीकानि तव पुत्रस्य शासनात् । अभ्यद्रवन्त भीमसेनं नदन्तं भैरवान् रवान् ॥ २ ॥ तस्मिन् सुतुमुले घोरे काले परमदारुणे । भ्रातरश्चैव पुत्राश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ३ ॥ द्रौपदेयाभिमन्युश्च शिखण्डी चापराजितः । न प्राजहन् भीमसेनं भये जाते महाबलं ॥ ४ ॥ ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदां । अवधीत् तावकान् योधान् दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ५ ॥ बलानि समममर्दाशु नड्वलानीव कुञ्जरः । सूदूनन् रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः ॥ ६ ॥ सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातिनः । गदया व्यधमत् सर्वान् वातो वृक्षानिवौजसा ॥ ७ ॥ सापि मज्जावसामांसैः प्रदिग्धा रुधिरेण च । अदृश्यत महारौद्रा गदा नागाश्वपातिनी॥ ८ ॥ तत्र तत्र हतैश्चापि मनुष्यगजवाजिभिः । रणांगणं समभवन्मृत्यो रावासरान्निभं॥ ९ ॥ यतो यतः प्रेक्षतेस्म गदामुद्यम्य पाण्डवः । तेन तेन स्म दीर्यन्ते सर्व सैन्यानि भारत ॥ १० ॥ प्रसमानमनीकानि व्यादितास्य मिवान्तकं । दृष्ट्वा वृकोदरं भीष्मः सहसैव समभ्ययात् ॥ ११ ॥ तस्मिन् क्षणे सात्याकिः सत्यसन्धो शिनिप्रवीरोऽभ्य पतत् पितामहं । निघ्नन्नमित्रान् धनुषा दृढेन संकम्पयंस्तव पुत्रस्य सैन्यं ॥ १२ ॥ अन्वागतं वृष्णिवरं निशम्य तं शत्रुमध्ये परिवर्तमानं । प्रद्रावयन्तं कुरुपुं-

गवांश्च पुनः पुनश्च प्रणदन्त माजौ ॥ १३ ॥ योधास्त्वदीयाः शरवर्षैरवर्षन् मेघा यथा भूधरमम्बुवेगैः । तथापि तं धारयितुं न शेकुर्मध्यन्दिने सूर्य मिवातपन्तं ॥ १४ ॥ न तत्र कश्चिन्न विषण्ण आसीद्दत राजन् सोमदत्तस्य पुत्रात् । सवै समादाय धनुर्महात्मा प्रत्युद्ययौ सात्यकिं योद्धु मिच्छन् ॥ १५ ॥

अर्थ—उस गजसेना के मारा जाने पर आप के पुत्र दुर्योधन ने भीम को मारने के लिये सारी सेना को प्रेरा ॥ १ ॥ तब आप के पुत्र की आज्ञा पाकर सारी सेनाएं महा घोर गर्जते हुए भीम की ओर दौड़ीं ॥ २ ॥ उस परम दारुण घोर काल में (भीम की मृत्यु का) बड़ा भय सामने आजाने के कारण भाई, पुत्र, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पुत्र, अभिमन्यु, और शिखंडी ये सब महा बली भीम का त्याग नहीं करते थे ॥ ३—४ ॥ अनन्तर लोहमयी भारी और लंबी गदा ले कर दण्डपाणि यम की भांति भीम आप की सेना में दौड़ने लगे ॥ ५ ॥ वह सैनिकों को झट पट इस तरह गिराने लगे, जैसे हाथी नड़ों के वन को गिराता है। रथों से रथियों, हाथियों से हाथी सवारों, घोड़ों से घुड़सवारों और भूमि से पैदलों को गदा से इस प्रकार गिराने लगे, जैसे आंधी वेग से वृक्षों को गिराती है ॥ ६—७ ॥ हाथी घोड़ों को गिराती हुई उन की गदा उस समय मांस मज्जा चर्बी रुधिर से युक्त हुई महारौद्र दीखने लगी ॥ ८ ॥ इधर उधर मर कर पड़े हुए मनुष्य हाथी घोड़ों से वह रणभूमि यम के घर तुल्य होगई ॥ ९ ॥ गदा को उठा कर भीम जिधर २ देखते थे, उधर २ ही हे भारत सारी सेना में भांज पड़जाती ॥ १० ॥ भीम को मुंह खोल कर सेनाओं को भक्षण करते हुए यम समान देख कर भीष्म

झट पट उधर आए ॥ ११ ॥ यह देख, यादववीर सात्यकि धनुष को दृढ खींच कर शत्रुओं को मारता हुआ आप की सेना में हलचल डालता हुआ भीष्म की ओर बढ़ा ॥ १२ ॥ यादववर को आपहुंचा शत्रुओं के मध्य में घूमता हुआ, कौरवों को नसाता हुआ, और बार २ रण में गर्जता हुआ देख कर, आप के योधे उस पर ऐसी बाण वर्षा करने लगे, जैसे मेघ पर्वतों पर मूसलाधार बरसते हैं। तौ भी दोपहर दिन के प्रचण्ड सूर्य की भांति उस तेजस्वी को रोक न सके ॥ १३-१४ ॥ वहां कोई ऐसा पुरुष नहीं था, जो ढीला न पड़गया हो, सिवाय एक सोमदत्त के पुत्र (भूरिश्रवा) के, वह मनस्वी धनुष ले कर सात्यकि से युद्ध करने के निमित्त सामने आ खड़ा हुआ ॥ १५ ॥

मूल—नन्दकस्तव पुत्रस्तु भीमसेनं महाबलं। विव्याध विशिखैः षड्भिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥ १६ ॥ दुर्योधनश्च समरे भीमसेनं महारथं। आजघानोरसि क्रुद्धो मार्गणैर्नवभिःशितैः॥१७॥ ततो भीमो महाबाहुः स्वरथं सुमहाबलः। आरुरोह रथश्रेष्ठं विशोकं चेदमब्रवीत ॥ १८ ॥ एते महारथाः शूरा धार्तराष्ट्राः समागताः। मामेव भृश संक्रुद्धा हन्तुमभ्युद्यता युधि ॥ १९ ॥ एतानद्य हनिष्यामि पश्यतस्ते न संशयः। तस्मान्ममाश्वान् संग्रामे यत्तः संयच्छ सारथे ॥ २० ॥ एवमुक्त्वा ततः पार्थस्तवपुत्रं विशांपते। विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः शरैः कनकभूषणैः ॥ २१ ॥ समादधत सुसंक्रुद्धः क्षुरप्रं लोमवाहिनं। तेन चिच्छेद नृपतेर्भीमः कार्मुक मुत्तमं ॥ २२ ॥ सोऽपविध्य धनुश्छिन्नं पुत्रस्ते क्रोधमूर्छितः । अन्यत कार्मुकमादत्त सत्वरं वेगवत्तरं ॥ २३ ॥ तेनाजघान संक्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे। स गाढविद्धो व्यथितो मूर्छामभि जगाम ह।२४।

अर्थ—आप के पुत्र नन्दक ने साण पर लगाए कंकपत्र वाले छः बाणों से महाबली भीम को विद्ध किया ॥ १६ ॥ दुर्योधन ने भी क्रुद्ध हो कर नौ तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन की छाती पर प्रहार किया ॥ १७ ॥ तब महाबली भीम अपने रथ पर चढ़ गए और (अपने सारथि) विशोक से बोले ॥ १८ ॥ ये सब धृतराष्ट्र के पुत्र महाबली सूरमे, अत्यन्त क्रुद्ध हो कर युद्ध में मेरे वध के निमित्त उद्यत हुए हैं ॥ १९ ॥ इन को आज मैं तेरे सामने मारूंगा, इस में संशय नहीं, इस से हे सारथि ! इस संग्राम में मेरे घोड़ों को सावधान होकर चलाओ ॥ २० ॥इतना कह कर भीम सुवर्णभूषित तीक्ष्ण बाणों से आप के पुत्र को विद्ध करने लगे ॥ २१ ॥ भीमने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर क्षुरप्र बाण को जोड़ा, और उस से दुर्योधन के धनुष को काट गिराया ॥ २२ ॥ तब क्रोध से मूर्छित हुए आप के पुत्र ने कटे धनुष को छोड़ झट बड़े वेग वाला और धनुष लिया ॥ २३ ॥ और क्रुद्ध हो कर भीम की छाती के मध्य में मारा, भीम उस से गहरा बिद्ध हुआ पीड़ित हो मूर्छा को प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥

मूल—तं दृष्ट्वा व्यथितं भीम मभिमन्यु पुरोगमाः । नामृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ २५ ॥ ततस्तु तुमलां वृष्टिं शस्त्राणां तिग्मतेजसां । पातयामासुरव्यग्राः पुत्रस्य तव मूर्धनि ॥ २६ ॥ प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः । दुर्योधनं त्रिभिर्विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ २७ ॥ शल्यं च पञ्चविंशत्या शरैर्विव्याध पाण्डवः । प्रत्यद्युस्ततो भीमं तवपुत्राश्चतुर्दश ॥ २८ ॥ सेनापतिः सुषेणश्च जलसन्धः सुलोचनः । उग्रो भीमरथो भीमो वीरबाहुरलोलुपः ॥ २९ ॥ दुर्मुखो दुष्प्रधर्षश्च विवि-

त्सुर्विकटः समः ॥ ३० ॥ विसृजन्तो बहून् बाणान् क्रोधसंरक्त लोचनाः । भीमसेन मभिद्रुत्य विव्यधुः सहिता भृशम् ॥ ३१ ॥ पुत्रांस्तु तव संप्रेक्ष्य भीमसेनो महाबलः । अभिपत्य महाबाहुर्वृ-त्यानिव वेगितः ॥ ३२ ॥ सेनापतेः क्षुरप्रेण शिरश्चिच्छेद पा-ण्डवः । जलसन्धं विनिर्भिद्य सोऽनयद् यमसादनं॥ ३३ ॥ सुषेणं च ततो हत्वा प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ३४ ॥ उग्रस्य स शिरस्त्राणं शिरश्चन्द्रोपमं भुवि । पातयामास भल्लेन कुण्डलाभ्यां विभूषितं ॥ ३५ ॥ वीरबाहुं च सप्तत्या साश्वकेतुं ससारथिं । निनाय समरे वीरः परलोकाय पाण्डवः ॥ ३६ ॥ भीम भीमरथौ चोभौ भीम-सेनो हसन्निव । पुत्रौ ते दुर्मदौ राजन्ननयद् यमसादनं ॥ ३७ ॥ ततः सुलोचनं भीमः क्षुरप्रेण महामृधे। मिषतां सर्व सैन्याना मन-यद् यमसादनं ॥ ३८ ॥ पुत्रास्तु तव तं दृष्ट्वा भीमसेन पराक्रमं । शेषा विप्रद्रुता राजन् वध्यमाना महात्मना ॥ ३९ ॥ भगदत्तः प्रभिन्नेन कुञ्जरेण विशांपते । अभ्ययात सहसा तत्र यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ ४० ॥ आपतन्नेव च रणे भीमसेनं शिलीमुखैः । अदृश्यं समरे चक्रे जीमूत इव भास्करं ॥ ४१ ॥ ततस्तु नृपतिः क्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे । आजघान महाराज शरेणानतपर्वणा ॥ ४२ ॥ सोऽतिविद्धो महेष्वास स्तेन राज्ञा महारथः । मूर्छयाऽ-भिपरीतात्मा ध्वजयष्टिं समाश्रयत ॥ ४३ ॥ ततो घटोत्कचो राजन् प्रेक्ष्य भीमं तथागतं । अदृश्यत निमेषार्धाद्घोररूपं समा-स्थितः ॥ ४४ ॥ स गजं भगदत्तं तु हन्तुकामः परंतपः ॥ ४५ ॥ श्रुत्वा भीष्मोऽब्रवीद् द्रोणं राजानं च सुयोधनं । भगदत्तो महे-ष्वासः कृच्छ्रे च परिवर्तते ॥ ४६ ॥ भक्तश्च कुलपुत्रश्च, शूरश्च

पृतनापतिः । युक्तं तस्य परित्राणं कर्तुमस्माभिरच्युत ॥ ४७ ॥ भीष्मस्य तद्वचः श्रुत्वा सर्व एव महारथाः । उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र सोऽभवत् ॥ ४८ ॥ तान् प्रयातान् समालोक्य युधिष्ठिर पुरोगमाः । पाञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं पृष्ठतोऽनुययुः परान् ॥ ४९ ॥ भीष्मः शान्तनवो भूयो भारद्वाज मभाषत । वुध्यता मवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह॥ ५० ॥

अर्थ—भीम को पीड़ित देख पाण्डवों के महारथ अभिमन्यु आदि क्रोध से भड़क उठे ॥ २५ ॥ और सावधान हो कर आप के पुत्र के सिर पर तीव्र तेज वाले शस्त्रों की तुमुल वृष्टि करने लगे ॥ २६ ॥ इतने में होश संभाल कर महाबली भीम ने आठ बाणों से दुर्योधन को विद्ध किया ॥२७॥ और शल्य को पचीस बाणों से विद्ध किया, तब आप के चौदह पुत्र सेनापति, सुषेण, जलसन्ध, सुलोचन, उग्र, भीम, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, दुर्मुख, दुष्प्रधर्ष, विविंत्सु, विकट, सम, यह सब निकले और क्रोध से रक्त नेत्रों वाले सब मिल कर भीमसेन की ओर दौड़े और उस को बाणों से बींधने लगे ॥ २८—३१ ॥ आप के पुत्रों को देख कर महाबली भीमसेन गरुड़ की भांति वेग से उन पर झपटे ॥ ३२ ॥ भीम ने क्षुरप्रसे सेनापति का सिर काट गिराया, और जलसन्ध को मार कर यम के घर पहुंचाया ॥ ३३ ॥ फिर सुषेण को मार कर मृत्यु के घर भेजा ॥ ३४ ॥ फिर कुण्डलों से भूषित उग्र के सिर को टोप समेत भाले से भूमि पर गिराया ॥ ३५ ॥ फिर सत्तर बाणों से घोड़े के झुंडे और सारथि समेत वीरबाहु को परलोक के लिये भेजा ॥ ३६ ॥ फिर मानो हंसते हुए भीमसेन ने आप के दोनों पुत्रों भीम और भीमरथ को यम

के घर पहुंचाया ॥ ३७ ॥ तब उस महासंग्राम में उसने सब के सामने सुलोचन को यम के घर पहुंचाया ॥ ३८ ॥ आप के पुत्र भीमसेन के इस पराक्रम को देख कर, जो बच रहे थे, वह भीम से पीड़ित किये हुए भाग निकले ॥ ३९ ॥ तब राजा भगदत्त मत्त हाथी पर चढ़ कर झट वहां पहुंचे, जहां भीम खड़े थ ॥ ४० ॥ और आते ही भीम को बाणों से इस तरह ढक दिया, जैसे मेघ सूर्य को ढांप लेता है ॥ ४१ ॥ फिर उस ने क्रुद्ध होकर तीव्र नोक वाला एक बाण भीम की छाती के मध्य में मारा ॥ ४२ ॥ उस से अत्यन्त बिद्ध हुआ वह महा धनुर्धारी मूर्छित हो झंडे के सहारे ठहर गया ॥ ४३ ॥ भीम को इस अवस्था में देख घटोत्कच ने हाथी समेत भगदत्त को मारने के लिए तत्क्षण बड़ा रुद्ररूप धारण किया॥४४–४५॥ यह सुन कर भीष्म द्रोणाचार्य से और राजा दुर्योधन से बोले, धनुर्धारी भगदत्त बड़ी कठिनाई में पड़े हैं ॥ ४६ ॥ भक्त, कुलीन, शूरवीर सेनापति है, उस का बचाव करना हमें योग्य है ॥ ४७ ॥ भीष्म के बचन को सुन कर सभी महारथी बड़े वेग के साथ वहां पहुंचे, जहां भगदत्त था ॥ ४८ ॥ उन को आते देख युधिष्ठिर पाण्डव और पांचाल भी (भीम और घटोत्कच की सहायता के लिए) उन के पीछे ही गए ॥ ४९ ॥ उस समय भीष्म फिर द्रोणाचार्य से बोले । आज समाप्ति की घोषणा देदो, कल फिर शत्रुओं से लड़ेंगे ॥ ५० ॥

अ० १८ (व० ६९-७३) अर्जुन और अभिमन्यु के युद्ध

मूल—व्युषितायां तु शर्वर्यां मुदिते च दिवाकरे । उभे सेने

महाराज युद्धायैव समीयतुः ॥ १ ॥ अरक्षन् मकरव्यूहं भीष्मो राजन् समन्ततः । तथैव पाण्डवा राजन्नरक्षन् व्यूह मात्मनः ॥ २ ॥ अकरोत तुमुलं युद्धं भीष्मः शान्तनवस्तदा । भीमसेन भयादिच्छन् पुत्रांस्तारयितुं तव ॥ ३ ॥ पूर्वाह्ने तन्महारौद्रं राज्ञां युद्ध मवर्तत । कुरूणां पाण्डवानां च मुख्य शूर विनाशनं ॥ ४ ॥ कुण्डलोष्णीष धारीणि जातरूपोज्वलानि च । पतितानिस्म दृश्यन्ते शिरांसि भरतर्षभ ॥ ५ ॥ द्रौणिर्गांडीवधन्वानं भीमधन्वा महारथः । अविध्यदिषुभिः षड्भिर्दृढहस्तः स्तनान्तरे ॥६॥ कार्मुकं तस्य चिच्छेद फाल्गुनः परवीरहा । अविध्यच्च भृशं तीक्ष्णैः पत्रिभिः शत्रुकर्शनः ॥ ७ ॥ सोऽन्यत् कार्मुक मादाय वेगवान् क्रोध मूर्छितः । अविध्यत् फाल्गुनं राजन्नवत्या निशितैः शरैः॥८॥ गांडीवधन्वा संक्रुद्धः समादत्त शिलीमुखान् । तैस्तूर्णं समरे विध्यद् द्रौणिं बलवतां वरः ॥ ९ ॥ न विव्यथे च निर्भिन्नो द्रौणिर्गांडीव धन्वना । तस्थौ स समरे राजं स्त्रातु मिच्छन् महाव्रतं॥१०॥ तस्य तत् सुमहत् कर्म शशंसुः कुरुसत्तमाः । यत्कृष्णाभ्यां समेताभ्या मभ्यापतत संयुगे ॥ ११ ॥ एषैष आचार्य सुतो द्रोणस्यापि प्रियः सुतः । ब्राह्मणश्च विशेषेण माननीयो ममेति च ॥ १२ ॥ समास्थाय मतिं वीरो बीभत्सुः शत्रुतापनः । कृपांचक्रे रथश्रेष्ठो भारद्वाजसुतं प्रति ॥ १३ ॥ द्रौणिं त्यक्त्वा ततो युद्धे कौन्तेयः श्वेत वाहनः । युयुधे तावकान्निघ्नंस्त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १४ ॥

अर्थ--हे महाराज ! जब रात बीती, सूर्य उदय हुआ, फिर दोनों सेनाएं युद्ध के लिये आ जुटीं ॥ १ ॥ हे राजन् ! भीष्म चारों ओर मकरव्यूह की रक्षा करने लगे, और पाण्डव अपने श्येनव्यूह की रक्षा करने लगे ॥ २ ॥ भीमसेन के भय से तेरे

पुत्रों को बचाने के निमित्त भीष्म तुमुल युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥ बड़े २ शूरवीरों का नाशकारी, कुरु पाण्डव राजाओं का वह महारौद्र युद्ध सवेरे ही प्रवृत्त हुआ ॥ ४ ॥ हे भरतवर (मुहूर्त में ही) वहां कुण्डल और पगड़ी के धारने वाले, चांदी की भांति उज्ज्वल सिर, गिरे हुए दीखने लगे ॥ ५ ॥ आज भयंकर धनुष वाले दृढहस्त महारथी अश्वत्थामा अर्जुन के सामने हुए और छः बाण अर्जुन की छाती पर प्रहार किये ॥६॥ शत्रुवीरों के मारने वाले अर्जुन ने उस के धनुष को काट दिया, और तीव्र बाणों से उस को अत्यन्त विद्ध किया ॥ ७ ॥ क्रोध से मूर्छित हुए अश्वत्थामा ने झट पट एक और धनुष लिया, और नव्वे तीव्र बाणों से अर्जुन को विद्ध किया ॥ ८ ॥ बलिवर अर्जुन ने भी क्रुद्ध हो कर अपने बाणों से अश्वत्थामा को विद्ध किया॥ ९ ॥ पर अर्जुन के प्रहारों से अश्वत्थामा विचलित न हुए, वह युद्ध में भीष्म की रक्षा करने के लिये डटे रहे ॥ १० ॥ कौरव उस के इस कर्म की बड़ी प्रशंसा करने लगे, क्योंकि वह संग्राम में मिले हुए कृष्ण अर्जुन पर आक्रमण करता रहा ॥ ११ ॥ यह मेरा आचार्य पुत्र है, द्रोण का भी प्यारा पुत्र है, और ब्राह्मण है इस लिये मेरा विशेषतया माननीय है, यह सोच शत्रुतापी वीर अर्जुन ने गुरु पुत्र पर कृपा की ॥ १२—१३ ॥ वह पराक्रमी रण में अश्वत्थामा को त्याग कर झट पट दूसरे योधाओं के साथ जुट कर युद्ध करते रहे ॥ १४ ॥

मूल-चिच्छेद चित्रसेनस्य चित्रं कार्मुकमार्जुनिः । भित्त्वा चास्य तनुत्राणं शरेणोरस्यताडयत् ॥ १५ ॥ ततस्ते तावका

वीरा राजपुत्रा महारथाः । अमर्षस्य युधि संरब्धा विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ १६ ॥ तांश्च सर्वान् शरैस्तीक्ष्णैरेक एव परमास्त्रवित् । अत्यरोचत सौभद्रस्तव सैन्यानि नाशयन् ॥ १७ ॥ तत्तस्य चरितं दृष्ट्वा पौत्रस्तव विशांपते । लक्ष्मणोऽभ्यपतत् तूर्णं सात्वतीपुत्र माहवे ॥ १८ ॥ अभिमन्युस्तु संक्रुद्धो लक्ष्मणं शुभलक्षणं । विव्याध निशितैः षड्भिः सारथिं च त्रिभि शरैः ॥ १९ ॥ तथैव लक्ष्मणो राजन् सौभद्रं निशितैः शरैः । अविध्यत महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २० ॥ तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सारथिं च महाबलः । अभ्यद्रवत सौभद्रो लक्ष्मणं निशितैः शरैः ॥ २१ ॥ हताश्वे तु रथे तिष्ठन् लक्ष्मणः परवीरहा । शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धः सौभद्रस्य रथं प्रति ॥ २२ ॥ तामापतन्तीं सहसा घोररूपां दुरासदां । अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भुजगोपमां ॥ २३ ॥ ततः स्वरथ मारोप्य लक्ष्मणं गौतमस्तदा । आपोवाह रथेनाजौ सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ २४ ॥ ततः समाकुले तस्मिन् वर्तमाने महाभये। अभ्यद्रवन् जिघांसन्तः परस्परं वधैषिणः॥२५॥ तावकाश्च महेष्वासाः पाण्डवाश्च महारथाः। जुह्वन्तः समरे प्राणान्निजघ्नु रितरेतरं॥ २६ ॥

अर्थ—अभिमन्यु ने चित्रसेन के अद्भुत धनुष को काट दिया, और उस के कवच को बाण से फोड़ कर उस की छाती पर बाण मारा ॥ १५ ॥ अनन्तर आप की ओर के महारथ वीर राजपुत्र आवेश में आए हुए मिल कर तीक्ष्ण बाणों से उस को बींधने लगे ॥ १६ ॥ अस्त्रविद्या में कुशल अभिमन्यु अकेले ही अपने तीक्ष्ण बाणों से उन सब को रोकते हुए और सेना का

संहार करते हुए रणभूमि में अत्यन्त शोभा पाने लगे ॥ १७ ॥ हे राजन् ! अभिमन्यु के इस काम को देख कर तुम्हारा पोता लक्ष्मण झट पट अभिमन्यु के सम्मुख आया ॥ १८ ॥ अभिमन्यु ने क्रुद्ध हो कर छः बाणों से लक्ष्मण को और तीन बाणों से उस के सारथि को विद्ध किया ॥ १९ ॥ लक्ष्मण भी अपने तीक्ष्ण बाणों से अभिमन्यु को बींधने लगे, हे महाराज यह बड़ा अद्भुत युद्ध हुआ ॥ २० ॥ महाबली अभिमन्यु अपने तीक्ष्ण बाणों से उस के चारों घोड़ों को और सारथि को मारकर उस की ओर बढ़े ॥२१॥ शत्रुवीरों के मारने वाले अभिमन्यु ने घोड़ों से रहित रथ पर खड़े हो क्रुद्ध हो कर अभिमन्यु के रथ की ओर शक्तिबाण चलाया ॥ २२ ॥ अभिमन्यु ने उस घोररूप दुर्धष शक्ति को सामने आता देख कर तीक्ष्ण बाणों से उसे काट गिराया ॥ २३ ॥ उसी समय कृपाचार्य लक्ष्मण को अपने रथ पर चढ़ा कर सारी सेना के देखते ही वहां से निकाल ले गए॥२४॥अनन्तर उस महाभयंकर तुमुल युद्ध में सब एक दूसरे को मारने की इच्छा से इधर उधर दौड़ने लगे ॥ २५ ॥ और आप के योधे और पाण्डवों के योधे रण में प्राणों को होमते हुए एक दूसरे को मारने लगे ॥ २६ ॥

अ०१९ (व०७४) सात्यकि और उस के पुत्रों का भूरिश्रवा से युद्ध

मूल–अथ राजन् महाबाहुः सात्यकिर्युद्ध दुर्मदः । प्रामुञ्चद पुंखसंयुक्तान् शरानाशीविषोपमान् ॥ १ ॥ तस्य विक्षिपतश्चापं शरानन्यांश्च मुञ्चतः । ददृशे रूप मत्यर्थं मेघस्यैव प्रवर्षतः॥२॥ तमुदीर्यन्त मालोक्य राजा दुर्योधनस्ततः । रथानामयुतं तस्य

प्रेषयामास भारत ॥ ३ ॥ तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् सात्यकिः सत्यविक्रमः । जघान परमेष्वासो दिव्येनास्त्रेण वीर्यवान् ॥ ४ ॥ स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीत शरासनः । आससाद ततो वीरो भूरिश्रवस माहवे ॥ ५ ॥ स हि संदृश्य सेनां ते युयुधानेन पातितां । अभ्यधावत संक्रुद्धः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ ६ ॥ सृष्ट्वान् वज्र संकाशान् शरानाशीविषोपमान् ॥७॥ शरांस्तान् मृत्यु संस्पर्शान् सात्यकेश्च पदानुगाः । न विषेहुस्तदा राजन् दुद्रुवुस्ते समन्ततः ॥ ८ ॥ तं दृष्ट्वा युयुधानस्य सुता दश महाबलाः। ऊचुः सर्वे सुसंरब्धा यूपकेतुं महारणं ॥ ९ ॥ भो भो कौरवदायाद्य सहास्माभिर्महाबल । एहि युध्यस्व संग्रामे समस्तैः पृथगेव वा ॥ १० ॥ अस्मान् वा त्वं पराजित्य यशः प्राप्नु हि संयुगे । वयं वा त्वां पराजित्य प्रीतिं धास्यामो पितुः ॥ ११ ॥ एवमुक्तस्तदा शूरैस्तानुवाच महाबलः । युध्यध्वं सहिता यत्ता निहनिष्यामि वो रणे ॥ १२ ॥ सोऽपराह्णे महाराज संग्रामस्तुमुलोऽभवत । एकस्य च बहूनां च समेतानां रणाजिरे ॥ १३ ॥ तमेकं रथिनां श्रेष्ठं शरैस्ते समवाकिरन् । प्रावृषीव यथा मेरुं सिषिचुर्जलदा नृप ॥ १४ ॥ तैस्तु मुक्तान् शरान् घोरान् यमदण्डाशनिप्रभान् । असंप्राप्तानसम्भ्रान्तश्चिच्छेदाशु महारथः ॥ १५ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम सौमदत्तेः पराक्रमं । यदेको बहुभिर्युद्धे समसज्जदभीतवत ॥ १६ ॥ विसृज्य शरवृष्टिं तां दश राजन् महारथाः । परिवार्य महाबाहुं निहन्तु मुपचक्रमुः ॥ १७ ॥ सौमदत्तिस्ततः क्रुद्धस्तेषां चापानि भारत । चिच्छेद समरे राजन् युध्यमानो महारथैः ॥१८॥ अथैषां छिन्नधनुषां शरैः सन्नतपर्वभिः । चिच्छेद समरे राजन्

शिरांसि भरतर्षभ ॥ १९ ॥ तान् दृष्ट्वा निहतान् वीरो रणे पुत्रान् महाबलान्। वार्ष्णेयो विनदन् राजन् भूरिश्रवसमभ्ययात् ॥२०॥ तावन्योन्यं हि समरे निहत्य रथवाजिनः । विरथावभि वल्गन्तौ समेयातां महारथौ ॥ २१ ॥ प्रगृहीतमहाखड्गौ तौ चर्मवर धारिणौ । शुशुभाते नरव्याघ्रौ युद्धाय समवस्थितौ ॥ २२ ॥ ततः सात्यकि मभ्येत्य निस्त्रिंशवरधारिणं । भीमसेनस्त्वरन् राजन् रथ मारोपयत् तदा ॥ २३ ॥ तवापि तनयो राजन् भूरिश्रव समाहवे । आरोपयद्रथं तूर्णं पश्यतां सर्वधान्विनां ॥ २४ ॥ लोहि-तायति चादित्ये त्वरमाणो धनञ्जयः । पञ्चविंशतिसाहस्रान् निजघान महारथान् ॥ २५ ॥ ते हि दुर्योधनादिष्टास्तदा पार्थ निबर्हणे । संप्राप्यैव गता नाशं शलभा इव पावकं ॥ २६ ॥ एत-स्मिन्नेव काले तु सूर्येऽस्तमुप गच्छति। सर्वेषां चैव सैन्यानां प्रमोहः समजायत ॥ २७॥ अवहारं ततश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव । ते सेने भृशसंविग्ने ययतुः स्वं निवेशनं ॥ २८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! उधर युद्ध दुर्मद महाबाहु सात्यकि नोक वाले सर्प तुल्य बाणों को चला रहे थे ॥ १ ॥ धनुष को खींचते हुए और बाणों को छोड़ते हुए उन का रूप मूसलाधार बरसते मेघ की भांति दीख पड़ता था ॥ २ ॥ सात्यकि को इस प्रकार ऊंचा आता देख राजा दुर्योधन ने दस सहस्र रथ उधर भेजे ॥ ३ ॥ सच्चे पराक्रम वाले शक्तिमान् सात्यकि ने उन सारे महा धनुर्धारियों को अपने दिव्य अस्त्रों से मार गिराया ॥४ ॥ ऐसा दारुण कर्म करके सात्यकि धनुष ले कर भूरिश्रवा से युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ कौरवों का यश बढ़ानेवाला भूरिश्रवा सात्यकि को सेना गिराते देख कर क्रुद्ध हो दौड़ कर उन के सामने आए

॥ ६ ॥ और आ कर वज्र जैसे कठोर और सर्प तुल्य विषैले बाण छोड़े ॥ ७ ॥ मृत्युतुल्य स्पर्श वाले उन बाणों को सात्यकि के अनुगामी न सहसके, अतएव वह चारों ओर से भाग निकले ॥ ८ ॥ उस को देख कर सात्यकि के महाबली दस पुत्र आवेश में आ भूरिश्रवा से बोले ॥ ९ ॥ हे हे कौरवदायाद महाबल! आओ संग्राम में हमारे साथ सब के संग वा एक २ के संग युद्ध करो ॥१०॥ या तो रण में हमें जीत कर तुम यश प्राप्त करोगे, वा तुम्हें जीत कर हम पिता की प्रीति का कार्य करेंगे॥११॥ उन वीरों के इस वचन को सुन कर महाबली भूरिश्रवा बोले, सब इकट्ठे हो सावधान हो कर युद्ध करो, मैं तुम्हें रण में मारूंगा ॥ १२ ॥ सो हे महाराज पिछले समय उस रणक्षेत्र में एक का बहुतों के साथ वह तुमुल संग्राम प्रवृत्त हुआ ॥ १३ ॥ उस अकेले रथिवर पर उन्होंने ऐसी बाणवर्षा की, जैसे बरसात में मेघ पर्वत पर बरसते हैं ॥ १४ ॥ उन के चलाए घोर बाण जो यमदण्ड और वज्र के समान आ रहे थे, उन को भूरिश्रवा सावधान हो मार्ग में ही काट २ गिराने लगे ॥ १५ ॥ वहां हमने भूरिश्रवा का अद्भुत पराक्रम देखा, जब कि वह अकेले ही उन बहुतों के साथ निर्भय चित्त से जुटे हुए थे॥ १६ ॥ बाणों की झड़ी लगाते हुए वह दस महारथी भूरिश्रवा को घेर कर मारने लगे ॥ १७ ॥ भूरिश्रवा ने क्रोध में आकर उन से लड़ २ कर दसों के धनुष काट गिराए ॥ १८ ॥ जब उन के धनुष कट गए, उसी समय अपने तीक्ष्ण बाणों से उन के सिर रण में काट गिराए ॥ १९ ॥ महाबली पुत्रों को मरते देख कर सात्यकि गर्जते हुए भूरिश्रवा की ओर दौड़े ॥ २० ॥ वह दोनों रण में एक दूसरे

के घोड़ों को मार कर रथों से उतर कर आपस में जुटने को आगे बढ़े ॥ २१ ॥ हाथों में ढाल तलवार लिये युद्ध के लिए खड़े हुए दोनों शोभा पाने लगे ॥ २२ ॥ उसी समय भीम ने तलवार धारी सात्यकि के पास पहुंच झट उस को रथ पर चढ़ा लिया ॥ २३ ॥ उधर आप के पुत्र (दुर्योधन) ने भी हे राजन्! सब धनुर्धारियों के देखते ही भूरिश्रवा को झट रथ पर चढ़ा लिया ॥ २४ ॥ उस समय सूर्य जब कि रक्तवर्ण होगया था, अर्जुन पच्चीस सहस्र महारथियों को मार चुका था॥२५॥ जोकि दुर्योधन की आज्ञा पाकर अर्जुन को मारने के लिए गए थे, वह अर्जुन के पास पहुंचते ही इस तरह नष्ट हुए, जैसे पतंगे अग्नि के पास पहुंच कर ॥ २६ ॥ सूर्य के अस्त होजाने पर सारे सैनिकों को (अपने पराए) में भूल होने लगी ॥ २७ ॥ तब तेरे पिता देवव्रत ने युद्ध की समाप्ति की, और (आज) वह दोनों ही सेनाएं अत्यन्त खिन्न हुई अपने २ शिविरों को गई॥२८॥

अ० २० (व० ७५-) भीम, धृष्टद्युम्न और द्रोण आदि का युद्ध

मूल—ते विश्रम्य ततो राजन् सहिताः कुरुपाण्डवाः । व्यतीतायां तु शर्वर्यां पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्न मभाषत । व्यूहं व्यूह महाबाहो मकरं शत्रुनाशनं ॥ २ ॥ व्यूढं दृष्ट्वा तु तत्सैन्यं पिता देवव्रतस्तव । क्रौञ्चेन महता राजन् प्रत्यव्यूहत वाहिनीं ॥ ३ ॥ भीमसेनः सुनिशितैर्बाणैर्भित्वा महाचमूं । आससाद ततो वीरः सर्वान् दुर्योधनानुजान् ॥ ४ ॥ दुःशासनं दुर्विषहं दुःसहं दुर्मदं जयं । जयत्सेनं विकर्णं च चित्रसेनं सुदर्शनं ॥ ५ ॥ चारुचित्रं सुवर्माणं दुष्कर्णं कर्णमेव च॥६॥एता-

नन्यांश्च सुबहून् दृष्ट्वा भीमो महारथः। भीष्मेण समरे गुप्तां प्रविवेश महाचमूं ॥ ७ ॥ अथालोक्य प्रविष्टं तमूचुस्ते सर्व एव तु। जीवग्राहं निगृह्णीमो वयमेनं नराधिपाः ॥ ८ ॥ तेषां व्यवसितं ज्ञात्वा भीमसेनो जिघृक्षतां। समस्तानां वधे राजन् मतिं चक्रे महामनाः ॥ ९ ॥ ततो रथं समुत्सृज्य गदा मादाय पाण्डवःजघान धार्तराष्ट्राणां तं बलौघमहार्णवं ॥ १० ॥

अर्थ—हे राजन् वह कौरव पाण्डव विश्राम करके, रात के बीतने पर फिर युद्ध के लिए निकले ॥ १ ॥ राजा युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न से कहा, हे महाबाहो आज शत्रुनाशक मकरव्यूह को रचो ॥ २ ॥ (सो पाण्डवी)सेना को व्यूह रचना में देख आप के पिता देवव्रत ने उन के सामने क्रौञ्च व्यूह से रचना की॥३॥ तिस पीछे वीर भीमसेन अपने तीव्र बाणों से उस बड़ी सेना को भेद कर दुर्योधन के छोटे भाइयों के निकट जा पहुंचे ॥ ४ ॥ दुःशासन, दुर्विषह, दुःसह, दुर्मद, जय, जयत्सेन, विकर्ण, चित्रसेन, सुदर्शन, चारुचित्र, सुवर्मा, दुष्कर्ण, कर्ण ॥ ५—६ ॥ इन को तथा और बहुतसों को देखते ही महारथी भीम भीष्म से रक्षा की हुई उस बड़ी सेना के अन्दर घुस गए ॥७॥ उस को अन्दर घुसते देख कर वह सब कहने लगे,हे राजाओ आज इस को हम जीतेजी पकड़ें ॥८॥ उन पकड़ना चाहते हुओं के निश्चय को जान कर बड़े मन वाले भीम ने उन सब के वध का निश्चय किया॥९॥ और रथ को वहीं ठहरा कर हाथ में गदा ले समुद्र की भांति उमड़ते हुए दुर्योधन के उस सेनासमूह को मारने लगा ॥ १० ॥

मूल—भीमसेने प्रविष्टे तु धृष्टद्युम्नोपि पार्षतः। द्रोणमुत्सृज्य तरसा प्रययौ यत्र सौबलः ॥ ११ ॥ निवार्य महतीं सेनां ता-

वकानां नरर्षभः । आससाद रथं शून्यं भीमसेनस्य संयुगे ॥१२॥ दृष्ट्वाविशोकं समरे भीमसेनस्य सारथिं । धृष्टद्युम्नो महाराज दुर्मना गतचेतनः ॥ १३ ॥ अपृच्छद् बाष्पसंरुद्धो निःश्वसन् वाचमी-रयन् । मम प्राणैः प्रियतमः क्व भीम इति दुःखितः ॥ १४ ॥ विशोकस्तमुवाचेदं धृष्टद्युम्नं कृताञ्जलिः ॥ १५ ॥ प्रविष्टो धार्त-राष्ट्राणा मेतद्बलमहार्णवं । मामुक्त्वा पुरुषव्याघ्रः प्रीतियुक्त मिदं वचः ॥ १६ ॥ प्रतिपालय मां सूत नियम्याश्वान् मुहूर्तकं । यावदेतान् निहन्म्यद्य य इमे मद्वधोद्यताः ॥ १७ ॥ विशोकस्य वचः श्रुत्वा धृष्टद्युम्नोऽथ पार्षतः । प्रत्युवाच ततः सूतं रणमध्ये महाबलः ॥ १८ ॥ नहि मे जीवितेनापि विद्यतेऽद्य प्रयोजनं । भीमसेनं रणे हित्वा स्नेह मुत्सृज्य पाण्डवैः ॥ १९॥ यदियामि विना भीमं किं मां क्षत्रं वदिष्यति । एकायनगते भीमे मयि चाव-स्थिते युधि ॥ २० ॥ मम भीमः सखा चैव सम्बन्धी च महाबलः । भक्तो स्मान् भक्तिमांश्चाहं तमप्यरिनिषूदनं ॥ २१ ॥ सोहं तत्र गमिष्यामि यत्र यातो वृकोदरः । निघ्नन्तं मां रिपून् पश्य दान-वानिव वासवं ॥ २२ ॥

अर्थ—भीम के(सेना में)प्रविष्ट होने पर धृष्टद्युम्न द्रोणा-चार्य का त्याग कर वेग से वहां पहुंचे, जहां शकुनि था ॥११॥ वह तुम्हारी महती सेना को हटाते हुए युद्ध में भीम के शून्य रथ के निकट पहुंचे ॥ १२ ॥ भीमसेन के सारथि विशोक को अकेले देख कर धृष्टद्युम्न का मन घबरा गया, चेतना उड़ गई ॥ १३ ॥ गला रुक गया और दुःखित हुए लंबी सांस भर कर पूछने लगे, मेरे प्राणों से अधिक प्यारा भीम कहां है ॥ १४ ॥ विशोक हाथ जोड़ कर धृष्टद्युम्न से यह बोला ॥ १५ ॥ वह वीरवर धृतराष्ट्र

के पुत्रों की सेना के सागर में अकेले अन्दर घुस गए हैं। और मुझे प्रीतिपूर्वक यह बचन कह गए हैं ॥ १६ ॥ हे सूत कुछ देर घोड़ों को ठहरा कर मेरी बाट जोह, जब तक कि मैं इन का बध करता हूं, जो कि मेरे बध के लिए तय्यार हुए हैं ॥ १७ ॥ विशोक के बचन को सुन कर महाबली धृष्टद्युम्न ने रण के मध्य में सूत को उत्तर दिया ॥ १८ ॥ आज मुझे जीने से कोई प्रयोजन नहीं है, यदि मैं भीम को अकेले रण में छोड़ूं, और पाण्डवों से स्नेह तोड़ूं ॥ १९ ॥ यदि मैं भीम के विना जाऊं, तो मुझे क्षत्रिय क्या कहेंगे, जब कि भीम एक व्यूह के अन्दर घुस गया और मैं युद्ध में बाहर खड़ा रहा ॥ २० ॥ महाबली भीम मेरा सम्बन्धी है और सखा है, वह मुझ में भक्ति रखता है और मैं उस में भक्ति रखता हूं ॥ २१ ॥ सो मैं वहां जाऊंगा जहां भीम गए हैं, अब तुम मुझे शत्रुओं का संहार करते हुए देखो, जैसे कि इन्द्र दानवों का करते हैं ॥ २२ ॥

मूल—एवमुक्त्वा ततो वीरो ययौ मध्येन भारत। भीमसेनस्य मार्गेषु गदा प्रमथितैर्गजैः ॥ २३ ॥ स ददर्श तदा भीमं दहन्तं रिपुवाहिनीं। वातो वृक्षानिव बलात् प्रभञ्जन्तं रणे रिपून् ॥ २४ ॥ ततः कृतास्त्रास्ते सर्वे परिवार्य वृकोदरं। अभीताः समवर्तन्त शस्त्रवृष्ट्या परंतप ॥ २५ ॥ अथोपगच्छच्छर विक्षतांगं पदातिनं क्रोधविषं वमन्तं। आश्वासयन् पार्षतो भीमसेनं गदाहस्तं कालमिवान्तकाले ॥ २६ ॥ विशल्यमेनं च चकार तूर्णमारोपयच्चात्मरथे महात्मा ॥ २७ ॥ भ्रातॄनथोपेत्य तवापि पुत्रो दृष्ट्वा रणे वाक्यमिदं बभाषे। अयं दुरात्मा द्रुपदस्य पुत्रः समागतो भीमसेनेन सार्धं ॥ २८ ॥ तं याम सर्वे महता बलेन मा वो रिपुः पा-

र्थयता मनीकं । श्रुत्वा तु वाक्यं तममृष्यमाणा वधाय निष्पेतु रुदायुधास्त ॥ २९ ॥ प्रगृह्यचास्त्राणि धनूंषि वीराः शरैरवर्षन् द्रुपदस्य पुत्रं । निहत्य तांश्चापि शरैः सुतीक्ष्णैर्नाविव्यथे समरे चित्रयोधी ॥ ३० ॥ समभ्युदीर्णांश्च तवात्मजांस्तथा निशाम्यवीरानभितः स्थितान् रणे । जिघांसुरुग्रं द्रुपदात्मजो युवा प्रमोहनास्त्रं युयुजे महारथः ॥ ३१ ॥ ततो व्यमुह्यन्त रणे नृवीराः प्रमोहनास्त्रा हतबुद्धि सत्वाः ॥ ३२ ॥ प्रदुद्रुवः कुरवश्चैव सर्वे सवाजिनागाः सरथाः समन्तात् । परीतकालानिव नष्ट संज्ञान् मोहोपेतांस्तव पुत्रान् निशाम्य ॥ ३३ ॥

अर्थ—यह कह कर वीर धृष्टद्युम्न गदा से मरे हुए हाथियों से भीमसेन के मार्गों पर सेना के मध्य में से जाने लगे ॥ २३ ॥ तब उसने शत्रुसेना को दग्ध करते हुए भीमसेन को देखा, जो रण में (गदा से) शत्रुओं (के शरीरों) को इस प्रकार तोड़ रहे थे, जैसे प्रचण्ड वायु वृक्षों को ॥ २४ ॥ उधर अस्त्र कुशल कौरव सारे बिना भय के चारों ओर से भीम को घेर कर शस्त्रवृष्टि कर रहे थे॥ २५ ॥ अब बाणों की चोट से क्षतविक्षत शरीर वाले, क्रोध का विष उगलते हुए,हाथ में गदा लिये पैदल दौड़ते हुए, अन्तकाल में काल की भांति संहार करते हुए भीमसेन को धीरज देते हुए धृष्टद्युम्न निकट जा पहुंचे ॥ २६ ॥ और झट उस को अपने रथ पर चढ़ा लिया, और उस के शल्य बाहर निकाले ॥ २७ ॥ आप का पुत्र भी रण में इस वृत्त को देख कर भाइयों के निकट जा कर यह वाक्य बोला। यह दुरात्मा द्रुपदपुत्र भीमसेन के साथ आ मिला है ॥ २८ ॥ चलो सब बड़ी सेना के साथ उस की ओर चलें, न हो, कि तुम्हारा शत्रु सेना को मांगे।

आज्ञा सुनते ही वह क्रोध पूर्वक शस्त्र उठा कर उस के बध के निमित्त आगे निकले ॥ २९ ॥ वह वीर अपने अस्त्र और धनुष पकड़ कर द्रुपदपुत्र पर बाण बरसाने लगे। वह भी अद्भुत युद्ध करने वाला रण में अपने तीक्ष्ण बाणों से उन पर प्रहार करने लगा, और स्वयं व्यथित नहीं हुआ ॥ ३० ॥ इस प्रकार आवेश में आए रण में चारों ओर डट कर खड़े हुए आप के वीर पुत्रों को देख कर धृष्टद्युम्न ने उन को रोकने के लिए प्रमोहन अस्त्र छोड़ा ॥ ३१ ॥ प्रमोहन अस्त्र ने उन के मास्तिष्क पर आघात किया, और वह नरवीर रण में मूछित होने लगे ॥ ३२ ॥ काल से वश कियों की भांति नष्ट हुई चेतना वाले और मोह से युक्त हुए तेरे पुत्रों को देख कर कौरव हाथी घोड़े रथों समेत चारों ओर से भागने वाले ॥ ३३ ॥

अर्थ—अथ शुश्राव तेजस्वी द्रोणः शस्त्रभृतांवरः। प्रमोहनास्त्रेण रणे मोहितानात्मजांस्तव ॥ ३४ ॥ ततो द्रोणो महाराज त्वरितोऽभ्याययौ रणात्। मोहाविष्टांश्च ते पुत्रानपश्यत् स महारथः ॥ ३५ ॥ ततः प्रज्ञास्त्रमादाय मोहनास्त्रं व्यनाशयत्। अथ प्रत्यागत प्राणास्तव पुत्रा महारथाः ॥ ३६ ॥ पुनर्युद्धाय समरे प्रययुर्भीम पार्षतौ। ततो युधिष्ठिरः प्राह समाहूय स्वसैनिकान् ॥ ३७ ॥ गच्छन्तु पदवीं शक्त्या भीमपार्षतयोर्युधि। प्रवृत्तिमाधि गच्छन्तु न हि शुध्यति मे मनः ॥ ३८ ॥ त एवं समनुज्ञाताः शूरा विक्रान्त योधिनः। बाढमित्येव मुक्त्वा तु प्रययुः सर्व एव हि ॥ ३९ ॥ केकया द्रौपदेयाश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान्। अभिमन्युं पुरस्कृत्य महत्या सेनया वृताः ॥ ४० ॥ ते कृत्वा समरे व्यूहं सूचीमुख मरिन्दमाः। बिभि दुर्धार्तराष्ट्राणां तद्रथानीक माहवे

॥ ४१ ॥ तान् प्रयातान् महेष्वासानभिमन्यु पुरोगमान् । न संवारयितुं शक्ता तव सेना जनाधिप ॥ ४२ ॥ तेऽभिजाता महेष्वासाः सुवर्ण विकृत ध्वजाः । परीप्सन्तोऽभ्यधावन्त धृष्टद्युम्न वृकोदरौ ॥ ४३ ॥ तौ च दृष्ट्वा महेष्वासा वभिमन्यु पुरोगमान् । बभूवतुर्मुदा युक्तौ निघ्नन्तौ तव वाहिनीं ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वा तु सहसायान्तं पाञ्चाल्यो गुरु मात्मनः । नाशंसत तदा वीरः पुत्राणां तव भारत॥ ४५ ततो रथं समारोप्य कैकेयस्य वृकोदरं । अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धो॥ द्रोणमिष्वस्त्र पारगं ॥ ४६ ॥ तस्याभिपततस्तूर्णं भारद्वाजः प्रतापवान् । क्रुद्धश्चिच्छेद बाणेन धनुः शत्रुनिबर्हणः ॥ ४७ ॥ अथान्यद्धनुरादाय पार्षतः परवीरहा । द्रोणं विव्याध विंशत्या रुक्मपुंखैः शिलाशितैः ॥ ४८ ॥ तस्य द्रोणः पुनश्चापं चिच्छेदा मित्र कर्शनः । हयांश्च चतुरस्तूर्णं चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ४९ ॥ वैवस्वत क्षयं घोरं प्रेषयामास भारत । सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ५० ॥ हताश्वात् स रथात्तूर्ण मवप्लुत्य महारथः। आरुरोह महाबाहु रभिमन्योर्महारथं ॥ ५१ ॥ ततः सरथनागाश्वा समकम्पत वाहिनी । पश्यतो भीमसेनस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ ५२ ॥ वध्यमानं तु तत्सैन्यं द्रोणेन निशितैः शरैः । व्यभ्रमत् तत्र तत्रैव क्षोभ्यमाण इवार्णवः ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वाऽऽचार्यं सुसंक्रुद्धं पतन्तं रिपुवाहिनीं । चुक्रुशुः सर्वतो योधाः साधु साध्विति भारत ॥ ५४ ॥ भीष्मो भित्त्वा महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीं । कृत्वाऽवहारं सैन्यानां ययौ स्वशिबिरं नृप ॥ ५५ ॥ धर्मराजोऽपि संप्रेक्ष्य धृष्टद्युम्न वृकोदरौ । मूर्ध्नि चैतावुपाघ्राय महृष्टः शिबिरं ययौ ॥ ५६ ॥

अर्थ--अब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ तेजस्वी द्रोणाचार्य ने आप के पुत्रों को प्रमोहन अस्त्र से मूर्छित हुए सुना ॥ ३४ ॥ सुनते ही वह रण से झट वहां आए, और मूर्छित हुए आप के पुत्रों को देखा ॥ ३५ ॥ तब उन्होंने प्रज्ञास्त्र चला कर मोहन अस्त्र का नाश किया । तब तुम्हारे पुत्र फिर सावधान हो कर रण में लड़ने के लिए भीम और धृष्टद्युम्न की ओर गए । तब युधिष्ठिर ने अपने सैनिकों को बुला कर कहा ॥३६-३७॥ अपनी पूरी शक्ति लगा कर युद्ध में भीम और धृष्टद्युम्न की खोज पर जाओ, उन का पता लगाओ, मेरा चित्त व्याकुल होरहा है ॥ ३८ ॥ इस प्रकार आज्ञा दिये वह पराक्रमी योधे, बहुत अच्छा कह कर सब चले ॥ ३९ ॥ कैकय, द्रौपदी के पुत्र और धृष्टकेतु यह सब अभिमन्यु को अग्रणी बना कर, बड़ी सेना संग ले ॥ ४० ॥ रण में सूचीमुख व्यूह बांध कर, आप की सेना के दलों को तोड़ कर प्रविष्ट हुए ॥ ४१ ॥ हे महाराज आगे बढ़ते हुए अभिमन्यु आदि इन महारथियों को आप की सेना रोकनें में असमर्थ रही ॥ ४२ ॥ यह कुलीन महाधनुर्धारी अपने सुनहरी झंडों को खड़ा किये धृष्टद्युम्न और भीम की सहायता के निमित्त बढ़ते चले गए ॥ ४३ ॥ उधर तुम्हारी सेना का संहार करते हुए वह दोनों धनुर्धारी अभिमन्यु आदि को देख कर बड़े प्रसन्न भये ॥ ४४ ॥ पर धृष्टद्युम्न ने देखा, कि अपने गुरु (द्रोणाचार्य) शीघ्रता से उन की ओर आरहे हैं । तब उसने तुम्हारे पुत्रों के मारने की आशा छोड़ी ॥ ४५ ॥ और भीम को कैकेय के रथ पर चढ़ा कर अतीव क्रुद्ध होकर अस्त्रों के पार पहुंचे हुए आचार्य की ओर दौड़े॥४६॥

उस को आता देख शत्रुनाशी प्रतापी द्रोणाचार्य ने क्रुद्ध होकर एक बाण से उस के धनुष को काट गिराया ॥ ४७ ॥ तब शत्रु-वीरों के मारने वाले धृष्टद्युम्न ने दूसरा धनुष ले कर सोने की नोक वाले बीस तीव्र बाणों से द्रोणाचार्य को बींध दिया॥४८॥ शत्रुनाशी द्रोण ने फिर उस के धनुष को काट दिया, और चार उत्तम बाणों से चारों घोड़ों को यम के घर पहुंचाया, और भाले से उस के सारथि को मृत्यु के मुख में भेजा ॥ ४९—५० ॥ तब वह महारथ नष्ट हुए घोड़ों वाले रथ से कूद कर अभिमन्यु के रथ पर जा चढ़ा ॥ ५१ ॥ भीम और धृष्टद्युम्न के सम्मुख ही (द्रोणाचार्य के बाणों से) रथ हाथी और घोड़ों समेत सारी सेना कांप उठी ॥ ५२ ॥ द्रोण के तीव्र बाणों से पीड़ित हुई उस सेना में क्षोभ में आए समुद्र की भांति सर्वत्र हलचल पड़ गई ॥५३॥ आचार्य को क्रुद्ध हो कर शत्रुसेना पर झपटते देख चारों ओर से योधे धन्य धन्य कहने लगे ॥ ५४ ॥ महाधनुर्धारी भीष्म भी पाण्डवों की सेना को भेद कर, युद्ध को बन्द कर अपने शिविर को गए ॥ ५५ ॥ धर्मराज भी धृष्टद्युम्न और भीम को देखकर और उन के सिर चूम कर प्रहर्षित हुए शिविर को गए ॥ ५६ ॥

अ० २१ (व० ८१-८३) सातवें दिन के युद्ध

मूल—ततः प्रभाते विमले स्वेन सैन्येन वीर्यवान् । अव्यूहत स्वयं व्यूहं भीष्मो व्यूह विशारदः ॥ १ ॥ मण्डलं तु समालोक्य व्यूहं परमदुर्जयं । स्वयं युधिष्ठिरो राजा वज्रं व्यूह मथा करोत् ॥ २ ॥ बिभित्सवस्ततो व्यूहंनिर्ययुर्युद्धकांक्षिणः । इतरेतरतः शूराः सहसैन्याः प्रहारिणः ॥ ३ ॥ ततो राजसमूहास्ते परिवव्रु-

र्धनञ्जयं । तत्राद्भुत मपश्याम विजयस्य पराक्रमं ॥ ४ ॥ शस्त्रवृष्टिं परैर्मुक्तां शरौघैर्यदवारयत् । न च तत्राप्यनिर्भिन्नः कश्चिदासीद् विशांपते ॥ ५ ॥ ते हन्यमानाः पार्थेन भीष्मं शान्तनवं ययुः । अगाधे मज्जमानानां भीष्मः पोतोऽभवत् तदा ॥ ६ ॥ भारद्वाज-स्तु समरे मत्स्यं विव्याध पत्रिणा । ध्वजं चास्य शरेणाजौ धनु-श्चैकेन चिच्छदे ॥ ७ ॥ तदपास्य धनुश्छिन्नं विराटो वाहिनी-पतिः । अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं दृढं ॥ ८ ॥ द्रोणं त्रिभिश्च विव्याध चतुर्भिश्चास्य वाजिनः ॥ ९ ॥ ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चास्य पञ्चभिः । धनुरेकेषुणा विध्यत् तत्रा क्रुध्यद् द्विज-र्षभः ॥ १० ॥ तस्य द्रोणोऽवधीदश्वान् शरैः सन्नत पर्वभिः । अष्टाभिर्भरतश्रेष्ठ सूतमेकेन पत्रिणा ॥ ११ ॥ स हताश्वादवप्लु-त्य स्यन्दनाद्धत सारथिः । आरुरोह रथं तूर्णं पुत्रस्य रथिनां वरः ॥ १२ ॥ ततस्तु तौ पितापुत्रौ भारद्वाजं रथे स्थितौ । महता शर वर्षेण वारयामासतुर्बलात् ॥ १३ ॥ भारद्वाजस्ततः क्रुद्धः शर माशीविषोपमं । चिक्षेप समरे तूर्णं शंखं प्रति जनेश्वरः ॥ १४ ॥ स तस्य हृदयं भित्त्वा पीत्वा शोणित माहवे । जगाम धरणीं बाणो लोहितार्द्रवरच्छदः ॥ १५ ॥ स पपात रणे तूर्णं भारद्वाजशरा-हतः । धनुस्त्यक्त्वा शरांश्चैव पितुरेव समीपतः ॥ १६ ॥ हतं तमात्मजं दृष्ट्वा विराटः प्राद्रवद्भयात् । उत्सृज्य समरे द्रोणं व्या-त्तानन मिवान्तकं ॥ १७ ॥ भारद्वाजस्ततस्तूर्णं पाण्डवानां महा-चमूं । दारयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १८ ॥

अर्थ—जब प्रभात का चांदना हुआ, तब व्यूह रचने में निपुण बलवान् भीष्म ने व्यूह रचना की ॥ १ ॥ उस अजेय मण्डल व्यूह को देख कर राजा युधिष्ठिर ने वज्र व्यूह रचा ॥२॥

अब दोनों ओर से युद्धोत्साही शूरवीर व्यूहों को तोड़ने की इच्छा से सेनासमेत बाहर निकले ॥ ३ ॥ तब बहुत से राजों ने इकट्ठे मिल कर अर्जुन को घेर लिया, वहां हमने अर्जुन का अद्भुत पराक्रम देखा ॥ ४ ॥ कि एक ओर शत्रुओं से छोड़ी शस्त्रवृष्टि को अपने बाणसमुदाय से रोकता था, दूसरी ओर कोई भी वीर ऐसा न बचा, जिस को उस के बाणों ने न बींधा हो ॥ ५ ॥ अर्जुन से पीड़ित हो कर वह भीष्म की शरण गए, तब अगाध जल में डूबतों के लिए भीष्म जहाज बना ॥ ६ ॥ उधर द्रोण ने संग्राम में एक बाण से बिराट को विद्ध किया, एक से इस की ध्वजा को, और एक से इस के धनुष को काट गिराया ॥ ७ ॥ तब सेनापति बिराट ने उस कटे हुए धनुष को छोड़ कर और दबाव सहने वाला बड़ा दृढ धनुष लिया ॥ ८ ॥ और तीन बाणों से द्रोण को और चार से इस के घोड़ों को एक से इस की ध्वजा को, पांच से इस के सारथि को और एक से उस के धनुष को बींधा, तब ब्राह्मणवर का भी क्रोध चमका॥१०॥और उस ने तीक्ष्ण आठ बाणों से बिराट के घोड़ों को और एक से उस के सारथि को मार गिराया ॥ ११ ॥ घोड़ों के और सारथि के मर जाने से वह रथिवर झट पुत्र के रथ पर जा चढ़ा ॥ १२ ॥ तब एक रथ पर स्थित हुए उन दोनों पिता पुत्र ने महती बाण वर्षा से द्रोणाचार्य को ढांप दिया ॥ १३ ॥ तब क्रुद्ध हुए द्रोण ने सर्पतुल्य बाण शंख की ओर चलाया ॥ १४ ॥ जो उस के हृदय को फोड़ के, लहू पीके, लहू से भीगा हुआ भूमि में जा गड़ा ॥ १५ ॥ और शंख द्रोण के बाण से आहत हो कर धनुष और बाण को छोड़ कर पिता के निकट ही गिर पड़ा ॥ १६ ॥

तब अश्वत्थामा ने क्रोध में आ, थोड़े ही समय में शिखण्डी के झण्डे, सारथि, घोड़ों और धनुष को बहुत बाणों से ढांप कर नीचे गिराया ॥ २०-२१ ॥ तब वह रथिवर मरे घोड़ों वाले रथ से कूदकर झटपट सात्यकि के रथ पर जा चढ़ा ॥ २२ ॥ बलिवर सात्यकि रण में तीक्ष्ण बाणों से क्रूर अलंबुष राक्षस को बींधने लगे ॥२३॥ सात्यकि ने उसको ऐसा पीड़ित किया, कि वह मारे डर के सात्यकि को छोड़कर अन्यत्र भाग गया ॥ २४ ॥ तब सच्चे पराक्रम वाला सात्यकि बड़े तीव्र बाणों से तेरी सेना का संहार करने लगा, और वह मारे डर के भाग निकले ॥२५॥ इसी समय द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने आपके पुत्र (दुर्योधन) को तीखे बाणों से ढक दिया, और जल्दी ही उसके चारों घोड़े भी मार गिराए ॥ २६-२७ ॥ तब वह महाबाहु मरे घोड़ों वाले रथ से उछलकर पैदल हो तलवार उठा कर धृष्टद्युम्न की ओर दौड़ा ॥ २८ ॥ उसी समय राजा के हितैषी महाबली शकुनि दौड़कर उनको अपने रथ पर चढ़ा के निकाल लेगए ॥ २९ ॥ उधर कृतवर्मा ने रण में भीम पर बाणों की झड़ी लगाई, पर घोड़ों के मारा जाने पर झट वृषक के रथ पर जा चढ़ा ॥ ३० ॥ भीमसेन भी क्रुद्ध होकर आपकी सेना पर टूट पड़ा, और हाथ में दण्ड लिये यम की भांति संहार करने लगा ॥

अध्याय २२ (व० ८३-८५) द्वन्द्व युद्ध

मूल—आवन्त्यौ तु महेष्वासौ महासेनौ महाबलौ । इरावन्तमभिप्रेक्ष्य समेयातां रणोत्कटौ ॥ १ ॥ इरावांस्तु ततो राजन्ननुविन्दस्य सायकैः । चतुर्भिश्चतुरोवाहाननयद् यमसादनं ॥२॥ त्यक्त्वानुविन्दोऽथ रथं विन्दस्य रथमास्थितः । धनुर्गृहीत्वा परमं

भारसाधनमुत्तमं ॥३॥ तावेकस्थौ रणेवीरावावन्त्यौ रथिनांवरौ । शरान् मुमुचतुस्तूर्णमिरावति महात्मनि ॥ ४ ॥ इरावांस्तु रणे क्रुद्धौ भ्रातरौ तौ महारथौ । ववर्ष शरवर्षेण सारथिं चाप्यपातयत् ॥ ५ ॥ तस्मिंस्तु पतिते भूमौ गतसत्वे तु सारथौ । रथः प्रदुद्राव दिशः समुद्भ्रान्तहयस्ततः ॥६॥ तौ सजित्वा महाराज नागराजसुतासुतः । पौरुषं ख्यापयं स्तूर्णं व्यधमत् तव वाहिनीं ॥ ७ ॥ हैडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भगदत्तं समाद्रवत् । शरैः प्रच्छादयामास मेरुंगिरिमिवाम्बुदः ॥८॥ निहत्यतान् शरान् राजा राक्षसस्य धनुश्च्युतान् । भैमसेनिं रणे तूर्णं सर्वमर्मस्वताडयत्॥९॥ तस्याश्वांश्चतुरः संख्ये पातयामास सायकैः ॥१०॥ स हताश्वे रथे तिष्ठन् राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् । शक्तिं चिक्षेप वेगेन प्राग्ज्योतिषगजं प्रति ॥ ११ ॥ तामापतन्तीं सहसा हेमदण्डां सुवेगिनीं । त्रिधा चिच्छेद नृपतिः सा व्यकीर्यत मेदिनीं ॥ १२ ॥ शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा हैडिम्बः प्राद्रवद् भयात् ॥ १३ ॥

अर्थ—महाबली महा धनुर्धारी रणशूर अवन्ति के दोनों राजे (विन्द अनुविन्द) इरावान् को देख के उस से जुटे॥१॥ वहां इरावान् ने अपने बाणों से अनुविन्द के चारों घोड़े यम के घर पहुंचाए ॥ २ ॥ तब अनुविन्द उस रथ को छोड़ अपना प्रबल धनुष साथ ले विन्द के रथ पर जा चढ़ा ॥ ३ ॥ और वह दोनों रथिवर एक रथ पर स्थित होकर इरावान् पर बाण बरसाने लगे ॥ ४ ॥ क्रुद्ध हुए इरावान् ने भी उन दोनों भाइयों पर बाण बरसाए, और उन के सारथि को मार गिराया ॥५ ॥ सारथि के मर कर भूमि पर गिरते ही रथ के घोड़े घबराकर रथ को भगा लेगए ॥ ६ ॥ सो उन दोनों पर विजय पाकर

२२ ॥ एवमुक्तः स वार्ष्णेयः कौन्तेयेनामितौजसा । रथं श्वेत-हयैर्युक्तं प्रेषयामास संयुगे ॥ २३ ॥ ततः प्रवृत्तः सुमहान् संग्रामः शोणितोदकः । तावकानां च समरे पाण्डवानां च भारत ॥२४॥ शिरांसि रथिनां भीष्मः पातयामास संयुगे । तालेभ्यः परिपक्कानि फलानि कुशलो नरः ॥ २५॥ अर्जुनोऽथ सुशर्मादीन् राज्ञास्तान् सपदानुगान् । विजित्य पृतनामध्ये ययौ स्वशिबिरं प्रति ॥२६॥ दुर्योधनोपि नृपतिः परिवार्य महारणे । भीष्मं शान्तनवं तूर्णं प्रयातः शिबिरं प्रति ॥ २७ ॥

अर्थ—मद्रराज रण में नकुल और सहदेव के साथ जुटा, और उन से गाढ विद्ध हुआ, दुःखित हो मूर्छित होगया ॥१४॥ नकुल सहदेव से पीड़ित हो के अचेत गिरे हुए मद्रराज को सारथि निकाल ले गया ॥ १५ ॥ उधर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने क्रोध से प्रज्वलित होकर श्रुतायु के धनुष को मुट्ठी में से काट दिया ॥ १६ ॥ श्रुतायु मरे घोड़ों वाले रथ को त्याग, राजा के पौरुष को देखकर, वेग से भाग गया ॥ १७ ॥ जब वह महाधनुर्धारी युधिष्ठिर से जीता गया, तब दुर्योधन की सारी सेना पराङ्मुख होगई ॥ १८ ॥ एक ओर चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण सुनहरी कवच पहन अभिमन्यु की ओर चढ़े ॥ १९ ॥ नरवर अभिमन्यु ने तेरे पुत्रों को रथहीन कर दिया, पर भीम के वचन (दुर्योधनादि को मैं मारूंगा) को स्मरण करके उन्हें प्राण से नहीं मारा ॥ २० ॥ उधर अर्जुन ने देखा, कि आपके पुत्रों को बचाने के लिए अकेले बाल अभिमन्यु की ओर (सेना समेत) भीष्म चढ़े जारहे हैं, तो वह कृष्ण से बोले—हे हृषीकेश! वहां घोड़ों को ले चलो, जहां यह बहुत से रथ हैं ॥२१-२२॥

बीर अर्जुन की इस बात को सुनकर कृष्ण जी श्वेत घोड़ों से युक्त रथ को वहां लेगए ॥ २३ ॥ तब आपके पक्ष वालों का और पाण्डवों का बहुत बड़ा संग्राम प्रवृत्त हुआ, लहू की नदियां बह निकलीं ॥ २४ ॥ भीष्म रण में रथियों के सिर इस प्रकार गिरा रहे थे, जैसे चतुर पुरुष ताल वृक्षों से पके फल गिराता है ॥ २५ ॥ (सायं समय) अर्जुन सुशर्मा आदि राजाओं को सेनासमेत जीतकर अपने शिविर को गए ॥२६॥ और राजा दुर्योधन भी भीष्म को घेरे हुए अपने शिविर को गए ॥

अध्याय २३ (व०८७-८८) आठवां दिन, भीम का भयंकर युद्ध

मूल—परिणाम्य निशां तां तु सुखं प्राप्ता जनेश्वराः । कुरवः पाण्डवाश्चैव पुनर्युद्धायनिर्ययुः ॥ १ ॥ भीष्मः कृत्वा महा व्यूहं सागरप्रतिमं ययौ । ततः स पार्षतः क्रूरो व्यूहं चक्रे श्रृंगाटकं ॥ २ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं घोररूपं भयानकं । तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरं ॥ ३ ॥ भीष्मं तु समरे क्रुद्धं प्रतपन्तं समन्ततः । न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं तपन्तमिव भास्करं ॥ ४ ॥ अन्यत्र रथिनां श्रेष्ठाद् भीमसेनान्महाबलात् । सहि भीष्मं समासाद्य ताडयामास संयुगे ॥५॥ ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः । भीष्मं जुगोप समरे वर्तमाने जनक्षये ॥ ६ ॥ भीमस्तु सारथिं हत्वा भीष्मस्य रथिनां वरः । प्रद्रुताश्वे रथे तस्मिन् द्रवमाणे समन्ततः ॥ ७ ॥ सुनाभस्य शरेणाशु शिरश्चिच्छेद भारत । क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद्भुवि ॥ ८ ॥ हते तस्मिन् महाराज तव पुत्रे महारथे । नामृष्यन्त रणे शूराः सोदराः सप्त संयुगे॥९॥आदित्यकेतुर्बह्वाशी कुण्डधारो महोदरः ।

अपराजितः पण्डितको विशालाक्षः सुदुर्जयः ॥१०॥ पाण्डवं चित्र सन्नाहा विचित्रकवचध्वजाः । अभ्यद्रवन्त संग्रामे योद्धुकामारि-मर्दनाः ॥ ११ ॥ स तत्र ममृषे भीमः शत्रुभिर्वधमाहवे । धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्षनः ॥ १२ ॥ शिरश्चिच्छेद समरे शरेणानतपर्वणा । अपराजितस्य सुनसं तव पुत्रस्य संयुगे॥१३॥ अथापरेण भल्लेन कुण्डधारं महारथं । प्राहिणोन्मृत्युलोकाय सर्व लोकस्य पश्यतः ॥ १४ ॥ शिलामुखं प्रेषयामास समरे पण्डितं प्रति । स शरः पण्डितं हत्वा विवेश धरणीतलं ॥१५॥ विशालाक्ष-शिर श्छित्वा पातयामास भूतले । त्रिभिः शरैरदीनात्मा स्मरन् क्लेशं पुरातनं॥१६॥महोदरं महेष्वासं नाराचेन स्तनान्तरे।विव्याध समरे राजन् स हतो न्यपतद्भुवि ॥ १७ ॥ आदित्यकेतोः केतुं च छित्वा बाणेन संयुगे । भल्लेन भृशतीक्ष्णेन शिर श्चि-च्छेद भारत । १८ । बह्वाशिनं ततो भीमः शरेणानतपर्वणा । प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति । १९ । प्रदुद्रुवुस्ततस्तेऽन्ये पुत्रास्तव विशांपते । मन्यमाना हि तत्सत्यं सभायां तस्य भाषितं । २० । ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममासाद्य संयुगे । दुःखेन महता-विष्टो विललाप सुदुःखितः । २१ । निहता भ्रातरः शूरा भीम-सेनेन मे युधि । यतमानास्तथाऽन्येपि हन्यन्ते सर्वसैनिकाः॥२२॥ एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं पिता देवव्रतस्तव । दुर्योधन मिदं वाक्यमब्र-वीत् साश्रुलोचनः ॥ २३ ॥ उक्तमेतन्मया पूर्वं द्रोणेन विदुरेण च । गान्धार्या च यशस्विन्या तत्त्वं तात न बुद्धवान् ॥ २४ ॥ यं यं हि धार्तराष्ट्राणां भीमो द्रक्ष्यति संयुगे । हनिष्यति रणे नित्यं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥२५॥ स त्वं राजन् स्थिरो भूत्वा रणे कृत्वा दृढां मतिं।योधयस्व रणे पार्थान् स्वर्गं कृत्वा परायणं ॥२६॥

अर्थ—रात बिता कर आराम कर चुके हुए कौरव पाण्डव फिर युद्ध के लिए निकले ॥ १ ॥ भीष्म समुद्र तुल्य महाव्यूह बना कर चढ़े, दूसरी ओर धृष्टद्युम्न ने शृंगाटक (चतुष्पथ) व्यूह बनाया ॥ २ ॥ तब एक दूसरे पर प्रहार करते हुए कौरवों पाण्डवों का घोररूप भयानक युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ ३ ॥ रण में क्रुद्ध हो, प्रचण्ड सूर्य की भांति चारों ओर तपाते हुए भीष्म की ओर पाण्डव देख नहीं सकते थे, सिवाय रथिवर महाबली भीमसेन के,हां वह भीष्म के निकट जा उस पर प्रहार करने लगे ॥४-५ ॥ तब रण में सेना का विनाश प्रवृत्त होने पर राजा दुर्योधन भाइयों के साथ मिल कर भीष्म की रक्षा करने लगे ॥६॥रथिवर भीम ने भीष्म के सारथि को मार कर,जब उस के रथ के घोड़े चारों ओर भाग रहे थे, उसी अवसर में बाण से सुनाभ के सिर को भी काट गिराया । वह उस तीक्ष्ण बाण से कट कर भूमि पर आ गिरा ॥ ७–८ ॥ हे महाराज ! तेरे उस पुत्र के मरने पर उस के सात सहोदर वीर आदित्यकेतु, बह्वाशी, कुण्डधार, महोदर, अपराजित, पण्डितक, विशालाक्ष और सुदुर्जय सह न सके ॥९-१०॥वह रंगारंग के कवच पहने हुए झंडे उड़ाते हुए लड़ने के लिए भीम पर टूट पड़े ॥ ११ ॥ भीम भी शत्रुओं से आते प्रहारों को सह न सके, उस शत्रुनाशन ने बाएं हाथ से धनुष को बलवत् खींच कर, तीखे बाण वाले धनुष से आप के पुत्र अपराजित का सिर काट गिराया ॥ १२—१३ ॥ और दूसरे भाले से सब के देखते २ कुण्डधार को मृत्युलोक की ओर भेज दिया ॥१४॥ फिर एक बाण पण्डितक की ओर भेजा, वह बाण पण्डितक को मार कर धरणीतल में घुस गया ॥ १५ ॥ फिर उस मनस्वी

ने पुराने वैर को स्मरण कर तीन बाणों से विशालाक्ष का सिर काट गिराया ॥ १६ ॥ फिर एक बाण महोदर की छाती पर चला कर उसे विद्ध किया, वह मर कर भूमि पर गिर पड़ा॥१७॥ फिर एक बाण से आदित्यकेतु के झंड को काट कर तीक्ष्ण बाण से उस का सिर काट गिराया ॥ १८ ॥ फिर क्रुद्ध हो तीखे पर्व वाले बाण से बह्वाशी को यम के घर भेजा ॥ १९ ॥ तब तेरे पुत्र हे राजन् सभा में कहे हुए भीम के वचन को सत्य होता जान कर सब भाग निकले ॥ २० ॥ तब राजा दुर्योधन संग्राम में भीष्म के निकट जा कर दुःख से युक्त हुआ विलाप करने लगा॥२१॥ कि भीमसेन ने युद्ध में मेरे भाई मार डाले, और दूसरे भी सैनिकों को भी मार रहा है ॥ २२ ॥ इस क्रूर वचन को सुन कर आप के पिता देवव्रत आंसुएं भर कर दुर्योधन से यह बोले ॥ २३ ॥ पूर्व मैं, द्रोणाचार्य, विदुर, और गान्धारी सब ही तुझे समझाते रहे, हे तात ! तुम उसे नहीं समझे ॥ २४ ॥ भीम धृतराष्ट्र के पुत्रों में से रण में जिस २ को देखेगा, निःसंदेह उस को मारेगा ॥ २५ ॥ सो हे राजन् ! तुम पक्के हो कर रण में पक्का निश्चय करके स्वर्ग को परमगति मान पाण्डवों से युद्ध किये चलो ॥ २६ ॥

अ०२४ (व०९०-९४) इरावान् का वध और घोर संग्राम

मूल-गजो गवाक्षो वृषभश्चर्म वानार्जवः शुकः । विविशुस्ते तदा हृष्टा गान्धारा युद्ध दुर्मदाः ॥ १ ॥ इरावन्त माभिद्रुत्य सर्वतः पर्यवारयन् । ताडयन्तः शितैः प्रासैश्चोदयन्तः परस्परं ॥ २ ॥ इरावानापि खड्गेन दर्शयन् पाणिलाघवं । अभ्यवर्तत तान् सर्वान् सौबलान् बलदर्पितः ॥ ३ ॥ अथाभ्याशगतानां स खड्गेना

मित्रकर्शनः। असिहस्तापहस्ताभ्यां तेषां गात्राण्य कृन्तत॥४॥तान् सर्वान् पतितान् दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनस्ततः।अभ्यधावत संक्रुद्धो राक्षसं घोरदर्शनं ॥ ५ ॥ आर्ष्यशृङ्गिं महेष्वासं मायाविन मरिन्दमं। वैरिणं भीमसेनस्य पूर्वं बक वधेन वै ॥ ६ ॥ बाढमित्येव मुक्त्वा तु राक्षसो घोर दर्शनः । प्रययौ सिंहनादेन यत्रार्जुनसुतो बली॥ ७॥ आद्रवन्त मभिप्रेक्ष्य राक्षसं युद्ध दुर्मदं । इरावानथ संरब्धः प्रत्यधावन्महाबलः ॥ ८ ॥ समभ्याश गतस्याजौ तस्य खड्गेन दुर्मतेः । चिच्छेद कार्मुकं दीप्तं शरावापं च सत्वरं ॥ ९ ॥ ततश्चुक्रोध बलवांश्चक्रे वेगं च संयुगे । आर्ष्यशृङ्गिस्तथा दृष्ट्वा समरे शत्रुमूर्जितं ॥ १० ॥ विमोहित मिरावन्तं न्यहनद्राक्षसोसिना । इरावतः शिरोः रक्षः पातयामास भूतले ॥ ११ ॥ तस्मिंस्तु विहते वीरे राक्षसेनार्जुनात्मजे । विशोकाः समपद्यन्त धार्तराष्ट्राः स राजकाः ॥ १२ ॥ अजानन्नर्जुनश्चापि निहतं पुत्रमौरसं । जघान समरे शूरान् राज्ञस्तान् भीष्म रक्षिणः ॥ १३ ॥

अर्थ—तब गज, गवाक्ष, वृषभ, चर्मवान्, आर्जव और शुक ये छः गान्धारी वीर प्रविष्ट हुए ॥ १ ॥ और इरावान् पर चढ़ाई करके उसे सब ओर घेर लिया, और एक दूसरे को उत्साह देते हुए मिल कर तीव्र बाणों से इरावान् को ताड़ने लगे ॥ २ ॥ अभिमानी इरावान् भी तलवार में अपने हाथ की फुरती दिखलाते हुए उन सब सुबलपुत्रों (शकुनि के भाइयों) के सामने आए ॥ ३ ॥ और जूं ही कि वह निकट पहुंचे, उसी समय तलवार के दाएं बाएं हाथ से उन के शरीर काट गिराए॥ ४ ॥ उन सब को गिरा देख दुर्योधन डर कर भयंकर डील वाले धनुर्धारी मायावी आर्ष्यशृङ्गि(अलंबुष)राक्षस के शरण आया, जो बकवध

के कारण भीमसेन का पहले से वैरी था ॥ ५—६ ॥ राक्षस उस की बात को स्वीकार करके सिंहनाद करता हुआ वहां पहुंचा, जहां वह बली अर्जुनपुत्र था ॥ ७ ॥ युद्ध दुर्मद राक्षस को दौड़ कर आता देख महाबली इरावान् भी क्रुद्ध होकर उस की ओर दौड़ा ॥ ८ ॥ और निकट पहुंच कर उस के धनुष और तरकश को काट गिराया ॥ ९ ॥ आर्ष्यश्रृङ्गि भी शत्रु को ऐसे बढ़ा हुआ देख कर क्रोध में आया और वेग से लड़ने लगा ॥ १० ॥ घबराए इरावान् को राक्षस ने तलवार मारी, और इरावान् के सिर को भूतल पर गिराया ॥ ११ ॥ राक्षस ने जब उस वीर अर्जुनपुत्र को मार गिराया, तो धृतराष्ट्र के पुत्रों का शोक मिटा ॥ १२ ॥ अर्जुन भी औरसपुत्र के मरने को न जानता हुआ उधर ही भीष्म के रक्षक राजाओं को काटता रहा ॥ १३ ॥

मूल—इरावन्तं तु निहतं संग्रामे वीक्ष्य राक्षसः । व्यनदत् सुमहानादं भैमसेनिर्घटोत्कचः ॥ १४ ॥ ततो दुर्योधनो राजा घटोत्कच मुपाद्रवत् । पृष्ठतोऽनुययौ चैव वंगाना मधिपः स्वयं ॥१५॥ अथैनमब्रवीत् क्रुद्धः क्रूरः संरक्त लोचनः । अद्यानृण्यं गमिष्यामि पितॄणां मातुरेव च ॥ १६ ॥ ये त्वया सुनृशंसेन दीर्घकालं प्रवासिताः । यच्च ते पाण्डवा राजंश्छलद्यूते पराजिताः ॥ १७ ॥ यच्चैव द्रौपदी कृष्णा एक वस्त्रा रजस्वला । सभामानीय दुर्बुद्धे बहुधाक्लेशिता त्वया ॥ १८ ॥ तव च प्रिय कामेन आश्रमस्था दुरात्मना । सैन्धवेन परामृष्टा परिभूय पितॄन्मम ॥ १९ ॥ एतेषां मपमानाना मन्येषां च कुलाधम । अन्तमद्य गमिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणं ॥ २० ॥ एवमुक्त्वा तु हैडिम्बो महद् विस्फार्य का-

मुकं । शरवर्षेण महता दुर्योधन मवाकिरत् ॥ २१ ॥ वीरबाहु विसृष्टानां तोमराणां विशांपते । रूपमासी द्वियत्स्थानां सर्पणामिव सर्पतां ॥ २२ ॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य राजानं प्रतिवेगितं । अभ्यधावन् जिघांसन्तस्तावका युद्धदुर्मदाः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरः उवाचेदं भीमसेन मरिन्दमं । गच्छरक्षस्व हैडिम्बं संशयं परमं गतं ॥ २४ ॥ भ्रातुर्वचन माज्ञाय त्वरमाणो वृकोदरः । प्रययौ सिंहनादेन त्रासयन् सर्व पार्थिवान् ॥ २५ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं तत्र तेषां महात्मनां । तावकानां परेषां च संग्रामेष्वनिवर्तिनां ॥ २६ ॥ विशिरस्कैर्मनुष्यैश्च भिन्नगात्रैश्च वारणैः । अश्वैः संभिन्नदेहैश्च संकीर्णाभूद् वसुन्धरा ॥ २७ ॥ तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे । धार्तराष्ट्रं महत्सैन्यं प्रायशो विमुखीकृतं ॥ २८ ॥

अर्थ—इरावान् को संग्राम में मरा देख भीमसेन के पुत्र राक्षस घटोत्कच ने गर्ज कर ललकारा ॥ १४ ॥ तब राजा दुर्योधन घटोत्कच की ओर दौड़े और उन के पीछे बंगाल के राजा गए ॥ १५ ॥ क्रोध में आए लाल नेत्रों वाले घटोत्कच इस से बोले, अब मैं पितरों का और माता का अनृण हूंगा॥१६॥ जिन को तुझ क्रूर ने दीर्घकाल देश निकाला दिया, और जो तूने पाण्डवों को जुए के छल में जीता, और जो एक वस्त्र धारे द्रौपदी को सभा में लाकर क्लेश दिया, और जो तेरे प्रिय के लिए दुरात्मा जयद्रथ ने मेरे पितरों का तिरस्कार कर द्रौपदी को छुआ, हे कुलाधम आज मैं इन सारे और दूसरे अपमानों का बदला लूंगा, यदि रण को त्याग न देगा ॥ १७—२० ॥ यह कहके घटोत्कच ने अपने बड़े धनुष को खींच कर दुर्योधन पर बाणवर्षा आरम्भ की ॥ २१ ॥ वीर राक्षसों की भुजाओं से

छोड़े हुए तोमरों का रूप आकाश में वेग से सरकते सांपों की भांति दीखता था॥२२॥ फिर राजा पर वेग से झपटते हुए को देख कर युद्ध दुर्मद आप के सैनिक भी उस पर टूट पड़े॥२३॥ तब युधिष्ठिर शत्रुनाशी भीम से बोले, जाओ संशय में पड़े घटोत्कच की रक्षा करो ॥ २४ ॥ भाई की आज्ञा पाय भीमसेन सिंहनाद से क्षत्रियों को भयभीत करते हुए चले ॥ २५ ॥ तब शत्रुओं का और आप के दल का भारी संग्राम प्रवृत्त हुआ, उन का, जो संग्राम में लौटने वाले नहीं ॥ २६ ॥ मनुष्यों के सिर से हीन पड़े धड़ों, टूटे अंगों वाले हाथियों और घोड़ों से पृथिवी भर गई ॥ २७ ॥ उस लोमहर्षण संग्राम के प्रवृत्त रहने पर दुर्योधन की बड़ी सेना प्रायः विमुख होगई ॥ २८ ॥

मूल—स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयं । अभ्यधावत संक्रुद्धो भीमसेन मरिन्दमं ॥ २९ ॥ अर्धचन्द्रं च संधाय सुतीक्ष्णं लोमवाहिनं । भीमसेनस्य चिच्छेद चापं क्रोध समन्वितः ॥ ३० ॥ तदन्तरं च संप्रेक्ष्य त्वरमाणो महारथः । प्रसंदधे शितं बाणं गिरीणामपि दारणं ॥ ३१ ॥ तेनोरसि महाराज भीमसेन मताडयत् । मगाढविद्धो व्यथितः सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ३२ ॥ समालम्बे तेजस्वी ध्वजं हेम परिष्कृतं ॥ ३३ ॥ तथा विमनसं दृष्ट्वा भीमसेनं घटोत्कचः । क्रोधेनाभि प्रजज्वाल दिधक्षान्निव पावकः ॥ ३४ ॥ अभिमन्यु मुखाश्चापि पाण्डवानां महारथाः । समभ्य धावन् क्रोशन्तो राजानं जात सम्भ्रमाः ॥ ३५ ॥ संप्रेक्ष्यैतान् संपततः संक्रुद्धान् जातसम्भ्रमान् । भारद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं तावकानां महारथान् ॥ ३६ ॥ क्षिप्रं गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत ॥ ३७ ॥ तदाचार्य वचः श्रुत्वा सौमदत्तिपुरोगमाः ।

तावकाः समवर्तन्त पाण्डवाना मनीकिनीं ॥ ३८ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुर्महद् विस्फार्य कार्मुकं । भारद्वाजः ततो भीमं षड्‌विंशत्या समार्दयत् ॥ ३९ ॥ तं प्रत्यविध्यद् दशभिर्भीमसेनः शिलीमुखैः । त्वरमाणो महेष्वासः सव्ये पार्श्वे महाबलः॥ ४० ॥ स गाढ विद्धो व्यथितो वयो वृद्धश्च भारत । प्रनष्टसंज्ञः सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ४१ ॥ गुरुं प्रव्यथितं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयं।द्रौणायनिश्च संक्रुद्धौ भीमसेन माभिद्रुतौ ॥ ४२ ॥ व्यूढोरस्कं ततो भीमः पातयामास भारत । अपातयत् कुण्डलिनं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा।४३। ततः सुनिशितान् पीतान् समादत्त शिलीमुखान् ॥ ४४ ॥ प्रेषिता भीमसेनेन शरास्ते दृढ धन्वना । अपातयन्त पुत्रांस्ते रथेभ्यः सुमहा रथान् ॥ ४५ ॥ अनाधृष्टिं कुण्डभेदिं वैराटं दीर्घलोचनं। दीर्घबाहुं सुबाहुं च तथैव कनकध्वजं ॥ ४६ ॥ पुत्रेषु तव वीरेषु चिक्रीडार्जुन पूर्वजः।मृगेष्विव महाराज चरन् व्याघ्रो महाबलः॥४७॥ तत्रा क्रन्दो महानासीत् तव तेषां च भारत । निघ्नतां दृढ मन्योन्यं कुर्वतां कर्म दुष्करं ॥ ४८ ॥ तेषु श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च भारत । रात्रिः समभवत् तत्र नापश्याम ततोऽनुगान्॥४९॥ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ॥ ५० ॥

अर्थ-अपनी सेनाको हताहत देख स्वयं राजा दुर्योधन क्रुद्ध हुआ भीमसेन की ओर दौड़ा ॥ २९ ॥ बड़े तीव्र अर्धचन्द्र को जोड़ कर भीमसेन का धनुष काट दिया ॥ ३० ॥ और अवसर पाकर झट पट पर्वतों को भी तोड़ने वाला एक तीक्ष्ण बाण जोड़ा ॥ ३१ ॥ और उस को भीम की छाती पर मारा, उस से गाढ विद्ध हुआ भीम दांत पीसने लगा ॥ ३२ ॥ और सुवर्ण भूषित झंडे का आश्रय ले कर बैठ गया ॥ ३३ ॥ इस प्रकार बेदिल हुए

भीम को देख कर घटोत्कच क्रोध से दग्ध करना चाहते हुए अग्निकी भांति भड़क उठा ॥ ३४ ॥ और पाण्डव महारथी अभिमन्यु आदि भी क्रुद्ध हो ललकारते हुए दुर्योधन की ओर दौड़े ॥ ३५ ॥ क्रुद्ध हुए आवेश में आए हुए उन को एक साथ आते देख द्रोणाचार्य आप के महारथियों से बोले ॥ ३६ ॥ जल्दी पहुंचो राजा की रक्षा करो ॥ ३७ ॥ आचार्य की आज्ञा सुन भूरिश्रवा आदि आप के सैनिक पाण्डवों की सेना के सम्मुख हुए ॥ ३८ ॥ ऐसे कह कर महाबाहु द्रोणाचार्य ने बड़ा धनुष खींचा और छब्बीस बाणों से भीम को विद्ध किया॥३९॥ महाबली भीम ने भी बड़े वेग से उन की बाई पसली में दस बाण मारे ॥ ४० ॥ वह वृद्ध गाढ़ विद्ध हो पीड़ित हो कर बेसुध हो रथ पर बैठ गए ॥ ४१ ॥ गुरु को पीड़ित देख राजा दुर्योधन और अश्वत्थामा क्रुद्ध हो भीमसेन की ओर दौड़े ॥४२॥तब भीमसेन ने व्यूढोरस्क को गिराया,और तिस पीछे कुण्डली को गिराया, जैसे कि शेर क्षुद्र मृग को गिराता है ॥ ४३ ॥ फिर उस ने और बड़े तीक्ष्ण बुझे हुए बाण लिए ॥ ४४ ॥ दृढ़ धनुषवाले भीम ने वह बाण चलाए, और रथों से तेरे महारथी पुत्रों अनाधृष्टि, कुण्डभेदी, वैराट, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु और कनकध्वज को गिराया ॥ ४५-४६ ॥ भीमसेन तेरे पुत्रों के साथ ऐसा खेला, जैसे मृगों में महाबली बाघ फिर रहा हो ॥ ४७ ॥ वहां एक दूसरे पर दृढ़ प्रहार करते हुए बड़ा दुष्कर कर्म करते हुए आप के पक्ष वालों की और उन की बड़ी पुकार मची ॥ ४८ ॥ हे भारत बहुत मारे गए, कई भाग गए, शेष थक गए, रात भी

होगई, साथी पहचाने नहीं जाते थे ॥ ४९ ॥ उस समय कौरव पाण्डवों ने सेनाओं को हटाया ॥ ५० ॥

अ०२५(व०९७-९८)दुर्योधन की मन्त्रणा

मूल-ततो दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः। दुःशासनश्च पुत्रस्ते सूतपुत्रश्च दुर्जयः ॥ १ ॥ समागम्य महाराजमन्त्रं चक्रुर्विवक्षितं। कथं पाण्डुसुताः संख्ये जेतव्याः सगणा इति ।२। दुर्योधन उवाच—द्रोणो भीष्मः कृपः शल्यः सौमदत्तिश्च संयुगे। न पार्थान् प्रतिबाधन्ते न जाने तत्र कारणं ॥ ३ ॥ अवध्यमानास्ते चापि क्षपयन्ति बलं मम। सोऽहं संशय मापन्नः प्रहरिष्ये कथं रणे ॥ ४ ॥ कर्ण उवाच-माशोच भरतश्रेष्ठ करिष्येहं प्रियं तव। भीष्मः शान्तनवस्तूर्ण मपयातु महारणात् ॥ ५ ॥ निवृत्ते युधि गांगेये न्यस्त शस्त्रे च भारत। अहं पार्थान् हनिष्यामि सहितान् सर्व सोमकैः ॥ ६ ॥ पाण्डवेषु दयां नित्यं सहि भीष्मः करोति वै। अशक्तश्च रणे भीष्मो जेतुमेतान् महारथान् ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तु कर्णेन कर्णमाह जनेश्वरः ॥ ८ ॥ अनुमान्य रणे भीष्ममेषोहं द्विपदां वरं। आगमिष्ये ततः क्षिप्रं त्वत्सकाश मरिन्दम॥९॥ संप्राप्य तु ततो राजा भीष्मस्य सदनं शुभं। अभिवाद्य ततो भीष्मं निषण्ण परमासनं ॥ १० ॥ उवाच प्राञ्जलिर्भीष्मं बाष्प कण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ ११ ॥ त्वा वयं हि समाश्रित्य संयुगे शत्रुसूदन। उत्सहेम रणे जेतुं सेन्द्रानपि सुरासुरान् ॥ १२ ॥ तस्मादर्हसि गांगेय कृपां कर्तुं मयि प्रभो। जहि पाण्डुसुतान् वीरान् महेन्द्र इव दानवान् ॥ १३ ॥ दयया यदिवा राजन् द्वेष्य भावान्मयि प्रभो। मन्दभाग्य तया वापि मम रक्षसि पाण्डवान् ॥ १४ ॥अनुजानीहि

समरे कर्ण माहवशोभिनं । स जेष्यति रणे पार्थान् ससुहृद्गण बा-
न्धवान् ॥ १५ ॥

अर्थ—तब राजा दुर्योधन, सुबलपुत्र शकुनि, आप का पुत्र दुःशासन, और अजेय सूतपुत्र (कर्ण) मिल कर मन्त्रणा करने लगे, कि कैसे पाण्डुपुत्र अपने गणों समेत जीते जाएं ॥ १–२ ॥ दुर्योधन बोले–द्रोण, भीष्म, कृप, शल्य और भूरिश्रवा रण में पाण्डवों को मार नहीं गिराते हैं, न जाने क्या कारण है ॥ ३ ॥ और वह पीडित न होकर मेरी सेना का नाश कर रहे हैं। सो मैं संशय में पड़ा हूं, कैसे रण में (शत्रुओं को) मारूंगा ॥ ४ ॥ कर्ण बोले–मत शोक करो हे भरतवर मैं आप का प्रिय करूंगा, किन्तु भीष्म इस महारण से अलग होजाएं ॥ ५ ॥ यदि भीष्म अलग होजाएं और शस्त्र रख दें, तो मैं सारे सोमकों सहित पाण्डवों को मारूंगा ॥ ६ ॥ भीष्म पाण्डवों पर सदा दया करते हैं, और भीष्म इन महारथियों को रण में जीतने के असमर्थ भी हैं ॥ ७ ॥ कर्ण से यह वचन सुन राजा दुर्योधन कर्ण से बोले ॥८॥ हे शत्रुनाशन मैं मनुजवर भीष्म से अनुमति ले कर शीघ्र आप के पास आता हूं ॥ ९ ॥ अनन्तर दुर्योधन भीष्म के शुभ घर में पहुंचे, और भीष्म को अभिवादन करके उत्तम आसन पर बैठ गए॥१०॥ और हाथ जोड़ आंसु भर रुकते हुए कण्ठ से भीष्म से बोले॥११॥ आप का आश्रय ले कर हे शत्रुनाशन हम इन्द्र समेत देवता और दैत्यों को रण में जीतने का उत्साह रखते हैं ॥ १२ ॥ इस लिए हे प्रभो मेरे ऊपर आप कृपा कीजिये, वीर पाण्डवों को मारिये, जैसे महेन्द्र ने दानवों को मारा है ॥ १३ ॥ और यदि उन पर दया करके वा (मेरी ओर) द्वेषभाव से, वा मेरी मन्द भाग्यता से

यदि पाण्डवों को बचाते हो ॥ १४ ॥ तो रणबांकुरे कर्ण को रण में अनुमति दीजिये, वह पाण्डवों को उनके सहृद्वर्ग और बन्धु वर्ग समेत जीतेगा ॥ १५ ॥

मूल—वाक्शल्यैस्तव पुत्रेण सोऽतिविद्धो महामनाः । उद्धृत्य चक्षुषी कोपान्निर्दहन्निव भारत ॥ १६ ॥ अब्रवीत् तव पुत्रं स सामपूर्व मिदं वचः । किं त्वं दुर्योधनैवं मां वाक्शल्यै रपकृन्तासि ॥ १७ ॥ घटमानं यथा शक्ति कुर्वाणं च तव प्रियं । जुह्वाणं समरे प्राणांस्तव वै प्रियकाम्यया ॥ १८ ॥ यदा च त्वां महाबाहो गन्धर्वैर्हृत मोजसा । अमोचयत् पाण्डुसुतः पर्याप्तं तन्निदर्शनं॥१९॥ द्रवमाणेषु शूरेषु सोदरेषु तवप्रभो । सूतपुत्रे च राधेये पर्याप्तं तन्निदर्शनं ॥ २० ॥ यच्च नः सहितान् सर्वान् विराटनगरे तदा । एक एव समुद्यातः पर्याप्तं तन्निदर्शनं ॥ २१ ॥ निवातकवचान् युद्धे वासवेनापि दुर्जयान् । जितवान् समरे पार्थः पर्याप्तं तन्निदर्शनं ॥ २२ ॥ को हि शक्तो रणे जेतुं पाण्डवं रभसं तदा । त्वं तु मोहान्नजानीषे वाच्यावाच्यं सुयोधन ॥ २३ ॥ स्वयं वैरं महत् कृत्वा पाण्डवैः सह संजयैः । युध्यस्व तानद्य रणे पश्यामः पुरुषो भव ॥ २४ ॥ तैर्वाहं निहतः संख्ये गमिष्ये यमसादनं । तान्वा निहत्य समरे प्रीतिं दास्याम्यहं तव ॥ २५ ॥ सुखं स्वापीहिगान्धारे श्वोस्मि कर्ता महारणं । यं जनाःकथयिष्यन्ति यावत् स्थास्यति मेदिनी ॥ २६ ॥ एवमुक्तस्तव सुतो निर्जगाम जनेश्वर । अभिवाद्य गुरुं मूर्ध्ना प्रययौ स्वं निवेशनं ॥ २७ ॥

अर्थ—आपके पुत्र द्वारा बाणी के सल्लों से अति विद्ध किया हुआ वह मनस्वी कोप से आंखें फाड़ कर मानों दग्ध करता हुआ नर्मी के साथ तेरे पुत्र से यह वचन बोला, क्यों तू हे दुर्योधन

मुझे वाणी के सल्लों से इस प्रकार छेदता है, जब कि यथाशक्ति चेष्टा कर रहा हूं, तेरा प्रिय कर रहा हूं, तेरे प्रिय की कामना से रण में प्राणों को होम रहा हूं ॥ १६–१८ ॥ हे महाबाहो जब गन्धर्व तुझे अपनी शक्ति से बांधे ले जारहे थे, उस समय तुझे अर्जुन ने छुड़ाया, यह (उस की वीरता का) एक पर्याप्त उदाहरण है ॥ १९ ॥ जब कि तेरे शूरवीर सगे भाई और राधासुत कर्ण भी भाग खड़े हुए, यह पर्याप्त उदाहरण है॥ २० ॥ और जो विराटनगर में हम सब इकट्ठों के सामने अकेला आ डटा था, वह पर्याप्त उदाहरण है ॥ २१ ॥ निवातकवच दानव जो कि युद्ध में इन्द्र से भी दुर्जय थे, उन को युद्ध में अर्जुन ने जीता, यह पर्याप्त उदाहरण है ॥ २२ ॥ तब ऐसे बलवान् अर्जुन को रण में कौन जीत सकता है, हे सुयोधन तू अज्ञान से वाच्य अवाच्य कुछ नहीं जानता है ॥२३॥ पाण्डवों और सृंजयों के साथ भारी वैर करके, अब उन से रण में युद्ध करो, हमारे सामने पुरुष बनो ॥२४॥ मैं अब रण में या तो उनसे मारा जाकर यम के घर जाउंगा, वा उन को मार कर युद्ध में तुझे प्रीति दूंगा ॥ २५ ॥ सुख से सोवो हे दुर्योधन कल ऐसा संग्राम करूंगा, जिस को लोग जब तक पृथिवी रहेगी, कहेंगे ॥ २७ ॥ ऐसे कहा हुआ आप का पुत्र बाहर निकला, और भीष्म को मस्तक झुका कर अपने भवन में गया॥२८॥

अ०२६ (व० ९८-१०६) भीष्म का घोर युद्ध

मूल—प्रभातायां तु शर्वर्यां प्रातरुत्थाय तान्नृपः । राज्ञः समाज्ञापयत सेनां योजयतेति ह ॥ १ ॥ अद्य भीष्मो रणे क्रुद्धो निहनिष्यति सोमकान् ॥ २ ॥ दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा रात्रौ विलपितं बहु। मन्यमानः स तं राजन् प्रत्यादेश मिवात्मनः॥३॥ निर्वेदं

परमं गत्वा विनिन्द्य परवश्यतां । दीर्घं दध्यौ शान्तनवो योद्धुकामोऽर्जुनं रणे ॥ ४ ॥ दुर्योधनो महाराज दुःशासन मचोदयत् । दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः ॥ ५॥ इदं हि समनुप्राप्तं वर्षपूगाभि चिन्तितं। पाण्डवानां ससैन्यां वधो राज्यस्य चागमः ॥ ६ ॥ तत्र सर्वात्मना मन्ये गांगेयस्यैव पालनं । यत्ता रक्षन्तु गांगेयं तस्मिन् गुप्ते ध्रुवो जयः ॥ ७ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे दुर्योधन वचस्तदा । सर्वतो रथ वंशेन गांगेयं पर्यवारयन् ॥ ८ ॥ पुत्राश्च तव गांगेयं परिवार्य ययुर्मुदा । कम्पयन्तो भुवंद्यां च क्षोभयन्तश्च पाण्डवान् ॥ ९ ॥

अर्थ—रात के प्रभात होने पर राजा (दुर्योधन) ने उन राजाओं को आज्ञा दी, कि अपनी २ सेनाएं तय्यार करो॥१॥ आज रण में क्रुद्ध भीष्म सोमकों का विनाश करेंगे ॥ २ ॥ उधर भीष्म दुर्योधन के उस रात्रिविलाप को सुन कर, उस को अपना निराकरण सा समझता हुआ बड़ा उदास हुआ पराधीनता को निन्दता हुआ अर्जुन से युद्ध की कामना से देर तक सोच में पड़ा रहा ॥ ३—४ ॥ दुर्योधन ने हे महाराज दुःशासन को आज्ञा दी, कि भीष्म के रक्षक रथों को शीघ्र जोड़ो ॥ ५ ॥ यह बड़े वर्षों का सोचा हुआ सेना समेत पाण्डवों का वध और राज्य की प्राप्ति सामने आई है ॥ ६ ॥ मैं सब प्रकार से भीष्म की रक्षा ही कर्तव्य समझता हूं, सो सावधान होकर भीष्म की रक्षा करो, उस की रक्षा में निःसंदेह जय होगा॥ ७ ॥ दुर्योधन के इस वचन को सुन कर उन सबने सब ओर से रथसमुदाय से भीष्म को घेर लिया ॥ ८ ॥ तेरे पुत्र भीष्म को घेर कर भूमि और द्यौ को कंपाते हुए और पाण्डवों को क्षुब्ध करते हुए आनन्द से चले ॥९॥

मूल–भीष्मो व्यूहं चाव्यूहत सर्वतो भद्रमात्मनः ॥१०॥ एवं तेपि महाव्यूहं प्रतिव्यूह्य सुदुर्जयं । पाण्डवाः समरे शूराः स्थिता युद्धाय दंशिताः ॥ ११ ॥ तत्रासीद् सुमहद्युद्धं तत्र तेषां च संकुलं । नराश्वरथ नागानां यमराष्ट्र विवर्धनं ॥ १२ ॥ रथी रथिन मासाद्य प्राहिणोद् यमसादनं । तथेतरान् समासाद्य नरनागाश्व सादिनः ॥ १३ ॥ रथास्तु रथिभिर्हीना हतसारथयस्तथा । विप्रद्रुताश्च समरे दिशो जग्मुः समन्ततः॥१४॥दन्तिनश्च नरश्रेष्ठ हीनाः परमसादिभिः । मृद्नन्तः स्वान्यनीकानि निपेतुः सर्वशब्दगाः॥१५। अश्वारोहान् हतैरश्वैर्गृहीतासीन् समन्ततः । द्रवमाणा नपश्याम द्राव्यमाणांश्च संयुगे ॥ १६ ॥ गजो गजं समासाद्य द्रवमाणं महाहवे । ययौ प्रमृद्य तरसा पादातान् वाजिनस्तथा॥१७॥तस्मिन् रौद्रे तथायुद्धे वर्तमाने महाभये । प्रावर्तत नदी घोरा शोणितान्त्र तरंगिणी ॥१८॥ अस्थिसंघातसम्बाधा केश शैवलशाद्वला । रथह्रदा शरावर्ता हयमीना दुरासदा॥१९॥शीर्षोत्पल समाकीर्णा हस्तिग्राह समाकुला । कवचोष्णीष फेनौघा धनुर्वेगासि कच्छपा ॥२०॥ तां नदीं क्षत्रियाः शूरा रथनाग हयप्लवैः । प्रतेरुर्बहवो राजन् भयं त्यक्त्वा महारथाः ॥ २१ ॥

अर्थ-भीष्म ने अपना सर्वतोभद्र व्यूह रचा॥१०॥उधर शूर पाण्डव भी अपना दुर्जय व्यूह रच कर युद्ध के लिए तय्यार हो कर खड़े ॥११॥वहां आप के और उन के रथसवार, गजसवार, घुड़सवार और पैदलों का यम के राष्ट्र को बढ़ाने वाला भारी संग्राम प्रवृत्त हुआ ॥ १२ ॥ रथी रथी के निकट जा उसे यम के घर पहुंचाने लगा, और वैसे ही पैदल हाथी और घोड़े के सवारों को भी ॥ १३ ॥ रथ रथियों से हीन मरे सारथियों वाले संग्राम

में चारों ओर भागने लगे ॥ १४ ॥ हाथी गजसवारों से हीन हुए चीखते हुए अपनी सेना का मर्दन करते हुए गिरने लगे॥ १५ ॥ उस संग्राम में हम ने घोड़ों के मरने पर घुड़सवारों को चारों ओर भागते और भगाते हुए देखा ॥ १६ ॥ उस महासंग्राम में हाथी भागते हुए हाथी का पीछा करते प्यादों और घोड़ों को दलते हुए चलने लगे ॥ १७ ॥ उस महाभयानक युद्ध के प्रवृत्त होने पर लहू की भयंकर नदी बह निकली, जिस में अन्ताड़ियां लहरें, हड्डियों के पञ्जर गिरे हुए वृक्ष, बाल किनारे के शैवल और तृण, रथ गढ़े, बाण भंवर, घोड़े मछलियां, सिर कमल, हाथी घड़ियाल, कवच और पगाड़ियें झाग, धनुष और तलवारें कछुए प्रतीत होते थे ॥ १८–२० ॥उस नदी को कई शूरवीर महारथी क्षत्रिय भय को त्याग कर रथ घोड़े और हाथीरूपी नौकाओं से पार कर रहे थे२१

मूल–अमोघा ह्यपतन् बाणाः पितुस्ते भरतर्षभ । नासज्जन्त तनुत्रेषु भीष्मचापच्युताः शराः ॥ २२ ॥ हतवीरान् रथान् राजन् संयुक्तान् जवनैर्हयैः । अपश्याम महाराज ह्रियमाणान् रणाजिरे ॥ २३ ॥ चेदिकाशि करूषाणां सहस्राणि चतुर्दश । महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥२४॥ संग्रामे भीष्ममासाद्य व्यादितास्य मिवान्तकं। निमग्नाः परलोकाय सवाजिरथ कुञ्जराः॥२५॥ महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः । अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः॥ २६ ॥ प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः । उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमं ॥ २७ ॥ अयं स कालः संप्राप्तः पार्थयः कांक्षितस्तव । प्रहरास्मिन् नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे ॥ २८ ॥ यत् पुरा कथितं वीर राज्ञां तेषां समागमोविराट नगरे तात संजयस्य समीपतः ॥ २९ ॥ भीष्म द्रोण मुखान् सर्वान्

धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान्। सानुबन्धान् हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति संगरे ॥ ३० ॥ इति तव कुरुकौन्तेय सत्यं वाक्य मरिन्दम। क्षत्र-धर्म मनुस्मृत्य युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३१ ॥ इत्युक्तो वासुदेवेन इदं वचन मब्रवीत्। चोदयाश्वान् यतो भीष्मः करिष्ये वचनं तव ॥ ३२ ॥ स चाश्वान् रजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः। यतो भी-ष्मस्ततो राजन् दुष्प्रेक्ष्यो रश्मि मानिव ॥ ३३ ॥ ततस्तत्पुनरा-वृत्तं युधिष्ठिर बलं महत्। दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यत माहवे ॥ ३४ ॥ ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठः सिंहवद् विनदन् मुहुः। धनञ्जय रथं शीघ्रं शरवर्षैरवा किरत् ॥ ३५ ॥ क्षणेन सरथस्तस्य सहयः सह सारथिः। शरवर्षेण महता न प्राज्ञायत भारत ॥३६॥ वासुदे-वस्त्व सम्भ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्वरः। चोदयामास तान श्वान् विनुन्नान् भीष्म सायकैः ॥३७॥ ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलद निःस्वनं। पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्वा शितैः शरैः ॥ ३८ ॥ सछिन्न धन्वा कौरव्यः पुनरन्यद् महद् धनुः। निमेषान्तर मात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव ॥ ३९ ॥ अथास्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनु-र्रर्जुनः। तस्य तत्पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः ॥४०॥ गांगे-यस्त्व ब्रवीत् पार्थं धन्विश्रेष्ठ मरिन्दमं। साधु साधु महाबाहो सा-धु कुन्तीसुतेति च ॥ ४१ ॥ समाभाष्यैवमपरं प्रगृह्य रुचिरं धनुः। मुमोच समरे भीष्मः शरान् पार्थ रथं प्रति ॥ ४२ ॥ अदर्शयद् वासुदेवो हययाने परं बले। मोघान् कुर्वन् शरांस्तस्य मण्डलानि निदर्शयन् ॥ ४३ ॥ शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशर विक्षतौ। गो वृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखितांकितौ॥ ४४ ॥ वासुदेवस्तु संप्रे-क्ष्य पार्थस्य मृदु युद्धतां। युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले ॥ ४५ ॥ नामृष्यत महाबाहुर्माधवः परवीरहा।उत्सृज्य हयान् योगी

प्रचस्कन्द महारथात् ॥ ४६ ॥ अभिदुद्राव भीष्मं स भुजप्रहरणो बली । प्रतोदपाणिस्तेजस्वी सिंहवद् विनदन्मुहुः ॥ ४७ ॥ निगृह्यमाणः पार्थेन कृष्णो राजीव लोचनः । जगामैवैन मादाय वेगेन पुरुषोत्तमः ॥४८॥ पार्थस्तु विष्टभ्य बलाच्चरणौ परवीर हा । तत एव मुवाचार्तः क्रोधपर्या कुलेक्षणं ॥ ४९ ॥ निवर्तस्व महाबाहो नानृतं कर्तुमर्हसि । यत्त्वया कथितं पूर्वं नयोत्स्यामीति केशव॥५०॥ माधवस्तु वचः श्रुत्वा फाल्गुनस्य महात्मनः । न किञ्चिदुक्त्वा स क्रोध आरुरोह रथं पुनः ॥ ५१ ॥ तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ भीष्मः शान्तनवः पुनः । ववर्ष शरवर्षाणि मेघो वृष्ट्या यथा चलौ ॥५२॥ यथा कुरूणां सैन्यानि बभंजुर्युधि पाण्डवाः। तथा पाण्डव सैन्यानि बभंज युधि ते पिता॥ ५३ ॥ युध्यता मेव तेषां तु भास्करेऽस्त मुपागते । सन्ध्या समभवद् घोरा नापश्याम ततो रणं ॥५४॥ततोऽवहारं सैन्यानां कृत्वा तत्र महारथाः । न्यविशन्त कुरुश्रेष्ठ संग्रामे क्षतविक्षताः ॥ ५५ ॥

अर्थ—हे भरतवर भीष्म के न चूकने वाले बाण चलरहे थे, जो उस के धनुष से निकल कर कवचों को फोड़ रहे थे ॥२२॥ हे महाराज ! हमने रथी वीरों के मरने पर रणक्षेत्र में दौड़ते हुए वेग वाले घोड़ों से युक्त रथ देखे ॥ २३ ॥ उस दिन चेदिकाशि और करूषों के चौदह सहस्र प्राणों की परवाह न करने वाले कुलपुत्र महारथी, संग्राम में मुंह खोल कर खड़े हुए यम की भांति वर्तमान भीष्म के निकट,रथ हाथी घोड़ों समेत परलोक की ओर चले गए ॥ २४—२५ ॥ महेन्द्र तुल्य शक्ति वाले भीष्म से मारी जाती हुई वह सेना जिधर मुंह आया । उधर भाग निकली॥२६॥ सेना में भांज पड़ती देख कर श्रीकृष्ण रथ को रोक के अर्जुन

से बोले ॥ २७ ॥ हे अर्जुन यह वह काल आगया है, जिसको तुम सदा चाहते हो, हे नरवर यदि मोह के वश कर्तव्य को भूले हुए नहीं हो, तो अब इस पर प्रहार करो ॥ २८ ॥ हे वीर जो तूने विराटनगर में उन राजाओं के समागम में संजय के निकट कहा था ॥ २९ ॥ कि मैं भीष्म द्रोण आदि दुर्योधन के सारे सैनिकों को उन के साथियों समेत मारूंगा, जो कोई भी रण में मेरे सामने लड़ेंगे ॥ ३० ॥ उस वाक्य को हे कौन्तेय अब सत्य कर दिखलाओ, क्षत्रधर्म का स्मरण करके शोकरहित हो कर युद्ध करो॥ ३१ ॥ कृष्ण से ऐसे कहा हुआ वह यह वचन बोला, ले चलो घोड़ों को, जहां भीष्म है, आप की आज्ञा पूरी करूंगा ॥ ३२ ॥ तब चांदी तुल्य घोड़ों को कृष्ण वहां ले गए, जहां भीष्म थे, जिन की ओर उस समय प्रचण्ड सूर्य की भांति दृष्टि नहीं डाली जासकती थी ॥ ३३ ॥ महाबाहु अर्जुन को भीष्म के संग लड़ने को तय्यार देखके युधिष्ठिर की बड़ी सेना फिर लौट आई ॥ ३४ ॥ तब कुरुवर भीष्म सिंह की भांति गर्जते हुए अर्जुन के रथ पर बाणवर्षा करने लगे ॥ ३५ ॥क्षण भर में वह रथ हाथी घोड़े समेत बड़ी बाणवर्षा के अन्दर प्रतीत नहीं होता था॥३६॥ श्रीकृष्ण घबराए नहीं, और धैर्य धरके भीष्म के बाणों से पीछे हटाए जाते घोड़ों को भी बराबर आगे बढ़ाते गए ॥ ३७ ॥ तब अर्जुन ने मेघ तुल्य ध्वनि वाला दिव्य धनुष ले कर तीव्र बाणों से भीष्म के धनुष को काट गिराया ॥ ३८ ॥ धनुष के कटजाने पर आप के पिता ने फिर और धनुष लिया, और निमेष भर में उस को चढ़ा लिया ॥ ३९ ॥ क्रुद्ध हुए अर्जुन ने उस का यह धनुष भी काट दिया, भीष्म ने भी अर्जुन की इस फुर्ती की बड़ी

प्रशंसा की ॥ ४० ॥ भीष्म श्रेष्ठ धनुर्धारी अर्जुन से बोले, साधु साधु हे महाबाहो ! साधु हे कुन्तीसुत ॥ ४१ ॥ यह कह कर भीष्म ने झट और धनुष लिया, और अर्जुन के रथ पर बाण छोड़ने लगे ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण ने रथ की चालों से उस के बाणों को व्यर्थ करते हुए घोड़ों के चलाने में परम बल दिखलाया ॥ ४३॥ भीष्म के बाणों से क्षत विक्षत हुए वह दोनों, सींगों के उल्लेख के चिन्हों से युक्त सांडों की भांति शोभा पाते थे॥४४॥ अर्जुन को (मोहवश) नर्मी से युद्ध करते हुए, और भीष्म को युधिष्ठिर की सेना में प्रलयकाल लाते हुए देख कर शत्रुवीरों के मारने वाले श्रीकृष्ण न सह सके, वह योगी घोड़ों को छोड़ कर महारथ से कूद पड़े ॥ ४५-४६ ॥ भुजा से लड़ने वाला वह तेजस्वी बली हाथ में छांट लिये शेर की भांति बार २ गर्जता हुआ, अर्जुन से रोका जाता हुआ भी इस को साथ ही खींच लेजाकर भीष्म की ओर बढ़ता ही गया ॥ ४७-४८॥ फिर शत्रुवीरों के मारने वाले अर्जुन ने बल से उन के दोनों पैर पकड़ लिये, और पीड़ित हुआ क्रोध से गहरे नेत्र वाले के सम्मुख यह वचन बोला।४९।लौट चलिये हे महाबाहो जो आप पहले कह चुके हैं, कि मैं युद्ध नहीं करूंगा, यह आप को अब झूठ नहीं करना चाहिये ॥ ५० ॥ कृष्ण महात्मा अर्जुन के वचन को सुन कर, कुछ न बोलते हुए फिर रथ पर जा चढ़े॥५१॥ रथ पर बैठे उन दोनों के ऊपर भीष्म ने ऐसी बाणवर्षा बरसाई, जैसे मेघ पर्वतों के ऊपर ॥ ५२ ॥ जैसे कौरवी सेना का पाण्डवों ने नाश किया, वैसे ही पाण्डवों की सेना का तेरे पिता ने नाश किया ॥ ५३ ॥ इस प्रकार उन के युद्ध करते २ ही सूर्य के अस्त होने पर घोर सन्ध्या प्रवृत्त हुई, रण को देख नहीं सकते थे॥५४॥

तब वह रण में क्षत विक्षत हुए महारथी सेनाओं का अवहार करके आराम करने गए ॥ ६९ ॥

अ०२७ (व० १०७) पाण्डवों की मन्त्रणा

मूल—तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे पाण्डवाः सह वृष्णिभिः । संजयाश्च दुराधर्षा मन्त्राय समुपाविशन् ॥ १ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा मन्त्रयित्वा चिरं नृप । वासुदेवं समुद्वीक्ष्य वचनं चेदमाददे ॥ २ ॥ कृष्ण पश्य महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमं । गजं नलवनानीव मृद्नन्तं बलं मम ॥ ३ ॥ न चैवैनं महात्मान मुत्सहामो निरीक्षितुं । लेलिह्यमानं सैन्येषु प्रवृद्ध मिव पावकं ॥ ४ ॥ स्वधर्मस्याविरोधेन हितं व्याहर केशव । प्रत्युवाच ततः कृष्णः सान्त्वयानो युधिष्ठिरं ॥ ५ ॥ धर्मपुत्र विषादं त्वं माकृथाः सत्यसंगर । यस्य ते भ्रातरः शूरा दुर्जया शत्रुसूदनाः ॥ ६ ॥ मां वा नियुङ्क्ष्व सौहार्दाद् योत्स्ये भीष्मेण पाण्डव । त्वत्प्रयुक्तो महाराज किं न कुर्यां महाहवे ॥ ७ ॥ हनिष्यामि रणे भीष्म माहूय पुरुषर्षभं । पश्यतां धार्तराष्ट्राणां यदि नेच्छति फाल्गुनः ॥ ८ ॥पश्य मे विक्रमं राजन् महेन्द्रस्येव संयुगे । विमुञ्चन्तं महास्त्राणि पातयिष्यामि तं रथात्॥९। यः शत्रुः पाण्डुपुत्राणां मच्छत्रुः स न संशयः । मदर्था भवदीया ये ये मदीयास्तवैव ते ॥ १० ॥ अंशान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीपते । एष चापि नरव्याघ्रो मदर्थे जीवितं त्यजेत् ॥ ११ ॥ एष नः समयस्तात तारयेम परस्परं । स मां नियुङ्क्ष्व राजेन्द्र यथा योद्धा भवाम्यहं ॥ १२ ॥ प्रतिज्ञातमुपप्लव्ये यत्तत्पार्थेन पूर्वतः । घातयिष्यामि गांगेयमिति लोकस्य सन्निधौ ॥१३ ॥ परिरक्ष्यमिदं तावद् वचः पार्थस्य धीमतः । अनुज्ञातं तु पार्थेन मया कार्यं न

संशयः ॥ १४ ॥ अथवा फाल्गुनस्यैष भारः परिमितो रणे । स हनिष्यति संग्रामे भीष्मं परपुरञ्जयं ॥ १५ ॥ त्रिदशान्वा समुद्युक्तान् सहितान् दैत्यदानवैः । निहन्यादर्जुनः संख्ये किमु भीष्मं नराधिप ॥ १६ ॥

अर्थ—उस घोर रात्रि में पाण्डव यादव और सृंजय मन्त्रणा करने के लिए बैठे ॥ १ ॥ वहां बहुत देर तक राजा युधिष्ठिर मन्त्रणा करने के अनन्तर कृष्ण की ओर देख कर यह वचन बोले ॥ २ ॥ हे कृष्ण भयंकर बल वाले महात्मा भीष्म की ओर ध्यान दो, जो मेरी सेना को इस तरह मल रहे हैं, जैसे हाथी नड़ों के वन को मल दे ॥ ३ ॥ इस महात्मा की ओर हम दृष्टि नहीं उठा सकते हैं । बढ़ी हुई अग्नि की भांति वह मेरी सेना को चाट रहे हैं ॥ ४ ॥ सो हे केशव वह धर्म बतलाओ, जिस में अपने धर्म का विरोध न हो* । तब कृष्ण युधिष्ठिर को धीरज देते हुए बोले।८।

---

* अर्जुन यद्यपि गीता के उपदेश के पीछे अब निःशंक हो कर सब से लड़रहा है, भीष्म से भी भिड़जाता है, पर भीष्म के प्राण लेने में अभी वह हिचक जाता है । भीष्म को कृष्ण और अर्जुन के विना और कोई मार नहीं सकता, कृष्ण अपनी प्रतिज्ञानुसार शस्त्र नहीं उठाते, अर्जुन मारता नहीं, तब भीष्म का बध कैसे हो, सो अर्जुन की शंका मिटा कर उस को भीष्म के मारने के लिए तय्यार करने के निमित्त आज की मन्त्रणा है । पहले श्रीकृष्ण दो अवसरों पर अर्जुन को ' न चेद् मोहाद् विमुह्यसे 'कह कर अर्जुन का मोह हटाते रहे, और स्वयं रथ से उतर कर भी दौड़े, तौ भी अर्जुन इतना उत्तेजित न हुआ, कि भीष्म को निधड़क हो कर मार गिराए । इस लिए आज उस को पूरा तय्यार करेंगे । अतएव यह मन्त्रणा युधिष्ठिर और कृष्ण की पहले गिनी हुई है ।

हे धर्मपुत्र हे सच्ची प्रतिज्ञा वाले आप मत उदास हों, जिन के भाई शूरवीर, शत्रुओं के मारने वाले और स्वयं दुर्जय हैं ॥ ६॥ अथवा मुझे अपने सुहृद्भाव से आज्ञा दो, मैं भीष्म के साथ युद्ध करूंगा, आप की आज्ञा से हे महाराज! मैं इस बड़े संग्राम में क्या नहीं कर सकता हूं ॥ ७ ॥ मैं पुरुषवर भीष्म को आह्वान दे कर रण में धृतराष्ट्र के पुत्रों के सामने मारूंगा, यदि अर्जुन इस के लिए तय्यार नहीं है ॥ ८ ॥ हे राजन् युद्ध में महेन्द्र की भांति मेरा पराक्रम देखो, मैं शस्त्र चलाते हुए भीष्म को रथ से गिराउंगा ॥ ९ ॥ जो पाण्डुपुत्रों का शत्रु है, वह असंशय मेरा शत्रु है, जो आप के हैं, वह मेरे हैं, जो मेरे हैं, वह आप के हैं ॥१० ॥ हे राजन् मैं अर्जुन के अर्थ मांस उखाड़ कर देदूंगा, और यह भी नरवर मेरे लिये जीवन त्याग सकता है ॥ ११ ॥ हे तात यह हमारी प्रतिज्ञा है, हम एक दूसरे को बचाएंगे, आप मुझे आज्ञा दीजिये हे राजेन्द्र मैं योद्धा बनूंगा ॥१२॥ किन्तु अर्जुन ने जो उपप्लव्य में सब के सामने पहले यह प्रतिज्ञा की है, कि मैं भीष्म को मारूंगा ॥१३॥ अर्जुन के उस वचन की रक्षा करना आवश्यक है, अतएव अर्जुन की अनुमति ले कर मुझे करना चाहिये, इस में संशय नहीं ॥ १४ ॥ अथवा अर्जुन का ही यह थोड़ासा भार है । वह संग्राममें शत्रुओं के किले तोड़ने वाले भीष्म को मारेगा ॥ १५ ॥ दैत्य दानवों के संग मिल कर तय्यार हुए देवताओं को अर्जुन युद्ध में मार सकता है, क्या फिर भीष्म को हे राजन् ॥ १६ ॥

मूल—युधिष्ठिर उवाच—सेन्द्रानपि रणे देवान् जयेयं जयतां वर । त्वया नाथेन गोविन्द किमु भीष्मं महारथं ॥१७॥ न तु त्वामनृतं कर्तुमुत्सहे स्वात्मगौरवात्। अयुध्यमानः साहाय्यं यथोक्तं

कुरु माधव ॥ १८ ॥ समयस्तु कृतः कश्चन मम भीष्मेण संयुगे । मन्त्रयिष्ये तवार्थाय न तु योत्स्ये कथञ्चन ॥ १९ ॥ तस्माद् देवव्रतं भूयो वधोपायार्थ मात्मनः । भवता सहिताः सर्वे प्रयाम मधुसूदन ॥ २० ॥ स वक्ष्यति हितं वाक्यं सत्यमस्मान् जनार्दन । यथा च वक्ष्यते कृष्ण तथा कर्तास्मि संयुगे ॥ २१ ॥ ततोऽब्रवीन्महाराज वार्ष्णेयः कुरुनन्दनं । रोचते मे महाप्राज्ञ राजेन्द्र तव भाषितं ॥ २२ ॥ एवमामन्त्र्य ते वीराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वजं । जग्मुस्ते सहिताः सर्वे वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ २३ ॥ विमुक्तशस्त्रकवचा भीष्मस्य सदनं प्रति । प्रणम्य शिरसा चैनं भीष्मं शरणमभ्ययुः ॥ २४ ॥ तानुवाच महाबाहुर्भीष्मः कुरुपितामहः। स्वागतं तव वार्ष्णेय स्वागतं ते धनञ्जय ॥ २५ ॥ स्वागतं धर्मपुत्राय भीमाय यमयोस्तथा । किंवाकार्यं करोम्यद्य युष्माकं प्रीतिवर्धनं।२६। तथा ब्रुवाणं गांगेयं प्रीतियुक्तं पुनः पुनः । उवाच राजा दीनात्मा प्रीतियुक्त मिदं वचः ॥ २७ ॥ भवन्तं समरे वीर विषहेम कथं वयं । न हि ते सूक्ष्ममप्यस्ति रन्ध्रं कुरुपितामह ॥ २८ ॥ पश्यामस्त्वां महाबाहो रथे सूर्य मिवापरं । रथाश्व नरनागानां हन्तारं परवीरहन् ॥ २९ ॥ क्षयं नीता हि पृतना संयुगे महती मम । यथा युधि जयेम त्वां यथा राज्यं भृशं मम ॥३०॥ मम सैन्यस्य च क्षेमं तन्मे ब्रूहि पितामह। ततोऽब्रवीच्छान्तनवः पाण्डवान् पाण्डु पूर्वजः ॥ ३१ ॥ न कथञ्चन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे । जयोभवति सर्वज्ञ सत्य मेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३२ ॥ निर्जिते मयि युद्धेन रणे जेष्यथ पाण्डवाः।अनुजानामि वः पार्थाः प्रहरध्वं यथा सुखं॥३३॥ युधिष्ठिर उवाच—ब्रूहि तस्मादुपायं नो यथा युद्धे जयेमहि।भवन्तं समरे क्रुद्धं दण्डहस्त मिवान्तकं ॥ ३४ ॥ न तं पश्यामि लोकेषु

मां हन्याद् यः समुद्यतं । ऋते कृष्णान्महाभागात् पाण्डवाद्वा धन-ञ्जयात् ॥ ३५ ॥ एष तस्मात् पुरोधाय कञ्चिदन्यं ममाग्रतः। आ-त्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ॥ ३६ ॥ मां पातयतु बीभ-त्सुरेवं तव जयो ध्रुवं। एतत्कुरुष्व कौन्तेय यथोक्तं मम सुव्रत।३७। ते तु ज्ञात्वा ततः पार्था जग्मुः स्वशिबिरं प्रति । अभिवाद्य महा-त्मानं भीष्मं कुरुपितामहं ॥ ३८ ॥ अर्जुनः दुःखसंतप्तः सव्रीड मिद मब्रवीत । पितामहेन संग्रामे कथं योद्धास्मि माधव ॥ ३९ ॥ क्रीडताहि मया बाल्ये वासुदेव महामनाः । पांसुरूषित गात्रेण म-हात्मा परुषीकृतः ॥ ४० ॥यस्याहमधिरुह्यांकं बालः किल गदा-ग्रज । तातेत्यवोचं पितरं पितुः पाण्डोर्महात्मनः ॥ ४१ ॥ नाहं तातस्तव पितुस्तातोस्मि तव भारत । इति मा मब्रवीद् बाल्ये यः स वध्यः कथं मया ॥ ४२ ॥ कामंवध्यतु सैन्यं मे नाहं योत्स्ये महात्मना । जयो वास्तु वधोवा मे कथं वा कृष्ण मन्यसे ॥ ४३ ॥ वासुदेव उवाच—प्रतिज्ञाय वधं जिष्णो पुरा भीष्मस्य संयुगे।क्षत्र-धर्मे रतः पार्थ कथंनैनं हनिष्यसि ॥ ४४ ॥ पातयैनं रथात् पार्थ क्षत्रियं युद्ध दुर्मदं । नाहत्वा युधि गांगेयं विजयस्ते भविष्यति ॥ ४५ ॥ नहि भीष्मं दुराधर्षं व्यात्तानन मिवान्तकं । त्वदन्यः शक्नुयाद् योद्धु मपि वज्रधरः स्वयं ॥ ४६ ॥ जहि भीष्मं स्थिरो भूत्वा शृणु चेदं वचोमम । यथोवाच पुरा शक्रं महाबुद्धिर्बृहस्पतिः ॥ ४७ ॥ ज्यायांसमपि चेद् वृद्धं गुणैरपि समन्वितं । आतता-यिन मायान्तं हन्याद् घातक मात्मनः॥ ४८ ॥ शाश्वतोऽयं स्थितो धर्मः क्षत्रियाणां धनञ्जय । योद्धव्यं रक्षितव्यं च यष्टव्यं चानसू-युभिः ॥ ४९ ॥ अर्जुन उवाच—शिखण्डी निधनं कृष्ण भीष्मस्य भविता ध्रुवं । ते वयं प्रमुखे तस्य पुरस्कृत्य शिखण्डिनं ॥ ५० ॥

गांगेयं पातयिष्याम उपायेनेति मे मतिः ॥ ९१ ॥ इत्येवं निश्चयं कृत्वा पाण्डवाः सह माधवाः। शयनानि यथा स्वानि भेजिरे पुरुषर्षभाः

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे गोविन्द ! जब तुम मेरे साथी हो, तो मैं रण में इन्द्र समेत देवताओं को भी जीत सकता हूं, क्या फिर महारथी भीष्म को ॥१७॥ किन्तु मैं अपने गौरव के निमित्त आप को झूठा नहीं बनाया चाहता आप युद्ध न करते हुए हमारी सहायता कीजिये, जैसा आप कह चुके हैं ॥ १८ ॥ भीष्म ने मुझे एक वचन दिया हुआ है, कि संग्राम में मैं तेरी भलाई के लिए उत्तम मन्त्रणा दूंगा, पर युद्ध नहीं करूंगा ॥ १९ ॥ इस लिए हम सब आप के साथ भीष्म के ही पास चलें उस के वध का उपाय पूछने के लिए ॥ २० ॥ हे जनार्दन ! वह हमें हितकर और सच्चा वचन कहेंगे, वह जैसा कहेंगे,मैं वैसा उपाय संग्राम में करूंगा।२१। तब श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से बोले, हे राजेन्द्र मुझे आप की बात पसन्द है ॥ २२ ॥ ऐसी मन्त्रणा कर के वीर पाण्डव और बल-वान् कृष्ण सब मिल कर अपने शस्त्र और कवच उतारकर भीष्म के घर गए और सिर झुका उसे प्रणाम कर उस की शरण पड़े ॥ २३--२४ ॥ महाबाहु कुरुपितामह भीष्म उन से बोले, हे कृष्ण स्वागतंते, हे धनञ्जय स्वागतंते, युधिष्ठिर के लिए स्वागत है और नकुल सहदेव के लिए स्वागत है । कहिये आप की प्रीति बढ़ाने वाला मैं कौन कार्य करूं ॥ २५—२६ ॥ प्रेमपूर्वक जब भीष्म ने ऐसे बार २ कहा, तब युधिष्ठिर दीन हो कर प्रेमपूर्वक यह वचन बोले ॥ २७ ॥ हे कुरुपितामह ! हम युद्ध में आप को कैसे सह सकें, संग्राम में आप का तनिक भी छिद्र नहीं दीखता है ॥२ ॥ हे शत्रुवीरों के मारने वाले रथ घोड़े मनुष्य और हाथियों को

मारते हुए आप को हम रथ पर मानों साक्षात् सूर्य बैठा हुआ देखते हैं ॥ २९ ॥ युद्ध में आपने मेरी सेना का बहुत क्षय किया है, अब हे पितामह मुझे यह बतलाइये, कि जैसे युद्ध में हम विजय पाएं, राज्य निःसंदेह हमारे हाथ आए, और मेरी सेना का कुशल हो। तब पाण्डवों के पितामह पाण्डवों से बोले ॥ ३०-३१ ॥ हे कौन्तेय मेरे जीतेजी में आपका किसी प्रकार विजय नहीं होगा, यह मैं आप को सत्य कहता हूं. ॥ ३२ ॥ हे पाण्डवो जब मुझ जीत लोगे, तब तुम रण में विजय पाओगे, सो हे पाण्डवो मैं तुम्हें अनुज्ञा देता हूं मेरे ऊपर यथेष्ट प्रहार करो ॥ ३३ ॥ युधिष्ठिर बोले-तब हमें आप ही कहिये, जिस से हाथ में दण्ड लिए यम की भांति संग्राम में क्रुद्ध हो विचरते आप को हम जीत सकें ॥ ३४ ॥ भीष्म बोले-कृष्ण और अर्जुन के अतिरिक्त इस पृथ्वी में मुझे कोई ऐसा पुरुष दीख नहीं पड़ता, जो लड़ते हुए मुझको मार सके ॥ ३५ ॥ इसलिए यह अर्जुन किसी अन्य को मेरे आगे करके शस्त्र धारे उत्तम धनुष हाथ में लेकर रण में मुझे गिराए, इस प्रकार तेरा निश्चय विजय होगा, हे अच्छे व्रतों वाले कौन्तेय यह करो, जो मैंने कहा है, ॥ ३६-३७ ॥ यह आज्ञा पाय पाण्डव महात्मा भीष्म को प्रणाम कर अपने शिबिर को गए ॥ ३८ ॥ तब अर्जुन दुःख से संतप्त हो लज्जापूर्वक कृष्ण से बोले, हे कृष्ण मैं पितामह के साथ संग्राम में कैसे युद्ध करूंगा ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण मैंने बाल्यकाल में धूल से लिबड़े अपने शरीर से उस महात्मा को मलिन किया है ॥ ४० ॥ मैं जब बालक था, तो अपने पिता पाण्डु के उस पिता को मैंने तात कहा। तब जिसने मुझे यह

कहा, मैं तेरा तात नहीं, तेरे पिता का तात हूं, वह मुझ से कैसे मारा जाएगा ॥ ४१-४२ ॥ मेरी सेना भले ही उसका बध करे, मैं उस महात्मा को नहीं मारूंगा, चाहे मेरा जय हो वा बध हो, अथवा हे कृष्ण आप का क्या मत है ॥ ४३ ॥ कृष्ण बोले-हे अर्जुन संग्राम में भीष्म के बध की पहले प्रतिज्ञा करके, क्षत्रधर्म पर चलने वाले होकर कैसे अब उनको नहीं मारेंगे ॥ ४४ ॥ हे पार्थ युद्धदुर्मद इस क्षत्रिय को रथ से गिराओ, युद्ध में भीष्म को न मारे बिना तेरा विजय नहीं होगा ॥ ४५ ॥ और मुंह खोले कालतुल्य स्थित दुराधर्ष भीष्म से तेरे बिना कोई नहीं लड़ सकता है, चाहे स्वयं इन्द्र भी हो ॥ ४६ ॥ सो स्थित हो कर तुम भीष्म का मारो, और मेरा यह वचन सुनो, जो कि महाबुद्धि बृहस्पति ने इन्द्र को कहा था ॥ ४७ ॥ कि गुणों से भूषित, श्रेष्ठ, तथा वृद्ध भी यदि आततायी बन कर आता है, तो उस अपने मारने वाले को मारना उचित है ॥ ४८ ॥ हे अर्जुन ! क्षत्रियों का यही सनातन धर्म निश्चित है, कि पाप न मानकर युद्ध करना, रक्षा करना और यज्ञ करना ॥ ४९ ॥ अर्जुन बोले-तब हे कृष्ण शिखण्डी निःसन्देह भीष्म की मौत बनेगा ॥ ५० ॥ सो हम उसके प्रमुख शिखण्डी को आगे करके इस उपाय से भीष्म को गिराएं यह मेरा मत है* ॥५१॥ इस प्रकार कृष्ण और पाण्डव निश्चय करके अपनी २ शय्याओं पर गए ॥ ५२ ॥

---

* अर्जुन भीष्म को मारगिराने के लिए तय्यार नहीं होता था, सो अब उसको इस मन्त्रणा द्वारा भीष्म से आज्ञा मिलगई है, कि अर्जुन अपने बचाव के लिए मुझे न मारे, पर किसी परम हितैषी

अध्याय २८(व०१०८) दसवां दिन शिखण्डी को प्रोत्साहना

मूल—ततस्ते पाण्डवास्सर्वे सूर्यस्योदयनं प्रति। शिखण्डिनं पुरस्कृत्यनिर्याताः पाण्डवायुधि ॥१॥ तथैव कुरवो राजन् भीष्मं कृत्वा महारथं। अग्रतः सर्वसैन्यानां प्रययुःपाण्डवान् प्रति ॥२॥ ततःप्रवृत्ते युद्धं तव तेषां च भारत। अन्योऽन्यं निघ्नतांराजन् यमराष्ट्र विवर्धनं ॥ ३ ॥ ततस्तु तावकं सैन्यं वध्यमानं समन्ततः। सुसंप्राप्तं दशदिशः काल्यमानं महारथैः ॥ ४ ॥ नामृष्यत् तदा भीष्मः सैन्यघातं रणे परैः। निजघ्ने समरे क्रुद्धो हस्त्यश्वं चामितं बहु ॥ ५ ॥ रथिनोऽपातयद्राजन् रथेभ्यः पुरुषर्षभ। सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यःपादातांश्च समागतान् ॥ ६ ॥ गजारोहान् गजेभ्यश्च परेषां जयकारिणः॥७॥ दिक्ष्वदृश्यत सर्वासु घोरं संधारयन्वपुः। मण्डलीभूतमेवास्य नित्यं धनुरदृश्यत ॥ ८॥ तद्दृष्ट्वा समरे कर्म पुत्रास्तव विशांपते। विस्मयं परमं गत्वा पितामहपूजयन् ॥ ९ ॥ दशमेऽहनिसंप्राप्ते रथानीकं शिखण्डिनः। अदहन्निशितैर्बाणैः कृष्णवर्त्मेव काननं ॥ १० ॥ तं शिखण्डी त्रिभिर्बाणैरभ्याविध्यत स्तनान्तरे। उवाचैनं तथा भीष्मं सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ११ ॥ जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रियाणां क्षयंकरं। जानन्नपिप्रभावंते योत्स्येऽद्याहं त्वया सह ॥ १२ ॥ पाण्डवानां प्रियं कुर्वन्नात्मनश्च नरोत्तम। अद्यत्वां योधयिष्यामि रणे पुरुषसत्तम॥१३॥ध्रुवं चत्वां

को मेरे आगे करके उसको बचाने के लिए(जो एक सहायक क्षत्रिय का अपने बचाव से बढकर धर्म है) मेरे ऊपर प्रहार करे इतनी आज्ञा पाकर भी फिर भी अर्जुन झिझकता है, पर अब कृष्ण ने उसको अपनी प्रतिज्ञा और सर्व क्षत्रियों से प्रमाणित धर्म व्यवस्था का निश्चय करा दिया है, तब वह तय्यार हुआ है॥

हनिष्यामि शपे सत्येन तेऽग्रतः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सव्यसाची महारथः। कालोऽयमिति संचिन्त्य शिखण्डिनमचोदयत्॥१४॥ अहं त्वा मनुयास्यामि परान् विद्रावयन् शरैः। अभिद्रव सुसंरब्धो भीष्मं भीमपराक्रमं ॥ १५ ॥ नहि ते संयुगे पीडां शक्तः कर्तुं महाबलः। तस्मादद्य महाबाहो यत्नाद् भीष्ममभिद्रव ॥ १६ ॥ अहत्वा समरे भीष्मं यदि यास्यसि मारिष। अवहास्योऽस्य लोकस्य भविष्यसि मया सह ॥ १७॥ नावहास्या यथा वीर भवेम परमाहवे। तथा कुरु रणे यत्नं साधयस्व पितामहं ॥१८॥ अहं ते रक्षणं युद्धे करिष्यामि महाबल। वारयन् रथिनः सर्वान् साधयस्व पितामहं ॥१९॥ द्रोणं च द्रोणपुत्रं च कृपं चाथ सुयोधनं। चित्रसेनं विकर्णं च सैन्धवं च जयद्रथं ॥२०॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ कांबोजं च सुदक्षिणं। भगदत्तं तथा शूरं मागधं च महाबलं॥२१॥ सौमदत्तिं तथा शूरं आर्ष्यशृङ्गिं च राक्षसं। त्रिगर्तराजं च रणे सह सर्वैर्महारथैः ॥२२॥ अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयं ॥ २३ ॥ कुरूंश्च सहितान् सर्वान् युध्यमानान् महाबलान्। निवारयिष्यामि रणे साधयस्व पितामहं ॥ २४ ॥

अर्थ—तब सूर्य के उदय होने पर सब पाण्डव शिखण्डी को आगे करके रण में निकले ॥ १ ॥ वैसे ही कौरव महारथी भीष्म को सारी सेनाओं के आगे करके पाण्डवों के सम्मुख गए ॥२॥ तब एक दूसरे का बध करते हुए दोनों दलों का यम के राष्ट्र को बढ़ाने वाला युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ ३ ॥ तब पाण्डव महारथी चारों ओर से आप की सेना को प्रबल वेग से पीडित करने लगे और वह पीछे हटती हुई चारों ओर भागने लगी ॥४॥ तब भीष्म रण में शत्रुओं से सेना के नाश को नहीं सहसके,और क्रुद्ध होकर

अनेक हाथी घोड़ों का बध किया ॥ ५ ॥ हे राजन् भीष्म ने शत्रुओं के जीतने वाले रथियों को रथों से, घुड़सवारों को घोड़ों से, हाथीसवारों को हाथीयों से, और दलों के दल प्यादों को मार गिराया ॥ ६-७ ॥ उस समय भीष्म भयंकर मूर्तिधारे हुए चारों ओर घूमते दीखते थे, और धनुष उनका गोलाकार ही दीखता था ॥ ८ ॥ हे राजन् ! भीष्म के इस कर्म को देखकर तेरे पुत्र बड़े विस्मित होकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥९॥ इस दसवें दिन शिखण्डी की रथसेना को तीखे बाणों से इस प्रकार दग्ध किया, जैसे अग्नि बन को ॥१०॥ शिखण्डी ने भीष्म की छाती पर तीन बाण मारे, और दांत पीसकर भीष्म से बोला ॥ ११ ॥ हे महाबाहो ! मैं जानता हूं, तुम क्षत्रियों का नाश करने वाले हो, जानकर भी तेरे प्रभाव को आज तेरे साथ युद्ध करूंगा॥१२॥ पाण्डवों का और अपना प्रिय करने के निमित्त आज मैं रण में तेरे संग युद्ध करूंगा, और तेरे सम्मुख सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि निःसंदेह तेरा बध करूंगा ॥ १३ ॥ शिखण्डी की इस बात को सुनकर महारथी अर्जुन ने यह समय है ऐसा सोचकर शिखण्डी को प्रेरणा की ॥ १४ ॥ हे महाबाहो ! मैं शत्रुओं की सारी सेना को तितर बितर करता हुआ तेरे पीछे २ रहूंगा, तुम अपने पूरे वेग से भीमकर्मा भीष्म पर धावा करो ॥ १५ ॥ वह महाबली आज तुझे संग्राम में पीड़ा नहीं देसकेगा, इसलिए हे महाबाहो ! यत्न से भीष्म पर धावा करो ॥१६॥ यदि आज तुम भीष्म को विना बध किये लौट चलोगे, तो सब लोग तुम्हारी और मेरी हंसी करेंगे ॥ १७ ॥ हे वीर जैसे रण में हम हंसी के योग्य न हों, वैसा यत्न करो, तुम पितामह को साधो ॥१८॥

हे महाबल ! रण में मैं सब योद्धाओं को रोकता हुआ तुम्हारी रक्षा करूंगा, तुम पितामह को मारो ॥ १९ ॥ द्रोणाचार्य अश्वत्थामा, कृपाचार्य,दुर्योधन, चित्रसेन,विकर्ण,सिन्धुराज जयद्रथ,अवन्ति के राजे विन्द,अनुविन्द,कंबोजराज सुदक्षिण,शूरवीर भगदत्त,महाबली मगधराज, शूर भूरिश्रवा,अलम्बुष राक्षस,और सारे महारथियों समेत त्रिगर्तराज को मैं रोकूंगा, जैसे समुद्र को पहाड़ी किनारा ॥२०-२१-२२-२३॥युद्ध करते हुए सारे महाबली कौरवों को मैं रोकूंगा, तुम पितामह को मारो ॥ २४ ॥

अध्याय २९ (व०११०-११८) भीष्म का घोर संग्राम

मूल-एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ । अभ्यद्रवत गांगेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितं ॥१॥ धृष्टद्युम्नस्तु सैन्यानि प्राक्रोशस्तु पुनः पुनः । अभ्यद्रवत संरब्धो भीष्ममेकं महारथः ॥ २ ॥ आगच्छमानान् समरे वार्योघान् प्रलयानिव । अवारयन्त संहृष्टास्तावकाः पुरुषर्षभाः ॥३॥ दुःशासनो महाराज भयं त्यक्त्वा महारथः । भीष्मस्य जीविताकांक्षी धनंजय मुपाद्रवत ॥४॥ तस्य पार्थो धनुश्छित्वा रथं चास्य त्रिभिः शरैः । आजघान ततः पश्चात् पुत्रं ते निशितैः शरैः ॥ ५ ॥ पीडितश्चैव पुत्रस्ते पाण्डवेन महात्मना । हित्वा पार्थं रणे तूर्णं भीष्मस्य रथमाव्रजत ॥ ६ ॥ अगाधे मज्जतस्तस्य द्वीपो भीष्मोऽभवत तदा ॥ ७ ॥ अथार्जुनो रणे भीमं योधयन्तं महारथान् । आससाद रणे वीरांस्तावकान् दश भारत ॥८॥ बीभत्सुस्तानथाविध्यद् भीमस्य प्रियकाम्यया । ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत ॥९॥ सुशर्मापि रणे पार्थं शरैर्नवभिराशुगैः । ननाद बलवन्नादं त्रायसयानो महद् बलं ॥ १० ॥ अन्ये च

रथिनः शूरा भीमसेनधनञ्जयौ । छिन्दयुर्निशितैर्बाणै रुक्मपुंखैरजिह्मगैः ॥ ११ ॥ तेषां च रथिनां मध्ये कौन्तेयौ भरतर्षभौ । क्रीडमानौ रथोदारौ चित्ररूपौ व्यदृश्यताम् ॥ १२ ॥ छित्वा धनूंषि शूराणां शरांश्च बहुधा रणे । पातयामासतु वीरौ शिरांसि शतशो नृणां ॥ १३ ॥ रथाश्च बहवो भग्ना हयाश्च शतशो हताः । गजाश्च सगजारोहाः पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥१४॥ततो भीष्मश्च राजा च कौसल्यश्च बृहद्बलः । समवर्तन्त संक्रुद्धा भीमसेनधनंजयौ॥१५

अर्थ—हे भरतवर ! जब शिखण्डी ने अर्जुन से ऐसे कहा तो उस ने अर्जुन के वचन को सुनकर भीष्म पर धावा किया ॥१॥ और महारथ धृष्टद्युम्न भी बार २ अपनी सेना को ललकारता हुआ क्रुद्ध हो भीष्म पर ही टूट पड़ा ॥ २ ॥ रण में प्रलय लाने वाली जल की बाढ की भांति उमड़े आते हुवों को गर्जते हुए तेरे योधों ने रोका ॥ ३ ॥ हे महाराज उस समय महारथ दुःशासन भीष्म के जीवन की रक्षा चाहता हुआ अर्जुन पर टूट पड़ा ॥४॥ पर अर्जुन ने पहले उसके धनुष को काट दिया और तीन बाणों से रथ को टुकड़े किया, तदनन्तर तीक्ष्ण बाण उस को मारने लगा ॥ ५ ॥ महात्मा अर्जुन से पीड़ित हुआ तेरा पुत्र रण में रण को छोड़कर झट भीष्म के रथ पर जा चढ़ा ॥ ६ ॥ अगाध जल में डूबते हुए के लिये उस समय भीष्म जहाज बना ॥७॥ अब अर्जुन रण में तुम्हारे दस महारथ वीरों से अकेले लड़ते हुए भीम के निकट पहुंचा ॥ ८ ॥ और भीम की सहायता के लिये उन दसों को बींध दिया । तब राजा दुर्योधन ने सुशर्मा को आज्ञा दी ॥ ९ ॥ सुशर्मा ने झट वहां पहुंच नौ बाण अर्जुन पर चलाए और बड़ी सेना को त्रास देता हुआ सिंहवत् गर्जा

॥ १० ॥ दूसरे भी बहुत से शूरवीर सुनहरी नोकों वाले तीक्ष्ण बाणों से भीम और अर्जुन को बींधने लगे ॥ ११ ॥ उन रथियों के मध्य में रथकुशल दोनों कुन्ती पुत्र खेलते हुए आश्चर्य रूप दीखते थे ॥ १२ ॥ वह दोनों रण में शूरों के धनुष और बाणों को काट २ कर उनके सिरों को गिरा रहे थे॥१३॥अनेक रथ टूटे, सैंकड़ों घोड़े मरे, और हाथी अपने सवारों समेत भूतल पर गिरे ॥ १४ ॥ तब स्वयं भीष्म, राजा दुर्योधन और कोसल राज बृहद्बल क्रुद्ध हो भीम और अर्जुन के सामने आए ॥१५॥

मूल—यथाग्निः सुमहानिद्धः कक्षे चरति सानिलः । तथा जज्वाल भीष्मोपि दिव्यान्यस्त्राण्युदीरयन् ॥ १६ ॥ निर्मनुष्यान् रथान् राजन् गजानश्वांश्च संयुगे । चकार समरे भीष्मः सर्व-शस्त्रभृतांवरः ॥ १७ ॥ तं क्षत्रिया महाराज ददृशुर्घोर माहवे । भीष्मं दहन्तं सैन्यानि पाण्डवानां महात्मनां ॥१८॥ सेनापतिस्तु समरे प्राह सेना महारथः । अभिद्रवत गांगेयं सोमकाः सृंजयैः सह ॥ १९ ॥ सेनापतिवचः श्रुत्वा सोमका सृंजयाश्चते । अभ्य-द्रवन्त गांगेयं शरवृष्ट्या समाहताः ॥२०॥ वध्यमानस्ततो राजन् पिता शान्तनवस्तदा । अमर्षवशमापन्नो योधयामास सृंजयान् ॥ २१॥ ततः सर्वं महीपानां क्षपयित्वा वरूथिनीं । विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीको निपातितः ॥ २२ ॥ एवं दश दिशो भीष्मः शर जालैः समन्ततः । अतीत्य सेनां पार्थानामवतस्थे चमूमुखे ॥ २३॥ स कृत्वा सुमहत् कर्म तस्मिन् वै दशमेऽहनि । सेनयोरन्तरे तिष्ठत्प्रगृहीतशरासनः ॥ २४ ॥ न चैनं पार्थिवाः केचिच्छक्ता राजन्निरीक्षितुं । मध्यं मासं यथा ग्रीष्मे तपन्तं भास्करं दिवि ॥

अर्थ—जैसे चमकी हुई बहुत बड़ी अग्नि वायु के साथ सूखे

घास में फिर जाती है, वैसे भीष्म भी दिव्य अस्त्रों को चलाता हुआ चमकता था ॥१६॥ शस्त्राधारियों में श्रेष्ठ भीष्म रथ हाथी और घोड़ों को मनुष्यों से शून्य करने लगे॥१७॥हे राजन् ! मारे क्षत्रिय युद्ध में पाण्डवों की सेना को दग्ध करते हुए भीष्म को बड़ा भयंकर देख रहे थे ॥ १८ ॥ तब महारथ सेनापति (धृष्टद्युम्न) ललकारे, कि हे सोमको हे सृंजयो भीष्म पर धावा करो॥ १९ ॥ सेनापति के वचन को सुनकर सोमक और सृंजय भीष्म की बाणवर्षा से हताहत होते हुए भी भीष्म पर टूट पड़े ॥२०॥ उन से पीड़ित हुए तेरे पिता क्रोधवश हुए सृंजयों से युद्ध करने लगे ॥२१॥ राजाओं की सेनाओं को मारकर विराट का प्यारा भाई शतानीक उन्होंने मार गिराया ॥ २२ ॥ इस प्रकार भीष्म दसों दिशाओं में बाणजाल फैलाते हुए पाण्डवों की सेना को चीरते हुए सेनामुख पर आडटे ॥ २३ ॥ दसवें दिन वह बड़ा भारी कर्म करके धनुष बाण लेकर दोनों सेनाओं के मध्य में खड़े होगए ॥ २४ ॥ उस समय हे राजन् पाण्डवदल में से कोई भी उस पर पर दृष्टि नहीं डाल सकता था, जैसे ग्रीष्म में दोपहर के समय तपते सूर्य पर ॥ २५ ॥

मूल—तथा चैनं पराक्रान्तमालोक्य मधुसूदनः । उवाच देवकीपुत्रः प्रीयमाणो धनञ्जयं ॥ २६ ॥ एष शान्तनवो भीष्मः सेनयोरन्तरे स्थितः । सन्निहत्य बलादेनं विजयस्ते भविष्यति ॥ २७ ॥ बलात् संस्तम्भयस्वैनं यत्रैषा भिद्यते चमूः । नहि भीष्मशरानन्यः सोढुमुत्सहते विभो ॥ २८ ॥ ततस्तस्मिन् क्षणे राजन् चोदितो वानरध्वजः । सध्वजं सरथं साश्वं भीष्ममन्तर्दधे शरैः ॥ २९ ॥ सचापि कुरुमुख्यानामृषभः पाण्डवेरितान् । शर-

व्रातैः शरव्रातान् बहुधा विदुधाव तान् ॥ ३० ॥ ततः शिखण्डी वेगेन प्रगृह्य परमायुधं। भीष्म मेवाभिदुद्राव रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥ ३१ ॥ सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । विराटो द्रुपदश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ३२ ॥ दुद्रुवुर्भीष्म मेवाजौ रक्षिता दृढधन्वना। अभिमन्युश्च समरे द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः॥ ३३ ॥ ते सर्वे दृढधन्वानः संयुगेष्वपलायिनः। बहुधा भीष्म-मानर्छुर्मार्गणैः क्षतमार्गणैः ॥ ३४ ॥ विधूय तान् बाणगणान् ये मुक्ताः पार्थिवोत्तमैः। पाण्डवानामदीनात्मा व्यगाहत वरूथिनीं ॥

अर्थ—इस प्रकार पराक्रम प्रकाशित करते हुए भीष्म को देखकर प्रसन्न हुए देवकीनन्दन कृष्ण अर्जुन से बोले—हे अर्जुन! यह भीष्म दोनों सेनाओं के बीच में आडटे हैं, अब तुम पूरे बल से इन का बध करके विजय लाभ करो ॥ २६, २७ ॥ जहां यह सेना छिन्न भिन्न होरही है, वहीं चलकर उसको रोको। हे विभो! भीष्म के बाणों को और कोई नहीं सह सकता है ॥ २८॥कृष्ण से प्रेरे हुए अर्जुन ने उसी क्षण बाणों की वर्षासे भीष्म को ध्वज रथ और घोड़ों समेत ढांप दिया ॥२९॥ वह भी कुरुवर अर्जुन से चलाए बाणजाल को बाणजाल से बहुधा काटने लगे ॥३३॥ तब अर्जुन की रक्षा में शिखण्डी उत्तम शस्त्रास्त्रों को लिये भीष्म की ही ओर दौड़े ॥ ३१ ॥ सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न विराट्, द्रुपद, नकुल, सहदेव यह सब भी अर्जुन से रक्षित हो कर भीष्म की ओर ही दौड़े ॥३२॥ अभिमन्यु और द्रौपदी के पांचों पुत्र यह सारे दृढ़ धनुषों वाले, संग्रामों में कभी पीछे न हटने वाले, प्रायः भीष्म पर ही तीखे बाणों को चलाने लगे ॥

३३, ३४ ॥ भीष्म भी राजाओं से छोड़े बाणसमूहों को काट कर पाण्डवों की सेना का अवगाहन करने लगे ॥ ३५ ॥

अध्याय ३० (व० ११९) भीष्म का रथ से गिरना

मूल—अताडयन्रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयाः। स विशीर्णतनुत्राणः पीड़ितो बहुभिस्तदा ॥ १ ॥ न विव्यथे तदा भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु। संदीप्तशरचापाग्नि रस्त्रप्रसृतमारुतः ॥२॥ विहृत्य रथसंघाना मन्तरेण विनिः सृतः। दृश्यतेस्म नरेन्द्राणां पुनर्मध्यगतश्चरन् ॥ ३ ॥ ततः किरीटी संरब्धो भीष्म मेवाभ्यधावत। शिखण्डिनं पुरस्कृत्यधनुश्चास्य समाच्छिनत् ॥४॥ शिखण्डीतुरणेश्रेष्ठो रक्ष्यमाणः किरीटिना। अविध्यद् दशभिर्भीष्मंच्छिन्नधन्वान माहवे ॥ ५ ॥ सारथिं दशभिश्चास्य ध्वजं चैकेन चिच्छेद ॥ ६ ॥ सोऽन्यत् कार्मुकमादाय गांगेयो वेगवत्तरं। तदप्यस्य शितैर्बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद फाल्गुनः ॥ ७ ॥ एवं स पाण्डवः क्रुद्ध आत्तमात्तं पुनः पुनः। धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य सव्यसाची परंतपः ॥ ८ ॥

अर्थ—सब सृञ्जय रण में इकट्ठे होकर भीष्म को ताड़ने लगे उसका कवच जर्जर हो गया, बहुतों ने मिलकर उसे पीड़ित किया ॥१॥ मर्मों की चोटों में भी भीष्म चलायमान न हुए, किन्तु उसकी धनुषबाणरूपी अग्नि अस्त्रों की पवन से मिलकर प्रचण्ड होकर फैलती गई ॥ २ ॥ भीष्म घूम कर रथसमूहों के अन्दर से बाहिर निकल जाते थे, और पुनः राजाओं के मध्य में ही घूमते दीखते थे ॥ ३ ॥ तब क्रुद्ध हुए अर्जुन शिखण्डी को आगे करके भीष्म की ओर ही दौड़े, और उसके धनुष को काट दिया ॥४॥ धनुष के कटने पर अर्जुन से रक्षित शिखण्डी ने दस बाणों से भीष्म को, दस से उसके सारथि को विद्ध किया, और एक से

उसकी ध्वजा को काट गिराया ॥५-६॥ तब भीष्म ने एक और अधिक वेगवाला धनुष लिया, वह भी इसका अर्जुन ने तीन तीखे बाणों से काट गिराया ॥७॥ इस प्रकार क्रुद्ध हुआ सव्यसाची अर्जुन धनुष को बार २ काटता गया ॥ ८ ॥

मूल–शिखण्डी तु महाराज भरतानां पितामहं, आजघानोरसि क्रुद्धो नवभिर्निशितैः शरैः ॥ ९॥ स तेनाभिहतः संख्ये भीष्मः कुरुपितामहः । नाकम्पत महाराज क्षितिकम्पे यथाऽचलः ॥१०॥ ततः प्रहस्य बीभत्सुर्व्याक्षिपन् गांडिवं धनुः । गांगेयं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ११ ॥ सोऽतिविद्धो महेष्वासो दुःशासनमभाषत ॥ १२ ॥ एष पार्थो रणे क्रुद्धः पाण्डवानां महारथः । शरैरनेकसाहस्रैर्मामेवाभ्यहनद्रणे ॥१३॥ वज्राशनिसमस्पर्शा अर्जुनेन शरा युधि । मुक्ताः सर्वेऽव्यवच्छिन्ना नेमे बाणाः शिखण्डिनः॥१४ वज्रदण्डसमस्पर्शा वज्रवेगदुरासदाः । मम प्राणानारुजन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः ॥ १५ ॥ अर्जुनस्य इमेबाणा नेमेबाणाः शिखण्डिनः । कृन्तन्ति मम गात्राणि माघमासे गवा इव ॥१६ ॥ सर्वेऽपि न दुःखं म कुर्युरन्ये नराधिपाः । वीरं गांडीव धन्वानमृते जिष्णुं कपिध्वजं ॥ १७ ॥ इति ब्रुवञ्छान्तनवोदिधक्षुरिव पाण्डवान् । शक्तिं भीष्मः स पार्थाय ततश्चिक्षेप भारत ॥१८ ॥ तामस्य विशिखैश्छित्वा त्रिधा त्रिभिरपातयत् । पश्यतां कुरुवीराणां सर्वेषां तव भारत ॥ १९ ॥ चर्माथादत्त गांगेयो जातरूपपरिष्कृतं । खड्गं चान्यतरप्रेप्सु मृत्युरग्रे जयाय वा ॥ २० ॥ तस्य तच्छतधा चर्म व्यधमत् सायकैस्तथा । रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवा भवत्॥२१॥ सिंहनादस्ततो घोरः पाण्डवानामभूत्तदा । तथैव तव पुत्राश्च सिंहनादांश्च चक्रिरे ॥ २२ ॥ तत्रासीत्तुमुलं युद्धं तावकानां परैः

सह। दशमेऽहनि राजेन्द्र भीष्मार्जुनसमागमे ॥ २३ ॥ आसीद्राजन् इवावर्तो मुहूर्तमुदधेरिव। सैन्यानां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरं २४ ॥ असौम्यरूपा पृथिवी शोणिताक्ता भवत् तदा। समं च विषमंचैव न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ २५॥ योधानामयुतं हत्वा तस्मिन् सदशमेऽहनि। अतिष्ठदाहवे भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु ॥ २६ ॥ ततः सेनामुखे तस्मिन् स्थितः पार्थो धनुर्धरः। मध्येन कुरुसैन्यानां द्रावयामास वाहिनीं ॥ २७ ॥ ततस्तमेकं बहवः परिवार्य समन्ततः। परिकाल्य कुरून् सर्वान् शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २८ ॥ निपातयत गृह्णीतयुध्यध्वमव कृन्तत। इत्यासीत् तुमुलः शब्दो राजन् भीष्मरथं प्रति ॥ २९ ॥ न तस्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यङ्गुलमन्तरं। एवं भूत स्तव पिता शरैर्विशकलीकृतः ॥ ३० ॥ शिताग्रैः फाल्गुनेनाजौ प्राक्शिराः प्रापतद्रथात्। किञ्चिच्छेषेदिनकरे पुत्राणां तव पश्यतां ३१ ॥ पतमाने रथाद्भीष्मे बभूव सुमहास्वनः ॥३२॥ संपतन्तमभि प्रेक्ष्य महात्मानं पितामहं। सह भीष्मेण सर्वेषां प्रापतन् हृदयानि नः ॥ ३३ ॥ स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् ॥ इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टः केतुः सर्वधनुष्मतां ॥ ३४ ॥ धरणीं न स पस्पर्श शरसंघैः समावृतः ३५ ॥ शरतल्पे महेष्वासं शयानं पुरुषर्षभं। रथात् प्रपतितं चैनं दिव्यो भावः समाविशत् ॥ ३६ ॥ पतन् स ददृशे चापि दक्षिणेन दिवाकरं। संज्ञां चोपालभद्वीरः कालं सञ्चिन्त्य भारत ॥ ३७ ॥ धारयामास च प्राणान् पतितोपि महीतले। उत्तरायणमन्विच्छन् भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ३८ ॥ एवं कुरूणां पतिते शृंगे भीष्मे महौजसि। पाण्डवाः सृंजयाश्चैवासिंहनादं प्रचक्रिरे॥३९॥संमोहश्चैव तुमुलः कुरूणामभवत् तदा। कृपदुर्योधनमुखानिःश्वस्य रुरुदुस्ततः॥

अर्थ—हे महाराज! शिखण्डी ने क्रुद्ध होकर नौ तीखे

बाण भीष्म पर प्रहार किए ॥९॥ शिखण्डी के बाणों से ताडित हुए भीष्म भूकम्प में पर्वत की भांति न डोले॥१०॥तब अर्जुन ने हंसकर गांडीव को घुमाकर पच्चीस क्षुद्रक बाण भीष्म के अर्पण किए ॥११॥ तब वह महा धनुषधारी अर्जुन के बाणों से अति विद्ध होकर दुःशासन से बोले ॥१२॥ यह तो अवश्य पाण्डव महारथ अर्जुन है, जो क्रुद्ध हुआ रण में मुझे बाणों से पीडित कर रहा है ॥१३॥ यह वज्र और विद्युत् के तुल्य स्पर्श वाले लगातार आते हुए बाण अर्जुन के हैं, यह बाण शिण्डखी के नहीं हैं ॥१४॥ वज्रदण्ड के तुल्य स्पर्शवाले वज्र के वेग की भांति न रोके जाने वाले यह बाण जो मेरे प्राणों को पीडित कर रहे हैं। यह बाण शिखण्डी के नहीं है ॥१५॥ यह बाण अर्जुन के हैं, यह बाण शिखण्डी के नहीं हैं, यह मेरे अंगों को इस तरह छेद रहे हैं,जैसे ककड़ी को उसके बच्चे* ॥१६॥ और सब राजे मिलकर भी मुझे दुःखित नहीं करसकते, बिना गांडीव धनुष वाले वीर अर्जुन के ॥१७॥ यह कह कर भीष्म ने पाडवों को मानो दग्ध कर देने की इच्छा से अर्जुन की ओर शक्तिबाणमारा॥१८॥ उस को वीर अर्जुन ने कुरुवीरों के देखतेही बाणों से तीन टुकड़े करके गिरा दिया ॥१९॥ इस के अनन्तर भीष्म ने मृत्यु के मुख में जाने वा विजय पाने की इच्छा से सुवर्ण भूषित ढाल और तलवार ली ॥२०॥ उसको लेकर रथ से उतरते २ ही अर्जुन ने ढाल तलवार को टुकड़े २ करके गिरा दिया. यह बड़ा आश्चर्य हुआ ॥२०॥ उस समय पाण्डवों का भयंकर सिंहनाद हुआ, और तेरे पुत्र भी सिंहनाद करने लगे ॥२२॥ उस दसवें दिन भीष्म

* ककड़ी जन्तु विशेष, जिस के बच्चे उस के पेट को चीरकर निकलते हैं, इस प्रकार यह बाण मुझे पीड़ा दे रहे हैं ।

अर्जुन का समागम होने पर आप के पक्ष वालों का पाण्डवों के साथ घोर संग्राम होने लगा ॥२३॥ लड़ती हुई एक दूसरे को मारती हुई सेनाओं के बीच में भीष्म का घुसना समुद्र में घुसे गङ्गा के भंवर की भांति प्रतीत हुआ ॥२४॥ पृथ्वी रुधिर से लिबड़ी हुई भयंकर रूप होगई, सम विषम उस समय कुछ नहीं प्रतीत होता था ॥२५॥ उस दसवें दिन दस सहस्र योधे मारकर भीष्म मर्मों के छिदते २ भी सेनाके आगे जाखडे हुए ॥२६॥ अनन्तर धनुर्धारी अर्जुन उस सेना के आगे खड़े होकर कुरुसेना को तित्तर वित्तर करने लगे ॥२७॥ उस समय सारे कौरवों को पीड़ित करके बहुतों ने अकेले भीष्म को घेर लिया और उनपर बाणों की झड़ी लगादी ॥२८॥ मारगिराओ, पकडो, लडो, काटो ऐसा घोर शब्द भीष्म के रथ प्रति सुनाई देने लगा ॥२९॥ उस के शरीर में बिन छिदा भाग दो अंगुल मात्र भी नहीं रहा, इस प्रकार तुम्हारे पिता अर्जुन के बाणों से क्षत विक्षत किये गए, तब वह कुछ दिन शेष रहते तुम्हारे पुत्रों के देखते पूर्व की ओर सिर किये रथ से गिरे ॥३०-३१॥ भीष्म के रथ से गिरते ही बड़ी ध्वनी हुई ॥३२॥ भीष्म पितामह को गिरते देखकर उन के साथ ही हम सबके हृदय भी गिरगए॥३३॥सारे धनुर्धारियों के झंडे रूप वह महाबाहु छोड़ हुए इन्द्रध्वज की भांति भूमिपर आगिरे बाणों से व्याप्त थे, इसलिए गिरकर भी भूमि को नहीं छुए॥३५॥ रथ से गिर बाणशय्या पर लेटे उस महाधनुर्धारी के हृदय में दिव्य भाव का सञ्चार हुआ ॥ ३६ ॥ गिरते समय उस वीर ने देखा, कि सूर्य दक्षिण में है, सो काल को विचार कर उसका ध्यान आया॥ ३७॥ और पृथिवी पर गिरे हुए भी कुरुपितामह भीष्म उत्तरायण

(में देह त्यागने) की इच्छा से प्राणों को धारण किये रहे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार कौरवों के शिखरभूत महाबली भीष्म के गिरने पर पाण्डव और संजयों ने सिंहनाद किये॥ ३९॥ कौरवों को बड़ी घबराहट हुई, कृपाचार्य और दुर्योधन आदि लंबे सांस भरकर रोने लगे॥ ४०

अध्याय ३१ (व०१२०) भीष्म को सिरहाना देना

मूल—दृष्ट्वा च पतितं भीष्मं पुत्रो दुःशासनस्तव । उत्तमं जवमास्थाय द्रोणानीक मुपाद्रवत् ॥ १ ॥ ततो द्रोणाय निहतं भीष्ममाचष्ट कौरवः । द्रोणस्तत्राप्रियं श्रुत्वा मुमोह भरतर्षभ ॥ २ ॥ स संज्ञामुपलभ्याशु भारद्वाजः प्रतापवान् । निवारयामास तदा स्वान्यनीकानि मारिष ॥ ३ ॥ निवृत्तेषु च सैन्येषु पारम्पर्येण सर्वशः । निर्मुक्तकवचाः सर्वे भीष्ममीयुर्नराधिपाः ॥ ४ ॥ तेतु भीष्मं समासाद्य शयानं भरतर्षभ । अभिवाद्यावतिष्ठन्त पाण्डवाः कुरुभिः सह ॥ ५ ॥ अथ पाण्डून् कुरूंश्चैव प्रणिपत्याग्रतः स्थितान् । अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ६ ॥ स्वागतं वो महाभागाः स्वागतं वो महारथाः । तुष्यामि दर्शनाच्चाहंयुष्माक ममरोपमाः ॥ ७ ॥ अभिनन्द्य स तानेवं शिरसा लम्बताऽब्रवीत् । शिरोमेलम्बतेऽत्यर्थ मुपधानं प्रदीयतां ॥ ८ ॥ ततो नृपाः समाजह्रुस्तनूनिचमृदूनि च । उपधानानि मुख्यानि नैच्छत् तानि पितामहः॥९॥ अथाब्रवीन्नरव्याघ्रः प्रहसन्निव तान् नृपान् । नैतानि वीरशय्यासु युक्तरूपाणि पार्थिवाः ॥ १० ॥ ततो वीक्ष्य नरश्रेष्ठमभ्यभाषत पाण्डवं । उपधानं कुरुश्रेष्ठ फाल्गुनोपदधत्स्व मे ॥ ११ ॥ शयनस्यानुरूपं वै शीघ्रं वीर प्रयच्छ मे । फाल्गुनोऽपि तथेत्युक्त्वा व्यवसायमरोचयत् ॥ १२॥ अनुमान्य महात्मनं भरतानां महारथं । त्रिभिस्तीक्ष्णैर्महा वेगैरन्वगृह्णाच्छिरः शरैः ॥ १३ ॥ अभिप्रायेतुविदिते धर्मात्मा सव्यसाचिना । अतुष्यद् भरतश्रेष्ठो भीष्मो धर्मार्थ

तत्त्ववित् ॥ १४ ॥ प्राह सर्वान् समुद्वीक्ष्य भरतान् भारतं प्रति । शयानस्यानुरूपं मे पाण्डवोपहितं त्वया ॥ १५ ॥ एवमेव महाबाहो धर्मेषु परितिष्ठता। त्वमन्यं क्षत्रियेणाजौ शरतल्पगतेन वै ॥१६॥ एवमुक्त्वा तु बीभत्सुं सर्वांस्तानब्रवीद्वचः । राज्ञश्च राजपुत्रांश्च पाण्डवानभिसंस्थितान् ॥ १७ ॥ पश्यध्वमुपधानं मे पाण्डवेनाभिसंधितं । शिश्येऽहमस्यां शय्यायां यावदावर्तनं रवेः१८दिशं वैश्रवणाक्रान्तां यदा गन्ता दिवाकरः । विमोक्ष्येहं तदा प्राणान् सुहृदःसुप्रियानिव १९ ॥ परिखा खन्यता मत्र ममावसदने नृपाः । उपासिष्ये विवस्वन्त मेवं शरशताचितः ॥ २० ॥ उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः । सर्वोपकरणैर्युक्ताःकुशलैः साधुशिक्षिताः ॥ २१ ॥ तान्दृष्ट्वा जान्हवीपुत्रः प्रोवाच तनयं तव । धनं दत्त्वा विसृज्यन्तां पूजयित्वा चिकित्सकाः ॥ २२ ॥ एवं गते मयेदानीं वैद्यैःकार्यमिहास्तिकिं । क्षत्रधर्मे प्रशस्तांहि प्राप्तोस्मि परमां गतिं ।२३। नैष धर्मो महीपालाः शरतल्पगतस्य मे । एभिरेवशरैश्चाहं दग्धव्योऽस्मि नराधिपाः ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव । वैद्यान् विसर्जयामास पूजयित्वा यथार्हतः ॥ २५ ॥ तेऽभिवाद्य ततो भीष्मं कृत्वा च त्रिःप्रदक्षिणं । विधाय रक्षां भीष्मस्य सर्व एव समन्ततः ॥२६॥ निवेशायाभ्युपागच्छन् सायान्हे रुधिरोक्षिताः॥२७॥

अर्थ—भीष्म को गिरा हुआ देख कर तुम्हारे पुत्र दुःशासन बड़े वेग से द्रोण की सेना की ओर दौड़े ॥ १ ॥ और द्रोण को भीष्म का गिरना जा बतलाया, द्रोण इस अप्रिय को सुन कर अचेत से होगए ॥ २ ॥ पर जल्दी ही सावधान होकर प्रतापी द्रोणाचार्य ने अपनी सेनाओं को हटा लिया ॥ ३ ॥ क्रमशः सब ओर से सेनाएं हटगईं, तो सभी राजे कवच उतार कर भीष्म के

निकट पहुंचे ॥ ४ ॥ लेटे हुए भीष्म के निकट होकर वह पाण्डव और कौरव प्रणाम करके खड़े होगए ॥ ५ ॥ तब प्रणाम करके आगे खड़े हुए कौरवों और पाण्डवों से धर्मात्मा भीष्म यह वचन बोले ॥ ६ ॥ हे महानुभावो तुम्हारा स्वागत हो, हे महारथियो तुम्हारा स्वागत हो, हे देवतुल्य वीरो तुम्हारे दर्शन से मैं संतुष्ट हुआ हूं ॥ ७ ॥ इस प्रकार उन से बात करके लटकते हुए सिर के साथ बोले। मेरा सिर बहुत लटक रहा है, नीचे सिरहाना दीजिये ॥ ८ ॥ तब तेरे पुत्र महीन और नर्म उत्तम सिरहाने ले आए,पर पितामह ने उन्हें पसन्द न किया ॥९॥ और मुसकराकर उन राजाओं से बोले हे राजाओ ! ये वीरशय्या के योग्य नहीं हैं ॥ १० ॥ और फिर वीरवर अर्जुन से बोले, हे कुरुवर तुम मेरे सिर के नीचे शीघ्र वीरशय्या के योग्य सिरहाना दो, अर्जुन ने तथास्तु कह कर कार्य का निश्चय किया ॥ ११-१२ ॥ और भरतमहारथ की अनुमति पाकर तीन तीखे वेग वाले बाणों से उनके सिर के नीचे सहारा दे दिया, ॥ १३ ॥ इस प्रकार जब अर्जुन ने उनके अभिप्राय के अनुसार किया, तो धर्म अर्थ का मर्म जानने वाले भरतवर भीष्म बड़े प्रसन्न हुए ॥१४॥ और सब राजाओं की ओर देखकर अर्जुन से बोले, हे अर्जुन ! तुम ने शय्या के योग्य सिरहाना दिया है ॥ १५ ॥ हे महाबाहो ! धर्म में निष्ठा वाले क्षत्रिय को शरशय्या पर ठीक इसी प्रकार सोना चाहिये ॥ १६ ॥ अर्जुन को ऐसे कहकर फिर सामने खड़े सारे राजाओं राजपुत्रों और पाण्डवों से बोले ॥ १७ ॥ देखो अर्जुन ने मेरे सिर के नीचे कैसा सिरहाना दिया है, मैं इस शय्या पर लेटूंगा, जब तक सूर्य (उत्तर को) नहीं लौटता है ॥ १८ ॥ जब

सूर्य उत्तर दिशा को जाएगा, तब मैं प्यारे सुहृदों जैसे प्राणों को छोड़ूंगा ॥ १९ ॥ हे राजाओ इस स्थान पर मेरे लिए खाई खुदवाओ, इस प्रकार अनेक बाणों से व्याप्त हुआ मैं सूर्य का सेवन करूंगा ॥ २० ॥ अब शल्य निकालने में चतुर उत्तम शिक्षा पाए वैद्य सारे साधन उपसाधन साथ लेकर आ उपस्थित हुए ॥२१॥ उन को देख कर भीष्म दुर्योधन से बोले, उन वैद्यों को सन्मान पूर्वक धन देकर विदा कर दीजिये ॥ २२ ॥ ऐसी स्थिति में मुझे वैद्यों से क्या क्षात्रधर्म में जो उत्तम गति मानी गई है, वह मैं ने प्राप्त की है ॥ २३ ॥ हे राजाओ मैं बाणशय्या पर हूं अब यह मेरा धर्म नहीं। अब तो हे राजाओ इन्हीं बाणों के साथ मेरा दाह करना ॥ २४ ॥ यह वचन सुनकर दुर्योधन ने वैद्यों को यथायोग्य पूजकर विदा किया ॥ २५ ॥ तब वह सब भीष्म को अभिवादन करके और तीनबार प्रदक्षिणा करके और भीष्म की रक्षा का विधान करके सायं समय रुधिर से भीगे हुए आराम के लिए गए ॥ २६–२७ ॥

अध्याय ३२(व०१२१) दुर्योधन को भीष्म का उपदेश

मूल—व्युष्टायां तु महाराज शर्वर्यां सर्वपार्थिवाः । पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च उपातिष्ठन् पितामहं ॥ १ ॥ तं वीरशयने वीरं शयानं कुरुसत्तमं । अभिवाद्योपतस्थुर्वै क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभं ॥ २ ॥ भीष्मस्तु वेदनां धैर्यान्निगृह्य भरतर्षभ । पानीयमिति सम्प्रेक्ष्य राज्ञस्तान् प्रत्यभाषत ॥ ३ ॥ उपानीतं तु पानीयं दृष्ट्वा शान्तनवोऽब्रवीत् । नाद्यातीता मया शक्या भोगाः केचन मानुषाः॥ ४ ॥अर्जुनं द्रष्टुमिच्छामीत्यभ्यभाषत भारत ॥ ५ ॥ अथोपेत्य महाबाहुरभिवाद्य पितामहं। अतिष्ठत् प्राञ्जलिःप्रह्वः किं करोमीतिचाब्रवीत्

॥ ६ ॥ तं दृष्ट्वा पाण्डवं राजन्नभिवाद्याग्रतः स्थितं । अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः प्रीतो धनञ्जयं ॥ ७ ॥ दह्यतीव शरीरं मे संवृतस्य तवेषुभिः । मर्माणि परिदूयन्ते मुखं च परिशुष्यति॥ ८ ॥ वेदनार्त शरीरस्य प्रयच्छापो ममार्जुन । त्वंहि शक्तो महेष्वास दातुमापो यथाविधि ॥९॥ अर्जुनस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारुह्य वीर्यवान् । अधिज्यं बलवत् कृत्वा गांडीवं व्याक्षिपद्धनुः ॥ १० ॥ ततः प्रदक्षिणं कृत्वा रथेन रथिनांवरः । शयानं भरतश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतांवरं ॥ ११॥ पर्जन्यास्त्रेण संयोज्य सर्वलोकस्य पश्यतः । अविध्यत् पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे ॥ १२ ॥ उत्पपात ततो धारा वारिणो विमला शुभा । शीतस्यामृतकल्पस्य दिव्यगन्धरसस्य च ॥ १३ ॥ अतर्पयत्ततः पार्थःशीतया जलधारया । भीष्मं कुरूणामृषभं दिव्यकर्म पराक्रमं ॥ १४ ॥ तत्कर्म प्रेक्ष्य बीभत्सोरतिमानुषविक्रमं । विस्मयाच्चोत्तरीयाणि व्याविध्यन् सर्वतो नृपाः ॥ १५ ॥

अर्थ—हे महाराज जब रात बीती, तब पाण्डव और कौरव राजे पितामह के निकट आए ॥ १ ॥ वीर शय्या पर सोए उस क्षत्रियश्रेष्ठ कुरुवर वीर को अभिवादन करके निकट बैठगए॥२॥ भीष्म ने अपनी वेदना को दबा कर उन राजाओं को देखकर उन से पानी मांगा ॥ ३ ॥ निकट लाए गए पानी को देखकर भीष्म बोले, हे पुत्रो अब बीत चुका मानुष भोग मैं नहीं ग्रहण करूंगा ॥ ४ ॥ और फिर कहा मैं अर्जुन को देखना चाहता हूं ॥ ५॥ उसी समय अर्जुन सामने आ पितामह को अभिवादन करके हाथ जोड़ झुककर खड़ा होगया और पूछा क्या आज्ञा है ॥ ६ ॥ अर्जुन को अभिवादन करके आगे खड़ा देखकर प्रसन्न हुए धर्मात्मा

भीष्म अर्जुन से बोले ॥७॥ अर्जुन तेरे बाणों से मेरा शरीर जल रहा है, मर्म स्थानों में पीड़ा हो रही है, मुख सूख रहा है ॥ ८ ॥ वेदना से पीड़ित शरीर वाले को जल दो, हे महाधनुर्धारी तुम यथाविधि जल देने को समर्थ हो ॥ ९ ॥ अर्जुन तथास्तु कहकर रथ पर आरूढ़ हुए, गांडीव धनुष पर चिल्ला चढ़ाकर उसको बल से घुमाया, और तब उस रथिवर ने शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ लेटे हुए भीष्म की रथ के साथ तीन बार प्रदक्षिणा ली, और सब के सामने धनुष में पर्जन्य अस्त्र जोड़ कर भीष्म के दाईं ओर की पृथिवी को विद्ध किया। तब दिव्य गन्ध रस वाले अमृतसदृश निर्मल शीतल जल की धारा निकल आई ॥ १०–१३ ॥ उस शीतल जलधारा से अर्जुन ने दिव्यकर्म पराक्रम वाले कुरुवर भीष्म को तृप्त किया ॥ १४ ॥ अर्जुन के इस मानुषातीत पराक्रम को देखकर चारों ओर से क्षत्रिय अपने दुपट्टों को उछालने लगे ॥१५॥

मूल– तृप्तः शान्तनवश्चापि राजन् बीभत्सुमब्रवीत्। सर्वपार्थिववीराणां सन्निधौ पूजयन्निव ।१६। धनुर्धराणामेकस्त्वं पृथिव्यां प्रवरो नृषु । आदित्यस्तेजसां श्रेष्ठः श्रेष्ठस्त्वमसि धन्विनां ।१७। दृष्टं दुर्योधनेनत्वे यथा पार्थेन धीमता । जलस्य धारा जनिता शीतस्यामृतगन्धिनः ।१८। आग्नेयं वारुणं सौम्यं वायव्यमथ वैष्णवं। ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं प्रजापतेः १९ धातुस्त्वष्टुश्च सवितुर्वैवस्वत मथापिवा। सर्वस्मिन् मानुषे लोके वेत्त्येको हि धनञ्जयः ।२०। कृष्णो वा देवकीपुत्रो नान्यो वेदेह कश्चन ।२१। अशक्याः पाण्डवस्तात युद्धे जेतुं कथञ्चन । अमानुषाणि कर्माणि यस्यैतानि महात्मनः ।२२। तेन सत्त्ववता संख्ये

शूरेणाहवशोभिना । कृतिना समरे राजन् सन्धि र्भवतु माचिरं । २३ । युद्धं मदन्तमेवास्तु तात संशाम्य पाण्डवैः । एतत्तु रोचतां वाक्यं यदुक्तोसि मयाऽनघ । २४ । त्यक्त्वा मन्युं व्युपशाम्यस्व पार्थैः पर्याप्त मेतद्यत्कृतं फाल्गुनेन । भीष्मस्यान्ताद्स्तु वः सौहृदंच जीवन्तु शेषाः साधु राजन् प्रसीद । २५ । राज्यास्यार्धं दीयतां पाण्डवाना मिन्द्रप्रस्थं धर्मराजोऽभियातु । ममावसाना-च्छान्तिरस्तु प्रजानां संगच्छन्तां पार्थिवाः प्रीतिमन्तः । २६ । एतद्वाक्यं सौहृदादापगेयो मध्ये राज्ञां भारतं श्रावयित्वा । तूष्णीमासीच्छल्य संतप्त मर्मा योज्यात्मानं वेदनां सन्नियम्य । २७ । धर्मार्थ सहितं वाक्यं श्रुत्वाहित मनामयं । नारोचयत पुत्रस्ते मुमूषुरिव भेषजं ।२८। ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्वानालयान् पुनः तूष्णीं भूते महाराज भीष्मे शान्तनुनन्दने । २९ ।

अर्थ—हे राजन् । भीष्म भी तृप्त होकर सब राजवीरों के सामने अर्जुन को सम्मानित करते हुए बोले । १६ । पृथिवी में सारे धनुर्धारियों में तुम प्रधान हो, सूर्य तेजस्वियों में श्रेष्ठ है तुम धनुर्धारियों में श्रेष्ठ हो । १७ । हे दुर्योधन । तुम ने देख लिया है, जैसे अर्जुन ने अमृततुल्यगन्धवाले शीतल जल की धारा उत्पन्न की है ।१८। अग्नेय, वारुण, सौम्य, वायव्य, वैष्णव, ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म, पारमेष्ठ्य, प्राजापत्य, धात्र, त्वाष्ट्र सावित्र और वैवस्वत इन सारे अस्त्रों को इस मानुष समुदाय में एक अर्जुन ही जानते हैं, वा देवकी पुत्र कृष्ण जानते हैं, और कोई नहीं जानता है । १९—२१ । हे तात ! जिस महात्मा के ऐसे अमानुष कर्म हैं वह युद्ध में किसी तरह नहीं जीता जासकता है ।२२। ऐसे रणबांकुरे दिलेर बुद्धिमान् शूरबीर के साथ हे

राजन्! तुम्हारी सन्धि होनी चाहिये, इस में विलम्ब नहीं होना चाहिये ।२३। हे तात! युद्ध मेरी बलि के साथ समाप्त हो, अब पाण्डवों के साथ मेल करो, हे निष्पाप! जो बात मैंने कही है इसे पसन्द करो ।२४। क्रोध को त्याग कर पाण्डवों से मेल करो यही बहुत है जो कुछ अर्जुन ने किया है, भीष्म के अन्त के साथ तुम्हारा सौहार्द गठे, शेष सब जीते रहें, हे राजन् प्रसन्नता करो ।२५। आधा राज्य पाण्डवों को दीजिये, धर्मराज इन्द्रप्रस्थ को जाए, मेरे अवसान से प्रजाओं को शान्ति हो, सब राजे परस्पर प्रीतिवाले हुए संगत हों ।२६। भीष्म सब राजओं के मध्य में सौहार्दसे यह वचन सुना कर शल्यों की पीड़ा से पीड़ित हुए वेदना को रोक कर आत्मा को स्थिर करके चुप होगए ।२७।धर्म अर्थ से युक्त, इस कल्याणमय हित वचन को सुन कर दुर्योधन की उस में रुचि नहीं हुई, जैसे मुमूर्षु को औषध में ।२८। हे महाराज! तब भीष्म के मौन करने पर वह सारे राजे फिर अपने स्थानों को गए ॥ २९ ॥

॥ भीष्मपर्व समाप्त हुआ ॥

द्रोणपर्व ॥

अ०१(व०१-११) संक्षेप से द्रोण के युद्ध और बध का वर्णन

मूल—निहतं पितरं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनाधिपः । लेभे न शान्तिं कौरव्यश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ १ ॥ तस्य चिन्तयतो दुःख मनिशं पार्थिवस्य तत् । आजगाम विशुद्धात्मा पुनर्गावल्गणिस्तदा ॥ २ ॥ धृतराष्ट्र उवाच—देवव्रते तु निहते कुरूणा मृषभे तदा । किमकार्षुर्नृपतयस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३ ॥ संजय उवाच—पतिते भरतश्रेष्ठे बभूव कुरुवाहिनी । द्यौरिवापेतनक्षत्रा हीनं खमिव वायुना ॥ ४ ॥ कर्णं हि कुरवोऽस्मार्षुः सहि देवव्रतोपमः। सहि नायुध्यत तदा दशाहानि महायशाः ॥५॥ कर्ण उवाच—अयं च सर्व योधाना माचार्यः स्थविरो गुरुः।युक्तः सेनापतिं कर्तुं द्रोणः शस्त्रभृतांवरः ॥ ६ ॥ को हि तिष्ठति दुर्धर्षे द्रोणे शस्त्रभृतांवरे । सेनापतिः स्यादन्योऽस्माच्छुक्रांगिरसदर्शनात् ॥ ७ ॥ कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा । सेनामध्यगतं द्रोण मिदं वचन मब्रवीत् ॥ ८ ॥ वर्ण श्रैष्ठ्यात् कुलोत्पत्त्या श्रुतेन वयसाधिया । वीर्याद्दाक्ष्याद धृष्यत्वादर्थ ज्ञानान्नयाज्जयात् ॥ ९ ॥ तपसा च कृतज्ञत्वाद्वृद्धः सर्व गुणैरपि । युक्तो भवेत्समो गोप्ता राज्ञा मन्यो न विद्यते ॥ १० ॥ स भवान् पातु नः सर्वान् देवानिव शतक्रतुः । भवन्नेत्राः पराञ्जेतु मिच्छामो द्विज सत्तम ॥११॥ एवमुक्ते ततो द्रोणं जयेत्यूचुर्नराधिपाः । सिंहनादेन महता हर्षयन्तस्तवात्मजं ॥ १२ ॥

अर्थ—पिता का मरना सुन कर शोक में डूबे हुए राजा धृतराष्ट्र को शान्ति नहीं मिलती थी ॥ १ ॥ निरन्तर दुःख में डूबे

हुए उस नरपति के पास विशुद्धात्मा संजय फिर आ पहुंचे ॥२॥ तब धृतराष्ट्र बोले-हे संजय कुरुवर देवव्रत के मरने पर राजाओं ने क्या किया यह मुझे बतलाओ ॥ ३ ॥ संजय बोले—भरत श्रेष्ठ भीष्म के गिरने पर कौरवसेना नक्षत्र हीन द्यौ की भांति वा वायु शून्य आकाश की भांति होगई ॥ ४ ॥ सब कौरवों ने उस समय कर्ण को स्मरण किया, वह भीष्म के समान था, और उस महायशस्वी ने दस दिन युद्ध नहीं किया था ॥ ५ ॥ कर्ण बोले-यह द्रोणाचार्य सब योद्धाओं के गुरु हैं और वृद्ध हैं, इन को सेनापति बनाना योग्य है ॥ ६ ॥ शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, शुक्र और बृहस्पति समान इस दुर्धर्ष द्रोणाचार्य की उपस्थिति में और कौन सेनापति होसकता है ॥ ७ ॥ कर्ण के वचन को सुन कर राजा दुर्योधन सेना के मध्य में स्थित द्रोणाचार्य से यह वचन बोले॥ ८ ॥ आप वर्ण की श्रेष्ठता से, कुलीनता से, शास्त्रज्ञान से, आयु से, बुद्धि से, शक्ति से, निपुणता से, न दबाया जानेसे, अर्थ के ज्ञान से, नीति से, जय से, तप से, कृतज्ञता से, निदान सभी गुणों से बड़े हैं, आप के समान इन राजाओं का रक्षक और कोई हो नहीं सकता है ॥ ९-१० ॥ सो आप हम सब की रक्षा करें, जैसे कि इन्द्र देवताओं की करते हैं । हे द्विजवर आप के नेतृत्व में हम शत्रुओं को जीतना चाहते हैं ॥ ११ ॥ ऐसा कहने पर आप के पुत्र को हर्षित करते हुए सब राजाओं ने उच्चध्वनि से द्रोणाचार्यकी जय बुलाई ॥ १२ ॥

मूल—द्रोण उवाच--वेदं षडंगं वेदाह मर्थविद्यां च मानवीं। त्रैयम्बक मथेष्वस्त्रं शस्त्राणि विविधानि च ॥ १३ ॥ ये चाप्युक्ता मयि गुणा भवद्भिर्जय कांक्षिभिः। चिकीर्षुस्तानहं सर्वान् योधयि-

ष्यामि पाण्डवान् ॥ १४ ॥ स एव मभ्यनुज्ञातश्चक्रे सेनापतिं ततः। द्रोणं तव सुतो राजन् विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १५ ॥ ततो वादित्र घोषेण शङ्खानां च महास्वनैः । प्रादुरासीत्कृते द्रोणे हर्षः सेनापतौ तदा ॥ १६ ॥ सैनापत्यं तु संप्राप्य भारद्वाजो महारथः।युयुत्सुर्व्यूह्य सैन्यानि प्रायात् तव सुतैः सह ॥ १७ ॥ प्रवरः सर्वयोधानां बलेषु बलमादधत्। ययौ वैकर्तनः कर्णः प्रमुखे सर्व धन्विनां ॥ १८ ॥ न भीष्मव्यसनं कश्चिद् दृष्ट्वा कर्ण ममन्यत। विशोकाश्चा भवन् सर्वे राजानः कुरुभिः सह ॥ १९ ॥ भीष्मेण तु रणे पार्थाः पालिता बाहुशालिना । तांस्तु कर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्नाशयिष्यति संयुगे ॥ २० ॥ एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योऽन्यं हृष्टरूपा विशांपते। राधेयं पूजयन्तश्च प्रशंसन्तश्च निर्ययुः ॥ २१ ॥ अस्माकं शकटव्यूहो द्रोणेन विहितोऽभवत् । परेषां क्रौञ्च एवासीद् व्यूहो राजन् महात्मनां ॥ २२ ॥ व्यूह प्रमुखतस्तेषां तस्थतुः पुरुषर्षभौ । वानरध्वज मुच्छ्रित्य विष्वक्सेन धनञ्जयौ॥ २३ ॥ ततः प्रववृते युद्धं परस्पर जयैषिणां । कुरु पाण्डव सैन्यानां शब्देनापूरयज्जगत् ॥ २४ ॥

अर्थ—द्रोण बोले—वेद, छः अंग, मनुप्रणीत अर्थ विद्या, त्र्यम्बक प्रणीत अस्त्र शस्त्र, और भांति २ के शस्त्र मैं जानता हूं ॥ १३ ॥ और जो गुण आपने मुझ में जय की अभिलाषा से कहे हैं,उन सब को पूरा करने की इच्छा से मैं पाण्डवों से युद्ध करूंगा ॥ १४ ॥ इस प्रकार अनुमति पाकर दुर्योधन ने यथाविधि कर्मानुसार द्रोण को सेनापति बनाया॥ १५ ॥ द्रोण के सेनापति बनने पर बाजों की और शंखों की ध्वनियां होने लगीं ॥ १६ ॥ सेनापति पद को पाकर महारथ द्रोण सेना का व्यूह रच कर आपके

पुत्रों के साथ रण पर गए॥ १७ ॥ सब योधाओं में श्रेष्ठ कर्ण सेना को प्रोत्साहन करते हुए सब धनुर्धारियों के आगे चले॥१८॥ कर्ण को देख कर किसी को भी भीष्म का घाटा नहीं प्रतीत होता था, सभी राजे कौरवों समेत शोक से रहित हो गए ॥ १९ ॥ भुजशाली भीष्म तो रण में पाण्डवों को बचाते थे, किन्तु कर्ण अपने तीखे बाणों से रण में उन का नाश करेंगे ॥ २० ॥ इस प्रकार वह आपस में बातें करते प्रसन्न हुए कर्ण का सम्मान करते और प्रशंसा करते हुए निकले ॥ २१ ॥ द्रोण ने हमारी सेना का शकट व्यूह रचा था, और मनस्वी शत्रुओं का क्रौञ्च व्यूह ही था ॥ २२ ॥ व्यूह के आगे पुरुषवर कृष्ण और अर्जुन अपने झंडे को ऊंचा करके डटे ॥ २३ ॥ तब विजय चाहती हुई कौरव पाण्डव सेनाओं का आपस में युद्ध प्रवृत्त हुआ,जिस का शब्द भूमि आकाश में भर गया ॥ २४ ॥

मूल—संरक्ष्यमाणां तां दृष्ट्वा पाण्डवैर्वाहिनीं रणे । व्यावृत्य चक्षुषी कोपाद् भारद्वाजोऽन्ववैक्षत ॥ २५ ॥ स तीव्रं कोपमास्थाय रथे समरदुर्जयः । व्यधमत्पाण्डवानीक मभ्राणीव सदागतिः ॥ २६ ॥ रथानश्वान्नरान्नागानभिधावन्नितस्ततः । चचारोन्मत्तवद् द्रोणो वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥ २७ ॥ तस्य शोणितदिग्धांगाः शोणास्ते वातरंहसः। आजानेया हया राजन्नविश्रान्ता ध्रुवं ययुः ॥ २८ ॥ उत्कृत्य च शिरांस्युग्रान् बाहूनपि सुभूषणान्। चक्रेऽचिरेण च द्रोणो महीं शोणितकर्दमां॥ २९ ॥ एवं रुक्मरथः शूरो हत्वा शत सहस्रशः। पाण्डवानां रणे योधान् पार्षतेन निपातितः ॥ ३० ॥ अक्षौहिणी मभ्यधिकां शूराणामनिवर्तिनां । निहत्य पश्चाद्धृतिमान गच्छत्परमां गतिं ॥ ३१ ॥ पाण्डवास्तु जयं

लब्ध्वा सिंहनादान् प्रचक्रिरे । सिंहनादेन महता समकम्पत मेदिनी ॥३२॥ धृतराष्ट्र उवाच—किं कुर्वाणं रणे द्रोणं जघ्नुः पाण्डव सृंजयाः । तथा निपुणमस्त्रेषु सर्वशस्त्र भृतामपि ॥३३॥ रथ भंगो बभूवास्य धनुर्वाशीर्य तास्यतः। प्रमत्तो वा भवद् द्रोणस्ततो मृत्यु मुपेयिवान् ॥ ३४ ॥ व्यक्तं हि दैवं बलवत्पौरुषा दिति मे मातिः । यद्द्रोणो निहतः शूरः पार्षतेन महात्मना ॥ ३५॥ न नूनं पर दुःखेन म्रियते कोपि सञ्जय । यत्र द्रोणमहं श्रुत्वा हतं जीवामि मन्दधीः ॥ ३६॥दुष्टानां प्रतिषेद्धाऽऽसीद्धार्मिकाणां च रक्षिता । योऽहासीत्कृपणस्यार्थे प्राणानपि परंतपः ॥ ३७ ॥ यं द्वौ न जहतः शब्दौ जीवमानं कदाचन । ब्राह्मश्च वेद कामानां ज्याघोषश्च धनुष्मतां ॥ ३८॥मुह्यतेमे मनस्तात कथा तावन्निवार्यतां। भूयस्तु लब्ध संज्ञस्त्वां परिपृच्छामि सञ्जय ॥ ३९ ॥ स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां वेपमानो महीपतिः । पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद् यथातथं ॥ ४० ॥ पक्वानां हि वधे सूत वज्रायन्ते तृणान्युत । क्रूरः सर्व विनाशाय कालो सौ नातिवर्तते ॥ ४१ ॥ तस्माद् परिहार्येथे संप्राप्ते कृच्छ उत्तमे । अपारणीये दुश्चिन्त्ये यथा भूतं प्रचक्ष्व मे ॥ ४२ ॥

अर्थ--रण में पाण्डवों से रक्षित सेना को देख कर द्रोणाचार्य ने कोप से दोनों आंखें फिरा कर देखा ॥ २४ ॥ और रथ पर बैठ कर वह युद्ध दुर्जय तीव्र कोप से पाण्डवी सेना को इस प्रकार उड़ाने लगे, जैसे वायु मेघों को उड़ाता है ॥ २६ ॥ रथ घोड़े हाथी मनुष्यों पर इधर उधर से धावा करता हुआ द्रोण उन्मत्तवत् फिरने लगा,और वृद्ध भी युवा की भांति प्रतीत होता था ॥ २७ ॥ वायु तुल्य वेग वाले उस के लाल कुलीन

घोड़े रुधिर से लिबड़े अंगों वाले निरन्तर आगे ही बढ़ते थे।२८। अनेक सिरों को और उत्तम भूषणों वाली उग्र भुजाओं को काट कर अति शीघ्र द्रोण ने रणभूमि को लहू से भिगो दिया॥२९॥ इस प्रकार सुनहरी रथ वाला वह शूरवीर रण में पाण्डवों के लाखों योधाओं को मारने के पीछे धृष्टद्युम्न से मारा गया॥३०॥ रण से न लौटने वाले वीरों की कुछ अधिक एक अक्षौहिणी को मार कर पीछे वह धैर्यवान् स्वयं परमगति को प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ पाण्डव जय लाभ करके सिंहनाद करने लगे। उस बड़े सिंहनाद से भूमि कांप उठी ॥ ३२ ॥ धृतराष्ट्र बोले-अस्त्र-विद्या में सारे शस्त्र धारियों से अधिक कुशल द्रोण को क्या करते समय रण में पाण्डव और सृञ्जयों ने मारा ॥ ३३॥ क्या इस का रथ टूट गया, वा बाण फैंकते हुए का धनुष टूट गया, अथवा द्रोण ने कोई प्रमाद किया, जिस से वह मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥ सचमुच दैव पौरुष से बल वाला है, यह मेरी मति है, जब कि धृष्टद्युम्न ने शूर द्रोण को मार लिया॥३५ ॥हे सञ्जय! यह सत्य है, कि पराए दुःख से कभी कोई मर नहीं जाता है, जब कि मैं द्रोण की मृत्यु सुन कर जीता हूं ॥ ३६ ॥ वह दुष्टों का रोकने वाला और धर्मात्माओं का रक्षक था,वह किसी भी दीन के लिए अपने प्राणों को भी त्यागने वाला था ॥ ३७ ॥जब तक वह जीता रहा, तब तक वेदार्थियों की वेदध्वनि और धनुर्धारियों की ज्याध्वनि इन दो ध्वनियों ने कभी उस का साथ नहीं त्यागा ॥ ३८ ॥ हे तात मेरा मन घबरा रहा है, अभी कथा को बंद करो, हे सञ्जय! फिर सुधि संभाल कर तुझ से पूछूंगा॥३९॥ कुछ देर पीछे सुधि संभाल कर कांपता हुआ नृप फिर सञ्जय से

पूछने लगा ॥ ४० ॥ हे सूत पके हुए के वध में तृण भी वज्र बन जाते हैं, सब के नाश में लगा हुआ काल किसी से रोका नहीं जासकता है ॥ ४१ ॥ इस लिए इस न टलने वाले अथाह दुःख के आने में जैसे जो बीता है, वह सब मुझे बता ॥ ४२ ॥

अ० २(व० १२-१६) प्रथम दिन का युद्ध

मूल—सञ्जय उवाच-हन्त ते कथयिष्यामि सर्वं प्रत्यक्ष दर्शिवान । यथा स न्यपतद् द्रोणः सूदितः पाण्डु सृञ्जयैः॥ १ ॥ सेनापतित्वं संप्राप्य भारद्वाजो महारथः । मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पुत्रं ते वाक्य मब्रवीत ॥ २ ॥ यत्कौरवाणा मृषभादापगेया दनन्तरं । सैनापत्येन यद्राजन् मामद्य कृतवानसि ॥ ३ ॥ सदृशं कर्मणस्तस्य फलं प्राप्नुहि भारत । करोमि कामं कंतेऽद्य प्रवृणीष्व यमिच्छसि ॥ ४ ॥ दुर्योधन उवाच—ददासि चेद्वरं मह्यं जीवग्राहं युधिष्ठिरं । गृहीत्वा रथिनां श्रेष्ठं मत्समीप मिहानय ॥ ५ ॥ द्रोण उवाच-धन्यः कुन्तीसुतो राजन् यस्य ग्रहण मिच्छसि । न वधार्थं सुदुर्धर्षं वरमद्य प्रयाचसे ॥ ६ ॥ आहोस्विद्धर्मराजस्य द्वेष्टा तस्य न विद्यते । यदीच्छसि त्वं जीवन्तं कुलं रक्षसिचात्मनः ॥७॥ द्रोणेन चैव मुक्तस्य तव पुत्रस्य भारत । सहसा निःसृतो भावो योऽस्य नित्यं हृदि स्थितः ॥ ८ ॥ नाकारो गूहितुं शक्यो बृहस्पति समैरपि । तस्मात् तव सुतो राजन् प्रहृष्टो वाक्य मब्रवीत्॥ ९ ॥ वधे कुन्तीसुतस्याजौ नाचार्य विजयो मम।हते युधिष्ठिरे पार्था हन्युः सर्वान् हि नो ध्रुवं॥ १० ॥सत्यप्रतिज्ञे त्वानीते पुनर्द्यूतेन निर्जिते। पुनर्यास्यन्त्य रण्याय पाण्डवास्त मनुव्रताः ॥ ११ ॥ तस्य जिह्म माभिप्रायं ज्ञात्वा द्रोणोऽर्थ तत्त्ववित् । तं वरं सान्तरं तस्मै ददौ

संचिन्त्य बुद्धिमान् ॥ १२ ॥ न चेद् युधिष्ठिरं वीरः पालयत्यर्जुनो युधि । मन्यस्व पाण्डवश्रेष्ठ मानीतं वश मात्मनः ॥ १३ ॥ सान्तरं तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे । गृहीतं तममन्यन्त तव पुत्राः सुबालिशाः ॥ १४ ॥

अर्थ—सञ्जय बोले—हां आप को बतलाता हूं, मैंने सब प्रत्यक्ष देखा है, कि जिस प्रकार द्रोणाचार्य पाण्डव और सृञ्जयों से मारे जाकर रण में गिरे ॥ १ ॥ सेनापति के पद को पाकर महारथ द्रोणाचार्य सारी सेना के मध्य में तेरे पुत्र से यह वाक्य बोले ॥ २ ॥ कि कुरुवर भीष्म के मारे जाने पर हे राजन् ! तुमने जो मुझे सेनापति बनाया है ॥ ३ ॥ हे भारत इस कर्म के तुल्य फल ग्रहण करो, आज तुम्हारी किस अभिलाषा को पूर्ण करूं, जो चाहते हो मांगो ॥ ४ ॥ दुर्योधन बोले—हे आचार्य यदि मुझे वर देते हो, तो रथियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर को जीते जी पकड़ कर मेरे निकट लाओ॥ ५ ॥ द्रोण बोले—हे राजन्!युधिष्ठिर धन्य है, जिसका तुम ग्रहण चाहते हो, उस दुर्धर्ष के वध के निमित्त वर नहीं मांगते हो ॥ ६ ॥ अथवा धर्मराज युधिष्ठिर का शत्रु कोई भी नहीं है, जब कि तुम उस को जीता चाहते हो और अपने कुल की रक्षा करते हो ॥ ७ ॥ हे भारत ! जब द्रोणाचार्य ने ऐसे कहा, तब तुम्हारे पुत्र दुर्योधन के हृदय का भाव अकस्मात् बाहर निकल आया ॥ ८ ॥ बृहस्पति समान पुरुष भी अपने अभिप्राय को छिपा नहीं सकते हैं, सो हे राजन् तेरा पुत्र भी प्रसन्न हो कर यह वाक्य बोला ॥ ९ ॥ हे आचार्य! रण में युधिष्ठिर का वध होने से मेरा विजय नहीं होगा, युधिष्ठिर के मारा जाने पर पाण्डव हम सब को निःसंदेह मार डालेंगे।१०।

परन्तु जब उस सत्य प्रतिज्ञा वाले को ले आओगे, तब मैं फिर जुए में उसे जीतूंगा, तब सभी पाण्डव उस के अनुव्रती हो कर फिर वन को चले जाएंगे ॥ ११ ॥ उस के कुटिल अभिप्राय को जान कर बात के मर्म को समझने वाले बुद्धिमान् द्रोणाचार्य ने सोच समझ कर उस को सान्तर (शर्तिया) वर दिया ॥ १२ ॥ कि यदि वीर अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा न कर रहा हो, तो युधिष्ठिर को अपने वश में लाया ही समझो ॥ १३ ॥ जब द्रोण ने युधिष्ठिर को पकड़ लाने की सान्तर प्रतिज्ञा कर ली, तब तुम्हारे मूर्ख पुत्र युधिष्ठिर को पकड़ा हुआ ही समझने लगे ॥ १४ ॥

मूल—तच्च सर्वं यथान्यायं धर्मराजेन भारत । आप्तैराशु परिज्ञातं भारद्वाज चिकीर्षितं ॥ १५ ॥ अब्रवीद्धर्मराजस्तु धनञ्जय मिदं वचः । श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र द्रोणस्याद्य चिकीर्षितं ॥ १६ ॥ स त्व मद्य महाबाहो युध्यस्व मदनन्तरं । यथा दुर्योधनः कामं नेमं द्रोणादवाप्नुयात ॥ १७ ॥ अर्जुन उवाच–यथा मे न वधः कार्य आचार्यस्य कदाचन । तथा तव परित्यागो न मे राजंश्चिकीर्षितः ॥ १८ ॥ मयि जीवति राजेन्द्र न भयं कर्तुमर्हसि।द्रोणादस्त्र भृतांश्रेष्ठात सर्वशस्त्र भृतामपि ॥ १९ ॥ ततो रुक्मरथो राजन्नर्केणेव विराजता।वरूथिना विनिष्पत्य व्यचरत्पृतनामुखे।२०। ततः स पाण्डवानीके जनयन् सुमहद्भयं । व्यचरत्पृतनां द्रोणो दहन् कक्षमिवानलः ॥ २१ ॥ स वीरः सत्यवान् प्राज्ञो धर्मनित्यः सदा पुनः । युगान्तकालवद् घोरां रौद्रां प्रावर्तयन्नदीं ॥ २२ ॥ प्रविश्य पाण्डवानीकं युधिष्ठिर मुपाद्रवत । तमाविध्यच्छितैर्बाणैः कंकपत्रैर्युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥ चक्ररक्षः कुमारस्तु पञ्चालानां यशस्करः । दधार द्रोण मायान्तं वेलेव सरितांपतिं ॥ २४ ॥ तं शूर-

मार्यं व्रतिनं मन्त्रास्त्रेषु कृतश्रमं । चक्ररक्षं परामृद्नात्कुमारं द्विज पुंगवः ॥ २५॥ व्यक्षोभयद्द्रणे योधान् यथा मुख्य माभिद्रवन् । अ-भ्यवर्तत संप्रेप्सुः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरं ॥ २६ ॥ युगन्धरस्ततो राजन् भारद्वाजं महारथं । वारयामास संक्रुद्धं वातोद्धत मिवार्णवं ॥ २७ ॥ युधिष्ठिरं स विध्वा तु शरैः सन्नतपर्वभिः । युगन्धरं तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ २८ ॥ व्याघ्रदत्तस्तु पाञ्चाल्यो द्रोणं विव्याध मार्गणैः । पञ्चाशता शितैराजंस्तत उच्चक्रुशुर्जनाः ॥ २९ ॥ त्वरितं सिंहसेनस्तु द्रोणं विध्वा महारथं। प्राहसत् सह-सा हृष्टस्त्रासयन् वै महारथान् ॥ ३० ॥ ततो विस्फार्य नयने ध-नुर्ज्या मवमृज्य च । तलशब्दं महत्कृत्वा द्रोणस्तं समुपाद्रवत्॥३१॥ ततस्तु सिंहसेनस्य शिरः कायात् सकुण्डलं । व्याघ्रदत्तस्य चा-क्रम्य भल्लाभ्या माहरद्बली ॥ ३२ ॥ तान् प्रमृज्य शरव्रातैः पा-ण्डवानां महारथान् । युधिष्ठिर रथाभ्याशे तस्थौ मृत्यु रिवा-न्तकः ॥ ३३ ॥ ततोऽभवन्महाशब्दो राजन् यौधिष्ठिरे बले । हृतो राजेति योधानां समीपस्थे यतव्रते ॥ ३४ ॥ एवं संजल्पतां तेषां तावकानां महारथः । आयाज्जवेन कौन्तेयो रथघोषेण ना-दयन् ॥ ३५ ॥ ततः किरीटी सहसा द्रोणानीक मुपाद्रवत्।छाद-यन्निषुजालेन महता मोहयन्निव ॥ ३६ ॥ शीघ्र मभ्यस्यतो बा-णान् संदधानस्य चानिशं।नान्तरं ददृशे कश्चित् कौन्तेयस्य यश-स्विनः ॥ ३७ ॥ न दिशो नान्तरिक्षं च न द्यौर्नैव च मेदिनी । अदृश्यन्त महाराज बाणभूता इवाभवन् ॥ ३८ ॥ सूर्ये चास्त मनुप्राप्ते तमसा चाभि संवृते। नाज्ञायत तदा शत्रुर्नसुहृन्न च कश्चन ॥ ३९ ॥ ततोऽवहारं चक्रुस्ते द्रोण दुर्योधनादयः। स्वान्यनीकानि

बीभत्सुः शनकैरवहारयत् ॥ ४० ॥ एवं स्वशिबिरं प्रायाज्जित्वा शत्रून् धनञ्जयः । पृष्ठतः सर्वसैन्यानां मुदितो वै सकेशवः॥४१॥

अर्थ—हे भारत ! द्रोणाचार्य का यह सारा कर्तव्य युधिष्ठिर ने भी विश्वासी चरों के द्वारा शीघ्र ही जान लिया॥१५॥ तब वह अर्जुन से यह वचन बोले—हे पुरुषवर तुमने सुन लिया है, जो बात आचार्य अब करना चाहते हैं ॥ १६ ॥ सो हे महाबाहो अब तुम मेरे निकट ही युद्ध करो, जिस्तें दुर्योधन द्रोण से इस कामना को न पासके ॥ १७ ॥ अर्जुन बोले—हे राजन् जैसे मैं आचार्य का वध कभी नहीं करूंगा, वैसे तुम्हारा परित्याग भी मुझे अभीष्ट नहीं है ॥ १८ ॥ मेरे जीते हे राजेन्द्र आप को शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोण से वा सभी शस्त्रधारियों से भय नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥ तदनन्तर सूर्य तुल्य चमकते रथ पर बैठे हुए द्रोणाचार्य सेना से बाहर निकल आगे खड़े हुए ॥२०॥ और पाण्डवी सेना में भारी भय उत्पन्न करते हुए द्रोण घास को अग्नि की भांति सेना को जलाते हुए घूमने लगे ॥२१॥ धर्म के प्यारे उस सत्यकारी बुद्धिमान् वीर ने प्रलयकाल की भांति रुधिर की महा भयंकर नदी चला दी ॥२२ ॥ फिर पाण्डवों की सेना में घुस कर युधिष्ठिर की ओर दौड़े । युधिष्ठिर ने कंकपत्र वाले तीखे बाणों से उन को विद्ध किया ॥ २३ ॥ युधिष्ठिर के चक्र रक्षक पञ्चालवंशी कुमार ने आते द्रोण को इस प्रकार रोका, जैसे तट समुद्र को ॥ २४ ॥ ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने वेद और अस्त्रों में निपुण उस आर्यव्रती वीर कुमार को मार गिराया ॥ २५ ॥ और मुख्य २ योद्धाओं पर धावे कर २ के सब को हलचल में डाल युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए

उस के संमुख हुआ ॥ २६ ॥ तब पाञ्चाल्य युगन्धर ने आंधी से क्षुब्ध हुए समुद्र की भांति क्रोध से भरे महारथ द्रोण को रोका ॥ २७ ॥ द्रोण ने भी तीखे पर्व वाले बाणों से युधिष्ठिर को विद्ध करके भाले से युगन्धर को रथ की पीठ से नीचे गिराया ॥ २८ ॥ उसी समय पाञ्चाल्य व्याघ्रदत्त ने तीखे पचास बाणों से द्रोण को विद्ध किया, तब सब लोग धन्य २ कहने लगे ॥ २९ ॥ और पाञ्चाल्य सिंहसेन भी महारथ द्रोण को बींध कर दूसरे महारथियों को भय उत्पन्न करता हुआ प्रसन्न होकर अट्टहास करने लगा ॥ ३० ॥ अनन्तर द्रोणाचार्य नेत्र फाड़ कर और धनुष का चिल्ला खींच कर और हथेली का बड़ा शब्द करके उस की ओर दौड़े ॥ ३१ ॥ और सिंहसेन का कुंडलों वाला सिर एक भाले से और दूसरे से व्याघ्रदत्त का सिर काट गिराया ॥ ३२ ॥ पाण्डवों के उन महारथियों को बाण जाल से बींध कर द्रोण युधिष्ठिर के रथ के निकट नाश करने वाले मृत्यु की भांति जा खड़े हुए ॥ ३३ ॥ तब हे राजन् युधिष्ठिर की सेना में योद्धाओं का बड़ा शोर मच गया कि अब राजा हरा गया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जब तुम्हारे योधे कह ही रहे थे, कि महारथ अर्जुन अपने रथ से पृथिवी को गुंजाते हुए झट आ पहुंचे ॥ ३५ ॥ अर्जुन अपने बाण जाल से द्रोण की सेना को ढांपते हुए घबराहट में डालते हुए उस पर टूट पड़े ॥ ३६ ॥ शीघ्र २ बाणों को छोड़ते और लगातार जोड़ते को देख कर बीच में कोई अन्तर नहीं दीखता था ॥ ३७ ॥ न दिशाएं, न अन्तरिक्ष, न द्यौ, न भूमि, दीखती थी, मानों सब कुछ बाणमय हो रहा था॥३८॥

इतने में सूर्य अस्त होगया और अन्धेरा छा गया, उस समय न शत्रु न सुहृद् न कोई और जान पड़ता था ॥ ३९ ॥ तब द्रोण दुर्योधन आदि ने सेना को हटा लिया, और अर्जुन ने भी अपनी सेनाओं को धीरे २ हटाया ॥ ४० ॥ इस प्रकार अर्जुन शत्रुओं को जीत कर हर्षित हुआ कृष्ण समेत सारी सेनाओं के पीछे २ अपने शिविर को गया ॥ ४१ ॥

अ०३(व०१७-२६) द्रोण का युधिष्ठिर से और भगदत्त का भीम से युद्ध

मूल—कृत्वाऽवहारं सैन्यानां द्रोणः परमदुर्मनाः । दुर्योधन मभिप्रेक्ष्य सव्रीड मिद मब्रवीत् ॥ १ ॥ उक्तमेतन्मया पूर्वं न तिष्ठति धनंजये । शक्यो ग्रहीतुं संग्रामे देवैरपि युधिष्ठिरः ॥ २ ॥ अपनीते तु योगेन केन चिच्छ्वेतवाहने । तत एष्यति ते राजन् वशमेष युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ कश्चिदाहूय तं संख्ये देशमन्यं प्रकर्षतु । तमजित्वा न कौन्तेयो निवर्तेत कथञ्चन ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शून्ये धर्मराज महं नृपं । ग्रहीष्यामि चमूं भित्त्वा यदि नोत्सृजते रणं ॥ ५ ॥ द्रोणस्य तद्वचः श्रुत्वा त्रिगर्ताधिपतिस्तदा । भ्रातृभिः सहितो राजन्निदं वचन मब्रवीत् ॥ ६ ॥ वयमेनं हनिष्यामो निकृष्यायोधनाद्बहिः । अद्यास्त्व नर्जुना भूमिरत्रिगर्ताथवा पुनः ॥ ७ ॥ प्रज्वाल्य कृष्णवर्त्मान मुपागम्य रणव्रतं । सर्वे धनञ्जयवधे प्रतिज्ञां चापि चक्रिरे ॥ ८ ॥ परिणाम्य निशां तां तु भारद्वाजो महारथः । विधाय योगं पार्थेन संशप्तक गणैः सह ॥ ९ ॥ निष्क्रान्ते च तदा पार्थे संशप्तक वधं प्रति । अभ्ययाद्भरत श्रेष्ठ धर्मराज जिघृक्षया ॥ १० ॥ व्यूढं दृष्ट्वा सुपर्णं तु भारद्वाज कृतं तदा । व्यूहेन मण्डलार्धेन प्रत्यव्यूहद् युधिष्ठिरः॥११॥

अर्थ—सेनाओं को हटा कर परम दुर्मन हुए द्रोण दुर्योधन को देख कर लज्जा पूर्वक यह बोले ॥ १ ॥ यह मैंने पहले ही कह दिया था, कि अर्जुन के होते हुए युधिष्ठिर देवताओं से भी नहीं पकड़ा जा सकता है ॥ २ ॥ हां यदि अर्जुन को किसी उपाय से परे हटा लिया जाए, तब हे राजन् युधिष्ठिर तेरे वश आजाएगा ॥ ३ ॥ सो कोई पुरुष रण में अर्जुन को आह्वान दे कर अन्यत्र कहीं खींच ले जाए, तो फिर अर्जुन उस को जीते बिना कभी नहीं लौटेगा ॥ ४ ॥ इस (अर्जुन से) शून्य अवसर में मैं सेना को चीर कर धर्मराज को जा पकडूंगा, यदि रण को न छोड़ेगा ॥ ५ ॥ द्रोण के वचन को सुन कर त्रिगर्ताधिपति अपने भाइयों सहित यह वचन बोला ॥ ६ ॥ हम अर्जुन को युद्ध स्थल से दूर खींच कर मारेंगे, और ऐसा लड़ेंगे, कि या तो भूमि अर्जुन से शून्य होगी, या त्रिगर्तों से शून्य होगी ॥ ७ ॥ तब इन सब ने अग्नि प्रज्वलित कर (होम कर के) रण का व्रत लिया और अर्जुन के वध की प्रतिज्ञा की ॥ ८ ॥ अब उस रात को बिता कर, महारथ द्रोणाचार्य अर्जुन को संशप्तक * दलों से जुटा कर, जब अर्जुन संशप्तकों के मारने के लिए दूर निकल गया, तब वह धर्मराज को ग्रहण करने की इच्छा से चढ़ा॥१०॥ द्रोण की सेना का गरुड व्यूह देख कर युधिष्ठिर ने अपनी सेना का मण्डलार्ध व्यूह रचा ॥ ११ ॥

मूल—मुहूर्तमिव तद्युद्ध मासीन्मधुर दर्शनीतत उन्मत्त वद्राजन् निर्मर्याद मवर्तत ॥ १२ ॥ नैव स्वे न परे राजन्नाज्ञायन्त पर-

* संशप्तक, वे योधे जिन्हों ने शपथ खाई हो, कि वह रण से या तो शत्रु को मार कर लौटेंगे, या वहीं मरजाएंगे।

स्परं । अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तत्समवर्तत ॥ १३ ॥ वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयंकरे । मोह यित्वा परान् द्रोणो युधिष्ठिर मुपाद्रवत् ॥ १४ ॥ ततो युधिष्ठिरो द्रोणं दृष्ट्वान्तिक मुपागतं । महता शरवर्षेण प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥ १५ ॥ दृष्ट्वा द्रोणं ततः शूरः सत्याजित् सत्यविक्रमः । युधिष्ठिर मभिप्रेप्सुराचार्यं समुपाद्रवत् ॥ १६ ॥ ततः सत्यजितं तीक्ष्णैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः । आविध्यच्छीघ्र माचार्यश्छित्वाऽस्य सशरं धनुः ॥ १७ ॥ स शीघ्र तर मादाय धनुरन्यत् प्रतापवान् । द्रोणमभ्यहनद्राजं स्त्रिंशता कंकपात्रिभिः ॥ १८ ॥ दृष्ट्वा सत्याजिता द्रोणं ग्रस्यमान मिवाहवे । वृकः शरशतैस्तीक्ष्णैः पाञ्चाल्यो द्रोण मार्दयत् ॥ १९ ॥ संछाद्यमानं समरे द्रोणं दृष्ट्वा महारथं । चुक्रुशुः पाण्डवा राजन् वस्त्राणि दुधुवुश्च ह ॥ २० ॥ द्रोणस्तु शरवर्षेण छाद्यमानो महारथः । वेगं चक्रे महावेगः क्रोधादुद्धृत्य चक्षुषी ॥ २१ ॥ ततः सत्य जितश्चापं छित्वा द्रोणो वृकस्य च । षड्भिः ससूतं सहयं शरैर्द्रोणोऽवधीदृवृकं ॥ २२ ॥ अथान्यद्धनुरादाय सत्यजिद्वेगवत्तरं । साश्वं ससूतं विशिखैर्द्रोणं विव्याध स ध्वजं ॥ २३ ॥ स सत्याजित मालोक्य तथोदीर्णं महा हवे । अर्ध चन्द्रेण चिच्छेद शिरस्तस्य महात्मनः ॥ २४ ॥ तस्मिन् हते महामात्रे पञ्चालानां महारथे । अपायाज्जवनै रश्वैर्द्रोणात् त्रस्तो युधिष्ठिरः ॥ २५ ॥

अर्थ—थोड़ी देर तक तो वह युद्ध सुहावना दीखता था, पीछे हे राजन् उन्मत्तों की भांति मर्यादा से बाहर होगया॥१२॥ हे राजन् !आपस में अपने बेगाने कोई नहीं जान पड़ते थे,अनुमान से और संकेतों से युद्ध हो रहा था॥ १३ ॥जब ऐसा भयंकर घोर रूप युद्ध होने लगा, उसी समय द्रोण शत्रुओं को घब-

राहट में डाल कर युधिष्ठिर की ओर दौड़े ॥ १४ ॥ तब युधिष्ठिर ने द्रोण को निकट आया जान निर्भय हो बड़ी बाणवर्षा के साथ उन का स्वागत किया ॥ १५ ॥ उधर सच्चे पराक्रम वाला वीर सत्याजित द्रोण को देख कर युधिष्ठिर की सहायता के लिये द्रोण की ओर दौड़ा ॥ १६ ॥ तब आचार्य ने मर्म भेदी दस तीखे बाणों से सत्यजित को विद्ध किया और उस के धनुष बाण को काट गिराया ॥ १७ ॥ उस प्रतापी ने झट एक और धनुष लिया, और तीस कंकपत्री बाण द्रोण पर चलाए ॥१८॥ उधर पाञ्चाल्य वृक ने भी सत्यजित से घेरे हुए द्रोण को अपने तीखे बाणों से पीड़ित किया ॥ १९ ॥ रण में द्रोण को (बाणों से) ढका देख कर पाण्डव उच्च ध्वनि करने और वस्त्र उछालने लगे ॥ २० ॥ बाण वृष्टि के अन्दर ढके हुए बड़े वेग वाले महारथ द्रोण ने भी क्रोध से लाल आंखें निकाल कर बड़ा वेग दिखलाया ॥ २१ ॥ पहले तो उसने सत्यजित और वृक इन दोनों के धनुष काटे, फिर छः बाणों से घोड़े और सारथि समेत वृक को मार गिराया ॥ २२ ॥ उसी समय सत्यजित ने और अधिक वेग वाला धनुष लिया, और बाणों से द्रोण को उस के सारथि घोड़े और ध्वजा समेत विद्ध किया ॥ २३ ॥ द्रोण ने उस महा संग्राम में सत्यजित को इतना ऊंचा आया देख कर अर्धचन्द्र से उस के सिर को काट दिया ॥ २४ ॥ उस महावीर पाञ्चाल महारथी के मरने पर द्रोण से डरा हुआ युधिष्ठिर वेग वाले घोड़ों से निकल गया ॥ २५ ॥

मूल—ततो युधिष्ठिरं प्रेप्सुराचार्यः शत्रु पूगहा । व्यधमत्तान्यनीकानि तूलराशि मिवानिलः॥ २६ ॥ द्रोणं मत्स्यादवरजः

शतानीकोऽभ्यवर्तत । अवाकिरच्छरशतैर्भारद्वाजं महारथं ॥२७॥ तस्य नानदतो द्रोणः शिरः कायात् सकुण्डलं । क्षुरेणापाहरत्तूर्णं ततो मत्स्याः प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥ ततो द्रोणः सत्यसन्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः । अभ्यतीत्य रथानीकं दृढसेन मपातयत् ॥ २९ ॥ ततो राजान मासाद्य प्रहरन्त मभीतवत् । अविध्यन्नवभिः क्षेमं सहतः प्रापतद्रथात् ॥ ३० ॥ एतांश्चान्यांश्च सुबहून्नानाजनपदेश्वरान् । सर्वान् द्रोणोऽजयद् युद्धे कुरुभिः परिवारितः ॥ ३१ ॥ तथा तेषु निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः । स्वयमभ्यद्रवद्भीमं नागानीकेन ते सुतः ॥ ३२ ॥ ते गजा गिरिसंकाशाः क्षरन्तः सर्वतो मदं । भीमसेनस्य नाराचैर्विमुखा विमदी कृताः ॥ ३३ ॥ ततः क्षणेन क्षितिप क्षतजप्रतिमेक्षणः । क्षयं निनीषुर्निशितैर्भीमो विव्याध पत्रिभिः ॥ ३४ ॥ दुर्योधनं पीडयमानं दृष्ट्वा भीमेन मारिष । चुक्षोभयिषुरभ्याया दंगो मातंग मास्थितः ॥ ३५ ॥ तमापतन्तं नागेन्द्र मम्बुद प्रतिमस्वनं । कुम्भान्तरे भीमसेनो नाराचैरार्दयद् भृशं ॥ ३६ ॥ तेष्वनीकेषु भग्नेषु विद्रवत्सु समन्ततः । प्राग्ज्योतिषस्ततो भीमं कुञ्जरेण समाद्रवत् ॥ ३७ ॥ स नागप्रवरो भीमं सहसा समुपाद्रवत् । चरणाभ्यामथो द्वाभ्यां संहतेन करेण च ॥ ३८ ॥ व्यावृत्तनयनः क्रुद्धः प्रमथन्निव पाण्डवं । वृकोदररथं साश्व मविशेषम चूर्णयत् ॥ ३९ ॥ पद्भ्यां भीमोऽप्यथो धावंस्तस्य गात्रेष्वलीयत । जानन्नञ्जलिकावेधं नापाक्रामत पाण्डवः ॥ ४० ॥ गात्राभ्यन्तरगो भूत्वा करेणा ताडयन्मुहुः । लालयामास तं नागं वधाकाङ्क्षिण मव्ययं ॥४१॥ कुलालचक्र वन्नागस्तदा तूर्ण मथा भ्रमत् । भीमोऽपि निष्क्रम्य ततः सुप्रतीकाग्रतोऽभवत् ॥ ४२ ॥ ग्रीवायां वेष्टयित्वैनं स गजो हन्तु मैहत । करवेष्टं भीमसेनो भ्रमं दत्त्वा

व्यमोचयत् ॥ ४३ ॥ पुनर्गात्राणि नागस्य प्रविवेश वृकोदरः । यावत्प्राति गजायातं स्वबले प्रत्यवैक्षत ॥ ४४ ॥ भीमोपि नागगात्रेभ्यो विनिःसृत्यापयाज्जवात् । ततः सर्वस्य सैन्यस्य नादः समभवन्महान्॥ ४५ ॥ ते त्वाशुगतिना तेन त्रास्यमाना नरर्षभाः। तमेकं द्विरदं संख्ये मेनिरे शतशो द्विपान् ॥ ४६ ॥

अर्थ—तब शत्रुदलों के दलने वाले आचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए उन सेनाओं को इस प्रकार दग्ध करने लगे, जैसे रुई के ढेर को अग्नि ॥ २६ ॥ विराटराज का छोटा भाई शतानीक द्रोण के सम्मुख आया, और उस पर बाण बरसाने लगा ॥ २७ ॥ द्रोण ने उस गर्जते हुए के धड़ से कुण्डलों वाले सिर को क्षुर से उड़ा दिया, तब मत्स्य भाग निकले ॥ २८ ॥ तब सच्ची प्रतिज्ञा वाले द्रोण ने मत्त हाथी की भांति रथसेना को लंघ कर दृढसेन को जा गिराया ॥ २९ ॥ फिर निडर होकर प्रहार करते हुए राजा क्षेम को नौ बाणों से विद्ध किया, वह मर कर रथ से गिर पड़ा ॥ ३० ॥ इन को तथा अन्य बहुत से नरेशों को द्रोण ने कौरवों के साथ मिल कर विजय किया ॥३१॥ इस प्रकार जब दलों के दल सामने न ठहर सके, उसी समय हाथी सेना लेकर तेरा पुत्र भीम की ओर दौड़ा ॥ ३२ ॥ चारों ओर मद झरते हुए वह हाथी भीमसेन के बाणों से विमुख कर दिये गए और उन का मद जाता रहा ॥ ३३ ॥ तब लाल नेत्रों वाला भीम दुर्योधन के नाश के लिए तीखे बाणों से उसे बींधने लगा ॥३४॥ तब हाथी पर चढ़ा हुआ अंगराज दुर्योधन को भीम से पीड़ित देख भीम को क्षोभित करने के लिए उस की ओर आया ॥३५॥ मेघ तुल्य ध्वनि वाले उस नागराज को आता देख कर भीमसेन

ने उस के सिर पर बाण मारे ॥ ३६ ॥ भीम से उन सेनाओं के मांज खा कर इधर उधर दौड़ने पर प्राग्ज्योतिष का राजा(भगदत्त)हाथी पर चढ़ कर भीम की ओर दौड़ा॥३७॥वह प्रवर हाथी वेग से भीम की ओर आया,और उसने अपने दोनों पैरों और सूंड को इकट्ठे कर क्रुद्ध हो लाल नेत्र निकाल कर भीम को मार डालने के लिए भीम के रथ और घोड़े को चूर २ कर दिया॥३८-३९ ॥ भीम भी पैदल दौड़ कर उस हाथी के शरीर से लिपट गया, अञ्जलिकावेध (सौंची) का जानने वाला था, इस लिए भागा नहीं । किन्तु उस के शरीर के नीचे हो कर हाथ से उसे बार २ ताड़ने लगा, और मारना चाहते हुए उस हाथी को पूरा लाड लडाया ॥ ४१ ॥हाथी उस समय कुम्हार के चाक की भांति जल्दी २ घूमने लगा, तब भीम उस के नीचे से निकल कर आगे खड़ा हुआ ॥ ४२ ॥ तब हाथी ने उस की ग्रीवा पर सूंड का लपेट डाल कर उसे मारना चाहा, पर भीमसेन ने मरोड़ कर उस की सूंड की लपेट को छुड़ा लिया ॥ ४३ ॥ और फिर उस के पेट तले घुस गया, अनन्तर जब भीम ने देखा, कि अपनी सेना का एक हाथी उस हाथी के सामने आ डटा है, तो उसी समय भीम हाथी के पेट तले से वेग से निकल भागा । तब सारी सेना ने बड़ी ध्वनि की ॥ ४४—४५ ॥ पर शीघ्र गति वाले उस हाथी से डराए हुए सैनिक उस एक हाथी को संग्राम में सैंकड़ों हाथी मानने लगे ॥ ४६ ॥

अ०४(व०२७-३२)अर्जुन का युद्ध और भगदत्त आदि का वध

मूल—रजो दृष्ट्वा समुद्धूतं श्रुत्वा च गजनिःस्वनं । भगदत्ते

विकुर्वाणे कौन्तेयः कृष्ण मब्रवीत् ॥ १ ॥ यथा प्राग्ज्योतिषो राजा गजेन मधुसूदन। त्वरमाणोऽभिनिष्क्रान्तो ध्रुवं तस्यैष निःस्वनः ॥ २ ॥ इन्द्रादनवरः संख्ये गजयानविशारदः। प्रथमो गजयोधानां पृथिव्यामिति मे मतिः ॥ ३ ॥ स चापि द्विरदश्रेष्ठः सदाऽप्रतिगजो युधि। सर्वशस्त्रातिगः संख्ये कृतकर्मा जितक्लमः॥ ४ ॥ स पाण्डव बलं सर्वं मद्यैको नाशयिष्यति। त्वरमाणस्ततो याहि यतः प्राग्ज्योतिषाधिपः ॥ ५ ॥ ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणां। असृजन्नर्जुने राजन् संशप्तक महारथाः ॥ ६ ॥ तदा मोहमनुप्राप्तः सिष्विदे हि जनार्दनः। ततस्तान् प्रायशः पार्थो ब्रह्मास्त्रेण निजघ्निवान् ॥ ७ ॥ शतशः पाणयश्छिन्नाः सेषुज्यातलकार्मुकाः। केतवो वाजिनः सूता रथिनश्चापतन् क्षितौ ॥ ८ ॥ युगपच्चैव संग्रामे शतशोऽथ सहस्रशः। पतिता एव मे दृष्टा संशप्तक महारथाः ॥ ९ ॥ संशप्तकांस्ततो हत्वा भूयिष्ठा ये व्यवस्थिताः। भगदत्ताय याहीति कृष्णं पार्थोऽभ्यनोदयत् ॥ १० ॥ तं प्रयान्तं कुरुश्रेष्ठं स्वान् भ्रातॄन् द्रोणतापितान्। सुशर्मा भ्रातृभिः सार्धं युद्धार्थी पृष्ठतोऽन्वयात् ॥ ११ ॥ ततः श्वेतहयः कृष्ण मब्रवीद् जितं जयः। एष मां भ्रातृभिः सार्धं सुशर्मा ह्वयतेऽच्युत ॥ १२ ॥ किं नु संशप्तकान् हन्मि स्वान् रक्षाम्य हितार्दितान्। इति मे त्वं मतं वेत्सि तत्र किं सुकृतं भवेत् ॥ १३ ॥ एवमुक्तस्तु दाशार्हः स्यन्दनं प्रत्यवर्तयत्। येन त्रिगर्ताधिपतिः पाण्डवं समुपाह्वयत् ॥ १४ ॥ ततोऽर्जुनः सुशर्माणं विध्वा सप्तभिराशुगैः। ध्वजं धनुश्चास्य तथा क्षुराभ्यां समकृन्तत ॥ १५ ॥ त्रिगर्ताधिपतेश्चापि भ्रातरं षड्भिराशुगैः। साश्वं ससूतं परितः पार्थः प्रैषीद्

यमक्षयं ॥ १६ ॥ ततो धनञ्जयो बाणैः सर्वानेव महारथान्। आ-
याद्विनिघ्नन् कौरव्यान् दहन् कक्ष मिवानलः॥१७॥ संवेष्टयन्ननी-
कानि शरवर्षेण पाण्डवः । सुपर्णपात वद्राजन्नायाद् प्राग्ज्यो-
तिषं प्रति ॥ १८ ॥

अर्थ—धूल उड़ती देख कर और हाथी की गर्ज सुन कर, अर्जुन कृष्ण से बोले ॥ १ ॥ हे मधुसूदन! जैसे प्राग्ज्योतिषराज हाथी से जल्दी २ निकला है, निःसंदेह यह उस की ध्वनि है ॥ २ ॥ वह युद्ध में इन्द्र तुल्य, हाथीसवारी में निपुण, गजयोद्धाओं में से सारी पृथिवी में मुखिया है,यह मेरा निश्चय है॥३॥ उस का हाथी भी युद्ध में अपना जोड़ नहीं रखता, युद्ध में वह सब शस्त्रों को उलंघ जाता है, थकता नहीं, काम को पूरा करके छोड़ता है ॥ ४ ॥ वह अकेला ही आज पाण्डवसेना का नाश करेगा, त्वरा से वहां चलो जहां प्राग्ज्योतिषों का राजा है॥ ५ ॥ उस को जाने लगा देख कर संशप्तक महारथियों ने सैंकड़ों सहस्रों बाण अर्जुन पर छोड़े ॥ ६ ॥ यह देख कृष्ण भी घबरा गए और उन्हें पसीना आ गया, तब अर्जुन प्रायः ब्रह्मास्त्र से उन का बध करने लगे ॥ ७ ॥ सैंकड़ों हाथ धनुष और चिह्ने समेत कट कर गिरे, झंडे घोड़े साराथि और रथी भूमि पर गिरे ॥ ८ ॥ उस संग्राम में मैंने सैंकड़ों और सहस्रों संशप्तक महारथी गिरते ही देखे ॥ ९ ॥ (पहले युद्ध से जो) संशप्तक बचे हुए थे, उन में से बहुतसों को इस प्रकार नाश करके,अर्जुन फिर कृष्ण से बोले,अब भगदत्त की ओर चलो ॥ १० ॥ सो अर्जुन द्रोण से तपाए जाते अपने भाइयों की ओर जब चले, तो युद्धार्थी सुशर्मा अपने भाइयों समेत उस के पीछे दौड़ा ॥ ११ ॥ तब अर्जुनकृष्ण से बोले,

हे अच्युत ! भाइयों समेत यह सुशर्मा मुझे बुला रहा है ॥ १२ ॥ क्या मैं संशप्तकों को मारूं, वा शत्रु से पीड़ित अपनों की रक्षा करूं। आप मेरे अभिप्राय को जानते हैं, इस में मेरे लिए क्या उचित है ॥ १३ ॥ यह सुन कर कृष्ण ने रथ को लौटाया, जहां सुशर्मा ने अर्जुन को आह्वान दिया था(अर्थात् श्रीकृष्ण रथ को आह्वान देने वाले सुशर्मा के पास ही ले गए, जिस से कि अर्जुन इस अकेले को झट जीत लें, तो उसी समय चलदें) ॥ १४ ॥ तब अर्जुन ने सुशर्मा को सात बाणों से विद्ध करके दो क्षुर बाणों से उस के झंडे और धनुष को काट गिराया ॥ १५ ॥ और छः बाणों से सुशर्मा के भाई को घोड़े और सारथि समेत यमपुर में पहुंचाया ॥ १६ ॥ तब अर्जुन (मार्ग रोकने वाले) सारे कौरव महारथियों को अपने बाणों से घास को अग्नि की भांति दग्ध करते हुए आए ॥ १७ ॥ अर्जुन बाणवृष्टि से सेना का संहार करते हुए बाज की झपट की भांति भगदत्त की ओर आए॥१८॥

मूल—तस्मिन् प्रमथिते सैन्ये भगदत्तो नराधिपः । तेन नागेन सहसा धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥ १९ ॥ ततस्तु शरजालेन महताऽभ्यवकीर्य तौ । चोदयामास तं नागं वधायाच्युत पार्थयोः ॥ २० ॥ तमापतन्तं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्ध मिवान्तकं । चक्रेऽपसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः ॥ २१ ॥ तस्य पार्थो धनुश्छित्वा परिवारं निहत्य च । लालयन्निव राजानं भगदत्त मयोधयत्॥२२॥ भगदत्तस्ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य जनाधिपः। व्यसृजत्तोमरान् मूर्ध्नि श्वेताश्वस्योन्ननाद च ॥ २३ ॥ तैरर्जुनस्य समरे किरीटं परिवर्तितं । परिवृत्तं किरीटं तद् यमयन्नेव पाण्डवः ॥ २४ ॥ सु दृष्टः क्रियतां लोक इति राजान मब्रवीत् ॥ २५ ॥ ततः पार्थो महाबाहु

रसम्भ्रान्तो महामनाः। कुम्भयोरन्तरे नागं नाराचेन समार्पयत् ॥ २६ ॥ स करी भगदत्तेन प्रेर्यमाणो मुहुर्मुहुः । न करोति वचस्तस्य दरिद्रस्येव योषिता ॥ २७ ॥ स तु विष्टभ्य गात्राणि दन्ताभ्यां मवनिं ययौ। नदन्नार्त स्वरं प्राणानुत्ससर्ज महाद्विपः॥२८॥ ततश्चन्द्रार्ध बिम्बेन बाणेन नतपर्वणा। बिभेद हृदयं राज्ञो भगदत्तस्य पाण्डवः ॥ २९ ॥ स हेममाली तपनीयभाण्डात् पपात नागाद्गिरि संनिकाशात् । सुपुष्पितो मारुतरुग्णवेगो महीधराग्रादिव कर्णिकारः ॥ ३० ॥ स्यालौ तव महात्मानौ राजानौ वृषकाचलौ । कमलाक्षौ तु गान्धारा वद्दतां पाण्डवं पुनः ॥३१॥ संश्लिष्टांगौ स्थितौ राजन् जघानैकेषुणार्जुनः ॥ ३२ ॥ न च द्वितीयं व्यसृजत् कुञ्जराश्वनरेषु सः । पृथगेकशरारुग्णा निपेतुस्ते गता सवः ॥ ३३ ॥ पिता सुतं त्यजति सुहृद्वरं सुहृत् तथैव पुत्रः पितरं शरातुरः । स्वरक्षणे कृतमतयस्तदा जनास्त्यजन्ति वाहानपि पार्थ पीडिताः ॥ ३४ ॥ अकम्पनीयाः शत्रूणां बभूवुस्तत्र पाण्डवाः । अकम्पयन्ननीकानि स्मरन्तः क्लेशमात्मनः ३५॥ न तु स्मरन्ति संग्राममपि वृद्धास्तथाविधं । दृष्टपूर्वं महाराज श्रुतपूर्वमथापि वा ॥ ३६ ॥ धृष्टद्युम्नोप्यासिवरं चर्म चादाय भास्वरं । जघान चन्द्रवर्माणं बृहत्क्षत्रं च नैषधं ॥ ३७ ॥ ततो बले भृशलुलिते परस्परं निरीक्षमाणे रुधिरौघ संप्लुते । दिवाकरेऽस्तं गिरिमास्थिते शनैरुभे प्रयाते शिबिराय भारत ॥ ३८ ॥

अर्थ—इस प्रकार उस सेना के मथे जाते हुए राजा भगदत्त हाथी से झट अर्जुन की ओर दौड़ा ॥ १९ ॥ और अर्जुन कृष्ण दोनों पर बाणवर्षा कर के हाथी को उन के वधके लिए प्रेरा ॥ २० ॥ यम की भांति क्रुद्ध हाथी को आता देख कृष्ण

झट पट रथ को बाईं ओर लौटा ले गए ॥ २१ ॥ अर्जुन ने उस के धनुष को काट दिया, और उस के साथियों को मार कर भगदत्त को लाड लडाता हुआ युद्ध कराने लगा ॥ २२ ॥ तब क्रुद्ध हुए राजा भगदत्त ने अर्जुन के सिर पर तोमर चलाए और गर्जना की ॥ २३ ॥ उन तोमरों से अर्जुन का मुकुट टेढा हो गया, टेढ़े हुए मुकट को संभालते हुए अर्जुन भगदत्त से बोले, अब लोक को अच्छी तरह देख लीजिये ॥२४-२५॥ तब महाबाहु दिलेर अर्जुन ने हाथी के कुम्भों पर बाण मारा ॥ २६ ॥ तब भगदत्त से वार २ प्रेरा हुआ भी हाथी उस के कहने पर न चला, जैसे निर्धन की स्त्री (कहा नहीं मानती) ॥ ३७ ॥ वह महागज अंगों को सुकोड़ कर आर्तध्वनि करता हुआ दांतों से भूमि पर गिरा और मर गया ॥ २८ ॥ तब तीखे चन्द्रार्धबाण से अर्जुन ने राजा भगदत्त के हृदय को विद्ध किया ॥ २९ ॥ सोने की माला धारे हुए राजा सोने के हौदे वाले पर्वत तुल्य हाथी से नीचे गिरा, जैसे कि फूला हुआ कनेर का वृक्ष आंधी से टूट कर पर्वत की चोटी से गिरे ॥ ३० ॥ तब गन्धार के रहने वाले तेरे दोनों साले राजा वृषक और अचल अर्जुन को ताड़ने लगे ॥ ३१ ॥ एक रथ पर मिल कर इकट्ठे बैठे हुए उन दोनों को अर्जुन ने एक ही बाण से मार डाला ॥ ३२॥ अर्जुन हाथी घोड़े और मनुष्यों पर दूसरा बाण नहीं छोडता था, एक२ बाण से ही पीड़ित हो २ कर सब अलग २ भूमि पर गिर रहे थे ॥ ३३ ॥ पिता पुत्र को और पुत्र पिता को, और सुहृद् सुहृद् को छोड़ रहा था, सब को अपनी रक्षा की चिन्ता पड़ गई, अर्जुन के बाणों से पीड़ित हुए अपने हाथी घोड़ों को

भी त्यागने लगे ॥ ३४ ॥ वहां पाण्डव तो शत्रुओं से कंपाए नहीं जाते थे, किन्तु अपने क्लेशों को स्मरण करते हुए वह सेनाओं को कंपाने लगे ॥ ३५ ॥ वृद्ध कहते हैं, ऐसा संग्राम न कभी पहले देखा है, न ही सुना है ॥ ३६ ॥ धृष्टद्युम्न ने भी चमकती ढाल तलवार ले कर चन्द्रवर्मा को और निषधराज बृहत्क्षेत्र को मारा ॥ ३७ ॥ सूर्य के अस्त होने पर रुधिर से लथपथ हुई दोनों सेनाएं अपने २ शिविरों को गईं ॥ ३८ ॥

अ० ५ (व० ३३-३६) अभिमन्यु वध पर्व

मूल—ततः प्रभात समये द्रोणं दुर्योधनोऽब्रवीत । प्रणयाद‌भिमानाच्च द्विषदृद्धया च दुर्मनाः ॥ १ ॥ नूनं वयं वध्यपक्षे भवतो द्विजसत्तम । तथाहि नाग्रहीः प्राप्तं समीपेऽद्य युधिष्ठिरं ॥ २ ॥ इच्छतस्ते न मुच्येत चक्षुः प्राप्तो रणे रिपुः । जिघृक्षतो रक्ष्यमाणः सामरैरपि पाण्डवैः ॥ ३ ॥वरं दत्त्वा मम प्रीतः पश्चाद्विकृतवानसि । आशाभंगं न कुर्वन्ति भक्तस्यार्याः कथञ्चन॥४॥ ततोऽप्रीतस्तथोक्तः सन् भारद्वाजोऽब्रवीन्नृपं । नार्हसेमां तथा ज्ञातुं घटमानं तव प्रिये ॥ ५ ॥ ससुरासुर गन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः । नालं लोका रणे जेतुं पाल्यमानं किरीटिना ॥ ६ ॥ सत्यं तात ब्रवीम्यद्य नैतज्जात्वन्यथा भवेत् । अद्यैकं प्रवरं कंचित पातयिष्ये महारथं ॥ ७ ॥ तं च व्यूहं विधास्यामि योऽभेद्यस्त्रिदशैरपि । योगेन केनचिद्राजन्नर्जुनस्त्वपनीयतां ॥ ८ ॥ द्रोणेन व्याहृते त्वेवं संशप्तक गणाः पुनः । आह्वयन्नर्जुनं संख्ये दक्षिणामभितो दिशं ॥ ९ ॥ ततोऽर्जुनस्याप्यपरैः सार्धं समभवद्रणः । तादृशो यादृशो नान्यः श्रुतो दृष्टोऽपिवा क्वचित् ॥ १० ॥

अर्थ—अब शत्रुओं की वृद्धि से दुर्मन हुए दुर्योधन प्रभात के समय प्रेम और अभिमान पूर्वक द्रोण से बोले ॥ १ ॥ हे द्विज-सत्तम ! हम अवश्य ही आप के वध्यपक्ष में आगए, क्योंकि तुमने समीप आए भी युधिष्ठिर को नहीं पकड़ा ॥२॥ तुम चाहो, तो रण में आंखों के सामने आया शत्रु छूट नहीं सकता, तुम पकड़ना चाहो, तो देवता और पाण्डव मिल कर भी बचा नहीं सकते ॥ ३ ॥ प्रसन्न हो कर मुझे वर दे कर आप उलटा कर रहे हैं, आर्य अपने भक्त की आशा भंग नहीं किया करते ॥ ४ ॥ यह सुन कर अप्रसन्न हुए द्रोण राजा से बोले, मुझ को ऐसा नहीं जानना चाहिये, जब कि तुम्हारी भलाई में लगा हूं ॥ ५ ॥ देव दैत्य गन्धर्व यक्ष नाग राक्षस भी अर्जुन से रक्षित को रण में जीत नहीं सकते हैं ॥ ६ ॥ हे तात तुझे सत्य कहता हूं, यह बात अन्यथा नहीं होगी, आज किसी एक महारथ को अवश्य गिराउंगा ॥ ७ ॥ आज वह व्यूह रचूंगा, जिस को देवता भी नहीं भेद सकेंगे। हे राजन् आप किसी उपाय से अर्जुन को परे हटा ले जाइये ॥ ८ ॥ द्रोण के ऐसा कहने पर फिर संशप्तकगण रण में अर्जुन को आह्वान करके दक्षिण दिशा में ले गए ॥ ९ ॥ वहां अर्जुन का शत्रुओं से ऐसा रण मचा, जैसा कहीं और कोई न देखा न सुना है ॥ १० ॥

मूल—चक्रव्यूहो महाराज आचार्येणाभि कल्पितः। तत्र शक्रोपमाः सर्वे राजानो विनिवेशिताः ॥ ११ ॥ तदनीक मनाधृष्यं भारद्वाजेन रक्षितं। पार्थाः समभ्य वर्तन्त भीमसेन पुरोगमाः ॥ १२ ॥पीड्यमानाः शरै राजन् द्रोण चाप विनिः सृतैः। न शकुः प्रमुखे स्थातुं भारद्वाजस्य पाण्डवाः ॥ १३ ॥ तमायान्त मभि क्रुद्धं

द्रोणं दृष्ट्वा युधिष्ठिरः । बहुधा चिन्तयामास द्रोणस्य प्रतिवारणं ॥ १४ ॥ अब्रवीत् परवीरघ्न मभिमन्युमिदं वचः ॥ १५ ॥ त्वं वार्जुनो वा कृष्णो वा भिन्द्यात् प्रद्युम्न एव वा । चक्र व्यूहं महा-बाहो पञ्चमो नोप पद्यते ॥ १६ ॥ धनञ्जयो हि नस्तात गर्हयेदेत्य संयुगात् । क्षिप्र मस्त्रं समादाय द्रोणानीकं विशातय ॥ १७ ॥ अभिमन्यु रुवाच—द्रोणस्य दृढ मत्युग्र मनीक प्रवरं युधि। पितॄणां जयमा काङ्क्षन्नवगाहेऽविलम्बितं ॥ १८ ॥ उपदिष्टो हि मे पित्रा योगोऽनीक विशातने । नोत्सहे हि विनिर्गन्तु महं कस्यां चिदा पदि ॥ १९ ॥ भीम उवाच—अहं त्वा नुगमिष्यामि धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः । पञ्चालः केकया मत्स्यास्तथा सर्वे प्रभद्रकाः॥ २० ॥ सकृद्भिन्नं त्वया व्यूहं तत्र तत्र पुनः पुनः । वयं प्रध्वंसयिष्यामो निघ्नमाना वरान् वरान् ॥ २१ ॥ अभिमन्यु रुवाच—तत्कर्माद्य करिष्यामि हितं यद्वंशयोर्द्वयोः । मातुलस्य च यत्प्रीतिं करिष्यति पितुश्चमे ॥ २२ ॥ यदि चैकरथेनाहं समग्रं क्षत्र मण्डलं । न करो-म्यष्टधा युद्धे न भवाम्यर्जुनात्मजः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिर उवाच—एवं ते भाषमाणस्य बलं सौभद्र वर्धतां । यत्समुत्सहसे भेत्तुं द्रो-णानीकं दुरासदं ॥ २४ ॥ सौभद्रस्तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धी-मतः । अचोदयत यन्तारं द्रोणानीकाय भारत ॥ २५ ॥ तेन संचोद्यमानस्तु याहि याहीति सारथिः । प्रत्युवाच ततो राजन्न-भिमन्यु मिदं वचः ॥ २६ ॥ अतिभारोऽय मायुष्मन्नाहितास्त्व-यि पाण्डवैः । संप्रधार्य क्षणं बुद्ध्या ततस्त्वं योद्धु मर्हसि ॥२७॥ अभिमन्युश्चतां वाचं कदर्थी कृत्य सारथेः । याहीत्येवाब्रवीदेनं द्रोणा नीकाय मा चिरं ॥ २८ ॥ ततः संनोदयामास हयानाशु त्रिहायनान् । नातिहृष्टमनाः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान् ।२९।

तमुदीक्ष्य तथा यान्तं सर्वे द्रोण पुरोगमाः । अभ्यवर्तन्त कौरव्याः पाण्डवाश्च समन्वयुः ॥ ३० ॥ प्रवर्तमाने संग्रामे तस्मिन्नाति भयंकरे । द्रोणस्य मिषतो व्यूहं भित्त्वा प्राविशदार्जुनिः॥ ३१ ॥ तं प्रविष्टं विनिघ्नन्तं शत्रुसंघान् महाबलं । हस्त्यश्वरथ पत्त्यौघाः परिवव्रुरुदायुधाः ॥ ३२ ॥ तेषामा पततां वीरः शीघ्र योधी महाबलः । क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद्राजन् मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ ३३ ॥ ततस्तेषां शरीरैश्च शरीरावयवैश्च सः । स तस्तार क्षितिं क्षिप्रं कुशैर्वेदि मिवाध्वरे ॥ ३४ ॥

अर्थ—हे महाराज ! आचार्य ने चक्रव्यूह रचा, और इन्द्रतुल्य सभी राजे उस (व्यूह के अंगों के स्थान) में लगाए ॥ ११ ॥ भीमसेन आदि पाण्डव द्रोण से रक्षित उस सेना के अभिमुख हुए ॥ १२ ॥ द्रोण के धनुष से छूटे बाणों से पीड़ित पाण्डवपक्षी द्रोण के सम्मुख ठहर नहीं सके ॥ १३ ॥ क्रुद्ध हुए बढ़ते आते द्रोण को देख कर युधिष्ठिर को उस के रोकने की भारी चिन्ता लगी ॥ १४ ॥ वह सोच कर शत्रुवीरों के मारने वाले अभिमन्यु से यह वचन बोले ॥ १५ ॥ हे महाबाहो ! तू वा अर्जुन वा कृष्ण वा प्रद्युम्न ही चक्र व्यूह को भेद सकते हैं, पांचवां कोई नहीं है ॥ १६ ॥ हे तात ! अर्जुन संग्राम से आ कर हमारी निन्दा करेगा, सो तुम शीघ्र अस्त्र ले कर द्रोण की सेना को तोड़ो ॥ १७ ॥ अभिमन्यु बोला—पितरों के विजय के लिए द्रोण की इस दृढ अत्युग्र सेना में विना विलम्ब के घुस पड़ता हूं ॥ १८ ॥ सेना के तोड़ देने में मुझे पिता ने युक्ति बतलाई हुई है, पर यदि कोई विपद् आ पड़े तो मैं बाहर नहीं

निकल सकता हूं ॥ १९ ॥ भीम बोले—मैं तेरे पीछे चलूंगा, तथा धृष्टद्युम्न, सात्यकि, पञ्चाल, केकय, मत्स्य, और प्रभद्रक सब तेरे पीछे चलेंगे ॥ २० ॥ एक बार जब तुम व्यूह को भेद दोगे, तो हम वहां २ चुने २ पुरुषों को मारते हुए बार २ ध्वंस करेंगे ॥ २१ ॥ अभिमन्यु बोला—वह काम आज कर दिखलाऊंगा, जो दोनों वंशों (पितृवंश और मातृवंश)का हितकर हो, जो मेरे मामे और पिता दोनों को प्रसन्न करेगा ॥ २२ ॥ यदि मैं एक ही रथ से इस समग्र क्षत्रमण्डल को आज आठ टुकड़े न कर दिखलाऊं, तो मैं अर्जुन का पुत्र नहीं हूं ॥ २३ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे सौभद्र तुझ ऐसा कहने वाले के बल की वृद्धि हो,जो तू दुर्धर्ष द्रोणसेना को भेदने का उत्साह करता है॥२४॥ बुद्धिमान् धर्मराज के इस वचन को सुन कर अभिमन्यु ने सारथि को द्रोण की सेना के लिए प्रेरा ॥ २५ ॥ चलो २ इस प्रकार उस से प्रेरा हुआ सारथि हे राजन् ! अभिमन्यु से यह वचन बोला ॥ २६ ॥ हे आयुष्मन् ! यह बहुत बड़ा भार तुम्हारे ऊपर पाण्डवों ने डाला है, सो आप थोड़ी देर सोच समझ कर निश्चय करके पीछे युद्ध करने योग्य हैं ॥ २७ ॥ अभिमन्यु तो सारथि की इस बात को निकम्मी करके यही बोले, द्रोणसेना की ओर चलो, मत देर करो ॥ २८ ॥ तब सुनहरी भूषणों से सजे हुए तीन २ वर्ष के घोड़ों को सारथि ने शीघ्र २ हांका, पर उस का मन बहुत प्रसन्न न था ॥ २९ ॥ उस को आता देख कर द्रोण आदि सभी कौरव्य उस के सम्मुख हुए और पाण्डव उस के पीछे २ चले ॥ ३० ॥ उस अति भयंकर संग्राम के प्रवृत्त होने पर अभिमन्यु द्रोण के देखते २ व्यूह को भेद अन्दर घुस गया

॥ ३१ ॥ अन्दर घुस कर शत्रुदलों को मारते हुए उस महाबली को शस्त्र उठाए हाथी घोड़े रथों के सवारों और प्यादों ने चारों ओर से घेर लिया ॥ ३२ ॥ शीघ्रयोधी शीघ्र अस्त्रों वाला मर्मों के जानने वाला वह महाबली वीर उन आते हुओं का मर्मभेदी बाणों से वध करने लगा ॥ ३३ ॥ और उन के शरीर और शरीरों के अंगों को इस प्रकार भूमि पर बिछाया, जिस प्रकार यज्ञ में वेदि पर कुशा बिछाते हैं ॥ ३४ ॥

अ० ६ (व० ४२-५१) अभिमन्यु वध

मूल–युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ । धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयः ॥ १ ॥ धृष्टकेतुश्च संरब्धो मत्स्याश्चाभ्यपतन् रणे । तेनैव तु पथा यान्तः पितरो मातुलैः सह ॥ २ ॥ अभ्यद्रवन् परीप्सन्तो व्यूढानीकाः प्रहारिणः। तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरांस्त्वदीया विमुखाऽभवन् ॥ ३ ॥ ततस्तद्विमुखं दृष्ट्वा तव सूनोर्महद्बलं । जामाता तव तेजस्वी संस्तभयिषुराद्रवत् ॥ ४ ॥ सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः । एकः संवारयामास पाण्डवानामनीकिनीं ॥ ५ ॥ स विस्फार्य महच्चापं किरन्निषुगणान् बहून् । तत्खण्डं पूरयामास यद् व्यदार यदार्जुनिः ॥ ६ ॥ सैन्धवेन निरुद्धेषु जय गृद्धिषु पाण्डुषु । सुघोरमभवद् युद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ ७ ॥ प्रविश्याथार्जुनिः सेनां सत्यसन्धो दुरासदः । व्यक्षोभयत तेजस्वी मकरः सागरं यथा॥८॥ आददानस्तु भूताना मायूंष्यभवदार्जुनिः । अन्तकः सर्व भूतानां प्राणान् काल इवागते ॥ ९ ॥ ये केचन गतास्तस्य समीपमपलायिनः । न ते प्रतिन्यवर्तन्त समुद्रादिव सिन्धवः॥ १० ॥ सं

शुष्कास्याश्चलनेत्राः प्रस्विन्ना लोमहर्षणाः। पलायनकृतोत्सा हा निरुत्सा हा द्विषज्जये॥११॥ हतान् भ्रातॄन् पितॄन् पुत्रान् सुहृत्सम्बन्धि बान्धवान्। उत्सृज्योत्सृज्य संजग्मुस्त्वरयन्तो हयद्विपान्॥१२॥

अर्थ—युधिष्ठिर भीमसेन शिखण्डी सात्यकि नकुल सहदेव धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, केकय, जोशीला धृष्टकेतु और मत्स्य यह सब पितृवंश और मातृवंश के योधे उसी मार्ग से चलते हुए रण में सम्मुख आए॥ १—२ ॥ यह योधे सेना के व्यूह बान्ध कर सहायता के लिए दौड़े, उन आक्रमण करते हुए शूरवीरों को देख कर आप के योधे विमुख हो गए॥ ३ ॥ उस समय तेरे पुत्र की बड़ी सेना को विमुख देख कर तेरा तेजस्वी जामाता उन को थामने के लिए दौड़ा ॥ ४ ॥ सिन्धुराज के पुत्र राजा जयद्रथ अकेले ने पाण्डवों को रोक लिया ॥ ५ ॥ बड़े धनुष को तान कर बहुत से बाण समूह छोड़ते हुए ने उस खण्ड को फिर पूर दिया, जो अभिमन्यु ने तोड़ा था ॥ ६ ॥ जयाभिलाषी पाण्डवों को जब जयद्रथ ने रोक दिया, तो आप के पक्ष वालों का शत्रुओं से सुघोर युद्ध होने लगा ॥ ७ ॥ सत्य प्रतिज्ञा वाले दुर्जय तेजस्वी अभिमन्यु ने अन्दर घुस कर इस प्रकार सेना को हलचल में डाल दिया, जैसे समुद्र में मगर ॥ ८ ॥ सब योधाओं के आयुओं को लेता हुआ अभिमन्यु काल आने पर लोगों के प्राणों को हरते हुए यम की भांति प्रतीत होता था ॥९॥ जो कोई भी उस के निकट गए और भागे नहीं, वह फिर लौटे नहीं, जैसे समुद्र से नादियें ॥ १० ॥ योधाओं के मुख सूखने लगे, नेत्र फिरने लगे, पसीने आगए, रौंगटे खड़े होगए, सब भागने में उत्साह दिखलाने लगे, शत्रु के जीतने से निरुत्साह हुए ॥११ ॥

मरे हुए भाई पितर पुत्र सुहृद् सम्बन्धि बान्धवों को छोड़२ कर अपने हाथी घोड़ों को शीघ्रता से चलाते हुए भागे ॥ १२ ॥

मूल—एकस्तु सुख संवृद्धो बाल्याद्दर्पाच्च निर्भयः। इष्वस्त्रविन्महातेजा लक्ष्मणोऽर्जुनि मभ्यगात् ॥ १३ ॥ तमन्वेगवास्य पिता पुत्रगृद्धी न्यवर्तत । अनुदुर्योधनं चान्ये न्यवर्तन्त महारथाः ॥ १४ ॥ लक्ष्मणेन तु संगम्य सौभद्रः परवीरहा । शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैर्बाह्वो रुरसि चार्पयत् ॥ १५ ॥ सुदृष्टः क्रियतां लोको ह्यमुं लोकं गमिष्यसि । पश्यतां बान्धवानां त्वां नयामि यमसादनं ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वा ततो भल्लं सौभद्रः परवीरहा । उद्बबर्ह महाबाहुर्निर्मुक्तोरगसन्निभं ॥ १७ ॥ स तस्य भुजनिर्मुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनं । सुनसं सुभ्रुकेशान्तं शिरोऽहार्षीत्सकुण्डलं ॥ १८ ॥ लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हाहेत्युच्च क्रुशुर्जनाः॥१९॥ ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रिये पुत्रे निपातिते । हतैनमिति चुक्रोश क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ॥ २० ॥ ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रोणपुत्रो बृद्बलः । कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन्॥२१॥ तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् सर्वविद्यासुनिष्ठितान् । व्यधष्टं भयद्रणे बाणैः सौभद्रः परवीरहा ॥ २२ ॥ स कर्ण कर्णिना कर्णे पीतेन च शितेन च । फाल्गुनिर्द्विषतां मध्ये विव्याध परमेषुणा ॥ २३ ॥ तं कोसलानामधिपः कर्णिनाऽताडयद्धृदि । स तस्याश्वान् ध्वजं चापं सूतं चापातयत्क्षितौ ॥ २४ ॥ अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्ग चर्मधृत् । इयेष फाल्गुनेः कायाच्छिरो हर्तुं सकुण्डलं ॥ २५ ॥ स कोसलानामधिपं राजपुत्रं बृहद्बलं । हृदि विव्याध बाणेन सभिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २६ ॥ तथेतरान् महे-

ष्वासान् दशभिर्दशभिः शरैः । प्रत्यविध्यद् संभ्रान्तस्तदद्भुत मिवा भवत् ॥ २७ ॥ मागधस्य तथा पुत्रं हत्वा षड्भिराजिह्मगैः। साश्वं ससूतं तरुणमश्वकेतु मपातयत् ॥ २८ ॥ मार्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनं । क्षुरप्रेण समुन्मथ्य ननाद विसृजन् शरान् ॥२९॥ शत्रुंजयं चन्द्रकेतुं मेघवेगं सुवर्चसं । सूर्य भासं च पञ्चैतान् हत्वा विव्याध सौबलम् ॥ ३० ॥

अर्थ—किन्तु सुख मे पला हुआ, बाल्य और दर्प के कारण निर्भय धनुष बाण का जानने वाला महातेजस्वी लक्ष्मण अकेला अभिमन्यु की ओर बढ़ा॥१३॥उस के पीछे ही पिता (दुर्योधन) भी पुत्र के प्रेम से हो लिया, और दुर्योधन के पीछे और सब महारथ लौटे ॥ १४ ॥ शत्रुवीरों के मारने वाले अभिमन्यु ने लक्ष्मण से जुट कर तीखे साने हुए बाण उस की दोनों भुजाओं में और छाती में गाड़ दिये ॥ १५ ॥ (और बोला) इस लोक को भली भांति देखले, क्योंकि अब तू उस लोक को जाने लगा है, तेरे बन्धुओं के सामने तुझे यम के घर पहुंचाता हूं ॥ १६ ॥ यह कह कर महाबाहु अभिमन्यु ने कैंचुली उतारे हुए सर्प की भांति भाला घोंप दिया ॥ १७ ॥ उस भुजा से छूटा हुआ भाला लक्ष्मण के सुन्दर नासा भौएं और मस्तक वाले सिर को कुण्डलों समेत उड़ा ले गया॥१८॥लक्ष्मण को मरा देख कर सारे वीर हा हा पुकार उठे ॥ १९ ॥ प्यारे पुत्र के मरने पर क्रुद्ध हुए दुर्योधन सारे वीरों से पुकार कर बोले 'इसे मारो' ॥ २० ॥ तब द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल, और कृतवर्मा इन छः रथियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया॥ २१ ॥ सब विद्याओं में निपुण उन सारे महा धनुर्धारियों को अभिमन्यु ने अपने

बाणों से रोक दिया ॥ २२ ॥ उस ने एक बुझे हुए तीखे कर्णी बाण से कर्ण के कर्ण को शत्रुओं के मध्य में विद्ध किया॥२३॥ कोसलराज बृहद्बल ने आगे बढ़ कर अभिमन्यु के हृदय में बाण मारा, अभिमन्यु ने उस के घोड़े झंडे धनुष और सारथि को पृथिवी पर गिराया ॥ २४ ॥ तब रथहीन हुआ बृहद्बल ढाल तलवार ले कर अभिमन्यु का सिर काटने को दौड़ा॥२५॥ तब अभिमन्यु ने कोसलराज बृहद्बल के हृदय में बाण मारा, हृदय में गाढ विद्ध हुआ वह गिर पड़ा ॥ २६ ॥ और फिर दूसरे महा धनुर्धारियों में हर एक पर दस २ बाण मारे और स्वयं घबराया नहीं, यह अद्भुत सा हुआ ॥ २७ ॥ मगधराज को छः बाणों से मार कर, घोड़े और सारथि समेत युवा अश्वकेतु को मार गिराया ॥ २८ ॥ इस के अनन्तर क्षुरप्रबाण से हाथी की ध्वजा वाले मार्तिकावत देशीय वीरों पीड़ित कर के बाणों को छोड़ता हुआ गर्जा ॥ २९ ॥ शत्रुंजय, चन्द्रकेतु, मेघ वेग, सुवर्चा और सूर्यभा इन पांचों को मार कर शकुनि को ताड़ित किया ॥३०॥

मूल—तं सौबलस्त्रिभिर्विध्वा दुर्योधन मथाऽब्रवीत् । सर्व एनं विमथ्नीमः पुरैकैकं हिनास्ति नः ॥ ३१ ॥ अथाब्रवीत् पुनर्द्रोणं कर्णो वैकर्तनो रणे । पुरा सर्वान् प्रमथ्नाति ब्रूह्यस्य वध माशु नः ॥ ३२ ॥ ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वांस्तान् प्रत्यभाषत ॥ ३३ ॥ आरुजन्नपि मे प्राणान् मोहयन्नपि सायकैः। प्रहर्षयाति मां भूयः सौभद्रः परवीरहा ॥ ३४ ॥ अति मां नन्दयत्येषसौभद्रो विचरन् रणे । अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः ॥ ३५ ॥ अस्यतो लघुहस्तस्य दिशः सर्वा महेषुभिः । न विशेषं प्रपश्यामि रणे गांडीवधन्वनः ॥ ३६ ॥ अथकर्णः पुनर्द्रोण माहा-

र्जुने शराहतः॥ ३७ ॥ तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणाः। क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावक तेजसः ॥ ३८ ॥ तमाचार्योऽब्रवीत् कर्णं शनकैः प्रहसन्निव । अभेद्यमस्य कवचं युवा चाशु पराक्रमः ॥ ३९ ॥ उपदिष्टा मया चास्य पितुः कवच धारणा । तामेष निखिलां वेत्ति ध्रुवं पर पुरञ्जयः ॥ ४० ॥ शक्यं चास्य धनुश्छेत्तुं ज्यां च बाणैः समाहितैः । अभीषूंश्च हयांश्चैव तथो भौ पार्ष्णि सारथी ॥ ४१ ॥ एतत्कुरु महेष्वास राधेय यदि शक्ष्यसे। सधनुष्को न शक्योऽय मपि जेतुं सुरासुरैः ॥ ४२ ॥ तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्त नस्त्वरन् । अस्यतो लघु हस्तस्य पृषत्कैर्धनुराच्छिनत् ॥ ४३ ॥ अश्वानस्याऽवधीद्भोजो गौतमः पार्ष्णि सारथी । शेषास्तु छिन्न धन्वानं शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ४४ ॥ त्वरमाणास्त्वरा काले विरथं षण्महारथाः । शरवर्षैरकरुणा बालमेकमवा किरन् ॥ ४५ ॥ स छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्म मनु पालयन् । खड्गचर्म धरः श्रीमानुत्पपात विहायसा ॥ ४६ ॥ तस्य द्रोणोऽच्छिनन्मुष्टौ खड्गं मणिमयत्सरुं । क्षुरप्रेण महातेजास्त्वरमाणः सपत्नजित् ॥ ४७ ॥ राधेयो निशितैर्बाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमं। अभिमन्युर्गदा पाणिरश्वत्थामान मार्दयत् ॥ ४८ ॥ ततः सुबलदायादं कालकेय मपोथयत् । पुनश्चैव वसातीयान् जघान रथिनो दश ॥ ४९ ॥ केकयानां हयान् सप्त हत्वा च दश कुञ्जरान् । दौःशासनिरथं साश्वं गदयासमपोथयत् ॥ ५० ॥

अर्थ—शकुनि अपने तीन बाणों से अभिमन्यु को विद्ध करके दुर्योधन से बोले, सब मिल कर इस का वध करें, पूर्व इस के कि यह हम में से अकेले २ को मार डाले ॥ ३१ ॥ उधर कर्ण भी द्रोणाचार्य से बोले, पूर्व इस के कि यह हमें मार डाले, शीघ्र

इस के वध का उपाय बतलाइये ॥ ३२ ॥ तब महाधनुर्धारी द्रोण उन सब से बोले ॥ ३३ ॥ शत्रुवीरों के मारने वाला अभिमन्यु मेरे प्राणों को पीड़ित करता हुआ भी और मोह में डालता हुआ भी मुझे बड़ा हर्षित कर रहा है ॥ ३४ ॥ अभिमन्यु रण में चारों ओर घूमता हुआ मुझे बड़ा ही आनन्दित कर रहा है, जिसका सारे क्रुद्ध हुए महारथी कोई छिद्र नहीं देखते हैं ॥ ३५ ॥ जिस फुर्ती के साथ चारों ओर बाण चला रहा है,इस से रण में अर्जुन की इस से कोई अधिकता नहीं देखता हूं ॥ ३६ ॥ इतने में फिर अभिमन्यु के बाणों से पीड़ित होकर कर्ण ने कहा ॥ ३७ ॥ इस तेजस्वी कुमार के अग्नि तुल्य तेज वाले अति दारुण बाण मेरे हृदय को पीड़ित कर रहे हैं ॥ ३८ ॥ आचार्य हंसते हुए धीरे से बोले, इस का कवच अभेद्य है और यह युवा बड़े तीखे पराक्रम वाला है ॥ ३९ ॥ मैंने इस के पिता को कवचधारणा का जो उपदेश दिया था,उस सारी धारणा को यह अवश्य जानता है।४०।तुम इस के धनुष और चिल्ला बागें, घोड़े, सारथि और पृष्ठ रक्षक का अपने बाणों से नाश कर सकोगे ॥ ४१ ॥ हे कर्ण यदि कर सकते हो, तो यह काम करो, धनुष के होते हुए तो यह देव दैत्यों से नहीं जीता जा सकेगा ॥ ४२ ॥ आचार्य के बचन को सुन कर कर्ण ने त्वरा से उस फुर्तीले हाथ वाले के धनुष को काट दिया॥४३॥ भोज ने इस के घोड़े मार डाले और कृपाचार्य ने सारथि और पृष्ठरक्षक को मार डाला, शेष उस पर बाण बरसाने लगे ॥४४॥ तेजी के समय तेजी दिखलाते हुए छः महारथी रथहीन उस अकेले बाल पर बाण बरसाने लगे ॥ ४५ ॥ रथ और धनुष से हीन हुआ वह वीर धर्म का पालन करता हुआ वह श्रीमान् ढाल

तलवार ले कर उछल पड़ा ॥ ४६ ॥ शत्रुओं के जीतने वाले महातेजस्वी द्रोण ने तेजी के साथ उस के मणियों की मुट्ठी वाले खड्ग को मुट्ठी से काट दिया ॥४७॥ और कर्ण ने अपने तीखे बाणों से उस की ढाल को टुकड़े किया, तब अभिमन्यु ने हाथ में गदा ले कर अश्वत्थामा को पीड़ित किया ॥ ४८ ॥ और फिर सुबल के पुत्र कालकेय को पीस डाला। और फिर दस वसातीय रथियों को मारा ॥ ४९ ॥ फिर केककयों के सात घुड़सवारों और दस हाथी सवारों को मार कर गदा से दुःशासन सुत के रथ को उस के घोड़े समेत पीस डाला ॥ ५० ॥

मूल—ततो दौःशासनिः क्रुद्धो गदा मुद्यम्य मारिषाअभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ५१ ॥ तावन्योन्यं गदाग्राभ्या माहत्य पतितौ क्षितौ। इन्द्र ध्वजा विवोत्सृष्टौ रण मध्ये परंतपौ ॥ ५२ ॥ दौः शासनि रथोत्थाय कुरूणां कीर्तिवर्धनः। उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत् ॥ ५३ ॥ गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः। विचेता न्यपतद्भूमौ सौभद्रः परवीरहा ॥ ५४ ॥ एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे ॥ ५५ ॥ क्षोभयित्वा चमूं सर्वां नालिनीमिव कुञ्जरः। रथाश्वनरमातंगान् विनिहत्य सहस्रशः ॥ ५६ ॥ अवितृप्तः स संग्रामादशोच्यः पुण्यकर्मणां। गतः पुण्यकृतां लोकान् शाश्वतान् पुण्यनिर्जितान् ॥ ५७ ॥ निवेशायाभ्युपायामः सायान्हे रुधिरोक्षिताः ॥ ५८ ॥ निरीक्ष्यमाणास्तु वयं परेचायोधनं शनैः। अपयाता महाराज ग्लानिं प्राप्ता विचेतसः ॥ ५९ ॥

अर्थ—तब क्रुद्ध हुआ दुःशासन सुत गदा उठा कर अभिमन्यु की ओर दौड़ा और ठहरो २ पुकारा ॥ ५१ ॥ वह दोनों

एक दूसरे को गदा से ताड कर रण के मध्य में छोड़े हुए इन्द्र-ध्वजों की भांति भूमि पर गिर पड़े ॥ ५२ ॥ कौरवों का यश बढ़ाने वाला दुःशासनसुत झट उठा, और उठते २ अभिमन्यु के सिर पर जोर से गदा मारी ॥ ५३ ॥ गदा के वेग से और अति व्यायाम मोहित हुआ अभिमन्यु बेसुध हो भूमि पर गिर पड़ा ॥ ५४ ॥ इस प्रकार हे राजन् युद्ध में उस अकेले को बहुतों ने मारा ॥ ५५ ॥ नलिनी को हाथी की भांति सारी सेना को हल चल में डाल कर, सहस्रों रथ घोड़े हाथी सवार और प्यादे मार कर, संग्राम से अभी तृप्त न हुआ, पुण्यात्माओं के लिए शोक के अयोग्य, अभिमन्यु अपने पुण्य से कमाए पुण्यकर्मियों के सनातन लोकों को चला गया ॥ ५६—५७ ॥ अब सायं समय भी होगया, उस समय रुधिर से भीगे हुए हम युद्धभूमि पर दृष्टि डालते हुए छावनी को गए, और शत्रु ग्लानि को प्राप्त हुए घबराए हुए युद्धभूमि को देखते हुए लौटे ॥ ५८—५९ ॥

मूल—हते तस्मिन् महावीर्ये सौभद्रे रथयूथपे। विमुक्तरथ सन्नाहाः सर्वे निःक्षिप्तकार्मुकाः ॥ ६० ॥ उपोपविष्टा राजानं परिवार्य युधिष्ठिरं।तदेव युद्धं ध्यायन्तः सौभद्रगत मानसाः॥६१॥ ततो युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः । अभिमन्यौ हते वीरे भ्रातुः पुत्रे महारथे ॥ ६२ ॥ द्रोणानीक मसम्बाधं ममप्रिय चि-कीर्षया । भित्त्वा व्यूहं प्रविष्टोऽसौ गोमध्यमिव केसरी ॥ ६३ ॥ स तीर्त्वा दुस्तरं वीरो द्रोणानीक महार्णवं । प्राप्य दौः शासनिं कार्ष्णिः प्राप्तो वैवस्वतक्षयं ॥ ६४ ॥ कथं द्रक्ष्यामि कौन्तेयं सौ-भद्रे निहतेऽर्जुनं । सुभद्रां वा महाभागां प्रियं पुत्र मपश्यतीं॥६५॥

किं स्विद्वयमपेतार्थं मक्लिष्ट मसमञ्जसं । तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषीकेश धनञ्जयौ॥ ६६ ॥ अहमेव सुभद्रायाः केशवार्जुनयोरपि । प्रियकामो जयाकाङ्क्षी कृतवानिदमप्रियं ॥ ६७ ॥ न लुब्धो बुध्यते दोषान् लोभान्मोहात् प्रवर्तते । मधुलिप्सुर्हि नापश्यं प्रपातमह मीदृशं ॥ ६८ ॥ यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च । भूषणेषु च सोऽस्माभिर्बालो युधि पुरस्कृतः ॥ ६९ ॥

अर्थ—रथयूथपति महाशक्ति अभिमन्यु के मरने पर सारे रथ कवच और धनुष बाण त्याग कर अभिमन्यु की चिन्ता में उसी युद्ध का ध्यान करते हुए राजा युधिष्ठिर को घेर कर बैठ गए ॥ ६०—६१ ॥ भ्रातृ पुत्र महारथ वीर अभिमन्यु के मरने पर अतीव दुःखित हुए राजा युधिष्ठिर विलाप करने लगे॥६२॥ हाय वह मेरा प्रिय करने के निमित्त द्रोणसेना के गटे हुए व्यूह के अन्दर वह इस प्रकार घुस गया, जैसे गौओं के मध्य में बबर शेर ॥ ६३ ॥ वह वीर द्रोणसेना के बड़े दुस्तर सागर को तैर कर दुःशासनसुत को पाकर यम के घर पहुंचा ॥ ६४ ॥ अभिमन्यु के मरने पर कैसे मैं अर्जुन को देखूंगा, वा प्रिय पुत्र को न देखती हुई महाभागा सुभद्रा को कैसे देखूंगा ॥ ६५ ॥ कैसे हम यह अर्थ शून्य अयोग्य वृत्तान्त कृष्ण और अर्जुन को सुनाएंगे ॥ ६६ ॥ मैंने अपने विजय की कामना से सुभद्रा कृष्ण और अर्जुन का यह अप्रिय किया है ॥ ६७ ॥ लोभी दोषों को नहीं देखता है, लोभ और मोह से पुरुष की प्रवृत्ति होती है, मधु पाने की इच्छा से मैंने ऐसे गिरने को नहीं देखा ॥६८॥ भोज्य, शय्या, सवारी और भूषण दे कर जिस को आनन्दित करना था, उसी को हमने युद्ध में आगे किया ॥ ६९ ॥

अ० ७ (व० ७२-७४) अर्जुन की प्रतिज्ञा

मूल—हत्वा संशप्तक व्रातान् दिव्यै रस्त्रैः कपिध्वजः।प्रायात् स्वशिविरं जिष्णुर्जैत्र मास्थाय तं रथं ॥ १ ॥ ततः सन्ध्या मुपास्यैव वीरौ वीरावसादने।। कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ॥ २ ॥ ततः स्वशिविरं प्राप्तौ हतानन्दं हतत्विषं। ददृशाते भृशाऽस्वस्थान् पाण्डवान्नष्ट चेतसः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा भ्रातॄंश्च पुत्रांश्च विमना वानरध्वजः। अपश्यंश्चैव सौभद्र मिदं वचन मब्रवीत् ॥४॥ मुख वर्णोऽप्रसन्नो वः सर्वेषामेव लक्ष्यते। न चाभिमन्युं पश्यामि न च मां प्रतिनन्दथ ॥ ५ ॥ मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो विनिर्मितः। न च वस्तस्य भेत्तास्ति विना सौभद्रमर्भकं ॥ ६ ॥ नचोपदिष्टस्तस्यासीन्मयाऽनीकाद्विनिर्गमः। कच्चिन्नबालो युष्माभिः परानीकं प्रवेशितः॥ ७ ॥ भित्त्वानीकं महेष्वासः परेषां बहुशो युधि।कच्चिन्न निहतः संख्ये सौभद्रः परवीरहा ॥ ८ ॥ सुभाद्रायाः प्रियं पुत्रं द्रौपद्याः केशवस्य च। अम्बायाश्च प्रियं नित्यं कोऽवधीत् कालमोहितः ॥ ९ ॥ सदृशो वृष्णि वीरस्य केशवस्य महात्मनः। विक्रमश्रुत माहात्म्यैः कथमायोधने हतः ॥ १० ॥ सुनसं सुललाटान्तं स्वक्षिभ्रु दशनच्छदं। अपश्यतस्तद्वदनं का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ ११ ॥ तन्त्रीस्वन सुखं रम्यं पुंस्कोकिलसम ध्वनिं। अशृण्वतः स्वनं तस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ १२ ॥ हा पुत्रकावितृप्तस्य सततं पुत्र दर्शने। भाग्यहीनस्य कालेन यथा मे नीयसे बलात् ॥ १३ ॥ एवं विलप्य बहुधा भिन्नपोतो वणिग्यथा। दुःखेन महता विष्टो युधिष्ठिर मपृच्छत् ॥ १४ ॥ कच्चित्स कदनं कृत्वा परेषां कुरुनन्दन। स्वर्गतोऽभिमुखः संख्ये युध्यमानो नरर्षभैः ॥ १५ ॥

स नूनं बहुभिर्यत्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः । असहायः सहायार्थी माम-नुध्यातवान् ध्रुवं ॥ १६ ॥ कथं बाले महेष्वासा नृशंसा मर्मभे-दिनः । स्वस्रीये वासुदेवस्य मम पुत्रेऽक्षिपन् शरान्॥१७॥ सुभद्रा वक्ष्य ते किं मामभिमन्यु मपश्यती । द्रौपदी चैव दुःखार्ते ते च वक्ष्यामि किं न्वहं ॥ १८ ॥

अर्थ—अर्जुन दिव्य अस्त्रों से संशप्तक गणों को मार कर जैत्र रथ पर चढ़ कर अपने शिविर को चले ॥१॥ पीछे उस वीर नाशी प्रदेश में वह दोनों वीर सन्ध्योपासन करके रण बीती कहते हुए रथ पर चढ़ कर गए ॥ २ ॥ पहुंच कर देखा, कि शि-बिर आनन्द से हीन और शोभा से रहित होरहा है, और पाण्डव अस्वस्थ और अचेत होरहे हैं ॥ ३ ॥ विमन हुआ अर्जुन भाइयों और पुत्रों को देख कर और अभिमन्यु को न देख कर यह वचन बोला ॥ ४ ॥ तुम सब के मुख का रंग फीका प्रतीत होता है, न मैं अभिमन्यु को देखता हूं, न तुम मुझे स्वागत करते हो ॥५॥ मैंने सुना था, कि द्रोण ने चक्रव्यूह रचा है, तुम में से सिवाय बाल अभिमन्यु के कोई उस का भेदने वाला नहीं है ॥ ६ ॥ न मैंने उस को सेना से बाहर निकलना बतलाया था, तुम ने तो उस बाल को शत्रु की सेना में प्रवेश नहीं कराया था ॥ ७ ॥ क्या शत्रुवीरों के मारने वाला अभिमन्यु युद्ध में शत्रुसेना को बार २ भेद कर रण में मारा तो नहीं गया ॥ ८ ॥ सुभद्रा और द्रौपदी के प्यारे पुत्र, कृष्ण के और माता के सदा प्यारे को किसने मारा है, किस को उस के काल ने ऐसी भूलमें डाला है ॥ ९ ॥ पराक्रम शास्त्रज्ञान और माहात्म्य में जो यादव वीर कृष्ण के सदृश था, कैसे वह संग्राम में मारा गया ॥ १० ॥ सुन्दर ललाट,

नासा, नेत्र, भवें, दंत और होठों वाले उस के मुख को बिना देखे मेरे हृदय को कैसे शान्ति होसकती है ॥ ११ ॥ वीणा के स्वर तुल्य सुखदायी, कोइल के तुल्य मधुर स्वर को बिन सुने मेरे हृदय को क्या शान्ति होसकती है ॥ १२ ॥ हाय बेटा पुत्र के देखने में तृप्त न हुए मुझ भाग्यहीन से काल तुझे बल से लेजा रहा है ॥ १३ ॥ इस प्रकार टूट गए जहाज वाले व्यापारी की भांति बहुत विलाप करके बड़े दुःख से घिरा हुआ अर्जुन युधिष्ठिर से पूछने लगा ॥ १४ ॥ हे कुरुनन्दन अभिमन्यु रण में शूर वीरों के साथ लड़ता हुआ शत्रुवीरों का संहार करके संमुख लड़ता हुआ तो स्वर्ग को गया है ॥१५॥ बहुत से सावधान शूर वीरों के साथ अकेले लड़ते हुए असहाय हो कर सहायता के लिए उसने मुझे अवश्य ध्यान किया होगा ॥ १६ ॥ कैसे उस बाल, कृष्ण के भानजे और मेरे आत्मज पर क्रूर महाधनुर्धारियों ने मर्म भेदी बाण फैंके ॥ १७ ॥ अभिमन्यु को न देखती हुई सुभद्रा मुझे क्या कहेगी, और द्रौपदी क्या कहेगी, और उन दोनों दुःखियाओं को मैं क्या कहूंगा ॥ १८ ॥

मूल—निगृह्य वासुदेवस्तं पुत्राधिभिरभिप्लुतं । मैवमित्य ब्रवीत् कृष्णस्तीव्रशोकसमन्वितं ॥ १९ ॥ सर्वेषामेष वै पन्थाः शूराणामनिवर्तिनां । क्षत्रियाणां विशेषेण येषां युद्धेन जीविका ॥ २० ॥ ध्रुवं हि युद्धे मरणं शूराणामनिवर्तिनां । गतः पुण्य-कृतां लोकानभिमन्युर्न संशयः ॥ २१ ॥ एतच्च सर्ववीराणां कां-क्षितं भरतर्षभ । संग्रामेऽभिमुखो मृत्युं प्राप्नुयादिति मानद॥२२॥ स च वीरान् रणे हत्वा राजपुत्रान् महाबलान् । वीरैराकांक्षितं मृत्युं संप्राप्तोऽभिमुखे रणे ॥ २३ ॥ मा शुचः पुरुषव्याघ्र पूर्वैरेष

सनातनः । धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां रणे क्षयः ॥ २४ ॥ इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम। त्वयि शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव ॥ २५ ॥ एतांश्च वचसा साम्ना समाश्वासय मानद । विदितं वेदितव्यं ते न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ २६ ॥ एवमाश्वासितः पार्थोऽब्रवीद् भ्रातॄन् सगद्गदान् । अभिमन्युर्यथा वृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा ॥ २७ ॥

अर्थ—पुत्र की पीड़ाओं से घिरे हुए तीव्र शोक से भरे हुए उस को धीरज देते हुए श्रीकृष्ण बोले, ऐसे मत हो॥ १९ ॥ पीठ न दिखलाने वाले शूरों का यही मार्ग है, विशेषतः क्षत्रियों का, जिन की युद्ध से जीविका है ॥ २० ॥ पीठ न दिखलाने वाले वीरों का युद्ध में मरना अटल है, अभिमन्यु पुण्यात्माओं के लोकों को गया है इस में संशय नहीं ॥ २१ ॥ हे भरतवर हे मान देने वाले यह सब वीरों को प्रिय है, कि संग्राम में संमुख लड़ कर मृत्यु को प्राप्त हों ॥ २२ ॥ वह महाबली वीर राजपुत्रों को रण में मार कर रण में सम्मुख लड़ता हुआ वीरों से चाही हुई गति को प्राप्त हुआ है ॥ २३ ॥ मत शोक कर हे पुरुषवर, क्षत्रियों का रण में मरना यह पुराने धर्मशास्त्रकारों ने क्षत्रियों का सनातन धर्म माना है ॥ २४ ॥ हे भरतवर तेरे शोक युक्त होने से यह सारे भाई और तेरे सुहृद राजे दीन होरहे हैं ॥ २५ ॥ इन को अपने वचन और धीरज से धीरज दे, तूने जानने योग्य जान लिया है, तुझे शोक नहीं करना चाहिये ॥ २६ ॥ इस प्रकार धीरज धराने पर अर्जुन गद्गद वाणी से भाइयों से बोला, अभिमन्यु जैसे मरा है, मैं वह सुनना चाहता हूं ॥ २७ ॥

मूल—युधिष्ठिर उवाच—त्वयि याते महाबाहो संशप्तकबलं-

प्रति । प्रयत्नमकरोत् वीत्र माचार्यो ग्रहणे मम ॥ २८ ॥ व्यूढानीका वयं द्रोणं वारयामः स्म सर्वशः । प्रतिव्यूह्य रथानीकं यतमानंतथा रणे ॥२९॥ते पीड्यमाना द्रोणेन द्रोणानीकं न शक्नुमः । प्रतिवीक्षितुमप्याजौ भेत्तुं तत्कुत एव तु ॥ ३० ॥ वयं त्वप्रतिमं वीर्ये सर्वे सौभद्र मात्मजं । उक्तवन्तः स्म तं तात भिन्ध्यनीकमिति प्रभो ॥ ३१ ॥ स तथा नोदितोऽस्माभिः सदश्व इव वीर्यवान् । असह्य मपि तं भारं वोढुमेवोपचक्रमे ॥ ३२ ॥ स तवास्त्रोपदेशेन वीर्येण च समन्वितः । प्राविशत् तद्बलं बालः सुपर्ण इव सागरं ॥३३॥ तेऽनुयाता वयं वीरं सात्वतीपुत्र माहवे । प्रवेष्टु कामास्तेनैव येन स प्राविशच्चमूं ॥ ३४ ॥ ततः सैन्धवको राजा सर्वान् नः समवारयत् ॥ ३५ ॥ ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिः कौशल्य एव च । कृतवर्मा च सौभद्रं षड्रथाः पर्यवारयन् ॥ ३६ ॥ परिवार्य तु तैः सर्वैर्युधि बालो महारथैः। यतमानः परं शक्त्या बहुभिर्विरथी कृतः॥३७॥ ततो दौः शासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथी कृतं । संशयं परमं प्राप्य दिष्टान्तेनाभ्ययोजयत् ॥ ३८ ॥ राजपुत्र सहस्रे द्वे वीरांश्चा लक्षितान् बहून् । बृहद्बलं च राजानं स्वर्गेणाजौ प्रयोज्य ह॥३९॥ ततः परम धर्मात्मा दिष्टान्तु मुप जग्मिवान् ॥ ४० ॥

अर्थ--युधिष्ठिर बोले--हे महाबाहो ! तुम जब संशप्तकगणों की ओर गए, उस समय आचार्य ने मेरे पकड़ने का बड़ा यत्न किया ॥ २८ ॥ हमारे सामने रथसेना का व्यूह रच कर यत्न करते हुए आचार्य को हम भी अपनी सेना का व्यूह रच कर रोकने लगे ॥ २९ ॥ पर द्रोण से पीड़ित हुए हम रण में द्रोण की सेना की ओर दृष्टि भी नहीं उठा सकते थे,भेदना तो कहां।३०। तब हे प्रभो ! हम सब ने वीर्य में अतुल्य अभिमन्यु से यह कहा

हे तात तुम इस सेना को भेदो ॥ ३१ ॥ जब हमने उस को यह प्रेरणा की, तो उत्तम घोड़े की भांति वह वीर्यवान् असह्य भी भार के उठाने को तय्यार हो गया ॥ ३२ ॥ आप के अस्त्रोपदेश से युक्त वह वीर बाल भी उस सेना में जा घुसा, जैसे गरुड़ सागर में घुसे ॥ ३३ ॥ रण में यादवीपुत्र के पीछे हम भी उसी मार्ग से अन्दर घुसने की इच्छा से गए, जिस से वह सेना में प्रविष्ट हुआ था ॥ ३४ ॥ तब सिन्धुराज जयद्रथ ने हम सब को रोक दिया ॥ ३५ ॥ उस समय द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और कृतवर्मा इन छः रथियों ने अभिमन्यु को घेर लिया ॥ ३६ ॥ उन सब महारथियों ने पूरी शक्ति से लड़ते हुए उस बाल को घेर कर रथहीन किया ॥ ३७ ॥ उन से रथहीन किये गए को दुःशासनसुत ने झट संशय में पड़ कर मृत्यु से युक्त किया ॥ ३८ ॥ दो सहस्र राजपुत्रों और बहुत से अलक्षित वीरों और राजा बृहद्बल को रण में स्वर्ग को भेज कर, अनन्तर वह परम धर्मात्मा मृत्यु को प्राप्त हुआ है ॥ ३९—४० ॥

मूल—ततोऽर्जुनो वचः श्रुत्वा धर्मराजेन भाषितं। कंपमानो ज्वरेणेव निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः ॥ ४१ ॥ पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान्। उन्मत्त इव विप्रेक्षन्निदं वचन मब्रवीत्॥४२॥ सत्यं वः प्रतिजानामि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथं । न चेद्वधभयाद्भीतो धार्तराष्ट्रान् प्रहास्यति ॥ ४३ ॥ धार्तराष्ट्रप्रियकरं मयि विस्मृतसौहृदं । पापं बालवधे हेतुं श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथं ॥४४॥ यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यां पुरुषर्षभाः । मास्म पुण्यकृतां लोकान् प्राप्नुयां शूर संमतान् ॥ ४५ ॥ यद्यस्मिन् न हते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति । इहैव संप्रवेष्टाहं ज्वलितं जातवेदसं ॥४६॥ एव-

न तु ते युधि संत्रासः कार्यः पार्थात् कथञ्चन । अहं हि रक्षिता तात भयात्त्वां नात्र संशयः ॥ ६० ॥ व्यूहयिष्यामि तं व्यूहं यं पार्थो न तरिष्यति। तस्माद् युध्यस्व मा भैस्त्वं स्वधर्म मनु पालय ॥ ६१ ॥ अधीत्य विधिवद्वेदा नग्नयः सुहुतास्त्वया । इष्टं च बहुभिर्यज्ञैर्न ते मृत्युर्भयंकरः ॥ ६२ ॥ तपस्तप्त्वा तु यां ल्लोकान् प्राप्नुवन्ति तपस्विनः । क्षत्रधर्माश्रिता वीराः क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान्॥ ६३ ॥ एवमाश्वासितो राजा भारद्वाजेन सैन्धवः।अपानुदद्भयं पार्थाद् युद्धाय च मनो दधे ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे राजन् इस प्रकार तेरे पुत्र ने जब धीरज दिया, तो जयद्रथ दुर्योधन समेत द्रोण के पास आया ॥ ५६ ॥ द्रोण की पादवन्दना कर के पास बैठ झुक कर यह पूछने लगा॥५७॥ लक्ष्य के भेदने, दूर तक मार करने, फुरती और दृढ़ बींधने में मेरी और अर्जुन की जो विशेषता है, सो कहिये ॥ ५८ ॥ द्रोण बोले—हे तात आचार्य का उपदेश तुम को और अर्जुन को बराबर है, किन्तु अभ्यास से और दुःखों के सहने से अर्जुन तुझ से अधिक हुआ है ॥ ५९ ॥ पर तुझे युद्ध में अर्जुन से कोई भय नहीं मानना चाहिये, हे तात मैं तुझे भय से निःसंदेह बचाउंगा ॥ ६० ॥ ऐसा व्यूह रचूंगा, जिस को अर्जुन लंघ नहीं सकेगा, इस लिये तू युद्ध कर, डर नहीं,अपने धर्म का पालन कर॥६१॥ तुमने यथाविधि वेद पढ़ कर अग्नि होमी हैं, और बहुत से यज्ञ किये हैं, मृत्यु तेरे लिए भयंकर नहीं है ॥ ६२ ॥ तपस्वी जन तप कर के जिन लोकों को प्राप्त होते हैं, क्षत्रधर्म पर चलने वाले क्षत्रिय वीर उन को प्राप्त होते हैं ॥ ६३ ॥ इस प्रकार द्रोण से

धीरज धरा जयद्रथ ने अर्जुन से भय को परे हटाया और युद्ध में मन लगाया ॥ ६४ ॥

अ० ८ (व० ८७-८८) व्यूह रचना

मूल—तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतांवरः। स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राक्रामद् व्यूहितुं तदा ॥ १ ॥ शूराणां गर्जतां राजन् संक्रुद्धानाममर्षिणां। श्रूयन्ते स्म गिरश्चित्राः परस्पर वधैषिणां ॥ २ ॥ ततः शंख मुपध्माय त्वरयन्वाजिनः स्वयं। इतस्ततस्तान् रचयन् द्रोणश्चरति वेगितः ॥ ३ ॥ तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वाहवनान्दिषु। भारद्वाजो महाराज जयद्रथ मथाब्रवीत् ॥ ४ ॥ त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः। अश्वत्थामा च शल्यश्च वृषसेनः कृपस्तथा ॥ ५ ॥ शतं चाश्वसहस्राणां रथाना मयुतानि षट्। द्विरदानां प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश ॥ ६ ॥ पदातीनां सहस्राणि दंशितान्येक विंशतिः। गव्यूतिषु त्रिमात्रासु मामनासाद्य तिष्ठत ॥ ७ ॥ तत्रस्थं त्वां न संसोढुं शक्ता देवाः सवासवाः। किं पुनः पाण्डवाः सर्वे समाश्वसिहि सैन्धव ॥ ८ ॥ एवमुक्तः समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः। संप्रायात् स गान्धारैर्वृतस्तैश्च महारथैः ॥ ९ ॥ दीर्घो द्वादशगव्यूतिः पश्चार्धे पञ्च विस्तृतः। व्यूहः स चक्र शकटो भारद्वाजेन निर्मितः ॥ १० ॥ नाना नृपतिभिर्वीरैस्तत्र तत्र व्यवस्थितैः। रथाश्वगजपत्त्यौघैर्द्रोणेन विहितः स्वयं ॥ ११ ॥ पश्चार्धे तस्य पद्मस्य गर्भ व्यूहः सुदुर्भिदः। सूचीपद्मस्य गर्भस्थो गूढो व्यूहः कृतः पुनः ॥ १२ ॥ शकटस्य तु राजेन्द्र भारद्वाजो मुखेस्थितः ॥ १३ ॥ अनु तस्याऽभवद्भोजो जुगोपैनं ततः स्वयं ॥ १४ ॥ श्वेत वर्माम्बरोष्णीषो व्यूढोरस्को म-

हाभुजः । धनुर्विस्फारयन् द्रोणस्तस्थौ क्रुद्ध इवान्तकः ॥ १९ ॥

अर्थ—उस रात के बीतने पर जब सवेरा हुआ, तब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोण अपनी सारी सेनाओं के व्यूह रचने लगे।१। क्रोधी न सहारने वाले एक दूसरे को मारना चाहते हुए गर्जते हुए शूरवीरों के विचित्र शब्द सुनाई देने लगे ॥ २ ॥ द्रोणाचार्य अपना शंख बजाते, घोड़ों को तेज़ी से चलाते, इधर उधर उन शूरवीरों को खड़े करते हुए वेग से घूमने लगे ॥ ३ ॥ युद्ध करने के लिए उत्सुक वह सारी सेनाएं जब यथास्थान स्थित हो गईं, तब हे महाराज द्रोण जयद्रथ से बोले ॥ ४ ॥ तुम, भूरिश्रवा, महारथ कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन और कृपाचार्य, तथा एकलाख घुड़सवार, साठ हजार रथी, चौदहहज़ार मतवारे हाथी, और इक्कीस हजार कवच धारी प्यादे इन को संग ले कर मुझ से छः कोस दूर जा कर ठहरो ॥ ५—७ ॥ इतनी दूर ठहरने पर पाण्डव तो क्या, इन्द्रसहित देवता भी तुझे दबा नहीं सकेंगे, तुम धीरज रक्खो ॥ ८ ॥ यह सुन धीरज धर कर सिन्धुराज जयद्रथ गन्धार देशीय शूरवीरों और उन महारथियों से घिरा हुआ वहां चला गया ॥ ९ ॥ द्रोणाचार्य ने २४ कोस लंबा और दस कोस चौड़ा चक्र समेत शकट व्यूह रचा ॥ १० ॥ उस व्यूह में द्रोण ने स्वयं वहां २ वीर राजे हाथी घोड़े और रथों के समूह स्थिर किये ॥ ११ ॥ उस के पिछले आधे भाग में एक पद्माकार गर्भ व्यूह (व्यूह के अन्दर व्यूह) रचा, जिसका भेदना बड़ा कठिन हो, पद्म के मध्य में फिर एक और गूढ व्यूह सूची व्यूह बनाया ॥१२॥ वहां सूची व्यूह के एक हिस्से में जा कर जयद्रथ ठहरा और शकट के मुख पर द्रोण स्वयं स्थित हुए ॥ १३ ॥ कृतवर्मा उन

के पीछे खड़े हो कर उन की रक्षा करने लगे॥१४ ॥ श्वेत कवच वस्त्र और पगड़ी धारे हुए विशाल छाती वाले महाबाहु द्रोण धनुष चढ़ा कर क्रुद्ध हुए यम के समान सेना के आगे खड़े हुए ॥१५॥

मूल—ततो व्यूढेष्वनीकेषु समुत्क्रुष्टेषु मारिष । ताड्यमानासु भेरीषु मृदंगेषु नदत्सुच॥ १६ ॥आभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु । रौद्रे मुहूर्ते संप्राप्ते सव्यसाची व्यदृश्यत ॥ १७॥ततोऽन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः । जयो जेता स्थितः सत्ये पारयिष्यन् महाव्रतं ॥ १८ ॥ आमुक्तकवचः खड्गी जांबूनदकिरीटभृत । शुभ्रमाल्याम्बरधरः स्वंगदश्चारु कुण्डलः ॥ १९ ॥ व्यवस्थाप्य रथं राजन् शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २० ॥

अर्थ—जब व्यूह बन गए और सिंहनाद होने लगे, भेरियें और मृदंग बजने लगे और युद्ध करने के लिए भरत धीरे२ संमुख बढ़ने लगे, उसी भयंकर समय पर अर्जुन दीख पड़े ॥१६-१७॥ क्रुद्ध हुए यम और वज्रधारी इन्द्र के समान जयशील अर्जुन अपने महाव्रत को पूरा करने के निमित्त प्रतिज्ञा पर खड़े हो गए ॥ १८ ॥ कवच और तलवार और सुवर्णमुकट धारे, श्वेत माला और वस्त्र धारे,सुन्दर कुण्डल और बाहुबन्द धारे हुए, उस प्रतापी ने हे राजन्!रथ को खड़ा करके शंख बजाया॥१९-२०।

अ० ९ (व० ८९-९१) अर्जुन का शत्रु सेना में प्रवेश

मूल—अर्जुन उवाच–चोदयाश्वान् हृषीकेश यत्र दुर्मर्षणः स्थितः । एतद्भित्वा गजानीकं प्रवेक्ष्याम्य रिवाहिनीं ॥१ ॥ एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना । अचोदयद्धयांस्तत्र यत्र दुर्मर्षणः स्थितः॥ २ ॥ यो यः स्म समरे पार्थं प्रतिसंचरते नरः।

तस्य तस्यान्तको बाणः शरीर मुपसर्पति ॥ ३ ॥ हस्तिनं हस्तियन्तार मश्व माश्विक मेव च । अभिनत्फाल्गुनो बाणै रथिनं च स सारथिं ॥ ४ ॥ ततस्तव सुतो राजन् दृष्ट्वा सैन्यं तथा गतं।दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायार्जुन मभ्ययात् ॥ ५ ॥ नागानीकेन महता ग्रसन्निव महीमिमां । दुःशासनो महाराज सव्यसाचिन मावृणोत् ॥ ६ ॥ गजानीक ममित्राणा मभितो व्यध मच्छरैः । ददृशे दिक्षु सर्वासु पार्थः परपुरञ्जयः ॥ ७ ॥ ते गजा विशिखैस्तीक्ष्णैर्युधि गांडीव चोदितैः। अनेक शतसाहस्रैः सर्वांगेषु समर्पिताः॥८॥ गजस्कन्ध गतानां च पुरुषाणां किरीटिना । छिद्यन्ते चोत्तमांगानि भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ ९ ॥ निहतैर्वारणै रश्वैः क्षत्रियैश्च निपातितैः । अदृश्यत मही तत्र दारुणप्रतिदर्शना ॥ १० ॥ततो दुःशासनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्दितः । द्रोणं त्रातारमाकांक्षन् शकट व्यूह मभ्यगात् ॥ ११ ॥ दुःशासनबलं हत्वा सव्यसाची महारथः । सिन्धुराजं परीप्सन्वै द्रोणानीक मुपाद्रवत् ॥ १२ ॥ स तु द्रोणं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखेस्थितं। कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्णस्यानुमतेऽब्रवीत् ॥ १३ ॥ शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन् स्वस्ति चैव वदस्व मे । भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूं ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तदाचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव । मामजित्वा न बीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः ॥ १५ ॥ एतावदुक्त्वा तं द्रोणः शरव्रातै रवाकिरत् । सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन्वै ससारथिं ॥ १६ ॥ ततोऽर्जुनः शरव्रातान् द्रोणस्यावार्य सायकैः । द्रोणमभ्यद्रवद् बाणैर्घोर रूपैर्महत्तरैः ॥ १७ ॥ तद् दृष्ट्वा तादृशं युद्धं द्रोणपांडवयोस्तदा । वासुदेवो महाबुद्धिः कार्यवत्ता मचिन्तयत् ॥ १८ ॥ ततोऽब्रवीद्वासुदेवो धनञ्जय मिदं वचः । पार्थ पार्थ महाबाहो न

नः कालात्ययो भवेत ॥ १९ ॥ द्रोणमुत्सृज्य गच्छामः कृत्यमेतन्महत्तरं । पार्थश्चाप्य ब्रवीत् कृष्णं यथेष्टमिति केशव ॥२०॥ ततः प्रदक्षिणं कृत्वा द्रोणं प्रायान्महाभुजं । परिवृत्तश्च बीभत्सु रगच्छद्विसृजन् शरान् ॥ २१ ॥ ततोऽब्रवीत स्वयं द्रोणः क्वेदं पाण्डव गम्यते । ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न निवर्तसे॥२२॥ अर्जुन उवाच–गुरुर्भवान् न मे शत्रुः शिष्यः पुत्र समोस्मि ते । न चास्ति स पुमांल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत ॥ २३ ॥ एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्जयद्रथ वधोत्सुकः । त्वरायुक्तो महाबाहुस्त्वत्सैन्यं समुपाद्रवत ॥ २४ ॥ तं चक्र रक्षौ पांचाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ । अन्वयातां महात्मानौ विशन्तं तावकं बलं ॥ २५ ॥

अर्थ–अर्जुन बोले––हे हृषीकेश मेरे घोड़ों को वहां हांक ले चलो, जहां दुर्मर्षण खड़ा है, इस गजसेना को भेद कर शत्रु सेना में प्रवेश करूंगा ॥ १ ॥ अर्जुन ने जब महाबाहु कृष्ण से ऐसे कहा, तो वह घोड़ों को वहां हांक ले गए, जहां दुर्मर्षण खड़ा था ॥ २ ॥ अब जो २ वीर अर्जुन की ओर बढ़ता है, उस २ के शरीर का नाशक बाण झट उस के निकट पहुंचता है!! ३॥अर्जुन अपने बाणों से हाथी हाथीसवार घोड़े घुडसवार रथ और रथ सवारों को भेदने लगे ॥ ४ ॥ उस समय हे राजन् सेना की ऐसी दुर्दशा देख तेरा पुत्र दुःशासन क्रुद्ध हुआ युद्ध के लिए अर्जुन के सम्मुख गया॥ ५ ॥ हे महाराज महती गजसेना से मानो भूमि को ग्रसते हुए दुःशासन ने अर्जुन के चारों ओर घेरा डाल लिया ॥ ६ ॥उस समय शत्रुओं के गढ़ तोड़ने वाला अर्जुन अपने बाणों से शत्रुओं की गजसेना का विनाश करता हुआ चारों ओर घूमता दीखता था ॥ ७ ॥ वह हाथी गांडीव से छूटे तीखे लाखों बाणों

से सारे अंगों में भोए गए ॥ ८ ॥ हाथियों की पीठ पर स्थित पुरुषों के सिर अर्जुन के तीखे नोक वाले भालों से कट २ कर गिरने लगे ॥ ९ ॥ मरे हाथी घोड़ों से और गिरे हुए वीरों से भूमि वहां भयंकर दीखने लगी ॥ १०॥ उन बाणों से सेनासमेत पीड़ित दुःशासन डर कर द्रोण को अपना रक्षक जान शकटव्यूह में भाग गया॥११॥ दुःशासन की सेना का नाश कर महारथ अर्जुन भी जयद्रथ को घेरने की इच्छा से द्रोण की सेना की ओर गए॥१२॥ और व्यूह के आगे खड़े द्रोण के निकट पहुंच कर कृष्ण की अनुमति में हाथ जोड़ द्रोण से यह वाक्य बोले ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् आप मेरा कल्याण चिन्तन कीजिये और स्वस्ति वचन दीजिये, आप की कृपा से मैं इस दुर्भेद्य शत्रुसेना में प्रवेश किया चाहता हूं ॥ १४ ॥ यह सुन आचार्य मुस्करा कर बोले—हे अर्जुन तुम मुझे जीते बिना जयद्रथ को न जीत सकोगे ॥ १५ ॥ इतना कह कर हंसते हुए आचार्य उस पर बाण बरसाने लगे, और अर्जुन को रथ घोड़े और सारथि समेत तीखे बाणों से ढांप दिया ॥१६॥तब अर्जुन भी अपने बाण समूह से द्रोणाचार्य के बाणों को रोक कर भयंकर बाणवर्षा करते हुए आचार्य की ओर बढ़े ॥ १७ ॥ आचार्य और अर्जुन के तादृश युद्ध को देख कर महाबुद्धि कृष्ण कर्तव्य के भार को सोच कर ॥ १८ ॥ अर्जुन से यह वचन बोले अर्जुन अर्जुन हे महाबाहो न हो कि हमारा वेला टलजाए॥१९॥ द्रोण को छोड़ कर आगे चलें, यह काम बहुत बड़ा है, तब अर्जुन कृष्ण से बोले, जैसी इच्छा है ॥ २० ॥ तब अर्जुन महाबाहु द्रोण की प्रदक्षिणा कर के चल पड़े, दूसरा मार्ग पकड़ अपने बाण छोड़ते हुए चलने लगे ॥ २१ ॥ तब द्रोण बोले हे अर्जुन !

किधर जा रहे हो, तुम तो रण में शत्रु को जीते बिना लौटा नहीं करते हो ॥ २२ ॥ अर्जुन ने उत्तर दिया—आप मेरे गुरु हैं, शत्रु नहीं, मैं आप का पुत्रसमान शिष्य हूं, लोक में कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो आप को पराजित कर सके ॥ २३ ॥ ऐसे कहता हुआ महाबाहु अर्जुन जयद्रथ को मारने की उत्कट इच्छा से त्वरा से तेरी सेना की ओर दौड़े ॥ २४ ॥अर्जुन के पृष्ठ रक्षक पाञ्चाल्य युधामन्यु और उत्तमौजा यह दोनों महात्मा तेरी सेना में प्रवेश करते समय अर्जुन के अनुगामी हुए ॥ २५ ॥

अ० १० (व० ९१-९४) अर्जुन का आगे बढ़ते जाना

मूल—ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः । काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनञ्जय मवारयन् ॥ १ ॥ ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणं । अन्योन्यं वै प्रार्थयतां योधाना मर्जुनस्य च॥२॥अश्वो विद्धो रथश्छिन्नः सारोहः पातितो गजः । छत्राणि चाप विद्धानि रथाश्चक्रैर्विना कृताः ॥ ३ ॥ विद्रुतानि च सैन्यानि शरार्त्तानि समन्ततः । इत्यासीत् तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ४ ॥ ततः प्रविष्टे कौन्तेये सिन्धुराजजिघांसया । द्रोणानीकं विनिर्भिद्य भोजानीकं च दुस्तरं ॥ ५ ॥ कांबोजस्य च दायादे हते राजन् सुदाक्षिणे । श्रुतायुधे च विक्रान्ते निहते सव्यसाचिना॥६॥ विप्रद्रुतेष्वनीकेषु विध्वस्तेषु समन्ततः । प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पुत्रस्ते द्रोण मभ्यागात्॥ ७ ॥त्वरन्नेकरथेनैव समेत्य द्रोणमब्रवीत्। गतः स पुरुषव्याघ्रः प्रमथ्यैतां महाचमूं ॥ ८ ॥ स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्राणा मासीद् ब्रह्मविदां वर । नातिक्रमिष्यति द्रोणं जातु जीवन् धनञ्जयः ॥ ९ ॥ योऽसौ पार्थो व्यतिक्रान्तो मिषतस्ते महाद्युते । सर्व

ह्यातुरं मन्ये नेदमास्ति बलं मम ॥ १० ॥ जानामि त्वां महाभाग पाण्डवानां हितेरतं । तथा मुह्यामि च ब्रह्मन् कार्यवत्तां विचिन्तयन् ॥ ११ ॥ अस्मान् न त्वं सदाभक्तानिच्छस्यमितविक्रम। पाण्डवान् सततं प्रीणास्यस्माकं विप्रिये रतान् ॥ १२ ॥ नादास्यश्चेद्वरं मह्यं भवान् पाण्डवनिग्रहे । नावारयिष्यं गच्छन्तमहं सिन्धुपतिं गृहान् ॥ १३ ॥ स तथा कुरु शोणाश्व यथा मुच्येत सैन्धवः । मम चार्तप्रलापानां मा क्रुद्धः पाहि सैन्धवं ॥ १४ ॥

अर्थ—आगे जय, सात्वत कृतवर्मा, कम्बोजराज और श्रुतायु इन सब ने मिल कर अर्जुन को घेरा डाला॥ १ ॥ तब एक दूसरे को ललकारते हुए उन योधों का और अर्जुन का रौंगटे खड़ा करने वाला तुमुल युद्ध प्रवृत्त हुआ॥२॥वह घोड़ा विंध गया, वह रथ टूटा, वह सवार समेत हाथी गिरा, वह छत्र उड़ गए, वह रथ चक्रहीन हुए, वह अर्जुन के बाणों से पीड़ित हुई सेनाएं भाग निकलीं, इस प्रकार तुमुल युद्ध हुआ, कुछ जान नहीं पड़ता था ॥३-४ ॥ तब द्रोणसेना और दुस्तर भोज सेना को भेद कर अर्जुन ने सिन्धुराज के वध के निमित्त सेना के बीच में प्रवेश किया॥५॥ हे राजन् ! जब काम्बोजराज का पुत्र सुदक्षिण और पराक्रमी श्रुतायुध अर्जुन से मारे गए ॥ ६ ॥ और चारों ओर सेनाओं में विध्वंस मचा, और सेनाएं भाग निकलीं, उस समय अपनी सेना को भागते देख दुर्योधन द्रोण के पास आया ॥ ७ ॥ शीघ्रता से अकेला ही रथ से द्रोण के पास आकर बोला, हे ब्रह्मन् ! वह पुरुषसिंह मेरी सेना को मथ कर आगे निकल गया है ॥ ८ ॥ हे वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ सारे राजाओं का यह दृढ़ निश्चय था, कि अर्जुन जीवित रह कर द्रोण को कभी नहीं लंघ सकेगा ॥ ९ ॥

जो कि हे महातेजस्विन् ! आप के सामने लंघ कर गया है।आज मैं सारी सेना को आतुर समझता हूं, मैं समझता हूं, आज मेरी सेना नहीं है ॥ १० ॥ हे महाभाग मैं आप को पाण्डवों के हित में रत जानता हूं, सो मैं अपने कार्यभार को सोच कर हैरान हो रहा हूं ॥ ११ ॥ हे अमित पराक्रम वाले हम तुम्हारे भक्त हैं,तौ भी तुम हमारे ऊपर प्रीति नहीं करते हो,और हमारे शत्रु पाण्डवों से सदा प्यार करते हो ॥ १२ ॥ यदि आप अर्जुन को रोकने का मुझे वर न देते,तो मैं सिन्धुराज को घर जाने से न रोकता।१३। सो अब हे लाल घोड़ों वाले वैसा उपाय कीजिये, जिस से जयद्रथ बच रहे, मेरे आर्त प्रलापों को सुन कर क्रोध न कीजिये, जयद्रथ को बचाइये ॥ १५ ॥

मूल—द्रोण उवाच-नाभ्यसूयामि ते वाक्य मश्वत्थाम्नासि मे समः । सत्यं तु ते प्रवक्ष्यामि तज्जुषस्व विशांपते ॥ १६ ॥ सारथिः प्रवरः कृष्णः शीघ्राश्चास्य हयोत्तमाः अल्पं च विवरं कृत्वा तूर्णं याति धनञ्जयः ॥ १७ ॥ किं न पश्यसि बाणौघान् क्रोशमात्रे किरीटिनः । पश्चाद्रथस्य पतितान् क्षिप्तान् शीघ्रं हि गच्छतः ॥ १८ ॥ न चाहं शीघ्रयानेऽद्य समर्थो वयसान्वितः । सेनामुखे च पार्थाना मेतद् बल मुपस्थितं॥ १९ ॥ युधिष्ठिरश्च मे ग्राह्यो मिषतां सर्व धन्विनां। एवं मया प्रतिज्ञातं क्षत्रमध्ये महाभुज ॥२०॥ धनञ्जयेन चोत्सृष्टे वर्तते प्रमुखे नृप । तस्माद् व्यूह मुखं हित्वा नाहं योत्स्यामि फाल्गुनं ॥ २१ ॥ राजा शूरः कृती दक्षो नेतुं परपुरञ्जयः । वीरः स्वयं प्रयाह्यत्र यत्र पार्थो धनञ्जयः ॥ २२ ॥ अद्भुतं चाद्य पश्यन्तु लोके सर्वधनुर्धराः । विषक्तं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ २३ ॥ एष ते कवचं राजंस्तथा बध्नामि काञ्चनं।

यथा न बाणा नास्त्राणि प्रहरिष्यन्ति ते रणे ॥ २४ ॥ स त्वं कवचमास्थाय क्रुद्ध मद्य रणेऽर्जुनं । त्वरमाणः स्वयं याहि न त्वा सौ विसहिष्यति ॥ २५ ॥

अर्थ—द्रोण बोले—हे राजन् ! मैं तुम्हारी बात में दोष नहीं लगाता हूं, तुम मुझे अश्वत्थामा के समान प्रिय हो, पर मैं तुम्हें सच्ची बात बतलाता हूं, उस पर ध्यान दीजिये ॥ १६ ॥ कृष्ण सारथियों में एक चुना हुआ है, और उस के बढ़िया घोड़े बड़े वेग वाले हैं, और अर्जुन थोड़ा सा भी विवर कर के झट आगे निकल जाता है ॥ १७ ॥ क्या देखते नहीं हो, कि शीघ्र जाते हुए अर्जुन के बाणसमूह रथ के पीछे कोस भर दूर २ आ कर गिरते हैं ॥ १८ ॥ और मैं अब बूढ़ा भी हूं, शीघ्र जाने में समर्थ नहीं, और जाना उचित भी नहीं है, कि व्यूह के मुख स्थल पर पाण्डवों की यह सेना उपस्थित है ॥ १९ ॥ और मैंने क्षत्रियों के मध्य में यह प्रतिज्ञा की है, कि मैं सब धनुर्धारियों के देखते युधिष्ठिर को ग्रहण करूंगा ॥ २० ॥ युधिष्ठिर भी इस समय अर्जुन से अलग हुआ मेरे सामने आ खड़ा है, इस लिये मुझे व्यूह का मुख छोड़ कर अर्जुन से जा कर युद्ध करना उचित नहीं है ॥ २१ ॥ तुम राजा, शूरवीर, अस्त्रों के जानने वाले, फुर्तीले, शत्रुओं के किले तोड़ने वाले हो, स्वयं वहां जाओ, जहां अर्जुन है ॥ २२ ॥ आज लोक में सारे धनुर्धारी अद्भुत युद्ध देखें, जब कि तुम कृष्ण के सामने अर्जुन से जुटो ॥ २३ ॥ हे राजन् ! यह मैं तुझे सुनहरी कवच ऐसा पहनाता हूं, जिस से कि न बाण न अस्त्र तेरे ऊपर चोट देंगे ॥२४॥ सो तू कवच पहन कर शीघ्रता से क्रुद्ध हुए अर्जुन की ओर जा, वह तुझे दबा नहीं सकेगा॥ २५ ॥

अ० ११ (व० ९६-१००) अर्जुन का बढ़ते जाना

मूल—भारद्वाजं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखेस्थितं । अयोधयन् रणे पार्था द्रोणानीकं बिभित्सवः॥ १ ॥ रक्षमाणः स्वकं व्यूहं द्रोणोपि सहसैनिकैः ।अयोधयद्रणे पार्थान् प्रार्थयानो महद्यशः॥२॥ धृष्टद्युम्नस्तु संप्रेक्ष्य द्रोणमभ्याशमागतं । आसिचर्माददे वीरो धनुरुत्सृज्य भारत ॥ ३ ॥ यथा श्येनस्य पतनं वनेष्वामिषगृद्धिनः । तथैवासीदभीसारस्तस्य द्रोणं जिघांसतः ॥ ४ ॥ ततः शरशतेनास्य शतचन्द्रं समाक्षिपत् । द्रोणो द्रुपद पुत्रस्य खड्गं च दशभिः शरैः ॥ ५ ॥ अथास्मै त्वरितो बाण मपरं जीवितान्तकं । आकर्ण पूरं चिक्षेप वज्रं वज्रधरो यथा ॥ ६ ॥ तं चतुर्दश भिस्तीक्ष्णैर्बाणैश्चिच्छेद सात्यकिः । ग्रस्तमाचार्य मुख्येन धृष्टद्युम्न ममोचयत् ॥ ७ ॥ ततस्तौ द्रोण शैनेयौ युयुधाते परंतपौ।इषुजालावृतं व्योम चक्रतुः पुरुषर्षभौ ॥ ८ ॥ तथा तेषु विषक्तेषु सैन्येषु जयगृद्धिषु। अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्धवायैव जग्मतुः ॥ ९ ॥ रथमार्गप्रमाणं तु कौन्तेयो निशितैः शरैः । चकार तत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः ॥ १० ॥ यत्र यत्र रथो याति पाण्डवस्य महात्मनः । तत्र तत्रैव दीर्यन्ते सेनास्तव विशांपते ॥ ११ ॥ रथशिक्षां तु दाशार्हो दर्शयामास वीर्यवान् । उत्तमाधममध्यानि मण्डलानि विदर्शयन्॥१२॥

तार्क्ष्यमारुतरंहोभिर्वाजिभिः साधुवाजिभिः । तदाऽगच्छद्धृषीकेशः कृत्स्नं विस्मापयन् जगत् ॥ १३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरा वावन्त्यौ भ्रातरौ नृप । सह सेनौ समार्छेतां पाण्डवक्लान्तवाहनं ॥ १४ ॥ तावर्जुनः शरैस्तूर्ण निहत्य भरतर्षभ । शनकैरिव दाशार्ह मर्जुनो वाक्य मब्रवीत् ॥ १५ ॥ शरार्दिताश्च ग्लानाश्च हया दूरे

च सैन्धवः । हयान् विमुच्याहि सुखं विशल्यान् कुरु माधव॥१६॥
अहमावारयिष्यामि सर्व सैन्यानि केशव । त्वमप्यत्र यथा न्यायं
कुरु कार्य मनन्तरं ॥ १७ ॥ सोऽवतीर्य रथोपस्थादसंभ्रान्तो धन-
ञ्जयः । गांडीवं धनुरादाय तस्थौ गिरि रिवाचलः ॥ १८ ॥ तम-
भ्यधावन् क्रोशन्तः क्षत्रिया जय कांक्षिणः।इदं छिद्र मिति ज्ञात्वा
धरणीस्थं धनञ्जयं ॥ १९ ॥ सद्यः पार्थिव पार्थेन निरुद्धाः सर्व
पार्थिवाः । रथस्था धरणीस्थेन वाक्य मच्छान्दसं यथा ॥ २० ॥
वासुदेवो रथात् तूर्ण मवतीर्य महाद्युतिः । मोचयामास तुरगान्
विनुन्नान् कंकपत्रिभिः ॥ २१ ॥ किमद्भुततमं लोके भविता वा-
प्यथवा ह्यभूत्। यदश्वान् पार्थ गोविन्दौ मोचयामासतु रणे॥२२॥
तेषां श्रमं च ग्लानिं च वमथं वेपथुं व्रणान्।सर्वं व्यपानुदत् कृष्णः
कुशलो ह्यश्वकर्मणि ॥ २३ ॥ शल्यानुद्धृत्य पाणिभ्यां परिमृज्य
च तान् हयान्।उपावर्त्य यथान्यायं पाययामास वारि सः॥२४॥
स तांल्लब्धोदकान् स्नातान् जग्धान्नान् विगतक्लमान् । योजया-
मास संहृष्टः पुनरेव रथोत्तमे॥ २५ ॥ स तं रथवरं शौरिः सर्वशस्त्र
भृतां वरः । समास्थाय महातेजाः सार्जुनः प्रययौ द्रुतं ॥ २६ ॥
सर्वक्षत्रस्य मिषतो रथेनैकेन दंशितौ । बालः क्रीडनकेनेव कदर्थी
कृत्य नो बलं ॥ २७ ॥ क्रोशतां यतमानानामसंसक्तौ परंतपौ ।
दर्शयित्वाऽऽत्मनो वीर्यं प्रयातौ सर्वराजसु ॥ २८ ॥

अर्थ--पाण्डव द्रोण की सेना को भेदने की इच्छा से व्यूह
के आगे स्थित द्रोण के निकट पहुंच कर युद्ध करने लगे॥ १ ॥
द्रोण भी बड़ा यश चाहते हुए सेनासहित अपने व्यूह की रक्षा
करते हुए पाण्डवों से युद्ध करने लगे ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्न ने जूं ही
कि द्रोण को अपने निकट आए देखा, तो झट उस ने धनुष को

छोड़ कर ढाल तलवार ग्रहण की ॥ ३ ॥ और जैसे मांसाभिलाषी श्येन (बाज़ शिकार पर) झपटता है, ठीक उसी तरह द्रोण को मारने की इच्छा से वह भी झपटा ॥ ४ ॥ द्रोण ने अनेक बाणों से उस की ढाल और दस से तलवार को काट दिया॥५॥ और झट एक और बाण उस का जीवन का नाश करने वाला कानों तक खींच कर छोड़ा, जैसे कि इन्द्र वज्र को छोड़े ॥६ ॥ उसी समय सात्यकि ने अपने चौदह बाणों से उस को काट गिराया, और आचार्य से ग्रसे हुए धृष्टद्युम्न को छुड़ा लिया ॥ ७॥ तब द्रोण और सात्यकि परस्पर युद्ध करने लगे, और उन वीरवरों ने आकाश को अपने बाणसमूह से भर दिया ॥ ८ ॥ इस प्रकार इधर जयाभिलाषी सेनाएं आपस में जुटीं, उधर अर्जुन और कृष्ण जयद्रथ की ओर गए ॥९॥ अर्जुन अपने तीखे बाणों से रथ के लिए मार्ग बनाते जाते थे, जिस से कृष्ण आगे जा रहे थे ॥ १० ॥ महात्मा अर्जुन का रथ जहां २ जाता था, वहां २ ही तेरी सेनाओं में हे राजन् भांज पड़जाती थी ॥ ११ ॥ शक्तिमान् कृष्ण भी उत्तम मध्यम अधम मण्डलों को दिखलाते हुए अपनी रथशिक्षा का परिचय देने लगे ॥ १२ ॥ गरुड़ और वायु तुल्य वेग वाले उत्तम घोड़ों से कृष्ण सब को विस्मयान्वित करते हुए बढ़े चले जा रहे थे ॥ १३ ॥ इसी अन्तराल में अवन्ति के दोनों वीर भाई (विन्द, अनुविन्द) अपनी सेना संग लेकर थके घोड़ों वाले अर्जुन को रोक खड़े हुए ॥ १४ ॥ उन को अपने बाणों से मार कर अर्जुन धीरे से कृष्ण से यह वाक्य बोले॥१५॥ घोड़े शरों से पीड़ित हैं, और घबरा गए हैं, और जयद्रथ अभी दूर है, सो घोड़ों को खोल कर इन को शल्य रहित कीजिये॥१६॥

हे केशव! मैं सारे सैनिकों को रोकूंगा, आप यथायोग्य सारा कार्य कर लें ॥१७॥ तब अर्जुन संभल कर रथ की पीठ से उतरा और गांडीव धनुष ले कर पर्वत की भांति अचल खड़ा हो गया॥१८॥ यह छिद्र है, ऐसा जान कर जयाभिलाषी क्षत्रिय सिंहनाद करते हुए भूमि पर खड़े अर्जुन की ओर दौड़े ॥ १९ ॥ पृथिवी पर खड़े अर्जुन से रथ पर चढ़े हुए वह राजे इस प्रकार रोक दिये गए, जैसे वेद विरुद्ध वाक्य (रोके जाते हैं) ॥ २० ॥ महातेजस्वी कृष्ण ने रथ से उतर बाणों से बिंधे हुए घोड़ों को खोला ॥ २१ ॥ लोक में इस से बढ़ कर अद्भुत क्या होगा, वा क्या हुआ है, जैसा कि अर्जुन और कृष्ण ने रण में घोड़ों को खोल कर दिखलाया॥ २२ ॥ घोड़ों की सारी आवश्यकताओं के जानने वाले कृष्ण ने उन की थकावट, ग्लानि, झाग, कंपा, घावों की पीड़ा सब दूर की ॥ २३ ॥ दोनों हाथों से उन के शल्य निकाले, उन को थपक कर फिराया, और फिर पानी पिलाया ।२४। पानी पिला, न्हला, और चारा खिला कर तरोताज़ा कर के फिर हर्ष के साथ रथ में जोड़ा ॥ २५ ॥शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कृष्ण उस रथवर पर चढ़ कर अर्जुन समेत फिर आगे बढ़े ॥२६ ॥ खिलौने से बाल की भांति एक रथ से ही सब के सामने हमारी सेना को निकम्मा कर के हमारे ललकारते हुए यत्न करते हुए ही कहीं भी न फंस कर अपनी शक्ति दिखला कर कवच पहने हुए वह दोनों सब राजाओं के बीच में से निकल गए ॥ २७-२८ ॥

अ० १२ (व० १०१-१०५) अर्जुन और दुर्योधन का युद्ध

मूल—तौ तु सैन्धव मालोक्य वर्तमान मिवान्तिके । सहसा

पेततुः क्रुद्धौ क्षिप्रं श्येनाविवामिषं ॥ १ ॥ कृष्णपार्थौ महेष्वासौ व्यतिक्रम्याथ ते सुतः । अग्रतः पुण्डरीकाक्षं प्रतीयाय नराधिप ॥ २ ॥ ततः सर्वेषु सैन्येषु वादित्राणि प्रहृष्टवत् । प्रावाद्यन्त व्यतिक्रान्ते तव पुत्रे धनञ्जयं ॥ ३ ॥ सिंहनाद स्वनाश्चासन् शंखशब्द विमिश्रिताः । दृष्ट्वा दुर्योधनं तत्र कृष्णयोः प्रमुखे स्थितं ॥ ४ ॥ ये च ते सिन्धुराजस्य गोप्तारः पावकोपमाः । ते प्राहृष्यन्त समरे दृष्ट्वा पुत्रं तव प्रभो ॥ ५ ॥ वासुदेव उवाच—दुर्योधन मतिक्रान्त मेतं पश्य धनञ्जय । अत्यद्भुत मिमं मन्ये नास्त्यस्य सदृशो रथः ॥ ६ ॥ दूरपाती महेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः । दृढास्त्रश्चित्र योधी च धार्तराष्ट्रो महाबलः ॥ ७ ॥ अत्र क्रोधविषं पार्थ विमुञ्च चिर संभृतं । एष मूल मनर्थानां पाण्डवानां महारथः ॥ ८ ॥ दिष्ट्या त्विदानीं संप्राप्त एष ते बाणगोचरं । यथाऽयं जीवितं जह्यात् तथा कुरु धनञ्जय॥ ९ ॥ ऐश्वर्यमदसंमूढो नैष दुःख मुपेयिवान्। न च ते संयुगे वीर्यं जानाति पुरुषर्षभ ॥ १० ॥ निकृत्या राज्य हरणं वनवासं च पाण्डव । परिक्लेशं च कृष्णाया हृदि कृत्वा पराक्रम ॥ ११ ॥

अर्थ—अब वह दोनों जयद्रथ को अपने निकटसा देख कर क्रुद्ध हुए झट इस प्रकार झपटे, जैसे श्येन मांस पर ॥ १ ॥ उधर तेरा पुत्र दुर्योधन कृष्ण और अर्जुन को लंघ कर वहां पहले पहुंच गया ॥ २ ॥ अर्जुन को लंघ कर तेरे पुत्र के वहां पहुंचने पर सारी सेनाओं में बाजे बजे ॥ ३ ॥ और दुर्योधन को अर्जुन और कृष्ण के संमुख खड़ा देख सिंहनाद और शंखों की ध्वनियें हुईं ॥ ४ ॥और जो जयद्रथ के रक्षक अग्नि समान तेजस्वी थे,वह भी तेरे पुत्र को वहां रण में देख कर प्रसन्न हुए॥५॥

श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन ! आगे लंघ आए इस दुर्योधन को देखो, मैं इस को बड़ा अद्भुत मानता हूं, यह अनुपम रथी है॥६॥ दूर तक मारने वाला महाधनुर्धारी अस्त्रों में निपुण युद्ध में दुर्मद दृढ अस्त्रों वाला विचित्र युद्ध करने वाला महाबली है ॥ ७ ॥ इस पर हे अर्जुन चिर से इकट्ठे किये क्रोधविष को छोड़, यही पाण्डवों की सारी विपत्तियों का मूल है ॥ ८ ॥ भाग्य से अब यह तेरे बाणगोचर हुआ है, हे अर्जुन जैसे यह अपना जीवन त्यागे, वैसे करो ॥ ९ ॥ यह ऐश्वर्य के मद से मोहित है, इसने कभी दुःख नहीं सहे, संग्राम में यह तेरे बल को नहीं जानता है ॥ १० ॥ छल से राज्य का हरना, वनवास, और द्रौपदी का क्लेश इन सब को हृदय में ला कर हे अर्जुन पराक्रम दिखला॥११॥

मूल—तं तथेत्य ब्रवीत् पार्थः कृत्यरूप मिदं मम । सर्वमन्यदनादृत्य गच्छ यत्र सुयोधनः ॥ १२ ॥ तं चतुर्दशभिः पार्थश्चित्र पुंखैः शिला शितैः । अविध्यत्तूर्ण मव्यग्रस्तेचाऽभ्रश्यन्त वर्माणि ॥ १३ ॥ तेषां वै फल्यमालोक्य पुनर्नव च पञ्च च । प्राहिणोन्निशितान् बाणांस्तेचाभ्रश्यन्त वर्मणः ॥ १४ ॥ अष्टाविंशास्तु तान् बाणानस्तान् विप्रेक्ष्य निष्फलान् । अब्रवीत् परवीरघ्नः कृष्णोऽर्जुन मिदं वचः ॥ १५ ॥ अदृष्टपूर्वं पश्यामि शिलानामिव सर्पणं । त्वया संप्रेषिताः पार्थ नार्थं कुर्वन्ति पत्रिणः ॥१६॥ काच्चिद्गांडीवतः प्राणस्तथैव भरतर्षभ। मुष्टिश्च ते यथा पूर्वं भुजयोश्च बलं तव ॥ १७ ॥ अर्जुन उवाच–द्रोणे नैषामतिः कृष्ण धार्तराष्ट्रे निवेशिता । अभेद्या हि ममास्त्राणा मेषा कवच धारणा ॥ १८ ॥ पश्य बाह्वोश्च मे वीर्यं धनुषश्च जनार्दन । पराजयिष्ये कौरव्यं कवचेनापि रक्षितं ॥ १९ ॥ ततोऽस्य निशितैर्बाणैः मुमुक्तैरन्त

कोपमैः । हयांश्चकार निर्देहानुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ २० ॥दुर्योधनं च बाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यां विरथीकृतं । आविध्यद्धस्ततलयोरुभयोरर्जुनस्तदा ॥ २१ ॥ स वेदनाभिराविग्नः पलायन परायणः ॥ २२ ॥ तं कृच्छ्रामापदं प्राप्तं दृष्ट्वा परम धन्विनः । समापेतुः परीप्सन्तो धनञ्जय शरार्दितं ॥ २३ ॥ ते दृष्ट्वा सहसा पार्थं गोप्तारः सैन्धवस्यतु । चक्रुर्नादान् महेष्वासाः कम्पयन्तो वसुन्धरां ॥ २४ ॥ जिगीषुस्तान् नरव्याघ्रान् जिघांसुश्च जयद्रथं । अदृश्यांस्तावकान् योधान् प्रचक्रे शत्रु तापनः ॥ २५ ॥ततस्तेऽपि नरव्याघ्राः पार्थं सर्वे महारथाः।अदृश्यं समरे चक्रुः सायकौघैः समन्ततः२६

अर्थ—अर्जुन तथाऽस्तु कह कर कृष्ण से बोले-यह मेरा मुख्य कर्तव्य ही है,सो और सब को अनादर कर के वहां चलो जहां सुयोधन है ॥ १२ ॥ वहां जाकर सावधान होकर अर्जुन ने सिला पर साने हुए चौदह बाणों से उस को बींधा, पर वह कवच पर निकम्मे हुए ॥ १३ ॥ उन को विफल देख फिर तीखे चौदह बाण और मारे, वह भी कवच पर निकम्मे हुए ॥ १४ ॥ उन अठाईस बाणों को निष्फल देख कर शत्रुवीरों के मारने वाले कृष्ण अर्जुन से यह वचन बोले ॥ १५ ॥ पहले कभी न देखी बात देख रहा हूं,सिलाओं के सर्कने की भांति तुझ से भेजे बाण कुछ संवार नहीं रहे ॥ १६ ॥ क्या गांडीव की शक्ति तो वही है, और तेरी मुट्ठी और तेरी भुजाओं का बल भी वैसा ही है ? ॥ १७ ॥ अर्जुन बोले—हे कृष्ण ! यह समझ आचार्य ने इस को दी है, अतएव यह कवचधारणा मेरे अस्त्रों से अभेद्य हो रही है ॥ १८ ॥ अब हे जनार्दन मेरी भुजाओं का और धनुष का बल देखिये, कवच से रक्षित भी दुर्योधन को पराजित करूंगा ॥१९॥

अनन्तर चलाए हुए यम तुल्य तीखे बाणों से घोड़ों को और उस के पृष्ठरक्षक और सारथि को मार गिराया ॥ २० ॥ फिर दो तीखे बाणों से दुर्योधन को रथ हीन कर के उस के दोनों हस्ततलों को बाणों से विद्ध किया ॥ २१ ॥ उन पीड़ाओं से पीड़ित हो कर वह भागने को तय्यार हुआ ॥ २२ ॥ उस को बड़ी विपत्ति में पड़ा देख कर उस की रक्षा के लिए धनुर्धारी आ पहुंचे॥२३॥ वह जयद्रथ के रक्षक महाधनुर्धारी अर्जुन को देख कर पृथिवी को कंपायमान करते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ २४ ॥ अर्जुन ने उन नरवीरों को जीतने और जयद्रथ को मारने की इच्छा से उन सब योधाओं को बाणों से ढांप दिया ॥ २५ ॥ उन नरवीर महारथियों ने भी चारों ओर से अपने बाणसमूहों के साथ अर्जुन को ढक दिया ॥ २६ ॥

अ० १३ (व०११०-११२) सात्यकि का अर्जुन के पीछे जाना

मूल—वर्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन् वीरवरक्षये। अजातशत्रुः कौन्तेयः सात्वतं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥ न तत्सौहृद मन्येषु मया शैनेय लक्षितं । यथा त्वमस्मान् भजसे वर्तमानानुपप्लवे ॥ २ ॥ सोऽभिजात्या च भक्त्या च सख्यस्याचार्यकस्य च । सौहृदस्य च वीर्यस्य कुलीनत्वस्य माधव ॥ ३ ॥ सत्यस्य च महाबाहो अनुकम्पार्थ मेव च । अनुरूपं महेष्वास कर्म कर्तुं त्वमर्हसि ॥४॥ सुयोधनो हि सहसा गतो द्रोणेन दंशितः । पूर्वमेवानुयातास्ते कौरवाणां महारथाः ॥ ५ ॥ श्यामो युवा गुडाकेशः प्रविष्टस्तात भारतीं । सूर्योदये महाबाहुर्दिवसश्चाति वर्तते ॥ ६ ॥ तस्य मे सर्वकार्येषु कार्य मेतन्मतं महत् । अर्जुनस्य परित्राणं कर्तव्यमिति संयुगे

॥ ७ ॥ तस्य त्वं पदवीं गच्छ गच्छेयुस्त्वादृशा यथा। तादृशस्ये दृशे काले मादृशेनाभिनोदिताः ॥ ८ ॥ वीरतायां नरव्याघ्र धनञ्जय समोह्यसि। परित्यज्य प्रियान् प्राणान् रणे चर विभीतवत् ॥ ९ ॥ तवार्जुनो गुरुस्तात धर्मात्मा शिनिपुंगव। वासुदेवो गुरुश्चापि तव पार्थस्य धीमतः ॥ १०॥ कारणद्वयमेतद्धि जानंस्त्वामह मब्रुवं। यथार्हमात्मनः कर्म रणे सात्वत दर्शय ॥ ११ ॥

अर्थ—उस भयंकर वीरक्षय के प्रवृत्त होने पर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर सात्यकि से यह बोले ॥ १ ॥ हे यादव मैंने यह सौहार्द दूसरों में नहीं पाया, जैसा कि तुम उपद्रव में हमारे साथी बनते हो ॥ २ ॥ अपने उत्तम वंश, भक्ति, मैत्री, उपदेश, सौहार्द, शक्ति, कुलीनता, सचाई, इन सारे गुणों के योग्य कर्म कर दिखलाओ ॥ ३ ॥ द्रोण से कवच पहना कर सुयोधन वेग से गया है। और कौरवों के और महारथी पहले ही वहां गए हुए हैं ॥ ५ ॥ हे तात पूर्ण युवा अर्जुन सेना में सूर्योदय के समय प्रविष्ट हुआ है, अब दिन ढलने पर है ॥ ६ ॥ इस समय मुझे सारे कार्यों में से युद्ध में अर्जुन की रक्षा सब से भारी कार्य है ॥ ७ ॥ तुम उस की खोज पर जाओ, जैसे कि तेरे जैसे वीर मेरे जैसे से प्रेरा हुआ उस जैसे के ऐसे अवसर पर जाया करते हैं॥ ८ ॥ हे वीरवर वीरता में तुम अर्जुन के समान हो, अपने प्यारे प्राणों को हथेली पर रख कर निर्भय होकर चलो ॥ ९ ॥ हे यादव! धर्मात्मा अर्जुन तेरा गुरु है, और कृष्ण तेरा और अर्जुन का दोनों का गुरु है ॥ १० ॥ इन दोनों कारणों को जान कर मैंने तुझे कहा है, हे यादव अपने योग्य रण में कर दिखला ॥ ११ ॥

मूल—सात्यकिरुवाच—न मे धनञ्जयस्यार्थे प्राणारक्ष्याः क-

थश्चन । त्वत्प्रयुक्तः पुनरहं किन्न कुर्यां महाहवे ॥ १२ ॥ अवश्यं तु मया सर्वं विज्ञाप्यस्त्वं नराधिप । वासुदेवस्य यद्वाक्यं फाल्गुनस्य च धीमतः ॥ १३ ॥ अद्य माधव राजानमप्रमत्तोऽनुपालय ॥ १४ ॥ स भवान्मयि निक्षेपो निक्षिप्तः सव्यसाचिना । भारद्वाजाद्भयं नित्यं मन्यमानेन वै विभो॥ १५ ॥ मा च ते भयमद्यास्तु राजन्नर्जुनसंभवं । न स जातु महाबाहु र्भारमुद्यम्य सीदति॥१६॥ युधिष्ठिर उवाच--विश्रब्धं गच्छ शैनेय माकार्षीर्मयि संभ्रमं। धृष्टद्युम्नो रणे क्रुद्धं द्रोणमावारयिष्यति ॥ १७ ॥ धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुंगवः । स पार्थाद्भय माशंसन् परित्यागान्महीपतेः ॥ १८ ॥ अपवादं ह्यात्मनश्च लोकात्पश्यन् विशेषतः । ते मां भीतमिति ब्रूयु रयान्तं फाल्गुनं प्रति ॥ १९ ॥ निश्चित्य बहुधैवं स सात्यकिर्युद्धदुर्मदः। धर्मराज मिदं वाक्य मब्रवीत्पुरुषर्षभः।२०। कृतां चेन्मन्यसे रक्षां स्वस्ति तेऽस्तु विशांपते । अनुयास्यामि बीभत्सुं करिष्ये वचनं तव ॥ २१ ॥ ततः प्रयातः सहसा तव सैन्यं स सात्यकिः । दिदृक्षुरर्जुनं राजन् धर्मराजस्य शासनात ॥२२ ॥ प्रयाते तव सैन्यं तु युयुधाने युयुत्सया ।धर्मराजो महाराज स्वेनानीकेन संवृतः ॥ २३ ॥ प्रयाद् द्रोणरथं प्रेप्सुर्युयुधानस्य पृष्ठतः। यथासुखेन गच्छेत सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ २४ ॥

अर्थ—सात्यकि बोले-अर्जुन के अर्थ मुझे प्राण रक्षणीय नहीं, और फिर आप से आज्ञा दिया हुआ मैं इस महासंग्राम में क्या नहीं कर सकता हूं ॥१२॥पर हे राजन् मुझे आप को सारी बात अवश्य बतला देनी चाहिये, जो कृष्ण की और अर्जुन की मुझे आज्ञा है ॥ १३ ॥ कि हे यादव ! आज युधिष्ठिर की अप्रमत्त हो कर रक्षा करनी ॥ १४ ॥ हे विभो ! द्रोणाचार्य के डर

से अर्जुन आप को मेरे पास अमानत रख गए हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! आप को अर्जुन के विषय में कोई भय नहीं होना चाहिये, वह महाबाहु भार को उठा कर दुःखी नहीं होता है ॥१६॥ युधिष्ठिर बोले—हे यादव ! तुम निःशंक जाओ, मेरे विषय में कोई चिन्ता न करो, रण में क्रुद्ध हुए द्रोण को धृष्टद्युम्न रोकेंगे ॥ १७ ॥ धर्मराज के इस वाक्य को सुन कर यादव वीर ने एक ओर तो राजा के त्याग में अर्जुन से भय माना ॥ १८ ॥ दूसरी ओर विशेषतः योद्धाओं से अपना अपवाद माना, कि अर्जुन की ओर न जाने से वह मुझे भयभीत हुआ जानेंगे ॥ १९ ॥ इस प्रकार युद्ध दुर्मद सात्यकि बहुत सोच कर धर्मराज से यह वाक्य बोले ॥ २० ॥ हे राजन् ! यदि आप अपनी रक्षा पूरी समझते हैं, तो आप को स्वस्ति हो, मैं अर्जुन के पीछे जाऊंगा, आप की आज्ञा पालूंगा ॥ २१ ॥ अनन्तर वह सात्यकि धर्मराज की आज्ञा से अर्जुन को देखने के निमित्त शीघ्रता से आप की सेना की ओर गया ॥ २२ ॥ युद्ध करने की इच्छा से जब सात्यकि आप की सेना में चला गया, तब धर्मराज अपनी सारी सेनासमेत ॥२३॥ सात्यकि के पीछे द्रोण के रथ को घेरने के लिए दौड़े, ताकि युद्ध दुर्मद सात्यकि सुख से निकल जाए ॥ २४ ॥

अ०१४ (१२५-१२९) भीम का अर्जुन के पास जाना

मूल—अपराह्णे महाराज संग्रामः सुमहानभूत् । पर्जन्य सम निर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः ॥ १ ॥ तमभ्ययात् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः । ह्यविध्यत् बृहत्क्षत्रं सञ्छिन्न हृदयोऽपतत् ॥२॥ पतंगं हि ग्रसेच्चाषो यथा क्षुद्रं बुभुक्षितः । तथा द्रोणो ग्रसच्छूरो धृ-

ष्टकेतुं महाहवे ॥ ३ ॥ छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनां वरं। जारासन्धिं जघानाशु मिषतां सर्वधन्विनां ॥ ४ ॥ आकर्णपलितः श्यामो वयसाऽशीति पञ्चकः। रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ५ ॥ वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे लोमहर्षणे। युधिष्ठिरो ददर्शाथ नैव पार्थं न माधवं ॥ ६ ॥ अचिन्तयन् महाबाहुः शैनेयस्य रथं प्रति। पदवीं प्रेषितश्चैव फाल्गुनस्य मया रणे ॥ ७ ॥ सात्यकिं प्रेषयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगं। सात्वतस्यापि कं युद्धे प्रेषयिष्ये पदानुगं ॥ ८ ॥ करिष्यामि प्रयत्नेन भ्रातुरन्वेषणं यदि। युयुधान मनन्विष्य लोको मां गर्हयिष्यति ॥ ९ ॥ प्राप्तकालं सुबहुलवशिश्चितं बहुधा हि मे ॥ १० ॥ इतो गते भीमसेने सात्वतं प्रति पाण्डवे। सनाथौ भवितारौ हि युधि सात्वत फाल्गुनौ ॥११॥ एवं निश्चित्य मनसा भीममाहूय पार्थिवः। अब्रवीद् वचनं राजन् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १२ ॥ न हि मे शुध्यते भावस्तयोरेव परंतप। स तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातो धनञ्जयः ॥ १३ ॥ सात्यकिश्च महावीर्यः कर्तव्यं यदि मन्यसे। न तेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यः सात्यकिर्यथा ॥ १४ ॥ भीमसेन उवाच—आज्ञां तु शिरसा बिभ्र देषगच्छामि मा शुचः। समेत्य तान्नरव्याघ्रान् तव दास्यामि संविदं ॥ १५ ॥ ततो निक्षिप्य राजानं धृष्टद्युम्ने च पाण्डवं। अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं प्रययौ येन फाल्गुनः ॥ १६ ॥ स मृद्नन् क्षत्रियानाजौ वातो वृक्षानिवोद्धतः। अगच्छद्दारयन् सेनां सिन्धुवेगो नगानिव॥ १७ ॥भोजानीक मतिक्रम्य दरदानां च वाहिनीं। तथा म्लेच्छगणानन्यान् बहून् युद्धविशारदान् ॥१८ ॥ सात्यकिं चैव संप्रेक्ष्य युध्यमानं महारथं। सोऽपश्यदर्जुनं तत्र युध्यमानं महा-

रथं ॥ १९ ॥ भीमसेनरवं श्रुत्वाअप्रीयत युधिष्ठिरः । दृष्ट्वा भीम त्वया संवित् कृतं गुरुवचस्त्वया ॥ २० ॥

अर्थ—पिछले पहर हे महाराज फिर द्रोण का सोमकों के साथ बड़ा भारी संग्राम हुआ ॥ १ ॥केकय महारथ बृहत्क्षत्र उस के सामने आया, द्रोण ने बृहत्क्षत्र के हृदय को विद्ध किया, हृदय के छिदने से वह गिर पड़ा ॥ २ ॥ जैसे भूखा चाष छोटे से पतंगे को ग्रसे, इस प्रकार शूर द्रोण ने धृष्टकेतु को ग्रसा ॥ ३ ॥ और फिर जरासन्ध के पुत्र को बाणों से ढांप कर सब धनुर्धारियों के सामने मार गिराया॥ ४ ॥कानों तक जिसके श्वेत बाल हैं, वह पचासी वर्ष का बूढा द्रोण रण में सोलहवर्ष वाले की भांति फिर रहा था ॥ ५ ॥ रोंएं खड़ा करने वाले घोर संग्राम के चारों ओर प्रवृत्त होने पर युधिष्ठिर ने जो अर्जुन और सात्यकि को वहां न देखा॥६॥ तो उस महाबाहु को सात्यकि के रथ के विषय में चिन्ता हुई, कि मैंने रण में उसे अर्जुन का पता लगाने को भेजा है ॥ ७ ॥ अर्जुन की खोज पर तो मैंने सात्यकि को भेजा है, अब सात्यकि की खोज पर किस को भेजूं ॥ ८ ॥ यदि मैं सात्यकि को ढूंढे बिना भाई का विशिष्य अन्वेषण करूंगा, तो लोक मेरी निन्दा करेंगे ॥ ९ ॥ सो यह मुझे समयोचित प्रतीत होता है ॥ १० ॥यदि यहां से भीमसेन सात्यकि की ओर जाए, तो सात्यकि और अर्जुन दोनों को सहायता पहुंचेगी ॥ ११ ॥ इस प्रकार निश्चय करके कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर ने भीम को बुला कर यह कहा ॥ १२ ॥ हे परंतप ! उन दोनों के विषय में मेरा मन व्याकुल है, सो हे कौन्तेय यदि मेरा वचन माननीय है, तो वहां जाओ, जहां अर्जुन और महावीर्य सात्यकि गया है, तुझे

वह बोले ॥ १० ॥ देख हे महाबाहो वह वीर जयद्रथ सूर्य को देख रहा है, इस दुरात्मा के वध का यह समय है ॥ ११ ॥

मूल—इत्येवं केशवेनोक्तः पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् । न्यवधीत तावकं सैन्यं शरैरर्काग्निसन्निभैः ॥ १२ ॥ ते शरैर्भिन्नमर्माणः सैनिकाः पार्थचोदितैः । बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुः सेदुर्मम्लुश्च भारत ॥ १३ ॥ एवं तव बलं राजन् द्रावयित्वा धनञ्जयः । न्यवधीत्सायकैर्घोरैः सिन्धुराजस्य रक्षिणः ॥ १४ ॥ द्रौणिं कृपं कर्णशल्यौ वृषसेनं सुयोधनं । छादयामास तीव्रेण शरजालेन पाण्डवः ॥ १५ ॥ न गृह्णन्न क्षिपन् राजन्न मुञ्चन्नापि संदधत् । अदृश्यतार्जुनः संख्ये शीघ्रास्त्रत्वात कथंचन ॥ १६ ॥ धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यतेस्मास्यतः सदा । सायकाश्च व्यदृश्यन्त निश्चरन्तः समन्ततः ॥ १७ ॥ कर्णस्य तु धनुश्छित्वा वृषसेनस्य चैव ह । शल्यस्य सूतं भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ १८ ॥ गाढविद्धावुभौ कृत्वा शरैः स्वस्रीयमातुलौ । अर्जुनो जयतांश्रेष्ठो द्रौणिशारद्वतौ रणे ॥ १९॥ एवं तान् व्याकुलीकृत्य त्वदीयानां महारथान् । उज्जहार शरंघोरं पाण्डवोऽनलसन्निभं ॥ २० ॥ वज्रेणास्त्रेण संयोज्य विधिवत्कुरुनन्दनः । समादधन्महाबाहुर्गाण्डीवे क्षिप्रमर्जुनः ॥ २१ ॥ स तु गाण्डीवनिर्मुक्तः शरः श्येन इवाशुगः । छित्त्वा शिरः सिन्धुपतेरुत्पपात विहायसं ॥ २२ ॥ ततो विनिहते राजन् सिन्धुराजे किरीटिना । तमस्तद्वासुदेवेन संहृतं भरतर्षभ ॥ २३ ॥ पश्चाज्ज्ञातं महीपाल तवपुत्रैः सहानुगैः । वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति नृपसत्तम ॥ २४ ॥ हतं जयद्रथं दृष्ट्वा तव पुत्रा नराधिप । दुःखादश्रूणि मुमुचुर्निराशाश्चाभवञ्जये ॥ २५ ॥ ततो जयद्रथे राजन् हते पार्थेन केशवः । दध्मौ शंखं महाबाहुरर्जुनश्च परंतपः ॥ २६ ॥ भीमश्च

वृष्णिसिंहश्च युधामन्युश्च भारत । उत्तमौजाश्च विक्रान्तः शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ २७ ॥ एकत्रिंशत्तव सुता भीमसेनेन पातिताः । शतशो निहताः शूराः सात्वतेनार्जुनेन च ॥ २८ ॥

अर्थ—कृष्ण के ऐसा कहने पर पाण्डुसुत अर्जुन सूर्य और अग्नि के तुल्य शाणों से तेरी सेना का वध करने लगे॥१२॥ अर्जुन से छोड़े बाणों से छिदे मर्मों वाले सैनिक चकराने लगे, फिसलने लगे, गिरने लगे, पीड़ित होने और घबराने लगे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तेरी सेना को भगा कर अर्जुन अपने घो बाणों से जयद्रथ के रक्षकों को मारने लगे ॥ १४ ॥ अर्जुननेर अपने तीव्र बाणजाल से अश्वत्थामा, कृप, कर्ण, शल्य, वृषसेन और सुयोधन को ढांप दिया ॥ १५ ॥ अस्त्रों की फुर्ती के कारण अर्जुन रण में बाणों को पकड़ता जोड़ता छोड़ता नहीं दीखता था ।१६।दीखता था उस का धनुष लगातार गोल, और चारों ओर निकलते हुए बाण॥१७॥उसने कर्ण के और वृषसेन के धनुष को काट कर भाले से शल्य के सारथि को रथ से गिराया ॥ १८ ॥ फिर विजयिवर अर्जुन ने दोनों मामे भानजे कृपाचार्य और अश्वत्थामा को बाणों से गाढ विद्ध किया ॥ १९ ॥ इस प्रकार आप के उन महारथों को घबराहट में डाल कर अर्जुन ने अग्नि तुल्य घोर बाण निकाला ॥ २० ॥ उस को वज्र अस्त्र से युक्त करके फुर्ती से गांडीव में जोड़ा ॥ २१ ॥ गांडीव से छूटा वह बाण श्येन की भांति तेजी से पहुंच कर जयद्रथ के सिर को काट कर आकाश को उड़ गया ॥ २२ ॥ जूं ही कि अर्जुन ने सिन्धुराज को मार गिराया, उसी समय कृष्ण ने अन्धकार को समेट लिया ॥२३॥ तब तेरे पुत्रों ने और दूसरे सैनिकों ने जाना, कि यह कृष्ण से

प्रयुक्त की माया थी ॥ २४ ॥ हे राजन् जयद्रथ को मरा देखकर तेरे पुत्रों ने दुःख से आंसु छोड़े और जय में निराश हो गए।२५। अर्जुन से जयद्रथ के मारा जाने पर महाबाहु कृष्ण और अर्जुन ने शंख बजाए ॥ २६ ॥ तथा भीम सात्यकि युधामन्यु और पराक्रमी उत्तमौजा ने अपने२ शंख बजाए ॥ २७ ॥ संजय बोले—इसी युद्ध में तेरे इकतीस पुत्र भीमसेन ने मारे, तथा सात्यकि और अर्जुन ने कई प्रसिद्ध योधे मार गिराए ॥ २८ ॥

मूल—ततो राजानमभ्येत्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरं । ववन्दे स प्रहृष्टात्मा हते पार्थेन सैन्धवे ॥ २९ ॥ दिष्ट्या वर्धसि राजेन्द्र हत शत्रुर्नरोत्तम । दिष्ट्या निस्तीर्णवांश्चैव प्रतिज्ञा मनुजस्तव ॥ ३० ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा रथादाप्लुत्य भारत। पर्यष्वजत तदा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः ॥ ३१ ॥ अत्यद्भुतमिदं कृष्ण कृतं पार्थेन धीमता । दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे तीर्णभारौ महारथौ ॥ ३२ ॥ किन्तु नात्यद्भुतं तेषां येषां त्वम् समाश्रयः । त्वत्प्रसादाद्धि गोविन्द वयं जेष्यामहे रिपून्॥ ३३ ॥इत्येवं धर्मराजेन हरिरुक्तो महायशाः । अनुरूपमिदं वाक्यं प्रत्युवाच जनार्दनः ॥ ३४ ॥भवता तपसोग्रेण धर्मेण परमेण च । साधुत्वादार्जवाच्चैव हतः पापो जयद्रथः ॥ ३५ ॥ ततो धर्मसुतो जिष्णुं परिष्वज्य विशांपते। प्रमृज्य वदनं तस्य पर्याश्वासयत प्रभुः ॥ ३६॥ ततः प्रमुदितं सर्वं बलमासीद्विशांपते । पाण्डवानां रणे हृष्टं युद्धाय तु मनो दधे॥ ३७ ॥

अर्थ—जयद्रथ के मरने पर प्रसन्न हुए कृष्ण ने धर्मपुत्र युधिष्ठिर को जा प्रणाम किया ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र बधाई हो, आप का शत्रु मारा गया, आप के छोटे भाई ने प्रतिज्ञा पूरी की ॥ ३० ॥ तब युधिष्ठिर ने रथ से उछल कर कृष्ण और अर्जुन

को गले लगा लिया, और आनन्द के आंसुओं से तर होगया ॥ ३१ ॥ हे कृष्ण ! अर्जुन ने बड़ा अद्भुत काम कर दिखलाया है, भाग्य से ज़म्मेवारी पूरी कर चुके हुए तुम दोनों को देखता हूं ॥ ३२ ॥ किन्तु उन के लिए यह बड़ा अद्भुत कार्य नहीं, जिन के आप सहारा हैं, आप की कृपा से हे कृष्ण हम शत्रुओं को जीतेंगे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार धर्मराज ने महायशस्वी कृष्ण से कहा, तो वह इस के योग्य यह वाक्य बोले ॥ ३४ ॥ आप के उग्रतप, परम धर्म,साधुता और सरलता के कारण पापी जयद्रथ मारा गया है ॥ ३५ ॥ अनन्तर धर्मराज ने अर्जुन को गले लगा कर उस का मुख पोंछ कर आश्वासन दिया ॥ ३६ ॥ पाण्डवों की सारी सेना प्रसन्न हुई, और रण में प्रसन्नता से तय्यार हुई ॥ ३७ ॥

अ०१५(व०१५०-१५२)दुर्योधन का विलाप और द्रोण का उत्तर

मूल—सैन्धवे निहते राजन् पुत्रस्तव सुयोधनः । अश्रुपूर्णमुखो दीनो निरुत्साहो द्विषज्जये ॥ १ ॥ दृष्ट्वा तत्कदनं घोरं स्वबलस्य कृतं महत् । जिष्णुना भीमसेनेन सात्वतेन च संयुगे॥ २॥ स विवर्णः कृशो दीनो बाष्पविप्लुतलोचनः । अमन्यतार्जुन समो न योद्धा भुवि विद्यते ॥ ३ ॥ एवं क्लान्तमना राजन्नुपायाद् द्रोणमीक्षितुं । ततस्तत्सर्वमाचख्यौ कुरूणां वैशसं महत् ॥ ४ ॥ दुर्योधन उवाच—पश्य मूर्धाभिषिक्तानामाचार्य कदनं महत्। अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः॥ ५ ॥ अस्मद्विजय कामानां सुहृदामुपकारिणां ! गन्तास्मि कथमानृण्यं गतानां यमसादनं॥६॥ ये मदर्थं परीप्सन्ते वसुधां वसुधाधिपाः । ते हित्वा वसुधैश्वर्यं वसुधामधिशेरते ॥ ७ ॥ सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमी-

द्दशं। अश्वमेधसहस्रेण पावितुं न समुत्सहे ॥ ८ ॥ कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदांद्रुहः।विवरं नाशकद्दातुं मम पार्थिव संसदि॥९॥ भवानुपेक्षां कुरुते शिष्यत्वादर्जुनस्य हि । अतो विनिहताः सर्वे येस्मज्जयचिकीर्षवः ॥ १० ॥

अर्थ—जयद्रथ के मारा जाने पर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन दीन हुए बहुत रोए, और शत्रुओं के जीतने में उत्साह रहित होगए ॥ १ ॥ रण में अर्जुन भीम और सात्यकि से अपनी सेना का घोर नाश देख कर दीन हुए दुर्योधन के चेहरे का रंग फीका पड़ गया, नेत्रों से आंसु बहने लगे, और उसने माना,कि अर्जुन के तुल्य पृथिवी भर में कोई योद्धा नहीं है ॥ २—३ ॥ इस प्रकार मुरझाए मन वाले दुर्योधन द्रोण की भेंट करने गए, और वहां जा कर कौरवों का सारा विनाश कह सुनाया ॥४ ॥ दुर्योधन बोले—हे आचार्य !राजाओं के इस बड़े विनाश को देखिये। अर्जुन ने सात सेनाएं चीर कर राजा जयद्रथ का वध किया है ॥५॥ हमारी विजय कामना से लड़ते हुए जो उपकारी सुहृद यमलोक को गए हैं, मैं कैसे उन के ऋण से मुक्त हूंगा ॥ ६ ॥ जो कि मेरे ही लिए पृथिवी को पाना चाहते हुए पृथिवी के ऐश्वर्य को त्याग कर भूमि पर लेटे पड़े हैं ॥ ७ ॥ मैं कापुरुष बना हूं, मित्रों का ऐसा क्षय कराके, सौ अश्वमेध से भी मैं अपने को पवित्र नहीं कर सकूंगा ॥ ८ ॥ राजाओं के बीच मुझ मित्रद्रोही पापाचारी के लिए पृथिवी क्यों नहीं फट जाती ॥ ९ ॥ अर्जुन को शिष्य जान आप उपेक्षा कर रहे हैं, इसी से वह सब मारे गए जो हमारा विजय चाहते हैं ॥ १० ॥

मूल—द्रोण उवाच—दुर्योधन किमेवं मां वाक्शरैरपि कृन्त-

सि । अजय्यं सततं संख्ये ब्रुवाणं सव्यसाचिनं ॥ ११ ॥ एतेनैवार्जुनं ज्ञातुमलं कौरवसंयुगे । यच्छिखण्ड्यवधीद्भीष्मं पाल्यमानः किरीटिना ॥ १२ ॥ यं पुंसां त्रिषु लोकेषु सर्वशूरममंस्महि । तस्मिन्निपतिते शूरे किं शेषं पर्युपास्महे ॥ १३ ॥ यान् स्म तान् ग्लहते शकुनिः कुरुसंसदि । अक्षान् न तेऽक्षा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः ॥ १४ ॥ तांस्तदाख्यायमानस्त्वं विदुरेण न बुद्धवान् । तदिदं वर्तते घोरमागतं वैशसं महत् ॥ १५ ॥ योऽवमन्य वचः पथ्यं सुहृदामाप्तकारिणां । स्वमतं कुरुते मूढः स शोच्यो न चिरादिव ॥ १६ ॥ यच्च नः प्रेक्षमाणानां कृष्णामानाय्य तत्सभां । तस्याधर्मस्य गान्धारे फलं प्राप्तमिदं महत् ॥ १७ ॥यत्ताः सर्वेऽपराभूताः पर्यवारयतार्जुनं । सिन्धुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये कथं हतः ॥ १८ ॥ कथं त्वयि च कर्णे च कृपे शल्ये च जीवति । अश्वत्थाम्नि च कौरव्य निधनं सैन्धवोऽगमत् ॥ १९ ॥ तन्मां किमभितप्यन्तं वाक्शरैरेव कृन्तसि । अशक्तः सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत ॥ २० ॥ इमानि पाण्डवानां च सृंजयानां च भारत । अनीकान्याद्रवन्ते मां सहितान्यद्य भारत॥२१॥ नाहत्वा सर्वपञ्चालान् कवचस्य विमोक्षणं । कर्तास्मि समरे कर्म धार्तराष्ट्र हितं तव ॥ २२ ॥ राजन् ब्रूयाः सुतं मे त्वमश्वत्थामानमाहवे । न सोमकाः प्रमोक्तव्या जीवितं परिरक्षता ॥ २३ ॥ एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरिसूदन । रणाय महते राजन् त्वया वाक्शरपीडितः ॥ २४ ॥ त्वं च दुर्योधन बलं यदि शक्तोसि पालय। रात्रावपि च योत्स्यन्ते संरब्धाः कुरुसृंजयाः॥ २५ ॥ एवमुक्त्वा ततः प्रायाद् द्रोणः पाण्डव सृंजयान् । मुष्णन् क्षत्रिय तेजांसि नक्षत्राणामिवांशुमान् ॥ २६ ॥ ततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं

प्रचोदितः । अमर्षवशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे ॥ २७ ॥

अर्थ—द्रोण बोले—हे दुर्योधन ! क्यों इस समय तुम मुझे वाणी के बाणों से छेदते हो, जब कि मैं स्पष्ट कह रहा हूं, कि अर्जुन युद्ध में जीता नहीं जा सकता है ॥ ११ ॥ हे कुरुराज ! इसी से अर्जुन की युद्ध में पूरी शक्ति जान लो, कि अर्जुन से रक्षित हुआ शिखण्डी भी भीष्म को मारने के समर्थ हुआ॥१२॥ जिस को तीनों लोकों में सब से बढ़ कर शूरवीर मानते थे, उस वीरवर भीष्म के मारा जाने पर किस बचे हुए पर हम सहारा रखें ॥ १३॥ पहले कौरव सभा में जिन पासों से शकुनि जुआ खेला, वह पासे न थे, वह शत्रुतापक तीखे बाण थे ॥ १४ ॥ विदुर ने यह तुम्हें कह दिया, पर तुमने न समझा, सो यह भयं-कर विनाश अब सामने आया है ॥ १५ ॥ जो कोई आत्मीय सुहृदों के पथ्य वचन का अनादर करके अपनी मति करता है, वह मूढ़ शीघ्र ही शोचनीय होजाता है ॥ १६ ॥ और जो हमारे सामने तुम द्रौपदी को सभा में ले आए, उस अधर्म का हे दुर्यो-धन यह बड़ा फल मिल रहा है ॥ १७ ॥ जयद्रथ का सहारा ले कर तुम सबने जब प्रयत्न शील हो कर अर्जुन को घेरा था, तो जयद्रथ तुम्हारे मध्य में से कैसे मारा गया॥१८ ॥ हे कुरुराज ! तेरे, कर्ण, कृप, शल्य और अश्वत्थामा के जीते हुए सिन्धुराज कैसे मारा गया ॥ १९ ॥ आप तू सिन्धुराज की रक्षा में समर्थ न होकर (उस के वध को सुन) संतप्त हुए मुझ को वाणी के बाणों से क्यों छेदता है ॥ २० ॥ यह पाण्डवों और सृंजयों की सेनाएं हे राजन् ! मिल कर मेरी ओर धावा कर रही हैं ॥२१॥ पञ्चालों को मारे विना मैं कवच नहीं उतारूंगा, हे दुर्योधन यह

रण में तेरा हित कर्म करूंगा॥ २२ ॥ हे राजन् ! मेरे पुत्र अश्वत्थामा को कहना, कि वह जीतेजी सोमकों को न छोड़े ॥ २३ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे वाणी के बाणों से पीड़ित हुआ यह लो मैं बड़े संग्राम के लिए शत्रुसेना में प्रवेश करता हूं ॥ २४ ॥ तुम हे दुर्योधन यदि कर सकते हो, तो सेना की रक्षा करो, रात को भी क्रुद्ध हुए कौरव और संजय युद्ध करेंगे ॥ २५ ॥ यह कह कर द्रोण,तारों के तेज को हरते हुए सूर्य की भांति, पाण्डव और संजयों की ओर गए ॥ २६ ॥ द्रोण से ऐसे प्रेरा हुआ दुर्योधन क्रुद्ध हुआ युद्ध के लिए तय्यार होगया ॥ २७ ॥

अ० १६ (व० १६३-१७३) रात्रि युद्ध

मूल—ततः सर्वाणि सैन्यानि हतशिष्टानि यानि वै। सेनागोप्तृनथादिश्य पुनर्व्यूहमकल्पयत ॥ १ ॥ द्रोणः पुरस्ताज्जघने तु शल्यस्तथा द्रौणिः कृतवर्मा सौबलश्च । स्वयं तु सर्वाणि बलानि राजन् राजाभ्ययाद्गोपयन्वै निशायां ॥ २ ॥ क्षणेन सर्वे विहिताः प्रदीपा व्यादीपयन्तो ध्वजिनीं तवाशु । रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा मध्यं गतः सूर्य इवांशुमाली ॥ ३ ॥ तत्संप्रदीप्तं बलमप्रमदीयं निशाम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव । सर्वेषु सैन्येषु पदातिसंघानचोदयंस्तेपि चक्रुः प्रदीपान् ॥ ४ ॥ प्रकाशिते तदा लोके रजसा तमसा वृते । समाजग्मुरथो वीराः परस्परवधैषिणः ॥५॥ असज्जन्त ततो वीरा वीरेष्वेव पृथक् पृथक् ।नागा नागैः समाजग्मुस्तुरगा हयसादिभिः॥ ६ ॥रथा रथवरैरेवं समाजग्मुर्मुदायुताः। तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे तव पुत्रस्य शासनात ॥ ७ ॥ ततः प्रववृते युद्धं रात्रौ भरतसत्तम। उभयोः सेनयोर्घोरं परस्परजिगीषया ॥८॥

जित्वा रथ सहस्राणि तावकानां महारथाः।सिंहनादरवांश्चक्रुः पाण्डवा जितकाशिनः ॥ ९ ॥ विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं महात्मभिः । क्रोधेन महताऽऽविष्टः पुत्रस्तव विशांपते ॥ १० ॥ अभ्येत्य सहसा कर्णं द्रोणं च जयतां वरं। अमर्षवशमापन्नो वाक्यज्ञो वाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥ भवद्भ्यामिह संग्रामः क्रुद्धाभ्यां संप्रवर्तितः । आहवे निहतं दृष्ट्वा सैन्धवं सव्यसाचिना ॥ १२ ॥ निहन्यमानां पाण्डूनां बलेन मम वाहिनीं । भूत्वा तद्विजये शक्तावशक्ताविव पश्यतः ॥ १३ ॥ यदि नाहं परित्याज्यो भवद्भ्यां पुरुषर्षभौ । युध्यतामनुरूपेण विक्रमेण सुविक्रमौ ॥ १४ ॥ वाक्प्रतोदेन तौ वीरौ प्रणुन्नौ तनयेन ते । प्रावर्तयेतां संग्रामं घट्टिताविव पन्नगौ ॥ १५ ॥

अर्थ—तब मरने से बची सारी सेनाओं के रक्षकों को आदेश दे कर फिर व्यूह रचा ॥ १ ॥ व्यूह के आगे द्रोण मध्य में शल्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और शकुनि, और राजा दुर्योधन स्वयं सारी सेनाओं की रक्षा करते हुए शत्रु के अभिमुख गए ॥ २ ॥ क्षण भर में प्रदीप तय्यार होगए, जिन्होंने तेरी सारी सेना को प्रकाशित किया,उन सब के मध्य में सुवर्णी कवच पहने हुए द्रोण किरणों की माला वाले सूर्य की भांति चमक रहे थे॥३॥ हमारी सेना को प्रकाशित हुआ देख कर पाण्डवों ने भी तुर्त पैदल दलों को आज्ञा दी, उन्हों ने भी अपनी सारी सेनाओं में प्रदीप जला दिये ॥ ४ ॥ पहले धूल और अन्धकार से युक्त प्रदेश जब प्रकाश से युक्त होगया,तब एक दूसरे को मारने के निमित्त आ जुटे॥५॥ तेरे पुत्र की आज्ञा से उस भयंकर रात्रि युद्ध में सब वीर हर्षित हुए अलग २ वीरों के साथ जुटे, हाथी सवार हाथी सवारों के,

घुड़सवार घुड़सवारों और रथी रथियों के साथ जुटे॥६–७॥ तब हे भरतवर एक दूसरे पर विजय पाने की इच्छा से दोनों सेनाओं का रात्रि के समय घोर युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ ८ ॥ आप के सहस्रों महारथियों को जीत कर जोश से फूले हुए पाण्डव सिंहनाद करने लगे ॥ ९ ॥ उन महात्माओं से मार खा २ कर भागती हुई अपनी सेना को देख कर बड़े क्रोध से भरा हुआ तुम्हारा पुत्र (दुर्योधन) झट पट कर्ण और विजयिवर द्रोण के निकट क्रुद्ध हो यह वाक्य बोला ॥ १०—११ ॥ अर्जुन से मारे गए जयद्रथ को देख कर आप दोनों ने क्रुद्ध हो कर यह रात्रि संग्राम प्रवृत्त किया है॥१२॥ अब पाण्डवों से मारी जाती हुई मेरी सेना को, तुम दोनों उन के जीतने में समर्थ हो कर असमर्थ की भांति क्यों देख रहे हो॥१३॥ हे पुरुषर्षभो यदि मैं आप से त्यागा जाने योग्य नहीं,तो हे अच्छे विक्रम वालो अपने विक्रम के योग्य युद्ध करो॥ १४ ॥ तुम्हारे पुत्र से वाणी के चाबुक द्वारा प्रेरे हुए उन दोनों ने छड़ी मारे हुए सांपों की भांति संग्राम प्रवृत्त किया ॥ १५ ॥

मूल—द्रोणेन [illegible]नां पञ्चालानां विशांपते । शुश्रुवे तुमुलः शब्दः क्रोशतामितरेतरं ॥ १६ ॥ सा तथा पाण्डवी सेना पीड्यमाना महात्मना । निशि संप्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥ १७ ॥ ततः कर्णो रणे दृष्ट्वा पार्षतं परवीरहा । आजघानोरसि शरैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः॥ १८ ॥ प्रतिविव्याध तं तूर्णं धृष्टद्युम्नोऽपि मारिष। तावन्योऽन्यं शरैः संख्ये विव्यधाते परस्परं॥१९॥ ततः पञ्चालमुख्यस्य धृष्टद्युम्नस्य संयुगे । सारथिं चतुरश्चाश्वान् कर्णो विव्याध सायकैः ॥ २० ॥ कार्मुकं प्रवरं चापि प्रचिच्छेद शितैः शरैः । सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥२१॥धृष्ट-

द्युम्नस्तु विरथो हताश्वो हतसारथिः । गृहीत्वा परिघं घोरं कर्ण-स्याश्वानपीपिषत् ॥ २२ ॥ विद्धश्च बहुभिस्तेन शरैराशीविषो-पमैः । ततो युधिष्ठिरानीकं पद्भ्यामेवान्वपद्यत ॥ २३ ॥ आरु-रोह रथं चापि सहदेवस्य मारिष । प्रयातुकामः कर्णाय वारितो धर्मसूनुना ॥ २४ ॥ लब्धलक्षस्तु राधेयः पञ्चालानां महारथान्। अभ्यपीडयदायस्तः शरैर्मेघ इवाचलं ॥ २५ ॥ पतितास्तुरगेभ्यश्च गजेभ्यश्च महीतले । रथेभ्यश्च नरास्तूर्णमदृश्यन्त ततस्ततः ॥२६॥ ते वध्यमानाः समरे पञ्चालाः सृंजयैः सह । तृणप्रस्पन्दनाच्चापि सूतपुत्रं स्म मेनिरे ॥ २७ ॥ अपि स्वं समरे योधं धावमानं विचे-तसं । कर्णमेवाभ्यमन्यन्त ततो भीता द्रवन्ति ते ॥ २८ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् । पश्य कर्णं महेष्वासं क्षपयिष्यति नो ध्रुवं ॥ २९ ॥ एवमुक्तो महाराज पार्थः कृष्ण-मब्रवीत् । भीतः कुन्तीसुतो राजा राधेयस्याद्य विक्रमात्॥३०॥ स भवांस्तत्र यात्वाशु यत्र कर्णो महारथः । अहमेनं हनिष्यामि मा वैष मधुसूदन ॥ ३१ ॥ वासुदेव उवाच—न तु तावदहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ । घटोत्कचस्तु राधेयं प्रत्युद्यातु महाबलः॥३२॥ ततस्तं मेघसंकाशं दीप्तास्यं दीप्तकुण्डलं । अभ्यभाषत हैडिंबिं दाशार्हः प्रहसन्निव॥ ३३ ॥ घटोत्कच विजानीहि यत्त्वा वक्ष्यामि पुत्रक । प्राप्तो विक्रमकालोऽयं तव नान्यस्य कस्यचित् ॥३४॥ पश्य कर्णेन हैडिम्बे पाण्डवानामनीकिनी । काल्यमाना यथा गावः पालेन रणमूर्धनि॥ ३५ ॥ निशीथे सूतपुत्रेण शरवर्षेण पीडिताः। एते द्रवन्ति पाञ्चालाः सिंहेनेवार्दिता मृगाः ॥ ३६ ॥ एतस्यैवं प्रवृद्धस्य सूतपुत्रस्य संयुगे । निषद्धा विद्यते नान्यस्त्वामृते भीम-विक्रम ॥ ३७ ॥ स त्वं कुरु महाबाहो कर्मयुक्तमिहात्मनः । मातु-

लानां पितॄणां च तेजसोऽस्त्रबलस्य च ॥ ३८ ॥ जहि कर्णं महेष्वासं निशीथे मायया रणे। पार्था द्रोणं वधिष्यन्ति धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ३९ ॥ घटोत्कच उवाच—अद्य दास्यामि संग्रामं सूतपुत्राय सं निशि । यं जनाः संप्रवक्ष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति॥४०॥ एवमुक्त्वा महाबाहुर्हैडिम्बिः परवीरहा । अभ्ययात्तुमुले कर्णं तव सैन्यं विभीषयन्॥ ४१ ॥ तमापतन्तं संक्रुद्धं दीप्तास्यं दीप्तमूर्धजं। प्रहसन् पुरुषव्याघ्रः प्रतिजग्राह सूतजः ॥ ४२ ॥

अर्थ—हे राजन् ! द्रोण से मारे जाते एक दूसरे को पुकारते हुए पञ्चालों का तुमुल शब्द सुनाई देने लगा ॥ १६ ॥ द्रोण से पीड़ित हुई पाण्डवी सेना के लाखों पुरुष प्रदीप छोड़ कर भागने लगे ॥ १७ ॥ तब शत्रुवीरों के मारने वाले कर्ण ने रण में धृष्टद्युम्न को देख कर दस मर्म भेदी बाण उस की छाती पर मारे ॥ १८ ॥ धृष्टद्युम्न ने भी उस को विद्ध किया, वह दोनों रण में एक दूसरे को विद्ध करने लगे ॥ १९ ॥ अनन्तर रण में कर्ण ने पञ्चालमुख्य धृष्टद्युम्न के सारथि और चारों घोड़ों को बाणों से विद्ध किया ॥ २० ॥ और तीखे बाणों से उस के धनुष को भी काट दिया, और भाले से इस के सारथि को रथ की बैठक से नीचे गिराया ॥ २१ ॥ रथ घोड़े और सारथि से हीन हुए धृष्टद्युम्न ने घोर परिघ उठा कर कर्ण के घोड़ों को पीस डाला ॥ २२ ॥ पर सर्प तुल्य बहुत से बाणों से विद्ध हो कर पैदल ही झट युधिष्ठिर की सेना में भाग गया ॥ २३ ॥ और सहदेव के रथ पर चढ़ कर कर्ण की ओर जाने को फिर तय्यार हुआ, तो युधिष्ठिर ने उसे रोक दिया ॥ २४ ॥ विजय पाचुका कर्ण परिश्रम करता हुआ बाणों से पञ्चालों के महारथियों के

पीड़ने लगा, जैसे मेघ पर्वत को ॥ २५ ॥ शीघ्र ही घोड़ों से हाथियों से और रथों से गिरे शूरवीर यहां वहां दीखने लगे॥२६॥ संग्राम में मारे जाते हुए पञ्चाल और सृञ्जय तृण के हिलने से भी कर्ण को आया मानने लगे॥ २७ ॥ और अपने ही घबराए हुए भागते योधा को भी कर्ण ही समझ उस से डर कर भागने लगे ॥ २८ ॥ तब राजा युधिष्ठिर कृष्ण से यह वचन बोले, महाधनुर्धारी कर्ण को देखो, निःसंदेह हमारी सेना को मार डालेगा ॥ २९ ॥ ऐसा कहने पर हे महाराज अर्जुन कृष्ण से बोले । हे कृष्ण ! आज कर्ण के पराक्रम को देख राजा युधिष्ठिर भयभीत होरहे हैं ॥ ३० ॥ सो आप शीघ्र वहां चलें, जहां महारथ कर्ण हैं, अब हे मधुसूदन वा यह मुझे मारेगा, वा मैं इस को मारूंगा ॥ ३१ ॥ कृष्ण बोले—हे नरव्याघ्र मैं अभी तेरा समय आया नहीं समझता हूं,अभी महाबली घटोत्कच कर्ण के सामने जाए॥३२॥ तब मेघ तुल्य प्रकाशमान चमकते मुख वाले और चमकते कुण्डलों वाले घटोत्कच से कृष्ण हंस कर बोले ॥ ३३ ॥ घटोत्कच हे बेटा जो मैं तुझे कहता हूं, उस पर ध्यान दो, यह तुम्हारे विक्रम दिखलाने का समय आया है, किसी और का नहीं ॥ ३४ ॥ देखो हे घटोत्कच कर्ण रण में पाण्डवों की सेना को गौओं को ग्वाले की भांति हांक रहा है ॥ ३५ ॥ इस आधीरात के समय कर्ण की बाणवर्षा से पीड़ित हुए यह पञ्चाल शेर से पीड़ित हुए मृगों की भांति भाग रहे हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार ऊंचे आए इस कर्ण का रोकने वाला तुम्हारे विना हे भयंकर पराक्रम वाले और कोई नहीं है ॥ ३७ ॥ सो तुम हे महाबाहो अपने मातृकुल पितृकुल और तेज और अस्त्रबल के योग्य काम कर दिखलाओ ॥ ३८ ॥

इस आधीरात के समय महा धनुर्धारी कर्ण को माया से मारो, पाण्डव धृष्टद्युम्न को आगे करके द्रोण को मारेंगे ॥ ३९॥ घटोत्कच बोला—बहुत अच्छा आज इस रात में कर्ण को वह युद्ध दूंगा, जिस को लोग कहा करेंगे, जब तक भूमि रहेगी॥४०॥यह कह कर शत्रुवीरों के मारने वाला महाबाहु घटोत्कच आप की सेना को भयभीत करता हुआ कर्ण की ओर गया ॥४१॥ क्रुद्ध हो कर आते हुए उस चमकते मुख और चमकते बालों वाले को पुरुषवर कर्ण ने हंस कर स्वीकार किया ॥ ४२ ॥

अ० १७ (व० १७४-१७९) घटोत्कच वध

मूल—अलम्बुषं च कर्णं च कुरुसैन्यं च दुस्तरं। हैडिम्बिः प्रममाथैको महावातोऽम्बुदानिव ॥ १ ॥ भृशं [illegible]ध्येतामल-म्बुषघटोत्कचौ । परिघैश्च [illegible]श्च प्रासमुद्गरपट्टिशैः ॥२॥ततो घटोत्कचो राजन् [illegible] च । उद्यम्य न्यवधीद्भूमौ मयं [illegible] ॥ ३ ॥ [illegible] घटोत्कचः खड्गमुद्धृत्याद्भुत दर्शनं। रौद्रस्य का[illegible] शिरश्चकर्तामितविक्रमः ॥ ४ ॥ ततः कर्णोऽ-भ्ययाद्[illegible]क्रात् । स सन्निपातस्तुमुलस्तयोरासी-द्विशांपते ॥ ५ ॥ तौ [illegible]ग्रविभिन्नांगौ निर्भिदन्तौ परस्परं नाक-म्पयेतामन्योन्यं [illegible] महाद्युती ॥ ६ ॥ दुर्योधनस्तु संप्रेक्ष्य कर्णमार्त्तिं [illegible] । अलायुधं राक्षसेन्द्रं समाहूयेदमब्रवीत ॥७॥ पश्यैतान् पार्थिवान् शूरान् [illegible] भैमसेनिना । तवैष भागः समरे तं विक्रम्य निबर्हय ॥ ८ ॥ तथेत्युक्त्वा [illegible]र्घटोत्कच-मुपाद्रवत । तयोः समभवद् युद्धं क्रुद्धयो राक्षसेन्द्रयोः ॥९॥अथा-भिपत्य वेगेन समुद्भ्राम्य च राक्षसं । बलेनाक्षिप्य हैडिम्बिश्च-

कर्तास्य शिरो महत्॥ १० ॥ निहत्यालायुधं रक्षः प्रहृष्टात्मा घ-टोत्कचः। ननाद विविधान् नादान् वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥११ ॥

अर्थ—घटोत्कच अकेला अलंबुष कर्ण और दुस्तर कुरुसेना को मेघों को आंधी की भांति छिन्न भिन्न करने लगा॥१॥ अलं-बुष और घटोत्कच ने परिघ, गदा, प्रास, मुद्गर और पट्टिशों से देर तक आश्चर्य युद्ध किया ॥ २ ॥अनन्तर हे राजन् घटोत्कच बाज की न्याई झपटा, और उस को संग्राम में उठा कर भूमि पर दे पटका, जैसे विष्णु ने मय को पटका था॥ ३ ॥अनन्तर घटो-त्कच ने अद्भुत दर्शन वाले खड्ग को निकाल कर उस भयंकर राक्षस के धड़ से सिर को काट गिराया ॥ ४ ॥ तब निकट आ बाण चलाते हुए घटोत्कच के सम्मुख कर्ण बाण चलाता हुआ आया, हे राजन् उन दोनों का वह मेल तुमुल हुआ ॥५॥ बाणों से छिदे अंगों वाले एक दूसरे को भेदते हुए यत्न करते हुए वह महा तेजस्वी एक दूसरे को कंपा न सके॥ ६ ॥ दुर्योधन ने कर्ण को बड़ी विपत्ति में फंसा देख कर राक्षसेन्द्र अलायुध को बुला कर कहा ॥ ७ ॥ घटोत्कच से मारे गए इन शूरवीर राजाओं को देखो, हे वीर संग्राम में यह तेरा भाग है, अपना पराक्रम दिखलाओ घटोत्कच को मारो ॥ ८ ॥ तथास्तु कह कर वह म-हाबाहु घटोत्कच की ओर दौड़ कर गया तब क्रुद्ध हुए उन राक्ष-सेन्द्रों का भारी युद्ध होने लगा ॥ ९ ॥ अनन्तर घटोत्कच वेग से उस राक्षस पर झपटा, उस को उठा कर घुमाया और बल से फैंक कर उस के बड़े सिर को काट गिराया ॥ १० ॥ अलायुध को मार कर हर्ष से भरे घटोत्कच ने तेरी सेना के आगे अनेक सिंहनाद किये ॥ ११ ॥

मूल—आस्थाय तं काञ्चनरत्नचित्रं रथोत्तमं सिंहवत्सं ननाद । वैकर्तनं कर्णमुपेत्य चापि विव्याध वज्रप्रतिमैः पृषत्कैः॥१२॥ समाहिता[illegible]कैः । तयोर्हि वीरोत्तमयोर्न कश्चिद्ददर्श तस्मिन्समरे विशेषं ॥ १३ ॥ घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयत नृप। ततः प्र[illegible]॥१४॥ तेनास्त्रेणावधीत् तस्य रथं सहयसारथिं । विरथश्चापि हैडिम्बिः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १५ ॥ ततः शराः प्रापतन्रुक्मपुंखाः शक्त्यृष्टिप्रासमुसलान्यायुधानि । परश्वधास्तैलधौताश्च खड्गाः प्रदीप्ताग्रास्तोमराः पट्टिशाश्च ॥ १६ ॥ शराहतानां पततां हयानां वज्राहतानां च तथा गजानां । शिला हतानां च महारथानां महान्निनादः पततां बभूव ॥ १७ ॥ दौर्योधनं वै बलमार्तरूपमावर्तमानं ददृशे भ्रमत्तत् । ह्रीमान् कुर्वन् दुष्करं चार्यकर्म नैवामुह्यत्संयुगे सूतपुत्रः ॥ १८ ॥ स वध्यमानो रक्षसा वै निशीथे दृष्ट्वा राजंस्त्रास्यमानं बलं च। महच्छ्रुत्वा निनदं कौरवाणां मतिं दध्रे शक्तिमोक्षाय कर्णः ॥ १९ ॥ यासौ राजन् निहिता वर्षपूगान् वधायाजौ सत्कृता फाल्गुनस्य । यां वै प्रादात् सूतपुत्राय शक्रः शक्तिं श्रेष्ठां कुण्डलाभ्यां निमाय ॥ २० ॥ तां वै शक्तिं लेलिहानां प्रदीप्तां पाशैर्युक्तामन्तकस्येव जिह्वां । मृत्योः स्वसारं ज्वलितामिवोल्कां वैकर्तनः प्राहिणोद्राक्षसाय ॥ २१ ॥ सा तां मायां भस्म कृत्वा ज्वलन्ती भित्वा गाढं हृदयं राक्षसस्य । ऊर्ध्वं ययौ दीप्यमाना निशायां नक्षत्राणामन्तराण्याविवेश ॥ २२ ॥ ततोऽन्तरिक्षादपतद्गतासुः सराक्षसेन्द्रो भुवि भिन्नदेहः। हतोप्येवं तव सैन्यैकदेशमपोथयत् स्वेन देहेन राजन् ॥ २३ ॥ ततः कर्णः कुरुभिः

पूज्यमानो यथा शक्रो वृत्रवधे मरुद्भिः । अन्वारूढस्तव पुत्रस्य यानं हृष्टश्चापि प्राविशत् तत्स्वसैन्यं ॥ २४ ॥

अर्थ--सोने और रत्नों से चितरे हुए उस उत्तम रथ पर चढ़ कर घटोत्कच सिंहवत् गर्जा, और कर्ण के निकट पहुंच कर वज्र तुल्य बाणों से उसे बींधने लगा ॥ १२ ॥ अतुल्य बलवाले वह दोनों सावधान होकर उत्तम अस्त्रों से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे, उन दोनों वीरवरों में से उस संग्राम में कोई किसी को अधिक नहीं जान सका॥१३॥हे राजन् जब कर्ण घटोत्कच से बढ़ न सका,तब उस अस्त्रवेत्ता ने उत्तम अस्त्र प्रकट किया॥१४॥ उस अस्त्र से उस ने उस के रथ घोड़े और सारथि को मार डाला, रथहीन हुआ घटोत्कच झट छिप गया ॥ १५ ॥ तब (अन्तरिक्ष से) सोने की नोकों वाले बाण, और शक्ति ऋष्टिप्रास मूसल, परश्वध, तेल से धोए हुए खड्ग और चमकती हुई नोकों वाले तोमर और पट्टिश गिरने लगे ॥ १६ ॥ बाणों से मारे जा कर गिरते घोड़ों का, वज्रों से मारे जा कर गिरते हाथियों का, और सिलाओं से मारे जाकर गिरते हुए महारथियों का भारी शोर होने लगा ॥ १७ ॥ दुर्योधन की सेना पीड़ित हो कर इधर उधर दौड़ती दीखने लगी, किन्तु ह्रीमान् कर्ण दुष्कर आर्यव्रत को पालता हुआ उस संग्राम में नहीं घबराया ॥ १८ ॥ आधी रात के समय राक्षस से पीड़ित हुए कर्ण ने सेना को भयभीत हुआ देख कर और कौरवों की चिल्लाहट को सुन कर उस शक्ति के चलाने का निश्चय किया ॥ १९ ॥ जो हे राजन् कई वर्षों से संग्राम में अर्जुन को मारने के लिए आदर से रखी थी, और जो कुण्डलों के पलटे में उस को इन्द्र ने दी थी ॥ २० ॥ प्राणों के

चाटनेवाली पाशों से युक्त काल की जिह्वा की भांति और यम की बहिन की भांति वर्तमान उस शक्ति को कर्ण ने राक्षस की ओर चलाया ॥ २१ ॥ जलती हुई वह शक्ति उस माया को भस्म कर के, राक्षस के हृदय को गाढ़ भेद कर आधी रात के समय चमकती हुई ऊपर आकाश में चढ़ कर तारावत् हो गई।२२। तब वह राक्षसेन्द्र मर कर पृथिवी पर आ गिरा, और मर कर भी हे राजन् उस ने आप की सेना में से कइयों को पीस डाला॥२३॥ तब वृत्रवध में देवताओं से इन्द्र की भांति कौरवों से पूजित हुआ कर्ण तेरे पुत्र के रथ पर चढ़ कर प्रसन्न हुआ अपनी सेना में प्रविष्ट हुआ ॥ २४ ॥

अ० १८ (व० १८०-१८४) रात्रि युद्ध

मूल—हैडिंबि निहतं दृष्ट्वा विशीर्णमिव पर्वतं।बभूवुःपाण्डवाः सर्वे शोकबाष्पाकुलेक्षणः ॥ १ ॥ वासुदेवस्तु हर्षेण महताभिपरिप्लुतः । ननाद सिंहनादं वै पर्यष्वजत फाल्गुनं ॥ २ ॥ महृष्टमनसं ज्ञात्वा वासुदेवं महाबलः ।अर्जुनोऽथाब्रवीद्राजन् नाति हृष्टमना इव ॥ ३ ॥ अतिहर्षोऽयमस्थाने तवाद्य मधुसूदन । यद्येतन्न रहस्यं ते वक्तुमर्हस्यरिन्दम ॥ ४ ॥ वासुदेव उवाच—अतिहर्षमिमं प्राप्तं शृणु मे त्वं धनञ्जय । अतीव मनसः सद्यः प्रसादकरमुत्तमं ॥ ५ ॥ शक्तिं घटोत्कचेनेमां व्यंसयित्वा महाद्युते । कर्णं निहतमेवाजौ विद्धि सद्यो धनञ्जय ॥ ६ ॥ शक्तिहस्तं पुनः कर्णं को लोकेऽस्ति पुमानिह । य एनमभितास्तिष्ठेत कार्तिकेयमिवाहवे ॥७॥ दिष्ट्या सा व्यंसिता शक्तिरमोघास्य घटोत्कचे॥ ८ ॥ एवं गतोपि शक्योयं हन्तुं नान्येन केनचित्। ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र शपे सत्येन

को स्वीकार किया ॥ १४ ॥इधर राजा दुर्योधन द्रोण के बचाने के लिए बड़े क्रुद्ध हो कर सारे उद्योग से पाण्डवों की ओर दौड़े ॥ १५ ॥ तब परस्पर गर्जना करते हुए पाण्डवों और कौरवों का युद्ध प्रवृत्त हुआ, पर उन के सैनिक और वाहन थके हुए थे॥१६॥ हे महाराज निद्रा से अन्ध हुए और थके हुए वह महारथी युद्ध में कोई काम पूरा निश्चित नहीं कर सकते थे ॥ १७ ॥ वह त्रि-यामा घोर भयानक रात्रि उन के प्राणों के हरने वाली सहस्र पहरों वाली सी हो गई ॥ १८ ॥ उस समय निबाहते हुए और विशेषतः ह्रीवाले हुए अपने कर्तव्य पर दृष्टि रखते हुए अपनी सेनाओं को छोड़ते नहीं थे ॥ १९ ॥ पर बहुत से सैनिक निद्रा-न्ध हुए नाना शब्द करते हुए रण में परायों को और साथ ही अपनों को भी मारने लगे ॥ २० ॥ उन की ऐसी चेष्टा को देख कर अर्जुन उच्च ध्वनि से दिशाओं को गुंजाते हुए यह वचन बोले ॥ २१ ॥ आप सब अन्धकार और धूल से भरे रणक्षेत्र में वाहनों समेत थक गए हैं और निद्रा से अन्ध हो रहे हैं ॥२२॥ इस लिए हे सैनिको उचित मानते हो, तो अब बन्द कर दो, और यहां ही रणभूमि में थोड़ी देर नींद ले लो ॥ २३ ॥ हे भारत उस के इस हितवचन को सुन कर थकी हुई सारी सेनाएं कुछ देर के लिए सो गईं ॥ २४ ॥ कई घोड़ों की पीठ पर, कई रथों की बैठक में कई हाथियों के कन्धों पर और कई पृथिवी पर सो गए ॥२५॥ वह सेनादल निद्रा में मग्न इस प्रकार अचेत सोया, मानो चित्र-कारों ने पट पर चित्र खींचा हो ॥ २७ ॥

अ० १९ (व०१८४-१८५) रात्रि युद्ध

मूल—ततः कुमुदनाथेन कामिनी गंडपाण्डुना। नेत्रानन्देन

चानघ ॥ ९ ॥ ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः । रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात्कर्णो वृषः स्मृतः ॥ १० ॥ युद्धशौण्डो महाबाहुर्नित्योद्यतशरासनः।विमर्दान् रथशार्दूलान् कुरुते रण मूर्धनि ११

अर्थ—फिसले पर्वत की भांति घटोत्कच को मरा देख कर शोक से सारे पाण्डवों के नेत्र आंसुओं से भर गए ॥ १ ॥ किन्तु कृष्णजी ने बड़े हर्ष से सिंहनाद किया, और अर्जुन को गले लगाया ॥ २ ॥ महाबली अर्जुन कृष्ण को प्रसन्न मन देख कर स्वयं दीन से हो कर बोले ॥ ३ ॥ हे मधुसूदन ! आप का यह आज हर्ष अस्थान में है,यदि यह रहस्य न हो,तो हे शत्रुदमन ! बतलाने की कृपा कीजिये ॥ ४ ॥ कृष्ण बोले-सुनो हे अर्जुन जिस कारण से मुझे यह बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ है, जो मन को बहुत बड़ा आनन्ददायक है ॥ ५ ॥ हे महातेजस्वी इस शक्ति को घटोत्कच के द्वारा क्षीण कर के अब कर्ण को युद्ध में मरा ही जान ॥ ६ ॥ लोक में ऐसा कौन पुरुष है,जो हाथ में शक्ति लिये कर्ण के सामने रण में खड़ा हो सके, जैसे कार्तिकेय के ॥७॥ भाग्य से वह अमोघ शक्ति घटोत्कच पर क्षीण होगई है ॥ ८ ॥ इस अवस्था में भी यह तुम्हारे बिना किसी दूसरे से नहीं मारा जा सकता,हे निष्पाप मैं सत्य की शपथ करता हूं ॥ ९ ॥ क्योंकि(एक ओर तो) ब्रह्मण्य, सत्यवादी, तपस्वी, व्रतों का पालक,शत्रुओं पर भी दयावान कर्ण धर्म का रूप है ॥ १० ॥ (दूसरी ओर) युद्ध कुशल, महाबाहु सदा उठाए धनुष बाण वाला वीर महारथियों को रणक्षेत्र में मथ डालता है ॥ ११ ॥

मूल—घटोत्कचे तु निहते सूतपुत्रेण तां निशां।दुःखामर्षवशं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १२ ॥ धृष्टद्युम्नमुवाचेदं कुम्भ-

योनिं निवारय ॥ १३ ॥ आगच्छतस्तान् सहसा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् । न्यषेधयत् समरे द्रोणः शस्त्रभृतांवरः ॥ १४ ॥ ततो दुर्योधनो राजा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् । अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धः इच्छन्द्रोणस्य जीवितं ॥ १५ ॥ ततः प्रववृते युद्धं श्रान्तवाहनसैनिकं । पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरं ॥ १६ ॥ निन्द्रान्धास्ते महाराज परिश्रान्ताश्च संयुगे । नाभ्यपद्यन्त समरे कांचिच्चेष्टां महारथाः ॥ १७ ॥ त्रियामा रजनी चैषा घोररूपा भयानका । सहस्रयामप्रतिमा बभूव प्राणहारिणी ॥ १८ ॥ ते तदा पारयन्तश्च ह्रीमन्तश्च विशेषतः । स्वधर्ममनुपश्यन्तो न जहुः स्वामनीकिनीं ॥ १९ ॥ आत्मानं समरे जघ्नुः स्वानेव च परानपि । नानावाचो विमुञ्चन्तो निद्रान्धास्ते महारणे ॥ २० ॥ तेषामेतादृशीं चेष्टां विज्ञाय पुरुषर्षभः । उवाच वाक्यं बीभत्सुरुच्चैः संनादयन् दिशः ॥ २१ ॥ श्रान्ता भवन्तो निद्रान्धाः सर्वएव सवाहनाः । तमसा चावृते सैन्ये रजसा बहुलेन च ॥ २२ ॥ ते यूयं यदि मन्यध्वमुपारमत सैनिकाः । निमीलयत चात्रैव रणभूमौ मुहूर्तकं ॥ २३ ॥ तत्संपूज्य वचोऽक्रूरं सर्वसैन्यानि भारत । मुहूर्तमस्वपन् राजन् श्रान्तानि भरतर्षभ ॥ २४ ॥ अश्वपृष्ठेषु चाप्यन्ये रथनीडेषु चापरे । गजस्कन्धगताश्चान्ये शेरते चापरे क्षितौ ॥ २५ ॥ तद्बलं निद्रया मग्नमबोधं भरतर्षभ । कुशलैः शिल्पिभिर्न्यस्तं पटे चित्रमिवाभूतम् ॥ २६ ॥

अर्थ—कर्ण ने जब घटोत्कच को मार डाला, तो दुःख और क्रोध के वश हुए राजा युधिष्ठिर उस रात को धृष्टद्युम्न से यह बोले, कि द्रोणाचार्य को रोको ॥ १२—१३ ॥ तत्क्षण पूर्ण उद्योग के साथ आते पाण्डवों को शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोण ने उन

को स्वीकार किया ॥ १४ ॥इधर राजा दुर्योधन द्रोण के बचाने के लिए बड़े क्रुद्ध हो कर सारे उद्योग से पाण्डवों की ओर दौड़े ॥ १५ ॥ तब परस्पर गर्जना करते हुए पाण्डवों और कौरवों का युद्ध प्रवृत्त हुआ, पर उन के सैनिक और वाहन थके हुए थे॥१६॥ हे महाराज निद्रा से अन्ध हुए और थके हुए वह महारथी युद्ध में कोई काम पूरा निश्चित नहीं कर सकते थे ॥ १७ ॥ वह त्रियामा घोर भयानक रात्रि उन के प्राणों के हरने वाली सहस्र पहरों वाली सी हो गई ॥ १८ ॥ उस समय निबाहते हुए और विशेषतः ह्रीवाले हुए अपने कर्तव्य पर दृष्टि रखते हुए अपनी सेनाओं को छोड़ते नहीं थे ॥ १९ ॥ पर बहुत से सैनिक निद्रान्ध हुए नाना शब्द करते हुए रण में परायों को और साथ ही अपनों को भी मारने लगे ॥ २० ॥ उन की ऐसी चेष्टा को देख कर अर्जुन उच्च ध्वनि से दिशाओं को गुंजाते हुए यह वचन बोले ॥ २१ ॥ आप सब अन्धकार और धूल से भरे रणक्षेत्र में वाहनों समेत थक गए हैं और निद्रा से अन्ध हो रहे हैं ॥२२॥ इस लिए हे सैनिको उचित मानते हो, तो अब बन्द कर दो, और यहां ही रणभूमि में थोड़ी देर नींद ले लो ॥ २३ ॥ हे भारत उस के इस हितवचन को सुन कर थकी हुई सारी सेनाएं कुछ देर के लिए सो गईं ॥ २४ ॥ कई घोड़ों की पीठ पर, कई रथों की बैठक में कई हाथियों के कन्धों पर और कई पृथिवी पर सो गए ॥२५॥ वह सेनादल निद्रा में मग्न इस प्रकार अचेत सोया, मानो चित्रकारों ने पट पर चित्र खींचा हो ॥ २७ ॥

अ० १९ (व०१८४-१८५) रात्रि युद्ध

मूल—ततः कुमुदनाथेन कामिनी गंडपाण्डुना। नेत्रानन्देन

चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलंकृता ॥ १ ॥ ततो मुहूर्ताद्भुवनं ज्योतिर्भुत-मिवाभवत् । अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाशु तमस्तथा ॥२ ॥बोध्य-मानं तु तत्सैन्यं राजंश्चन्द्रस्य रश्मिभिः । बुबुधे शतपत्राणां वनं सूर्यांशुभिर्यथा ॥ ३ ॥ यथा चन्द्रोदयोद्धूतः क्षुभितः सागरोऽभ-वत् । तथा चन्द्रोदयोद्धूतः स बभूव बलार्णवः ॥ ४ ॥ ततः प्रव-वृते युद्धं पुनरेव विशांपते । लोके लोकविनाशाय परं लोकमभी-प्सतां ॥ ५ ॥ ततो दुर्योधनो द्रोणमभिगम्याब्रवीदिदं । अमर्षवश-मापन्नो जनयन् हर्षतेजसी ॥ ६ ॥ न मर्षणीयाः संग्रामे विश्रमन्तः श्रमान्विताः । सपत्ना ग्लानमनसो लब्धलक्षा विशेषतः ॥७॥ यत्तु मर्षितमस्माभिर्भवतः प्रियकाम्यया। त एते परिविश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः ॥ ८ ॥ न पाण्डवेयान वयं नान्ये लोके धनुर्धराः॥ यु-ध्यमानस्य ते तुल्याः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ९ ॥ स भवान्मर्ष-यत्येतांस्त्वत्तो भीतान् विशेषतः । शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य मम वा मन्दभाग्यतां॥ १० ॥ एवमुद्धर्षितो द्रोणः कोपितश्च सुतेन ते।सम-न्युरब्रवीद्राजन् दुर्योधनमिदं वचः ॥ ११ ॥ स्थविरः सन् परंश-क्त्या घटे दुर्योधनाहवे ॥ १२ ॥ निहत्य सर्वपञ्चालान् युद्धे कृ-त्वा पराक्रमं । विमोक्ष्ये कवचं राजन् सत्येनायुधमालभे ॥ १३ ॥ त्वं तु सर्वाभिशंकित्वात्तत्तद्वक्तुमिहेच्छसि । गच्छ त्वमपि कौन्तेय मात्मार्थे जहि माचिरं ॥ १४ ॥ त्वया कथितमत्यर्थं धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ॥ १५ ॥ अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे । पाण्डुपुत्रान् हनिष्यामः सहिताः समरे त्रयः॥ १६ ॥इति ते कत्थ-मानस्य श्रुतं संसदि संसदि । अनुतिष्ठ प्रतिज्ञां तां सत्यवाग्भव तैः सह ॥ १७ ॥ एष ते पाण्डवः शत्रुरविशंकोऽग्रतः स्थितः । क्षत्र-धर्ममवेक्षस्व श्लाघ्यस्तव वधो जयात् ॥ १८ ॥ दत्तं भुक्तमधीतं

च माप्तमैश्वर्य मीप्सितं । कृतकृत्योऽनृणश्चासि मा भैर्युध्यस्व पाण्डवं ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वा समरे द्रोणो न्यवर्तत यतः परो। द्वैधी कृत्य ततः सेनां युद्धं समभवत्तदा ॥ २० ॥ त्रिभागमात्र शेषायां रात्र्यां युद्धमवर्तत । कुरूणां पाण्डवानां च संहृष्टानां विशांपते ॥ २१ ॥

अर्थ—अनन्तर स्त्रियों के कपोल की भांति श्वेत,नेत्रों को आनन्द देने वाले कुमुदपति चन्द्र ने पूर्वदिशा अलंकृत की ॥१॥ तब अल्पकाल में सारे भुवन पर ज्योति फैल गई, और अज्ञान, अप्रकाश अन्धकार सारा दूर हो गया ॥ २ ॥ हे राजन् चन्द्र की रश्मियों से जगाई वह सेना इस प्रकार जाग पड़ी, जैसे सूर्य की किरणों से कमलवन खिलता है॥३॥ जैसे चन्द्रोदय से समुद्र में क्षोभ आता है, ऐसे ही चान्द्रोदय से सेना के समुद्र में क्षोभ उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ तब हे राजन् परलोक चाहने वालों का लोक नाश के लिए फिर युद्ध प्रवृत्त हुआ॥ ५ ॥ तब दुर्योधन द्रोण के पास जा कर हर्ष और क्रोध उत्पन्न कराता हुआ यह वचन बोला ॥ ६ ॥संग्राम में थके हुए शत्रुओं को विशेषतः जीत पा चुकों को विश्राम कर देना उचित नहीं था॥ ७ ॥जो हमने यह सह लिया है, यह आप के प्रिय की कामना से किया है, सो यह अब विश्राम कर के पाण्डव फिर अधिक बल वाले हो गए हैं ॥८॥ पर न पाण्डव,न हम, न और धनुर्धारी युद्ध करते हुए आप की बराबरी कर सकते हैं, यह मैं सत्य कहता हूं ॥ ९ ॥ पर आप इन के शिष्य होने का आदर कर के, वा मेरी मन्दभाग्यता से इन को सहारते हैं, विशेषतः जब डरे हुए हों ॥ १० ॥ इस प्रकार तुम्हारे पुत्र से उत्तेजित और क्षुब्ध किया द्रोण क्रोध पूर्वक दुर्यो-

धन से यह वचन बोले ॥ ११ ॥ हे दुर्योधन वृद्ध हो कर मैं युद्ध में पूरी शक्ति से चेष्टा कर रहा हूं ॥१२॥ हे राजन् सारे पञ्चालों को मार कर रण में ऐसा पराक्रम दिखला कर ही कवच उतारूंगा, सत्य से शस्त्र को छूता हूं॥ १३ ॥ तू सभी पर शंकित हो कर ऐसी २ बातें कहता है, तुम भी अर्जुन की ओर जाओ, अपने प्रयोजन के लिए उस को मारो, देर न लगाओ ॥ १४ ॥ धृतराष्ट्र के सामने तुम ने कई बार कहा है ॥ १५ ॥ हे तात! मैं कर्ण और भ्राता दुःशासन हम तीनों मिल कर संग्राम में पाण्डु-पुत्रों को मारेंगे ॥ १६ ॥ यह अपनी श्लाघा करते हुए तुम से मैंने हर एक सभा में सुना है, उस प्रतिज्ञा को कर दिखलाओ, उन के साथ सत्यवादी बनो ॥ १७ ॥ यह तुम्हारा शत्रु अर्जुन निःशंक हो कर तुम्हारे सामने खड़ा है, क्षत्रधर्म को देखो,संमुख लड़ कर तेरा वध विजय से बढ़ कर है ॥ १८ ॥ तुम ने दान दिये, खाया पिया, और मन माना ऐश्वर्य भोगा, अब कृतकृत्य हो अनृण हो, मत डरो, अर्जुन से युद्ध करो ॥ १९ ॥ यह कह कर द्रोण सेना के दो विभाग कर के उधर लौटे जिधर शत्रु थे, तब युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ २० ॥ छः घड़ी रात रहते हर्षित हुए कौरवों और पाण्डवों का फिर युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ २१ ॥

अ० २० (व० १८६–१९२) द्रोणाचार्य का वध

मूल—ततो विराटद्रुपदौ द्रोणं प्रति ययू रणे। द्रुपदस्य ततः पौत्रास्त्रय एव विशांपते ॥ १ ॥ चेदयश्च महेष्वासा द्रोणमेवाभ्ययुर्युधि ॥ २ ॥ तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां निशितैः शरैः । त्रिभिर्द्रोणोऽहरत्प्राणांस्ते हतान्यपतन् भुवि ॥ ३ ॥ ततो द्रोणोऽजयद्

युद्धे चेदिकेकयसृंजयान् । मात्स्यांश्चैव जिगायाशु भारद्वाजो महा-
रथान्॥ ४ ॥ ततस्तु द्रुपदः क्रोधाच्छरवर्षमवासृजत् । द्रोणं प्रति
महाराज विराटश्चैव संयुगे ॥ ५ ॥तच्छित्त्वेषुवर्षं तु द्रोणः क्षत्रिय-
मर्दनः । भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां चिच्छेद धनुषी तयोः ॥ ६ ॥
ततो द्रोणः सुपीताभ्यां भल्लाभ्यामरिमर्दनः । द्रुपदं च विराटं च
प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ७ ॥ द्रोणस्य कर्म तद् दृष्ट्वा कोपदुःखसम-
न्वितः । आयाद् द्रोणं महानीकः पाञ्चाल्यः परवीरहा ॥८॥पश्चा-
त्तास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन् पाण्डवैः सह । दुर्योधनश्च कर्णश्च शकु-
निश्चापि सौबलः ॥ ९ ॥ सोदर्याश्च यथा मुख्यास्तेऽरक्षन् द्रोण-
माहवे ॥ १० ॥ तथा संसक्तयुद्धं तदभवद् भृशदारुणं । अथ स-
न्ध्यागतः सूर्यः क्षणेन समपद्यत ॥ [illegible] तथैव महाराज दीक्षिता
रणमूर्धनि । नमस्कर्तुं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥ १२ ॥
छादिते तु सहस्रांशौ तमसाच्छन्न एव च । प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्ध-
मवर्तत ॥ १३ ॥

अर्थ—तब रण में विराट और द्रुपद द्रोण की ओर गए,
तिस पीछे द्रुपद के तीनों पोते, और महाधनुर्धारी चेदि भी द्रुपद
की ओर गए ॥२॥ द्रोण ने अपने तीखे बाणों से द्रुपद के तीनों
पोतों के प्राण हर लिये, वह मर कर भूमि पर गिर पड़े ॥ ३ ॥
अनन्तर द्रोण ने युद्ध में चेदि केकय सृंजय और मत्स्यों को जीता
॥ ४ ॥ तब हे महाराज क्रुद्ध हुए विराट और द्रुपद द्रोण पर
बाण बरसाने लगे ॥ ५ ॥ वीर के मारने वाले द्रोण ने उन के
बाणजाल को काट कर बड़े तीखे दो भालों से दोनों के धनुष
काट दिये ॥ ६ ॥ तब क्रुद्ध हुए द्रोण ने तेल से धोए हुए दो
भालों से द्रुपद और विराट दोनों को मृत्यु की ओर प्रेषित किया॥७॥

द्रोण के इस कर्म को देख कर क्रोध और दुःख से युक्त हुआ शत्रुनाशी धृष्टद्युम्न सेना लेकर द्रोण के सामने आया ॥ ८ ॥ अब एक ओर पाञ्चाल और पाण्डव मिल कर द्रोण पर प्रहार करने लगे, दूसरी ओर दुर्योधन कर्ण शकुनि, और दुर्योधन के मुखिये भाई [illegible] द्रोण की रक्षा करने लगे॥९—१०॥ यह भयंकर युद्ध बड़े घमासान का हुआ, कुछ देर पीछे सूर्य सन्ध्यागत हुआ ॥ [illegible] महाराज इसी प्रकार कवच पहने वह सब रणक्षेत्र में सन्ध्या उपासने लगे ॥ १२ ॥ और तपे हुए सोने की प्रभा वाले सूर्य के उदय हो जाने और जगत् के प्रकाशित हो जाने पर फिर युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ १३ ॥

[illegible] त्वासन् युद्धहृदा [illegible]ः। आर्यं युद्धमकुर्वन्त [illegible] ॥ १४ ॥ न [illegible]र्धर्मिष्ठमासन् युद्धेन च। नात्र कर्णी न नालीको न लिप्तो न च वस्तिकः ॥ १५ ॥ न सूची कपिशो नैव न गवास्थिर्गजास्थिजः। इषुरासीन्न संश्लिष्टो न पूतिर्न च जिह्मगः ॥ १६ ॥ ऋजून्येव विशुद्धानि सर्वे शस्त्राण्यधारयन्। सुयुद्धेन पराँल्लोकानीप्सन्तः कीर्तिमेव च ॥ १७ ॥ पञ्चालानां ततो [illegible]कुलं महद्। यथा क्रुद्धो रणे शक्रो दानवानां क्षयं पुरा ॥ १८ ॥ तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकास्यतो गता। तस्य चान्त[illegible] क्षयं जग्मुः पताकिणः ॥ १९ ॥ तस्य [illegible] धृष्टद्युम्नः समाव्रजत्। खड्गी [illegible] सहसा द्रोण[illegible] ॥ २० ॥ विमुञ्चन् [illegible]क्षरं। धिक्कृतः [illegible] ॥ २१ ॥ शक्रवांश्च महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः। [illegible] आचार्यमाब्रवीद्द्रुपदात्मज ॥ २२ ॥ न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सैनिकाश्च

ह । उत्क्रोशन्नर्जुनश्चैव सानुक्रोशस्तमाव्रजत ॥ २३ ॥ क्रोशमानेऽर्जुने चैव पार्थिवेषु च सर्वशः । धृष्टद्युम्नोऽवधीद् द्रोणं रथतल्पे नरर्षभं ॥ २४ ॥ तावका निहते द्रोणे गतासव इवाभवन् । पराजयमथावाप्य परत्र च महद्भयं ॥ २५ ॥ पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा हृष्टा ह्यासन् विशांपते।अरिक्षयं च संग्रामे तेन ते सुखमाप्नुवन्।२६।

अर्थ—हे राजन् ! शुद्धात्मा शुद्धाचारी मरने मारने पर तुले हुए एक दूसरे को जीतने की इच्छा करते हुए वह वीर आर्ययुद्ध कर रहे थे ॥ १४ ॥ वहां अधर्मयुद्ध वा निन्दित युद्ध नहीं हुआ, वहां कर्णी, नालीक, विषबुझे, वस्तिक, सुइयों से भरे सूची अस्त्र, जलते हुए कांटों से युक्त कापिश अस्त्र, गवास्थि, गजास्थि, संश्लिष्ट, पूति और जिह्मग अस्त्र नहीं चलाए गए किन्तु सभी उत्तम युद्ध से परलोक और कीर्ति को पाना चाहते हुए शुद्ध सरल शस्त्रों को ही धारण किये थे ॥ १५—१७ ॥ वहां आचार्य ने पञ्चालों का बड़ा भारी विनाश किया,जैसा पूर्वकाल में क्रुद्ध हुए इन्द्र ने रण में दानवों का क्षय किया था ॥ १८ ॥ आचार्य को लगातार बाण चलाते हुए चार दिन और इस चौथे दिन के साथ रातें भी बाण चलाते बीतीं, और यह पांचवां दिन भी तीन भाग चला गया, तो आचार्य के बाण समाप्त होगए ॥ १९ ॥आचार्य के इस छिद्र को जान कर प्रतापी धृष्टद्युम्न हाथ में तलवार ले झट पट अपने रथ से द्रोण के रथ पर कूद गया ॥ २०॥बाणजाल से आचार्य का अंग २ छिद चुका था, सब से लहू झर रहा था, और बाणों के क्षीण हो जाने से उन्हों ने शस्त्र रख दिये थे, उस समय सब लोगों को धिकारते हुए भी धृष्टद्युम्न ने जा पकड़ा।२१। महाबाहु अर्जुन ने भी कहा, हे धृष्टद्युम्न ! आचार्य को जीता ले

आओ, मारना नहीं ॥ २२ ॥मारना नहीं मारना नहीं,यही वचन सब योधाओं ने पुकारा, और अर्जुन भी पुकारता हुआ उस की ओर दौड़ा गया ॥ २३ ॥ पर धृष्टद्युम्न ने अर्जुन के भी पुकारते हुए और चारों ओर से राजाओं के भी पुकारते हुए ही रथशय्या पर बैठकर द्रोण को मार गिराया ॥ २४ ॥ द्रोण के मारा जाने पर तेरे पक्ष के वीर अपनी पराजय और आगे सामने आते बड़े भय को जान कर गतप्राण से होगए॥ २५ ॥और पाण्डव संग्राम में विजयलाभ और शत्रुक्षय कर के हर्ष और सुख को प्राप्त हुए ॥ २६ ॥

समीक्षा-इस से आगे यह कथा है,कि द्रोण के अस्त्रों के सामने पाण्डव बहुत डरे, कि इन अस्त्रों से द्रोण हम को नष्ट कर देगा, तब कृष्ण ने पाण्डवों को कहा, कि जब तक द्रोण के हाथ में शस्त्र हैं, कोई इस को जीत नहीं सकता, शस्त्र छोड़ने पर ही यह जीता जा सकेगा,इस के लिये तुम धर्मयुद्ध को छोड़ कर इस के जीतने का उपाय करो, न हो कि यह हम सब को मार डालें । मेरा विचार है,कि अश्वत्थामा के मारा जाने पर द्रोण अस्त्र छोड़ देगा, सो कोई इस के पास जा कर यह कहे,कि अश्वत्थामा मारा गया, यह बात अर्जुन ने तो सर्वथा पसन्द न की, युधिष्ठिर ने कठिनता से पसन्द की,और सभों ने पसन्द की, तब भीम ने मालवराज इन्द्रवर्मा के अश्वत्थामा नामी हाथी को गदा से मार द्रोण के पास जा कर यह कहा, अश्वत्थामा मारा गया।द्रोण को शोक तो हुआ, पर पुत्र के शौर्य का ध्यान कर उस ने भीम का वचन मिथ्या समझा, और उसी प्रकार दिव्य अस्त्रों से पञ्चाल सेना का संहार करता रहा । तब क्षत्रियों के अभाव के खड़े द्रोण

को देख कर वसिष्ठ, जमदग्नि, कश्यप आदि ऋषि उस को ब्रह्म-लोक में ले जाने के लिए आगए, और कहा, कि अस्त्रों के न जानने वालों को तुमने ब्रह्मास्त्र से मार डाला है, यह ठीक नहीं, और अधिक पाप न करो, अब तुम्हारा समय मनुष्यलोक में रहने का हो चुका। इन के वचन को सुन कर और भीमसेन की बात का ध्यान कर के उस ने युधिष्ठिर से पूछा, कि अश्वत्थामा मारा गया है, वा नहीं। उसी समय कृष्ण ने युधिष्ठिर को कहा, कि यदि आधा दिन द्रोण ने युद्ध किया, तो तेरी सेना नष्ट हो जाए गी, सो तुम अपनी सेना को बचाओ, जीवन बचाने के लिए झूठ बोलने से पाप नहीं लगता, उधर भीमसेन ने कहा, कि अश्व-त्थामा हाथी मैंने मार कर द्रोण को कहा है, कि अश्वत्थामा मारा गया, पर उस ने विश्वास नहीं किया, सो तुम कृष्ण की बात मानो, और उसे कह दो, तब उस ने संदिग्ध सा कह दिया, कि अश्वत्थामा मारा गया। इस से पूर्व युधिष्ठिर का रथ चार अंगुल पृथिवी से ऊंचा चलता था, कहने पर पृथिवी से आ लगा। द्रोण को शोक में देख कर धृष्टद्युम्न उस की ओर दौड़े, और द्रोण के मारने के लिए तीव्र बाण जोड़ा, द्रोण ने रोकने का प्रयत्न किया, पर उस को उस समय अपने अस्त्र न फुरे, उस के बाण समाप्त होगए थे, बाणों के क्षय से, पुत्र के शोक से और अस्त्रों की कृपा दूर हो जाने से और ऋषियों की प्रेरणा से शस्त्र छोड़ने को तय्यार हुआ आचार्य पूर्ववत् तेज से पूर्ण हो कर युद्ध नहीं करते थे। एक दिव्य आंगिरस धनुष ले कर धृष्टद्युम्न को युद्ध कराते रहे। धृष्ट-द्युम्न के बाण को भी काटा, धृष्टद्युम्न ने बढ़ कर अपने घोड़े आ-चार्य के घोड़ों से आ मिलाए, द्रोण ने उस के घोड़े और सारथि

को मार डाला, धृष्टद्युम्न तलवार ले कर द्रोण की ओर आया,द्रोण ने उस को मारने के लिए वैतस्तिक बाण जोड़े, तब मृत्यु के मुख में जाते धृष्टद्युम्न को सात्यकि ने द्रोण के बाणों को काट कर बचा लिया, तब सात्यकि से बड़ा भारी युद्ध हुआ। युधिष्ठिर की प्रेरणा से और बहुत से वीरवर धृष्टद्युम्न की सहायता के लिए पहुंचे। दोनों सेनाओं को प्रचण्ड देख कर द्रोण के शस्त्र चमके,उस ने बीस सहस्र क्षत्रिय और दस सहस्र हाथी मारे, तब भीम और धृष्टद्युम्न दोनों द्रोण से युद्ध करने लगे,द्रोण ने फिर भी धृष्टद्युम्न का धनुष तोड़ दिया, और बाणों से उस के मर्म बींध दिये। तब भीमने निकट हो कर द्रोण से कहा ब्राह्मण होकर तुम एक के निमित्त इतनी हत्या कर रहे हो,जिस के निमित्त तुम ने शस्त्र उठाए हैं, और जिस की अपेक्षा कर के जीते हो, वह तो मरा पड़ा है, तुम्हें धर्मराज की बात पर शंका नहीं करनी चाहिये,तब आचार्य ने शस्त्र धर दिये, उसी समय धृष्टद्युम्न तलवार ले कर उन की ओर दौड़ा, आचार्य अब अन्त समय देवों का उच्चारण करते हुए मन को परमात्मा में लगा शरीर से निकल द्यौ को चले गए, उन का इस प्रकार शरीर छोड़ देना अर्जुन कृष्ण अश्वत्थामा युधिष्ठिर और मैं इन पांच ही मनुष्यों ने देखा और किसी ने नहीं, धृष्टद्युम्न ने द्रोण को जा पकड़ा, और अर्जुन और सब के रोकते हुए उस ने द्रोण का सिर काट लिया। देर पीछे अश्वत्थामा ने सुना, उस ने नारायण अस्त्र छोड़ा, सारी पाण्डवसेना जलने लगी, तब कृष्ण ने कहा, कि रथों हाथियों और घोड़ों से उतर पड़ो,जब वह उतर पड़े,तब कहीं शान्ति हुई,उस दिन का युद्ध समाप्त कर के अपने २ निवेशों को गए।

इस कथा में यह बातें विचारणीय हैं, अश्वत्थामा को मरा सुन कर आचार्य ने शस्त्र क्यों छोड़े थे, क्या वह नहीं जानते थे, कि रण में मरना मारना होता ही है, और क्या पुत्र को मरा सुन कर उस के मारने वाले का पता ले कर उस को भी रणभूमि में नहीं गिराना था, जैसा कि अर्जुन ने जयद्रथ को गिराया। गिराते न सही, पूछते भी न, कि किसने अश्वत्थामा को मारा, कैसे मारा। अच्छा, इस को छोड़ कर दूसरी ओर दृष्टि डालिये, क्या श्रीकृष्ण इस प्रकृति के थे, कि झूठ बोलने की प्रेरणा करते, अर्जुन के धर्मोपदेष्टा ही तो श्रीकृष्ण हैं कोई और नहीं। यदि श्रीकृष्ण इस को अधर्म नहीं समझते थे, तो यह बात अर्जुन की समझ में क्यों न आई, अर्जुन ने तो नापसन्द किया। फिर श्रीकृष्ण का निश्चय तो यह था, कि कोई भी द्रोण को अश्वत्थामा का मारा जाना सुनाए, द्रोण शस्त्र छोड़ देगा, इसी लिये भीम ने जा कर कहा, पर द्रोण ने शस्त्र न छोड़े, श्रीकृष्ण का अनुमान सच्चा न निकला, फिर वसिष्ठ आदि ऋषि वहां कहां से आ निकले, और फिर उन के रोकने पर भी द्रोण लड़ते ही रहे, फिर श्रीकृष्ण ने कह कहा कर युधिष्ठिर से भी झूठ बुलवाया, तौ भी द्रोण लड़ते ही रहे, कितना ढीला अनुमान श्रीकृष्ण का निकला। बाण भी चुक गए, अस्त्र भी फुरने से रह गए, तौ भी ऐसे गाढ़ लड़े, कि पाण्डव सेना की तहें बिछा दीं, अन्ततः फिर भीम के कहने पर बिश्वास कर शस्त्र रखे, और स्वयं समाधि ले परमात्मा में मिल गए। तब धृष्टद्युम्न ने उन का सिर काटा, पर मिथ्या ही, वह तो मर ही चुके थे। धृष्टद्युम्न के प्रहार से पहले ही द्रोण ने शरीर छोड़ दिया था, इस भेद के देखने वाले पांचों में एक अश्वत्थामा भी

थे, इस के अर्थ यह हैं, कि अश्वत्थामा उनके पास ही था, तब अ-श्वत्थामा के मरने का भ्रम ही कैसे हुआ, यदि यह कहा जाए, कि अश्वत्थामा निकट न थे, कहीं दूर से ही दिव्यदृष्टि से देखा, तौ भी पीछे भागती सेना को देख कर अश्वत्थामा का दुर्योधन आदि से पूछना, कि क्या हुआ है, क्यों सेना भाग रही है, बन नहीं सकता। फिर एक और अद्भुत बात है, कि द्रोण की सहायता में दूसरे कौ-रव भी तो द्रोण के साथ लड़ रहे थे, वहां भीम वा युधिष्ठिर के कान में जा कर तो नहीं फूंका होगा, कि अश्वत्थामा मारा गया, यदि उच्चध्वनि से कहा, तो फिर दूसरों ने भी सुना, उन्होंने क्यों न कहा, कि न मारा गया, और इतनी देर पीछे लड़ते भी रहे, तौ भी न किसी ने इस झूठ का खण्डन किया, और न ही स्वयं द्रोण ने पता मंगाया, अद्भुत बात है, कि सेनापति को उसी रण में लड़ते हुए अपने वीर सुशिक्षित पुत्र का समाचार अपनों से नहीं, शत्रुओं से मिले, और पीछे भी उस के निर्णय करने का अपना कोई प्रब-न्ध न हो, शत्रु की बात पर ही भरोसा किया जाए। अश्वत्थामा नामी हाथी के मारने का भी क्या फल हुआ, द्रोण को उस के पुत्र के मरने का भ्रम उत्पन्न करने के लिए कहना अश्वत्थामा मारा गया, यह भी तो वैसा ही झूठ है, जैसा बिना हाथी के मारे अश्व-त्थामा मारा गया, कहना झूठ होता, फिर इतना भी बहाना न रहा, जब द्रोण ने युधिष्ठिर से अपने पुत्र के विषय में पूछा, कि क्या मारा गया, और भीमने भी यह कहा, कि जिस के लिये तू लड़ता है, वह मारा गया, इस प्रकार की अनमेल बातों से यह कथा भरी हुई है, इस से निःसंदेह प्रक्षिप्त है, अभिप्राय यह है, कि इतनी बड़ी महिमा वाला आचार्य, और वह किसी से मारा

जा सके, ऐसा हो नहीं सकता, इस लिए पहले उस को शोक उत्पन्न कराया, फिर ऋषियों को उस के पास भिजवाया, फिर दिव्य अस्त्र भी भूले, तौ भी मर न सके, मारते ही गए, अन्ततः युधिष्ठिर से भी झूठ बुलवाया, तब उस से शस्त्र छुड़वाए, फिर भी अपने आप शरीर छोड़ा, तब धृष्टद्युम्न ने मरे को मारा, यह आचार्य का माहात्म्य दिखला दिया। इस बनावट के बनाने का बीज बनाने वाले को 'न्यस्तशस्त्रं' मिला, जिस पर यह कल्पना कल्पित हुई। इस सारी बनावट में वह सच्ची कथा विद्यमान है, कि द्रोण के बाण चुक गए, तब धृष्टद्युम्न ने उस को जा मारा, ऊपर की बनावट में बाणों का समाप्त हो जाना कहना निष्प्रयोजन ही नहीं, प्रत्युत विरुद्ध हो जाता है, जब समाप्त ही हो गए, तो उस ने छोड़ा क्या। कल्पना वाले ने जो असली श्लोकों को बीच में रख कर ही अपने श्लोक चढ़ाए हैं, इस से असली कथा का स्पष्ट पता लग जाता है। यह कथा इतनी प्रसिद्ध हो चुकी है, कि सहसा लोग इस को त्यागें गे नहीं, पर जो छानबीन मैं ने की है, इस को मन में रख कर जो इस सारी कथा को मूल से देखे गा, वह मेरे साथ अवश्य सहमत होगा।

यदि कथञ्चित् इस कथा में कोई ऐतिहासिक अंश माना जा सकता है, तो इतना ही, कि कृष्ण के कहने पर युधिष्ठिर ने 'अश्वत्थामा हतः' कहा, उसी समय द्रोण ने शस्त्र रख दिये, और धृष्टद्युम्न ने उसे जा मारा। कथञ्चित् इस लिए कहा है, कि द्रोण के बाण समाप्त हो जाने के पीछे द्रोण मारे गए, जब इतनी बात बीच में पड़ी है, तो फिर यही कारण उन की मृत्यु का हो जाता है, शस्त्र छोड़ने की बात जाती रहती है। तथापि इस में सम्मति

भेद होसकता है, इस लिए इस दृष्टि से भी कथा श्लोकों में लिख देते हैं। श्लोक २० से आगे ये श्लोक पढ़ो–

मूल—उदीर्यमाणे द्रोणास्त्रे पाण्डवान् भयमाविशत्। कच्चिद्द्रोणो न नः सर्वान् क्षपयेत् परमास्त्रवित् ॥ २१ ॥ न चैनं संयुगे कश्चित्समर्थः प्रतिवीक्षितुं। न चैनमर्जुनो जातु प्रतियुध्येत धर्मवित् ॥२२॥ त्रस्तान् कुन्तीसुतान् दृष्ट्वा द्रोणसायकपीडितान्। मतिमान् श्रेयसे युक्तः केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ २३ ॥ नैष युद्धेन संग्रामे जेतुं शक्यः कथञ्चन। न्यस्तशस्त्रस्तु संग्रामे हन्तुं शक्यो भवेन्नृभिः ॥ २४ ॥ आस्थीयतां जये योगो धर्ममुत्सृज्य पाण्डवाः। यथा न संयुगे सर्वान्नहन्याद् रुक्मवाहनः ॥ २५ ॥ अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम। तं हतं संयुगे कश्चिदस्मै शंसतु मानवः ॥२६॥ एतन्नारोचयद्राजन् कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः। अन्ये त्वरोचयन् सर्वे कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ॥ २७ ॥ ततो भीमो महाबाहुरनीके स्वे महागजं। जघान गदया राजन्नश्वत्थामानमित्युत ॥ २८ ॥ परप्रमथनं घोरं मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥ २९ ॥ भीमसेनस्तु सव्रीडमुपेत्य द्रोण माहवे। अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह ॥ ३० ॥ संदिहमानो व्यथितः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरं। अहतं वा हतं वेति पप्रच्छ सुतमात्मनः ॥ ३१ ॥ स्थिरा बुद्धिर्द्रोणस्य न पार्थो वक्ष्यतेऽनृतं। त्रयाणामपि लोकानामैश्वर्यार्थे कथञ्चन ॥ ३२ ॥ तस्मात्तं परिपप्रच्छ नान्यं कंचिद् द्विजर्षभः ॥ ३३ ॥ ततो निष्पाण्डवामुर्वीं करिष्यन्तं युधापतिं। द्रोणं ज्ञात्वा धर्मराजं गोविन्दो व्यथितोऽब्रवीत् ॥ ३४ ॥ यद्यर्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः। सत्यं ब्रवीमि ते सेना विनाशं समुपैष्यति ॥ ३५ ॥ स भवांस्त्रातु नो द्रोणात्सत्याज्ज्यायोऽनृतं वचः। अनृतं जीवितस्यार्थे वदन्नस्पृश्यतेऽनृतैः ३६

तयोः संवदतोरेवं भीमसेनोऽब्रवीदिदं । नूनं नाश्रद्दधद्वाक्यमेष मे पुरुषर्षभः ॥ ३७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः । भावित्वाच्च महाराज वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ३८ ॥ तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः।अव्यक्तमब्रवीद्राजन् हतः कुञ्जर इत्युत॥३९॥ युधिष्ठिरात्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो महारथः । योद्धुं नाशक्नुवद्राजन् यथा पूर्वमरिन्दमः ॥ ४० ॥ उत्सृज्य चरणे शस्त्रं रथोपस्थे निविश्य च । अभयं सर्वभूतानां प्रददौ योगमीयिवान् ॥ ४१ ॥ तस्य तच्छिद्रमाज्ञाय धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् । खड्गी रथादवप्लुत्य सहसा द्रोणमभ्ययात् ॥ ४२ ॥ द्रोणोपि शस्त्राण्युत्सृज्य परमं सांख्यमास्थितः । पुराणं पुरुषं विष्णुं जगाम मनसा परं ॥ ४३ ॥ मुखं किञ्चित्समुन्नाम्य विष्टभ्य उरमग्रतः । निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो निक्षिप्य हृदि धारणं ॥ ४४ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ज्योतिर्भूतो महातपाः ॥ ४५ ॥ स्मृत्वा देवदेवेशमक्षरं परमंप्रभुं । दिवमाक्रमदाचार्यः साक्षात्सद्भिर्दुराक्रमां ॥ ४६ ॥ ब्रह्मलोकगते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते । वयमेव तदाद्राक्ष्म पञ्च मानुषयोनयः ॥ ४७ ॥ अहं धनञ्जयः पार्थो भारद्वाजस्य चात्मजः । वासुदेवश्च वार्ष्णेयः धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ॥ ४८ ॥ अन्येतु सर्वे नापश्यन् भारद्वाजस्य धीमतः । महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः ॥ ४९ ॥

अर्थ--द्रोण के अस्त्रों के ऊंचा आने पर पाण्डवों को भय होने लगा, कि परम अस्त्र के जानने वाला द्रोण सब का ही नाश न कर डाले ॥ २१ ॥ रण में कोई भी इस के सामने हो नहीं सकता, और धर्मचित्त अर्जुन इस के प्रति युद्ध करेगा ही नहीं ॥ २२ ॥ द्रोण के बाणों से पीड़ित कुन्तीपुत्रों को भयभीत देख कर पाण्डवों की भलाई में लगे हुए मतिमान् कृष्ण अर्जुन से

बोले ॥ २३ ॥ संग्राम में यह युद्ध से किसी तरह नहीं जीता जाएगा, हां शस्त्र छोड़ने पर योधों से मारा जा सकेगा ॥ २४ ॥ सो हे पाण्डवो! धर्मयुद्ध को छोड़ कर विजय का उपाय निकालो, न हो कि रण में द्रोण सब को मार डाले ॥ २५ ॥ मेरा विश्वास है, कि अश्वत्थामा के मारा जाने पर वह युद्ध नहीं करे गा, सो कोई पुरुष उस का मारा जाना इस को जा कर बतलाए ॥२६॥ हे राजन् यह बात कुन्तीपुत्र अर्जुन ने पसन्द नहीं की, और सब ने पसन्द की, युधिष्ठिर ने बड़ी कठिनता से पसन्द की ॥२७॥ तब महाबाहु भीम ने अपनी सेना में गदा से अश्वत्थामा नामी हाथी को मारा, जो मालवराज इन्द्रवर्मा का शत्रुओं के लताड़ने वाला भयंकर हाथी था ॥ २८—२९ ॥ तब भीमसेन ने संग्राम में द्रोण के निकट जा कर सिर नीचा किये उच्च ध्वनि 'अश्वत्थामा हतः' कहा ॥ ३० ॥ द्रोण ने संदिग्ध और पीड़ित हो कर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से अपने पुत्र के विषय में पूछा कि मारा गया वा नहीं ॥ ३१ ॥ द्रोण का पक्का निश्चय था, कि युधिष्ठिर तीनों लोकों के ऐश्वर्य के लिए भी झूठ नहीं बोले गा ॥ ३२ ॥ इस लिए उस द्विजवर ने उस से पूछा, किसी दूसरे से नहीं ॥३३॥ तब सेनापति द्रोण पृथिवी को पाण्डवों से हीन कर डालें गे, ऐसा जान कर दुःखित हुए कृष्ण युधिष्ठिर से बोले ॥ ३४ ॥ यदि क्रुद्ध हुए द्रोण आधा दिन और युद्ध करें गे, तो सत्य कहता हूं, तेरी सारी सेना का नाश हो जाएगा ॥ ३५ ॥ सो आप हम को द्रोण से बचावें, यहां झूठ सत्य से बढ़ कर है, जीवन के निमित्त झूठ बोलने से पुरुष पापी नहीं होता है ॥ ३६ ॥ उन के इस प्रकार वार्तालाप करते हुए भीम आ कर बोले, द्रोण ने मेरी बात

पर विश्वास नहीं किया ॥ ३७ ॥ उस के वचन को सुन कर, कृष्ण के वचन से प्रेरा हुआ युधिष्ठिर भावि के बलवान् से कहने को तय्यार हो गए ॥ ३८ ॥ तब झूठ के भय में डूबे हुए और जय प्राप्ति में फंसे हुए युधिष्ठिर ने अस्पष्ट 'हतः कुञ्जरः' * कहा ॥ ३९ ॥ युधिष्ठिर से इस वचन को सुन कर शत्रुओं के दमन करने वाले महारथी द्रोण पहले की भांति युद्ध करने के असमर्थ हो गए ॥ ४० ॥ रण में शस्त्र को छोड़ कर रथ के ऊपर, और सब लोगों को अभयदान दे कर योगयुक्त हुए ॥ ४१ ॥ उस के इस छिद्र को जान कर प्रतापी धृष्टद्युम्न हाथ में तलवार ले रथ से कूद कर झट द्रोण की ओर गए ॥ ४२ ॥ द्रोण भी शस्त्रों को छोड़ कर ब्रह्मज्ञान में स्थित हुए मन से परब्रह्म के ध्यान में मग्न हुए ॥ ४३ ॥ मुख को कुछ ऊंचा (आकाश की ओर) कर के (नेत्र दिव्य ज्योति में लगा कर) छाती तान कर आंखें बंद कर (रज, तम के लेश से विमुक्त हो) शुद्ध सत्त्व में स्थित हुआ ओम् इस अक्षर से देव देव परम प्रभु परमात्मा को हृदय में धार कर आचार्य द्यौ लोक में चढ़ गए, जहां साक्षात् सत्पुरुषों की भी पहुंच कठिनता से होती है ॥ ४४—४६ ॥ द्रोण ब्रह्मलोक में चले गए, पर धृष्टद्युम्न उन के जीवित होने की भूल में रहे, इस पांच मनुष्यों ने ही यह दृश्य देखा । मैंने, अर्जुन, अश्वत्थामा, कृष्ण और युधिष्ठिर ने ॥ ४७—४८ ॥ और किसी ने हे महाराज योगयुक्त हो कर परमगति को नहीं जाना† ॥ ४९ ॥

---

* अस्पष्ट से यह अभिप्राय है, कि 'अश्वत्थामा हतः' ऊंचे कह कर 'कुञ्जरः' हौले कहा। † इस से आगे श्लोक २१ से ६६ तक पढ़ो ।

अ० २१ (व० १९३-१९५) अश्वत्थामा का कोप

मूल—अमर्षणीयं तद् दृष्ट्वा भारद्वाजस्य पातनं । त्रस्तरूपतरा राजन् कौरवाः प्राद्रवन् भयात् ॥ १ ॥ द्रवमाणं बलं दृष्ट्वा [illegible] । दुर्योधनं समासाद्य द्रोणपुत्रोऽब्रवीदिदं ॥ २ ॥ किमियं द्रवते सेना त्रस्तरूपेव भारत । द्रवमाणां च राजेन्द्र नावस्थापयसे रणे ॥ ३ ॥ तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य भाषितं । घोरमप्रियमाख्यातुं नाशक्नोत् पार्थिवर्षभः ॥ ४ ॥ अथ शारद्वतो राजन्नार्तिमार्च्छन् पुनः पुनः । शशंस द्रोणपुत्राय यथा द्रोणो निपातितः ॥ ५ ॥ ततः क्रुद्धो रणे द्रौणिर्भृशं जज्वाल मारिष । यथेन्धनं महत्प्राप्य प्राज्वलद्धव्यवाहनः ॥ ६ ॥ तलं तलेन निष्पिष्य दन्तै[illegible] । निःश्वसन्नुरगो यद्वल्लोहिताक्षोऽभवत्तदा ॥ ७ ॥ तस्य क्रुद्धस्य राजेन्द्र वपुर्दीप्तमदृश्यत । अन्तकस्येव भूतानि जिहीर्षोः कालपर्यये ॥ ८ ॥ अश्रुपूर्णे ततो नेत्रे व्यपमृज्य पुनः पुनः । उवाच कोपान्निःश्वस्य दुर्योधनमिदं वचः ॥ ९ ॥ युद्धेष्वपि प्रवृत्तानां ध्रुवं जयपराजयौ । द्वयमेतद्भवेद्राजन् वधस्तत्र प्रशस्यते ॥ १० ॥ न्यायवृत्तो वधो यस्तु संग्रामे युध्यतो भवेत् । न स दुःखाय भवति तथा दृष्टो हि स द्विजैः ॥ ११ ॥ यत्तु धर्मप्रवृत्तः सन् [illegible] । पश्यतां सर्वसैन्यानां तन्मे मर्माणि कृन्तति ॥ १२ ॥ तदिदं पार्षतेनेह महदाधर्मिकं कृतं । तस्यानुबन्धं द्रष्टासौ धृष्टद्युम्नः सुदारुणं ॥ १३ ॥ धृष्टद्युम्नं च समरे हन्ताहं पापकारिणं । पञ्चालानां वधं कृत्वा शान्तिं लब्धास्मि कौरव ॥ १४ ॥ पित्रा तु मम सावस्था प्राप्ता निर्बन्धुना यथा । मयि शैलप्रतीकाशे पुत्रे शिष्ये च जीवति ॥ १५ ॥ धिङ्ममा-

स्त्राणि दिव्यानि धिग्बाहू धिक् पराक्रमं। यस्माद् द्रोणः सुतं प्राप्य केशग्रहमवाप्तवान् ॥ १६ ॥ स तथाहं करिष्यामि यथा भरतसत्तम। परलोकगतस्यापि भविष्याम्यनृतं पितुः ॥ १७ ॥ अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं पाण्डवाः सजनार्दनाः । मृदूनतः सर्वसैन्यानि युगान्तमिव कुर्वतः ॥ १८ ॥ सोहं नारायणास्त्रेण महता शत्रुतापनः। शत्रून् विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥ १९ ॥ तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य पर्यवर्तत वाहिनी । ततः सर्वे महाशंखान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः ॥ २० ॥

अर्थ—द्रोण के इस असहनीय पतन को देख कर कौरव बड़े भयभीत हो कर भाग निकले ॥ १ ॥ सेना को भागते देख कर अश्वत्थामा दुर्योधन के पास आ कर बोले ॥ २ ॥ हे भारत! कैसे यह सेना भयभीत हुई भागी जा रही है, और भागती हुई को हे राजन् रण में ठहराते नहीं हो ॥ ३ ॥ द्रोणपुत्र के इस वाक्य को सुन कर दुर्योधन उस को घोर अप्रिय बतला न सके ॥ ४ ॥ हे राजन् तब कृपाचार्य ने बार २ दुःख आंसु बहाते २ अश्वत्थामा को बतलाया, जिस प्रकार कि द्रोणाचार्य मारे गए थे ॥ ५ ॥ तब अश्वत्थामा क्रुद्ध हो कर रण में ऐसा चमका, जैसे बहुत बड़े इन्धन को पा कर अग्नि प्रज्वालित होता है ॥ ६ ॥ हाथ को हाथ से मराड़ कर और दांतों को दांतों से पीस कर फुंकारते हुए सांप की भांति लाल नेत्रों वाला हो गया ॥ ७ ॥ हे महाराज! क्रुद्ध हुए का देह ऐसा तेजस्वी हुआ, मानों काल महाप्रलय में भूतों का संहार करने खड़ा है ॥ ८ ॥ नेत्रों से बार २ आंसु पोंछ कर कोप से दीर्घ सांस ले कर दुर्योधन से यह वचन बोला ॥ ९ ॥ हे राजन् युद्ध में प्रवृत्त हुओं के जय पराजय दोनों होते

ही हैं, वध भी वहां उत्तम समझा जाता है ॥ १० ॥ युद्ध में लड़ते हुए का जो न्याय से वध हो, वह दुःख के लिए नहीं होता, उस को आर्य ठीक समझते हैं॥ ११ ॥ किन्तु धर्म में प्रवृत्त हुए के जो सब के सामने बाल पकड़े यह बात मेरे मर्मों को चीरती है ॥१२॥ यह धृष्टद्युम्न ने बड़ा पाप किया है, धृष्टद्युम्न इस का बड़ा दारुण फल देखे गा॥ १३ ॥ पापकारी धृष्टद्युम्न को मैं संग्राम में मारूंगा, पञ्चालों का वध करके ही शान्ति लाभ करूंगा ॥ १४ ॥ पर्वत तुल्य मुझ पुत्र वा शिष्य के जीते हुए मेरे पिता ने वह अवस्था पाई है, जैसे कोई बन्धु ही न हो ॥ १५ ॥ मेरे दिव्य अस्त्रों को धिक्कार है, दोनों भुजाओं को धिक्कार है, पराक्रम को धिक्कार है, जब कि मुझ पुत्र को पा कर मेरे पिता केशग्रहण को प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ सो मैं ऐसा काम करूंगा, जिस से परलोक में भी गए पिता का अनृण हो जाऊं ॥ १७ ॥ कृष्ण समेत पाण्डव आज मेरे सारी सेना का मर्दन करते हुए प्रलय सी लाते हुए के बल को देखें ॥ १८ ॥ सो मैं नारायण अस्त्र से शत्रुओं को पीड़ कर मारूंगा ॥ १९ ॥ द्रोणपुत्र के इस वचन को सुन कर सेना लौटी, और सब महावीरों ने शंख बजाए ॥ २० ॥

अ० २२ (व० १९६-२०१) अश्वत्थामा का युद्ध

मूल—प्रागेव विद्रुतान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् युधिष्ठिरः । पुनश्च तुमुलं शब्दं श्रुत्वार्जुनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ क एष कौरवान् दीप्तानवस्थाप्य महारथः । निवर्तयति युद्धार्थं मृधे देवेश्वरो यथा ॥ २ ॥ अर्जुन उवाच—योऽसावाथ इत्याक्रन्द पार्षतेन हतस्तथा । कर्मणा सुनृशंसेन तस्य नाथो व्यवस्थितः ॥ ३ ॥ ततः समागमो राजन्

कुरुपाण्डवसेनयोः। पुनरेवाभवत्तीव्रः पूर्णसागरयोरिव ॥ ४ ॥ प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा ॥ ५ ॥ प्रादुरासंस्ततो बाणा दीप्ताग्राः खे सहस्रशः। पाण्डवान् क्षपयिष्यन्तो दीप्तास्याः पन्नगा इव ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच—शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि वाहेभ्यश्चावरोहत। एष योगोऽत्र विहितः प्रतिघाते महात्मनः ॥७॥ ततः शस्त्राणि ते सर्वे समुत्सृज्य महीतले। अवारोहन् रथेभ्यश्च हस्त्यश्वेभ्यश्च सर्वशः ॥ ८ ॥ तस्मिन् प्रशान्ते विधिना तेन तेजसि दुःसहे। बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशः प्रदिश एव च ॥ ९ ॥ प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ता मृगपक्षिणः। वाहनानि च हृष्टानि प्रशान्तेऽस्त्रे सुदुर्जये ॥ १० ॥ पार्षतस्तु बली राजन् कृतास्त्रः कृतनिश्चयः। द्रौणिमेवाभिदुद्राव मृत्युं कृत्वा निवर्तनं ॥ ११ ॥ तं द्रौणिः समरे क्रुद्धं छादयामास पत्रिभिः। विव्याध चैनं दशभिः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ १२ ॥ व्यश्वसूतरथं चैव द्रौणिश्चक्रे महाहवे। तस्य चानुचरान् सर्वान् क्रुद्धः प्राद्रावयच्छरैः ॥ १३ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर कौरवों को पहले भागते देख, अब फिर तुमुल शब्द सुन कर अर्जुन से बोले ॥ १ ॥ इन्द्र की भांति कौन यह महारथ कौरवों को फिर प्रचण्ड कर के लौटा रहा है ॥ २ ॥ अर्जुन बोले—जिस को धृष्टद्युम्न ने क्रूर कर्म से दबा कर अनाथ की भांति मारा था, उस का नाथ आ खड़ा हुआ है ॥ ३ ॥ तब हे राजन् पूर्ण सागरों की भांति कौरव पाण्डव सेना का फिर तीव्र समागम हुआ ॥ ४ ॥ तब अश्वत्थामा ने नारायण अस्त्र प्रकट किया॥५॥उस से आकाश में सहस्रों प्रचण्ड बाण प्रकट हो गए जो जलते मुखों वाले सांपों की भांति पाण्डवों का नाश करने लगे ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण बोले—झट पट शस्त्र रख दो और वाहनों से उतर

आओ, इस बड़े तीव्र अस्त्र का यही प्रतीकार है ॥ ७ ॥ तब वह सब शस्त्र छोड़ कर रथ घोड़े और हाथियों से नीचे उतर आए ॥ ८ ॥ जब इस विधि से वह दुःसह तेज शान्त हुआ, तब सारी दिशाएं विदिशाएं निर्मल हुईं ॥ ९ ॥ सुखदायी वायु चले, मृग पक्षी भी शान्त हुए, और घोड़े हाथी भी हर्षित हुए ॥ १० ॥ उस समय धृष्टद्युम्न मरने मारने पर तय्यार हो अश्वत्थामा की ओर ही दौड़ा ॥ ११ ॥ क्रुद्ध हुए अश्वत्थामा ने उस को बाणों से ढांप दिया, पिता के वध का स्मरण कर के इस को दस बाणों से वींधा ॥ १२ ॥ घोड़े और सूत को मार कर रथहीन कर दिया, और अपने बाणों से इस के साथियों को भगा दिया ॥ १३ ॥

मूल—दृष्ट्वा तु विमुखान् योधान् धृष्टद्युम्नं च पीडितं । शैनेयोऽचोदयत्तूर्णं रथं द्रौणिरथं प्रति ॥ १४ ॥ विव्याध च तथा सूतं चतुर्भिश्चतुरो हयान् । धनुर्ध्वजं च संयत्तश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १५ ॥ अथो रथान्तरं द्रौणिः समारुह्य परंतपः । सात्यकिं वारयामास किरन् शरशतान् बहून् ॥ १६ ॥ सोऽतिविद्धो महेष्वासो नानालिंगैरमर्षणः । युयुधानेन वै द्रौणिः प्रहसन् वाक्यमब्रवीत् ॥ १७ ॥ शैनेयाभ्युपपत्तिं ते जानाम्याचार्य घातिनि । न चैनं त्रास्यसि मया ग्रस्तमात्मानमेव च ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वार्करश्म्याभं सुतीक्ष्णं तं शरोत्तमं । व्यसृजत्सात्वते द्रौणिर्वज्रं वृत्रे यथा हरिः ॥ १९ ॥ स भिन्नकवचः शूरः भूरिव्रणपरिस्रवः । सीदन् रुधिरसिक्तश्च रथोपस्थ उपाविशत् ॥ २० ॥ सूतेनापहृतस्तूर्णं द्रोणपुत्राद्रथान्तरं ॥ २१ ॥ अथान्येन सुपंखेन शरेणानतपर्वणा । आजघान भ्रुवोर्मध्ये धृष्टद्युम्नं परंतपः ॥ २२ ॥ स पूर्वमतिविद्धश्च भृशं पश्चाच्च पीडितः । ससादाथ पाञ्चाल्यो व्यपाश्रयत च ध्वजं ॥ २३ ॥

तं नागमिव सिंहेन दृष्ट्वा राजन् शरार्दितं । किरीटी भीमसेनश्च वृद्धक्षत्रश्च पौरवः ॥ २४ ॥ युवराजश्च चेदीनां मालवश्च सुदर्शनः । वीरं द्रौणयनिं वीराः सर्वतः पर्यवारयन् ॥ २५ ॥ ततस्ते विव्यधुः सर्वे द्रौणिं राजन्महारथाः । युगपच्च पृथक् चैव रुक्मपुंखैः शिलाशितैः ॥ २६ ॥ तस्यास्यतस्तान् निशितान् पीतधारान् द्रौणः शरान् [illegible] वियद्द्यौः प्रदिशो दिशश्च छन्ना-बाणैरभवन् घोररूपैः ॥ २७ ॥ [illegible]स्य स्वरथं तीव्रतेजाः सुदर्शनस्येन्द्रकेतुप्रकाशौ । भुजौ शिरश्चेन्द्र समानवीर्यस्त्रिभिः शरैर्युगपत्संचकर्त ॥२८॥ स पौरवं रथशक्त्या निहत्य छित्वा रथं तिल-शश्चास्य बाणैः । छित्वा च बाहू वरचन्दनाक्तौ भल्लेन कायाच्छिर उच्चकर्त ॥ २९ ॥ युवानमिन्दीवरदामवर्णं चेदिप्रभुं युवराजं प्रसह्य । बाणैस्त्वरावान् प्रज्वलिताग्निकल्पैर्[illegible]न्मृत्यवे साश्वसूतं ३०

अर्थ—योधाओं को विमुख और धृष्टद्युम्न को पीड़ित देख कर सात्यकि ने अपना रथ झट अश्वत्थामा के रथ की ओर प्रेरा ॥ १४ ॥ और जाते ही उस के सारथि को विद्ध कर के चार बाणों से उस के चारों घोड़े विद्ध किये और सावधान हो कर फुर्ती के साथ उस के धनुष और ध्वजा को काट गिराया ॥१५॥ परंतप अश्वत्थामा झट एक दूसरे रथ पर चढ़ गए और अपने सैंकड़ों बाणों से सात्यकि को घेर लिया ॥ १६ ॥ उधर से भी अनेकप्रकार के बाणों द्वारा विद्ध होता हुआ अश्वत्थामा सात्यकि से यह वचन बोला ॥ १७ ॥ हे सात्यकि इस आचार्यघाती को तेरी सहायता मैं जानता हूं, पर मुझ से ग्रसे हुए इस को तू नहीं बचा सकेगा, अपने को भी नहीं ॥ १८ ॥ यह कह कर अश्वत्थामा ने सूर्य की किरणों तुल्य एक तीक्ष्ण उत्तम बाण सात्यकि को

मारा, जैसे इन्द्र वृत्र को वज्र मारे ॥ १९ ॥ सात्यकि का कवच टुकड़े होगया, और चोटें आ कर लहू बहने लगा, रुधिर से लिबड़ा हुआ पीड़ित हो कर रथ की बैठक में बैठ गया ॥ २० ॥ सारथि उस को झट पट अश्वत्थामा के निकट से दूसरे रथ की ओर ले गया ॥ २१ ॥ अब एक दूसरा तीक्ष्ण नोक वाला बाण धृष्टद्युम्न के ललाट पर मारा ॥ २२ ॥ वह पहले ही बड़ा बिंधा हुआ था, पीछे और भी पीड़ित हुआ ध्वज के सहारे बैठ गया॥ २३ ॥ हे राजन् शेर से हाथी की भांति बाणों से उस को पीड़ित देख कर अर्जुन भीमसेन पुरुवंशी वृद्धक्षत्र चेदियों का युवराज और मालव का सुदर्शन इन पांचों ने वीर अश्वत्थामा को सब ओर से जा घेरा ॥ २४—२५ ॥ तब हे महाराज वह महारथी अश्वत्थामा को मिल कर और अलग २ तीखे बाणों से बींधने लगे ॥ २६ ॥ अश्वत्थामा ने भी आगे पीछे सीधी धारा वाले बाण फैंकते हुए पृथिवी आकाश दिशाएं प्रदिशाएं उन घोर बाणों से ढांप दीं ॥ २७ ॥ अपने रथ के निकट आए सुदर्शन की इन्द्रध्वजा के तुल्य दोनों भुजाओं और सिर को तीन बाणों से एक साथ काट दिया॥२८॥ वृद्धक्षत्र को रथ शक्ति से तोड़ कर उस के रथ को बाणों से टुकड़े २ कर फिर चन्दन से युक्त उस की दोनों भुजाओं को काट धड़ से सिर को अलग काट गिराया ॥ २९ ॥ फिर फुर्ती करते हुए उस ने चेदि युवराज पर आक्रमण कर अग्नितुल्य जलते बाणों से बींध कर घोड़े सारथि समेत मृत्युलोक को पहुंचाया॥३०॥

मूल—मालवं पौरवं चैव युवराजं च चेदिपं । दृष्ट्वा समक्षं निहतं द्रोणपुत्रेण पाण्डवः ॥ ३१ ॥ भीमसेनो महाबाहुः क्रोधमाहारयत्परं । छादयामास समरे द्रोणपुत्रं परंतपः ॥ ३२ ॥ ततो

द्रौणिर्महातेजाः शरवर्षं निहत्य तं । विव्याध निशितैर्बाणैर्भीमसेन-ममर्षणः ॥ ३३ ॥ जीमूताविव घर्मान्ते तौ शरौघप्रवर्षिणौ । अन्योन्यक्रोधताम्राक्षौ छादयामासतुर्युधि ॥ ३४ ॥ ततो द्रौणिर्महाराज भीमसेनस्य सारथिं । ललाटे दारयामास शरेणानतपर्वणा ॥ ३५ ॥ सोऽतिविद्धो बलवता द्रोणपुत्रेण सारथिः । व्यामोहमगमद्राजन् रश्मीनुत्सृज्य वाजिनां॥ ३६ ॥ ततोऽश्वाः प्राद्रवन् तूर्णं मोहिते रथसारथौ । भीमसेनस्य राजेन्द्र पश्यतां सर्वधन्विनां ॥ ३७ ॥ तं दृष्ट्वा प्रद्रुतैरश्वैरपकृष्टं रणाजिरात् । दध्मौ प्रमुदितः शंखं बृहन्तमपराजितः ॥ ३८ ॥ ततो द्रुतमतिक्रम्य सिंहलांगूलकेतनं । सव्यसाची महेष्वासमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ या शक्तिर्यद्विज्ञानं यद्वीर्यं यच्च पौरुषं । यच्च भूयोऽस्ति तेजस्ते तत्सर्वं मयि दर्शय ॥ ४० ॥ एवमुक्तः श्वसन् क्रोधात् महेष्वासतमो नृप । द्रौणिश्चुकोप पार्थाय कृष्णाय च विशेषतः ॥ ४१ ॥ स तु यत्तः [illegible] । सर्वतः क्रोधमाविश्य चिक्षेप परवीरहा ॥ ४२ ॥ उल्काश्च गगनात्पेतुर्दिशश्च न चकाशिरे। तमश्च सहसा रौद्रं चमूमवततारतां ॥ ४३ ॥ त्रैलोक्यमभिसंतप्तं ज्वराविष्टमिवाभवत् । प्रदग्धा रिपवः पेतुरग्निदग्धा इव द्रुमाः॥ ४४॥ कृत्स्ना ह्यक्षौहिणी राजन् सव्यसाची च पाण्डवः । तमसा संवृते लोके नादृश्यन्त महाहवे ॥ ४५ ॥ नैव नस्तादृशं राजन् दृष्टपूर्वं न च श्रुतं । यादृशं द्रोणपुत्रेण सृष्टमस्त्रममर्षिणा ॥ ४६ ॥ अर्जुनस्तु महाराज ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् । सर्वास्त्रप्रतिघातार्थं विहितं पद्मयोनिना ॥ ४७ ॥ ततो मुहूर्तादिव तत्तमो व्युपशशाम ह । प्रववौ चानिलः शीतो दिशश्च विमला बभुः ॥ ४८ ॥ ततो वीरौ महेष्वासौ विमुक्तौ केशवार्जुनौ । सहितौ प्रत्यदृश्येतां नभसीव तमो-

नुदौ ॥ ४९ ॥ ततः किलकिलाशब्दः शंखभेरीस्वनैः सह । पाण्डवानां प्रहृष्टानां क्षणेन समजायत ॥ ५० ॥ हता [illegible] रासीत्सेनयोरुभयोर्मतिः । तावक्षतौ प्रमुदितौ [illegible] ॥ ५१ ॥ विमुक्तौ च महात्मानौ दृष्ट्वा द्रौणिः सुदुःखितः । मुहूर्तं चिन्तयामास किन्त्वेतादिति मारिष ॥ ५२ ॥ [illegible] तु राजेन्द्र ध्यानशोकपरायणः । निःश्वसन् दीर्घमुष्णं च विमनाश्चाभवत्तदा ॥ ५३ ॥ वरु[illegible] हवसा [illegible] । ततः [illegible]ऽभूत् पाण्डवानां विशांपते ॥ ५४ ॥

अर्थ—मालवराज, वृद्धक्षत्र और चेदि युवराज को अश्वत्थामा से सामने मारे गए देख कर, महाबाहु भीमसेन को बड़ा क्रोध आया, उस परंतप ने रण में अश्वत्थामा को ढांप दिया ॥ ३१–३२॥ तब महातेजस्वी अश्वत्थामा ने उस की बाणवर्षा को रोक कर तीखे बाणों से भीमसेन को विद्ध किया ॥ ३३ ॥ वह दोनों एक दूसरे पर क्रोध से लाल आंखों वाले हुए बरसात में मेघों की भांति बाण समूह बरसाते हुए एक दूसरे को ढांपते भए ॥ ३४ ॥ अनन्तर हे महाराज! अश्वत्थामा ने तीखे बाण से भीमसेन के सारथि का ललाट फोड़ दिया ॥ ३५ ॥ बलवान् अश्वत्थामा से प्रबल विद्ध हुआ सारथि मूर्छित हो गया और उस के हाथ से घोड़ों की बागें छूट गईं ॥ ३६ ॥ रथ सारथि के मूर्छित होने पर सब धनुर्धारियों के सामने भीमसेन के घोड़े भाग निकले ॥ ३७ ॥ भागते घोड़ों से रणांगन से भीम को निकाला गया देख कर प्रसन्न हुए अपराजित अश्वत्थामा ने बड़ा शंख बजाया ॥ ३८ ॥ तब झट सब से आगे लंघ कर अर्जुन महा धनुर्धारी अश्वत्थामा से बोले ॥ ३९ ॥ जो शक्ति जो विज्ञान जो वीर्य जो पौरुष और जो तेज तुझ में है, वह सारा मेरे ऊपर दिखला ॥ ४० ॥ यह सुन क्रोध से लंबे

और गर्म सांस भरता हुए अश्वत्थामा का अर्जुन पर, विशेषतः कृष्ण पर क्रोध भड़का ॥ ४१ ॥ उस ने सावधान हो कर दुर्धर्ष आग्नेय अस्त्र लिया, और क्रोध में भर कर शत्रुओं पर सब ओर छोड़ा ॥ ४२ ॥ आकाश से उल्कापात होने लगा, दिशाओं में अन्धेरा छा गया, और भयंकर अन्धेरा सारी सेना पर छा गया ॥ ४३ ॥ उस के संताप से संतप्त हुए सब ज्वर युक्त की भांति अपने को अनुभव करने लगे, दग्ध हुए शत्रु अग्नि से दग्ध वृक्षों की भांति गिरने लगे ॥ ४४ ॥ अन्धेरे से उस सारी रणभूमि के ढक जाने पर सारी सेना तथा अर्जुन और कृष्ण कहीं नहीं दीखते थे ॥ ४५ ॥ हे राजन् ऐसा हमने पहले न कभी देखा न सुना है, जैसा न सहते हुए द्रोणपुत्र ने अस्त्र छोड़ा ॥ ४६ ॥ अर्जुन ने हे महाराज ब्राह्म अस्त्र छोड़ा, जो कि सब अस्त्रों के प्रतिघात के लिए ब्रह्मा ने बनाया है ॥ ४७ ॥ तब थोड़ी देर में वह अन्धेरा दूर हो गया, ठंडी पवन चली और दिशाएं निर्मल हो गईं ॥४८॥ तब उस अस्त्र से मुक्त हुए वीर अर्जुन और कृष्ण इकट्ठे आकाश में चन्द्र सूर्य की भांति दीख पड़े ॥ ४९ ॥ तब उसी क्षण हर्षित हुए पाण्डवों का किलकिला शब्द हुआ और भेरियें बजीं ॥ ५० ॥ वह दोनों मारे गए यह दोनों ही सेनाओं ने समझा था, किन्तु वह अक्षत निकल अपने शंखों को पूरने लगे ॥ ५१ ॥ उन दोनों को बच रहे देखकर बड़ा दुःखित हुआ अश्वत्थामा कुछ देर सोच में पड़ा रहा, कि यह क्या हो गया ॥ ५२ ॥ सोच कर चिन्ता और शोक में पड़ा हुआ दीर्घ उष्ण सांस भर कर बड़ा उदास हुआ॥५३॥ सेना की ओर देख कर अवहार किया। हे राजन् तब पाण्डवों ने भी सेना का प्रत्यवहार किया ॥ ५४ ॥

द्रोणपर्व समाप्त हुआ ॥

कर्णपर्व ॥

अ० १ (व० १-११)

मूल—ततो द्रोणे हते राजन् दुर्योधनमुखा नृपाः । भृश-मुद्विग्नमनसो द्रोणपुत्रमुपागमन् ॥ १ ॥ ते मुहूर्तं समाश्वस्य हेतुभिः शास्त्रसंमितैः । राव्यागमे महीपालाः स्वानि वेश्मानि भेजिरे ॥ २ ॥ ततः प्रभाते विमले स्थिता दिष्टस्य शासने । चक्रुरावश्यकं सर्वे विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ३ ॥ ते कृत्वाऽवश्यकार्याणि युद्धाय च विनिर्ययुः । कर्णं सेनापतिं कृत्वा कृतकौतुकमंगलाः ॥ ४ ॥ तथैव पाण्डवा राजन् कृतपूर्वाह्लिकक्रियाः । शिविरान्निर्ययुस्तूर्णं युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥ ५ ॥ ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणं । कुरूणां पाण्डवानां च परस्परजयैषिणां ॥ ६ ॥ तयोर्द्वौ दिवसौ युद्धं कुरु-पाण्डवसेनयोः । कर्णे सेनापतौ राजन् बभूवाद्भुतदर्शनं ॥ ७ ॥ ततः शत्रुक्षयं कृत्वा सुमहान्तं रणे वृषः । पश्यतां धार्तराष्ट्राणां फाल्गुनेन निपातितः ॥ ८ ॥ ततस्तु संजयः सर्वं गत्वा नागपुरं द्रुतं । आचष्टे धृतराष्ट्राय यद्वृत्तं कुरुजांगले ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा तु महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः । शोकस्यान्तमपश्यन्वै हतं मेने सुयोधनं ॥ १० ॥

अर्थ--हे राजन् ! द्रोण के मारा जाने पर दुर्योधन आदि राजे बड़े उदास हुए द्रोणपुत्र के पास गए ॥ १ ॥ वे राजे शास्त्रोक्त हेतुओं से थोड़ी देर धीरज की बातें कर के रात अधिक आने पर अपने २ मन्दिरों को गए ॥ २ ॥ तब प्रभात के समय भाग्य के शासन में स्थित हुए सब ने शास्त्रविधि से आवश्यक कर्म किये ॥ ३ ॥ आवश्यक कार्यों को कर के कर्ण को सेनापति बना कर

कौतुक मंगल कर के युद्ध के लिए निकले ॥ ४ ॥ वैसे ही हे राजन्! पाण्डव सवेरे का सारा कर्तव्य कर के युद्ध के लिए तय्यार हो शिबिर से निकले ॥ ५ ॥ तब एक दूसरे को जीतने की इच्छा वाले कौरव और पाण्डवों का रोंगटे खड़ा करने वाला तुमुल युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ ६ ॥ हे राजन् ! कर्ण के सेनापतित्व में कौरव पाण्डव सेनाओं का पूरे दो दिन बड़ा अद्भुत युद्ध हुआ ॥ ७ ॥ तब रण में बहुत बड़ा शत्रुनाश कर चुकने के पीछे कर्ण सब कौरवों के सामने अर्जुन से मारा गया ॥ ८ ॥ अनन्तर संजय ने झट हस्तिनापुर में पहुंच कर कुरुक्षेत्र का वृत्त (कर्ण का मारा जाना) धृतराष्ट्र को जा सुनाया ॥ ९ ॥ हे महाराज ! आम्बिकासुत धृतराष्ट्र यह सुन शोक का पार न पाते हुए समझे कि अब दुर्योधन मारा गया ॥ १० ॥

मूल—धृतराष्ट्र उवाच—यमाश्रित्य महाबाहुं विद्विषां जयकांक्षया । दुर्योधनोऽकरोद्वैरं पाण्डुपुत्रैर्महारथैः ॥ ११ ॥ स कथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णः पार्थेन संयुगे । निहतः पुरुषव्याघ्रः प्रसह्यासह्यविक्रमः ॥ १२ ॥ शोकार्णवे निमग्नोऽहमप्लवः सागरे यथा । ईदृशैर्यद्यहं दुःखैर्न विनश्यामि संजय ॥ १३ ॥ ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणामिमं श्रुत्वा पराभवं । को मदन्यः पुमाँल्लोके न जह्यात्सूत जीवितं ॥ १४ ॥ अहमेव पुरा भूत्वा सर्वलोकस्य सत्कृतः । परिभूतः कथं सूत परैः शक्ष्यामि जीवितुं ॥ १५ ॥ यथा हि शकुनिं गृह्य छित्वा पक्षौ च संजय । विसर्जयन्ति संहृष्टास्ताड्यमानाः कुमारकाः॥१६॥ तथाहमपि संप्राप्तो लूनपक्ष इव द्विजः। क्षीणः सर्वार्थहीनश्च निर्ज्ञातिर्बन्धुवर्जितः ॥ १७ ॥ कां दिशं प्रतिपत्स्यामि दीनः शत्रुवशं गतः ॥ १८ ॥ संजय उवाच—हते द्रोणे महेष्वासे तस्मिन्नहनि

भारत । कृते च मोघ संकल्पे द्रोणपुत्रे महारथे ॥ १९ ॥ आशा बलवती राजन् तव पुत्रस्य याभवत् । हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान् ॥ २० ॥ तामाशां हृदये कृत्वा कर्णमेवं तदाब्रवीत् । सूतपुत्र न ते पार्थः स्थित्वाऽग्रे संयुयुत्सति ॥ २१ ॥ कर्ण उवाच—उक्तमेतन्मया पूर्वं गान्धारे तव सन्निधौ । जेष्यामि पाण्डवान् सर्वान् सपुत्रान् सजनार्दनान् ॥ २२ ॥ सेनापतिर्भविष्यामि तवाहं नात्र संशयः । स्थिरो भव महाराज विजितान् विद्धि पाण्डवान् ॥ २३ ॥ ततोऽभिषिषिचुः कर्णं विधिदृष्टेन कर्मणा । दुर्योधनमुखा राजन् राजानो विजयैषिणः ॥ २४ ॥ ततस्तु त्वरयन् योधान् शंखशब्देन मारिष । कर्णो निष्कर्षयामास कौरवानां महद्बलं ॥ २५ ॥ व्यूहं व्यूह्य महेष्वासो मकरं शत्रुतापनः । प्रत्युद्ययौ तथा कर्णः पाण्डवान् विजिगीषया ॥ २६ ॥ तथा प्रयाते राजेन्द्र कर्णे नरवरोत्तमे । धनञ्जयमभिप्रेक्ष्य धर्मराजोऽब्रवीदिदं ॥ २७ ॥ पश्य पार्थ यथा सेना धार्तराष्ट्रीह संयुगे । कर्णेन विहिता वीर गुप्ता वीरैर्महारथैः ॥ २८ ॥ तं हत्वाऽद्य महाबाहो विजयस्तव फाल्गुन । उद्धृतश्च भवेच्छल्यो मम द्वादश वार्षिकः॥ २९ ॥ भ्रातुरेतद्वचः श्रुत्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः । अर्धचन्द्रेण व्यूहेन प्रत्यव्यूहत तां चमूं ॥ ३० ॥ तत्र यत्तौ सुसंरब्धौ दृष्ट्वान्योन्यं व्यवस्थितौ । अनीकमध्ये राजेन्द्र चेरतुः कर्णपाण्डवौ ॥ ३१ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं नरवारणवाजिनां । रथानां च महाराज अन्योन्यमभिनिघ्नतां ॥ ३२ ॥

अर्थ—धृतराष्ट्र बोले-जिस महाबाहु के सहारे पर दुर्योधन ने शत्रुओं को जीतने की इच्छा से महारथ पाण्डवों के साथ वैर किया ॥ ११ ॥ वह रथिवर अमित पराक्रमी कर्ण कैसे रण में

अर्जुन ने दबा कर मार लिया ॥ १२ ॥ मैं शोक सागर में डूब रहा हूं, जैसे समुद्र में बिना जहाज के, जब कि ऐसे २ दुःखों से हे संजय! मैं मर नहीं जाता हूं ॥ १३ ॥ ज्ञाति सम्बन्धी और मित्रों के ऐसे पराजय को सुन कर, कौन मेरे बिना ऐसा पुरुष है, जो जीवन न छोड़ दे ॥ १४ ॥ मैं ही पहले सारे लोगों से आदरणीय हो कर कैसे हे सूत! शत्रुओं से अनादृत हुआ जीऊंगा ॥ १५ ॥ हे संजय! जैसे छोटे २ बालक पक्षी को पकड़ कर उस के पंख काट कर उस को ताड़ते हुए प्रसन्न हो कर छोड़ देते हैं ॥ १६ ॥ वैसे ही मैं भी सारे ऐश्वर्य से हीन हुआ, ज्ञाति और बान्धवों से रहित हुआ कटे पंखों वाला पक्षी की भांति हुआ, शत्रु के बश पड़ा दीन हुआ किस दिशा का निश्चय करूंगा ॥ १७-१८ ॥ संजय बोले—हे भारत उस दिन द्रोण के मारे जाने और महारथ अश्वत्थामा का संकल्प वृथा जाने पर भी, तेरे पुत्र को जो बलवती आशा थी, कि भीष्म और द्रोण के मारा जाने पर अब कर्ण पाण्डवों को जीते गा ॥ १९-२० ॥ उस आशा को हृदय में धर कर वह कर्ण से यों बोला, हे कर्ण! तेरे सामने अर्जुन खड़ा हो कर युद्ध करना नहीं चाहता है ॥ २१ ॥ कर्ण बोला—हे शकुनि मैं पहले ही तेरे सामने यह कह चुका हूं, कि सारे पाण्डवों को पुत्रों समेत और कृष्ण समेत जीतूं गा ॥२२॥ मैं तेरा सेनापति बनूंगा, इस में संशय नहीं, हे महाराज! आप धीरज धरें, पाण्डवों को जीता ही समझें ॥ २३ ॥ तब विजयाभिलाषी दुर्योधन आदि राजाओं ने शास्त्रविधि के अनुसार कर्ण का अभिषेक किया॥ २४॥ तब कर्ण शंख की ध्वनि से योधाओं को जल्दी कराते हुए कौरवों की बड़ी सेना को ले कर निकले

॥ २५ ॥ शत्रुतापी कर्ण मकर व्यूह रच कर पाण्डवों को जीतने की इच्छा से चढ़े ॥ २६ ॥ हे राजन् इस प्रकार वीरवर कर्ण के चढ़ आने पर, अर्जुन की ओर देख कर युधिष्ठिर बोले ॥ २७ ॥ देखो हे अर्जुन जैसे कौरवों की सेना कर्ण ने महारथ वीरों से सुरक्षित की है ॥ २८ ॥ उस को मार कर आज हे अर्जुन! तेरा विजय है, और मेरा भी बारह बरस का सल्ल निकाल होगे॥२९॥ भाई के इस बचन को सुन कर अर्जुन ने उन के सामने अपनी सेना का अर्धचन्द्र व्यूह रचा ॥ ३० ॥ वहां सावधान हुए एक दूसरे को देख कर क्रुद्ध हुए कर्ण और अर्जुन सेना के मध्य में विचरने लगे ॥ ३१ ॥ तब आपस में आमने सामने मारते हुए पैदल हाथी सवार घुड़सवार और रथियों का युद्ध प्रवृत्त हुआ॥ ३२॥

अ० २ (व० २४—३०) प्रथम दिन का युद्ध

मूल—नकुलं रभसं युद्धे द्रावयन्तं वरूथिनीं। कर्णो वैकर्तनो राजन् वारयामास वै रुषा ॥ १ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा। क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कर्णस्य धनुराच्छिनत् ॥ २ ॥ ततः कर्णो महाराज धनुश्छित्त्वा महात्मनः। सारथिं पातयामास रथनीडाद्धसन्निव ॥ ३ ॥ वधप्राप्तं तु तं शूरो नाहनद्धर्मवित्तदा। स्मृत्वा कुन्त्या वचो राजंस्तत एनं व्यसर्जयत् ॥ ४ ॥ विसृष्टःपाण्डवो राजन् सूतपुत्रेण धन्विना। व्रीडन्निव जगामाथ युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ५ ॥ अथ विस्फार्य गांडीवं रथे नृत्यन्निवार्जुनः। शरसंबाधमकरोत् खदिशः प्रदिशस्तथा ॥ ६ ॥ गजान् गजप्रयन्तॄंश्च वैजयन्त्यायुधध्वजान्। सादिनोऽश्वांश्च पत्तींश्च शरैर्निन्ये यमक्षयं ॥ ७ ॥ तमन्तिकमिवक्रुद्धमनिवार्यं महारथं। दुर्योधनोऽभ्ययात्-

देको [illegible] ॥ ८ ॥ तस्यार्जुनो धनुः सूतमश्वान् केतुं च सायकैः । हत्वा सप्तभिरेकेन च्छत्रं चिच्छेद पत्रिणा ॥ ९ ॥ नवमं च समाधाय [illegible] । दुर्योधनायेषुवरं तं द्रौणिः सप्तधाऽच्छिनत् ॥ १० ॥ ततो द्रौणेर्धनुश्छित्वा हत्वा चाश्वरथान् शरैः । कृपस्यापि तदत्युग्रं धनुश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ ११ ॥ हार्दिक्यस्य धनुश्छित्त्वा ध्वजं चाश्वांस्तथावधीत् । दुःशासनस्येष्वसनं छित्वा राधेयमभ्ययात् ॥ १२ ॥

अर्थ—युद्ध में सेना को भगाते हुए जोशीले नकुल को क्रुद्ध हुए कर्ण ने रोका ॥ १ ॥ तब हे महाराज शत्रुवीरों के मारने वाले नकुल ने बड़े तीखे क्षुरप्र से कर्ण के धनुष को काट दिया ॥२॥ तब हे महाराज हंसते हुए कर्ण ने उस महात्मा के धनुष को काट कर उस के सारथि को रथ की बैठक से नीचे गिराया ॥ ३ ॥ पर कुन्ती के वचन को स्मरण कर के घात में आए नकुल को मारा नहीं, छोड़ दिया ॥ ४ ॥ बली कर्ण से छोड़ा हुआ नकुल लज्जित सा हुआ युधिष्ठिर के रथ की ओर चला गया ॥५॥ इधर गांडीव को घुमा कर रथ पर नाचते से हुए अर्जुन ने बाणों से आकाश, दिशाएं, अदिशाएं भर दीं ॥ ६ ॥ बाणों से हाथी, हाथी सवार, घोड़े, घुड़सवार, प्यादे, शस्त्र और झंडों को क्रमशः गिराते रहे ॥ ७ ॥ यम की भांति क्रुद्ध हुए उस अनिवार्य महारथी की ओर अकेला दुर्योधन बाणों से संहार करता हुआ गया ॥ ८ ॥ अर्जुन ने उस के धनुष, सूत, घोड़े और झंडे को सात बाणों से काट कर एक से उस के छत्र को काट गिराया ॥ ९ ॥ और नवां प्राणघाती बाणवर जोड़ कर जो दुर्योधन की ओर छोड़ा, उस को अश्वत्थामा ने सात टुकड़े कर दुर्योधन को बचा लिया ॥ १० ॥

तब अर्जुन ने बाणों से अश्वत्थामा के धनुष, घोड़े और रथ को काट कर, कृपाचार्य के अंकुश धनुष को काटा ॥ ११ ॥ कृतवर्मा के धनुष और झंडे को काट कर उस के घोड़ों को मार डाला, और दुःशासन के धनुष को काट कर कर्ण की ओर गए ॥ १२ ॥

मूल—रथिनः समहामात्रान् गजानश्वान् ससादिनः। पत्तिव्रातांश्च संक्रुद्धो निघ्नन् कर्णो व्यदृश्यत ॥ १३ ॥ वध्यमानं पाण्डूनां बलं कर्णास्त्रतेजसा। विमुक्तशस्त्रं भूयिष्ठं तु प्राय आसीत् पराङ्मुखं ॥ १४ ॥ अथ कर्णास्त्रमस्त्रेण प्रतिहत्यार्जुनः स्मयन्। दिशं खं चैव भूमिं च प्रावृणोच्छरवृष्टिभिः ॥ १५ ॥ मुसलानीव संपेतुः परिघा इव चेषवः। शतघ्न्य इव चाप्यन्ये वज्राण्युग्राणि चापरे ॥ १६ ॥ तैर्वध्यमानं तत्सैन्यं सपत्त्यश्वरथद्विपं। निमीलिताक्षमत्यर्थं बभ्राम च ननाद च ॥ १७ ॥ अश्वा नरा द्विपा आर्तास्तदा भीताः प्रदुद्रुवुः। निष्कैवल्यं तदा युद्धं प्रापुः कीर्णानां जयैषिणां॥१८॥ गिरिपृष्ठं समासाद्य प्रत्यपश्याम शुभेतरं। न किञ्चित् प्रत्यपश्याम शुभं वा यदि वाशुभं ॥ १९ ॥ अवहारं ततश्चक्रुस्तदा रात्रियुद्धस्य भारत। अपयानं ततश्चक्रुः सहिताः सर्वयोधिभिः ॥ २० ॥ कौरवेष्वपयातेषु तदा राजन् दिनक्षये। जयं सुमनसः प्राप्य पार्थाः स्वशिबिरं ययुः ॥ २१ ॥

मूल—क्रुद्ध हुए कर्ण रथियों और सवारों समेत हाथी घोड़ों और पैदल दलों को मारते हुए दीखते थे ॥ १३ ॥ कर्ण के अस्त्र तेज से पीड़ित हुई पाण्डवों की सेना भांति २ के क्षत विक्षत हुई प्रायः पराङ्मुख हो गई ॥ १४ ॥ उसी समय मुसकराते हुए अर्जुन ने कर्ण के अस्त्र को अस्त्र से उड़ा कर दिशा आकाश और भूमि को अपनी बाणवर्षा से भर दिया॥ १५ ॥बाण मूसलों

और परिघों शतघ्नियों और बज्रों की भांति गिरने लगे ॥ १६ ॥ उन से पीड़ित हुई वह सेना रथ हाथी घोड़े पैदलों समेत आंखें मींच कर घूमने लगी और नाद करने लगी ॥ १७ ॥ विजय की आकांक्षा से युद्ध में जुटे हुए आप के दल वालों के हाथी घोड़े और वीर उन बाणों से पीड़ित हुए डर कर भागने लगे ॥१८॥ इधर सूर्य भी अस्तगिरि पर पहुंच गए, तब अपना पराया कुछ नहीं दीखता था ॥ १९ ॥ रात्रि युद्ध से डरे हुए वह महाधनुधारी सब योधों समेत चले गए ॥ २० ॥ दिन के अस्त होन पर कौरवों के चले जाने पर विजय पा कर प्रसन्न चित्त हुए पाण्डव अपने शिविरों को गए ॥ २१ ॥

अ०३(व०३१-३६) शल्य को कर्ण का सारथि बनाना

मूल—प्रभातायां रजन्यां तु कर्णो राजानमभ्ययात्। समेत्य च महाबाहुर्दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ १॥ अद्य राजन् समेष्यामि पाण्डवेन यशस्विना। निहनिष्यामि तं वीरं स वा मां निहनिष्यति ॥ २ ॥ बहुत्वान्मम कार्याणां तथा पार्थस्य भारत। नाभूत् समागमो राजन् मम चैवार्जुनस्य च ॥ ३ ॥ इदं तु यथाप्रज्ञं शृणु वाक्यं विशांपते। अनिहत्य रणे पार्थं नाहमेष्यामि भारत ॥ ४ ॥ कार्यस्य महतो भेदे लाघवे दूरपातने। सौष्ठवे चास्त्रपाते च सव्यसाची न मत्समः॥ ५ ॥ प्राणे शौर्येऽथ विज्ञाने विक्रमे चापि भारत। निमित्तज्ञानयोगे च सव्यसाची न मत्समः ॥ ६ ॥ सर्वायुधमहामात्रं विजयं नाम तद्धनुः। धनुर्घोरं रामदत्तं गांडीवात्तद्विशिष्यते ॥ ७ ॥ अवश्यं तु मया वाच्यं येन हीनो ऽस्मि फाल्गुनात्। सारथिस्तस्य गोविन्दो मम तादृङ् न विद्यते ॥ ८ ॥ अयं तु सदृशः

शौरेः शल्यः समितिशोभनः । सारथ्यं यदि मे कुर्याद् ध्रुवस्ते विजयो भवेत् ॥ ९ ॥ तस्य मे सारथिः शल्यो भवत्वसुकरः परैः नाराचान् गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु मे ॥ १० ॥ यथाऽश्व-हृदयं वेद दाशार्हः परवीरहा । तथा शल्यो विजानीते हयज्ञानं महारथः ॥११॥ बाहुवीर्ये समो नास्ति मद्रराजस्य कश्चन । तथास्त्रे मत्समो नास्ति कश्चिदेव धनुर्धरः ॥ १२ ॥ क्रियतामेष कामो मे मा वः कालोऽत्यगादयं । ततो द्रक्ष्यसि संग्रामे यत्करिष्यामि भारत १३

अर्थ—रात के प्रभात होने पर महाबाहु कर्ण राजा दुर्योधन के निकट आ कर बोला ॥ १ ॥ हे राजन् ! आज मैं यशस्वी अर्जुन के साथ जुटूंगा, या तो उस वीर को मारूंगा, या वह मुझे मारेगा ॥ २ ॥ मुझे भी कार्यों की अधिकता से और अर्जुन को भी कार्यों की आधिकता से हे राजन् ! मेरा और अर्जुन का समागम नहीं हुआ ॥ ३ ॥ अब हे राजन् ! यह मेरा वचन सुन रखिये, रण में अर्जुन को मारे बिना अब नहीं लौटूंगा ॥ ४ ॥ बड़े लक्ष के भेदने में, फुर्ती में, दूर गिराने में, ठीक लक्ष बींधने में अर्जुन मेरे तुल्य नहीं है ॥ ५ ॥ बल में, शौर्य में, विज्ञान में, पराक्रम में, अवसर जानने में अर्जुन मेरे तुल्य नहीं है ॥ ६ ॥ सारे शस्त्रों से भारी विजय नामी घोर धनुष जो मुझे परशुराम ने दिया है, वह गांडीव से बढ़ कर है ॥ ७ ॥ किन्तु जिस बात में मैं अर्जुन से हीन हूं, वह भी मुझे अवश्य कहनी चाहिये । वह यह है, कि उस का सारथि कृष्ण है, मेरा वैसा नहीं है ॥ ८॥ हां यह रणबांकुरा शल्य जो कृष्ण के तुल्य है, यदि यह मेरा सारथ्य करे, तो निःसंदेह तेरा विजय हो ॥ ९ ॥ सो मेरा सारथि तो शल्य हो, जो शत्रुओं से साधा न जाए, और बहुत से छकड़े गार्ध्रपत्र बाणों

को उठाए चलें ॥ १० ॥ शत्रुवीरों के मारने वाला कृष्ण जैसे अश्वहृदय को जानता है, वैसे महारथ शल्य अश्वविद्या को जानता है ॥ ११ ॥ बाहुवीर्य में मद्रराज के तुल्य कोई नहीं, और अस्त्र-विद्या में मेरे बराबर कोई धनुर्धारी नहीं ॥ १२ ॥ मेरी यह कामना पूरिये, यह समय तुम्हारे हाथ से न जाए, तब हे भारत ! देखोगे, जो मैं युद्ध में कर दिखलाऊं गा ॥ १३ ॥

मूल—दुर्योधन उवाच—एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वं कर्ण मन्यसे। अनुयास्याम कर्ण त्वां वयं सर्वे च पार्थिवाः ॥१४॥ एव-मुक्त्वा महाराज तवपुत्रः प्रतापवान्। अभिगम्याब्रवीद्राजन् मद्र-राजमिदं वचः ॥ १५ ॥ सत्यव्रत महाभाग द्विषतां तापवर्धन। मद्रेश्वर रणे शूर परसैन्यभयंकर ॥ १६ ॥ श्रुतवानास कर्णस्य ब्रुवतो वदतांवर ॥ १७ ॥ तस्मात् पार्थ विनाशार्थं हितार्थं मम चैव हि। सारथ्यं रथिनां श्रेष्ठ प्रणयात् कर्तुमर्हसि॥ १८ ॥ अभी-षूणां हि कर्णस्य ग्रहीताऽन्यो न विद्यते। ऋते हि त्वां महाभाग वासुदेव समं युधि ॥ १९ ॥ यथा च सर्वस्वापत्सु वार्ष्णेयः याति पाण्डवं। तथा मद्रेश्वराद्य त्वं राधेयं प्रतिपालय ॥ २० ॥ कर्णो ह्येको महाबाहुरस्मत्प्रियहिते रतः। भवांश्च पुरुषव्याघ्रः सर्वलोक-महारथः ॥ २१ ॥ कृष्णेन सहितः पार्थो धार्तराष्ट्रीं महाचमूं। अहन्यहनि मद्रेश द्रावयन् दृश्यते युधि॥ २२ ॥ अरुणेन यथा सार्धं तमः सूर्यो व्यपोहति। तथा कर्णेन सहितो जहि पार्थं महाहवे॥२३॥ रथिनां प्रवरः कर्णो यन्तॄणां प्रवरो भवान्। संयोगो युवयोर्लोके नाभून्न च भविष्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—दुर्योधन बोले—ऐसे ही यह करूंगा, हे कर्ण जैसा तुम उचित समझते हो, और हे कर्ण हम सब राजे तुम्हारे पीछे चलेंगे

॥ १४ ॥ यह कह कर हे महाराज ! तेरा प्रतापी पुत्र मद्रराज के निकट जा कर यह वचन बोला ॥ १५ ॥ हे सत्यव्रत हे महाभाग हे शत्रुओं के संताप बढ़ाने वाले, रणशूर, शत्रु सेना के लिए भयंकर महेश ! ॥ १६ ॥ हे बोलने वालों में श्रेष्ठ ! आपने कर्ण का वचन सुन लिया है ॥ १७ ॥ सो अर्जुन के विनाश के लिए और मेरे हित के लिए हे रथिवर ! मेरे प्रेम से सारथ्य करने की कृपा कीजिये ॥ १८ ॥ हे महाभाग ! कर्ण की बागों का पकड़ने वाला विना कृष्ण के बराबर कोई और है नहीं ॥ १९ ॥ सो जैसे कृष्ण सब आपत्तियों में अर्जुन को बचाता है, वैसे हे मद्रेश ! तुम अब कर्ण का पालन करो ॥ २० ॥ एक महाबाहु कर्ण हमारे प्रियहित में रत है, और आप हैं, जो कि सारे लोक में चुने हुए महारथी पुरुषवर हैं ॥ २१ ॥ कृष्ण के साथ मिल कर अर्जुन हमारी सेना को दिन पर दिन नाश करता हुआ दीखता है ॥ २२ ॥ सूर्य जैसे अरुण के साथ मिल कर अन्धकार का नाश करता है, वैसे कर्ण के साथ मिल कर तुम इस महासंग्राम में अर्जुन का नाश करो ॥ २३ ॥ कर्ण रथियों में प्रवर हैं, आप सारथियों में प्रवर हैं। आप दोनों का सा मेल न हुआ है, न होगा।२४।

मूल—दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यः क्रोध समन्वितः । त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा धुन्वन् हस्तौ पुनः पुनः ॥ २५ ॥ क्रोधरक्ते महानेत्रे परिवृत्य महाभुजः । कुलैश्वर्यश्रुतबलैर्दृप्तः शल्योऽब्रवीदिदं ॥ २६ ॥ अवमन्यासि गान्धारे ध्रुवं च परिशंकसे । यन्मां ब्रवीषि विश्रब्धं सारथ्यं क्रियतामिति ॥ २७ ॥ अस्मत्तोऽभ्यधिकं कर्णं मन्यमानः प्रशंससि । न चाहं युधि राधेयं गणये तुल्यमात्मनः ॥ २८ ॥ आदिश्यतामभ्यधिको ममांशः पृथिवीपते । तमहं समरे

जित्वा गमिष्यामि यथागतं ॥ २९ ॥ अथवाप्येक एवाहं योत्स्यामि कुरुनन्दन । पश्य वीर्यं ममाद्य त्वं संग्रामे दहतो रिपून् ॥ ३० ॥ पश्य पीनौ मम भुजौ वज्रसंहननोपमौ। गदां च पश्य गान्धारे हेमपट्टविभूषितां ॥ ३१ ॥ दारयेयं महीं कृत्स्नां विकिरेयं च पर्वतान्। शोषयेयं समुद्रांश्च तेजसा स्वेन पार्थिव ॥ ३२ ॥ तं मामेवं विधं राजन् समर्थमरिनिग्रहे। कस्माद्युनक्षि सारथ्ये नीचस्याधिरथे रणे ॥ ३३ ॥ न मामधुरि राजेन्द्र नियोक्तुं त्वमिहार्हसि । न हि पापीयसः श्रेयान् भूत्वा प्रेष्यत्वमुत्सहे ॥ ३४ ॥ ब्रह्मक्षत्रस्य विहिताः सूता वै परिचारकाः । न क्षत्रियो वै सूतानां शृणुयाच्च कथञ्चन ॥ ३५ ॥ अहं मूर्धाभिषिक्तो हि राजर्षिकुलजो नृप । महारथः समाख्यातः सेव्यः स्तुत्यश्च वन्दिनां ॥ ३६ ॥ सोऽहमेतादृशो भूत्वा नेहारिबलसूदनः । सूतपुत्रस्य संग्रामे सारथ्यं कर्तुमुत्सहे ॥ ३७ ॥ अवमानमहं प्राप्य न योत्स्यामि कथञ्चन । आपृच्छे त्वाद्य गान्धारे गमिष्यामि गृहाय वै ॥ ३८ ॥ एवमुक्त्वा महाराज शल्यः समितिशोभनः । उत्थाय प्रययौ तूर्णं राजमध्यादमर्षितः ॥ ३९ ॥

अर्थ—दुर्योधन के वचन को सुन कर शल्य क्रोध से भर गया, उस के माथे पर तीवड़ी चढ़ आई, बार २ हाथ मलता हुआ, कुल ऐश्वर्य शास्त्र और बल के दर्प से भरा हुआ शल्य क्रोध से लाल नेत्र फेर कर यह बोला ॥ २५—२६ ॥ हे राजन् ! तुम मेरा अपमान करते हो, और निःसंदेह मेरे ऊपर संदेह भी रखते हो, जो कि मुझे निःशंक हो कर कहते हो कि सारथ्य कर॥२७॥ कर्ण को हम से बड़ा मान कर तुम उस की प्रशंसा करते हो, मैं युद्ध में कर्ण को अपने तुल्य नहीं मानता हूं ॥ २८ ॥ हे राजन् ! मुझे (कर्ण से कुछ) अधिक अंश की आज्ञा दीजिये, उस को

मैं जीत कर अपने घर को चला जाउंगा ॥२९॥ अथवा मैं अकेला ही युद्ध करूंगा, आज तुम संग्राम में मेरे वीर्य को देखो, जैसा कि मैं शत्रुओं को दग्ध करता हूं॥ ३० ॥ फौलाद के तुल्य दृढ़ मेरी दोनों भुजाओं को देखिये, और सुवर्ण पट्ट से भूषित मेरी गदा को देखिये ॥ ३१ ॥ हे राजन् मैं अपने तेज से सारी भूमि को फाड़ दूं, पर्वतों को तोड़ दूं, और समुद्रों को सुखा सकता हूं ॥ ३२ ॥ ऐसे बल वाले शत्रुओं के रोकने में समर्थ मुझ को आप हीन सूतपुत्र के सारथ्य में क्यों कर जोड़ सकते हैं ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! मुझे आप अनुचित कर्म में लगाने योग्य नहीं हैं, मैं श्रेष्ठ हो कर नीच का दास बनने को तय्यार नहीं हूं ॥ ३४॥ ब्राह्मण और क्षत्रियों के सूत सेवक माने गए हैं, क्षत्रिय सूत की आज्ञा को कभी नहीं सुन सकता है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! मैं राजर्षि-कुल में उत्पन्न हुआ स्वयं मूर्धाभिषिक्त महारथी वन्दियों का सेव-वनीय स्तोतव्य हूं ॥ ३६ ॥ सो मैं ऐसा हो कर शत्रुसेनाओं का संहारक हो कर संग्राम में सूतपुत्र का सारथ्य करने को तय्यार नहीं हूं ॥ ३७ ॥ यह अपमान पा कर हे राजन् मैं अब युद्ध नहीं करूंगा, तुझ से अनुज्ञा चाहता हूं अब मैं घर जाउंगा ॥ ३८ ॥ यह कह कर हे महाराज रणशोभी शल्य क्रोध से भरा हुआ राजाओं के बीच से उठ कर चल पड़ा ॥ ३९ ॥

मूल—प्रणयाद् बहुमानाच्च तं निगृह्य सुतस्तव । अब्रवीन्म-धुरं वाक्यं साम्ना सर्वार्थसाधकं ॥ ४० ॥ यथा शल्य विजानीषे एवमेतदसंशयं । अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तं निबोध जनेश्वर ॥४१ ॥ न कर्णोऽभ्यधिकस्त्वत्तो न शंके त्वां च पार्थिव । न च मद्रेश्वरो राजा कुर्याद्यद नृतं भवेत ॥ ४२ ॥ ऋतमेव हि पूर्वास्ते वदन्ति

पुरुषोत्तमाः । तस्मादार्तायनिः प्रोक्तो भवानिति मतिर्मम ॥ ४३ ॥ वृणे हं त्वां हयाग्र्याणां यन्तारमिह संयुगे ॥ ४४ ॥ कर्णो ह्यभ्यधिकः पार्थाद्स्त्रैरेव नरर्षभ । भवानभ्यधिकः कृष्णादश्वज्ञाने बले तथा ॥ ४५ ॥ रथिनोऽभ्यधिको वीर कर्तव्यो रथसारथिः । तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान् युधि ॥ ४६ ॥ शल्य उवाच-यन्मां ब्रवीषि गान्धारे अग्रे सैन्यस्य मानद । विशिष्टं देवकीपुत्राव प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥ ४७ ॥ एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य महात्मनः । युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे ॥ ४८ ॥ समयश्च हि मे वीर कश्चिद्वैकर्तनं प्रति । उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य [illegible] ॥ ४९ ॥ यत्तु कर्णमहं ब्रूयां हितकामः प्रियाप्रिये । मम तत् क्षमतां सर्वं भवान् कर्णश्च सर्वशः ॥ ५० ॥ तथेति राजन् पुत्रस्ते सह कर्णेन [illegible] । अब्रवीन्मद्रराजानं सर्वक्षत्रस्य सन्निधौ ॥ ५१ ॥

अर्थ—तेरा पुत्र प्रेम और बहुमान से उस को रोक कर मृदुता से सर्वार्थसाधक मधुर वाक्य बोला ॥ ४० ॥ हे शल्य जैसे तुम कहते हो, यह ऐसे ही है, इस में संशय नहीं, किन्तु हे राजन् ! मेरा कोई और अभिप्राय है, उसे जानिये॥४१॥हे राजन् ! न तो कर्ण आप से अधिक है, और न ही मुझे कोई आप पर शंका है, मद्रराज कभी ऐसा काम नहीं करेगा, जो सत्य न हो ॥४२॥ आप के पूर्व पुरुष सदा सत्य ही बोलते थे, इसी से आप आर्तायनि (सच्ची चाल वाले=ऋतायन, आर्तायन गोत्र वाले) कहलाते हैं, यह मेरा निश्चय है ॥ ४३ ॥ मैं रण में उत्तम घोड़ों का नियन्ता जान कर आप को चुनता हूं ॥ ४४ ॥ क्योंकि हे नरवर जैसे कर्ण अस्त्रों में अर्जुन से बढ़ कर है, वैसे आप अश्वविद्या

में और बल में कृष्ण से बढ़ कर हैं ॥ ४५ ॥ हे वीर ! रथी से बढ़िया को रथसारथि बनाना चाहिये, इस कारण से हे पुरुषवर घोड़ों को वस में रखने का काम तुम करो ॥ ४६ ॥ शल्य बोले—हे मान देने वाले ! तुम जो सारी सेना के सम्मुख मुझ कृष्ण से बढ़ कर कहते हो, इस से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं॥४७॥ यह मैं अर्जुन से युद्ध करते हुए महात्मा कर्ण का सारथ्य करूंगा, जैसा हे वीर तुम उचित समझते हो ॥ ४८ ॥ किन्तु हे वीर कर्ण के लिए मेरी कोई शर्त है, कि मैं इस के सामने अपनी रुचि से वचन कह सकूंगा ॥ ४९ ॥ हित कामना से कर्ण को जो प्रिय अप्रिय कहूं, मेरे उस सब को आप और कर्ण क्षमा करें॥ ५० ॥ तिस पर हे राजन् ! आप के पुत्र ने सब राजाओं के सामने मद्रराज को तथास्तु कहा ॥ ५१ ॥

अ० ४ (व० ३६-४९) कर्ण का संग्राम

मूल—ततः कर्णस्य दुर्धर्षं स्यन्दनप्रवरं महत् । आरुरोह महातेजाः शल्यः सिंह इवाचलं॥ १ ॥ ततः शल्याश्रितं दृष्ट्वा कर्णः स्वं रथमुत्तमं । अध्यतिष्ठद् यथाम्भोदं विद्युत्वन्तं दिवाकरः ॥२॥ तं रथस्थं महाबाहुं युद्धायामित तेजसं । दुर्योधनस्तु राधेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अकृतं द्रोणभीष्माभ्यां दुष्करं कर्म संयुगे । कुरुष्वाधिरथे वीर मिषतां सर्वधन्विनां ॥ ४ ॥ जयश्च तेस्तु भद्रं ते प्रयाहि पुरुषर्षभ । पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि कुरु सर्वाणि भस्मसात्॥५॥ ततस्तूर्यसहस्राणि भेरीणामयुतानि च । वाद्यमानान्यरोचन्त मेघशब्दो यथा दिवि॥ ६ ॥ प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं रथस्थो रथसत्तमः। अभ्यभाषत राधेयः शल्यं युद्धविशारदं ॥ ७ ॥ चोदयाश्वान् महाबाहो यावद्धन्मि धनञ्जयं ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं युयुत्सुं

समवस्थितं। चुक्रुशुः कुरवः सर्वे हृष्टरूपाः समन्ततः ॥ ९ ॥ ततः परानीकसहं व्यूहमप्रतिमं कृतं। समीक्ष्य कर्णः पार्थानां धृष्टद्युम्नाभिरक्षितं ॥ १० ॥ प्रययौ रथघोषेण सिंहनादरवेण च। वादित्राणां च निनदैः कम्पयन्निव मेदिनीं ॥ ११ ॥ प्रतिव्यूह्य महातेजा यथावद्भरतर्षभ। व्यधमत्पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव ॥१२॥

अर्थ—अनन्तर महातेजस्वी शल्य कर्ण के बड़े रथ पर चढ़ा, जैसे शेर पर्वत पर ॥ १ ॥ तब कर्ण अपने उत्तम रथ पर शल्य को बैठा देख कर उस पर बैठा, जैसे बिजली से युक्त मेघ पर सूर्य हो ॥ २ ॥ उस बड़े पराक्रम वाले महातेजस्वी को युद्ध करने के रथ पर स्थित देख दुर्योधन यह वचन बोला ॥ ३ ॥ जो दुष्कर कर्म युद्ध में द्रोण और भीष्म नहीं कर पाए हैं, उस को हे कर्ण सब धन्वियों के समक्ष कर दिखलाओ ॥ ४ ॥ युद्ध में तेरा जय हो तेरा भला हो, युधिष्ठिर की सारी सेनाओं को भस्म करो ॥ ५ ॥ तब सहस्रों बाजे और भेरियें बजती हुई चमकने लगीं, जैसे द्यौ में मेघ का शब्द हो ॥ ६ ॥ उस के वाक्य को स्वीकार कर के रथ पर बैठे हुए रथिवर कर्ण रणनिपुण शल्य से बोले ॥ ७ ॥ हांको घोड़ों को हे महाबाहो ! ताकि मैं अर्जुन को पाऊं ॥ ८ ॥ महाधनुर्धारी कर्ण को युद्ध के लिए तय्यार देख सब कौरव प्रसन्न हुए चारों ओर से जय जय ध्वनि करने लगे ॥ ९ ॥ अनन्तर शत्रुसेना के दबाने वाले, पाण्डवों के बने अनुपम व्यूह को धृष्टद्युम्न से रक्षित देख कर कर्ण रथ की ध्वनि से और सिंहनाद से और बाजों की ध्वनि से भूमि को कंपाता हुआ गया ॥ १०–११ ॥ महातेजस्वी कर्ण उन के प्रतिमुख उत्तम व्यूह रच कर पाण्डवी सेना को दबाने लगे, जैसे इन्द्र आसुरी सेना को ॥ १२ ॥

मूल—शल्य उवाच–अयं सरथ आयातः श्वेताश्वः कृष्ण-सारथिः । दुर्वारः सर्वसैन्यानां विपाकः कर्मणामिव ॥ १३ ॥ श्रूयते तुमुलः शब्दो यथा मेघस्वनो महान् । ध्रुवमेतौ महात्मानौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ १४ ॥ अग्र तौ पुरुषव्याघ्रौ लोहिताक्षौ परंतपौ । वासुदेवार्जुनौ कर्ण द्रष्टास्येकरथे स्थितौ ॥ १५ ॥ सारथिर्यस्य वार्ष्णेयो गांडीवं यस्य कार्मुकं । तं चेद्धन्तासि राधेय त्वं नो राजा भविष्यसि ॥ १६ ॥ एष संशप्तकाहूतस्तानेवाभिमुखो गतः । करोति कदनं चैषां संग्रामे द्विषतां बली ॥१७॥ अथ संशप्तकाः पार्थमभ्यधावन् वधैषिणः । विजये धृतसंकल्पा मृत्युं कृत्वा निवर्तनं॥१८॥ स संमहारस्तुमुलस्तेषामासीत्करीटिना । तस्यैव नः श्रुतो यादृक् निवातकवचैः सह ॥ १९ ॥ अथ पञ्चालचेदीनां सृंजयानां च मारिष । त्वदीयैः सह संग्राम आसीत्परमदारुणः ॥ २० ॥ चक्ररक्षौ तु कर्णस्य पुत्रौ मारिष दुर्जयौ । सुषेणः सत्यसेनश्च त्यक्त्वा प्राणानयुध्यतां ॥ २१ ॥ पृष्ठगोप्ता तु कर्णस्य ज्येष्ठः पुत्रो महारथः । वृषसेनः स्वयं कर्ण पृष्ठतः पर्यपालयत् ॥ २२ ॥ विदार्य कर्णस्तां सेनां युधिष्ठिरमथाद्रवत् । रथहस्त्यश्वपत्तीनां सहस्रैः परिवारितः ॥ २३ ॥ ततो बाह्वोर्ललाटे च हृदि चैव युधिष्ठिरः । चतुर्भिस्तोमरैः कर्ण ताडयित्वाऽनदन्मुदा ॥ २४ ॥ उद्भिन्नरुधिरः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् । ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्रिभिर्विव्याध पाण्डवं ॥ २५॥ इषुधी चास्य चिच्छेद रथं च तिलशोऽच्छिनत् ॥ २६ ॥ कालवालास्तु ये पार्थं दन्तवर्णा वहन् हयाः । तैर्युक्तं रथमास्थाय प्रायाद् राजा पराङ्मुखः ॥ २७ ॥ अभिद्रुत्य तु राधेयः पाण्डुपुत्रं युधिष्ठिरं । गृहीतुमिच्छन् सबलात् कुन्तीवाक्यं च सोऽस्मरत् ॥ २८ ॥ अब्रवीत् प्रहसन् राजन् कुत्सय-

म्भित पाण्डवं ॥ २९ ॥ कथं नाम कुले जातः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः । प्रजह्यात् समरं भीतः प्राणान् रक्षन् महाहवे ॥ ३० ॥ न भवान् क्षत्रधर्मेषु कुशलो हीति मे मतिः [illegible] बले भवान् युक्तः स्वाध्याये यज्ञकर्मणि ॥ ३१ ॥ मा युध्यस्व कौन्तेय मास्म वीरान् [illegible]दः ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वा ततः पार्थं विसृज्य च महाबलः । [illegible]पाण्डवीं सेनां वज्रहस्त इवासुरीं ॥ ३३ ॥

अर्थ—शल्य बोले—यह वह श्वेत घोड़ों वाला कृष्ण सारथि वाला रथ आ रहा है, कर्म फल की नाईं जिस को सारी सेनाएं रोकने में अशक्त हैं ॥ १३ ॥ मेघ ध्वनिवत् गम्भीर शब्द सुनाई देता है, निःसंदेह यह महात्मा कृष्ण और अर्जुन हैं ॥ १४ ॥ आज हे कर्ण तुम लाल नेत्रों वाले शत्रुओं के तपाने वाले पुरुषवर कृष्ण और अर्जुन को एक रथ पर स्थित देखोगे ॥ १५ ॥ सारथि जिस का कृष्ण है, गांडीव जिस का धनुष है, उस को मार कर हे कर्ण तुम हम सब के राजा होगे ॥ १६ ॥ यह वह बली संशप्तकों से आह्वान दिया हुआ उन्हीं के अभिमुख गया है, देखो वह संग्राम में शत्रुओं का विनाश कर रहा है ॥ १७ ॥ इधर संशप्तक विजय का दृढ संकल्प किये मृत्यु को ही (युद्ध से हटाने वाला मान कर अर्जुन का वध चाहते हुए उसी की ओर गए ॥ १८ ॥ अर्जुन के साथ उन का वह युद्ध बड़ा भयंकर हुआ, उसी का जैसा हमने निवातकवचों के साथ सुना था ॥ १९ ॥ इधर पञ्चाल चेदि और सृंजयों का तेरे पक्ष वालों से बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा ॥ २० ॥ वहां कर्ण के चक्ररक्षक उस के दोनों दुर्जय पुत्र सुषेण और सत्यसेन प्राणों को हथेली पर रख कर युद्ध करने लगे ॥ २१ ॥ और कर्ण का बड़ा पुत्र महारथ

वृषसेन पृष्ठगोप्ता बन कर स्वयं कर्ण की पीछे से रक्षा करने लगा ॥ २२ ॥ कर्ण सहस्रों हाथी घोड़े रथ प्यादों को साथ लिए उस सेना को चीर कर युधिष्ठिर की ओर दौड़ा ॥ २३ ॥ तब युधिष्ठिर कर्ण के दोनों भुजाओं ललाट और हृदय पर चार तोमर मार कर हर्ष से गर्जे ॥ २४ ॥ कर्ण को रुधिर बहने लगा और क्रुद्ध हुए सर्प की भांति फुंकारते हुए उस ने एक भाले से युधिष्ठिर की ध्वजा काटी और तीन से उस को बिद्ध किया ॥ २५ ॥ उस ने दोनों भत्थे भी काट दिये और रथ को टुकड़े २ कर दिया ॥ २६ ॥ काले बालों वाले श्वेत घोड़े जो युधिष्ठिर को उठाये वाले थे, उन से युक्त दूसरे रथ पर चढ़ कर राजा मुख मोड़ कर चला गया ॥ २७ ॥ कर्ण दौड़ कर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर को बल से पकड़ना चाहता था, तब उसको कुन्ती का वाक्य याद आया ॥ २८ ॥ तब वह हे राजन् ! हंस कर युधिष्ठिर से यह बोला ॥ २९ ॥ कैसे कुल में जन्मा हुआ क्षत्रधर्म में स्थित महासंग्राम में प्राणरक्षा के निमित्त डर कर युद्ध को त्याग सकता है॥ ३० ॥ आप क्षात्रधर्म में निपुण नहीं, यह मेरा निश्चय है, ब्राह्मबल में आप निपुण हैं, स्वाध्याय में और यज्ञ करने में ॥ ३१ ॥ हे कौन्तेय ! अब युद्ध न करो, वीरों से मत संगत हो ॥ ३२ ॥ यह कह कर वह महाबल युधिष्ठिर को छोड़ कर पाण्डवी सेना का संहार करने लगे, जैसे इन्द्र आसुरी सेना का ॥ ३३ ॥

अ० ५ (श्लो० ५८-५९)

मूल—अब्रवीदर्जुनो राजन् [illegible] वचः । पश्य कृष्ण महा[illegible] दुरन्तौं पाण्डवीं चमूं ॥ १ ॥ [illegible]केतुर्दुर्वा अद्य वर्ष-

राजस्य दृश्यते। तस्मात् त्वं मारिषयं कुरुष्व ।। हि यत्र युधिष्ठिरः ।।२।। दृष्ट्वा कुशलिनं युद्धे धर्मपुत्रं महानुजं । पुनर्योद्धास्मि वार्ष्णेय शत्रुभिः सह संयुगे ।। ३ ।। ततः प्रायाद्रथेनाशु बीभत्सोर्वचनाद्धरिः । यतो युधिष्ठिरो राजा सृंजयाश्च महारथाः ।। ४ ।। एतस्मिन्नन्तरे द्रौणिरभ्यधावत्सुमहाबलं । पार्षतं शत्रुदमनं शत्रुवीर्यासुनाशनं ।।५।। स पार्षतस्य राजेन्द्र धनुः शक्तिं गदां ध्वजं । हयान् सूतं रथं चैव निमेषाद् व्यधमच्छरैः ।। ६ ।। स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । खड्गमादत्त विपुलं शतचन्द्रं च भानुमत् ।।७।। द्रौणिस्तदपि राजेन्द्र भल्लैः क्षिप्रं महारथः । चिच्छेद समरे वीरः क्षिप्रहस्तो दृढायुधः ।। ८ ।। एतस्मिन्नेव काले तु माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ।। ९ ।। पश्य पार्थ यथा द्रौणिः पार्षतस्य वधं प्रति । यत्नं करोति विपुलं हन्याच्चैनं न संशयः ।। १० ।। तं मोचय महाबाहो पार्षतं शत्रुकर्शन । द्रौणेरास्यमनुप्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ।। ११ ।। एवमुक्त्वा महाराज वासुदेवः प्रतापवान् । प्रैषयत्तुरगांस्तत्र यत्र द्रौणिर्व्यवस्थितः ।। १२ ।। ते हयाश्चन्द्रसंकाशाः केशवेन प्रचोदिताः । आपिबन्त इव व्योम जग्मुर्द्रौणिरथं प्रति ।। १३ ।।शरांश्चिक्षेप वै पार्थो द्रौणिं प्रति महाबलः । द्रौणिमासाद्य विविशुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ।। १४ ।। स विद्धस्तैः शरैर्घोरैः द्रोणपुत्रःप्रतापवान् । प्रगृह्य च धनुः श्रेष्ठं पार्थं विव्याध सायकैः ।। १५ ।। एतस्मिन्नन्तरे वीरः सहदेवो जनाधिप । अपोवाह रथेनाजौ पार्षतं शत्रुतापनं ।। १६ ।। अथोत्क्रुष्टं महाराज पंचालैर्जितकाशिभिः । मोक्षितं पार्षतं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं च पीडितं ।। १७ ।। ततः प्रयातो दाशार्हः श्रुत्वा पाण्डवभाषितं । रथेनातिपताकेन मनो मारुतरंहसा ।। १८ ।।

अर्थ—उधर हे राजन् ! अर्जुन कृष्ण से यह वचन बोले, हे महाबाहो कृष्ण देखो उधर पाण्डवसेना भाग रही है ॥ १ ॥ युधिष्ठिर का झंडा भी नहीं दीखता है, इस लिए आप मेरा प्रिय करते हुए वहां चलिए जहां युधिष्ठिर हैं ॥ २ ॥ धर्मपुत्र को युद्ध में छोटे भाइयों समेत कुशली देख कर फिर आ कर शत्रुओं के साथ युद्ध करूंगा ॥ ३ ॥ तब अर्जुन के वचन से कृष्ण रथ को उधर ले गए, जिधर राजा युधिष्ठिर और संजय थे ॥ ४ ॥ इसी अवसर में अश्वत्थामा शत्रुशक्ति के नाशक महाबली धृष्टद्युम्न की ओर गए ॥ ५ ॥ और अपने बाणों से धृष्टद्युम्न के धनुष शक्ति गदा झंडे घोड़ों सारथि और रथ को नष्ट कर दिया ॥ ६ ॥ धनुष के कटने रथ के टूटने सारथि और घोड़ों के मरने पर धृष्टद्युम्न ने विशाल खड्ग और शतचन्द्र ग्रहण किया ॥ ७ ॥ फुर्तीले और दृढ़ हाथ वाले महारथ अश्वत्थामा ने वह भी उन का रण में भालों से काट गिराया ॥ ८ ॥ इसी अवसर पर वहां आ पहुंचे कृष्ण अर्जुन से बोले ॥ ९ ॥ हे अर्जुन देखो, अश्वत्थामा जैसे अर्जुन के मारने के लिए भारी यत्न कर रहा है, निःसंदेह इस को मार लेगा ॥ १० ॥ उस को हे शत्रुनाशन महाबाहो छुड़ाओ, जो मृत्यु के मुख में पड़े की नाईं द्रोण के मुख में जा पड़ा है ॥ ११ ॥ यह कह कर हे महाराज प्रतापी वासुदेव ने घोड़ों को उधर हांका, जहां अश्वत्थामा डटा हुआ था ॥ १२ ॥ कृष्ण से प्रेरे हुए वे श्वेत घोड़े आकाश को पीते हुए से अश्वत्थामा के रथ के पास गए ॥ १३ ॥ महाबली अर्जुन ने अश्वत्थामा के प्रति बाण फेंके, जो अश्वत्थामा के निकट जा कर वल्मीक में सर्पों की भांति प्रविष्ट हुए ॥ १४ ॥ उन शीघ्र बाणों से विद्ध हो कर प्रतापी

द्रोणपुत्र उत्तम धनुष ले कर अर्जुन को बींधने लगा ॥ १५ ॥ इस अवसर में हे राजन् वीर सहदेव शत्रुओं के तपाने वाले धृष्टद्युम्न को रथ पर चढ़ा कर ले गया ॥ १६ ॥ धृष्टद्युम्न को छूटा हुआ और द्रोणपुत्र को पीड़ित देख कर विजय से उनके हुए पश्चात् सिंहनाद करने लगे ॥ १७ ॥ तब अर्जुन के वचन को सुन कृष्ण ऊंचे झंडे वाले मन और वायु के से वेग वाले रथ से फिर अपने मार्ग पर चले गए ॥ १८ ॥

अ० ८९ (व०६६३-६८) युधिष्ठिर का अर्जुन के प्रति क्रोध

मूल—गते कर्णे तु कौन्तेयः पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः । अपायाज्जवनैरश्वैः [illegible] मारिष ॥ १ ॥ ताभ्यां स सहितस्तूर्णं व्रीडन्निव नरेश्वरः । प्राप्य सेनानिवेशं च मार्गणैः [illegible] ॥ अवतीर्णो रथात्तूर्णमाविशच्छयनं शुभं । अपनीतशल्यः सुभृशं हृच्छल्याभिनिपीडितः ॥ ३ ॥ सोऽब्रवीद् भ्रातरौ राजा माद्रीपुत्रौ महारथौ । अनीकं [illegible] पाण्डवावाशु गच्छतां ॥ ४ ॥ द्रौणिं पराजित्य ततोऽप्रमेयो कृत्वा महद् दुष्करं शूरकर्म । आलोकयामास ततः स्वसैन्यं धनञ्जयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ ५ ॥ अपश्य-मानस्तु किरीटमाली युधिष्ठिरं भ्रातरमाजमीढं । उवाच भीमं तर-साभ्युपेत्य राज्ञः प्रवृत्तिं क्व नु कुत्र राजा ॥ ६ ॥ भीमसेन उवाच—अपयात इतो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । कर्णबाणाभितप्ताङ्गो यदि [illegible] ॥ ७ ॥ अर्जुन उवाच—तस्मात् भवान् शीघ्रमितः प्रयातु राज्ञः प्रवृत्त्यै कुरु[illegible] । नूनं सुविद्धोऽसि भृशं पृषत्कैः कर्णेन राजा शिबिरं गतोऽसौ ॥ ८ ॥ भीम उवाच—[illegible] राज्ञः प्रवृत्तिं भरतर्षभस्य । अहं हि यद्यर्जुन [illegible] वदन्ति मां भीत इति प्रवीराः ॥९॥ ततो ह्यपात् [illegible] सुव्रयः

शत्रुसमूहों को मारें ॥ १० ॥ तब हे राजन् ! गरुड़तुल्य वेग वाले घोड़ों से कृष्ण जल्दी से जल्दी करते हुए वहां गए, जहां राजा युधिष्ठिर थे ॥ ११ ॥ वहां पहुंच कर दोनों पुरुषवर अकेले लेटे हुए राजा के निकट जा रथ से उतर पादवन्दन करते भए॥१२॥

मूल—मन्यमानो हतं कर्णं धर्मराजो युधिष्ठिरः । हर्षगद्गदया वाचा प्रीतः प्राह परंतपः ॥ १३ ॥ स्वागतं देवकीमातः स्वागतं ते धनञ्जय । प्रियं मे दर्शनं गाढं युवयोरच्युतार्जुनौ ॥ १४ ॥ आशीविषसमं युद्धे सर्वशस्त्रविशारदं । त्रातारं धार्तराष्ट्राणां गन्तारं वाहिनीमुखे ॥ १५ ॥ अन्तकं मम मित्राणां हत्वा कर्णं महामृधे । दिष्ट्या युवामनुप्राप्तौ जित्वासुरमिवामरौ ॥ १६ ॥ तद्धर्मशीलस्य वचो निशम्य राज्ञः क्रुद्धस्यातिरथो महात्मा । उवाच दुर्धर्षमदीनसत्त्वं युधिष्ठिरं जिष्णुरनन्तवीर्यः ॥ १७ ॥ संशप्तकैर्युध्यमानस्य मेऽद्य सेनाग्रयायी कुरुसैन्येषु राजन् । आशीविषाभान् खगमान् प्रमुञ्चन् द्रौणिः पुरस्तात् सहसाऽभ्यातिष्ठत् ॥ १८ ॥ हत्येत्याहं सूतपुत्रेण संख्ये वज्रेण वज्रीव नरेन्द्रमुख्य । योत्स्याम्यहं भारत सूतपुत्रमस्मिन्संग्रामे यदि वै दृश्यतेऽद्य ॥ १९ ॥ आमन्त्रये त्वां ब्रूहि रणे जयं मे पुरा भीमं धार्तराष्ट्रा ग्रसन्ते । सौतिं हनिष्यामि नरेन्द्रसिंह सैन्यं तथा शत्रुगणांश्च सर्वान् ॥ २० ॥ श्रुत्वा कर्णं कल्पमुदारवीर्यं क्रुद्धः पार्थः फाल्गुनस्यामितौजाः । धनञ्जयं वाक्यमुवाच चेदं युधिष्ठिरः कर्णशराभितप्तः ॥ २१ ॥ विप्रद्रुता तात चमूस्त्वदीया तिरस्कृता चाद्य यथा न साधु । भीतो भीमं त्यज्य चायास्तथा त्वं यन्नाशकः कर्णमथो निहन्तुं ॥ २२ ॥ स्नेहस्त्वया पार्थ कृतः पृथाया गर्भं समाविश्य यथा न साधु । त्यक्त्वा रणे यदपायाः स भीमं यन्नाशकः सूतपुत्रं निहन्तुं ॥ २३ ॥

यत्तद्वाक्यं द्वैतवने त्वयोक्तं कर्णं हन्तास्म्येकरथेन सत्यं। त्यक्त्वा तं वै कथमद्यापयातः कर्णाद्भीतो भीमसेनं विहाय ॥ २४ ॥ इदं यदि द्वैतवनेऽप्यवक्ष्यः कर्णं योद्धुं न प्रशक्ष्ये नृपेति। वयं ततः प्राप्तकालं च सर्वे कृत्यान्युपैष्याम तथैव पार्थ ॥ २५ ॥ अस्माशिष्य वध मर्जुन त्वयि पिपासवो बहुकल्याणमिष्टं। ततः सर्वं विफलं राजपुत्र फलार्थिनां विफल इवातिपुष्पः ॥ २६ ॥ तेनाद्य तप्स्ये भृशमप्रमेयं यच्छत्रुवर्गे नरकं प्रविष्टः वाच्योऽस्मि ननु त्वयाहं न योत्स्येहं सूतपुत्रं कथञ्चन ॥ २७ ॥ धनुश्च तत् केशवाय प्रयच्छ यन्ता भविष्यस्त्वं रणे केशवस्य। ततो हनिष्यत् केशवः कर्णमुग्रं मरुत्पतिर्वृत्रमिवात्तवज्रः ॥ २८ ॥ प्रयच्छान्यस्मै गांडिवमेतदद्य त्वत्तो योऽस्त्रैरभ्यधिको वा नरेन्द्रः। धिग् गांडीवं धिक् च ते बाहुवीर्यमसंख्येयान् बाणगणांश्च धिक् ते ॥ २९ ॥

अर्थ—धर्मराज युधिष्ठिर कर्ण को मारा गया समझ कर प्रसन्न हुए हर्ष गद्गद वाणी से बोले ॥ १३ ॥ स्वागत हो हे देवकीपुत्र स्वागत हो तुझे हे धनञ्जय, हे कृष्ण हे अर्जुन तुम दोनों का इकट्ठा दर्शन मुझे अतीव प्रिय है ॥ १४ ॥ युद्ध में सर्प तुल्य भयंकर, सारे शस्त्रों में निपुण, दुर्योधन पक्ष के रक्षक, सेना के आगे चलने वाले, मेरे मित्रों के कालरूप कर्ण को महायुद्ध में मार कर भाग्य से तुम दोनों इकट्ठे आए हो, जैसे किसी असुर को जीत कर दो देवता ॥१५—१६॥ क्रुद्ध हुए धर्मशील राजा के इस वचन को सुन कर अप्रमेय बल वाला अतिरथ अर्जुन उदार हृदय दुर्धर्ष युधिष्ठिर से बोला ॥ १७ ॥ आज संशप्तकों से युद्ध करते समय कुरुसेना में अग्रणी अश्वत्थामा सर्पतुल्य बाण छोड़ता हुआ सहसा मेरे संमुख आ डटा था ॥ १८ ॥ सो हे नरे-

न्द्रवर अब मैं वृत्र से इन्द्र की भांति कर्ण से जुट कर इस संग्राम में उस से युद्ध करूंगा, यदि वह आज मेरे सामने आता है॥१९॥ आप से अनुज्ञा चाहता हूं, रण में मुझे विजय की असीस दें, (मैं अति शीघ्र जाऊं, न हो कि) दुर्योधन की सेनाएं भीमसेन को ग्रस लें, हे नरेन्द्रसिंह अब मैं जा कर कर्ण को मारूंगा, और उस की सेना और सारे शत्रुगणों को ॥ २० ॥ अप्रमेय शक्ति वाले कर्ण को चंगा भला सुन कर, ओजस्वी युधिष्ठिर को अर्जुन पर क्रोध चढ़ आया, तब कर्ण के बाणों से पीड़ित युधिष्ठिर अर्जुन से यह वाक्य बोला ॥ २१ ॥ हे तात ! तेरी सेना आज पहले ही भागी, और तिरस्कृत हुई, तिस पर यह अच्छा नहीं हुआ, कि तुम डर कर भीम को अकेले त्याग कर चले आए हो, कर्ण को मार नहीं सके हो ॥ २२ ॥ हे पार्थ पृथा के गर्भ में आ कर तुम ने भाई से जैसा स्नेह दिखलाया, यह भला नहीं, जो रण में कर्ण को त्याग कर चले आए हो, और जो कर्ण को मार नहीं सके हो ॥ २३ ॥ तुमने द्वैतवन में जो सत्य वचन कहा था, कि मैं एक रथ से कर्ण को मारूंगा, उस को त्याग कर अब कैसे भाग आए, कर्ण से डर कर और भीमसेन को छोड़ कर ॥२४॥ यह यदि तुम ने द्वैतवन में भी कहा होता, कि मैं कर्ण से युद्ध नहीं कर सकूंगा, तो हे अर्जुन हम सब समय जान कर कर्तव्य का निर्णय करते ॥ २५ ॥ हे अर्जुन ! चढ़ाई के समय हमने तुम्हारे ऊपर बड़े कल्याण की आशा रखी, वह सारी हमारी निष्फल हुई, जैसे फूलों से भरा हुआ पर फल से हीन वृक्ष फलार्थियों के लिए होता है ॥ २६ ॥ आज मैं उस अपमान से बड़ा तप रहा हूं, जो शत्रुवर्ग के अन्दर नरक में प्रविष्ट हुआ, भाई तुम्हें उसी समय मुझे

कह देना चाहिये था, कि मैं कर्ण से कभी नहीं भिड़ूंगा ॥ २७ ॥ अपना धनुष कृष्ण को दे दे, और स्वयं रण में कृष्ण का सारथि बन। तब कृष्ण क्रूर कर्ण को मारेगा, जैसे हाथ में वज्र पकड़े हुए इन्द्र वृत्र को ॥ २८ ॥ अथवा यह गांडीव अब किसी और को दे दे, जो अस्त्रों में तुझ से अधिक है, धिक् है गांडीव को और धिक् तेरे भुजबल को, और तेरे असंख्येय बाणगणों को धिक् है* २९

अ० ७ (व० ६९) युधिष्ठिर का अपमान

मूल—युधिष्ठिरेणैवमुक्तः कौन्तेयः श्वेतवाहनः । असिं

---

* युधिष्ठिर बड़ा धैर्यवान् है, और अर्जुन उस को अतीव प्रिय है, तथापि युधिष्ठिर ने अर्जुन को ऐसे दुर्वचन कहे, जो उस से असम्भावित हैं, यह इस लिए है, कि मनुष्य मनुष्य ही है, धैर्यवान् का भी धैर्य कभी टूट ही जाता है। आज युधिष्ठिर का भारी अपमान हुआ है, उस से प्रकृति ठिकाने नहीं। अब अर्जुन और कृष्ण को युद्धस्थल से हट कर शिविर में आए देख युधिष्ठिर के चित्त में उसी खटकते अपमान के ध्यान से यही निश्चय हुआ था, कि अर्जुन कर्ण को मार आए हैं, अन्यथा युद्धकाल में कभी न आते। पर जब अर्जुन ने बतलाया, कि वह कर्ण से जुटे ही नहीं, और घोर संग्राम में भीम को भी अकेले छोड़ कर चले आए हैं, तो उस को अर्जुन की यह चेष्टा बहुत ही दुःखदायिनी हुई। कर्ण के बल का ध्यान कर भीम के विषय में बहुत ही चिन्ता हुई, इस व्याकुलता में उस का धैर्य सर्वथा नष्ट हो गया, और अर्जुन पर इतना क्रोध आया, कि उस को ऐसा झिड़क बैठा, जैसा उस से कभी भी सम्भावित न था।

जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभं ॥ १ ॥ तस्य कोपं समुद्वीक्ष्य चित्तज्ञः केशवस्तदा । उवाच किमिदं पार्थ गृहीतःखड्ग इत्युत॥२॥ अपयातोसि कौन्तेय राजा द्रष्टव्य इत्यपि । स राजा भवता दृष्टः कुशली च युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ स दृष्ट्वा नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमं । हर्षकाले च संप्राप्ते किमिदं मोहकारितं ॥ ४ ॥ न तं पश्यामि कौन्तेय यस्ते वध्यो भविष्यति । प्रहर्तुमिच्छसे कस्मात किं वा ते चित्तविभ्रमः ॥ ५ ॥ अर्जुनः प्राह गोविन्दं क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् । अन्यस्मै देहि गांडीवमिति मां योऽभिचोदयेत ॥६॥ भिन्द्यामहं तस्य शिर इत्युपांशुव्रतं मम । तदुक्तं मम चानेन राज्ञामितपराक्रम ॥ ७ ॥ समक्षं तव गोविन्द न तत्क्षन्तुमिहोत्सहे । तस्मादेनं वधिष्यामि राजानं धर्मभीरुकं॥ ८ ॥ किं वा त्वं मन्यसे प्राप्तमस्मिन् काल उपस्थिते ॥ ९ ॥ कृष्ण उवाच—इदानीं पार्थ जानामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया । काले न पुरुषव्याघ्र संरम्भं यद्भवानगात ॥ १० ॥ न हि धर्मविभागज्ञः कुर्यादेवं धनञ्जय । यथा त्वं पाण्डवाद्येह धर्मभीरुरपण्डितः ॥ ११ ॥ अकार्याणां च क्रियाणां च संयोगं यः करोति वै । कार्याणामाक्रयाणां च स पार्थ पुरुषाधमः ॥ १२ ॥ अनुसृज्य तु ये धर्मं कथयेयुरुपस्थिताः। समासविस्तरविदां न तेषां वेत्सि निश्चयं ॥ १३ ॥ न हि कार्यमकार्यं वा सुखं ज्ञातुं कथञ्चन । श्रुतेन ज्ञायते सर्वं तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ १४ ॥ स कथं भ्रातरं ज्येष्ठं राजानं धर्मकोविदं । हन्याद् भवान् नरश्रेष्ठ प्राकृतोऽन्यः पुमानिव ॥ १५ ॥ अयुध्यमानस्य वधः तथाऽशत्रोश्च मानद । न वधः पूज्यते सद्भिस्तच्च सर्वं गुरौ तव ॥ १६ ॥ इदं धर्मरहस्यं च तव वक्ष्यामि पाण्डव । यद्ब्रूयात्तव भीष्मो हि पाण्डवो वा युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥ विदुरो वा

मैं उस का सिर फोड़ दूं, यह मेरा मन का व्रत है, वह मुझे इस राजा ने आप के सामने कहा है, मैं यह सहार नहीं सकता, इस लिए इस धर्मभीरु राजा को मारूंगा ॥ ६-८ ॥ अथवा ऐसे अवसर के आने पर आप क्या उचित समझते हैं ॥ ९ ॥ कृष्ण बोले-अब मैं जानता हूं, हे पार्थ तुम ने वृद्धों का सेवन नहीं किया, अतएव हे पुरुषवर अनवसर पर आप को जोश आया है॥१०॥ हे अर्जुन! धर्म का विभाग जानने वाला कोई भी ऐसा नहीं करेगा, जैसा कि तुम आज यहां धर्मभीरु अनजान बने हो ॥११॥ जो अकर्तव्य कर्तव्य को तथा कर्तव्याकर्तव्य को गड बड कर देता है, वह पुरुष [illegible] है ॥ १२ ॥ जो तह तक पहुंच कर धर्म का पूरा वर्णन कर सकें, उन संक्षेप विस्तार के समझने वालों के निश्चय को आप नहीं जानते हैं ॥ १३ ॥ कार्य वा अकार्य सुगमता से नहीं जाना जा सकता, शास्त्र से सब कुछ जाना जाता है, तुम उस को पूरा नहीं समझते हो ॥ १४ ॥ कैसे हे नरश्रेष्ठ आप अपने भाई, भाई भी ज्येष्ठ, तिस पर भी राजा, तिस पर भी धर्म के ज्ञाता को मारने को योग्य समझेंगे, जैसे कोई और प्राकृत पुरुष हो ॥ १५ ॥ हे मानद भले पुरुष सामने न लड़ते हुए के वध को और अशस्त्र के वध को निन्दित मानते हैं, यह सब तुम्हारे गुरु में है ॥ १६ ॥ हे पाण्डव यह मैं धर्म के रहस्य कहता हूं, जो तुझे भीष्म, वा युधिष्ठिर, वा विदुर वा यशस्विनी कुन्ती कह सकती है, वह तुझे तत्त्व से कहूंगा हे अर्जुन इस को समझो ॥ १७—१८ ॥ सत्य का जानने वाला पुण्यात्मा है, सत्य से बढ़ कर कुछ नहीं, पर वह उस का तत्त्व से जानना है बड़ा कठिन, देखो जैसा कि सत्य अनुष्ठान में आता है ॥ १९ ॥ दुर्लभ धर्म

तत्त्व को तर्क से निश्चय करता है, लोगों की वृद्धि के लिए धर्म का प्रवचन किया गया है ॥ २० ॥ धारण से धर्म कहते हैं, धर्म प्रजाओं का धारण करता है, जो धारणा से युक्त है, वह धर्म है, यह निश्चय है ॥ २१ ॥ प्राण संकट में, विवाह वा सारी ज्ञाति के वध संकट में वा हंसी की प्रवृत्ति में कहा हुआ झूठ नहीं माना जाता ॥ २२ ॥ धर्म के तत्त्व अर्थ को जानने वाले यहां पर अधर्म नहीं देखते हैं ॥ २३ ॥ जो चोरों से शपथ कर के भी बच जाता है, वहां झूठ कहना भला है, वह निःसंदेह सत्य ही है॥२४॥ जहां तक हो सके, किसी प्रकार भी उन को धन नहीं देना चाहिये, पापियों को धन दिया हुआ दाता को भी पीड़ित करता है ॥ २५ ॥ इस लिए धर्म के लिए झूठ कह कर झूठ का भागी नहीं होता, यह सुन कर अब हे अर्जुन कहो, यदि युधिष्ठिर वध्य है।२६।

मूल—अर्जुन उवाच—यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयान्महामतिः । हितं चैव यथास्माकं तथैतद्वचनं तव ॥ २७ ॥ अवध्यं पाण्डवं मन्ये धर्मराजं युधिष्ठिरं । अस्मिंस्तु मम संकल्पे ब्रूहि किञ्चिदनुग्रहं ॥ २८ ॥ कृष्ण उवाच—राजा श्रान्तो विक्षतो दुःखितश्च कर्णेन संख्ये निशितैर्बाणसंघैः । अतस्त्वमेतेन सरोषमुक्तो दुःखान्वितेनेदमयुक्तरूपं ॥ २९ ॥ अकोपितो ह्येष यदि स्म संख्ये कर्णं न हन्यादिति चाब्रवीत् सः । ततो वधं नार्हति धर्मपुत्रस्त्वया प्रतिज्ञाऽर्जुन पालनीया ॥ ३० ॥ जीवन्नयं येन मृतो भवेद्धि तन्मे निबोधेह तवानुरूपं ॥ ३१ ॥ यदा मानं लभते माननार्हस्तदा स वै जीवति जीवलोके । यदावमानं लभते महान्तं तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः ॥ ३२ ॥ संमानितः पार्थिवोऽयं सदैव त्वया च भीमेन तथा यमाभ्यां । वृद्धैश्च लोके पुरुषैश्च शूरैस्तथापमानं कलया प्र-

युक्ष्व ॥ ३३ ॥ त्वमित्यत्र भवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरं । त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत ॥ ३४ ॥ वधं ह्ययं पाण्डव धर्मराजस्त्वत्तोऽयुक्तं वेत्स्यते चैवमेवः । ततोऽस्य पादावभिवाद्य पश्चात्समं ब्रूयाः सान्त्वयित्वा च पार्थ ॥ ३५ ॥

अर्थ--अर्जुन बोला—जैसे कोई महाप्रज्ञ महामति उपदेश करे, और जिससे कि हमारा पूरा हित हो, वैसा यह वचन है ॥ २७ ॥ मैं धर्मराज युधिष्ठिर को अवध्य समझता हूं, पर मेरे इस संकल्प के (कि गांडीव और को दे दे, कहने वाले को मार डालूंगा) के विषय में कुछ अनुग्रह कीजिये ॥ २८ ॥ कृष्ण बोला—राजा थका हुआ रण में कर्णद्वारा तीव्र बाण संघात से विक्षत और दुःखित हुआ था, इस कारण दुःख से भरे हुए ने तुझे अयुक्त वचन कहे ॥ २९ ॥ कि कोप चढ़ाए बिना अर्जुन कर्ण को नहीं मारेगा, तब आप वध के योग्य नहीं है, हां हे अर्जुन तुमने प्रतिज्ञा पालनी है ॥ ३० ॥ सो जैसे यह जीता ही मर जाए, वह तुझ से जान, सो तेरे योग्य इन का मारना है ॥ ३१ ॥ मान के योग्य पुरुष जब मान पाता है, तब वह जीव लोक में जीता कहा जाता है, जब वह बड़ा अपमान पाता है, तब वह जीवन्मृत कहलाता है ॥ ३२ ॥ और राजा का तुमने भीम नकुल सहदेव दूसरे वृद्धों और शूरवीरों ने सदा मान किया है, सो अब तुम तनिकमात्र इस का अपमान कर दो ॥ ३३ ॥ हे अर्जुन इस पूजनीय को 'तू' कर के कहो, हे भारत गुरु को तू कहना उस का मारना है ॥ ३४ ॥ धर्मराज युधिष्ठिर तुझ से इस अयुक्त वचन को अपना वध ही समझेगा, पीछे इस के पादवन्दना करके और सान्त्वना दे कर समुचित वचन कहना ॥ ३५ ॥

अ० ८ (व० ७०–७१)

मूल—इत्येवमुक्तस्तु जनार्दने पार्थः प्रशस्याथ सुहृद्वचस्तत् । ततोऽब्रवीदर्जुनो धर्मराजमनुक्तपूर्वं परुषं प्रसह्य ॥ १ ॥ मा त्वं राजन् व्याहर व्याहरस्व यस्तिष्ठसे क्रोशमात्रे रणाद्वै । भीमस्तु मामर्हति गर्हणाय यो युध्यते सर्वलोकप्रवीरैः ॥ २ ॥ रथादव-प्लुत्य गदां परामृशंस्तया निहन्त्यश्वरथद्विपान् रणे । स भीमसे-नोऽर्हति गर्हणां मे न त्वं नित्यं रक्ष्यसे यः सुहृद्भिः ॥ ३ ॥ न चाभिनन्दामि तवाधिराज्यं यतस्त्वमक्षेष्वहिताय सक्तः । स्वयं कृत्वा पापमनार्यजुष्टमस्माभिर्वा भर्तुमिच्छस्यधीमन् ॥ ४ ॥ अक्षेषु दोषा बहवो विधर्माः श्रुतास्त्वया सहदेवोऽब्रवीद् यान् । तान् नैषि त्वं त्यक्तुमसाधुजुष्टांस्तेन स्म सर्वे निरयं प्रपन्नाः ॥ ५ ॥ शेते-ऽस्माभिर्निहता शत्रुसेना छिन्नैर्गात्रैर्भूमितले नदन्ती । त्वया हि तत्कर्मकृतं नृशंसं यस्माद्दोषः कौरवाणां वधश्च ॥ ६ ॥ त्वं देविता त्वत्कृते राज्यनाशस्त्वत्सम्भवं नो व्यसनं नरेन्द्र । मास्मान् क्रूरैर्वाक्प्रतोदैस्तुदंस्त्वं भूयो राजन् कोपयेस्त्वल्पभाग्यः ॥ ७ ॥ एतावाचः परुषाः सव्यसाची स्थिरप्रज्ञः श्रावयित्वा तु रूक्षाः । बभूवासौ विमना धर्मभीरुः कृत्वा प्राज्ञः पातकं किञ्चिदेवं ॥८॥ तदानुतेपे सुरराजपुत्रो विनिःश्वसंश्चासिमथोद्ववर्ह । तमाह कृष्णः किमिदं पुनर्भवान् विकोशमाकाशनिभं करोत्यसिं ॥ ९ ॥ ब्रवीहि मां त्वं पुनरुत्तरं वचस्तथा प्रवक्ष्याम्यहमर्थसिद्धये । इत्येवमुक्तः पुरुषोत्तमेन सुदुःखितः केशवमर्जुनोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ अहं हनि-ष्ये स्वशरीरमेव प्रसह्य येनाहितमाचरं वै । निशम्य तत्पार्थवचो ब्रवीदिदं धनञ्जयं धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ ११ ॥ राजानमेनं त्वमितीद-

मुक्त्वा किं कश्मलं प्राविशः पार्थघोरं । त्वं चात्मानं हन्तुमिच्छस्यरिघ्न नेदं सद्भिः सेवितं वै किरीटिन् ॥ १२ ॥ सूक्ष्मो धर्मो दुर्विदश्चापि पार्थ विशेषतोऽज्ञैः प्रोच्यमानं निबोध । हत्वात्मानमात्मना प्राप्नुयास्त्वं वधाद्भ्रातुर्नरकं चातिघोरं ॥ १३ ॥ ब्रवीहि वाचाद्य गुणानिहात्मनस्तथा हतात्मा भवितासि पार्थ। तथास्तु कृष्णे त्यभिनन्द्य तद्वचो धनञ्जयः प्राह धनुर्विनाम्य ॥ १४ ॥ न मादृशोऽन्यो नरदेव विद्यते धनुर्धरो देव मृते पिनाकिनं।अहं हि ते नानुमतो महात्मा क्षणेन हन्यां सचराचरं जगत् ॥ १५ ॥ मया हि राजन् सदिग्भिः दिशो विजित्य सर्वा भवतः कृता वशे । स राजसूयश्च समाप्तदक्षिणः सभा च दिव्या भवतो ममौजसा ॥ १६ ॥ पाणौ पृषत्का निशिता ममैव धनुश्च सज्यं विततं सबाणं । ये चास्त्रज्ञास्तानहं हन्मि चास्त्रैस्तस्माल्लोकानेष करोमि भस्म ॥ १७ ॥

अर्थ—कृष्ण से ऐसे कहा हुआ अर्जुन सुहृद् के उस वचन का आदर कर धर्मराज को दबा कर ऐसे कठोर वचन कहने लगा, जैसे पूर्व कभी न कहे थे ॥ १ ॥ हे राजन् ! तू ऐसा वचन मत कहो, जो कि रण से कोस भर दूर ठहरा हुआ है, भीम मुझे ऐसा झिड़क सकता है, जो सारी भूमि में चुने हुए वीरों से लड़ रहा है ॥ २ ॥ जो रथ से कूद कर गदा हाथ में ले रण में हाथी घोड़े और रथों को मार रहा है, वह भीमसेन मुझे झिड़क सकता है, तू नहीं, जो प्रतिदिन अपने सुहृदों से रक्षा किया जाता है ॥ ३ ॥ मैं तेरे साम्राज्य की प्रशंसा नहीं करता क्योंकि तू हमारे अहित के लिए पासों में फंस गया । अनार्यों से सेवित पाप को स्वयं कर के अब हमारे द्वारा तू शत्रुओं के पार होना चाहता है ॥ ४ ॥ पासों में बहुत से धर्मविरुद्ध दोष जो सहदेव ने कहे वह

तूने सुने, तौ भी असत्पुरुषों से सेवित पापों को तू न छोड़ सका इस से हम सब नरक में पड़े हैं ॥ ५ ॥ हम से मारी हुई शत्रु-सेना टूटे हुए अंगों से भूमि तल पर शब्द करती हुई लेटी है, तू ने ही यह क्रूर कर्म किया है, जिस से कौरवों का वधरूपी दोष सामने आया है ॥ ६ ॥ तू जुआ खेला, तेरे निमित्त राज्य का नाश हुआ, तूने हमें विपत्ति में डाला, थोड़े भाग्यों वाला तू क्रूर वाणी रूपी चाबुकों से पीड़ा देता हुआ मत फिर कभी किसी को क्रुद्ध करे ॥ ७ ॥ सदा स्थिरमति अर्जुन यह कठोर रूखी वाणियें सुना कर वह धर्मभीरु बुद्धिमान् इस प्रकार का कुछ पाप सा करके विमन होगया ॥ ८ ॥ अर्जुन को बड़ा पश्चात्ताप हुआ दीर्घ सांस लेते हुए उस ने तलवार निकाली, उसी समय कृष्ण फिर उस से बोले, यह क्या फिर यह आकाश तुल्य तलवार को म्यान से निकाल रहे हो ॥ ९ ॥ फिर तुम मुझे उत्तर वाक्य कहो, मैं भी उस में अर्थसिद्धि के वचन कहूंगा. कृष्ण से यह सुन कर अर्जुन अत्यन्त दुःखित हुआ कृष्ण से बोला ॥१०॥ मैं अपने शरीर का हनन करूंगा, जिस से मैंने अहित का आचरण किया है । अर्जुन के इस वचन को सुन कर धर्मधारियों में उत्तम कृष्ण अर्जुन से यह वचन बोले ॥ ११ ॥ राजा को इस प्रकार कह कर हे अर्जुन फिर तू कैसे घोर व्यामोह में पड़ा है, हे शत्रुओं के नाशक तुम अपना हनन करना चाहते हो, हे अर्जुन यह धर्मात्माओं से सेवित नहीं है ॥ १२ ॥ हे पार्थ धर्म बड़ा सूक्ष्म है, अतएव दुर्ज्ञेय है, विशेषतः, अनजानों के लिए, वह मैं तुझे कहता हूं, समझ, अपने आप मार कर तुम भाई के वध से अतिघोर नरक को प्राप्त होगे ॥ १३ ॥ अपने मुंह से अपने

गुण कहो, इस प्रकार हे अर्जुन तुम अपना वध करोगे, अर्जुन 'तथास्तु कृष्ण' कह कर उस के वचन का आदर करके धनुष को झुका कर बोला ॥ १४ ॥ हे नरदेव महादेव से भिन्न मेरे सदृश कोई धनुर्धारी नहीं है, मैं राजा की अनुमति से क्षण भर में चराचर जगत् को मार सकता हूं ॥ १५ ॥ मैंने हे राजन् ! दिशाओं के स्वामियों समेत सारी दिशाएं जीत कर आप के वश में की हैं, मेरे बल से वह राजसूय समाप्त हुआ और दिव्य सभा बनी ॥ १६ ॥ मेरे ही हाथ में तीव्र बाण हैं, मेरा धनुष बाणों समेत तना हुआ है, जो अस्त्रज्ञ हैं उन को मैं अस्त्रों से मारता हूं, मैं इन लोकों को भस्म कर दूं ॥ १७ ॥

मूल—इत्येवमुक्त्वा पुनरेव पार्थो युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठं। स व्रीडया नम्रशिराः किरीटी युधिष्ठिरं प्राञ्जलिरभ्युवाच ॥१८॥ प्रसीद राजन् क्षम यन्मयोक्तं काले भवान् वेत्स्यति तन्नमस्ते । याम्येष भीमं समरात्प्रमोक्तुं सर्वात्मना सूतपुत्रं च हन्तुं ॥ १९ ॥ तव प्रियार्थं मम जीवितं हि ब्रवीमि राजन् तदवेहि सत्यं । इति प्रयास्यन्नुपगृह्य पादौ समुत्थितो दीप्ततेजाः किरीटी॥ २० ॥ एतच्छ्रुत्वा पाण्डवो धर्मराजो भ्रातुर्वाक्यं परुषं फाल्गुनस्य । उत्थाय तस्माच्छयनादुवाच पार्थं ततो दुःखपरीतचेताः ॥ २१ ॥ कृतं मया पार्थ यथा न साधु येन प्राप्तं व्यसनं वः सुघोरं । योग्यो राजा भीमसेनो महात्मा क्लीबस्य वा मम किं राजकृत्यं ॥ २२ ॥ न चापि शक्तः परुषाणि सोढुं पुनस्तवेमानि रुषान्वितस्य । भीमोऽस्तु राजा मम जीवितेन न कार्यमद्यावमतस्य वीर ॥ २३ ॥ इत्येवमुक्त्वा सहसोत्पपात राजा ततस्तच्छयनं विहाय । इयेष निर्गन्तुमथो वनाय तं वासुदेवः प्रणतोऽभ्युवाच ॥ २४ ॥ राजन् विदित-

मेतद्धि यथा गांडीवधन्विनः । प्रतिज्ञा सत्यसन्धस्य गांडीवं प्रति विश्रुता ॥ २५ ॥ ब्रूयाद्य एवं गांडीवमन्यस्मै दीयतामिति । वध्योऽस्य स पुमांल्लोके त्वया चोक्तोयमीदृशं ॥ २६ ॥ ततः सत्यां प्रतिज्ञां तां पार्थेन परिरक्षता । मच्छन्दादवमानोयं कृतस्तव महीपते ॥ २७ ॥ गुरूणामवमानो हि वध इत्यभिधीयते॥२८॥ तस्मात्त्वं वै महाबाहो मम पार्थस्य चोभयोः । व्यतिक्रममिमं राजन् सत्यसंरक्षणं प्रति ॥ २९ ॥ शरणं त्वां महाराज प्रपन्नौ स्व उभावपि । क्षन्तुमर्हसि मे राजन् प्रणतस्याभि याचतः ॥ ३० ॥ राधेयस्याद्य पापस्य भूमिः पास्यति शोणितं । सत्यं ते प्रतिजानामि हतं विद्ध्यद्य सूतजं ॥ ३१ ॥

अर्थ--इतना कह कर अर्जुन फिर लज्जा से सिर नीचे किये हाथ जोड़ धर्मधारियों में श्रेष्ठ कृष्ण से बोले ॥ १८ ॥ प्रसन्न हो हे राजन् क्षमा करो जो मैंने कहा है, समय पर आप वह कार्य जानेंगे, आप को नमस्कार हो, यह अब मैं भीम को संग्राम से छुड़ाने के लिए और कर्ण को सर्वात्मा से मारने के लिए जाता हूं ॥ १९ ॥ मैं कहता हूं मेरा जीवन आप के प्रिय के लिए है हे राजन् आप इस को सत्य जानें, इस प्रकार चलने लगा अर्जुन भाई के चरण पकड़ कर अति तेजस्वी होकर उठा॥२०॥ पर युधिष्ठिर छोटे भाई अर्जुन के उन पहले कठोर वचनों को सुन कर दुःख से भरे चित्त वाला उस शयन से उठ कर बोला ॥ २१ ॥ सचमुच हे अर्जुन मैंने भला नहीं किया, जिस से तुम घोर विपत्ति में पड़े हो, महात्मा भीमसेन ही योग्य राजा है, मुझ क्लीव को राजकार्य से क्या ॥ २२ ॥ और न ही क्रोध से भरे हुए तुझ के मैं इन कठोर वचनों को सह सक्ता हूं, भीम राजा हो,

हे वीर आज अपमानित हुए मुझ को जीने से प्रयोजन नहीं॥२३॥ यह कह कर राजा उस शयन को छोड़ कर झट उतर आया, और वन जाने की इच्छा की, तब कृष्ण उसे प्रणाम कर बोले ॥२४॥ हे राजन् यह आप को विदित है, कि सत्यप्रतिज्ञ अर्जुन ने गांडीव के विषय में यह प्रतिज्ञा की हुई है ॥ २५ ॥ कि जो मुझे यह कहे, कि गांडीव किसी अन्य को दे दे, वह पुरुष लोक में इस का वध्य होगा, और तुम ने उसे ऐसे कहा ॥ २६ ॥ तब उस सत्यप्रतिज्ञा की रक्षा करते हुए अर्जुन ने मेरे अभिप्राय से आप का यह अपमान किया है ॥ २७ ॥ बड़ों का अपमान ही उन का वध कहलाता है ॥ २८ ॥ इस लिए तुम हे महाबाहो मेरा और अर्जुन का दोनों का यह अपराध, जो सत्य की रक्षा के लिए हुआ है, उस के लिए हम दोनों तुम्हारी शरण में पड़े हैं, हे राजन् मुझ प्रणत हुए याचना करते हुए को क्षमा कीजिये॥२९-३० ॥ आज भूमि पापी कर्ण का लहू पियेगी, आप से सत्यप्रतिज्ञा करता हूं, कर्ण को मरा जानो ॥ ३१ ॥

मूल—इति कृष्णवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः । ससम्भ्रमं हृषीकेशमुत्थाप्य प्रणतं तदा ॥ ३२ ॥ कृताञ्जलिस्ततो वाक्यमुवाचानन्तरं तदा । एवमेव यथात्थ त्वमस्त्येषोऽतिक्रमो मम ॥ ३३ ॥ अनुनीतोस्मि गोविन्द तारितश्चास्मि माधव । मोचिता व्यसनाद्घोराद्वयमद्य त्वयाच्युत ॥ ३४ ॥ त्वद्बुद्धिप्लवमासाद्य दुःखशोकार्णवाद्वयं । समुत्तीर्णाः सहामात्याः सनाथाः स्म त्वयाच्युत ॥ ३५ ॥ ततोऽब्रवीद्वासुदेवः प्रहसन्निव पाण्डवं । कथं नाम भवेदेतद् यदि त्वं पार्थ धर्मजं ॥३६ ॥ असिना तीक्ष्णधारेण हन्या धर्मे व्यवस्थितं । त्वामित्युक्त्वाथ राजानमेवं कश्मलमाविशः॥३७॥

हत्वा तु नृपतिं पार्थ आकरिष्यः किमुत्तरं । एवं हि दुर्विदो धर्मो मन्दप्रज्ञैर्विशेषतः ॥ ३८ ॥ स त्वं धर्मभीरुत्वाद् ध्रुवमैष्यन्महत्तमः। नरकं घोररूपं च भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वै वधात् ॥ ३९ ॥ स त्वं धर्मभृतां श्रेष्ठ राजानं धर्मसंहितं । प्रसादय कुरुश्रेष्ठमेतदत्र मतं मम ॥४०॥ प्रसाद्य भक्तया राजानं प्रीतं चैव युधिष्ठिरे । [illegible] योद्धुं सूतपुत्ररथं प्रति ॥ ४१ ॥ हत्वा तु समरे कर्णं त्वमद्य निशितैः शरैः । विपुलां प्रीतिमाधत्स्व धर्मपुत्रस्य मानद ॥ ४२ ॥ ततोऽर्जुनो महाराज लज्जया वै समन्वितः । धर्मराजस्य चरणौ प्रपद्य शिरसा नतः॥ ४३ ॥ उवाच भरतश्रेष्ठं प्रसीदेति पुनः पुनः॥४४॥ युधिष्ठिर उवाच—एह्येहि पार्थबीभत्सो मां [illegible] पाण्डव । वक्तव्य मुक्तोऽस्मि हितं त्वया क्षान्तं च तन्मया ॥ ४५ ॥ तस्य राजा महाप्राज्ञो धर्मराजो युधिष्ठिरः । आक्षिपोऽपृच्छ स तदा यायात्कर्णरथंप्रति ॥ ४६ ॥

अर्थ—कृष्ण के इस वचन को सुन कर धर्मराज युधिष्ठिर प्रणत हुआ कृष्ण को बड़े आदर से उठ कर हाथ जोड़ यह वचन बोले । ऐसे ही है, जैसा आप कहते हैं, यह मुझ से अपराध हुआ है ॥ ३२—३३ ॥ हे गोविन्द आप ने मुझे तसल्ली दी है, और पार लगाया है, हे अच्युत आज तुमने मुझे घोर व्यसन से छुड़ाया है ॥ ३४ ॥ हे अच्युत ! आप की बुद्धिरूपी नौका को पा कर हम साथियों समेत दुःख शोक के समुद्र से पार हुए हैं, आप से हम सनाथ हैं ॥ ३५ ॥ उस समय हंसते हुए कृष्ण अर्जुन से बोले, अब बताओ यह क्या होता, यदि तुम हे अर्जुन तीक्ष्ण धारा वाली तलवार से धर्म में स्थित युधिष्ठिर को मार डालते, तू कहने से राजा को ऐसा शोक छा गया है ॥३६-३७॥

हे अर्जुन राजा को यदि तुम मार डालते, तो कहो क्या उत्तर देते, इस प्रकार धर्म दुर्ज्ञेय है, विशेषतः मन्दबुद्धियों से ॥ ३८ ॥ सो तुम धर्मभीरु हो कर बड़े भाई का वध करने से निःसंदेह बड़े अन्धकार रूप घोर नरक में पड़ते ॥ ३९ ॥ सो तुम हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ धर्म प्रिय राजा को प्रसन्न कर, यही यहां मेरा निश्चय है ॥ ४० ॥ भक्ति से राजा को प्रसन्न करो, राजा के प्रसन्न होने पर फिर शीघ्र युद्ध के लिए कर्ण के रथ की ओर चढ़ेंगे ॥ ४१ ॥ तुम आज अपने तीव्र बाणों से रण में कर्ण का वध कर के धर्मपुत्र की बड़ी प्रीति उत्पन्न करो ॥ ४२ ॥ तब हे महाराज लज्जा से युक्त हुआ अर्जुन युधिष्ठिर के चरण पकड़ सिर से झुक पड़ा ॥ ४३ ॥ और उस भरतवर को प्रसन्न हो, यह बार २ कहा ॥ ४४ ॥ युधिष्ठिर बोले—आओ आओ हे अर्जुन मेरी छाती से लगो, कहने योग्य हित तुमने मुझे कहा है, वह मैंने तुझे क्षमा किया ॥ ४५ ॥ तब महाप्राज्ञ धर्मराज युधिष्ठिर ने उस को आशीर्वाद दिये और कर्ण रथ की ओर चढ़ गया ॥ ४६ ॥

अ०९(व०७२-७४) कृष्ण का अर्जुन को प्रोत्साहन

मूल—प्रयातस्याथ पार्थस्य महान् स्वेदो व्यजायत । चिन्ता च विपुला जज्ञे कथं चेदं भविष्यति ॥ १ ॥ ततो गांडीवधन्वानमब्रवीन्मधुसूदनः । दृष्ट्वा पार्थं तथा यान्तं चिन्तापरिगतं तदा ॥ २ ॥ गांडीवधन्वन् संग्रामे ये त्वया धनुषा जिताः । न तेषां मानुषो जेता त्वदन्य इह विद्यते ॥ ३ ॥ को हि द्रोणं च भीष्मं च भगदत्तं च मारिष । विन्दानुविन्दा वावन्त्यौ कांबोजं च सुदक्षिणं ॥ ४ ॥ मत्युद्गम्य भवेत्क्षेमी योनस्यात् त्वमिव प्रभो॥५॥

तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि लाघवं बलमेव च । असंमोहश्च युद्धेषु विज्ञानस्य च संनतिः॥ ६ ॥ वेधः पातश्च लक्षेषु गांडीवं च महद्धनुः । येन त्वं युध्यसे पार्थ तस्मान्नास्ति त्वया समः ॥ ७ ॥ अवश्यं तु मया वाच्यं यत्पथ्यं तव पाण्डव । मावमंस्था महाबाहो कर्णमाहवशोभिनं ॥ ८ ॥ कर्णो हि बलवान् दृप्तः कृतास्त्रश्च महारथः । कृती च चित्रयोधी च देशकालस्य कोविदः ॥ ९ ॥ अभिमानी च शूरश्च प्रवीरः प्रियदर्शनः। सर्वयोधगुणैर्युक्तो मित्राणामभयंकरः ॥ १० ॥ आत्मानं मन्यते वीरं येन पापः सुयोधनः । तमद्य मूलं पापानां जहि सौतिं धनञ्जय ॥ ११ ॥ भवता तु बलं सर्वं धार्तराष्ट्रस्य वारितं । ततो द्रोणो हतो युद्धे पार्षतेन धनञ्जय ॥ १२ ॥ यादृशं ते कृतं पार्थ जयद्रथवधं प्रति । एवं वा को रणे कुर्यात् त्वदन्यो क्षत्रियो युधि ॥ १३ ॥ आश्चर्यं सिन्धुराजस्य वधं जानन्ति पार्थिवाः । अनाश्चर्यं हि तत् त्वत्तस्त्वं हि पार्थ महारथः ॥ १४ ॥ त्वां हि प्राप्य रणे क्षत्रमेकाह्नादिति भारतं । नश्यमानमहं युक्तं मन्येयमपि मे मतिः ॥ १५ ॥ इमं पापमतिं क्षुद्रमत्यन्तं पाण्डवान् प्रति । कर्णमद्य नरश्रेष्ठ जह्याः सुनिशितैः शरैः ॥ १६ ॥ दहने यत्सपुत्राया निशि मातुस्तवानघ । द्यूतार्थे यच्च युष्मासु प्रावर्तत सुयोधनः ॥ १७ ॥ तस्य सर्वस्य दुष्टात्मा कर्णो वै मूलमित्युत । कर्णाद्धि मन्यते त्राणं नित्यमेव सुयोधनः॥ १८ ॥ ततो मामपि संरब्धो निग्रहीतुं प्रचक्रमे॥१९॥ स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्रस्य धार्तराष्ट्रस्य मानद । कर्णः पार्थान् रणे सर्वान् विजेष्यति न संशयः ॥ २० ॥ कर्णो हि भाषते नित्यमहं पार्थान् समागतान् । वासुदेवं च दाशार्हं विजेष्यामि महारथं॥२१॥

प्रोत्साह यन्दुरात्मानं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिः । सञ्जितो गर्जते कर्णस्त-मद्य जहि भारत ॥ ४४ ॥

अर्थ—अर्जुन को जाते हुए बड़ा पसीना आया, और चिन्ता बड़ी उत्पन्न हुई, कैसे यह (कार्य) होगा ॥ १ ॥ तब कृष्ण अर्जुन को उस दशा में और चिन्ता से पूर्ण देख कर उस से बोले ॥ २ ॥ हे गांडीव धनुष वाले तुमने जो संग्राम में योधे जीते हैं, उन को तेरे बिना युद्ध में कोई और जीतने वाला नहीं था ॥ ३ ॥ कौन हे वीर द्रोण भीष्म भगदत्त अवन्ति के विन्द अनुविन्द और कंबोज के सुदक्षिण के सामने जा कर कुशल से लौट सकता है, जो तेरे ही जैसा न हो, हे समर्थ ॥ ४—५ ॥ तुम्हारे दिव्य अस्त्र, फुर्ती, बल, युद्ध में न घबराना, विज्ञान की विशेषता, बींधना और लक्ष्यों पर ठीक निशाना, और बड़ा धनुष गांडीव, जिस से तुम युद्ध करते हो, इन में हे पार्थ तुम्हारे तुल्य कोई नहीं ॥ ६—७ ॥ किन्तु हे पाण्डव वह युद्ध अवश्य करनी चाहिये, जो तुम्हारे भले की बात है, हे महाबाहो ! रणबांकुरे कर्ण को बेपरवाही से मत देखो ॥ ८ ॥ कर्ण बलवान्, गर्ववाला, अस्त्रों में निपुण, विद्वान्, युद्ध के भिन्न २ प्रकार जानने वाला देशकाल का जानने वाला ॥ ९ ॥ अभिमानी शूरवीर, सुन्दराकृति, योधों के समस्त गुणों से युक्त, मित्रों को अभय करने वाला है ॥ १० ॥ जिस से पापी दुर्योधन अपने को वीर मानता है, उस पापों के मूल कर्ण को आज मारो ॥ ११ ॥ तुमने जब दुर्योधन की सारी सेना को रोका था, तब धृष्टद्युम्न द्रोण को मार सका था ॥ १२ ॥ हे अर्जुन जैसा काम तुमने जयद्रथ के वध के लिए किया था, इस प्रकार का तेरे बिना और कौन क्षत्रिय कर

सुयोधनो दृष्ट्वा हतमाधिरथिं त्वया । निराशो जीविते त्वद्य राज्ये चैव भवत्वरिः ॥ २९ ॥ एते द्रवन्ति पञ्चाला वध्यमानाः शितैः शरैः । कर्णेन भरतश्रेष्ठ पाण्डवानुज्जिहीर्षवः ॥ ३० ॥ तमद्य निशितैर्बाणैर्विनिहत्य नरर्षभ । यथाप्रतिज्ञं पार्थ त्वं कृत्वा कीर्तिमवाप्नुहि ॥ ३१ ॥ स केशवस्य बीभत्सुः श्रुत्वा भारत भाषितं । विशोकः संप्रहृष्टश्च क्षणेन समपद्यत ॥ ३२ ॥ ततो ज्यामभिमृज्याशु व्याक्षिपद्गाण्डिवं धनुः । दध्रे कर्ण विनाशाय केशवं चाभ्यभाषत ॥ ३३ ॥ त्वया नाथेन गोविन्द ध्रुव एव जयो मम ॥ ३४ ॥ त्वत्सहायो ह्यहं कृष्ण त्रींल्लोकान् वै समागतान् । प्रापयेयं परं लोकं किमु कर्ण महाहवे ॥ ३५ ॥ अयं खलु स संग्रामो यत्र कर्णं मया हतं । कथयिष्यन्ति भूतानि यावद् भूमिर्धरिष्यति ॥ ३६ ॥ धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां पञ्चालानां च माधव । अद्यानृण्यं गमिष्यामि कर्ण हत्वा महाहवे ॥ ३७ ॥ इत्येवमुक्त्वाऽर्जुन एकवीरः क्षिप्रं रिपुघ्नः क्षतजोपमाक्षः । भीमं मुमुक्षुः समरे प्रयातः कर्णस्य कायाच्च शिरो जिहीर्षुः ॥ ३८ ॥

अर्थ—और जो अर्जुन के छः क्रूर महारथियों से वीर अभिमन्यु का मारा जाना हुआ है ॥ २३ ॥ वह मेरे अंगों को जला रहा है, हे सखे मैं सत्य की शपथ करता हूं ॥ २४ ॥ और जो कर्ण ने सभा के अन्दर कौरवों और पाण्डवों के सामने दुर्जनवत कठोर वचन कहे । हे शोभने तू दासभार्या और स्वयं दासी है ॥ २५–२६ ॥ आज इस पापी के उस वचन को शिला पर साने हुए जीवन के काटने वाले तेरे सौवर्ण बाण ठंडा करें॥२७॥ आज तेरे बाणों से पीड़ित हुए दीन हो हा हा करते उदास हुए राजे कर्ण को रथ से गिरता हुआ देखें ॥ २८ ॥ तब दुर्योधन

शत्रु कर्ण को तुझ से मारा गया देख कर आज जीने में और राज्य में निराश हो ॥ २९ ॥ वह देखो हे भारत ! पाण्डवों का उद्धार करना चाहने वाले पञ्चाल कर्ण के तीखे बाणों से पीड़ित हुए भाग रहे हैं ॥ ३० ॥ सो आज हे पार्थ तीखे बाणों से कर्ण को मार कर प्रतिज्ञा को पूरा कर के कीर्ति को प्राप्त हो ॥ ३१ ॥ हे भारत अर्जुन कृष्ण के वचन को सुन कर शोक से हीन हुआ और प्रसन्न हुआ ॥ ३२ ॥ फिर चिल्ले को पोंछ कर गांडीव धनुष को फिराया, और कर्ण के नाश के लिए हाथ में धारण किया, और कृष्ण से बोला ॥ ३४ ॥ तुझ नाथ से हे गोविन्द मेरा विजय अटल है ॥ ३४ ॥ आप की सहायता से हे कृष्ण मैं तीनों लोकों को परलोक दिखादूं, क्या फिर इस महासंग्राम में कर्ण को ॥ ३५ ॥ यह वह संग्राम है, जिस में मुझ से कर्ण का मारा जाना लोग कहा करेंगे. जब तक भूमि रहेगी ॥ ३६ ॥ आज हे माधव इस महासंग्राम में कर्ण को मार कर धृष्टद्युम्न शिखण्डी और सारे पंचालों का अनृण हूंगा ॥ ३७ ॥ यह कह कर एक वीर शत्रुओं के मारने वाला लाल आंखों वाला अर्जुन भीम को छुड़ाने और कर्ण के धड़ से उस का सिर उड़ाने के लिए संग्राम में पहुंचा ॥ ३८ ॥

अ० १० (व० ८२ ८५) दुःशासन और वृषसेन का वध

मूल—तत्रान्तरे सुमहान् सूतपुत्रश्चक्रे युद्धं सोमकान् संप्रगृह्य । रथाश्वमातंगगणान् जघान प्रच्छादयामास शरैर्दिशश्च ॥ १ ॥ तमुत्तमौजा जनमेजयश्च क्रुद्धौ युधामन्युशिखण्डिनौ च । कर्णं बिभिदुः सहिताः पृषत्कैः संमर्दमानाः सह पार्षतेन ॥ २ ॥ स शक्र-

हां ॥ ३ ॥ तब आप के शत्रुओं का आप के सैनिकों के साथ रथ हाथी घोड़ों का नाशक बड़ा दारुण युद्ध हुआ, जैसे पहले देवताओं का दैत्यों से हुआ था ॥४॥ इसी अवस्था में आप का पुत्र राजा का छोटा भाई (दुःशासन) निर्भय हो कर बाण छोड़ता हुआ भीम की ओर दौड़ा, भीम भी शीघ्रता से उस की ओर दौड़ा, जैसे सिंह बड़े रुरु की ओर ॥ ५ ॥ एक दूसरे पर क्रुद्ध उन तेजस्वियों का इन्द्र और शम्बर की नाईं प्राणों पर खेलते हुओं का बड़ा दारुण युद्ध हुआ ॥ ६ ॥ अनन्तर भीम ने शीघ्रता से दो क्षुरों से वीर पुत्र का धनुष और झंडा काट दिया, एक बाण से उस के ललाट को फोड़ा, और एक से उस के सारथि का सिर काट दिया ॥ ७ ॥ तब उस राजपुत्र ने और धनुष ले कर बारह बाणों से भीम को सिद्ध किया, और आप ही घोड़ों को भी संभालते हुए भीम पर दृढ़ बाणों की झड़ी लगा दी ॥ ८ ॥ और सूर्य की किरणों के तुल्य चमकता हुआ सुवर्ण हीरे और रत्नों से भूषित इन्द्र के वज्रपात की भांति दुःसह, भीम के शरीर के फोड़ने में समर्थ बाण छोड़ा ॥ ९ ॥ उस से भीम का शरीर छिद गया और मरे की भांति भुजा फैला कर रथ पर गिर पड़ा, फिर होश संभाल कर सिंहनाद करने लगा ॥ १० ॥

मूल—चुक्रोध भीमः पुनराशु तस्मै मृधं प्रजज्वाल रुषाभिवीक्ष्य । स विक्षरन्नाग इव प्रभिन्नो गदामस्मै तुमुलां प्राहिणोद्वै ॥ ११ ॥ तया हतः पतितो वेपमानो दुःशासनो गदया वेगवत्या । विध्वस्तवर्मा भरणाम्बरस्रग् विचेष्टमानो भृशवेदनातुरः ॥ १२ ॥ दुःशासनं पाण्डवाः प्रेक्ष्य सर्वे हृष्टाः शब्दान् सिंहनादानमुञ्चन् ।

भीमोपि वेगादवतीर्यमानादुदुःशासनं वेगवानभ्यधावत् ॥ १३ ॥ स्मृत्वाथ केशग्रहणं च देव्या वस्त्रापहारं च रजस्वलायाः । अनागसो भर्तृपराङ्मुखाया दुःखानि दत्तान्यपि विप्रचिन्त्य ॥ १४ ॥ जज्वाल क्रोधादथ भीमसेन आज्यप्रसक्तो हि यथा हुताशनः । तत्राह कर्णं च सुयोधनं च कृपं द्रौणिं कृतवर्माणमेव ॥ १५ ॥ निहन्मि दुःशासनमद्य पापं संरक्षतामद्य समस्तयोधाः । इत्येवमुक्त्वा सहसाऽभ्यधावन्निहन्तुकामोऽतिबलस्तरस्वी ॥ १६ ॥ तथा तु विक्रम्य रणे वृकोदरो महागजं केसरिको यथैव । असिं समुद्यम्य सितं सुधारं कण्ठे पदाक्रम्य च वेपमानं ॥ १६ ॥ उत्कृत्य वक्षः पतितस्य भूमावथापिबच्छोणितमस्य कोष्णं । सत्यां चिकीर्षुर्मतिमान् प्रतिज्ञां भीमोऽपिबच्छोणितमस्य कोष्णं ॥ १८ ॥ ये भीमसेनं ददृशुस्तदानीं भयेन तेपि व्यथिता निपेतुः । ये चापि नासन् व्यथिता मनुष्यास्तेषां करेभ्यः पतितं हि शस्त्रं ॥ १९ ॥ तस्मिन् कृते भीमसेनेन रूपे दृष्ट्वा जनाः शोणितं पीयमानं । संप्राद्रवंश्चित्रसेनेन सार्धं भीमं रक्षो भाषमाणा भयार्ताः ॥ २० ॥ भीमोपि हत्वा तत्रैव दुःशासन ममर्षणं । पूरयित्वाञ्जलिं भूयो रुधिरस्योग्रनिःस्वनः ॥ २१ ॥ शृण्वतां लोकवीराणामिदं वचनमब्रवीत् । एष ते रुधिरं कण्ठात् पिबामि पुरुषाधम ॥ २२ ॥ ब्रूहि त्विदानीं संहृष्टः पुनर्गौरिति गौरिति ॥ २३ ॥ ये तदास्मान् प्रनृत्यन्ति पुनर्गौरिति गौरिति । तान् वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति ॥ २४ ॥

अर्थ—भीम फिर उस पर बड़ा क्रुद्ध हुआ, और क्रोध से उस की ओर देख कर अत्यन्त चमका । और मद चूते हाथी

की भांति रुधिर झरते हुए ने उम तुमुल रण में उस की ओर गदा फैंकी ॥ ११ ॥ उस वेगवती गदा से चोट खा कर दुःशासन कांपता हुआ गिर पड़ा, उस के कवच भूषण वस्त्र और माला नष्ट होगए और भारी पीड़ा से पीड़ित हुआ लौटने लगा ॥ १२ ॥ दुःशासन को देख कर सारे पाण्डव और पाञ्चाल प्रसन्न हो कर सिंहनाद करने लगे, भीम भी झटपट यान से उतर कर वेग से उस की ओ दौड़ा ॥ १३ ॥ भीम को वह बात स्मरण आई, जो कि दुःशासन ने निरपराध रजस्वला द्रौपदी के केश पकड़े थे और वस्त्र खींचा था और भी दिये हुए दुःख स्मरण आए ॥ १४ ॥ इस से भीमसेन क्रोध मे घृत से अग्नि की नाई चमका, और कर्ण दुर्योधन कृपाचार्य अश्वत्थामा और कृतवर्मा को सुना कर ॥ १५ ॥ मैं इस पापी दुर्योधन को आज मारता हूं, हे सारे योधाओ इस की आज रक्षा करो, यह कह कर वह महाबली वेग से उस को मारने के लिए दौड़ा ॥ १६ ॥ शेर जैसे महागज को, इस प्रकार भीम ने रण में दुःशासन को जा दबाया, तीखी धार वाली तलवार खींच ली, और उस कांपते हुए के गले पर पाओं रख कर, पृथिवी पर गिरे हुए की छाती को काट कर उस का कोष्ण रुधिर पिया, भीम ने अपनी प्रतिज्ञा को सच्चा करने की इच्छा से उस का कोष्ण रुधिर पिया*॥ १७-१८ ॥ उस समय जिन्हों ने भीमसेन को देखा वह भी दुःखित हो कर गिर पड़े, और जो पीड़ित नहीं हुए, उन के भी हाथों से शस्त्र गिर पड़े ॥ १९ ॥ भीमसेन के उस रूप धारने पर उस को रुधिर पीते देख कर भय से पीड़ित हुए जन भीम को राक्षस कहते हुए चित्रसेन के साथ दौड़ गए ॥ २० ॥ भीम ने क्रोधी

* भीम ने क्रोध में कहे वचन को भी पूरा किया । तथापि यह अनार्य कर्म सम्भव है, अत्युक्ति में कहा गया हो ।

दुःशासन के रुधिर की अञ्जलि भर कर सब लोकवीरों के सुनते हुए यह वचन कहा, हे पुरुषाधम यह तेरे कण्ठ से रुधिर पीता हूं ॥२२॥ अब फिर प्रसन्न हो कर मुझे 'बैल, बैल' कहो॥२३॥ जो उस समय हमें 'बैल बैल' कह कर नाचे थे, उन के प्रति अब हम 'बैल बैल' कह कर नाचते हैं ॥ २४ ॥

मूल—ततः क्रुद्धो वृषसेनोऽभ्यधावद्व्यवस्थितं प्रमुखे पाण्डवं तं । वृकोदरं काल मिवात्तदण्डं गदाहस्तं योधयन्तं त्वदीयान्॥२५॥ तमभ्यधावन्नकुलः प्रवीरो रोषादमित्रं प्रतुदन् पृषत्कैः । अवाकिरद्वृषसेनस्ततस्तं शितैः शरैर्नकुल मुदारवीर्यं ॥ २६ ॥स भीमसेनस्य रथं हताश्वो माद्रीसुतः कर्ण सुताभितप्तः । आपुप्लुवे सिंह इवाचलाग्रं संप्रेक्षमाणस्य धनञ्जयस्य ॥ २७ ॥ ततः किरीटी परवीरघाती हताश्वमालोक्य नरप्रवीरः । माद्रीसुतं नकुलं लोकमध्ये समीक्ष्य कृष्णं भृशविक्षतं च ॥ २८ ॥ समभ्यधावद्वृषसेनमाहवे स सूतजस्य प्रमुखेस्थितस्तदा ॥ २९ ॥ तमापतन्तं नरवीरमुग्रं महाहवे बाणसहस्र धारिणं। अभ्यापतत्कर्णसुतो महारथं यथा महेन्द्रं नमुचिः पुरा तथा ॥ ३० ॥ ततो द्रुतं चैकशरेण पार्थं सितेन विध्वा युधि कर्णपुत्रः । ननाद नादं सुमहानुभावो विध्वेव शक्रं नमुचिः स वीरः ॥ ३१ ॥ ततः किरीटी रणमूर्ध्नि कोपात् कृत्वा त्रिशाखां भ्रुकुटिं ललाटे । आरक्तनेत्रोन्तक शत्रुहन्ता उवाच कर्णं भृशमुत्स्मयंस्तदा ॥ ३२ ॥ ऊनं च तावद्धि जनावदन्ति सर्वैर्भवद्भिर्मम सूनुर्हतोऽसौ । एकोरथो मद्विहीनस्तरस्वी अहं हनिष्ये भवतां समक्षं ॥ ३३ ॥ स एवमुक्त्वा विनिमृज्यचापं लक्ष्यं हि कृत्वा वृषसेनमाजौ । ससर्जबाणान् विशिखान् महात्मा वधाय राजन् कर्ण सुतस्य संख्ये ॥ ३४ ॥ स पार्थबाणाभिहतः पपात रथाद्विबाहु-

विशिरा धरायां । सुघूर्णितो वृक्षवरोऽतिकायो वातेरितः शाल इवाद्रिशृंगात् ॥ ३७ ॥ ततः समक्षं स्वसुतं विलोक्य कर्णो हतं श्वेतहयेन संख्ये । संरम्भ मागम्य परं महात्मा कृष्णार्जुनौ सहसै-वाभ्य धावत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—तब क्रुद्ध हुआ वृषसेन सामने खड़े उस भीम की ओर दौड़ा, जो हाथ में दण्ड लिये काल की भांति हाथ में गदा लिये आप के वीरों से लड़ रहा था ॥ २५ ॥ उस की ओर वीर नकुल क्रोध से बाणों का प्रहार करता हुआ दौड़ा, उस महाबली नकुल पर वृषसेन ने तीखे बाणों की झड़ी बांध दी ॥ २६ ॥ उसी समय कर्ण के बाणों से पीड़ित हुआ नकुल घोड़े के मरने से भीमसेन के रथ पर कूद गया जैसे शेर पर्वत पर, इस को अर्जुन ने देखा ॥ २७ ॥ शत्रुवीरों के मारने वाले नरवीर अर्जुन ने नकुल के घोड़ों को मरा देख और कृष्ण को अत्यन्त विक्षत हुआ देख कर, कर्ण के सामने से वृषसेन की ओर धावा किया॥२८-२९॥ सहस्रों बाणों के धारने वाले उस नरवर को आता देख कर कर्ण पुत्र (वृषसेन) उस पर झपटा जैसे पूर्वकाल में नमुचि इन्द्र पर ॥ ३० ॥ तब महानुभाव कर्ण पुत्र एक तीखे बाण से अर्जुन को बींध कर ऐसा गर्जा जैसे नमुचि इन्द्र को बींध कर गर्जा था॥३१॥ तब रणक्षेत्र में क्रोध से अर्जुन माथे पर तीवड़ी चढ़ा कर और लाल नेत्र कर के मुस्कराकर कर्ण से बोला ॥ ३२ ॥ सब लोग यह तुम्हारी न्यूनता कहते हैं, कि मेरे पुत्र को मुझ से अलग तुम सबने मिल कर एकरथ को मारा, अब मैं तुम्हारे सामने मारूंगा ॥ ३३ ॥ यह कह कर धनुष को झुका कर वृषसेन को लक्ष्य कर के रण में उस के वध के लिए अर्जुन ने बाण छोड़े ॥ ३४ ॥

अर्जुन के बाणों की मार से भुजा और सिर से हीन हुआ वह भूमि पर गिरा, जैसे आंधी से गिराया हुआ फूला हुआ भारी शाल वृक्ष पर्वत की चोटी से गिरे॥ ३५ ॥ रण में अर्जुन से अपने समक्ष अपने पुत्र को मारा जाता देख कर बड़े जोश में आया कर्ण कृष्ण और अर्जुन की ओर ही दौड़ा ॥ ३६ ॥

अ० ११ (व० ८७) कर्ण अर्जुन का समागम

मूल—वृषसेनं हतं दृष्ट्वा शोकामर्षसमन्वितः। पुत्रशोकोद्भवं वारि नेत्राभ्यां समवासृजत ॥ १ ॥ रथेन कर्णस्तेजस्वी जगामाभिमुखो रिपुं। युद्धायामर्ष ताम्राक्षः समाहूय धनञ्जयं ॥ २ ॥ तौ रथौ सूर्यसंकाशौ वैयाघ्र परिवारितौ। समेतौ ददृशुस्तत्र द्वाविवार्कौ समुद्गतौ ॥ ३ ॥दृष्ट्वा च द्वैरथं ताभ्यां तत्र योधाः सहस्रशः। चक्रुर्बाहुस्वनांश्चैव तथा चैवावधूननं ॥ ४ ॥ आजघ्नुः कुरवस्तत्र वादित्राणि समन्ततः। कर्ण प्रहर्षयिष्यन्तः शंखान् दध्मुश्च सर्वशः ॥ ५ ॥ तथैव पाण्डवाः सर्वे हर्षयन्तो धनञ्जयं। तूर्यशंखनिनादेन दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥ ६ ॥ सिंहस्कन्धौ दीर्घभुजौ व्यूढोरस्कौ महाबलौ। देवगर्भौ देवबलौ देव तुल्यौ च रूपतः ॥७॥ संशयः सर्वभूतानां विजये समपद्यत। समेतौ पुरुषव्याघ्रौ प्रेक्ष्य कर्ण धनञ्जयौ ॥ ८ ॥ उभौ वरायुधधरावुभौ रण कृतश्रमौ। उभौ विश्रुतकर्माणौ पौरुषेण बलेन च ॥ ९ ॥ तव पुत्रास्ततः कर्ण सबला भरतर्षभ। परिवव्रुर्महात्मानं क्षिप्रमाहवशोभिनं ॥ १० ॥ तथैव पाण्डवा दृष्ट्वा धृष्टद्युम्न पुरोगमाः। परिवव्रुर्महात्मानं पार्थमप्रतिमं युधि ॥ ११ ॥ तावकानां रणे कर्णो ग्लहोह्यासीद्विशांपते। तथैव पाण्डवेयानां ग्लहः पार्थोऽभवत्तदा ॥ १२ ॥

अर्थ—वृषसेन को मारा गया देख कर शोक और क्रोध से भरे हुए कर्ण ने पुत्रशोक से निकला जल नेत्रों से बहाया॥ १॥ क्रोध से लाल नेत्रों वाला तेजस्वी कर्ण अर्जुन का आह्वान कर रथ से उस के अभिमुख गया॥ २॥ बाघ के चर्म से ढके हुए सूर्य तुल्य चमकते हुए उन दोनों रथों को उदय हुए दो सूर्यों के तुल्य लोग देखते थे॥ ३॥ उन दोनों के द्वैरथ को देख कर वहां सहस्रों योधे ताल ठोकने लगे॥ ४॥ कौरव वहां कर्ण को प्रोत्साहित करते हुए चारों ओर से बाजे और शंख बजाने लगे॥ ५॥ वैसे ही अर्जुन को प्रोत्साहित करते हुए पाण्डवों ने बाजों और शंखों की ध्वनियों से सारी दिशाएं गुंजादीं॥ ६॥ शेर जैसे कंधों वाले, लंबी भुजाओं वाले, विशाल छातियों वाले, महाबली देवपुत्र देवतुल्य बल वाले और देवतुल्य रूप वाले पुरुष-वर कर्ण और अर्जुन के समागम को देख कर विजय में सब लोगों को संशय हुआ॥ ७—८॥ दोनों ही उत्तम शस्त्रधारी दोनों रण में पूरे अभ्यास वाले दोनों पौरुष और बल से विख्यात कर्मों वाले थे॥ ९॥ हे भरतवर उस समय सेना समेत आप के पुत्र रणबांकुरे कर्ण की रक्षा करने लगे॥ १०॥ और धृष्टद्युम्न आदि पाण्डववर्गीय वीर युद्ध में अप्रतिम अर्जुन की रक्षा करने लगे॥ ११॥ हे राजन्! उस रण द्यूत में आप के पक्ष वालों का दाव कर्ण था, और पाण्डवों का दाव अर्जुन था॥ १२॥

मूल—अथाब्रवीत सूतपुत्रः शल्यमाभाष्यमास्मितं। यदि पार्थो रणे हन्यादद्यमामिह कर्हिचित्॥ १३॥ किं करिष्यसि सं-ग्रामे शल्य सत्य मथोच्यतां॥ १४॥ शल्य उवाच—यदि कर्ण रणे हन्यादद्य त्वां श्वेतवाहनः। उभावेकरथेनाहं हन्यां माधव पा-

ण्डवौ ॥ १५ ॥ एवमेव तु गोविन्द मर्जुनः प्रत्यभाषत । तं प्रह-
स्याब्रवीत् कृष्णः सत्यं पार्थ मिदंवचः ॥ १६ ॥ पतेद् दिवाकरः
स्थानाच्छुष्येदपि महोदधिः । शैत्यमग्निरियात्त्वां हन्यात कर्णो
धनञ्जय ॥ १७ ॥ यदि चैतत् कथंचित् लोकपर्यसनं भवेत् ।
हन्यां कर्ण तथा शल्यं बाहुभ्यामेव संयुगे ॥ १८ ॥ अर्जुनः प्रत्यु-
वाचेदं कृष्ण मक्लिष्टकारिणं । मम तावदपर्याप्तौ कर्णशल्यौ
जनार्दन ॥ १९ ॥ सपताक ध्वजं कर्ण सशल्यरथवाजिनं । द्रष्टा-
स्यद्य २५ कृष्ण शरैश्छिन्नमनेकधा ॥२०॥ अद्य राधेयभार्याणां
वैधव्यं समुपस्थितं ॥ २१ ॥ नहि मे शाम्यते मन्युर्यदनेन पुरा-
कृतं । कृष्णां सभागतां दृष्ट्वा मूढेनादीर्घ दर्शिना ॥ २२ ॥ अद्या-
भिमन्युजननीं प्रहृष्टः सान्त्वयिष्यामि । कुन्तीं बाष्पमुखीं कृष्णां
धर्मराजं च पाण्डवं ॥ २३ ॥

अर्थ--अब कर्ण मुसकराकर शल्य से बोला, कि यदि कदा-
चित अर्जुन आज मुझे यहां रण में मार डाले ॥ १३ ॥ तो हे
शल्य तुम रण में क्या करोगे सत्य २ कहो ॥ १४ ॥ शल्य बोला-
हे कर्ण यदि अर्जुन तुझे आज रण में मार डाले, तो मैं कृष्ण
और अर्जुन दोनों को एक रथ में मार डालूं ॥ १५ ॥ उधर
इसी प्रकार अर्जुन ने कृष्ण से पूछा. तिस पर कृष्ण हंस कर
अर्जुन से यह सत्य वचन बोले ॥ १६ ॥ सूर्य अपने स्थान से
गिर पड़े, समुद्र सूख जाए, अग्नि ठंडा लगने लगे, किन्तु हे धन-
ञ्जय कर्ण तुझे कभी मार नहीं सकता है ॥ १७ ॥ यदि कथंचित
यह होजाए, तो लोक उलट जाए, तो मैं कर्ण और शल्य को
भुजाओं से ही मार डालूं ॥ १८ ॥ तब सुगमता से कार्य साधने
वाले कृष्ण से अर्जुन बोले, हे जनार्दन कर्ण और शल्य दोनों मिल

कर मेरे लिये पर्याप्त नहीं ॥१९॥ झंडे घोड़े रथ और शल्य समेत कर्ण को हे कृष्ण आज रण में अनेक टुकड़े हुआ देखोगे॥२०॥ आज कर्ण की पत्नियों का विधवापन आ पहुंचा है ॥ २१ ॥ मेरा वह क्रोध शान्त नहीं हुआ है, जो कुछ इस अदूरदर्शी मूढ ने द्रौपदी को सभा में आई देख कर कहा था ॥ २२ ॥ आज हे कृष्ण तुम प्रसन्न हो कर [illegible] की माता को, कुन्ती को, रोती हुई द्रौपदी को, धर्मराज पाण्डव को सान्त्वना दोगे ॥२३॥

अ० १२ (व० ८९-९०) कर्णार्जुन युद्ध

मूल—तौ शङ्खभेरी निनदे समृद्धे समीयतुः श्वेतहयौ नराग्र्यौ । वैकर्तनः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च दुर्मन्त्रिते तव पुत्रस्य राजन्॥१॥ तथा कर्णः प्रथमं तत्र पार्थं महेषुभिर्दशभिः प्रत्यविध्यत् । तं चार्जुनः प्रत्यविध्यच्छिताग्रैः कक्षान्तरे दशभिः संप्रहस्य ॥ २ ॥ ततोऽर्जुनः प्रासृजदुग्रधन्वा भुजावुभौ गाण्डिवं चानुमृज्य । नाराचनालीकवराहकर्णान् क्षुरांस्तथा [illegible] ॥ ३ ॥ ते सर्वतः समकीर्यन्त राजन् पार्थेषवः कर्णरथं विशन्तः । अवाङ्मुखाः पक्षिगणा दिनान्ते विशन्ति केतार्थमिवाशु वृक्षं ॥ ४ ॥ यानर्जुनः सभ्रुकुटीकटाक्षं कर्णाय राजन्नसृजज्जितारिः। तान् सायकैः ग्रसते सूतपुत्रः क्षिप्तान् क्षिप्तान् पाण्डवस्येषुसंघान् ॥ ५ ॥ ततोऽस्त्रमाग्नेयममित्रसाधनं मुमोच कर्णाय महेन्द्रसूनुः । भूम्यन्तरिक्षे च दिशोऽर्कमार्गं प्रावृत्य देहोऽस्य बभूव दीप्तः ॥ ६ ॥ योधाश्च सर्वे ज्वलिताम्बरा भृशं प्रदुद्रुवुस्तत्र विदग्धवस्त्राः । शब्दश्च घोरोऽति बभूव तत्र यथा वने वेणुवनस्य दह्यतः ॥ ७ ॥ तदीक्ष्य कर्णो ज्वलनास्त्रमुद्यतं स वारुणं तत्प्रशमाय संयुगे । समुत्सृजन् सूतपुत्रः प्रतापवान् स तेन वह्निं शमयां बभूव ॥ ८ ॥

अर्थ--आप के पुत्र की दुर्मन्त्रणा के कारण वे दोनों वीरवर कर्ण और अर्जुन शंख और भेरियों से गूंजते हुए रणक्षेत्र में जुटे ॥ १ ॥ कर्ण ने पहले दस महाबाणों से अर्जुन को विद्ध किया, अर्जुन ने भी हंस कर दस तीखे बाणों से उस को पसलियों में विद्ध किया ॥ २ ॥ तब उग्र धनुष वाले अर्जुन ने दोनों भुजाओं और गांडीव धनुष को मल कर नाराचनालीक वराह कर्ण क्षुर सांजलिक और अर्धचन्द्र बाण छोड़े ॥ ३ ॥ हे राजन् अर्जुन के वे बाण कर्ण के रथ में प्रवेश करते हुए लीन हो गए, जैसे सायं समय नीचे मुख किये पक्षिगण वास वृक्ष में प्रवेश करते हैं ॥४॥ हे राजन् शत्रुओं के जीतने वाला अर्जुन भ्रुकुटी और कटाक्ष के साथ जो बाण कर्ण की ओर छोड़ता था, अर्जुन के फैंके २ उन बाणसमूहों को कर्ण अपने बाणों से ग्रसता जाता था ॥५॥ तब अर्जुन ने शत्रुओं के साधने वाला आग्नेय अस्त्र कर्ण की ओर छोड़ा, उस अस्त्र का देह भूमि अन्तरिक्ष दिशाएं और सूर्य के मार्ग को घेर कर प्रदीप्त हुआ ॥ ६ ॥ वस्त्रों को आग लगजाने से योधे सब झट पट भागने लगे, वहां बड़ा घोर शब्द हुआ, जैसे बन में वेणुवन के दग्ध होते समय हो ॥ ७ ॥ कर्ण ने उस आग्नेय अस्त्र को बढ़ा हुआ देख कर उस के वारण के लिये वारुण अस्त्र चला कर उस से अग्नि को ठंडा किया ॥ ८ ॥

मूल—ततोऽप्यस्त्रं दयितं देवराज्ञः प्रादुश्चक्रे वज्रमतिप्रभावं। शराचितांगो रुधिरार्द्रगात्रः कर्णस्तदारोष विवृत्तनेत्रः ॥ ९ ॥ दृढ-ज्यमानाम्य समुद्रघोषं प्रादुश्चक्रे भार्गवास्त्रं महात्मा॥१०॥ तस्यास्त्र मस्त्रेण निहत्यसोऽथ जघान संख्ये रथनागपत्तीन् । पञ्चालानां

प्रवरांश्चापि योधान् क्रोधाविष्टः सूतपुत्रस्तरस्वी ॥ ११ ॥ तदुत्तमं ब्राह्मनसह्यमस्त्रं प्रादुश्चक्रे मनसा यद्विधेयं । तदस्य हत्वा विरराज कर्णो मुक्त्वा शरान्मेघ इवाम्बुधाराः ॥ १२ ॥ ततोस्तथाऽन्योन्यमिषुप्रवेकैर्धनञ्जयस्याधिरथेश्च तत्र । ततो धनुर्ज्या सहसातिकृष्टा सुघोषमाच्छिद्यत पाण्डवस्य ॥ १३ ॥ तस्मिन् क्षणे पाण्डवं सूतपुत्रः समाचिनोत् क्षुद्रकाणां शतेन ॥ १४ ॥ ततो धनुर्ज्या मवनाम्य शीघ्रं शरानस्तानाधिरथेर्विधम्य । सुसंरब्धः कर्णशरक्षतांगो रणे पार्थः कौरवान् प्रत्यगृह्णान् ॥ १५ ॥ तयोरेवं युध्यतो राजिमध्ये सूतात्मजो भूदधिकः कदाचित् । पार्थः कदाचित्त्वधिकः किरीटी वीर्यास्त्रमायाबलपौरुषेण ॥ १६ ॥ कर्णोथ पार्थं न विशेषयद्यदा भृशं च पार्थेन शराभितप्तः । ततस्तु वीरः शरविक्षतांगो दध्रे मनो ह्येकशयस्य तस्य ॥ १७ ॥ ततो रिपुघ्नं समदत्तकर्णः सुसंचितं सर्पमुखं ज्वलन्तं । रौद्रं शरं सन्नतमुग्रधौतं पार्थार्थमत्यर्थचिराभिगुप्तं ॥ १८ ॥ आकर्णपूर्णं च विकृष्य कर्णः पार्थोन्मुखः संदधे चोत्तमौजाः । प्रदीप्तमैरावतवंशसंभवं शिरोजिहीर्षुर्युधि सव्यसाचिनः ॥ १९ ॥ ततोऽब्रवीन्मद्रराजो महात्मा दृष्ट्वा कर्णं प्रहितेषुं तमुग्रं । न कर्णग्रीवामपुरेष लप्स्यते समीक्ष्य संधत्स्व शरं शिरोघ्नं ॥ २० ॥ अथाब्रवीत् क्रोधसंरक्तनेत्रो मद्राधिपं सूतपुत्रस्तरस्वी । न संधत्ते द्विः शरं शल्य कर्णो न मादृशा जिह्मयुद्धा भवन्ति ॥ २१ ॥ इतीदमुक्त्वा विससर्ज तं शरं प्रयत्नतो वर्षगणाभिपूजितं । हतोसि वै फाल्गुन इत्यधिक्षिपन्नुवाच चोच्चैर्गिरमूर्जितां वृषः ॥ २२ ॥ तं प्रेक्ष्यदीप्तं युधि माधवस्तु त्वरान्वितं सत्वरयैव लीलया । पदा विनिष्पिष्य रथोत्तमं स प्रावेशयत् पृथिवीं किञ्चिदेव ॥ २३ ॥ क्षितिं गता जानुभिस्तेऽथ वाहा हेमच्छन्नाश्चन्द्रमरीचि-

वर्णाः ॥ २४ ॥तस्मिंस्तथा वै धरणीं निमग्ने रथे प्रयत्नान्मधुसूदनस्य । ततः शरः सोऽभ्यहनत् किरीटं तस्येन्द्रदत्तं सुदृढं च धीमतः ॥ २५ ॥ समुज्जहाराशु पुनः पतन्तं रथं भुजाभ्यां पुरुषोत्तमस्ततः ॥ २६ ॥

अर्थ—तब अर्जुन ने बड़े प्रभाव वाला इन्द्र का वज्र अस्त्र प्रकट किया, उस से कर्ण के सारे अंगों पर बाण गिरे, शरीर लहूलुहान होगया क्रोध से नेत्र चढ़ गए ॥ ९ ॥ और उस ने दृढ़ ज्या वाले समुद्र तुल्य ध्वनि वाले भार्गव अस्त्र को प्रकट किया ॥ १०॥ इस प्रकार उस के अस्त्र को अस्त्र से हनन कर के क्रोध में भरा हुआ वेगवान् कर्ण रण में पंचालों के उत्तम २ रथ हाथी घोड़े और प्यादों को मारने लगा ॥ ११ ॥ तब अर्जुन ने असह्य ब्राह्म अस्त्र चलाया, कर्ण ने मेघ जैसे जल धाराएं बरसाता है, इस प्रकार बाण बरसा कर उस को काट गिराया ॥ १२ ॥ इस प्रकार जब कर्ण और अर्जुन उत्तम २ अस्त्रों से एक दूसरे को मार रहे थे, तब दूर खींचा गया अर्जुन के धनुष का चिल्ला बड़ी ध्वनि के साथ टूट गया ॥ १३ ॥ उस अवसर में कर्ण ने क्षुद्रक बाणों से अर्जुन को भरपूर कर दिया ॥ १४ ॥ इधर अर्जुन ने भी शीघ्र ही धनुष की ज्या को झुका कर कर्ण से फैंके बाणों का नाश कर के कर्ण के बाणों से क्षत अंगों वाला जोश में भर कर कौरवों से लड़ने लगा ॥ १५ ॥इस प्रकार रण के बीच उन दोनों के युद्ध करते हुए किसी समय कर्ण और किसी समय अर्जुन पराक्रम अस्त्र निपुणता बल और पौरुष से अधिक हो जाता था ॥ १६ ॥ जब कर्ण अर्जुन से किसी प्रकार अधिक न हो सका, प्रत्युत उस के बाणों से अत्यन्त पीड़ित हो गया, तब

बाणों से विक्षत अंगों वाले उस वीर ने एक वीर अर्जुन को मारने का निश्चय किया ॥ १७ ॥ तब कर्ण ने देर से रक्खा हुआ शत्रुओं का मारने वाला सर्प के मुख वाला जलता हुआ धोया हुआ रौद्र बाण जो अर्जुन के लिए बहुत समय से संभाल कर रक्खा हुआ था, जिस का आविष्कार ऐरावत के वंश में हुआ था, उस को कानों तक खींच कर अर्जुन का सिर उड़ाने के लिए बाण पर चढ़ाया ॥ १८–१९॥ उस उग्रबाण को छोड़ने लगे कर्ण को देख कर महात्मा शल्य बोले, हे कर्ण यह बाण अर्जुन की ग्रीवा को नहीं पाएगा, ताक कर सिर को उड़ाने वाला बाण चढ़ाओ ॥ २० ॥ तिस पर क्रोध से लाल नेत्र कर के बली कर्ण शल्य से बोले हे शल्य ! कर्ण दो बार बाण नहीं चढ़ाता है, मेरे समान पुरुष टेढ़ा युद्ध नहीं करते ॥ २१ ॥ यह कह कर बहुत वर्षों से आदर पूर्वक रक्खे हुए उस बाण को कर्ण ने प्रयत्न से छोड़ा, और उच्च ध्वनि से अर्जुन का तिरस्कार करते हुए कहा, हे अर्जुन यह तू मारा गया ॥ २२ ॥ श्रीकृष्ण ने उस चमकते बाण को देख कर शीघ्रता से लीला के साथ उस रथ को दबा कर कुछ पृथिवी पर नमा दिया ॥ २३ ॥ सुवर्ण के भूषणों वाले चन्द्ररश्मि तुल्य श्वेत घोड़ों ने भूमि पर जानु टेक दिये ॥ २४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण के प्रयत्न से रथ भूमि पर झुक गया, तब वह बाण अर्जुन के इन्द्रदत्त मुकुट को उड़ा ले गया ॥ २५ ॥ उसी समय झटपट गिरते रथ को फिर भुजाओं से ऊपर उठा लिया ॥ २६ ॥

अ० १३ (व० ९०-९१) कर्ण वध

मूल—छादयित्वा ततो बाणैः कर्णं प्रत्यस्यदर्जुनः । ततः

कर्णः शितैर्बाणैर्ज्यां चिच्छेद सुतेजनैः ॥ १ ॥ अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य प्रनिघ्नन् सव्यसाचिनः । चक्रे चाप्यधिकं पार्थात् स्ववीर्यमति दर्शयन् ॥ २ ॥ ततः कृष्णोऽर्जुनं दृष्ट्वा कर्णास्त्रेण स पीडितं । अभ्यसेत्यब्रवीत्पार्थं मातिष्ठास्त्रं व्रजेति च ॥ ३ ॥ ततोऽग्निसदृशं घोरं शरं सर्पविषोपमं । रौद्रमस्त्रं समाधाय क्षेप्तुकामः किरीटवान् ॥ ४ ॥ ततोऽग्रसन्मही चक्रं राधेयस्य तदा नृप । शततोऽवतीर्य राधेयो रथादाशु समुद्यतः । चक्रं भुजाभ्यामालम्ब्य समुत्क्षेप्तु-मियेष सः ॥ ६ ॥ ग्रस्तचक्रस्तु राधेयो क्रोधादश्रूण्यवर्तयत् । अर्जुनं वीक्ष्य संरब्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ भो भोः पार्थ महे-ष्वास मुहूर्तं प्रतिपालय। यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महीतलात् ॥ ८ ॥ न त्वं कापुरुषाचीर्णं मार्गमास्थातुमर्हसि । ख्यातस्त्वमसि कौन्तेय विशिष्टो रणकर्मसु ॥ ९ ॥ शरणागते न्यस्तशस्त्रे याच-माने तथार्जुन । अबाणे भ्रष्टकवचे भ्रष्टभग्नायुधे तथा ॥ १० ॥ न विमुञ्चन्ति शस्त्राणि शूराः साधुव्रते स्थिताः । त्वं च शूरतमो लोके साधुवृत्तश्च पाण्डव ॥ ११ ॥ यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महाभुज। न मां रथस्थो भूमिष्ठं विकलं हन्तुमर्हसि ॥ १२ ॥

अर्थ--तब अर्जुन ने बाणों से ढांप कर कर्ण को परे हटा दिया, तब कर्ण ने बड़े तीखे बाणों से उस की ज्या को काट दिया ॥ १ ॥ अर्जुन के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से काटते हुए कर्ण ने अर्जुन से अधिक अपना पराक्रम दिखलाया ॥ २ ॥ तब श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्ण के बाणों से पीड़ित देख कर अर्जुन से बोले, बार २ अस्त्र ही चलाते जाओ ॥ ३ ॥ तब अर्जुन रौद्र अस्त्र जोड़ कर आग्नि के सदृश सर्प विष के तुल्य घोर बाण चला-ने लगा ॥ ४ ॥ उस समय हे राजन् कर्ण का पहिया भूमि में धस

गया ॥५॥ तब कर्ण झटपट रथ से उतर दोनों भुजाओं से पहिये को निकालने लगा ॥ ६ ॥ पहिये के थमा रहने से कर्ण के आंसु निकल आए, और अर्जुन को जोश में देख कर यह वचन बोला ॥ ७ ॥ हे पार्थ महाधनुर्धारी थोड़ी देर प्रतीक्षा कर, जब तक मैं इस फंसे हुए पहिये को भूतल से निकालता हूं ॥ ८ ॥ कापुरुषों से चले मार्ग पर चलना तुम्हारे योग्य नहीं, हे अर्जुन तुम रणकर्म में विशेष विख्यात हो ॥ ९ ॥ हे अर्जुन आर्यधर्म में स्थित शूर पुरुष इन पर शस्त्र नहीं चलाते, जो शरणागत है, जिस ने शस्त्र रख दिये हैं, जो अभयदान मांग रहा है, जिस के बाण चुक गए हैं, जिसका कवच टूट गया है, जिसके शस्त्र टूट गए हैं। और हे पाण्डव तुम लोक में शूरतम हो, और आर्यस्वभाव हो ॥ १०—११ ॥ हे महाभुज मैं जब तक इस फंसे हुए पहिए को निकालता हूं, तब तक रथ पर बैठे आप भूमि पर स्थित विकल हुए मुझ को मारने योग्य नहीं है ॥ १२ ॥

मूल—तमब्रवीद्वासुदेवो रथस्थो राधेय दिष्ट्या स्मरसीह धर्मं। प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तु स्वं॥१३॥ यद्द्रौपदीमेकवस्त्रां सभायामानाययेस्त्वं च सुयोधनश्च । दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च न ते कर्ण प्रसभात्तत्र धर्मः॥ १४ ॥ यदा सभायां राजानमनक्षज्ञं युधिष्ठिरं । अजैषीच्छकुनिर्ज्ञानात् क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ १५ ॥ वनवासे व्यतीते च कर्ण वर्षे त्रयोदशे। न प्रयच्छसि यद्राज्यं क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ १६ ॥ यद्वारणावते पार्थान् सुप्तान् जतुगृहे तदा । आदीपयस्त्वं राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ १७ ॥ यदा रजस्वलां कृष्णां दुःशासनवशे-

स्थितां । सभायां प्राहसः कर्ण क्व ते धर्मस्तदा गतः॥१८॥राज्य-लुब्धः पुनः कर्ण समाह्वयसि पाण्डवान् । यदा शकुनिमाश्रित्य क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ १९ ॥ यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महा-रथाः । परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ २० ॥ यद्येष धर्मस्तत्र न विद्यते हि किं सर्वथा तालुविशोषणेन। अद्येह धर्म्याणि विधत्स्व सूत तथापि जीवन्नविमोक्ष्यसे हि ॥ २१ ॥ एवमुक्तस्तदा कर्णो वासुदेवेन भारत । लज्जयावनतो भूत्वा नोत्तरं किञ्चिदुक्त-वान् ॥ २२ ॥ क्रोधात् प्रस्फुरमाणौष्ठो धनुरुद्यम्य भारत। योध-यामास वै पार्थं महावेगपराक्रमः ॥ २३ ॥

अर्थ—रथ पर स्थित श्रीकृष्ण उस से बोले, भाग्य से हे कर्ण यहां तुम्हें धर्म स्मरण आया है, प्रायः नीच पुरुष विपत्तियों में पड़े हुए दैव की निन्दा करते हैं, न कि अपने कुकर्म की॥१३॥ जब एक वस्त्र पहने द्रौपदी को तुम दुर्योधन दुःशासन और शकुनि सभा में लाए थे, हे कर्ण तब तुझे धर्म का स्मरण न आया॥१४॥ जब सभा में पासों में अनजान राजा युधिष्ठिर को शकुनि ने जीता, तब तेरा धर्म कहां गया ॥ १५ ॥ १३ वर्ष का बनवास बीत जाने पर हे कर्ण तुमने जो राज्य न दिया, तब तेरा धर्म कहां गया ॥ १६ ॥ जब वारणावत में जतुगृह में सोए पाण्डवों को हे कर्ण तुम ने जलवाया था, तब तेरा धर्म कहां गया था॥१७॥ जब दुःशासन के वश में स्थित रजस्वला द्रौपदी को सभा में तुम ने हंसी की, तब हे कर्ण तेरा धर्म कहां गया था ॥ १८ ॥ राज्य के लोभ से हे कर्ण जब फिर तुम शकुनि का सहारा ले पाण्डवों को द्यूत के लिए बुलाते थे, तब तेरा धर्म कहां गया था ॥१९॥ जब बाल अभिमन्यु को तुम बहुत से महारथियों ने घेर कर मारा

था, तब तेरा धर्म कहां गया था ॥ २० ॥ यदि यह धर्म वहां विद्यमान नहीं रहा, तो फिर इस मगज़पच्ची मे अब क्या, आज यहां तुम धर्म की बातें कहो, पर अब जीते छूटोगे नहीं ॥ २१ ॥ हे भारत कृष्ण से ऐसे कहा हुआ कर्ण लज्जा से मुख नीचे किये कुछ उत्तर न दे सका ॥ २२ ॥ क्रोध से उस के होंट फर्कने लगे, और धनुष उठा कर बड़े वेग और पराक्रम वाला हो कर वहीं से अर्जुन के संग युद्ध करने लगा ॥ २३ ॥

मूल—ततोऽब्रवीद्वासुदेवः फाल्गुनं पुरुषर्षभ । दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महाबल ॥ २४ ॥ एवमुक्तस्तु देवेन क्रोधमागात् तदार्जुनः ॥ २५ ॥ तत्समीक्ष्य ततः कर्णो ब्रह्मास्त्रेण धनञ्जयं । अभ्यवर्षत् पुनर्यत्नमकरोद्रथसर्जने ॥ २६ ॥ ब्रह्मास्त्रेणैव तं पार्थो ववर्ष शरवृष्टिभिः । तदस्त्रमस्त्रेणावार्य प्रजहार च पाण्डवः ॥२७॥ अथ त्वरन् कर्णवधाय पार्थो महेन्द्रवज्रानलदण्डसन्निभं । आदत्त चाथाञ्जलिकं निषङ्गात्सहस्ररश्मेरिव रश्मिमुत्तमं ॥ २८ ॥ अयं महास्त्रप्रहितो महाशरः शरीरहृच्चासुहरश्च दुर्हृदः । तपोऽस्ति तप्तं गुरवश्च तोषिता मया यदीष्टं सुहृदां श्रुतं तथा ॥ २९ ॥ अनेन सत्येन निहन्त्वयं शरः सुसंशितं कर्णमरिं ममोर्जितं । इत्यूचिवांस्तं प्रमुमोच बाणं धनञ्जयः कर्णवधाय घोरं ॥ ३० ॥ तथा विमुक्तो बलिनाऽर्कतेजाः प्रज्वालयामास दिशो नभश्च । ततोऽर्जुनस्तस्य शिरो जहार वृत्रस्य वज्रेण यथा महेन्द्रः ॥३१॥ पार्थोऽपराह्णे शिर उच्चकर्त वैकर्तनस्याथ महेन्द्रसूनुः । वरांगमुर्व्यामपतच्चमूमुखे दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः ॥ ३२ ॥ शरैर्विभिन्नं व्यसु तत्सुवर्चसः पपात कर्णस्य शरीरमुच्छ्रितं । स्रवद्व्रणं गैरिकतोयविस्रवं गिरेर्यथा वज्रहतं महाशिरः ॥ ३३ ॥ ततः शरीरात्

पाण्डवा दध्मुरुच्चैर्दृष्ट्वा कर्णं पातितं फाल्गुनेन। तथैव कृष्णश्च धनञ्जयश्च हृष्टौ यमौ दध्मतुर्वारिजातौ ॥ ३४ ॥ तं सोमकाः प्रेक्ष्य हतं शयानं सैन्यैः सार्धं सिंहनादान् प्रचक्रुः। तूर्याणि मंजघ्नुरतीव हृष्टा वासांसि चैवादुधुवुर्भुजांश्च ॥ ३५ ॥ शरैराचितसर्वांगः शोणितौघपरिप्लुतः। विभाति देहः कर्णस्य स्वरश्मिभिरिवांशुमान् ॥ ३६ ॥

अर्थ—तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, हे महाबल दिव्य अस्त्र से ही इस को छेद कर गिराओ ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण के वचन सुनते ही अर्जुन को क्रोध आ गया ॥ २५ ॥ यह देख कर कर्ण ने ब्रह्मास्त्र से अर्जुन पर वर्षा की और रथ के निकालने का फिर यत्न किया ॥ २६ ॥ अर्जुन ने भी अस्त्र से अस्त्र को रोक कर ब्रह्मास्त्र से ही उस पर बाणवर्षा की॥२७॥अनन्तर अर्जुन ने शीघ्रता से कर्ण के मारने के लिए इन्द्र के वज्र, अग्नि और यम दण्ड के सदृश अञ्जलिक नाम बाण अपने तूणीर (तर्कश) से निकाला, जैसे सूर्य से चमकती हुई किरण ॥ २८ ॥ बाण को छोड़ते समय अर्जुन मुख से बोले ' यदि मैंने तप किया है, और गुरुओं को प्रसन्न किया है, और सुहृदों के हित बचन पर ध्यान दिया है, तो इस धर्म के बल से यह बाण मेरे ऊंचे आए शत्रु को मारे ' इतना कह कर उस घोर बाण को छोड़ दिया ॥२९-३० ॥ अर्जुन के हाथ से छूट कर सूर्य समान बाण ने दिशाओं और आकाश में प्रकाश कर दिया, उस बाण से अर्जुन ने कर्ण का सिर काट गिराया, जैसे इन्द्र ने वज्र से वृत्र को काटा था ॥ ३१ ॥ अर्जुन ने चौथे पहर कर्ण का सिर काटा, सिर सेना के आगे पृथिवी पर गिरा, मानो कि अस्ताचल से रक्तमंडल सूर्य

गिराहो ॥ ३२ ॥ तेजस्वी कर्ण का ऊंचा देह प्राण से हीन हुआ बाणों से छिदा हुआ स्थान २ से बहते लहू वाला भूमि पर ऐसे आगिरा, जैसे पर्वत का कोई बड़ा शिखर जिस पर से गेरू के पानी के झरने बह रहे हों ॥ ३३ ॥ अर्जुन से कर्ण को गिराया देख कर पाण्डवों ने शंख बजाए, तथा हर्षित हुए कृष्ण और अर्जुन ने शंख बजाए ॥ ३४ ॥ कर्ण को मरा पड़ा देख कर हर्षित हुए सोमक सेना समेत सिंहनाद करने बाजे बजाने वस्त्र और भुजाएं उछालने लगे ॥ ३५ ॥ बाणों से भरपूर सारे अंगों वाला रुधिर के प्रवाह से युक्त कर्ण का देह अपनी रश्मियों से रश्मिमान् सूर्य की भांति भासने लगा ॥ ३६ ॥

अ०१४(व० ९२-९६) दुर्योधन का शोक और युधिष्ठिर का हर्ष

मूल—निपातितस्यन्दनवाजिनागं बलं च दृष्ट्वा हतसूतपुत्रं । दुर्योधनोऽश्रुप्रतिपूर्णनेत्रो दीनो मुहुर्निःश्वसंश्चार्तरूपः॥ १ ॥ कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां शराचितं शोणितदिग्धगात्रं । यदृच्छया सूर्यमिवावनिस्थं दिदृक्षवः संपरिवार्य तस्थुः ॥ २ ॥ भीमश्च भीमेन तदा स्वनेन नादं कृत्वा रोदसी कंपयानः । आस्फोटयन् वल्गते नृत्यते च हते कर्णे त्रासयन् धार्तराष्ट्रान् ॥ ३ ॥ मद्राधिपश्चापि विमूढचेतास्तूर्णं रथेनापकृतध्वजेन । दुर्योधनस्यान्तिकमेत्य राजन् सबाष्पदुःखाद्वचनं बभाषे ॥ ४ ॥ विशीर्णनागाश्वरथप्रवीरं बलं त्वदीयं यमराष्ट्रकल्पं । अन्योन्यमासाद्य हतं महद्भिर्नराश्वनागैर्गिरिकूटकल्पैः ॥ ५ ॥ नैतादृशं भारत युद्धमासीद्यथा तु कर्णार्जुनयोर्बभूव । ग्रस्तौ हि कर्णेन समेत्य कृष्णावन्ये च सर्वे तव शत्रवो ये ॥ ६ ॥ दैवं ध्रुवं पार्थवशात् प्रवृत्तं यत्पाण्डवान् पाति हिनस्ति चास्मान् । तवार्थसिद्ध्यर्थकरास्तु सर्वे प्रसह्य वीरा निहता

द्विषाद्भिः ॥ ७ ॥ वीर्येण शौर्येण बलेन तेजसा तैस्तैस्तु युक्ता विविधैर्गुणौघैः। अवध्यकल्पा निहता नरेन्द्रास्तवार्थकामा युधि पाण्डवेयैः ॥ ८ ॥ तस्मा शुचो भारतदिष्टमेतत्पर्य्याश्वस त्वं न सदास्ति सिद्धिः ॥ ९ ॥ एतद्वचो मद्रपतेर्निशाम्य स्वं चापनीतं मनसा निरीक्ष्य ।दुर्योधनो दीनमनाः विसंज्ञः पुनः पुनर्न्यश्वसदार्तरूपः ॥१०॥ तं द्रोणपुत्रप्रमुखा नरेन्द्राः सर्वे समाश्वास्य मुहुः प्रयान्ति ॥ ११ ॥ बधेन कर्णस्य तु दुःखितास्ते हा कर्ण हा कर्ण इतिब्रुवाणाः। द्रुतं प्रयाताः शिविराणि राजन् दिवाकरं रक्तमवेक्षमाणाः ॥ १२ ॥

अर्थ--सेना के रथ हाथी घोड़े गिरे और कर्ण को मरा देख कर दुर्योधन के नेत्र आंसुओं से भर गए और बार २ सांस लेता हुआ दुःखित हुआ ॥ १ ॥ पृथिवी पर गिरे हुए बाणों से पूर्ण रुधिर से लिबड़े अंगों वाले मानों यदृच्छा से पृथिवी पर आए सूर्य की भांति स्थित शूर कर्णको देखने की इच्छा से उस के चारों ओर बैठ गए ॥ २ ॥ कर्ण के मरने के पश्चात् भीमसेन ताल ठोक कर अपने घोर शब्द से द्यौ और पृथिवी को कंपाता हुआ और तुम्हारे पुत्रों को डराता हुआ नाचने और कूदने लगा ॥ ३ ॥ शल्य भी घबराया हुआ दूर हुए झंडे वाले रथ को दौड़ाता हुआ दुर्योधन के निकट रोता हुआ दुःख से भरे यह वचन बोला॥४॥तुम्हारी सेना के हाथी घोड़े रथ नष्ट हुए और वह यमदेश के तुल्य पड़ी है, जो एक दूसरे के साथ जुट कर पर्वत शिखर सदृश बड़े २ हाथी घोड़े और रथों ने मारी है ॥ ५ ॥ हे भारत जैसा कर्ण और अर्जुन का यह युद्ध हुआ है, वैसा कभी नहीं हुआ, कर्ण ने कृष्ण और अर्जुन को और तेरे दूसरे शत्रुओं को ग्रस लिया था ॥ ६ ॥ अर्जुन के बहानेसे दैव

ने यह काम किया है, जो पाण्डवों की रक्षा कर रहा है और हमारा नाश कर रहा है, आप के अर्थ सिद्धि करने वाले सभी वीर शत्रुओं ने मार डाले हैं ॥ ७ ॥ वीर्य शौर्य बल तेज आदि उन २ गुणसमूहों से युक्त, कभी न मरने वाले तेरा भला चाहने वाले नरेन्द्र पाण्डवों ने मार डाले हैं ॥ ८ ॥ सो हे भारत शोक मत करो, तसल्ली करो, दैव बलवान् है, सदा सिद्धि नहीं होती है ॥ ९ ॥ शल्य के इस वचन को सुन कर और अपनी अपनीति का ध्यान कर के दुर्योधन दीन मन हुआ अचेत हुआ पीड़ित हुआ बार २ ठंडे सांस भरता भया ॥१०॥ उस को अश्वत्थामा और दूसरे राजे तसल्ली देने लगे ॥ ११ ॥ कर्ण के वध से दुःखित हुए हा कर्ण हा कर्ण कहते हुए सन्ध्यासमय अपने शिबिरों को गए ॥ १२ ॥

मूल—शरसंकृत्तवर्माणं रुधिरोक्षित वाससं । गतासुमपि राधेयं नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥ १३ ॥ तथा निपातिते कर्णे परसैन्ये च विद्रुते । आश्लिष्य पार्थं दाशार्हो हर्षाद्वचनमब्रवीत्॥१४॥ हतो वज्रभृता वृत्रस्त्वया कर्णो धनञ्जय । वृत्रकर्णवधं घोरं कथयिष्यन्ति मानवाः ॥ १४ ॥ तमिमं विक्रमं लोके प्रथितं ते यशस्करं । निवेदयावः कौन्तेय कुरुराजस्य धीमतः ॥ १५ ॥ पार्थमादाय गोविन्दो ददर्श च युधिष्ठिरं। शयानं राजशार्दूलं काञ्चने शयनोत्तमे ॥ १६ ॥ अगृह्णीतां तु मुदितौ चरणौ पार्थिवस्य तौ । तयोः प्रहर्षमालक्ष्य हर्षाच्छ्रूण्यवर्तयत् ॥ १७ ॥ राधेयं निहतं मत्वा समुत्तस्थौ युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥ कृष्ण उवाच—हतो वैकर्तनो राजन् सूतपुत्रो महारथः । दिष्ट्या जयसि राजेन्द्र दिष्ट्या वर्धसि भारत ॥ १९ ॥ यस्तु द्यूतजितां कृष्णां प्राहसत् पुरुषाधमः ।

तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पिबाति शोणितं ॥ २० ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः । धर्मपुत्रः प्रहृष्टात्मा दाशार्हं वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥ नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दन । त्वया सारथिना पार्थो यत्नवानहनच्च तं ॥ २२ ॥ जयश्चैव ध्रुवोऽस्माकं नत्वस्माकं पराजयः। यदा त्वं युधि पार्थस्य सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वा रथमास्थाय स्वबलेनाभिसंवृतः । प्रययौ स महाबाहुर्द्रष्टुमायोधनं तदा॥ २४ ॥ दीपिकाभिः कृतोद्योतं पश्यते वै वृषं तदा । संछिन्नभिन्नकवचं बाणैश्च विदलीकृतं ॥ २५ ॥ सपुत्रं निहतं दृष्ट्वा कर्णं राजा युधिष्ठिरः । संजातप्रत्ययोऽतीव वीक्ष्य चैवं पुनः पुनः ॥ २६ ॥ अद्य राजास्मि गोविन्द पृथिव्यां भ्रातृभिः सह । त्वया नाथेन वीरेण विदुषा परिपालितः ॥ २७ ॥ त्वया प्रसादृयं चैव कृतार्थाः पुरुषर्षभ । दिष्ट्या जयसि गोविन्द दिष्ट्या शत्रुर्निपातितः ॥ २८ ॥ स्वप्स्यामोऽद्य सुखं रात्रौ त्वत्प्रसादान्महाभुज । एवं स बहुशो राजा प्रशशंस जनार्दनं ॥ २९ ॥

अर्थ—बाणों से छिदे कवच वाले और रुधिर से लिबड़े वस्त्रों वाले प्राणहीन हुए भी कर्ण का तेज उस समय भी नष्ट नहीं हुआ ॥ १३ ॥ कर्ण के इस प्रकार गिराए जाने और शत्रु-सेना के भाग जाने पर कृष्ण अर्जुन को गले लगा कर हर्ष से यह वचन बोले ॥ १४ ॥ हे अर्जुन इन्द्र ने वृत्र को मारा था और तुमने कर्ण को मारा है, लोग वृत्र और कर्ण के घोर वध की कथा किया करेंगे ॥ १४ ॥ चलो अब यश बढ़ाने वाला लोक प्रसिद्ध तुम्हारा यह विक्रम कुरुराज युधिष्ठिर को चल कर बतलावें ॥ १९ ॥ तब कृष्ण ने अर्जुन को ले कर सोने के पलंग

पर लेटे हुए राजसिंह युधिष्ठिर के जा दर्शन किये ॥ १६ ॥ बड़े हर्ष के साथ उन दोनों ने राजा के चरण पकड़े, उन के हर्ष को देख कर युधिष्ठिर कर्ण के मारा जाने का अनुमान कर उठ खड़ा हुआ और हर्ष से उस के आंसु निकल आए ॥१७-१८॥ कृष्ण बोले—हे राजन् ! महारथ कर्ण मारा गया है, हे राजेन्द्र भाग्य से आप की जीत है, आप को बधाई हो ॥ १९ ॥ जिस पुरुषाधम ने जुए में हरी द्रौपदी पर हंसी उड़ाई थी, उस कर्ण के लहू को आज भूमि पी रही है ॥ २० ॥ महात्मा कृष्ण के इस वचन को सुन कर प्रसन्न हो युधिष्ठिर कृष्ण से बोला ॥ २१ ॥ हे महाबाहो यह आश्चर्य नहीं है, जो आप सारथि के साथ अर्जुन ने उस को मार डाला है ॥ २२ ॥ हमारा निःसंदेह विजय है, हमारा पराजय हो नहीं सकता, जब आपने अर्जुन का सारथि होना माना ॥ २३ ॥ यह कह कर रथ पर चढ़ कर सेना समेत युधिष्ठिर उस के देखने के लिए युद्ध स्थल में गए ॥ २४ ॥वहां दीपिकाओं से प्रकाश कर के कर्ण को देखा बाणों से जिसके कवच छिन्न भिन्न हो चुका है और शरीर क्षत विक्षत है ॥२५॥ कर्ण को पुत्र समेत मरा पड़ा देख कर राजा युधिष्ठिर को पूरा विश्वास आ गया, और बार २ यह प्रशंसा करने लगा॥ २६ ॥ हे गोविन्द तुझ वीरनाथ से सुरक्षित हुआ आज मैं भाइयों समेत राजा हुआ हूं ॥ २७ ॥ हे पुरुषवर तेरी कृपा से आज हम कृतार्थ हुए हैं, हे कृष्ण भाग्य से आप की जीत हुई है, भाग्य से शत्रु गिरा दिया गया है ॥२८॥हे महाभुज आज तेरी कृपा से हम चैन से सोवेंगे, इस प्रकार बार २ उस ने कृष्ण की प्रशंसा की॥२९॥

कर्णपर्व समाप्त हुआ ॥

शल्यपर्व ॥

अ० १ (व० १–२) संजय का फिर हस्तिनापुर में आना

मूल—ततः पूर्वाह्णसमये शिबिरादेत्य संजयः। प्रविवेश पुरीं दीनो दुःखशोकसमन्वितः ॥ १ ॥ तथा स विह्वलः सूतः प्रविश्य नृपतिक्षयं । ददर्श नृपतिश्रेष्ठं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरं ॥ २ ॥ स्नुषाभिर्नरश्रेष्ठ गान्धार्या विदुरेण च । तमेवचार्थं ध्यायन्तं कर्णस्य निधनं प्रति ॥ ३ ॥ रुदन्नेवाब्रवीद्वाक्यं वाक्यं संदिग्धया गिरा । संजयोऽहं नरव्याघ्र नमस्ते भरतर्षभ ॥ ४ ॥ मद्राधिपो हतः शल्यः शकुनिः सौबलस्तथा । उलूकः पुरुषव्याघ्र कैतव्यो दृढविक्रमः ॥ ५ ॥ संशप्तका हता सर्वे कांबोजाश्च शकैः सह । म्लेच्छाश्च पार्वतीयाश्च यवनाश्च विनिपातिताः ॥ ६ ॥ दुर्योधनो हतो राजा यथोक्तं पाण्डवेन ह । भग्नसक्थो महाराज शेते पांसुषु रूषितः॥७॥ धृष्टद्युम्नो महाराज शिखण्डी चापराजितः । उत्तमौजा युधामन्युस्तथा राजन् प्रभद्रकाः ॥ ८ ॥ पांचालाश्च नरव्याघ्र चेदयश्च निषूदिताः ॥ ९ ॥ तवपुत्रा हताः सर्वे द्रौपदेयाश्च भारत। कर्णपुत्रो हतः शूरो वृषसेनः प्रतापवान् ... किंशिच्छेषं च शिबिरं तावकानां कृतं प्रभो ॥ १० ॥ सप्तपाण्डवतः शेषा धार्तराष्ट्रास्त्रयो रथाः ॥ ११ ॥ ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोऽथ सात्यकिः । कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्च जयतांवरः॥१२॥

अर्थ—सवेर के समय संजय शिबिर से आया और दुःख शोक में भरा हुआ दीन हुआ नगरी में प्रविष्ट हुआ ॥ १ ॥ वैसे व्याकुल हुए संजय ने राजभवन में प्रविष्ट हो कर प्रज्ञाचक्षु राजा के दर्शन किये ॥ २ ॥ जो कि गान्धारी विदुर और स्नुषाओं समेत कर्ण के मरने का ही शोक कर रहे थे॥३॥ संजय रोता हुआ

गद्गदवाणी से यह वाक्य बोला, मैं सञ्जय हूं, हे भरतवर तुझे नमस्कार हो ॥ ४ ॥ मद्रेश शल्य, सुबलपुत्र शकुनि, दृढ़ पराक्रम वाला और छलिया उलूक, सारे संशप्त कांबोज शक म्लेच्छ पर्वतीय और यवन मारे गए ॥ ५—६ ॥ भीमसेन द्वारा राजा दुर्योधन भी मारा गया, और वह जंघा के टूटने से भूमि पर धूलि में लेटा हुआ है ॥ ७ ॥ (पाण्डव पक्ष के) धृष्टद्युम्न और न हारने वाला शिखण्डी, उत्तमाजा, युधामन्यु, सारे प्रभद्रक, पाञ्चाल और चेदि मारे गए हैं ॥ ८—९ ॥ आप के पुत्र सब मारे गए और द्रौपदी के सारे पुत्र भी, हे प्रभो ! आप के शिविर में कुछ ही योधे शेष बचे हैं ॥ १० ॥ पाण्डवपक्ष मे ७ और दुर्योधन पक्ष से ३ (महा धनुर्धारी बचे हैं ॥११॥ पांच भाई पाण्डव कृष्ण और सात्यकि और हमारे) कृपाचार्य कृतवर्मा और विजयिवर अश्वत्थामा ॥ १२ ॥

मूल—एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः । निपपात स राजेन्द्रो गतसत्त्वो महीतले ॥ १३ ॥ तस्मिन् निपातिते भूमौ विदुरोपि महायशाः । निपपात महाराज शोकव्यसनकर्शितः ॥१४॥ गान्धारी च नृपश्रेष्ठ सर्वाश्च कुरुयोषितः । पतिताः सहसा भूमौ श्रुत्वा क्रूरं वचस्तदा ॥ १५ ॥ स तु दीर्घेण कालेन प्रत्याश्वस्तो नराधिपः । तूष्णीं दध्यौ महीपालः पुत्रव्यसनकर्शितः ॥ १६ ॥ संजयोप्यरुदत्तत्र दृष्ट्वा राजानमातुरं । तथा सर्वाः स्त्रियश्चैव गान्धारी च यशस्विनी ॥ १७ ॥ ततो दीर्घेण कालेन विदुरं वाक्यमब्रवीत् । धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठ मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥ गच्छन्तु योषितः सर्वा गान्धारी च यशस्विनी । तथेमे सुहृदः सर्वे भ्राम्यते मे मनोभृशं ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्ततः क्षत्ता ताः स्त्रियो भर-

र्षभ । विसर्जयामास शनैर्वेपमानः पुनः पुनः ॥ २० ॥ स धूममिव निःश्वस्य करौ धुन्वन् पुनः पुनः । विचिन्त्य च महाराज ततो वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥ वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम । यच्छ्रुत्वा निहतान् पुत्रान् दीर्यते न सहस्रधा ॥ २२ ॥ चिन्तयित्वा वयस्तेषां बालक्रीडां च सञ्जय । हतान् पुत्रानशेषेण दीर्यते मे भृशं मनः ॥ २३ ॥ अनेत्रत्वाद्यदेतेषां न मे रूपनिदर्शनं । पुत्रस्नेहकृता प्रीतिर्नित्यमेतेषु धारिता ॥ २४ ॥ एह्येहि पुत्र राजेन्द्र ममानाथस्य सांप्रतं । त्वया हीनो महाबाहो कां नु यास्याम्यहं गतिं ॥ २५ ॥ गतिर्भूत्वा महाराज ज्ञातीनां सुहृदां तथा । अन्धं वृद्धं च मां वीर विहाय क्व नु यास्यसि ॥ २६ ॥ को नु मामुत्थितं वीर तात तातेति वक्ष्यति । महाराजेति सततं लोकनाथेति चासकृत् ॥ २७ ॥ यत्र शूरा महेष्वासाः कृतास्त्रा युद्ध दुर्मदाः । निहताः समरे सर्वे किमन्यद्भागधेयतः ॥ २८ ॥ पुत्राश्च मे विनिहताः पौत्राश्चैव महाबलाः । वयस्या भ्रातरश्चैव किमन्यद्भागधेयतः ॥ २९ ॥ अहं विमुक्तः स्वैर्भाग्यैः पुत्रैश्चैवेह संजय । कथमद्य भविष्यामि वृद्धः शत्रुवशं गतः॥ ३० ॥ नान्यदत्र परं मन्ये वनवासादृते प्रभो । सोहं वनं गमिष्यामि निर्बन्धुर्ज्ञातिसंक्षये ॥ ३१॥ एवं वृद्धश्च संतप्तः पार्थिवो हतबान्धवः । मुहुर्मुहुर्मुह्यमानः पुत्राधिभिरभिप्लुतः ॥ ३२ ॥ दीर्घमुष्णं स निःश्वस्य चिन्तयित्वा पराभवं। पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद् यथातथं ॥ ३३ ॥ ब्रूहि सर्वं यथा तत्त्वं भरतानां महाक्षयं । यथा च निहतः संख्ये पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ३४ ॥ यद्यथा यादृशं चैव युद्धं वृत्तसभूत्ततः । अखिलं श्रोतुमिच्छामि कुशलो ह्यसि संजय ॥ ३५ ॥

अर्थ--इस क्रूर वचन को सुनते ही राजा धृतराष्ट्र मूर्छित

हो कर भूमि पर गिर पड़े ॥ १३ ॥ उन के गिरते ही महा यश-स्वी विदुर भी शोक और दुःख से पीड़ित हुए भूमि पर गिर गए ॥ १४ ॥ तथा गान्धारी आदि सब कुरुकुल की स्त्रियें इस क्रूर वचन को सुन कर सहसा भूमि पर गिर पड़ीं ॥ १५ ॥ बहुत देर पीछे राजा सचेत हो कर पुत्र के व्यसन से पीड़ित हुए चुपचाप चिन्ता करने लगे ॥ १६ ॥ संजय भी राजा को दुःखी देख कर रोने लगा, और गान्धारी आदि स्त्रियें भी ॥ १७ ॥ बार २ मूर्छित होता हुआ धृतराष्ट्र बहुत देर के पीछे विदुर से यह वाक्य बोला ॥ १८ ॥ गान्धारी आदि सब स्त्रियें और यह सारे सुहृद् चले जावें, मेरा मन इस समय बहुत घबरा रहा है ॥ १९ ॥ यह सुन कर बार २ कांपते २ विदुर ने स्त्रियों और सुहृदों को विदा कर दिया ॥ २० ॥ पीछे लंबी सांस भर दोनों हाथों को मरोड़ते हुए चिन्ता में पड़े राजा यह वचन बोले ॥ २१ ॥ निःसंदेह मेरा हृदय फ़ुलाद का सा दृढ़ है, जो पुत्रों को मरा सुन कर टुकड़े २ नहीं हो जाता है ॥ २२ ॥ हे संजय मेरे पुत्र जो सारे ही अब मारे गए हैं, उन की छोटी आयु और बालक्रीडाओं का ध्यान करके मेरा मन फट रहा है॥२३॥नेत्र हीन होने के कारण मैंने उन के रूप को नहीं देखा था, पर पुत्रस्नेह से उत्पन्न हुई प्रीति मेरी सदा उन में स्थिर थी॥ २४॥ हे पुत्र दुर्योधन मेरे पास आओ मैं अब अनाथ हूं, तुझ से हीन हुआ हे महाबाहो मैं अब कहां जाऊं ॥२५॥सब ज्ञातियों का और सुहृदों का सहारा बन कर अब मुझ अन्ध वृद्ध को त्याग कर हे वीर कहां जाओगे ॥ २६ ॥ अब कौन हे वीर मुझे उठते ही बार २ तात महाराज लोकनाथ कहेगा ॥ २७ ॥ जब कि युद्ध में युद्धदुर्मद अक्लेवक्ता महाधनुर्धारी सब मारे गए,

तो भाग्य के सिवाय और क्या करूं ॥ २८ ॥ मेरे महाबली पुत्र और पोते भाई और सुहृद् सब ही मारे गए, भाग्य के सिवाय और क्या है ॥ २९ ॥ अब मैं अपने भाग्यों से और पुत्रों से हीन हुआ वृद्ध कैसे शत्रु के वश रहूंगा ॥ ३० ॥ मैं अब वन-बास के बिना कोई गति नहीं देखता हूं, सो मैं ज्ञातियों के क्षय होने पर अब बन्धु हीन हुआ बन को ही जाउंगा॥३१॥बान्धवों के मरने से इस प्रकार संतप्त हुआ वृद्ध राजा पुत्रों के सल्लों से भरा हुआ बार २ मूर्छित हुआ ॥ ३२ ॥ लंबा उष्ण सांस ले कर और अपने पराजय का स्मरण कर के फिर सूत से सारा वृत्तान्त पूछने लगा ॥ ३३ ॥ हे सूत भरतों के इस सारे महाक्षय को यथावत् कहो, जैसे मेरा पुत्र दुर्योधन युद्ध में मारा गया ॥३४॥ जो जैसा जिस ढंग पर युद्ध हुआ, वह सब सुनना चाहता हूं, हे संजय तुम कुशल हो ॥ ३५ ॥

अ०२(व०४-६) शल्य को सेनापति बनाना ।

मूल—संजय उवाच—भृशोद्विग्नेषु सैन्येषु दृष्ट्वा पार्थस्य विक्रमं । अभिज्ञानं नरेन्द्राणां विक्षतं प्रेक्ष्य संयुगे ॥ १ ॥ कृपा-विष्टः कृपो राजन् वयःशीलसमन्वितः । अब्रवीत् तत्र तेजस्वी सोऽभिसृत्य जनाधिपं ॥ २ ॥ दुर्योधन निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि कौरव । श्रुत्वा कुरु महाराज यदि ते रोचतेऽनघ ॥ ३ ॥ न युद्ध-धर्माच्छ्रेयान्वै पन्था राजेन्द्र विद्यते । यं समाश्रित्य युध्यन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ४ ॥ तदत्र प्रतिवक्ष्यामि किञ्चिदेव हितं वचः॥५॥ हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णे चैव महारथे । जयद्रथे च निहते तव भ्रातृषु चानघ॥ ६ ॥ लक्ष्मणे तव पुत्रे च किं शेषं पर्युपास्महे

॥ ७ ॥ येषु भारं समामाद्य राज्ये मतिमकुर्महि । ते संत्यज्य त-नूर्याताः शूरा ब्रह्मविदां गतिं ॥ ८ ॥ आत्मनोऽर्थे त्वया लोको यत्नत सर्व आहृतः । स ते संशयितस्तात आत्मा वै भरतर्षभ॥९॥ रक्ष दुर्योधनात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनं । भिन्ने हि भाजने तात दिशो गच्छति तद्गतं ॥ १० ॥ हीयमानेन वै सन्धिः पर्येष्टव्या समेन वा । विग्रहो वर्धमानेन मतिरेषा बृहस्पतेः ॥ ११ ॥ ते वयं पाण्डुपुत्रेभ्यो हीनाः स्म बल शक्तितः । तदत्र पाण्डवैः सार्धं स-न्धिं मन्ये क्षमं प्रभो ॥१२॥ वैचित्रवीर्यवचनात् कृपाशीलो युधि-ष्ठिरः । विनियुञ्जीत राज्ये त्वां गोविन्द वचनेन च ॥ १३॥ न त्वां ब्रवीमि कार्पण्यात् न प्राणपरिरक्षणात् । पथ्यं राजन् ब्रवीमि त्वां तत्परासुः स्मरिष्यसि ॥ १४ ॥

अर्थ—संजय बोले-अर्जुन के पराक्रम को देख कर सारी सेनाओं को अत्यन्त घबराया हुआ और राजाओं के झंडे रूप कर्ण को विक्षत देख कर कृपायुक्त हुए वृद्ध धर्मात्मा तेजस्वी कृपाचार्य दुर्योधन के निकट गए और कहने लगे ॥१-२॥ हे दुर्योधन ! सुनो जो मैं आप से कहता हूं, और सुन कर जो पस-न्द हो करो ॥ ३ ॥ हे क्षत्रियवर युद्ध धर्म से बढ़ कर कोई मार्ग नहीं है, जिस का आश्रय ले कर क्षत्रिय युद्ध करते हैं॥ ४ ॥ पर इस में मैं कुछ थोड़ी सी हित की बात कहूंगा ॥ ५ ॥ भीष्म, द्रोण, कर्ण, जयद्रथ, आप के भाई, और आप के पुत्र लक्ष्मण के मारे जाने पर अब कौन बचा है, जिस का हम भरोसा रखते हैं ॥ ६—७ ॥ जिन पर भार रख कर हम राज्य में निश्चय किये बैठे थे, वह शूरवीर देह त्याग कर ब्रह्मवेत्ताओं की गति को प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ अपने लिए आपने यत्न से सब लोगों को इकट्ठा

किया था, वह आप का अपना आप हे भरतवर अब संशय में पड़ा है ॥ ९ ॥ हे दुर्योधन अपनी रक्षा कर, अपना आप सब का पात्र है, पात्र के फूटने पर उस में की वस्तु सारी बिखर जाती है ॥ १० ॥ हीन और सम को चाहिये सन्धि ढूंढे, जो बढ़ा हुआ हो, वह युद्ध ढूंढे यह बृहस्पति का मत है ॥ ११ ॥ सो हम पाण्डुपुत्रों से बल और शक्ति से हीन हैं, इस लिए पाण्डवों से मैं सन्धि उचित समझता हूं ॥ १२ ॥ कृपाशील युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के और कृष्ण के कहने से तुझे अवश्य तेरा राज्य दे देगा ॥ १३ ॥ मैं यह बात दीनता से वा प्राणों की रक्षा के निमित्त नहीं कहता, हे राजन् मैं पथ्य कहता हूं, इस को मरने लगे स्मरण करोगे ॥ १४ ॥

मूल–एवमुक्तस्ततो राजा गौतमेन तपस्विना । निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च तूष्णीमासीद्विशांपते ॥ १५ ॥ ततो मुहूर्तं स ध्यात्वा धार्तराष्ट्रो महामनाः । कृपं शारद्वतं वाक्यमित्युवाच परंतपः ॥ १६ ॥ यत्किञ्चित् सुहृदा वाच्यं तत्सर्वं श्रावितो ह्यहं । कृतं च भवता सर्वं प्राणान् संत्यज्य युध्यता ॥ १७ ॥ हेतुकारणसंयुक्तं हितं वचनमुत्तमं । उच्यमानं महाबाहो न मे विप्राग्र्य रोचते॥१८॥ राज्याद्विनिकृतोऽस्माभिः कथं सोऽस्मासु विश्वसेत् । प्रलब्धश्च हृषीकेशस्तच्च कर्माविचारितं ॥ १९ ॥ कथं च राजा भुक्त्वेमां पृथिवीं सागराम्बरां । पाण्डवानां प्रसादेन भोक्ष्ये राज्यमहं कथं ॥ २० ॥ उपर्युपरि राज्ञां वै ज्वलित्वा भास्करो यथा । युधिष्ठिरं कथं पश्चादनुयास्यामि दासवत् ॥ २१ ॥ कथं भुक्त्वा स्वयं भोगान् दत्त्वा दायांश्च पुष्कलान् । कृपणं वर्तयिष्यामि कृपणैःसहजीविकां ॥ २२ ॥नाभ्यसूयामि ते वाक्यमुक्तं स्निग्धं हितं त्वया ।

न तु सन्धिमहं मन्ये प्राप्तकालं कथञ्चन ॥ २३ ॥ नायं क्लीबयितुं कालः संयोद्धुं काल एव नः॥ २४ ॥ इष्टं मे बहुभिर्यज्ञैर्दत्ता विप्रेषु दक्षिणाः । प्राप्ताः कामाः श्रुता वेदाः शत्रूणां मूर्ध्नि च स्थितं ॥ २५ ॥ भृत्या मे सुभृतास्तातं दीनश्चाभ्युद्धृतो जनः। नोत्सहेऽद्य द्विजश्रेष्ठ पाण्डवान् वक्तुमीदृशं ॥ २६ ॥ न ध्रुवं सुखमस्तीति कुतो राष्ट्रं कुतो यशः । इह कीर्तिर्विधातव्या सा च युद्धेन नान्यथा ॥ २७ ॥ गृहेयत् क्षत्रियस्यापि निधनं तद्विगर्हितं । अधर्मः सुमहानेष यच्छय्यामरणं गृहे ॥ २८ ॥ कृपणं विलपन्नार्तो जरयाभिपरिप्लुतः । म्रियते रुदतां मध्ये ज्ञातीनां न स पुरुषः ॥ २९ ॥ अपि तत्संगतं मार्गं वयमध्यारुहेमहि । पितामहेन वृद्धेन तथा चार्येण धीमता ॥ ३० ॥ जयद्रथेन कर्णेन तथा दुःशासनेन च॥३१॥ ये मदर्थे हताः शूरास्तेषां कृतमनुस्मरन् । ऋणं तत्प्रतियुञ्जानो न राज्ये मन आदधे ॥ ३२ ॥ घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितामहान् । जीवितं यदि रक्षेयं लोको मां गर्हयेद् ध्रुवं ॥ ३३ ॥ कीदृशं च भवेद्राज्यं मम हीनस्य बन्धुभिः । सखिभिश्च विशेषेण प्रणिपत्य च पाण्डवं ॥३४॥ सोऽहमेतादृशं कृत्वा जगतोऽस्य पराभवं । सुयुद्धेन ततः स्वर्गं प्राप्स्यामि न तदन्यथा ॥ ३५ ॥ एवं दुर्योधनेनोक्तं सर्वे संपूज्य तद्वचः। साधु साध्विति राजानं क्षत्रियाः संबभाषिरे ॥ ३६ ॥ पराजयमशोचन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे । सर्वे सुनिश्चिता योद्धुमुदग्रमनसोऽभवन् ॥ ३७ ॥

अर्थ—तपस्वी कृपाचार्य के ऐसा कहने पर राजा लंबा उष्ण सांस भर कर चुप होगया ॥ १४ ॥ थोड़ी देर सोच कर वह परंतप मनस्वी कृपाचार्य से यह वचन बोला ॥ १५ ॥ मित्रों ने जो कहना चाहिये, वह सब आपने मुझे सुना दिया है, और

आपने युद्ध करते समय भी प्राणों पर खेल कर हमारे लिए सब किया है ॥ १६ ॥ हे विप्रवर मैं क्या कहूं, आप के कहे वचन युक्तियुक्त और हित कर भी हैं, पर हे महाबाहो मुझे अब नहीं रुचते ॥ १७ ॥ युधिष्ठिर को हमने राज्य से निकाला, अब वह हमारे ऊपर कैसे विश्वास कर सकता है, और हमने कृष्ण का भी अनादर किया, यह सब अविचार का काम हो चुका है ॥ १८-१९ ॥ और यह भी कैसे हो सकता है, कि मैं राजा होकर सागर पर्यन्त पृथिवी को भोग कर अब पाण्डवों का दिया राज्य कैसे भोगूं ॥ २० ॥ सूर्य की भांति राजाओं से ऊंचा चमक कर अब कैसे दास की भांति युधिष्ठिर के पीछे चलूं ॥ २१ ॥ स्वयं भोगों को भोग कर और पुष्कल दान दे कर कैसे अब कृपणजीविका से जिऊं ॥ २२ ॥ मैं आप से कहे स्निग्ध हित वचन को बुरा नहीं कहता, पर सन्धि करने का मैं यह काल किसी प्रकार नहीं समझता हूं ॥ २३ ॥ अब कायर बन कर युद्ध छोड़ने का काल नहीं, यह हमारा युद्ध का ही काल है ॥ २४ ॥ मैंने बहुत यज्ञ किये हैं, ब्राह्मणों को दक्षिणाएं दी हैं, भोग भोगे हैं, वेद पढ़े हैं, शत्रुओं के सिर पर रहा हूं ॥ २५ ॥ पालनीयों का पालन किया है, दीनजनों का उद्धार किया है । सो अब मैं पाण्डवों से दीन वचन नहीं कह सकता हूं ॥ २६ ॥ न सुख अटल रहने वाला है, न राज्य, न दशा, हमें अपनी कीर्ति स्थिर रखनी चाहिये, और वह अब युद्ध के बिना नहीं हो सकती ॥ २७ ॥ घर में जो क्षत्रिय का मरना है, वह निन्दित है, यह बड़ा पाप है, जो घर में शय्या पर मरना है ॥ २८ ॥ जो बुढ़ापे से कांपता हुआ विलपता हुआ रोते हुए ज्ञातियों के मध्य में मरता है, वह पुरुष

नहीं है ॥ २९ ॥ हम उस मार्ग पर चढ़ेंगे, जिस पर भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, जयद्रथ, कर्ण और दुःशासन गए हैं ॥३०-३१॥ जो शूर मेरे अर्थ मरे हैं, उन के किये का स्मरण करता हुआ उन के ऋण को शोधूंगा, मैं राज्य में मन नहीं लगाता ॥ ३२ ॥ मित्र भाई और पितरों को मरवा कर अब यदि अपने जीवन की रक्षा करूं, तो निःसंदेह लोग मेरी निन्दा करेंगे ॥ ३३ ॥ बन्धुओं से और मित्रों से हीन अब मैं क्या राज्य करूंगा, और विशेषतः पाण्डवों के आगे झुक कर ॥ ३४ ॥ सो मैं ऐसे राज्य का अनादर कर के सुयुद्ध से अब स्वर्ग को जाउंगा और कुछ नहीं ॥ ३५ ॥ इस प्रकार दुर्योधन से कहे वचन का सब क्षत्रिय आदर कर के साधु साधु कहने लगे ॥ ३६ ॥ हारका शोक न कर के पराक्रम में चित्त वाले सब युद्ध के लिए निश्चित हुए ऊंचे मनों वाले हो गए ॥ ३७ ॥

मूल–ततो वाहान समाश्वास्य सर्वे युद्धाभिनन्दिनः। ऊने द्वियोजने गत्वा प्रत्यतिष्ठन्त कौरवाः ॥ ३८ ॥ दुर्योधन उवाच–गुरुपुत्रोऽद्य सर्वेषामस्माकं परमा गतिः। भवांस्तस्मान्नियोगात् ते कोऽस्तु सेनापतिर्मम ॥ ३९ ॥ द्रौणिरुवाच--अयं कुलेन रूपेण तेजसा यशसा श्रिया। सर्वैर्गुणैः समुदितः शल्यो नोऽस्तु चमूपतिः ॥ ४० ॥ ततो दुर्योधनो भूमौ स्थित्वा रथवरे स्थितं। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा द्रोणभीष्मसमं रणे ॥ ४१ ॥ अयं स कालः संप्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल। यत्र मित्रममित्रं वा परीक्षन्ते बुधा जनाः॥४२॥ स भवानस्तु नः शूरः प्रणेता वाहिनीपतिः॥ ४३ ॥ शल्य उवाच-यत्तु मां मन्यसे राजन् कुरुराज करोमि तत्। त्वत्प्रियार्थं हि मे सर्वं प्राणा राज्यं धनानि च॥ ४४ ॥अद्य चाहं रणे सर्वान् पञ्चा-

लान् सह पाण्डवैः। निहनिष्यामि वा राजन् स्वर्गं यास्यामि वा हतः ॥ ४५ ॥ अभिषिक्ते तथा शल्ये तव सैन्येषु मानद ॥ ४६ ॥ प्रहर्षं प्राप्यसेना तु तावकी भरतर्षभ। तां रात्रिमुषिता सुप्ता हर्ष-चित्ता च साभवत ॥ ४७ ॥

अर्थ—तब घोड़ों को आराम दे कर सारे युद्ध के प्यारे कौरव कुछ कम आठ योजन पर जा कर ठहरे ॥ ३८ ॥ दुर्योधन अश्वत्थामा से बोले-अब आप गुरुपुत्र हम सब का परम सहारा हैं, सो आज्ञा दीजिये, कौन अब हमारा सेनापति हो॥३९॥ अश्वत्थामा बोले—यह शल्य जो कुल रूप तेज यश लक्ष्मी से और सारे गुणों से युक्त है, वह हमारा सेनापति हो ॥ ४० ॥ तब दुर्योधन रथ से उतर कर रथ पर स्थित, रण में भीष्म द्रोण के तुल्य शल्य से हाथ जोड़ कर बोले ॥ ४१ ॥ हे मित्रवत्सल मेरे मित्रों का यह वह समय प्राप्त हुआ है, जब बुद्धिमान् पुरुष सच्चे मित्र और बनावटी मित्र को परखते हैं ॥ ४२ ॥ सो आप शूरवीर हैं, हमारे सेनापति बन कर सेना का परिचालन करें॥४३॥ शल्य बोले, हे कुरुराज! जो आप आज्ञा देते हैं, वही करता हूं, मेरे प्राण राज्य और धन सब आप की भलाई के लिए हैं॥४४॥ अब हे राजन्! रण में मैं या तो पाण्डवों समेत सारे पञ्चालों को मारूंगा, वा मर कर स्वर्ग को जाउंगा ॥ ४५ ॥ हे मानद तब तेरी सेनाओं में शल्य का अभिषेक होजाने के अनन्तर तेरी सेना हर्ष पाकर उस रात सोई और चित्त में बड़ी प्रसन्न हुई॥४७॥

अ० ३ (व० ७–१७) शल्य वध

मूल--व्यतीतायां रजन्यां तु राजा दुर्योधनस्तदा। अब्रवी-त्तावकान् सर्वान् संनह्यन्तां महारथाः ॥ १ ॥ ततो बलानि सर्वाणि

सेना शिष्टानि भारत । प्रस्थितानि व्यदृश्यन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनं ॥ २ ॥ ततः सर्वे समागम्य पुत्रेण तव सैनिकाः । कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिः शल्योऽथ सौबलः ॥ ३ ॥ अन्ये च पार्थिवाः शेषाः समयं चक्रुरादृताः ॥ ४ ॥ ननु एकेन योद्धव्यं कथञ्चिदपि पाण्डवैः । अन्योऽन्यं परिरक्षद्भिर्योद्धव्यं सहितैश्च ह ॥ ५ ॥ एवं ते समयं कृत्वा सर्वे तत्र महारथाः । मद्रराजं पुरस्कृत्य तूर्णमभ्यद्रवन् परान् ॥ ६ ॥ तथैव पाण्डवा राजन् व्यूह्य सैन्यं महारणे । अभ्ययुः कौरवान् राजन् योत्स्यमानाः समन्ततः ॥ ७ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं कुरूणां भयवर्धनं । सृंजयैः सह राजेन्द्र घोरं देवासुरोपमं ॥ ८ ॥ आविष्ट इव मद्रेशो मन्युना पौरुषेण च । प्राच्छादयदरीन् संख्ये कालसृष्ट इवान्तकः ॥ ९ ॥ तमापतन्तं पत्त्यश्वैः क्रुद्धो राजा युधिष्ठिरः । अवारयच्छरैस्तीक्ष्णैर्महाद्विपमिवांकुशैः ॥ १० ॥ संरक्षितो भीमसेनेन राजा माद्रीसुताभ्यां प्रथमाधवेन । मद्राधिपं पत्रिभिरुग्रवेगैस्तनान्तरे धर्मसुतो निजघ्ने ॥ ११ ॥ ततो रणे तावकानां रथौघाः समीक्ष्य मद्राधिपतिं शरार्त्तं । पर्यावव्रुः प्रवरास्ते सुसज्जा दुर्योधनस्यानुमते पुरस्तात् ॥ १२ ॥ मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरस्य शरैश्चतुर्भिर्निजघान वाहान् । वाहांश्च हत्वा व्यकरोन्महात्मा योधक्षयं धर्मसुतस्य राज्ञः ॥ १३ ॥ तमग्रणी सर्व धनुर्धराणामेकं चरन्तं समरेऽतिवेगं । भीमः शतेन व्यकिरच्छराणां माद्रीपुत्रः सहदेवस्तथैव ॥ १४ ॥ तैः सायकैर्मोहितं वीक्ष्य शल्यं भीमः शरैरस्य चकर्त वर्मास भीमसेनेन निकृत्तवर्मा युधिष्ठिरं भीमबलोऽभ्यधावत् ॥ १५ ॥ स धर्मराजो मणिहेमदण्डां जग्राह शक्तिं कनकप्रकाशां। नेत्रे च दीप्ते सहसा विवृत्य मद्राधिपं क्रुद्धमना निरैक्षत ॥ १६ ॥ ततस्तु शक्तिं रुचिरोग्रदण्डां मणिप्रवेकोज्ज्वलितां

प्रदीप्तां । चिक्षेप वेगात् सुभृशं महात्मा मद्राधिपाय प्रवरः कुरूणां ॥ १७ ॥ सा तस्य मर्माणि विदार्य शुभ्रमुरो विशालं च तथैव भित्त्वा । विवेशगां तोयमिवाप्रसक्ता यशो विशालं नृपतेर्दहन्ती॥१८॥ बाहू प्रसार्याभिमुखो धर्मराजस्य मद्रराट् । ततो निपतितो भूमा विन्द्रध्वज इवोच्छ्रितः ॥ १९ ॥ धर्म्ये धर्मात्मना युद्धे निहते धर्मसूनुना । सम्यग्घुत इवस्विष्टः प्रशान्तोऽग्निरिवाध्वरे ॥ २० ॥

अर्थ--रात के बीतने पर राजा दुर्योधन अपने सारे सैनिकों से बोले, सभी महारथ तय्यार होजाएं॥ १ ॥ तब हे भारत बची हुई सारी सेनाएं मरने मारने का निश्चय कर के चल पड़ीं ॥२॥ तब सारे सैनिक कृपाचार्य कृतवर्मा अश्वत्थामा शल्य शकुनि और दूसरे राजाओं ने मिल कर यह आपस में संकेत किया॥३-४ ॥ कि हममें से अकेला २ कोई पाण्डवों के साथ युद्ध न करे, एक दूसरे की रक्षा करते हुए सब मिल कर युद्ध करो ॥ ५ ॥ इस प्रकार सारे महारथ नियम बांध कर मद्रराज को आगे करके शीघ्र शत्रुओं की ओर धाए ॥ ६ ॥ वैसे ही हे राजन् पाण्डव सेना का व्यूह रच कर चारों ओर से युद्ध करने के लिए कौरवों के संमुख आए ॥ ७ ॥ अनन्तर सृंजयों के साथ कौरवों का भय बढ़ाने वाला देवदैत्य तुल्य घोर युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥८॥ क्रोध और पौरुष के आवेश में मद्रराज ने काल से प्रेरे मृत्यु की भांति रण में शत्रुओं को ढांप दिया ॥ ९ ॥ प्यादे और घोड़ों के साथ आते हुए शल्य को क्रुद्ध हुए राजा युधिष्ठिर ने तीखे बाणों से उसे रोका, जैसे अंकसों से महागज ॥ १० ॥ भीम, नकुल, सहदेव और सात्यकि से रक्षित हुए राजा युधिष्ठिर ने उग्र वेग वाले बाण शल्य की छाती पर मारे ॥ ११ ॥ तब रण में आप के रथ

समूह दुर्योधन की आज्ञा मे बाणों से पीड़ित मद्रराज की सहायता में प्रवृत्त हुए ॥ १२ ॥ मद्रराज ने भी चार बाणों से युधिष्ठिर के घोड़े मार डाले, घोड़ों को मार कर युधिष्ठिर के बहुत से योधों का क्षय किया ॥ १३ ॥ रण में बड़े वेग से अकेले मार करते हुए शल्य पर धनुर्धारियों में श्रेष्ठ भीम, और सहदेव ने बाण बरसाए ॥ १४ ॥ उन बाणों से शल्य को मोहित देख कर भीम ने अपने बाणों से उस का कवच छेद दिया, भीमसेन से कवच के छिदने पर वह रथ से उतर युधिष्ठिर की ओर ही दौड़ा ॥ १५ ॥ धर्मराज ने मणियों से भूषित सोने के दण्ड वाली सोने की सी चमक वाली शक्ति ली, और भखते नेत्र सहसा फेर कर क्रुद्ध मन हो शल्य की ओर देखा ॥ १६ ॥ अनन्तर सुन्दर उग्र दण्ड वाली सुन्दर मणियों से भूषित चमकती उस शक्ति को युधिष्ठिर ने मद्रराज की ओर बल से फेंका ॥ १७ ॥ वह उस के मर्मों और विशाल छाती को फोड़ कर शल्य के विशाल यश को जलाती हुई पानी की भांति भूमि में धंस गई ॥ १८ ॥ शल्य दोनों भुजाएं फैला कर युधिष्ठिर के संमुख भूमि पर ऊंचे इन्द्रध्वज की भांति आ गिरा ॥ १९ ॥ धर्मात्मा धर्मपुत्र ने जब धर्म युद्ध में उसे मार डाला, तो यज्ञ में भली भांति होमे हुए और पूर्णाहुति दिये गये अग्नि की भांति शान्त हो गया ॥ २० ॥

अ० ४ (१८-२०) शल्य बध

मूल—शल्येऽथ निहते राजन् मद्रराज पदानुगाः । युधिष्ठिरं जिघांसन्तः पाण्डूनां प्राविशन् बलं ॥ १ ॥ श्रुत्वा च निहतं शल्यं धर्मपुत्रं च पीडितं । आजगाम ततः पार्थो गांडीवं विक्षपन्

धनुः ॥ २ ॥ ॥ ततोऽर्जुनश्च भीमश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ। सात्यकिश्च नरव्याघ्रो द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥ ३ ॥ धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पांचालाः सह सोमकैः। युधिष्ठिरं परीप्सन्तः समन्तात् पर्यवारयन्॥ ४ ॥ ते मुहूर्ताद्रणे वीरा हस्ताहस्ति विशांपते। निहताः समदृश्यन्त मद्रराजपदानुगाः ॥ ५ ॥ निहतेषु च शूरेषु मद्रराजानुगेषु च। दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखं ॥६॥ नातिदूरापयातं तु कृतबुद्धिं पलायने। दुर्योधनः स्वकं सैन्यमब्रवीद् भृशविक्षतं ॥ ७ ॥ न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु च। यत्र यातान् न वा हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वा ॥ ८ ॥ अल्पं च बलमेतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ। यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो ध्रुवं नो विजयो भवेत् ॥ ९ ॥ विप्रयातांस्तु वो भिन्नान् पाण्डवाः कृतविप्रियाः। अनुसृत्य हनिष्यन्ति श्रेयान् नः समरे वधः॥१०॥ शृण्वन्तु क्षत्रियाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ॥ ११ ॥ यदा शूरं च भीरुं च मारयत्यन्तकः सदा। को नु मूढो न युध्येत पुरुषः क्षत्रियो ध्रुवं ॥ १२ ॥ मर्त्येनावश्यमर्तव्यं गृहेष्वपि कदाचन। युध्यतः क्षत्रधर्मेण मृत्युरेष सनातनः ॥ १३ ॥हत्वेह सुखमाप्नोति हतः प्रेत्य महत्फलं। न युद्धधर्माच्छ्रेयान्वै पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः ॥ १४ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं तस्य पूजयित्वा च पार्थिवाः। पुनरेवाभ्यवर्तन्त पाण्डवानाततायिनः ॥ १५ ॥

अर्थ--हे राजन् जब शल्य मारा गया, तो शल्य के सैनिक जन युधिष्ठिर को मारने की इच्छा से पाण्डवों की सेना में घुस गए ॥ १ ॥ शल्य को मारा गया और युधिष्ठिर को (मद्रों से) पीड़ित देख कर अर्जुन गांडीव को चलाता हुआ आ पहुंचा॥२॥ तब अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, सात्यकि, द्रौपदी के पुत्र, धृष्ट-

द्युम्न शिखण्डी पांचाल और सोमक युधिष्ठिर को बचाने के लिए उस के चारों ओर हो गए ॥ ३–४ ॥ मद्रराज के वे शूर सैनिक थोड़ी देर में रण में हाथों हाथी मारे गए देखे गए ॥ ५ ॥ मद्र-राज के अनुगामी वीरों के मारा जाने पर दुर्योधन की सेना ने फिर युद्ध से मुंह मोड़ लिया ॥ ६ ॥ जो अभी दूर नहीं गई, पर भाग निकलने को तय्यार अतीव विक्षत हुई अपनी सेना से दुर्योधन बोला ॥ ७ ॥ पृथिवी पर वा पर्वतों पर मैं कोई स्थान नहीं देखता हूं, जहां भाग गये हुओं को पाण्डव न मारें, सो तुम्हें भागने से क्या लाभ ॥ ८ ॥ इन की सेना थोड़ी है, और कृष्ण अर्जुन अत्यन्त विक्षत हैं, यदि यहां सब मिल कर डट जाएं, तो हमारा निःसंदेह विजय हो ॥ ९ ॥ पाण्डव जिन का आप वि-प्रिय कर चुके हुए हैं, वह अलग २ भागते हुए तुम लोगों का पीछा करके मार डालेंगे, सो युद्ध में मरना ही तुम्हें अच्छा है ॥ १० ॥ सुनो हे क्षत्रियो ! जितने तुम यहां इकट्ठे हो ॥ ११ ॥ जब काल शूर और भीरु दोनों को मार डालता है, तो कौन मूढ पुरुष क्षत्रिय हो कर युद्ध न करे ॥ १२ ॥ मनुष्य को घर में भी अवश्य कभी मरना ही होगा, क्षत्रधर्म से लड़ते हुए का जो मृत्यु है, यही सनातन है ॥ १३ ॥ मार कर यहां सुख को प्राप्त होता है और मर कर परलोक में बड़ा फल लाभ करता है, युद्ध धर्म से बढ़ कर हे कौरवो स्वर्ग का कोई मार्ग नहीं है ॥ १४ ॥ क्षत्रिय उस के वचन को सुन कर और आदर कर फिर आत-तायी पाण्डवों की ओर लौट आए ॥ १५ ॥

मूल—सन्निवृत्ते जनौघे तु शाल्वो म्लेच्छ गणाधिपः। अभ्य-वर्तत संक्रुद्धः पाण्डवानां महद्बलं॥ १६ ॥ आस्थाय सुमहानागं

प्रभिन्नं पर्वतोपमं । द्वममैरावतप्रख्यममित्र गणमर्दनं ॥ १७॥ततः प्रभग्ना सहसा महाचमूर्गजेन्द्रवेगं तमपारयन्ती। सेनापतिः पाण्डव-सृञ्जयानां पांचालपुत्रो ममृषे न कोपात् ॥ १८ ॥ तमापतन्तं सहसा तु दृष्ट्वा पाञ्चालपुत्रं युधि राजसिंहः । तोत्रांकुशैः प्रेषयामास तूर्णं पञ्चालराजस्य रथं प्रदिश्य ॥ १९ ॥ दृष्ट्वापतन्तं सहसा तु नागं धृष्टद्युम्नः स्वरथाच्छीघ्रमेव । गदां प्रगृह्योग्रजवेन वीरो भूमिं प्रपन्नो भयविह्वलांगः ॥ २० ॥ स तं रथं हेमविभूषितांगं साश्वं ससूतं सहसा विमृद्य । उत्क्षिप्य हस्तेन नदन्महाद्विपो विपोथयामास वसुन्धरातले॥ २१ ॥ पञ्चालराजस्य सुतं च दृष्ट्वा तदार्दितं नागवरेण तेन । तमभ्यधावत्सहसा जवेन भीमः शिखण्डी च शिनेश्च नप्ता ॥ २२ ॥ स सम्भ्रमं भारतशत्रुघाती जवेन वीरोऽनुससार नागं । गदां समाविध्द भृशं जघान पञ्चालराजस्य सुतस्तरस्वी ॥२३॥ निपात्यमाने तु तदा गजेन्द्रे हाहाकृते तव पुत्रस्य सैन्येऽस शाल्वराजस्य शिनिप्रवीरो जहार भल्लेन शिरः शितेन ॥२४॥

अर्थ—सेनासमूह के लौट आने पर म्लेच्छगणों का राजा शाल्व क्रुद्ध हुआ शत्रुगणों के मलने वाले पर्वत समान मत्त हाथी पर बैठ कर पाण्डवों की बड़ी सेना के सम्मुख हुआ॥१६-१७॥ उस गजेन्द्र के वेग का पार न पाती हुई पाण्डवों की बड़ी सेना भाग निकली। यह सेनापति धृष्टद्युम्न कोप से न सहसके ॥१८॥ धृष्टद्युम्न को वेग से आता देख कर शाल्व ने तोत्र और अंकुशों से हाथी को उस के रथ की ओर प्रेरा ॥ १९ ॥ धृष्टद्युम्न हाथी को अचानक आपड़ते देख कर घबरा कर हाथ में गदा ले झटपट रथ से भूमि पर उतर आया ॥ २० ॥ हाथी ने सुवर्णभूषित

अंगों वाले उस रथ को सूत और घोड़ों समेत मल कर सूंड से ऊंचा उठा कर धरातल पर फैंक कर पीस डाला ॥ २१ ॥ धृष्टद्युम्न को उस महागज से पीड़ित देख कर भीम शिखण्डी और सात्यकि उस की सहायता के लिए दौड़े ॥ २२ ॥ शत्रुओं के मारने वाले वेगवान् धृष्टद्युम्न ने शीघ्रता से हाथी का पीछा करके गदा घुमाकर बल से मारी ॥ २३ ॥ गजराज को गिरता देख तेरी सेना में हाहाकार मचा, उधर सात्यकि ने झट तीखे भाले से शाल्वराज का सिर छेद दिया ॥ २४ ॥

अ० ५ (व० २१-२७) दुर्योधन के भाइयों का वध

मूल—तस्मिंस्तु निहते शूरे शाल्वे समितिशोभने । तवाभज्यद्बलं वेगाद्वातेनेव महाद्रुमः ॥ १ ॥ तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कृतवर्मा महारथः । दधार समरे शूरः शत्रुसैन्यं महाबलः ॥ २ ॥तत्राश्चर्यमभूद्युद्धं सात्वस्य परैः सह । यदेको वारयामास पाण्डुसेनां दुरासदां ॥ ३ ॥ तमायान्तं महाबाहुं प्रवपन्तं शितान् शरान् । जवेनाभ्यपतद्धीमान् हार्दिक्यः शिनिपुंगवं ॥ ४ ॥ पाण्डवाः सहपञ्चाला योधाश्चान्ये नृपोत्तमाः ।प्रेक्षकाः समपद्यन्त तयोर्घोरे समागमे ॥ ५ ॥ हतसूते हताश्वे तु विरथे कृतवर्मणि । अभ्यधावत् कृपो राजन् जिघांसुःशिनिपुंगवं ॥ ६ ॥ तमारोप्य रथोपस्थे मिषतां सर्वधन्विनां । अपोवाह महाबाहुं तूर्णमायोधनादपि ॥७॥ पुत्रस्तु ते महाराज रथस्थो रथिनांवरः । दुरुत्सहो बभौ युद्धे यथा रुद्रः प्रतापवान् ॥ ८ ॥ तस्य बाणसहस्रैस्तु प्रच्छन्नाह्यभवन्मही । परांश्च सिषिच बाणैर्धाराभिरिव पर्वतान् ॥ ९ ॥ ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत् । युध्यध्वमग्रतो यावत् पृष्ठतो हन्मि

पाण्डवान्॥ १० ॥ अनीकं दशसाहस्रमश्वानां भरतर्षभ । आसीद् गान्धार राजस्य विशालप्रासयोधिनां ॥ ११ ॥ बलेन तेन विक्रम्य वर्तमाने जनक्षये । पृष्ठतः पाण्डवानीकमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः ॥ १२ ॥ ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात् । अभ्यनोदयदव्यग्रः सहदेवं महाबलं ॥ १३ ॥ असौ सुबलपुत्रो जघनं पीड्य दंशितः । गच्छ त्वं द्रौपदेयैश्च शकुनिं सौबलं जहि॥१४ ॥ अश्वारोहास्तु संरब्धाः पाण्डवानां तरस्विनां । प्राविशन् सौबलानीकमभ्यतिक्रम्य तान् रथान् ॥ १५ ॥ रुधिरोक्षितसर्वांगा विप्रविद्धैर्नियन्तृभिः । हयाः परिपतन्तिस्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १६ ॥ दूरं न शक्यं तत्रासीद्गन्तुमश्वेन केनचित् । साश्वारोहैर्हतैरश्वैरावृते वसुधातले ॥ १७ ॥ स मुहूर्तं ततो युध्वा सौबलोऽथ विशांपते । षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छकुनिस्ततः ॥ १८ ॥

अर्थ—रणबांकुर शल्य के मारा जाने पर आप का सेनादल वायु से बड़े वृक्ष की भांति वेग से टूटा ॥ १ ॥ सेना को भागते देख महारथ कृतवर्मा ने शत्रुसेना को रोका ॥ २ ॥ वहां उस यादव का शत्रुओं के साथ आश्चर्य युद्ध हुआ, क्योंकि उस अकेले ने पाण्डवों की दुर्जेय सेना को रोक लिया ॥ ३ ॥ तीक्ष्ण बाण फैंकते हुए आते उस महाबाहु यादव के सात्यकि वेग से सम्मुख हुआ ॥ ४ ॥ उन दोनों के घोर समागम में पाण्डव पांचाल और दूसरे योधे देखने वाले रहे ॥ ५ ॥ जब कृतवर्मा का सारथि और घोड़े मारे गए और रथ टूट गया, उसी समय कृपाचार्य सात्यकि को मारने की इच्छा से दौड़ा ॥ ६ ॥ पर वह कृतवर्मा को सब के सामने रथ पर बिठला कर रण से निकाल लाया ॥ ७ ॥ हे महाराज! आप का पुत्र रथिवर रथ पर बैठ कर प्रता-

पवान् रुद्र की भांति युद्ध में दुःसह प्रतीत होने लगा॥८॥ उस के सहस्रों बाणों से पृथिवी ढप गई, पर्वतों पर जल धारा की भांति शत्रुओं पर उस ने बाणों की झड़ी लगा दी ॥ ९ ॥ उस समय गान्धारराज का पुत्र शकुनि बोला, तुम आगे की ओर से युद्ध किये चलो, मैं पीछे की ओर होकर पाण्डवों को मारता हूं॥१०॥ बड़े २ भालों से युद्ध करने वाली गान्धारराज की दस सहस्र घुड़सेना थी ॥११॥ उस सेना को ले कर उस रण में बड़े विक्रम से पीछे की ओर जा कर तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवों को मारने लगा ॥ १२ ॥ तब युधिष्ठिर ने अपनी सेना को भागते देख कर महाबली सहदेव को भेरा ॥ १३ ॥ वह शकुनि हमारी पीठ को पीड़ित करता हुआ डटा है, तुम द्रौपदी पुत्रों के साथ जा कर शकुनि को मारो ॥ १४ ॥ तब पाण्डवों के घुड़सवार उन रथों को लंघ कर शकुनि की सेना में जा घुसे ॥ १५ ॥ वहां रुधिर से लिबड़े अंगों वाले घोड़े विद्ध हुए घुड़सवारों समेत सैंकड़ों सहस्रों गिरने लगे ॥ १६ ॥ वहां घुड़सवारों समेत मरे घोड़ों से पूरित धरातल पर किसी के लिए भी घोड़ों से दूर तक जाना अशक्य हो गया॥ १७ ॥ कुछ देर तक शकुनि युद्ध करके बची छः सहस्र सेना ले कर भागा ॥ १८ ॥

मूल—धृष्टद्युम्नस्ततो राजंस्तव पुत्रेण धन्विना । सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ १९ ॥ तस्याश्वांश्चतुरो बाणैः प्रेषयामास मृत्यवे । सारथेश्चास्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत्॥ २० ॥ ततो दुर्योधनो राजा पृष्ठमारुह्य वाजिनः । तवपुत्रो महाराज प्रययौ यत्र सौबलः ॥ २१ ॥ अदृश्यमाने कौरव्ये पुत्रे दुर्योधने तव । सोदर्याः सहिता भूत्वा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥ २२॥

ते हतान्यपतन् भूमौ स्यन्दनेभ्यो महारथाः । वसन्ते पुष्पशबला निकृत्ता इव किंशुकाः ॥ २३ ॥ भीमसेनस्तु कौन्तेयो हत्वा युद्धे सुतांस्तव । मेने कृतार्थमात्मानं सफलं जन्म च प्रभो ॥ २४ ॥ ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा वाजिमध्ये व्यवस्थितं । उवाच देवकीपुत्रः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयं ॥ २५ ॥ असौ दुर्योधनः पार्थ वाजिमध्ये व्यवस्थितः । छत्रेण ध्रियमाणेन प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ॥ २६ ॥ तद-नीकं तदा पार्थो व्यधमद्बहुभिः शरैः । पातयित्वा हयान् सर्वा-स्त्रिगर्तानां रथान् ययौ ॥ २७ ॥ सुशर्माणं रणे हत्वा पुत्रानस्य महारथान् । सप्तचाष्टौ च त्रिंशच्च सायकैरनयत क्षयं ॥ २८ ॥

अर्थ—तब महाधनुर्धारी धृष्टद्युम्न ने हे राजन् आप के पुत्र से तीव्र से पीड़ित हाथी की भांति अति विद्ध हो कर अपने बाणों से दुर्योधन के चारों घोड़े मार डाले, और भाले से उस के सारथि का सिर धड़ से अलग किया ॥ १९—२० ॥ तब हे महाराज आप का पुत्र दुर्योधन घोड़े की पीठ पर चढ़ कर वहां चला गया, जहां शकुनि था ॥ २१ ॥ आप के पुत्र दुर्योधन के वहां न दीखने पर शेष चार भाई मिल कर भीमसेन की ओर दौड़े ॥ २२ ॥ वह महारथ मारे जाकर रथों से वसन्त में कटे फूलों से लाल केसुओं की भांति भूमि पर गिरे ॥ २३ ॥ भीमसेन ने युद्ध में आप के पुत्रों को मार कर अपने को कृतार्थ और अपने जन्म को सफल माना ॥ २४ ॥ अनन्तर दुर्योधन को घुड़सेना के मध्य में देख कर श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले ॥ २५ ॥ हे अर्जुन वह घुड़सेना के बीच सिर पर छत्र धारे दुर्योधन बार २ देख रहा है ॥ २६ ॥ तब अर्जुन ने उस सेना को अनेक बाणों से नाश किया, उन सब घुड़सवारों को नाश करके त्रिगर्तों के रथों

की ओर गया ॥ २७ ॥ रण में सुशर्मा को मार कर उस के पैंता-लीस पुत्रों को बाणों से यम के घर भेजा ॥ २८ ॥

अ० ६ (श्लो० २८--२९) कौरवों का क्षय

मूल—तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजि नरक्षये । शकुनिः सौबलो राजन् सहदेवं समभ्ययात् ॥ १ ॥ उलूकोपि महाराज भीमं विव्याध सप्तभिः । सहदेवं च सप्तत्या परीप्सन् पितरं रणे ॥ २ ॥ ततोऽस्यापततः शूरः सहदेवः प्रतापवान् । उलूकस्य महाराज भल्लेनापाहरच्छिरः ॥ ३ ॥ पुत्रं तु निहतं दृष्ट्वा शकुनिस्तत्र भारत । साश्रुकण्ठो विनिःश्वस्य क्षत्तुर्वाक्यमनुस्मरन् ॥ ४ ॥ सहदेवं समासाद्य त्रिभिर्विव्याध सायकैः ॥ ५ ॥ स सौबलमभिद्रुत्य गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः । भृशमभ्यहनत् क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपं ॥ ६ ॥ उवाच चैनं मेधावी विगृह्य [illegible] ॥ ७ ॥ यत्तदा हृष्यसे मूढ ग्लहन्नक्षैः सभातले । फलमद्य प्रपश्यस्व कर्मणस्तस्य दुर्मते ॥ ८ ॥ निहतास्ते दुरात्मानो [illegible] पुरा । दुर्योधनः कुलांगारः शिष्टस्त्वं चास्य मातुलः ॥ ९ ॥ अद्य ते निहनिष्यामि क्षुरेणोन्मथितं शिरः । वृक्षात्फलमिवाविद्धं लगुडेन प्रमाथिना ॥ १० ॥ ततो भूयो महाराज सहदेवः प्रतापवान् । शकुनेः प्रेषयामास शरवृष्टिं दुरासदां ॥ ११ ॥ तस्याशुकारी सुसमाहितेन सुवर्णपुंखेन दृढायसेन । भल्लेन सर्वावरणातिगेन शिरः शरीरात् प्रममाथ भूयः ॥ १२ ॥ हतं समीक्ष्य शकुनिं समीक्ष्य भूमौ शयानं रुधिरार्द्रगात्रं । योधास्त्वदीया [illegible] प्रजग्मुः प्रगृहीतशस्त्राः ॥ १३ ॥

अर्थ—[illegible] घोड़े और मनुष्यों के क्षयकारी उस संग्राम के के प्रवृत्त [illegible] सुबलपुत्र शकुनी सहदेव की ओर

गया ॥ १ ॥ उलूक ने भी अपने पिता की सहायता के निमित्त सात से भीम को और सत्तर से सहदेव को विद्ध किया ॥ २ ॥ उलूक के आते ही प्रतापी शूरवीर सहदेव ने भाले से उस का सिर काट गिराया ॥ ३ ॥ हे भारत ! पुत्र को मरा देख कर शकुनि का कण्ठ आंसुओं से भर गया और विदुर के वाक्य को स्मरण कर लंबा सांस भरा ॥ ४ ॥ और सहदेव के पास आकर तीन बाणों से उस को विद्ध किया ॥ ५ ॥ सहदेव ने शकुनि की ओर दौड़ कर क्रुद्ध हो तोत्रों से हाथी की भांति तीखे बाणों से उस को विद्ध किया ॥ ६ ॥ और उस को स्मरण कराते हुए यह बोला ॥ ७ ॥ हे मूढ़ ! उस समय जो पासों से दाव लगाते हुए तुम प्रसन्न होते थे, हे दुर्मते ! उस कर्म का आज फल देख ॥ ८ ॥ वे दुर्जन सब मारे गये जो हमारे ऊपर हंसे थे, अब एक कुलांगार दुर्योधन और दूसरे तुम उस के मामा शेष हो ॥ ९ ॥ आज क्षुर से तेरे सिर को काट डालूंगा, जैसे दृढ़ दण्ड से वृक्ष से फल काटा जाता है ॥ १० ॥ इतना कह हे महाराज प्रतापी सहदेव ने शकुनि पर दुर्धर्ष बाणवृष्टि आरम्भ की ॥ ११ ॥ शीघ्रहस्त सहदेव ने सारे परदे चीर जाने वाले लोहे के फूलादी भाले से उस के धड़ से सिर को काट गिराया ॥ १२ ॥ शकुनि के सिर को कटा और रुधिर से लिबड़े शरीर को भूमि पर पड़ा देख कर आप के योधे भय से व्याकुल शस्त्र लिए चारों ओर से भाग निकले ॥ १३ ॥

मूल—हतशेषान् समानीय क्रुद्धो रथगणान् बहून् । उवाच सहितान् सर्वान् धार्तराष्ट्र इदं वचः ॥१४॥ समासाद्य रणे सर्वान् पाण्डवान् ससुहृद्गणान् । पाञ्चालं चापि सबलं हत्वा शीघ्रं न्य-

वर्तत ॥ १५ ॥ ते तस्य शिरसा गृह्य वचनं युद्धदुर्मदाः । अभ्युद्ययू रणे पार्थांस्तव पुत्रस्य शासनात् ॥ १६ ॥ तत्सैन्यं भरतश्रेष्ठ मुहूर्तेन महात्मभिः । अवध्यत रणं प्राप्य त्रातारं नाभ्यविन्दत ॥ १७ ॥ ततो निःशेषमभवत्तत्सैन्यं तव भारत । एको दुर्योधनो राजन्नदृश्यत भृशं क्षतः ॥ १८ ॥ ततो वीक्ष्य दिशः सर्वा दृष्ट्वा शून्यां च मेदिनीं । दुर्योधनो महाराज कश्मलेनाभिसंवृतः ॥ १९ ॥ अपयाने मनश्चक्रे निहीनबलवाहनः ॥ २० ॥ हतं स्वहयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद् भयात् । एकादशचमूभर्ता पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ २१ ॥ नातिदूरं ततो गत्वा पद्भ्यामेव नराधिपः । सस्मार वचनं क्षत्तुर्धर्मशीलस्य धीमतः ॥ २२ ॥ इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान् पुरा । महद्वैशसमस्माकं क्षत्रियाणां च संयुगे ॥ २३ ॥ क्रोशमात्रमपक्रान्तं गदापाणिमवस्थितं । एकं दुर्योधनं राजन्न पश्यं भृशविक्षतं ॥ २४ ॥ स तु मामश्रुपूर्णाक्षो नाशक्नोदभिवीक्षितुं ॥ २५ ॥ तं चाहमपि शोचन्तं दृष्ट्वैकाकिनमाहवे । मुहूर्तं नाशकं वक्तुमतिदुःखपरिप्लुतः ॥ २६ ॥ स दीर्घमिव निःश्वस्य प्रसवेक्ष्य पुनः पुनः । असौ मां पाणिना स्पृष्ट्वा पुत्रस्ते पर्यभाषत ॥ २७ ॥ त्वदन्यो नेह संग्रामे कश्चिज्जीवति संजय । द्वितीयं नेह पश्यामि ससहायाश्च पाण्डवाः ॥ २८ ॥ ब्रूयाः संजय राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरं । दुर्योधनस्तव सुतः प्रविष्टो ह्रदमित्युत ॥२९॥ सुहृद्भिस्तादृशैर्हीनः पुत्रैर्भ्रातृभिरेव च पाण्डवैश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः ॥ ३० ॥ आचक्षीथाः सर्वमिदं मां च मुक्तं महाहवात् । अस्मिंस्तोयह्रदे गुप्तं जीवन्तं भृशविक्षतं ॥ ३१ ॥ एवमुक्त्वा महाराज प्राविशत्तं महाह्रदं । अस्तंभयत तोयं च मायया मनुजाधिपः ॥ ३२ ॥

अर्थ—मरने से बचे बहुतसे रथदलों को इकट्ठा करके दुर्योधन क्रोध पूर्वक यह वचन बोला ॥ १४ ॥ रण में पाण्डव उनके सुहृद्गण और सेना समेत धृष्टद्युम्न को मार कर शीघ्र लौटो॥१५॥ वे उस के वचन को शिरोधार्य कर के आप के पुत्र के शासन से रण में पाण्डवों के अभिमुख हुए ॥ १६ ॥ वह सेना पाण्डवों से थोड़ी देर में मारी गई, रण में कोई त्राता न पा सकी॥१७॥ तब सारी आप की सेना हे भारत निःशेष हो गई, अकेला दुर्योधन हे राजन् बहुत बड़ा विक्षत हुआ जीता देख पड़ा ॥१८॥तब हे राजन् दुर्योधन सारी दिशाओं को और पृथिवी को शून्य देख कर भारी घबरा गया ॥ १९ ॥ तथा सेना और वाहनों से हीन हुए ने भाग जाने का निश्चय किया ॥ २० ॥ दुर्योधन आप का पुत्र जो ग्यारह अक्षौहिणी का स्वामी था, अब मरे घोड़े को छोड़ कर प्राङ्मुख हुआ पैदल भय से भाग गया॥२१॥ पाओं से थोड़ी दूर ही जा कर उस को धर्मशील विदुर का वचन याद आया ॥ २२ ॥ यह हमारा और दूसरे क्षत्रियों का विनाश निःसंदेह विदुर ने पहले ही समझा था ॥ २३ ॥ कोस भर निकल गए हाथ में गदा लिए अत्यन्त विक्षत हुए दुर्योधन को मैंने अकेले खड़े देखा ॥ २४ ॥ उस के नेत्र आंसुओं से भर गए और वह मुझे देख न सका ॥ २५ ॥ शोक करते हुए उस अकेले को देख कर मैं भी दुःख से भरा हुआ थोड़ी देर उस से कुछ बोल न सका ॥ २६ ॥ उस ने लंबी सांस भरी और बार २ मुझे देख कर हाथ से स्पर्श करके बोला ॥ २७ ॥ हे संजय तेरे सिवाय इस संग्राम में कोई जीता नहीं बचा है, मुझे कोई और नहीं दीखता है, और पाण्डव साथियों समेत हैं ॥ २८ ॥ हे संजय प्रज्ञाचक्षु

राजा से कहना, आप का पुत्र दुर्योधन ह्रद में प्रविष्ट हो गया है ॥ २९ ॥ ऐसे सुहृदों पुत्रों और भाइयों से हीन हुआ और पाण्डवों से राज्य छीना जाने पर कौन मेरे सदृश पुरुष जीता रह सकता है ॥ ३० ॥ यह सब कुछ कहना, और मेरे विषय में कहना, कि वह महारण से छूटा हुआ अत्यन्त विक्षत हुआ जीता हुआ इस जल ह्रद में छिपा हुआ है ॥ ३१ ॥ यह कह कर हे महाराज वह उस महा ह्रद में प्रविष्ट हो गया, और माया से जल को थाम दिया ॥ ३२ ॥

मूल—तस्मिन् ह्रदं प्रविष्टे तु त्रीन् रथान् श्रान्तवाहनान्। अपश्यं सहितानेकस्तं देशं समुपेयुषः ॥ ३३ ॥ अपृच्छंश्चैव मां सर्वे तव पुत्रं जनाधिप । कच्चिद्दुर्योधनो राजा स नो जीवति सञ्जय ॥ ३४ ॥ आख्यातवानहं तेभ्यस्तदा कुशलिनं नृपं । ह्रदं चैवाहमाचक्षं यत्प्रविष्टो नराधिपः ॥ ३५ ॥ अश्वत्थामा तु तद्राजन् निशम्य वचनं मम । तं ह्रदं विपुलं प्रेक्ष्य करुणं पर्यदेवयत ॥ ३६ ॥ अहोधिङ् न स जानाति जीवितोऽस्मान् नराधिपः । पर्याप्ता हि वयं तेन सह योधयितुं परान् ॥ ३७ ॥ते तु तत्र चिरं कालं विलप्य च महारथाः । प्राद्रवन् रथिनां श्रेष्ठा दृष्ट्वा पाण्डुसुतान् रणे ॥ ३८ ॥ ते तु मां रथमारोप्य कृपस्य सुपरिष्कृतं । सेनानिवेशमाजग्मुर्हतशेषास्त्रयो रथाः ॥ ३९ ॥ दुर्योधनस्य सचिवा ये केचिदवशेषिताः । राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥ ४० ॥

अर्थ—जब वह ह्रद में प्रविष्ट हो गया, तब मैंने थके घोड़े वाले तीन महारथी (कृप, अश्वत्थामा और कृतवर्मा) वहां आए देखे ॥ ३३ ॥ मुझे उन सब ने आप के पुत्र के विषय में पूछा, हे सञ्जय क्या राजा दुर्योधन जीता है ॥ ३४ ॥ मैंने उन को बत-

लाया राजा कुशल हैं, और वह ह्रद भी बतलाया, जिस में राजा प्रविष्ट हुआ था ॥ ३५ ॥ अश्वत्थामा तो हे राजन् मेरे वचन को सुन कर ह्रद को बहुत ढूंढ भाल कर विलाप करने लगा ॥ ३६ ॥ अहो धिक् राजा हम को जीता नहीं जानते हैं, राजा के साथ होकर हम शत्रुओं से लड़ने को पर्याप्त हैं ॥ ३७ ॥ वह महारथी वहां देर तक विलाप करके, पाण्डवों को रण में देखकर भाग गए ॥ ३८ ॥ मुझे कृपाचार्य के रथ पर चढ़ा लाए और वह हतशेष तीन महारथी सेना निवेश में आए ॥ ३९ ॥ दुर्योधन के मन्त्री जो बच रहे थे, वह रानियों को ले कर नगर में आए ॥ ४० ॥

गदापर्व ॥

अ० १ (व०३-)कृपाचार्यादि का दुर्योधन से संभाषण

मूल--विद्रुते शिबिरे शून्ये भृशोद्विग्नास्त्रयो रथाः । स्थानं नारोचयंस्तत्र ततस्ते ह्रदमभ्ययुः ॥ १ ॥ युधिष्ठिरोपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो रणे। हृष्टः पर्यचरद्राजन् दुर्योधनवधेप्सया ॥२॥ मार्गमाणास्तु संक्रुद्धास्तव पुत्रं जयैषिणः । यत्नतोऽन्वेषमाणास्ते नैवापश्यन् जनाधिपं ॥ ३ ॥ यदा तु पाण्डवाः सर्वे सुपरिश्रान्त वाहनाः । ततः स्वशिबिरं प्राप्य व्यतिष्ठन्त सैनिकाः ॥ ४ ॥ ततः कृपश्च द्रौणिश्च कृतवर्मा च शाश्वतः । सन्निविष्टेषु पार्थेषु प्रयातास्तं ह्रदं शनैः ॥ ५ ॥ ते तं ह्रदं समासाद्य यत्र शेते जनाधिपः। अभ्यभाषन्त दुर्धर्षं राजानं सुप्तमम्भसि ॥ ६ ॥ राजन्नुत्तिष्ठ युध्यस्व सहास्माभिर्युधिष्ठिरं । जित्वा वा पृथिवीं भुंक्ष्व हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ॥ ७ ॥ तेषामपि बलं सर्वं हतं दुर्योधन त्वया। प्राति-

विद्धाश्च भूयिष्ठं ये शिष्टास्तत्र सैनिकाः ॥ ८ ॥ दुर्योधन उवाच—दिष्ट्या पश्यामि वो मुक्तानीदृशात्पुरुषक्षयात् । पाण्डुकौरवसंमर्दाज्जीवमानान् नरर्षभान् ॥ ९ ॥ भवन्तश्च परिश्रान्ता वयं च भृशविक्षताः । उदीर्णं च बलं तेषां तेन युद्धं न रोचये ॥ १० ॥ न त्वेतदद्भुतं वीरा यद्वो महदिदं मनः । अस्मासु च परा भक्तिर्न तु कालः पराक्रमे ॥११॥ विश्रम्यैकां निशामद्य भवद्भिः सहितो रणे । प्रतियोत्स्याम्यहं शत्रून् श्वो न मेऽस्त्यत्र संशयः॥ १२ ॥

अर्थ--शिविर के सब लोगों के भाग जाने पर अत्यन्त उदास हुए तीनों रथी वहां ठहर न सके, इस से वे ह्रद की ओर गए ॥ १ ॥ धर्मात्मा युधिष्ठिर भी भाइयों समेत रण में दुर्योधन के मारने की इच्छा से प्रसन्न हुआ घूमने लगा ॥ २ ॥ जयाभिलाषी पाण्डव क्रुद्ध हुए आप के पुत्र को यत्न से ढूंढते हुए उस को कहीं न देख पाए ॥ ३ ॥ जब सब पाण्डवों के वाहन थक गए, तब सैनिकों समेत अपने शिबिरों में जा कर ठहरे ॥ ४ ॥ अनन्तर पाण्डवों के सो जाने पर कृप अश्वत्थामा और कृतवर्मा धीरे २ उस ह्रद पर गए ॥ ५ ॥ वे उस ह्रद पर पहुंच कर, जहां राजा लेटा हुआ था, जल में लेटे हुए दुर्धर्ष राजा से बोले ॥ ६ ॥ हे राजन् उठो, हमारे साथ चल कर युधिष्ठिर से लड़ो, या जीत कर पृथिवी को भोगो, या मर कर स्वर्ग को प्राप्त होवो ॥ ७ ॥ हे राजन् उन का भी आपने बल नष्ट कर दिया है, और जो वहां सैनिक बच रहे हैं, वे भी प्रायः बड़े क्षत विक्षत हैं ॥ ८ ॥ दुर्योधन बोले—भाग्य से मैं तुम को पाण्डवों और कौरवों के ऐसे पुरुष क्षयकारी युद्ध से बचे जीते हुए देखता हूं ॥९॥ इस समय आप थके हुए हैं, मैं भी अत्यन्त विक्षत हूं, उन का बल बढ़ा

हुआ है, इस से इस समय युद्ध नहीं पसन्द करता हूं ॥ १० ॥ हे वीरो ! यह आश्चर्य नहीं, जो तुम्हारा मन ऊंचा है, यह हमारे अन्दर बड़ी शक्ति है, यह पराक्रम का समय नहीं है ॥ ११ ॥ आज एक रात यहां विश्राम कर के कल रण में तुम्हारे साथ शत्रुओं से लडूंगा इस में संशय नहीं ॥ १२ ॥

मूल—तेषु संभाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः । मांसभारपरिश्रान्ताः पानीयार्थं यदृच्छया ॥ १३ ॥ ते तत्र धिष्ठितास्तेषां सर्वं तद्वचनं रहः । दुर्योधनवचश्चैव शुश्रुवुः संगता मिथः ॥१४॥ ते तु पाण्डवमासाद्य भीमसेनं महाबलं । तस्मै तत्सर्वमाचख्युर्यद्वृत्तं यच्च वै श्रुतं ॥ १५ ॥ ततो वृकोदरो राजन् दत्त्वा तेषां धनं बहु । धर्मराजाय तत्सर्वमाचचक्षे परंतपः ॥ १६ ॥ असौ दुर्योधनो राजन् विज्ञातो मम लुब्धकैः।संस्तभ्य सलिलं शेते यस्यार्थे परितप्यसे ॥ १७ ॥ सिंहनादांस्ततश्चक्रुः क्ष्वेडाश्च भरतर्षभ । त्वरिता क्षत्रिया राजन् जग्मुर्द्वैपायनं ह्रदं॥१८॥ यौधिष्ठिरस्य सैन्यस्य श्रुत्वा शब्दं महारथाः । कृतवर्मा कृपो द्रौणी राजानमिदमब्रुवन् ॥ १९ ॥ इमे ह्यायान्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः । अपयास्यामहे तावदनुजानातु नो भवान् ॥ २० ॥ दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा तेषां तत्र तरस्विनां । तथेत्युक्त्वा ह्रदं तं वै माययास्तम्भयत् प्रभो ॥ २१ ॥ ते त्वनुज्ञाप्य राजानं भृशं शोकपरायणाः । जग्मुर्दूरे महाराज कृपप्रभृतयो रथाः ॥ २२ ॥ ते गत्वा दूरमध्वानं न्यग्रोधं प्रेक्ष्य मारिष । न्यविशन्त भृशं श्रान्ताश्चिन्तयन्तो नृपं प्रति॥२३

अर्थ—उन के संभाषण करते समय वहां अचानक पानी पीने के लिए (भीमसेन के) व्याधे आए, जो मांस भारों से थके हुए थे ॥ १३ ॥ उन्होंने चुपचाप वहां बैठ कर उन की और

दुर्योधन की सारी बात चीत सुनी ॥ १४ ॥ वे भीमसेन के पास पहुंचे, और जो कुछ वहां हुआ सुना था सब कह सुनाया॥१५॥ तब भीमने उन को बहुत सा धन दे कर वह सारा वृत्तान्त युधिष्ठिर को कह सुनाया ॥ १६ ॥ कि हे राजन् मेरे व्याधे दुर्योधन का पता लगा लाए हैं, वह जल को थाम कर लेटा है, जिस के लिए संतप्त हो ॥ १७ ॥ तब हे राजन् वे क्षत्रिय सिंहनाद करने और ताल ठोंकने लगे और झटपट द्वैपायन ह्रद की ओर गए ॥ १८ ॥ युधिष्ठिर की सेना के शब्द को सुन कर कृप, कृतवर्मा और अश्वत्थामा दुर्योधन से बोले ॥ १९ ॥ ये विजयशाली पाण्डव हर्ष से भरे आ रहे हैं, यदि आप की आज्ञा हो, तो अभी हम यहां से निकल जाएं ॥ २० ॥ दुर्योधन ने उन बलवानों के वचन को सुन कर ' तथास्तु ' कह कर माया से ह्रद को थाम लिया ॥ २१ ॥ और वे कृपआदि रथी शोकपरायण हुए अनुज्ञा ले कर दूर चले गए ॥ २२ ॥ वे दूर मार्ग निकल कर अत्यन्त थके हुए राजा की ही चिन्ता करते हुए एक बड़ के नीचे बैठ गए ॥ २३ ॥

अ० २ (व० ३१) युधिष्ठिर दुर्योधन संवाद

मूल–जलस्थं तं महाराज तवपुत्रं महाबलं । अभ्यभाषत कौन्तेयः सहमन्निव भारत ॥ १ ॥ सुयोधन किमर्थोऽयमारम्भोऽप्सु कृतस्त्वया । सर्वं क्षत्रं घातयित्वा स्वकुलं च विशांपते ॥२॥ स ते दर्पो नरश्रेष्ठ स च मानः क ते गतः। यस्त्वं संस्तभ्य सलिलं भीतो राजन् व्यवस्थितः ॥ ३ ॥ उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व क्षत्रियोऽसि कुलोद्भवः । कौरवेयो विशेषेण कुलं जन्म च संस्मर ॥४॥

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं रणे राजन् पलायनं। कथं पारमगत्वा हि युद्धे त्वं वै जिजीविषुः ॥ ५ ॥ यत्तु कर्णमुपाश्रित्य शकुनिं चापि सौबलं। अमर्त्य इव संमोहात् त्वमात्मानं न बुद्धवान् ॥ ६ ॥ तत्पापं सुमहत्कृत्वा प्रतियुध्यस्व भारत ॥ ७ ॥ एवमुक्ते महाराज धर्मपुत्रेण धीमता। सलिलस्थस्तव सुत इदं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ नैतच्चित्रं महाराज यद्भीः प्राणिनमाविशेत्। न च प्राणभयाद्भीतो व्यपयातोस्मि भारत ॥ ९ ॥ अरथश्च निषङ्गी च निहतः पार्ष्णिसारथिः। एकश्चाप्यगणः संख्ये प्रत्याश्वासमरोचयं ॥ १० ॥ न प्राणहेतोर्नभयान्नविषादाद्विशांपते। इदमम्भो प्रविष्टोस्मि श्रमात्त्विदमनुष्ठितं ॥ ११ ॥ त्वं चाश्वसिहि कौन्तेय ये चाप्यनुगतास्तव। अहमुत्थाय वः सर्वान् प्रतियोत्स्यामि संयुगे ॥ १२ ॥

अर्थ—हे महाराज जल में स्थित तेरे महाबली पुत्र को युधिष्ठिर हँस कर कहने लगे ॥ १ ॥ हे सुयोधन सारे क्षत्रियों को और अपने कुल को मरवा कर अब यह किस लिए जल में उद्योग किया है ॥ २ ॥ हे नरवर वह तेरा दर्प और मान कहां गया, जो तू हे राजन् भयभीत हुआ जल को थाम कर ठहरा है ॥३॥ उठो हे राजन् युद्ध करो तुम कुलीन क्षत्रिय विशेषतः कुरुवंशी हो, अपने कुल और जन्म को स्मरण करो ॥ ४ ॥ हे राजन् रण में भागना अनार्यों का काम है, स्वर्ग से गिराने वाला है, कैसे युद्ध में पार पहुंचे बिना तुम जीना चाहते हो ॥ ५ ॥ जो तुम कर्ण और शकुनि का आश्रय ले कर मानों अमर्त्य बन कर मोह में अपने आप को समझे न थे॥ ६ ॥ वह भारी पाप करके अब सम्मुख युद्ध करो ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर जल में ठहरा हुआ दुर्योधन यह वचन बोला ॥ ८ ॥ यह कोई

आश्चर्य नहीं, हे राजन् यदि मनुष्य को भय आ जाए, पर हे राजन् मैं प्राणों के भय से नहीं निकल आया हूं ॥ ९ ॥ रथ न रहा, बाण न रहे, पार्ष्णि और सारथि मारा गया, सेना से हीन अकेले रहे मैंने श्रांति लेना (विश्राम कर के काम करना) पसन्द किया ॥ १० ॥ हे राजन् न प्राणों के कारण, न भय से, न मन टूटने से, इस जल में घुसा हूं, किन्तु थक जाने से मैंने यह काम किया है ॥ ११ ॥ तुम भी हे युधिष्ठिर आराम करो और तुम्हारे साथी भी, फिर उठ कर मैं तुम सब से युद्ध करूंगा ॥ १२ ॥

मूल—युधिष्ठिर उवाच—अस्वस्था एव सर्वे स्म चिरं त्वां मृगयामहे । तदिदानीं समुत्तिष्ठ युध्यस्वेह सुयोधन ॥ १३ ॥ हत्वा वा समरे पार्थान् स्फीतं राज्यमवाप्नुहि । निहतो वा रणेऽस्माभिर्वीरलोकमवाप्स्यसि ॥ १४ ॥ दुर्योधन उवाच—यदर्थं राज्यमिच्छामि कुरूणां कुरुनन्दन । त इमे निहताः सर्वे भ्रातरो मे जनेश्वर ॥ १५ ॥ अद्यापि स्वाराज्ये त्वां विजेतुं युधिष्ठिर । भक्त्वा पश्चात्पाण्डुनायुरु[illegible] ॥ १६ ॥ न त्विदानीमहं मन्ये कार्यं युद्धेन कर्हिचित् । द्रोणे कर्णे च संशान्ते निहते च पितामहे ॥ १७ ॥ अस्त्विदानीमियं राजन् केवला पृथिवी तव । असहायो हि को राजा राज्यमिच्छेत् प्रशासितुं ॥ १८ ॥ युधिष्ठिर उवाच—आर्तप्रलापान्मा तात सलिलस्थः प्रभाषथाः ॥ १९ ॥ यदि चापि समर्थः स्यास्त्वं दानाय सुयोधन । न त्विच्छेयमवनिं त्वया दत्तां प्रशासितुं ॥ २० ॥ त्वां तु युद्धे विनिर्जित्य भोक्तास्मि वसुधामिमां । अनीश्वरश्च पृथिवीं कथं त्वं दातुमिच्छसि ॥ २१ ॥ त्वयेयं पृथिवी राजन् किं न दत्ता तदैव हि । धर्मतो याचमानानां प्रशमार्थं कुलस्य नः ॥ २२ ॥ वार्ष्णेयं प्रथमं राजन् प्रत्याख्याय

महाबलं। किमिदानीं ददासि त्वं को हि ते चित्तविभ्रमः ॥२३॥ सूच्यग्रं नात्यजः पूर्वं स कथं त्यजसि क्षितिं। को हि मूढो व्यवस्येत शत्रोर्दातुं वसुन्धरां ॥ २४ ॥ अस्मान्वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमां। अथवा निहतोऽस्माभिर्व्रज लोकाननुत्तमान्॥२५॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ युध्यस्व युद्धे श्रेयो भविष्यति ॥ २६ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले--हम सांस ले चुके हैं, बड़ी देर से तुझे ढूंढ रहे हैं, सो अब हे सुयोधन उठ कर युद्ध करो ॥ १३ ॥ या तो पाण्डवों को मार कर विशाल राज्य को भोग, अथवा हम से मारा हुआ तू वीरलोकों को प्राप्त हो ॥ १४ ॥ दुर्योधन बोला--हे कुरुनन्दन जिन के अर्थ मैं कौरवों का राज्य चाहता हूं, वे मेरे सारे भाई ये मरे पड़े हैं ॥ १५ ॥ अब भी तो मैं हे युधिष्ठिर पाण्डवों और पांचालों का उत्साह का नाश कर के तुझे जीतने की आशा करता हूं ॥ १६ ॥ किन्तु अब द्रोण कर्ण और पितामह के मारा जाने पर मैं युद्ध से कोई फल नहीं देखता हूं॥१७॥ हे राजन् अब यह पृथिवी केवल तेरी ही रहे, कौन राजा अपने साथियों से हीन हो कर राज्य करना चाहता है ॥ १८॥ युधिष्ठिर बोले--हे तात! जल के अन्दर स्थित हुआ आर्त प्रलाप मत कर ॥ १९ ॥ हे सुयोधन यदि तू देने में समर्थ भी हो, तौ भी मैं तुझ से दी इस पृथिवी का शासन करना नहीं चाहता॥२०॥ किन्तु तुझ को युद्ध में जीत कर इस पृथिवी को भोगना चाहता हूं, तू स्वयं असमर्थ हो कर कैसे पृथिवी को देना चाहता है॥२१॥ तूने हे राजन् उसी समय पृथिवी क्यों न दे दी, जब अपने कुल की शान्ति के लिए हम धर्म से याचना कर रहे थे ॥ २२ ॥ हे राजन् पहले महाबली कृष्ण को प्रत्युत्तर दे कर क्या अब तू देता

है, यह क्या तेरा मन डोल गया है ॥ २३ ॥ पहले तू सूई की नोक नहीं देता था, वही तू कैसे अब सारी पृथिवी को देता है भला कौन मूढ़ शत्रु को पृथिवी देने का निश्चय करेगा ॥२४॥ अब या तो हमें हराकर इस पृथिवी का शासन कर, अथवा हम से मारा जा कर उत्तम लोकों को प्राप्त हो ॥ २५ ॥ उठो २ युद्ध करो, युद्ध में ही तेरा कल्याण है २६ ॥

अ० ३ (व०३२-३३) कृष्ण युधिष्ठिर भीम दुर्योधन संवाद

मूल—श्रुत्वा स कटुका वाचो विषमस्थो नराधिपः। मनश्चकार युद्धाय राजानं चाभ्यभाषत ॥ १ ॥ यूयं ससुहृदः पार्थाः सर्वे सरथवाहनाः। अहमेकः परिद्यूनो विरथो हतवाहनः ॥ २ ॥ आत्तशस्त्रै रथोपेतैर्बहुभिः परिवारितः। कथमेकः पदातिःसन्नशस्त्रो योद्धुमुत्सहे ॥ ३ ॥ एकैकेन तु मां यूयं योधयध्वं युधिष्ठिर। न ह्येको बहुभिर्वीरैर्न्याय्यो योधयितुं युधि ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर उवाच-दिष्ट्या त्वमपि जानीषे क्षत्रधर्मं सुयोधन। दिष्ट्या ते वर्तते बुद्धिर्युद्धायैव महाभुज ॥ ५ ॥ एक एकेन संगम्य यत्ते संमतमायुधं। तत्त्वमादाय युध्यस्व प्रेक्षकास्ते वयं स्थिताः ॥ ६ ॥ स्वयमिष्टं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहं। हत्वैकं भवतो राज्यं हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ॥ ७ ॥ दुर्योधन उवाच—हन्तैकं भवतामेकः शक्यं योऽभिमन्यते। पदातिर्गदया संख्ये स युध्यतु मया सह ॥८॥वृत्तानि रथयुद्धानि विचित्राणि पदे पदे। इदमेकं गदायुद्धं भवत्वद्याद्भुतं महत ॥ ९ ॥ एवं दुर्योधने राजन् गर्जमाने मुहुर्मुहुः। युधिष्ठिरस्य संक्रुद्धो वासुदेवोऽब्रवीदिदं ॥ १० ॥यदि नाम ह्ययं युद्धे वरयेत्त्वां युधिष्ठिर। अर्जुनं नकुलं चैव सहदेवमथापि वा॥११॥ कि-

मिदं साहसं राजंस्त्वया व्याहृतमीदृशं । एकमेव निहत्याजौ भव राजा कुरुष्विति ॥ १२ ॥ न समर्थानहं मन्ये गदाहस्तस्य संयुगे ॥ १३ ॥ एते नहि कृता योग्या सर्वाणीह नयोद्धा । आयसे पुरुषे राजन् भीमसेनजिघांसया ॥ १४ ॥ नान्यस्मै तु पश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे । ऋते वृकोदरात्पार्थात् स च नातिकृतश्रमः ॥१५॥ तादिदं द्यूतमारब्धं पुनरेव यथा पुरा ॥ १६ ॥ बली भीमः समर्थश्च कृती राजा सुयोधनः । बलवान्वा कृती वेति कृती राजन् विशिष्यते ॥ १७ ॥ सोऽयं राजंस्त्वया शत्रुः समे पथि निवेशितः । न्यस्तश्चात्मा सुविषमे कृच्छ्रमापादिता वयं ॥ १८ ॥ नूनं न राज्य भागेषा पाण्डोः कुन्त्याश्च सन्ततिः । अत्यन्तवनवासाय सृष्टाय भैक्षाय वा पुनः ॥ १९ ॥ भीमसेन उवाच--मधुसूदन मा कार्षीर्विषादं यदुनन्दन । अद्य पारं गमिष्यामि वैरस्य भृशदुर्गमं ॥ २० ॥ अहं सुयोधनं संख्ये हनिष्यामि न संशयः । विजयो वै ध्रुवः कृष्ण धर्मराजस्य दृश्यते ॥ २१ ॥ अध्यर्धेन गुणेनेयं गदा गुरुतरा मम । न तथा धार्तराष्ट्रस्य मा कार्षीर्माधव व्यथां ॥ २२ ॥ अहमेनं हि गदया संयुगे योद्धुमुत्सहे । भवन्तः प्रेक्षकाः सर्वे मम सन्तु जनार्दन ॥ २३ ॥ तथा संभाषमाणं तु वासुदेवो वृकोदरं । हृष्टः संपूजयामास वचनं चेदमब्रवीत ॥ २४ ॥ त्वामाश्रित्य महाबाहो धर्मराजो युधिष्ठिरः । निहतारिः स्वकां दीप्तां श्रियं प्राप्तो न संशयः ॥ २५ ॥ त्वया विनिहताः सर्वे धृतराष्ट्रसुता रणे । हत्वा दुर्योधनं चापि प्रयच्छोर्वीं ससागरां ॥ २६ ॥ त्वां च प्राप्य रणे पापो धार्तराष्ट्रो विनंक्ष्यति । त्वमस्य सक्थिनी भंक्त्वा प्रतिज्ञां पालयिष्यसि ॥ २७ ॥ यत्नेन तु सदा पार्थ योद्धव्यो धृतराष्ट्रजः । कृती च बलवांश्चैव युद्धशौण्डश्च नित्यदा ॥ २८ ॥ ततस्तु सा-

त्यकी राजन् पूजयामास पाण्डवं । पञ्चालाः पाण्डवेयाश्च धर्मराज पुरोगमाः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा भारतश्रेष्ठो गदामुद्यम्य वीर्यवान् । उदतिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन् ॥ ३० ॥ तदा ह्वानमदृष्यन्वै तव पुत्रोऽति वीर्यवान् । उत्पुत्कमिव प्रवाशु मत्तो मत्तमिव द्विपं ॥३१॥ न संभ्रमो न च भयं न ग्लानिर्न च व्यथा । आसीद्दुर्योधनस्यापि स्थितः सिंह इवाहवे ॥ ३२ ॥

अर्थ—दुरवस्था में स्थित राजा कड़वे वचन सुन कर युद्ध के लिए तय्यार हुआ और युधिष्ठिर से बोला ॥ १ ॥ तुम हे पाण्डवो ! सब साथियों वाले और रथों घोड़ों वाले हो, मैं अकेला क्षीण रथ और घोड़ों से हीन हूं ॥ २ ॥ शस्त्रधारी बहुत से रथियों से घिरा हुआ कैसे मैं अकेला शस्त्र शून्य पैदल लड़ने का उत्साह करूं ॥ ३ ॥ सो हे युधिष्ठिर तुम एक २ करके मेरे साथ युद्ध करो, युद्ध में बहुत से वीरों का मिल कर एक से युद्ध करना न्याय्य नहीं है ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर बोले—भाग्य से हे सुयोधन तुम भी धर्म को जानते हो, और भाग्य से तुम्हारी बुद्धि युद्ध के लिए है ॥ ५ ॥ एकेला एक के साथ जुट कर जो शस्त्र तुझे अभिमत है, वह ले कर, युद्ध कर, हम दर्शक बन कर रहेंगे ॥ ६ ॥ और स्वयं तुझे हे वीर इष्ट वर देता हूं, हम में एक को मार कर राज्य को प्राप्त हो, वा मर कर स्वर्ग को प्राप्त हो॥७॥ दुर्योधन बोले—बहुत अच्छा आप में से जो कोई मुझे जीत लेने का अभिमान रखता है, वह पैदल गदा ले कर मेरे साथ युद्ध करे॥८॥ परस्पर रथ युद्ध बड़े विचित्र हो चुके हैं, एक अब यह गदायुद्ध बड़ा अद्भुत होवे ॥९॥ इस प्रकार दुर्योधन के बार २ गर्जते हुए हे राजन् श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो कर युधिष्ठिर से यह बोले ॥१०॥ हे युधिष्ठिर

यदि यह युद्ध में तुझ को वा अर्जुन अथवा नकुल सहदेव को मांग ले (तो फिर कैसे हो) ॥ ११ ॥ हे राजन् तुमने यह क्या ऐसा साहस किया है, कि एक को ही युद्ध में मार कर कौरवों में राजा हो ॥ १२ ॥ रण में हाथ में गदा ले कर खड़े हुए इस के समर्थ मैं तुम में से किसी को नहीं समझता हूं ॥ १४ ॥ इसने हे राजन् भीमसेन के मारने की इच्छा से लोहे के पुरुष पर लगातार तेरह वर्ष अभ्यास किया है ॥ १४ ॥ रण में सिवाय भीम के मैं और किसी को भी इस का प्रतियोद्धा नहीं देखता हूं, और भीमने इस जैसा अभ्यास नहीं किया हुआ ॥ १५ ॥ सो तुम ने यह फिर वैसा ही जुआ आरम्भ किया है, जैसे पहले किया था ॥ १६ ॥ भीम बली और समर्थ है, सुयोधन कृती (जानकार अभ्यासी है) है, बलवान् वा कृती इनमें से हे राजन् कृती ही विशेष होता है ॥ १७ ॥ सो हे राजन् तुमने शत्रु को सम मार्ग पर चढ़ा दिया है, और अपने को बड़े विषम मार्ग में रक्खा है, इस प्रकार हम सब को कष्ट में डाल दिया है ॥ १८ ॥ निःसंदेह पाण्डु और कुन्ती की यह सन्तान राज्य की भागी नहीं, यह अत्यन्त बनवास के लिए वा भिक्षा के लिए रची गई है ॥ १९ ॥

भीमसेन बोले—हे मधुसूदन विषाद मत करो, आज मैं वैर के बड़े दुर्गम पार को पहुंचूंगा ॥ २० ॥ मैं रण में सुयोधन को मारूंगा, इस में संशय नहीं, हे कृष्ण धर्मराज का निःसंदेह विजय दीखता है ॥ २१ ॥ मेरी गदा उस से डेवढ़ी भारी है, वैसी दुर्योधन की नहीं, हे कृष्ण खेद मत करो ॥ २२ ॥ मैं गदा से इस के साथ लड़ने को उत्साहित हूं, हे जनार्दन आप सब मेरे प्रेक्षक बनें ॥ २३ ॥ ऐसा कहते भीम का श्रीकृष्ण ने प्रसन्न हो कर आदर किया और

यह वचन बोला ॥ २४ ॥ हे महाबाहो धर्मराज तेरे सहारे धर्मराज युधिष्ठिर के शत्रु मरे हैं, और वह अपनी चमकती श्री को प्राप्त हुआ है, इस में संशय नहीं ॥ २५ ॥ तुम ने ही रण में धृतराष्ट्र के सारे पुत्र मारे हैं, अब दुर्योधन को मार कर समुद्र समेत पृथिवी राजा को दो ॥ २६ ॥ रण में तेरे सामने आ कर दुर्योधन नष्ट होगा, तुम इस के रानों को तोड़ कर अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करोगे ॥ २७ ॥ किन्तु हे पार्थ यत्न से सदा दुर्योधन के साथ युद्ध करना, यह फुर्ती, बलवान् और युद्ध कुशल है ॥ २८ ॥ तब हे राजन् सात्यकि और युधिष्ठिर आदि पाण्डव और पांचालों ने सब ने भीम का आदर किया ॥ २९ ॥ यह कह कर वह भरतबर भारी गदा को ले कर युद्ध के लिए उठ खड़ा हुआ, और वृत्र को इन्द्र की भांति उस को आह्वान दिया ॥ ३० ॥ इस आह्वान को न सहार कर अति शक्तिशाली आप का पुत्र झट सामने आ खड़ा हुआ, जैसे मत्त हाथी, मत्त हाथी के ॥ ३१ ॥ दुर्योधन को भी न घबराहट, न भय, न ग्लानि, न खेद था, वह रण में शेर की भांति खड़ा हुआ ॥ ३२ ॥

अ० ४ (व० ३४-५८) गदा युद्ध और दुर्योधन वध

मूल—ततस्तालध्वजो रामस्तयोर्युद्ध उपस्थिते। श्रुत्वा तच्छिष्ययो राजन्नाजगाम हलायुधः ॥ १ ॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीताः पाण्डवाः सह केशवाः । उपगम्योपसंगृह्य विधिवत्प्रत्यपूजयन् ॥ २ ॥ पूजयित्वा ततः पश्चादिदं वचनमब्रुवन् । शिष्ययोः कौशलं युद्धे पश्य रामेति पार्थिव ॥ ३ ॥ अब्रवीच्च तदा रामो दृष्ट्वा कृष्णं सपाण्डवं । दुर्योधनं च कौरव्यं [illegible] ॥ ४ ॥ चत्वा-

रिंशदहान्यद्यद्दे च सैनिःसृतस्य वै । पुष्येण संप्रयातोस्मि श्रवणे पुनरागतः ॥ ५ ॥ शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोस्मि माधव॥६॥ भीमसेनोऽथ बलवान् पुत्रस्तव जनाधिप । तथैव चोद्यतगदौ पूजयामासतुर्बलं ॥ ७ ॥ परिष्वज्य तदा रामः पाण्डवान् सह सृञ्जयान् । अपृच्छत कुशलं सर्वान् पार्थिवांश्चामितौजसः ॥ ८ ॥ ततस्तयोः संनिपातस्तुमुलो लोमहर्षणः । आसीदन्तकरो राजन् वैरस्य तव पुत्रयोः ॥ ९ ॥ समापेततुरन्योन्यं शृंगिणौ वृषभाविव। महानिर्घातघोषश्च प्रहाराणामजायत ॥ १० ॥ तथा तस्मिन् वर्तमाने संकुले तुमुले भृशं । उभावपि परिश्रान्तौ युध्यमानावरिन्दमौ ॥ ११ ॥ तौ मुहूर्तं समाश्वस्य पुनरेव परंतपौ । अभ्यहारयतान्योन्यं संप्रगृह्य गदे शुभे ॥१२ ॥

अर्थ—अनन्तर जब उन का युद्ध होने ही पर था, उस समय ताल के झंड वाला बलराम अपने शिष्यों का युद्ध सुन कर वहां आ पहुंचा ॥१॥ उस को देख कर कृष्ण और पाण्डव बड़े हर्षित हुए, उस के निकट जा पादग्रहण करके उस की पूजा की ॥२॥ और पूजा करके तत्पश्चात् यह वचन बोले, हे राम अपने दोनों शिष्यों का युद्ध में कौशल देखिये॥३॥तब बलराम पाण्डवों समेत कृष्ण को और हाथ में गदा लिये दुर्योधन को खड़ा देख कर बोले ॥ ४ ॥ आज मुझ को घर से निकले ४२ दिन हुए हैं, पुष्य में गया था, श्रवण में लौट आया हूं॥ ५ ॥ हे कृष्ण ! मैं अपने शिष्यों का गदायुद्ध देखना चाहता हूं ॥ ६ ॥ उसी समय हे राजन् गदा हाथ में लिये बलवान् भीमसेन और दुर्योधन ने बलराम की पूजा की ॥ ७ ॥ तब बलराम ने अमित बल वाले पाण्डव संजय और दूसरे राजाओं को गले लगा कर उन का

कुशल पूछा ॥ ८ ॥ अनन्तर हे राजन् दोनों आप के पुत्रों का वैर की समाप्ति करने वाला लोमहर्षण तुमुल युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ ९ ॥ सींगों वाले दो सांडों की भांति आपस में आ कर जुटे, उन के प्रहारों की बड़ी ध्वनि होने लगी ॥ १० ॥ इस प्रकार देर तक उस तुमुलयुद्ध के प्रवृत्त रहने पर युद्ध करते २ वे दोनों थक गए ॥ ११ ॥ तब वे दोनों थोड़ी देर सांस ले कर फिर अपनी २ उत्तम गदाएं उठा कर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥ १२ ॥

मूल—चरंश्च विविधान्मार्गान् मण्डलानि च भारत । अशोभत तदा वीरो भूय एव वृकोदरः ॥ १३ ॥ तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यरक्षणे । मार्जाराविव भक्षार्थे ततक्षाते मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥ स चरन् विविधान्मार्गान् मण्डलानि च भागशः । समशोभत तेजस्वी भूयो भीमात् सुयोधनः ॥ १५ ॥ स कृत्वं मण्डलं राजा उद्भ्राम्य कृतनिश्चयः । आजघ्ने मूर्ध्नि कौन्तेयं गदया भीमवेगया ॥ १६ ॥ तया त्वभिहतो भीमः पुत्रेण तव पाण्डवः । नाकम्पत महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १७ ॥ आश्चर्यं चापि तद्राजन् सर्वसैन्यान्यपूजयन् । यद्गदाभिहतो भीमो नाकम्पत पदात्पदं ॥ १८ ॥ ततो गुरुतरां दीप्तां गदां हेमपरिष्कृतां । दुर्योधनाय व्यसृजद्भीमो भीमपराक्रमः ॥ १९ ॥ तं प्रहारमसम्भ्रान्तो लाघवेन महाबलः । मोघं दुर्योधनश्चक्रे तत्राभूद्विस्मयो महान् ॥ २० ॥ वञ्चयित्वा तदा भीमं गदया कुरुसत्तमः । ताडयामास संक्रुद्धो वक्षोदेशे महाबलः ॥ २१ ॥ गदया निहतो भीमो मुह्यमानो महारणे । नाभ्यमन्यत कर्तव्यं पुत्रेण भ्याहतस्तव ॥ २२ ॥ ततस्तु तरसा भीमो गदया तनयं तव । अभिदुद्राव वेगेन भिन्नो वनगजं यथा ॥ २३ ॥ उपसृत्य तु राजानं गदामोक्षविशारदः । अताडयद्

भीमसेनः पार्श्वे दुर्योधनं तदा ॥ २४ ॥ स विह्वलः प्रहारेण जानुभ्यामगमन्महीं । उदतिष्ठत्ततो नादः सृंजयानां जगत्पते ॥२५॥ उत्थाय तु महाबाहुर्महानाग इव श्वसन् । दिधक्षन्निव नेत्राभ्यां भीमसेनमवैक्षत ॥ २६ ॥ स महात्मा महात्मानं भीमं भीमपराक्रमः। अताडयच्छंखदेशे न चचालाचलोपमः ॥ २७ ॥ स भूयः शुशुभे पार्थस्ताडितो गदया रणे । उद्भिन्नरुधिरो राजन् प्रभिन्नइव कुञ्जरः ॥ २८ ॥ अथाब्रवीदर्जुनस्तु वासुदेवं यशस्विनं । अनयोर्वीरयोर्युद्धे को ज्यायान् भवतो मतः ॥ २९ ॥ वासुदेव उवाच—उपदेशोऽनयोस्तुल्यो भीमस्तु बलवत्तरः । कृती यत्नपरस्त्वेष धार्तराष्ट्रो वृकोदर ॥ ३० ॥ भीमसेनस्तु धर्मेण युध्यमानो न जेष्यति । तस्मान्मायामयं भीम आतिष्ठतु पराक्रमं ॥ ३१ ॥ प्रतिज्ञातं च भीमेन द्यूतकाले धनञ्जय । ऊरू भेत्स्यामि ते संख्ये गदयेति सुयोधनं ॥ ३२ ॥ सोऽयं प्रतिज्ञां तां चापि पालयत्वरिकर्षणः । मायाविनं तु राजानं माययैव निकृन्ततु ॥ ३३ ॥ यद्येष बलमास्थाय न्यायेन प्रहरिष्यति । विषमस्थस्ततो राजा भविष्यति युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥ पुनरेव तु वक्ष्यामि पाण्डवेय निबोध मे।धर्मराजापराधेन भयं नः पुनरागतं ॥ ३५ ॥ अबुद्धिरेषा महती धर्मराजस्य पाण्डव । यदेकविजये युद्धं पणितं घोरमीदृशं ॥ ३६ ॥ अपि चोशनसा गीतः श्रूयतेऽयं पुरातनः । श्लोकस्तत्त्वार्थसहितस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ३७ ॥ पुनरावर्तमानानां भग्नानां जीवितैषिणां । भेतव्यमरिशेषाणामेकायनगता हि ते ॥ ३८ ॥ साहसोत्पतितानां च निराशानां च जीविते । न शक्यमग्रतः स्थातुं शक्रेणापि धनञ्जय ॥ ३९ ॥ सुयोधनमिमं भग्नं हतसैन्यं ह्रदं गतं । पराजितं वनप्रेप्सुं निराशं राज्य लंभने ॥ ४० ॥ को न्वेष संयुगे

प्राज्ञः पुनर्द्वन्द्वे समाह्वयेत ॥ ४१ ॥ अपिनो निर्जितं राज्यं न हरेत सुयोधनः । यस्त्रयोदश वर्षाणि गदया कृतनिश्रमः ॥ ४२ ॥ चरत्यूर्ध्वं च तिर्यक् च भीमसेनजिघांसया ॥ ४३ ॥

अर्थ--अनेक प्रकार के मार्गों और मण्डलों में चलते हुए भीमसेन की शोभा बढ़ी ॥ १३ ॥ दोनों एक दूसरे के निकट हो एक दूसरे से रक्षा में यत्न करते हुए भक्ष के अर्थ दो बिल्लों की भांति एक दूसरे को छीलने लगे ॥ १४ ॥ अनेक भांति के मार्ग और मण्डलों से बारी २ से चलता हुआ सुयोधन भीम से भी अधिक तेजस्वी हो कर चमकने लगा ॥ १५ ॥ फिर राजा ने निश्चय करके बाएं मण्डल को घुमा कर भीमवेगवाली गदा भीम के सिर पर मारी ॥ १६ ॥ उस गदा द्वारा आप के पुत्र से ताड़ित हुआ पाण्डुपुत्र हे महाराज तनिक नहीं कांपा, यह बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १७ ॥ गदा से ताड़ित हुए भी भीम जो एक पद भी न हिले,सब सैनिकों ने इस आश्चर्य काम की प्रशंसा की ॥ १८ ॥ अनन्तर भीमपराक्रम वाले भीम ने सुवर्ण से मढ़ी हुई चमकती हुई बड़ी भारी गदा दुर्योधन की ओर फैंकी ॥१९॥ उस प्रहार को फुर्ती के साथ महाबली दुर्योधन ने बिन घबराए रोक दिया, उस पर सब को बड़ा विस्मय हुआ ॥ २० ॥ उस कुरुवर ने गदा से भीम को धोखा दे कर के क्रुद्ध हो कर उस की छाती पर प्रहार किया ॥ २१ ॥ गदा के प्रहार से घबरा कर भीमसेन को कर्तव्य नहीं सूझता था ॥ २२ ॥ भीम वेग से गदा को ले कर आप के पुत्र की ओर दौड़ा, जैसे कि सिंह वनगज की ओर दौड़े ॥ २३ ॥ गदा चलाने में निपुण भीम ने दुर्योधन के पास जाकर उस की पसली पर प्रहार किया ॥ २४ ॥ उस

प्रहार से वह ऐसा व्याकुल हुआ, कि उस ने गोडे भूमि पर टेक दिये, तब सृंजय गर्जने लगे ॥ २५ ॥ उठ कर महागज की भांति सांस लेते हुए दुर्योधन भीम की ओर देखने लगे, मानो इन्हें भस्म कर देंगे ॥ २६ ॥ महा पराक्रमी दुर्योधन ने दौड़कर भीम की कनपटी पर गदा मारी,पर भीम पर्वत की भांति अचल खड़े रहे ॥ २७ ॥ गदा के प्रहार से रुधिर बहने से भीमसेन की ऐसी शोभा बढ़ी, जैसे मद फूटने से हाथी की ॥ २८ ॥ ऐसे घोर युद्ध में यशस्वी अर्जुन ने कृष्ण से पूछा, इन दोनों वीरों में से आप के विचार में कौन बढ़ कर है ॥ २९ ॥ शिक्षा इन दोनों की बराबर है, भीमसेन बल में अधिक है, पर दुर्योधन भीम से अधिक अभ्यासी और सावधान है ॥ ३० ॥ धर्मयुद्ध से भीमसेन इस को जीत नहीं सकेगा, इस लिए भीम मायामय पराक्रम का सहारा लेवे ॥ ३१ ॥ हे अर्जुन भीम ने जुए के समय कहा था, ' हे सुयोधन मैं रण में गदा से तेरी रानें तोड़ूंगा' ॥ ३२ ॥ सो यह शत्रुनाशन अब उस प्रतिज्ञा का पालन करे, छली राजा को छल से ही मारे ॥ ३३ ॥ यदि यह बल के भरोसे पर न्याय से प्रहार करेगा, तो राजा युधिष्ठिर आपत्ति में पड़ेगा ॥ ३४ ॥ मैं फिर यही कहूंगा हे अर्जुन मेरी बात पर ध्यान दे, कि युधिष्ठिर के अपराध से फिर भी हमारे सामने भय आ खड़ा है ॥ ३५ ॥ हे पाण्डव ! युधिष्ठिर ने यह बड़ी भूल की है, कि एक के जीतने के निमित्त ऐसे भयंकर युद्ध की शर्त लगाई है ॥ ३६ ॥ शुक्र से गाया हुआ यह पुराना श्लोक तत्त्व बात का बोधक है, उस को सुनो ॥ ३७ ॥ जो शत्रु भाग कर फिर लौटें, वा मरते २ शत्रुओं के जो बचे हुए कुलतन्तु हैं, उन से सदा डरता रहे, क्योंकि वह

एक निश्चय किये होते हैं ॥ ३८ ॥ हे अर्जुन जीने से निराश हो साहस से युद्ध करते हुओं के आगे खड़ा होना इन्द्र को भी अशक्य है ॥ ३९ ॥ यह सुयोधन भागा, इस की सेना मारी गई, तालाब में जा छिपा, हार कर बन को जाना चाहता था, राज्य पाने में निराश था ॥ ४० ॥ भला कौन प्राज्ञ इस को द्वन्द्व युद्ध में आह्वान देगा ॥ ४१ ॥ न हो कि दुर्योधन हमारा जीता हुआ राज्य छीन ले,इस ने तेरह वर्ष भीमसेन के मारने की इच्छा से नीचे ऊपर दाएं बाएं गदा का अभ्यास किया है ॥ ४२-४३ ॥

मूल-धनञ्जयस्तु श्रुत्वैतत्केशवस्य महात्मनः । प्रेक्षतो भीमसेनस्य सव्यमूरुमताडयत् ॥ ४४ ॥ गृह्य संज्ञां ततो भीमो गदया व्यचरद्रणे । मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च ॥ ४५ ॥ ततो तमभ्याशगतं प्राज्ञो रणे प्रेक्ष्य वृकोदरः । अवाक्षिपद् गदां तस्मिन् वेगेन महता बली ॥ ४६ ॥ आक्षिपन्तं तु तं दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशांपते । अवार्मर्पत्ततः स्थानात्ना मोघा न्यपतद्भुवि॥४७॥ मोक्षयित्वा प्रहारं तं सुतस्तव सुसम्भ्रमात् । भीमसेनं च गदया प्राहरत् कुरुसत्तम ॥ ४८ ॥ प्रहारगुरुपाताच्च मूर्छेव समजायत । दुर्योधनो न तं वेद पीडितं पाण्डवं रणे ॥ ४९ ॥ ततो मुहूर्तमाश्वस्य दुर्योधनमुपस्थितं । वेगेनाभ्यपतद्राजन् भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ५० ॥ तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संरब्धममितौजसं । मोघमस्य प्रहारं तं चिकीर्षुर्भरतर्षभ ॥ ५१ ॥ अवस्थाने मतिं कृत्वा पुत्रस्तव महामनाः ।इयेषोत्पतितुं राजञ्छलयिष्यन् वृकोदरं ॥ ५२ ॥ अबुद्ध्यद् भीमसेनस्तु राज्ञस्तस्य चिकीर्षितं । अथास्य समभिद्रुत्य समुत्क्रुश्य च सिंहवत् ॥ ५३ ॥ सृत्वा वञ्चयतो राजन् पुनरेवोत्पतिष्यतः । ऊरुभ्यां प्राहिणोद्राजन् गदां वेगेन पाण्डवः ॥५४॥

सा वज्रनिष्पेषसमा प्रहिता भीमकर्मणा । ऊरू दुर्योधनस्याथ बभञ्ज प्रियदर्शनौ ॥ ५५ ॥ स पपात नरव्याघ्रो वसुधामनुनादयन् । भग्नोरुर्भीमसेनेन पुत्रस्तव महीपते ॥ ५६ ॥

अर्थ—महात्मा कृष्ण के वचन सुन अर्जुन ने भीमसेन को दिखला कर अपनी बाईं रान को ताड़ना किया ॥ ४४ ॥ भीम भी संकेत को जान कर रण में गदा से विचित्र मण्डल और यमक और दूसरी गतियों से घूमने लगे ॥ ४५ ॥ दुर्योधन को निकट आया देख कर बली भीम ने उस पर बड़े वेग से गदा मारी ॥ ४६ ॥ हे राजन् उस भारी गदा को देख कर आप का पुत्र उस स्थान से हट गया, वह गदा वृथा ही भूमि पर गिरी॥४७॥ उस प्रहार को बचा कर दुर्योधन ने शीघ्रता से भीमसेन पर गदा मारी ॥ ४८ ॥ गहरी चोट लगने से भीम को मूर्छा सी आगई, पर दुर्योधन ने भीम को पीड़ित हुआ न जाना ॥ ४९ ॥ थोड़े ही समय में सावधान हो कर प्रतापी भीमसेन वेग से दुर्योधन पर झपटा ॥ ५० ॥ जोश से भरे हुए महा पराक्रमी भीम को आते देख कर उस के प्रहार को वृथा करने के लिए दुर्योधन ने वहीं ठहरा कर भीम को धोखे में डालने के लिए उछलने का निश्चय किया ॥ ५१–५२ ॥ भीमसेन ने उस के अभिप्राय को जान लिया, और उस के निकट जा सिंह की भांति गर्ज कर, विशेष गति से उछल कर सिर पर मारने लगे दुर्योधन की रानों की ओर भीमने वेग से गदा फैंकी ॥ ५३–५४ ॥ भीम से फैंकी उस गदा ने वज्रपात के समान पड़ कर दुर्योधन की दोनों सुहावनी रानें तोड़ डालीं ॥ ५५ ॥ रानों के टूटते ही आप का पुत्र शब्द करता हुआ भूमि पर गिर पड़ा ॥ ५६ ॥

अ० ५ (श्लो० ५९-६३)

मूल–ततो दुर्योधनं हत्वा भीमसेनः प्रतापवान् । पातितं कौरवेन्द्रं तमुपागम्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ गौर्गौरिति पुरा मन्द द्रौपदीमेकवाससं । यत्सभायां हसन्नस्मांस्तदा वदसि दुर्मते ॥ २ ॥ तस्यावहासस्य फलमद्य त्वं समवाप्नुहि ॥ ३ ॥ एवमुक्त्वा स वामेन पदा मौलिमुपास्पृशत् । शिरश्च राजसिंहस्य पादेन समलोडयत ॥ ४ ॥ तथैव क्रोधसंरक्तो भीमः परबलार्दनः । पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं यत्तच्छृणु नराधिप ॥ ५ ॥ येऽस्मान् पुरोपनृत्यन्त मूढा गौरिति गौरिति । तान्वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति ॥६॥ नास्माकं निकृतिर्वह्निर्नाक्षद्यूतं न वञ्चना । स्वबाहुबलमाश्रित्य प्रबाधामो वयं रिपून् ॥ ७ ॥ तत्रपुत्रं तथा हत्वा कत्थमानं वृकोदरं । नृत्यमानं च बहुशो धर्मराजोऽब्रवीदिदं ॥ ८ ॥ गतोसि वैरस्यानृण्यं प्रतिज्ञा पूरिता त्वया । शुभेनाशुभेनैव कर्मणा विरमाधुना ॥ ९ ॥ मा शिरोऽस्य पदा मर्दीर्मा धर्मस्तेऽतिगो भवेत । मा स्प्राक्षीर्भीम पादेन राजानं ज्ञातिमेव च ॥ १० ॥ हतबन्धुर्हतामात्यो भ्रष्टसैन्यो हतो मृधे । सर्वाकारेण शोच्योऽयं नावहास्योऽयमीश्वरः ॥ ११ ॥ विध्वस्तोऽयं हतामात्यो हतभ्राता हतप्रजः । उत्सन्नपिण्डो भ्राता च नैतन्न्याय्यं कृतं त्वया ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा भीमसेनं तु साश्रुकण्ठो युधिष्ठिरः । उपसृत्याब्रवीद्दीनो दुर्योधनमरिन्दमं ॥ १३ ॥

अर्थ–दुर्योधन को मार कर प्रतापी भीमसेन गिरे हुए उस कौरवेन्द्र के निकट जा कर यह बोला ॥ १ ॥ हे मूर्ख तूने जो पहले एक वस्त्र वाली द्रौपदी को सभा में बुला कर हंस कर हम

को 'बैल बैल' कहा था, उस हंसी के आज फल को प्राप्त हो ॥ २–३ ॥ यह कह कर भीमने अपने बाएं पैर से उस के मुकुट को छुआ, और पाओं से राजसिंह के सिर को ठकुराया ॥ ४ ॥ और वैसे ही क्रोध से भरे हुए भीम ने फिर जो वचन कहा, वह सुनिये ॥ ५ ॥ जो मूढ हम को बैल बैल कह कर नाचे थे, उन के प्रति अब हम बैल बैल कह कर नाचते हैं ॥ ६ ॥ हम छल बल आग जुए और कपट से नहीं, किन्तु अपने भुजबल के भरोसे पर शत्रुओं को मारते हैं॥ ७ ॥ दुर्योधन को मार कर इस प्रकार अपनी श्लाघा करते और नाचते हुए भीमसेन को धर्मराज यह बोले ॥ ८ ॥ हे भीमसेन तुमने वैर का ऋण चुका दिया, शुभ वा अशुभ कर्म से प्रतिज्ञा पूरी की, अब बस कर ॥ ९ ॥ इस के सिर को पैर मत लगाओ, मत अपने धर्म को त्याग, मत पाओं से इस को स्पर्श कर, जो राजा है और ज्ञाति है ॥ १० ॥ इस के भाई बन्धु मन्त्री और सेना रण में मारे गए, स्वयं मारा गया है, सब प्रकार से शोक के योग्य है, हंसी के योग्य नहीं है॥११॥ यह नष्ट हो गया, इस के मन्त्री भाई पुत्र सब मारे गए जिस का कोई नामलेवा नहीं रह गया हमारा भाई, तुमने यह उचित नहीं किया ॥ १२ ॥ भीमसेन से ऐसा कह कर रोता हुआ युधिष्ठिर शत्रुनाशी दुर्योधन के पास आ दीन हो कर बोला ॥ १३ ॥

मूल–तात मन्युर्न ते कार्यो नात्मा शोच्यस्त्वया तथा । नूनं पूर्वकृतं कर्म सुघोरमनुभूयते ॥ १४ ॥ धात्रोपदिष्टं विषमं नूनं फलमसंस्कृतं । यद्वयं त्वां जिघांसामस्त्वं चास्मान् कुरुसत्तम॥१५॥ तवापराधादस्माभिर्भ्रातरस्ते निपातिताः । निहता ज्ञातयश्चापि दिष्टं मन्ये दुरत्ययं ॥१६॥ आत्मा न शोचनीयस्ते श्लाघ्यो मृत्युस्तवानघ । त्वमेवाधना [illegible]

कृपणं वर्तयिष्यामस्तैर्हीना बन्धुभिः प्रियैः । कथं द्रक्ष्यामि विधवा वधूः शोक परिप्लुताः ॥ १८ ॥ त्वमेकः सुस्थितो राजन् स्वर्गे ते निलयो ध्रुवः । वयं नरकसंज्ञं वै दुःखं प्राप्स्याम दारुणं ॥१९॥ स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य विह्वलाः । गर्हयिष्यन्ति नो नूनं विधवाः शोक कर्शिताः ॥ २० ॥ ततो मध्ये नरेन्द्राणामूर्ध्व-बाहुर्हलायुधः । कुर्वन्नार्तस्वरं घोरं धिग्धिग्भीमेत्युवाच ह ॥ २१ ॥ अहो धिग्यदधो नाभेः प्रहृतं धर्मविग्रहे । नैतद् दृष्टं गदा युद्धे कृत-वान् यद्वृकोदरः ॥ २२ ॥ तस्य प्रलम्बघ्नस्य रोषः समभव-न्महान् । ततो लांगलमुद्यम्य भीममभ्यद्रवद्बली ॥ २३ ॥ तमु-त्पतन्तं जग्राह केशवो विनयान्वितः । बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रयत्नाद् बलवद्बली ॥२४॥ उवाच चैनं संरब्धं शमयन्निव केशवः। आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिर्मित्रमित्रोदयस्तथा ॥ २५ ॥ विपरीतं द्विष-त्स्वेतत षड्विधा वृद्धिरात्मनः ॥ २६ ॥ अस्माकं सहजं मित्रं पा-ण्डवाः शुद्धपौरुषाः । स्वकाः पितृष्वसुः पुत्रास्ते परैर्निकृता भृशं ॥ २७ ॥ प्रतिज्ञापालनं धर्मः क्षत्रियस्येह वद्यहं ॥ २८ ॥ सुयो-धनस्य गदया भंक्तास्म्यूरू महाहवे । इति पूर्वं प्रतिज्ञातं भीमेन हि सभातले ॥ २९ ॥ अतो दोषं न पश्यामि मा क्रुध्यस्व प्रलम्बहन्। यौनैः स्वैः सुखहार्दैश्च सम्बन्धः सह पाण्डवैः ॥ ३० ॥ तेषां वृ-द्धया हि वृद्धिर्नो मा क्रुधः पुरुषर्षभ ॥ ३१ ॥ धर्मच्छलमपि श्रुत्वा केशवात् स विशांपते । नैव प्रीतमना राजन् वचनं प्राह संसदि ॥ ३२ ॥ हत्वा धर्मेण राजानं धर्मात्मानं सुयोधनं । जिह्मयोधीति लोकेऽस्मिन् ख्यातिं यास्यति पाण्डवः ॥ ३३ ॥ दुर्योधनोऽपि धर्मा-त्मा गतिं यास्यति शाश्वतीं । ऋजुयोधी हतो राजा धार्तराष्ट्रो नरा-धिपः ॥ ३४ ॥ युद्धदीक्षां प्रविश्याजौ रणयज्ञं वितत्य च ।

हुत्वाऽऽत्मानमग्निमाग्नौ प्राप चावभृथं यशः ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा रथमास्थाय रौहिणेयः प्रतापवान् । श्वेताभ्रशिखराकारः प्रययौ द्वारकां प्रति ॥ ३६ ॥

अर्थ—भाई क्रोध मत करना, और न अपने ऊपर कुछ शोक करना, पहले किये हुए पापि घोर कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥ १४ ॥ दैव ने हमारे लिए निःसंदेह विषम फल रक्खा था, जिससे कि हम तुम्हारे वैरी बने और तुम हमारे वैरी बने ॥ १५ ॥ तुम्हारे अपराध से हमने तुम्हारे भाई और ज्ञातिजन मारे, दैव को कोई लंघ नहीं सकता है ॥ १६ ॥ तुम्हें अपना शोक नहीं करना, हे निष्पाप तेरा मृत्यु श्लाघ्य है, अब हे कौरव ! हम ही सारी अवस्थाओं में शोक के योग्य हैं॥१७॥ हम अपने प्यारे बन्धुओं से हीन होकर दुःख का जीना जियेंगे, हाय कैसे शोक से भरी विधवा बहुओं को देखूंगा ॥ १८ ॥ तुम्हीं एक हे राजन् अब अच्छी स्थिति में हो, तेरा स्थान स्वर्ग में होगा, हम नरकरूपी दारुण दुःख को प्राप्त होंगे ॥ १९ ॥ राजा धृतराष्ट्र की पुत्र पोतों की विधवाएं शोक से पीड़ित हो व्याकुल हुई हमारी निन्दा करेंगी ॥ २० ॥ उसी समय राजाओं के मध्य में भुजा उठाए बलराम वीर आर्तस्वर करते हुए भीम को धिक् कहने लगे ॥ २१ ॥ और धिक् जो धर्मयुद्ध में नाभि से नीचे प्रहार किया, गदायुद्ध में यह नहीं देखा गया, जो भीमने किया है ॥ २२ ॥ ऐसी २ बात कहते हुए उस का क्रोध बहुत बढ़ गया, तब वह बली हल उठा कर भीम की ओर दौड़ा॥२३॥ वेग से जाते हुए बलराम को कृष्ण ने हाथ जोड़ कर अपनी गोल मोटी भुजाओं से बल पूर्वक पकड़ लिया ॥२४॥ और क्रोध

से भरे हुए को मानो शान्त करते हुए श्रीकृष्ण बोले अपनी वृद्धि मित्र की वृद्धि, मित्र के मित्र की वृद्धि, और शत्रुओं में उलट (अर्थात् शत्रु का क्षय, शत्रु के मित्र का क्षय, शत्रु के मित्र के, मित्र का क्षय) यह छः प्रकार की अपनी वृद्धि समझी जाती है ॥ २५—२६ ॥ पराक्रमी पाण्डव हमारे स्वभावतः मित्र हैं, सगे फूफी के पुत्र हैं, इन को शत्रुओं ने छल लिया था ॥ २७ ॥ किञ्च मैं जगत् में प्रतिज्ञा का पालन क्षत्रिय का धर्म समझता हूं ॥ २८ ॥ मैं संग्राम में गदा से दुर्योधन की रानें तोडूंगा, यह भीम ने सभा में प्रतिज्ञा की थी ॥ २९ ॥ इस लिए मैं इस में दोष नहीं देखता हूं, हे प्रलम्ब नाशन आप क्रोध न कीजिये । अपने सुहृदों पाण्डवों के साथ हमारा यौन सम्बन्ध है ॥ ३० ॥ उन की वृद्धि से हमारी वृद्धि है, हे पुरुषवर क्रोध मत कीजिये ॥ ३१ ॥ कृष्ण से प्रतिज्ञार्थ भी छल को सुन कर बलराम अप्रसन्न ही हुआ सभा में यह वचन बोला ॥ ३२ ॥ भीमसेन ने राजा दुर्योधन को अधर्म से मारा है, इस लिए भीम जगत में छली योद्धा की प्रसिद्धि पाएगा ॥ ३३ ॥ सरल योद्धा राजा दुर्योधन भी मर कर वीर-गति को पाएगा ॥ ३४ ॥ जिसने रण क्षेत्र में युद्ध दीक्षा में प्रवेश करके रणयज्ञ का विस्तार कर अपने को शत्रुरूपी अग्नि में होम कर अवभृथ(यज्ञ समाप्ति के स्नान) का यश प्राप्त किया है ॥ ३५ ॥ यह कह कर श्वेत मेघ के तुल्य सुन्दर आकार वाला प्रतापी बलराम द्वारका को चला गया ॥ ३६ ॥

मूल—ततो युधिष्ठिरं दीनं चिन्तापरमधोमुखं । शोकोपहत-संकल्पं वासुदेवोऽब्रवीदिदं ॥ ३७ ॥ धर्मराज किमर्थं त्वमधर्ममनु-मन्यसे । दुर्योधनस्य भीमेन मृद्यमानं शिरः पदा ॥ ३८ ॥ उपप्रे-

क्षसि कस्मात्त्वं धर्मज्ञः सन्नराधिप ॥ ३९ ॥ युधिष्ठिर उवाच—न ममैतत्प्रियं कृष्ण यद्राजानं वृकोदरः । पदा मूर्ध्न्यस्पृशत् क्रोधान्न च हृष्ये कुलक्षये ॥ ४० ॥ निकृत्या निकृता नित्यं धार्तराष्ट्रसुतैर्वयं । बहूनि परुषाण्युक्त्वा वनं प्रस्थापिताः स्म ह ॥ ४१ ॥ भीमसेनस्य तद् दुःखमतीव हृदि वर्तते । इति संचिन्त्य वार्ष्णेय मयैतत्समुपेक्षितं ॥ ४२ ॥ गतो वैरस्य निधनं हतो राजा सुयोधनः । कृष्णस्य मतमास्थाय विजितेयं वसुन्धरा ॥ ४३ ॥ ततस्ते प्रययुः सर्वे निवासाय महीक्षिताः । शंखान् प्रध्मापयन्तो वै हृष्टाः परिघबाहवः ॥ ४४ ॥ ततस्ते प्राविशन् पार्था हत त्विट्कं हतेश्वरं । दुर्योधनस्य शिबिरं रंगवाद्विसृते जने ॥ ४५ ॥ शिबिरं समनुप्राप्य कुरुराजस्य पाण्डवाः । अवतेरुर्महाराज रथेभ्यो रथसत्तमाः॥४६॥ ततो गांडीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः । अवरोपय गांडीवमक्षयौ च महेषुधी ॥ ४७ ॥ अथाहमवरोक्ष्यामि पश्चाद्भरतसत्तम । स्वयं चैवावरोह त्वमेतच्छ्रेयस्तवानघ ॥ ४८ ॥ तच्चाकरोत् तथा वीरः पाण्डुपुत्रो धनञ्जयः ॥ ४९ ॥ अथ पश्चात्ततः कृष्णो रश्मीनुत्सृज्य वाजिनां । अवारोहत मेधावी रथाद् गांडीवधन्वनः ॥ ५० ॥ प्रविश्य प्रत्यपद्यन्त कोशरत्नर्धिसंचयान् । रजतं जातरूपं च मणीनथ च मौक्तिकान् ॥ ५१ ॥ अथाब्रवीन्महाराज वासुदेवो महायशाः । अस्माभिर्मंगलार्थाय वस्तव्यं शिबिराद्बहिः ॥ ५२ ॥ तथेत्युक्त्वा हि ते सर्वे पाण्डवाः सात्यकिस्तथा । वासुदेवेन सहिता मंगलार्थं बहिर्ययुः ॥ ५३ ॥ ते समासाद्य सरितं पुण्या मोघवतीं नृप । न्यवसन्नथ तां रात्रिं पाण्डवा हतशत्रवः ॥ ५४ ॥ ततः संप्रेषयामासुर्यादवं नागसाह्वयं । स च प्रायाज्जवेनाशु वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ५४ ॥ अभ्यगच्छददीनात्मा धृतराष्ट्रनिवेशनं । पूर्वं

चाभिगतं तत्र सोऽपश्यद्दृषिसत्तमं ॥ ५६ ॥ पादौ प्रपीड्य कृष्ण-
स्य राज्ञश्चापि जनार्दनः । अभ्यवादयदव्यग्रो गान्धारीं चापि
केशवः ॥ ५७ ॥ ततस्तु यादवश्रेष्ठो धृतराष्ट्रमधोक्षजः । पाणि-
मालम्ब्य राजेन्द्र सुस्वरं प्ररुरोद ह ॥ ५८ ॥ स मुहूर्तादिवोत्सृ-
ज्य वाष्पं शोकसमुद्भवं । उवाच प्रसृतं वाक्यं धृतराष्ट्रमरिन्दमः
॥ ५९ ॥ न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्वृद्धस्य तव भारत । कालस्य
च यथावृत्तं तत्ते सुविदितं प्रभो ॥ ६० ॥ यदिदं पाण्डवैः सर्वै-
स्तव चित्तानुरोधिभिः । कथं कुलक्षयो न स्यात्तथा क्षत्रस्य भा-
रत ॥ ६१ ॥ भ्रातृभिः समयं कृत्वा क्षान्तवान् धर्मवत्सलः । द्यूत-
च्छलजितैः शुद्धैर्वनवासो ह्युपागतः ॥ ६२ ॥ अज्ञातवासचर्या च
नानावेषसमावृतैः । अन्ये च बहवः क्लेशास्त्वशक्तैरिव सर्वदा
॥ ६३ ॥ मया च स्वयमागम्य युद्धकाल उपस्थिते । सर्वलोकस्य
सान्निध्ये ग्रामांस्त्वं पञ्च याचितः ॥ ६४ ॥ मा च दोषान् महा-
प्राज्ञ पाण्डवेषु निवेशय । अल्पोऽप्यतिक्रमो नास्ति पाण्डवानां म-
हात्मनां ॥ ६५ ॥ जानासि च महाबाहो धर्मराजस्य या त्वयि ।
भक्तिर्भरतशार्दूल स्नेहश्चापि स्वभावतः ॥ ६६ ॥ त्वां चैव नर-
शार्दूल गान्धारीं च यशस्विनीं । स शोकसन्तप्तः दुःखः शान्तिं नैवा-
धिगच्छति ॥ ६७ ॥ सौबलेयि निबोधत्वं यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु।
जानासि च यथा राज्ञि सभायां मम सन्निधौ ॥ ६८ ॥ धर्मार्थस-
हितं वाक्यमुभयोः पक्षयोर्हितं । उक्तवत्यसि कल्याणि न च ते
तनयैः कृतं ॥ ६९ ॥ तदिदं समनुप्राप्तं तव वाक्यं नृपात्मजे । एवं
विदित्वा कल्याणि मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ ७० ॥ समाश्वास्य
च गान्धारीं धृतराष्ट्रं च माधवः । ततस्त्वरित उत्थाय पादौ मूर्ध्ना
प्रणम्य च ॥ ७१ ॥ प्रायाच्चतस्तु त्वरितो दारुकेण महाच्युतः

॥ ७२ ॥ वासुदेवे गते राजन् धृतराष्ट्रं जनेश्वरं । आश्वासयदमेयात्मा व्यासो लोक नमस्कृतः ॥ ७३ ॥

अर्थ—तब दीन हो नीचे मुख किये चिन्ता में पड़े शोक से भरे युधिष्ठिर से कृष्ण बोले ॥ ३७ ॥ हे धर्मराज तुम इस अधर्म को कैसे चुपचाप देखते हो, जो भीम ने पैर से दुर्योधन का सिर ठकुराया है ॥ ३८ ॥ हे राजन् तुम धर्मज्ञ हो कर कैसे अपेक्षा करते हो ॥ ३९ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे कृष्ण यह मुझे पसन्द नहीं है, जो भीमने क्रोध से राजा के सिर पर पैर रक्खा, न मैं कुलक्षय में प्रसन्न हूं ॥ ४० ॥ धृतराष्ट्र के पुत्रों ने हमें कई बार छला, और बहुत से कठोर वाक्य कह कर वन को भेजा ॥ ४१ ॥ भीमसेन के हृदय में यह बड़ा भारी दुःख वर्त रहा था, यह सोच कर हे वार्ष्णेय मैंने इस की उपेक्षा की है ॥ ४२ ॥ वैर का अन्त हो चुका, राजा सुयोधन मारा गया, आप की मति में चल कर यह भूमि जीत ली है ॥ ४३ ॥ अनन्तर मोटी भुजाओं वाले वे सब राजे शंख बजाते हुए प्रसन्न हुए निवास के लिए गए॥४४॥ और वे राजे दुर्योधन के शिबिर में गए, जिस की न शोभा है, न कोई स्वामी है, जैसे लोगों के चले जाने पर नाट्य का रंग हो ॥ ४५ ॥ कुरुराज के शिबिर में पहुंच कर रथिवर पाण्डव रथों से उतरे ॥ ४६ ॥ तब कृष्ण अर्जुन से बोले, धनुष को और अनखुट्ट बाणों वाले भत्थों को उतार ॥ ४७ ॥ और आप भी उतर, हे भरतवर तब मैं उतरूंगा ॥ ४८ ॥ वीर धनञ्जय ने वैसे ही किया ॥ ४९ ॥ पीछे कृष्ण ने घोड़ों की वागें छोड़ीं, और अर्जुन के रथ से उतरे ॥ ५० ॥ अब अन्दर प्रवेश करके धन के कोश रत्नों के ढेर चांदी सोना मणि और मोती देखे॥५१॥

अब श्रीकृष्ण बोले, हमें मंगल के लिए शिविर से बाहर वास करना चाहिये ॥ ५२ ॥ यह कह कर मंगल के लिए पाण्डव और सात्यकि कृष्ण के साथ बाहर चले गए ॥ ५३ ॥ और पवित्र ओघवती नदी पर जा कर उस रात वास किया ॥ ५४ ॥ तब उन्हों ने कृष्ण को हस्तिनापुर भेजा, और वे बड़े वेग से वहां पहुंचे ॥ ५५ ॥ जब वे धृतराष्ट्र के घर पहुंचे, तो वहां पहले पहुंचे हुए ऋषिवर व्यास को देखा ॥ ५६ ॥ कृष्ण ने व्यास धृतराष्ट्र और गान्धारी के चरण छू कर प्रणाम किया ॥ ५७ ॥ पीछे कृष्ण राजा का हाथ पकड़ कर बहुत रोए ॥ ५८ ॥ थोड़ी देर के पीछे शोक के आंसू पोंछ कर धृतराष्ट्र से प्रस्तुत वाक्य बोले ॥ ५९ ॥ हे भारत आप वृद्ध हैं, आप को कुछ अविदित नहीं है, काल का स्वभाव आप को पूरा विदित है ॥ ६० ॥ आप जानते हैं, कि पाण्डवों ने आप के अभिप्राय के अनुकूल, यह सोच कर, कि कैसे कुल का क्षय और क्षत्रनाश न हो, भाइयों के साथ संकेत कर, जुए के छल से जीते हुओं ने भी बनवास स्वीकार किया। और भेस बदल कर अज्ञातवास पूरा किया और भी अशक्तों की भांति कई क्लेश सहारे ॥ ६१—६३ ॥ युद्धकाल के आने पर मैंने स्वयं आकर सब लोगों के सामने आप से पांच गाओं मांगे ॥ ६४ ॥ इस लिए हे महाप्राज्ञ ! आप पाण्डवों पर कोई दोष नहीं लगा सकते, महात्मा पाण्डवों का तनिक भी अपराध नहीं है ॥ ६५ ॥ हे महाराज आप जानते हैं, जैसी कि युधिष्ठिर की आप में स्वभावतः भक्ति और स्नेह है ॥ ६६ ॥ हे नरशार्दूल ! वह आप का और यशस्विनी गान्धारी का शोक करता हुआ शान्ति नहीं पाता ॥ ६७ ॥ हे गान्धारि

जो मैं कहता हूं आप भी सुनिये, हे रानी तुम जानती हो, जैसे सभा में मेरे सामने तुम ने दोनों पक्षों का हितकारी धर्म अर्थ युक्त वाक्य कहा था, वह आप के पुत्रों ने न माना ॥ ६९ ॥ हे राजपुत्र ! वह तुम्हारा वाक्य आज सामने आ गया है, यह जान कर हे कल्याणि ! मन में शोक न लाओ ॥७०॥इस प्रकार श्री कृष्ण धृतराष्ट्र और गान्धारी को तसल्ली दे, शीघ्र उठ कर उन के पैरों पर प्रणाम कर के, दारुक के साथ वेग से लौट गए ॥ ७१-७२ ॥ कृष्ण के चले जाने पर लोक पूज्य व्यास ने भी धृतराष्ट्र को तसल्ली दी ॥ ७३ ॥

अ० ६ (व० ६४-६५) अश्वत्थामा की प्रतिज्ञा

मूल-संजय उवाच—भग्नसक्थो नृपो राजन् पांसुना सोऽव-गुंठितः । यमयन्मूर्धजांस्तत्र वीक्ष्य चैव दिशो दिशः ॥ १ ॥ संर-म्भाश्रुपरीताभ्यां नेत्राभ्यामभिवीक्ष्य मां । बाहू धरण्यां निष्पि-ष्य दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ॥ २ ॥ गर्हयन् पाण्डवं ज्येष्ठं निःश्व-स्येदमथाब्रवीत । भीष्मे शान्तनवे नाथे कर्णे शस्त्रभृतांवरे ॥ ३ ॥ गौतमे शकुनौ चापि द्रोणे चास्त्रभृतांवरे । अश्वत्थाम्नि तथा शल्ये शूरे च कृतवर्मणि ॥ ४ ॥ इमामवस्थां प्राप्तोऽस्मि कालो हि दुर-तिक्रमः । एकादश चमूभर्ता सोऽहमेतां दशांगतः ॥ ५ ॥ आख्या-तव्यं मदीयानां येऽस्मिन् जीवन्ति संयुगे । यथाहं भीमसेनेन व्यु-त्क्रम्य समयं हतः ॥ ६ ॥ इदं चाकीर्तिजं कर्म नृशंसैः पाण्डवैः कृतं । येन ते सत्सु निर्वेदं गमिष्यन्ति हि मे मतिः॥ ७ ॥ अभिज्ञौ युद्धधर्मस्य मम माता पिता च मे। तौ हि संजय दुःखार्तौ विज्ञा-प्यौ वचनाद्धि मे ॥ ८ ॥ इष्टं भृत्या भृता सम्यग्भूः प्रशास्ता

ससागरा । मूर्ध्नि स्थितममित्राणां जीवतापि च संजय ॥९॥ दत्ता दाया यथाशक्ति मित्राणां च प्रियं कृतं । अमित्रा बाधिताः सर्वे को नु स्वन्ततरो मम ॥ १० ॥ अधीतं विधिवद्दत्तं प्राप्तमायुर्निरामयं । स्वधर्मेणार्जिता लोकाः को नु स्वन्ततरो मम ॥ ११ ॥ दिष्ट्या नाहं जितः संख्ये परान् प्रेष्यवदाश्रितः । दिष्ट्या मे विपुला लक्ष्मीर्मृते त्वन्यगता विभो ॥ १२ ॥ यदिष्टं क्षत्रबन्धूनां स्वधर्ममनुतिष्ठतां । निधनं तन्मया प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मम॥१३॥ अश्वत्थामा महाभागः कृतवर्मा च सात्वतः । कृपः शारद्वतश्चैव वक्तव्या वचनान्मम ॥ १४ ॥ अधर्मेण प्रवृत्तानां पाण्डवानामनेकशः । विश्वासं समयघ्नानां न यूयं गन्तुमर्हथ ॥ १५ ॥

अर्थ—फिर संजय बोले—हे राजन् जांघ टूटने के पीछे धूलि मे लिपटे राजा बालों को संभाल कर और चारों ओर दृष्टि डाल कर, क्रोध के आंसुओं से भरे नेत्रों से मेरी ओर देख कर, दोनों भुजाओं को पृथिवी पर रगड़ कर और दांतों से दांतों को कट कटा कर, युधिष्ठिर को धिक्कार दे कर, सांस भर कर यह बोले। मैं, जिस के नाथ भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, शकुनि, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य और कृतवर्मा थे ॥ १--४ ॥ वह मैं इस अवस्था को पहुंचा हूं, काल की गति कठोर है । ग्यारह अक्षौहिणी का स्वामी हो कर मैं इस दशा को पहुंचा हूं ॥ ५ ॥ मेरे उन साथियों को, जो इस युद्ध में जीते हैं, कहना, कि भीमसेन ने नियम तोड़ कर मुझे मारा है ॥ ६ ॥ पाण्डवों ने यह अपकीर्ति का काम किया है, जिस से वे धर्मात्माओं में दूषित होंगे ॥ ७ ॥ युद्ध धर्म के जानकार दुःख से पीड़ित मेरे माता और पिता को हे संजय मेरे वचन से कहना ॥ ८ ॥ 'मैंने यज्ञ किये, सेवकों

का पालन किया, सागर सहित पृथिवी पर शासन किया और जीते ही शत्रुओं के सिर पर पैर रक्खा ॥ ९ ॥ शक्ति के अनुसार दान दिये, मित्रों का हित किया, और शत्रुओं को दबाया, सो मुझ से बढ़ कर अच्छे अन्त वाला कौन होगा ॥ १० ॥ विधि से विद्या पाई, दान दिये, और नीरोग आयु पाई, धर्म से स्वर्ग को जीता, सो मुझ से बढ़ कर अच्छे अन्त वाला कौन होगा ॥ ११ ॥ भाग्य से मैं जीता जा कर दास की भांति शत्रुओं के अधीन नहीं हुआ, और भाग्य से मेरी विशाल लक्ष्मी मेरे मरने के पीछे हाथ गई है ॥ १२ ॥ अपने धर्म पर चलने वाले क्षत्रियों को जो मौत प्यारी होती है, वह मैंने पाई है, मुझ से बढ़ कर कौन अच्छे अन्त वाला होगा ॥ १३ ॥ हे महाभाग अश्वत्थामा कृतवर्मा और कृपाचार्य को मेरे वचन से कहना ॥ १४ ॥ अधर्म पर चलने वाले नियम के तोड़ने वाले पाण्डवों का कभी विश्वास न करना ॥ १५ ॥

मूल—वार्तिकानां सकाशात्तु श्रुत्वा दुर्योधनं हतं । हतशिष्टास्त्रयो राजन् कौरवाणां महारथाः ॥ १६ ॥ त्वरिता जवनैरश्वैरायोधनमुपागमन् ॥ १७ ॥ तत्रापश्यन्महात्मानं धार्तराष्ट्रं निपातितं। प्रभग्नं वायुवेगेन महाशालं यथा वने ॥ १८ ॥ भूमौ विचेष्टमानं तं रुधिरेण समुक्षितं। महागजमिवारण्ये व्याधेन विनिपातितं॥१९॥ ते तं दृष्ट्वा महेष्वासं भूतले पतितं नृपं। मोहमभ्यागमन् सर्वे कृपप्रभृतयो रथाः॥ २० ॥ अवतीर्य रथेभ्यश्च प्राद्रवन् राजसन्निधौ। दुर्योधनं च संप्रेक्ष्य सर्वे भूमावुपाविशन् ॥ २१ ॥ ततो द्रौणिर्महाराज बाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन् । उवाच भरतश्रेष्ठं सर्वलोकेश्वरेश्वरं ॥ २२ ॥ न नूनं विद्यते सत्यं मानुषे किञ्चिदेव हि । यत्र त्वं

पुरुषव्याघ्र शेषे पांसुषु रूषितः॥ २३ ॥क्व ते तदमलं छत्रं व्यजनं क्व च पार्थिवासा च ते महती सेना क्व गता पार्थिवोत्तम ॥ २४ ॥ अध्रुवा सर्वमर्त्येषु श्रीरुपालक्ष्यते भृशं। भवतो व्यसनं दृष्ट्वा शक्रविस्पर्धिनो भृशं ॥ २५ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दुःखितस्य विशेषतः। उवाच राजन् पुत्रस्ते प्राप्तकालमिदं वचः ॥ २६ ॥ ईदृशो लोकधर्मोऽयं धात्रा निर्दिष्ट उच्यते। विनाशः सर्वभूतानां कालपर्यायमागतः ॥ २७ ॥ दिष्ट्या नाहं परावृत्तो युद्धे कस्यां चिदापदि। दिष्ट्याहं निहतः पापैश्छलेनैव विशेषतः॥ २८ ॥ मा भवन्तोऽत्र तप्यन्तां सौहृदान्निधनेन मे। यदि वेदाः प्रमाणं वो जिता लोका मयाऽक्षयाः ॥ २९ ॥ कृतं भवद्भिः सदृशमनुरूपमिवात्मनः। यतितं विजये नित्यं दैवं तु दुर्निक्रमं ॥ ३० ॥ एतावदुक्त्वा वचनं वाष्पव्याकुललोचनः। तूष्णीं बभूव राजेन्द्र राजासौ विह्वलो भृशं ॥ ३१ ॥

अर्थ—संदेश लेजाने वालों के प्रकाश से दुर्योधन का मरना सुन कर मरने से बचे कौरवों के तीन महारथ, वेग वाले घोड़े जोड़ झट युद्धस्थल में आ पहुंचे ॥१६–१७॥ वहां उन्होंने दुर्योधन को गिरा हुआ देखा. जैसे वन में वायु के वेग से महाशाल टूटा हो ॥ १८ ॥ भूमि पर लोटता हुआ रुधिर से लिबड़ा हुआ, जैसे वन में व्याध से गिराया हुआ महागज हो ॥ १९ ॥ उस महा धनुर्धारी राजा को भूमि पर गिरा हुआ देख कर कृपाचार्यादि महारथियों के होश जाते रहे ॥ २० ॥ रथों से उतर कर राजा की ओर दौड़े और उस के निकट जाकर सब भूमि पर बैठ गए ॥ २१ ॥ तब अश्वत्थामा रोता हुआ और लंबे सांस भरता हुआ भरतवर राजराजेश्वर से बोला ॥ २२ ॥ निःसंदेह

मानुष जीवन में कोई भी बात स्थिर नहीं है, जब कि तुम हे पुरुषवर धूलि में लिपटे पड़े हो ॥ २३ ॥ हे राजन् आप का वह निर्मल छत्र और चामर कहां गया, और वह आप की बड़ी सेना कहां चली गई ॥ २४ ॥ आप जो इन्द्र से पूरी स्पर्धा रखते थे, उन आप की विपत्ति को देख कर निश्चय होता है, कि लक्ष्मी मनुष्य में अटल रहने वाली नहीं है ॥ २५ ॥ उस विशेषतः दुःखित हुए के वचन को सुन कर हे राजन् आप के पुत्र यह समयोचित वचन बोले ॥ २६ ॥ हे वीरो ब्रह्मा ने जगत् की ऐसी ही गति बनाई है, कि सब प्राणियों का वारी २ से अवश्य काल होना है ॥ २७ ॥ भाग्य से मैं किसी विपत्ति में युद्ध से लौटा नहीं हूं, और यह भी भाग्य से है, कि मेरे शत्रु छल से मुझे मार सके हैं ॥ २८ ॥ मुझ में सौहार्द के कारण आप तपें नहीं, यदि आप को वेद प्रमाण हैं, तो मैंने अक्षय स्वर्ग जीता है॥२९॥ आपने अपने सदृश काम किया है, सदा विजय में पूरा यत्न किया है, किन्तु दैव को कोई लंघ नहीं सकता है ॥ ३० ॥ हे महाराज ऐसा कह कर राजा के नेत्र आंसुओं से भर गए, और पीड़ा से व्याकुल हो कर चुप हो गए ॥ ३१ ॥

मूल–तथा तु दृष्ट्वा राजानं बाष्पशोकसमन्वितं । द्रौणिः क्रोधेन जज्वाल पाणौ पाणिं निपीड्य च ॥ ३२ ॥ बाष्पविह्लया वाचा राजानमिदमब्रवीत् ॥ ३३ ॥ पिता मे निहतः क्षुद्रैः सुनृशंसेन कर्मणा । न तथा तेन तप्यामि यथा राजन् त्वयाद्य वै ॥ ३४ ॥ शृणु चेदं वचो मह्यं सत्येन वदतः प्रभो ॥३५॥ अद्याहं सर्वपञ्चालान् वासुदेवस्य पश्यतः । सर्वोपायैर्हि नेष्यामि प्रेतराज निवेशनं ॥ ३६ ॥ अनुज्ञां तु महाराज भवान्मे दातुमर्हति ॥ ३७ ॥

इति श्रुत्वा तु वचनं द्रोणपुत्रस्य कौरवः। मनसः प्रीतिजननं कृपं वचनमब्रवीत ॥८॥ आचार्य शीघ्रं कलशं जलपूर्णं समानय॥३९॥ स तद्वचनमाज्ञाय राज्ञो ब्राह्मणसत्तमः। कलशं पूर्णमादाय राजान्तिक मुपागमत ॥ ४० ॥ दुर्योधन उवाच--ममाज्ञया द्विजश्रेष्ठ द्रोणपुत्रोऽभिषिच्यतां। सैनापत्येन भद्रं ते मम चेदिच्छसि प्रियं ॥ ४१ ॥ राज्ञो नियोगाद्योद्धव्यं ब्राह्मणेन विशेषतः। वर्तता क्षत्रधर्मेण ह्येवं धर्मविदो विदुः ॥ ४२ ॥ राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा कृपः शारद्वतस्ततः। द्रौणिं राज्ञो नियोगेन सैनापत्येऽभ्यषेचयत॥४३॥ सोभिषिक्तो महाराज परिष्वज्य नृपोत्तमं। प्रययौ सिंहनादेन दिशः सर्वा विनादयन् ॥ ४४ ॥ दुर्योधनोपि राजेन्द्र शोणितेन परिप्लुतः। तां निशां प्रतिपेदेऽथ सर्वभूतभयावहां ॥ ४५ ॥

अर्थ—राजा को इस प्रकार व्याकुल रोते देख अश्वत्थामा क्रोध से भड़क उठा और आंखों में आंसुए भर कर हाथ मरोड़ कर राजा से बोला ॥ ३२--३३ ॥ इन क्षुद्रों ने मेरे पिता को क्रूर कर्म से मारा है, पर मैं उस शोक से उतना नहीं तप रहा, जितना हे राजन्! आज तेरे शोक से तप रहा हूं ॥ ३४ ॥ हे राजन् मैं सत्य की शपथ खा कर कहता हूं, कि आज ही कृष्ण के देखते २ सारे पांचालों को सब प्रकार के उपायों से यमपुरी में न भेजूं, तो मुझे इष्ट पूर्त दान धर्म सुकृत कर्मों का कोई फल न हो॥ ३५--३६ ॥ हे महाराज आप मुझे अनुज्ञा दीजिये॥ ३७ ॥ अश्वत्थामा के ऐसे वचन सुन कर दुर्योधन प्रसन्न हो कर कृपाचार्य से बोले ॥ ३८ ॥ हे गुरु जी आप शीघ्र एक जल का कलश भर लाइये ॥ ३९ ॥ राजा के वचन सुन कृपाचार्य शीघ्र कलश भर कर राजा के निकट ले आए ॥ ४० ॥ दुर्योधन बोले--हे

द्विजवर यदि मेरा प्रिय चाहते हो, तो अश्वत्थामा को सेनापति का अभिषेक दीजिये ॥ ४१ ॥ राजा की आज्ञा से ब्राह्मण को, विशेषतः क्षत्रधर्म से बर्तने वाले को युद्ध करना चाहिये ॥ ४२ ॥ राजा के वचन को सुन कृपाचार्य ने राजा की आज्ञा से अश्वत्थामा को सेनापति का अभिषेक दिया ॥ ४३ ॥ अश्वत्थामा सेनापति बन कर राजा को हाथ दे कर सिंहनाद से सारी दिशाओं को गुंजाते हुए चल पड़े ॥ ४४ ॥ हे राजन् रुधिर से भीगे हुए दुर्योधन भी उस भयावनी रात में वहीं पड़े रहे ॥ ४५ ॥

शल्यपर्व-गदापर्व समाप्त हुआ.
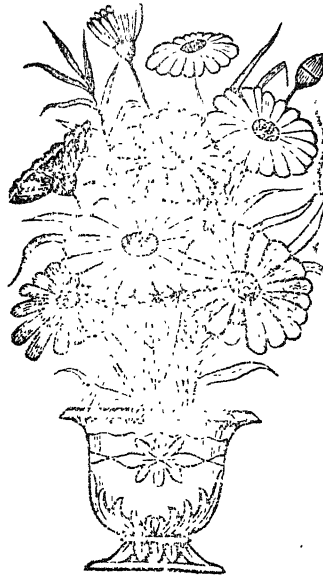
सौप्तिकपर्व ॥

अ० १ (व० १) अश्वत्थामा का कर्तव्य निर्धारण

मूल--ततस्ते सहिता वीरा प्रयाता दक्षिणामुखाः। सूर्यास्तमनवेलायां समासेदुर्महद्वनं ॥ १ ॥ प्रविश्य तद्वनं घोरं वीक्षमाणाः समन्ततः। शाखासहस्रसंछन्नं न्यग्रोधं ददृशुस्ततः ॥ २ ॥ तेऽवतीर्य रथेभ्यश्च विप्रमुच्य च वाजिनः।उपस्पृश्य यथान्यायं सन्ध्यामन्वासत प्रभो ॥ ३ ॥ तत्रोपविष्टाः शोचन्तो न्यग्रोधस्य समीपतः। तमेवार्थ मतिक्रान्तं कुरुपाण्डवयोः क्षयं ॥ ४ ॥ निद्रया च परीतांगा निषेदुर्धरणीतले। श्रमेण सुदृढं युक्ता विक्षता विविधैः शरैः ॥ ५ ॥ ततो निद्रावशं प्राप्तौ कृपभोजौ महारथौ। महार्हशयनोपेतौ भूमावेव ह्यनाथवत् ॥ ६ ॥ क्रोधामर्षवशं प्राप्तो द्रोणपुत्रस्तु भारत। न वैस्म स जगामाथ निद्रां सर्प इवश्वसन् ॥ ७ ॥ अपश्यत महाबाहुर्न्यग्रोधं वायसैर्युतं। तत्र काकसहस्राणि तां निशां पर्यणामयन् ॥ ८ ॥ सुप्तेषु तेषु काकेषु विश्रब्धेषु समन्ततः। सोऽपश्यत्सहसा यान्त मुलूकं घोरदर्शनं ॥ ९ ॥ सन्निपत्य तु शाखायां न्यग्रोधस्य विहंगमः। सुप्तान् जघान सुबहून् वायसान् वायसान्तकः ॥ १० ॥ केषाश्चिदच्छिनत् पक्षान् शिरांसि च चकर्त ह। चरणांश्चैव केषाश्चिद् बभञ्ज चरणायुधः ॥ ११ ॥ तद्दृष्ट्वा सोपघं कर्म कौशिकेन कृतं निशि। तद्भावे कृतसंकल्पो द्रौणिरेकोऽन्वचिन्तयत ॥ १२ ॥ उपदेशः कृतोऽनेन पक्षिणा मम संयुगे। शत्रूणां क्षपणे युक्तः प्राप्तः कालश्च मे मतः ॥ १३ ॥ नाद्य शक्या मया हन्तुं पाण्डवा जितकाशिनः। बलवन्तः कृतोत्साहाः प्राप्तलक्षाः प्रहारिणः ॥ १४ ॥ राज्ञः सकाशात् तेषां तु

प्रतिज्ञातो वधो मया । छद्मना च भवेत्सिद्धिः शत्रूणां च क्षयो महान् ॥ १५ ॥ निन्दितानि च सर्वाणि कुत्सितानि पदे पदे । सोपधानि कृतान्येव पाण्डवैरकृतात्मभिः ॥ १६ ॥ अस्मिन्नर्थे पुरा गीताः श्रूयन्ते धर्मचिन्तकैः। श्लोका न्यायमवेक्षद्भिस्तत्त्वार्थास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १७ ॥ परिश्रान्ते विदीर्णे वा भुञ्जाने वापि शत्रुभिः । प्रस्थाने वा प्रवेशे वा प्रहर्तव्यं रिपोर्बलं ॥ १८॥ निद्रार्त मर्धरात्रे च तथा नष्टप्रणायकं । भिन्नयोधं बलं यच्च द्विधायुक्तं च यद्भवत् ॥ १९ ॥ इत्येवं निश्चयं चक्रे सुप्तानां निशि मारणे । पाण्डूनां सहपाञ्चालै र्द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २० ॥ सक्रूरां मतिमास्थाय विनिश्चित्य मुहुर्मुहुः । सुप्तौ प्राबोधयत्तौ तु मातुलं भोजमेव च ॥ २१ ॥

अर्थ—तब वे तीनों वीर दक्षिण की ओर चले, और सूर्यास्त के समय एक बड़े वन में पहुंचे ॥ १ ॥ उस घोर वन में घुम कर चारों ओर दृष्टि डाल अनेक शाखाओं वाला एक वृक्ष देखा ॥ २ ॥ वे रथों से उतर, घोड़े खोले और यथाविधि आचमन करके सन्ध्या उपासी ॥ ३ ॥ बट के नीचे बैठे वे उसी हो चुके कौरवों पाण्डवों के विनाश का शोक करते रहे ॥ ४ ॥ थक कर चूर हो रहे थे, बाणों से क्षत विक्षत थे, नद्राने आ दबाया, तब भूतल पर पड़ गए ॥ ५ ॥ उत्तम शय्याओं पर सोने वाले महारथ कृपाचार्य और कृतवर्मा अनाथों की भांति भूमि पर सो गए ॥ ६ ॥ पर क्रोध से भरे अश्वत्थामा को निद्रा न आई और वह सांप के समान सांस लेते रहे॥ ७ ॥ उस महाबाहु ने ऊपर देखा, कि उस बट पर सहस्रों काए रात बिता रहे हैं ॥ ८ ॥ पर जब वे कौए विश्वस्त हो कर चारों ओर सोए पड़े थे, उस समय उस

ने अचानक एक भयंकर मूर्ति उल्लू को आते देखा ॥९॥ कौओं के शत्रु उस उल्लू ने चुप चाप शाखा पर जा कर सोए हुए बहुत से कौओं को मार डाला ॥ १० ॥ कइयों के पंख, कइयों के सिर काटे और कइयों की टांगें तोड़ डालीं ॥ ११ ॥ रात के समय उल्लू से किये इस छल वाले कर्म को देख कर, उसी ध्यान में लगे हुए अश्वत्थामा ने सोचा ॥ १२ ॥ इस पक्षी ने युद्ध के लिए मुझे अच्छा उपदेश दे दिया है, शत्रुओं के मारने का यही काल और यही रीति ठीक है ॥ १३ ॥ बलवन्त, उत्साही, लब्धलक्ष, शस्त्रधारी विजयी पाण्डवों को अब दूसरी रीति से मैं मार नहीं सकता॥१४॥ और राजा के सामने इन के वध की प्रतिज्ञा करी है, छल से ही इस की सिद्धि होगी, शत्रुओं का महान् क्षय होगा ॥ १५ ॥ पाण्डवों ने भी पद २ पर निन्दित और छल वाले कर्म किये हैं ॥ १६ ॥ धर्म के चिन्तक और न्याय के द्रष्टा तत्त्वदर्शियों ने इस विषय में तत्त्व के बोधक श्लोक कहे हैं ॥ १७ ॥ चाहे शत्रु थका हो-वा भागता हो, वा भोजन कर रहा हो, चाहे चला जाता हो, वा प्रवेश कर रहा हो, चाहे आधी रात के समय निद्रा के वशीभूत हो, चाहे उनका नायक नष्ट हो गया हो, योधे बिखरे हुए हों और चाहे दो टुकड़े हुए हों, शत्रुदल पर सर्वथा प्रहार हो सकता है ॥ १८-१९ ॥ इस प्रकार प्रतापी अश्वत्थामा ने रात के समय सोए हुए पाण्डवों और पंचालों को मारने का निश्चय किया ॥ २० ॥ इस क्रूर समझ पर भरोसा करके और मार ने निश्चय करके सोए हुए मामे और कृतवर्मा को जगाया ॥ २१ ॥

अ० २ (व० २-५) कृपाचार्य और अश्वत्थामा का संवाद

मूल—कृप उवाच-श्रुतं ते वचनं सर्वं यद्यदुक्तं त्वया विभो। ममापि तु वचः किञ्चिच्छृणुष्वाद्य महाभुज ॥ १ ॥ रागात् क्रोधाद् भयाल्लोभाद्योऽर्थानीहति मानवः । अनीशश्चावमानी च स शीघ्रं भ्रश्यते श्रियः ॥ २ ॥ सोऽयं दुर्योधनेनार्थो लुब्धे नादीर्घदर्शिना । असमर्थः समारब्धो मूढत्वाद् विचिन्तितः ॥ ३ ॥ हितबुद्धीननादृत्यासंमन्त्र्यासाधुभिः सह । वार्यमाणोऽकरोद्वैरं पाण्डवैर्गुणवत्तरैः ॥ ४ ॥ अनुवर्तामहे यत्तु तं वयं पापपूरुषं । अस्मानप्यनयस्तस्मात्प्राप्तोऽयं दारुणो महान्॥ ५ ॥ अनेन तु ममाद्यापि व्यसनेनोपतापिता। बुद्धिश्चिन्तयते किञ्चित् स्वंश्रेयो नाव बुध्यते ॥ ६ ॥ मुह्यता तु मनुष्येण प्रष्टव्या सुहृदोजनाः । तत्रास्य बुद्धिर्विनयस्तत्र श्रेयश्च पश्यति॥ ७ ॥ ते वयं धृतराष्ट्रं च गान्धारीं च समेत्य ह । उपपृच्छामहे गत्वा विदुरं च महामतिं ॥ ८ ॥ पृष्टास्तु वदेयुर्यच्छ्रेयो नः समनन्तरं । तदस्माभिः पुनः कार्य मिति मे नैष्ठिकी मतिः ॥ ९ ॥

अर्थ—कृपाचार्य बोले—हे तात ! जो २ बात तुमने कही, वह सब हमने सुनली, अब मेरी बात को भी हे महाबाहो सुनो ॥ १ ॥ जो मनुष्य राग, क्रोध, भय वा लोभ से अर्थों को पाना चाहता है, और समर्थ न हो कर दूसरों का अपमान करता है, वह शीघ्र लक्ष्मी से भ्रष्ट होता है ॥ २ ॥ सो यह लोभी अदूरदर्शी दुर्योधन ने अपनी मूढता में न होसकने वाला कार्य आरम्भ किया ॥ ३ ॥ हितैषियों का अनादर कर, असत्पुरुषों से मन्त्रणा करके रोकते २ भी अपने से अधिक गुण वाले पाण्डवों से वैर किया ॥ ४ ॥ हम भी जो इस पाप में उस के साथ रहे,

इसीसे हम को भी यह दारुण फल भोगना पड़ा ॥ ५ ॥ इस व्यसन से तपी हुई मेरी बुद्धि अब भी बड़ी चिन्ता में पड़ी है, अपना कुछ कल्याण नहीं समझती है ॥ ६ ॥ जब अपनी समझ काम न करे, तो सुहृद्‌जनों से पूछलेना चाहिये, इस में मनुष्य की बुद्धि का लगना विनय है और इस में वह अपना कल्याण देखता है ॥ ७ ॥ सो हम इकट्ठे चल कर पहले यह बात धृतराष्ट्र गान्धारी और महामति विदुर से पूछें ॥ ८ ॥ वे सुन कर पीछे जो हमारे कल्याण की बात कहेंगे,वही हमारा कर्तव्य होगा, यह मेरा पक्का निश्चय है ॥ ९ ॥

मूल—अश्वत्थामा महाराज दुःख शोक समन्वितः । क्रूरं मनस्ततः कृत्वा तावुभौ प्रत्यभाषत ॥ १० ॥ पुरुषे पुरुषे बुद्धिर्याया भवति शोभना।तुष्यान्ति च पृथक् सर्वे प्रज्ञया ते स्वया स्वया ॥ ११ ॥ सर्वो हि मन्यते लोक आत्मानं बुद्धिमत्तरं । सर्वस्यात्मा बहुमतः सर्वोत्मानं प्रशंसति ॥ १२ ॥ विचित्रत्वात्तु चित्तानां मनुष्याणां विशेषतः । चित्तवैक्लव्य मासाद्य सासा बुद्धिः प्रजायते ॥ १३ ॥ अन्यया यौवने मर्त्यो बुद्धया भवति मोहितः । मध्येऽन्यया जरायां तु सोऽन्यां रोचयते मतिं ॥ १४ ॥ व्यसनं वा महाघोरं समृद्धिं चापि तादृशीं । अवाप्य पुरुषो भोज कुरुते बुद्धि वैकृतं ॥ १५ ॥ एकस्मिन्नेव पुरुषे सा सा बुद्धिस्तदा तदा। भवत्य कृतकर्मत्वात्सा तस्यैव न रोचते ॥ १६ ॥ उपजाता व्यसनजायेयमद्य मतिर्मम । युवयोस्तां प्रवक्ष्यामि मम शोकविनाशिनीं ॥ १७ ॥ धारयंश्च धनुर्दिव्यं दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे । पितरं निहतं दृष्ट्वा किं नु वक्ष्यामि संसदि ॥ १८ ॥ सोऽहमद्य यथाकामं क्षत्रधर्म मुपास्य तं । गन्तास्मि पदवीं राज्ञः पितुश्चापि महात्मनः

॥ १९ ॥ अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विश्वस्ता जितकाशिनः । जयं मत्वात्मनश्चैव श्रान्ता व्यायाम कर्शिताः ॥ २० ॥ तेषां निशि प्रसुप्तानां सुस्थानां शिबिरे स्वके । अवस्कन्दं करिष्यामि शिबिरस्याद्य दुष्करं ॥ २१ ॥ अद्यतान् सहितान् सर्वान् धृष्टद्युम्नपुरोगमान् । सूदयिष्यामि विक्रम्य कक्षं दीप्त इवानलः ॥ २२ ॥ अद्याहं सर्वपञ्चालैः कृत्वा भूमिं शरीरिणीं । प्रहृत्यैकैकशस्तेषु भविष्याम्यनृणः पितुः ॥ २३ ॥

अर्थ—हे महाराज ! यह सुन दुःख और शोक से भरे अश्वत्थामा मन को क्रूर करके उन दोनों से बोले ॥ १० ॥ हरएक पुरुष में अपनी २ अलग बुद्धि होती है, वे सब अलग २ अपनी २ बुद्धि करके संतुष्ट होते हैं ॥ ११ ॥ हरएक पुरुष अपने आप को दूसरों से बढ़ कर बुद्धि वाला समझता है, सब किसी को अपना आप बहुमत है, सब कोई अपनी प्रशंसा करता है ॥१२॥ विशेषतः मनुष्यों की चित्त वृत्तियां विचित्र होने से चित्त की घबराहट में वह २ बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ १३ ॥ यौवन में मनुष्य किसी और ही बुद्धि से मोहित होता है, मध्यावस्था में किसी और से, और बुढ़ापे में कोई और बुद्धि अच्छी लगा करती है ॥ १४ ॥ महा घोर विपत्ति या बहुत बड़ा ऐश्वर्य पा कर हे कृतवर्मन् ! मनुष्य की बुद्धि सदा बदल जाती है ॥ १५ ॥ एक ही पुरुष में उस २ समय वह २ बुद्धि उत्पन्न होती है, और अकृतकार्य रहने से, वह उसी को फिर पसन्द नहीं आती है॥ १६ ॥ इस विपत्ति के कारण मेरी इस समय जो बुद्धि हुई है, वह तुम दोनों को कहता हूं, यही मेरे शोक को नाश करेगी ॥ १७ ॥ रण में मैं दिव्य धनुष और दिव्य अस्त्र धार कर भी पिता को

सामने मरता देख कर मैं सभा में क्या कहूंगा ॥ १८ ॥ सो मैं आज इच्छानुसार क्षत्रधर्म का सेवन कर पिता की और महात्मा राजा की पदवी पर चलूंगा ॥ १९ ॥ आज विजयी पंचाल अपना जय मना कर व्यायाम से दुर्बल हुए थक कर सुख से सोए होंगे ॥ २० ॥ आज अपने शिविर में सुखपूर्वक सोए हुओं के शिविर में बड़ा घोर आक्रमण करूंगा ॥ २१ ॥ आज धृष्टद्युम्न आदि सारे पञ्चालों को इकट्ठे नष्ट करूंगा, जैसे प्रचण्ड अग्नि फूस को ॥ २२ ॥ आज मैं सारे पञ्चालों को पृथिवी पर बिछा कर एक २ को मार कर पिता का अनृणी हूंगा ॥ २३ ॥

मूल-कृ०उ०-दिष्ट्या ते प्रतिकर्तव्ये मतिर्जातेयमच्युतान त्वां वारयितुं शक्तो वज्रपाणिरपि स्वयं ॥ २४ ॥ अनुयास्यावहे त्वां तु प्रभाते सहितावुभौ । अद्य रात्रौ विश्रमस्व विमुक्त कवचध्वजः ॥ २५ ॥ विश्रान्तश्च विनिद्रश्च स्वस्थचित्तश्च मानद । समेत्य समरे शत्रून् वधिष्यसि न संशयः ॥ २६ ॥ कृपेण सहितं यान्तं गुप्तं च कृतवर्मणा । को द्रौणिं युधि संरब्धं योधयेदपि देवराट् ॥२७॥ ते वयं निशि विश्रान्ता विनिद्रा विगतज्वराः । प्रभातायां रजन्यां वै निहनिष्याम शात्रवान् ॥ २८ ॥ न वधः पूज्यते लोके सुप्तानामिह धर्मतः । तथैवापास्तशस्त्राणां विमुक्तरथवाजिनां ॥२९॥ अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विमुक्त कवचा विभो । विश्वस्ता रजनीं सर्वे प्रेता इव विचेतसः ॥ ३० ॥ यस्तेषां तदवस्थानां द्रुह्येत पुरुषोऽनृजुः । व्यक्तं स नरके मज्जेदगाधे विपुलेऽप्लवे ॥३१॥ सर्वास्त्रविदुषां लोके श्रेष्ठस्त्वमसि विश्रुतः । न च ते जातु लोकेस्मिन् सुसूक्ष्ममपि किल्बिषं ॥ ३२ ॥ त्वं पुनः सूर्यसंकाशः श्वो भूत उदिते रवौ । प्रकाशे सर्वभूतानां विजेता युधि शात्रवान् ॥ ३३ ॥

असंभावितरूपं हि त्वयि कर्म विगर्हितं। शुक्ले रक्तमिवन्यस्तं भवेदिति मतिर्मम ॥ ३४ ॥ अश्वत्थामोवाच-एवमेव यथात्थ त्वं मातुलेह न संशयः। तैस्तु पूर्वमयं सेतुः शतधा विदलीकृतः ॥ ३५ ॥ प्रत्यक्षं भूमिपालानां भवतां चापि सन्निधौ। न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः ॥ ३६ ॥ दुर्योधनश्च भीमेन समेत्य गदया रणे। पश्यतां भूमिपालानामधर्मेण निपातितः ॥ ३७ ॥ एवं वा धर्मिकाः पापा पांचाला भिन्नसेतवः। तानेवं भिन्नमर्यादान् किं भवान्न विगर्हति ॥ ३८ ॥ पितृ हन्तॄनहं हत्वा पांचालान्निशि सौप्तिके। कामं कीटः पतंगो वा जन्म प्राप्य भवामि वै॥ ३९ ॥ एवमुक्त्वा महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान्। एकान्ते योजयित्वाश्वान् प्रायादभिमुखः परान् ॥ ४० ॥ तमब्रूतां महात्मानौ भोजशारद्वतावुभौ। किमर्थं स्यन्दनो युक्तः किञ्च कार्यं चिकीर्षितं ॥ ४१ ॥ एकसार्थं प्रयातौ स्वस्त्वया सह नरर्षभ। समदुःख सुखौ चापि नावां शंकितु मर्हसि ॥ ४२ ॥ अश्वत्थामोवाच-न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः। तं तथैव हनिष्यामि न्यस्त वर्माणमद्य वै ॥४३॥ इत्युक्त्वा रथमास्थाय प्रायादभिमुखः परान्। तमन्वगाव कृपो राजन् कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ४४ ॥

अर्थ--कृप बोले-भाग्य से बदला लेने में तेरी मति उत्पन्न हुई है,साक्षात इन्द्र भी तुझे रोक नहीं सकता है ॥ २४ ॥ सवेरे हम दोनों तेरे साथ चलेंगे, आज रात कवच और ध्वजा उतार कर विश्राम कर ॥ २५ ॥ आराम ले कर नींद भर सो कर स्वस्थचित्त हो हमारे साथ चल कर शत्रुओं को अवश्य मारोगे इस में संदेह नहीं ॥ २६ ॥ भला जब तुम मेरे साथ मिल कर चढ़ाई करो, कृतवर्मा तुम्हारे रक्षक हों, और तुम क्रोध से भरे हो, तो कौन

तुम्हारे साथ युद्ध कर सकता है, चाहे इन्द्र भी हो ॥ २७॥ सो हम विश्राम ले कर सो कर रात के प्रभात होने पर शत्रुओं को मारेंगे ॥ २८ ॥ सोए हुए शस्त्र उतारे हुए रथ और घोड़ों को छोड़े हुओं का वध धर्मानुसार प्रशंसा नहीं किया जाता है ॥२९॥ आज पंचाल शस्त्र उतार कर मरे हुओं की भांति विश्वस्त हो कर सोए होंगे ॥ ३० ॥ ऐसी अवस्था में जो पुरुष कुटिलता कर के उन से द्रोह करे, निःसंदेह वह विशाल नरक में डूबेगा ॥ ३१ ॥ सारे अस्त्रवेत्ताओं में तुम श्रेष्ठ विख्यात हो, इस लोक में तुम्हारा तनिक भी दोष प्रसिद्ध नहीं है ॥ ३२ ॥ तुम सूर्य तुल्य विख्यात हो, कल सूर्य के उदय होने पर सब के सामने जा कर शत्रुओं को जीतना ॥ ३३ ॥ निन्दित कर्म तुम्हारे अन्दर असंभावित है, शुक्ल वस्त्र पर लहू की भांति प्रतीत होगा, यह मेरा निश्चय है ॥३४॥ अश्वत्थामा बोले—हे मामा जी जैसे तुम कहते हो, ठीक ऐसे ही है, पर उन्हों ने ही पहले यह मर्यादा तोड़ी है ॥ ३५॥ सब राजाओं के सामने और आप के भी सामने शस्त्र छोड़े हुए मेरे पिता को धृष्टद्युम्न ने गिराया ॥ ३६ ॥ भीमने रण में दुर्योधन को सब राजाओं के सामने अधर्म से गिराया ॥ ३७ ॥ इस प्रकार अधर्मी पंचालों ने मर्यादा को तोड़ा है, ऐसी मर्यादा तोड़ने वालों की आप क्यों निन्दा नहीं करते हैं ॥३८॥ पिता के मारने वालों को सोए हुओं को भी अवश्य मारूंगा, चाहे मुझे कीड़े और पतंगे का जन्म ही मिले ॥३९॥ यह कह कर हे महाराज प्रतापी द्रोणपुत्र एकान्त में घोड़े जोड़ कर शत्रुओं के अभिमुख गया ॥ ४० ॥ तब उस से कृप और कृतवर्मा बोले, किस लिए रथ तय्यार किया है, क्या करने लगे हो ॥ ४१ ॥ हे नरवर हम तेरे

साथ चलेंगे, हम दोनों तेरे सुख दुःख में साथी हैं, हमारे ऊपर कोई शंका न कर ॥ ४२ ॥ अश्वत्थामा बोले--शस्त्र छोड़ चुके हुए मेरे पिता को धृष्टद्युम्न ने मारा है, उस पापी को आज उसी दशा में मारूंगा ॥ ४३ ॥ यह कह कर रथ पर चढ़ कर वह शत्रुओं की ओर गया, हे राजन् कृप और कृतवर्मा उस के पीछे गए ॥ ४४ ॥

अ० ३ (व० ८-९) रात्रियुद्ध और धृष्टद्युम्न आदि का वध

मूल--तस्मिन् प्रयाते शिबिरं द्रोणपुत्रे महात्मनि । कृपश्च कृतवर्मा च शिबिरद्वार्य तिष्ठतां ॥ १ ॥ अश्वत्थामा तु तौ दृष्ट्वा यत्नवन्तौ महारथौ । प्रहृष्टः शनकैराजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ अहं प्रवेक्ष्ये शिबिरं चरिष्यामि च कालवत् ॥ ३ ॥ यथा न कश्चिदपि वां जीवन्मुच्येत मानवः। तथा भवद्भ्यां कार्यं स्यादिति मे निश्चिता मतिः ॥ ४ ॥ इत्युक्त्वा प्राविशद् द्रौणिः पार्थानां शिबिरं महत् । अद्वारेणाभ्यवस्कन्द्य विहाय भयमात्मनः ॥ ५ ॥ स प्रविश्य महाबाहुरुद्देशज्ञश्च तस्य ह । धृष्टद्युम्नस्य निलयं शनकैरभ्युपागमत् ॥ ६ ॥ अथ प्रविश्य तद्वेश्म धृष्टद्युम्नस्य भारत । पाञ्चाल्यं शयने द्रौणिरपश्यत्सुप्तमन्तिकात् ॥ ७ ॥ क्षौमावदाते महति स्पर्ध्यास्तरणसंवृते । माल्यप्रवरसंयुक्ते धूपैश्चूर्णैश्च वासिते ॥ ८ ॥ तं शयानं महात्मानं विस्रब्धमकुतोभयं । प्राबोधयत पादेन शयनस्थं महीपते ॥ ९ ॥ संबुध्य चरणस्पर्शादुत्थाय रण दुर्मदः । अभ्यजानाद मेयात्मा द्रोणपुत्रं महारथं ॥ १० ॥ तमुत्पतन्तं शयनादश्वत्थामा महाबलः । केशेष्वालभ्य पाणिभ्यां निष्पिपेष महीतले ॥ ११ ॥ सबलं तेन निष्पिष्टः साध्वसेन च

भारत । निद्रयाचैव पाञ्चाल्यो नाशकच्चेष्टितुं तदा ॥ १२ ॥ तमाक्रम्य पदा राजन् कंठे चोरसि चोभयोः । नदन्तं विस्फुरन्तं च पशुमारममारयत् ॥ १३ ॥ धृष्टद्युम्नं च हत्वा स तांश्चैवास्य पदानुगान् । अपश्यच्छयने सुप्तमुत्तमौजसमन्तिके ॥ १४ ॥ तमप्याक्रम्य पादेन कण्ठे चोरसि तेजसा । तथैव मारयामास विनर्दन्तमरिन्दमं ॥ १५ ॥ युधामन्युश्च संप्राप्ते हृदि द्रौणि मताडयत् । तमभिद्रुत्य जग्राह क्षितौ चैन मपातयत् ॥ १७ ॥ विस्फुरन्तं च पशुवत्तथैवैन ममारयत ॥ १७ ॥

अर्थ—जब महात्मा द्रोणपुत्र (पांचालों के) शिविर में पहुंचे, तो कृप और कृतवर्मा शिविर द्वार पर खड़े हो गए ॥ १ ॥ अश्वत्थामा उन दोनों को सावधानता से द्वार पर खड़े देख कर प्रसन्न हो धीरे से यह वचन बोले ॥ २ ॥ मैं शिविर में प्रवेश कर के काल के समान घूमूंगा ॥ ३ ॥ अब आप दोनों ने ऐसा यत्न करना, कि कोई भागा हुआ पुरुष आप से बच कर बाहर न निकल जाए, यह मेरी निश्चित मति है ॥ ४ ॥ यह कह कर अश्वत्थामा भय त्याग बिना द्वार से प्रविष्ट हो पाण्डवों के बड़े शिविर में घुसे ॥ ५ ॥ अन्दर घुस कर धृष्टद्युम्न के डेरे का जानने वाला वह महाबाहु धीरे से धृष्टद्युम्न के डेरे पर पहुंचा ॥ ६ ॥ तब हे भारत धृष्टद्युम्न के मन्दिर में प्रवेश कर के निकट ही धृष्टद्युम्न को ऐसी शय्या पर लेटे पाया, जिस पर अलसी का बिछोना उस पर बहुमूल्य चादर बिछी थी, सुन्दर मालाएं लटक रही थीं सुगन्धित धूप और चूर्ण से वासित हो रहा था ॥ ७–८ ॥ उस शय्या पर विश्वस्त हो निर्भय सोए हुए को अश्वत्थामा ने लात मार कर जगाया ॥ ९ ॥ लात के लगने से रणदुर्मद धृष्टद्युम्न

जागा, और उठ कर महारथ द्रोणपुत्र को सामने खड़े देखा॥१०॥ शयन से उस के उठते २ ही महाबली अश्वत्थामा ने उस को बालों से पकड़ कर पृथिवी पर गिरा दिया ॥ ११ ॥ अश्वत्थामा ने उस को बलपूर्वक पीस डाला, वह वीर निद्रा से दबाया कुछ कर न सका ॥ १२ ॥ अश्वत्थामा ने उस के गले और छाती पर पैर रख कर गर्जते फुंकारते को पशु की मार मार डाला ॥१३॥ धृ[illegible] और उस का साथ देने वालों को मार कर उसने निकट ही उत्तमौजा को शय्या पर सोए देखा ॥ १४ ॥ उस के भी एक पाओं गले और एक छाती पर रख कर गर्जते हुए को वैसे ही मार डाला ॥ १५ ॥ (शब्द सुन) युधामन्यु दौड़ा आया, और उस ने अश्वत्थामा की छाती पर प्रहार किया उस को भी दौड़ कर अश्वत्थामा ने पकड़ कर पृथिवी पर गिरा लिया॥१६॥ और फुंकारते को उसी तरह पशुवत मार डाला ॥ १७ ॥

मूल—तथा स वीरो हत्वा तं ततोऽन्यान् समुपाद्रवत् । संसुप्तानेव राजेन्द्र तत्र तत्र महारथान् ॥ १८ ॥ ततो निस्त्रिंशमादाय जघानाऽन्यान् पृथक् पृथक् । भागशोविचरन्मार्गानसियुद्ध विशारदः ॥ १९ ॥ तस्य लोहितरक्तस्य दीप्तखड्गस्य युध्यतः । अमानुष इवाकारो बभौ परमभीषणः ॥ २० ॥ स घोररूपो व्यचरत्कालवच्छिबिरे ततः । अपश्यद् द्रौपदी पुत्रानवशिष्टांश्च सोमकान् ॥ २१ ॥ तेन शब्देन वित्रस्ता धनुर्हस्ता महारथाः । धृष्टद्युम्नं हतं श्रुत्वा द्रौपदेया विशांपते ॥ २२ ॥ अवाकिरन् शरव्रातैर्भारद्वाज मभीतवत् ॥ २३ ॥ ततस्तेन निनादेन संप्रबुद्धाः प्रभद्रकाः । शिलीमुखैः शिखण्डी च द्रोणपुत्रं समार्दयन् ॥ २४ ॥ भारद्वाजः सतान् दृष्ट्वा शरवर्षाणि वर्षतः । द्रौपदेयानभिद्रुत्य स-

ड्गेन व्यधमद्बली ॥ २५ ॥ शिखण्डिनं समासाद्य द्विधा चिच्छेद सोऽसिना । प्रभद्रक गणान् सर्वानभिदुद्राव वेगवान् ॥२६॥ द्रुपदस्य च पुत्राणां पौत्राणां सुहृदामपि । चकार कदनं घोरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा महाबलः ॥ २७ ॥ क्रोशतां किमिदं कोयं कः शब्दः किं नु किं कृतं । एवं तेषां तथा द्रौणिरन्तकः समपद्यत ॥ २८ ॥ उत्पेतुस्तेन शब्देन योधा राजन् विचेतसः । निद्रार्ताश्च भयार्ताश्च व्यधावन्त ततस्ततः ॥ २९ ॥ विचेतसः सनिद्राश्च तमसा चावृता नराः । जघ्नुः स्वानेव तानथ कालेनैव प्रचोदिताः ॥ ३० ॥ त्यक्त्वाद्वाराणि च द्वाःस्थास्तथा गुल्मानि गौल्मिकाः । प्राद्रवन्त यथाशक्ति कांदिशीका विचेतसः ॥ ३१ ॥ तत्रापरे बध्यमाना मुहुर्मुहुर चेतसः । शिविरान्निष्पतन्तिस्म क्षत्रिया भयपीडिताः॥३२॥ तांस्तु निष्पातितांस्त्रस्तान् शिबिराज्जीवितैषिणः । कृतवर्मा कृपश्चैव द्वारदेशे निजघ्नतुः ॥ ३३ ॥ प्रत्यूषकाले शिबिरात् प्रतिगन्तु मियेषसः ॥ ३४ ॥नृशोणितावसिक्तस्य द्रौणेरासीदसित्सरुः। पाणिना सह संश्लिष्ट एकीभूत इव प्रभो ॥ ३५ ॥ यथा प्रतिज्ञं तत्कर्म कृत्वा द्रौणायनिः प्रभो । दुर्गमां पदवीं गच्छन् पितुरासीद्गतज्वरः ॥ ३६ ॥ यथैव संसुप्तजने शिबिरे प्राविशन्निशि । तथैव हत्वा निःशब्दे निश्चक्राम नरर्षभः ॥ ३७ ॥ निष्क्रम्य शिबिरात्तस्मात्ताभ्यां संगम्य वीर्यवान् । आचख्यौ कर्म तत्सर्वं हृष्टः संहर्षयन् विभो ॥ ३८ ॥ तावथाचख्यतुस्तस्मै प्रियं प्रियकरौ तदा ॥ ३९ ॥ एवं विधाहि सा रात्रिः सोमकानां जनक्षये। प्रसुप्तानां प्रमत्तानामासीत्सुभृश दारुणा ॥ ४० ॥ असंशयं हि कालस्य पर्यायो दुरतिक्रमः । तादृशा निहता यत्र कृत्वास्माकं जनक्षयं ॥ ४१ ॥ असान्निध्याद्धि पार्थानां केशवस्य च धीमतः ।

मासकेश्चापि कर्मेदं द्रोणपुत्रेण साधितं ॥ ४२ ॥ एतदीदृशकं वृत्तं राजन् सुप्तजने विभो ॥ ४३ ॥

अर्थ—इस प्रकार वह वीर उन को मार कर, अनन्तर वहां २ सोए हुए ही दूसरे महारथियों के डेरों की ओर दौड़ा ॥१८॥ और तलवार के धनी ने तलवार उठा कर तलवार के मार्गों से उन को अलग २ मार गिराया ॥ १९ ॥ लहू से रंगे हुए चमकती तलवार वाले का आकार राक्षस के समान बड़ा भयावना हो रहा था ॥ २० ॥ काल के समान घोररूप धार कर विचरते हुए उस ने द्रौपदी के पुत्रों और शेष बचे सोमकों को देखा॥२१॥ उधर द्रौपदी के पुत्र भी शोर सुन कर भयभीत हुए उठे और धृष्टद्युम्न का मारा जाना सुन कर हाथ में धनुष लिये निर्भय हो अश्वत्थामा पर बाण बरसाने लगे ॥ २२–२३ ॥ उधर शोर सुन कर जागे प्रभद्रक और शिखण्डी अश्वत्थामा पर बाण बरसाने लगे ॥ २४ ॥ द्रौपदी के पुत्रों को बाणों की वर्षा करते देख बली अश्वत्थामा ने दौड़ कर उन को तलवार से काट गिराया ॥ २५ ॥ शिखण्डी को भी दो टुकड़े किया, और फिर प्रभद्रकों की ओर दौड़ा ॥ २६ ॥ उस महाबली ने द्रुपद के पुत्रों पोतों और सुहृदों का ढूंढ २ कर नाश किया ॥ २७ ॥ जो कि उठ २ कर यह कह ही रहे थे, यह क्या हुआ, कैसा शोर है, कौन आ गया, उसने क्या किया, इस प्रकार अश्वत्थामा उन सब का काल बना ॥ २८ ॥ हे राजन् ! उस शब्द से उठे सैनिक निद्रा और भय से पीड़ित हुए घबरा कर इधर उधर भागने लगे ॥ २९ ॥ घबराए हुए, निद्रा से व्याकुल और अन्धकार से आच्छादित हुए काल से प्रेरे हुए वे अपनों को ही मारने लगे ॥ ३० ॥ द्वारपाल

द्वारों को छोड़ कर और गुल्मों में रहने वाले गुल्मों को छोड़ कर यथाशक्ति इधर उधर दौड़ने लगे ॥ ३१ ॥ वहां कई क्षत्रिय मार खाते बार २ घबराए हुए भय से पीड़ित हुए शिबिर से भागने लगे ॥ ३२ ॥ जीने के इच्छा से शिबिर से निकलने वालों को द्वार देश पर कृतवर्मा और कृपाचार्य मारते थे॥३३॥ प्रभात के समय उस ने शिबिर से निकल जाने का निश्चय किया ॥ ३४ ॥ उस समय मनुष्यों के लहू से भीगे हुए अश्वत्थामा की तलवार की मूठ हाथ से जुड़ कर एक हो रही थी ॥३५॥प्रतिज्ञानुसार अश्वत्थामा इस कर्म को कर के पिता के पीछे मरने के लिये शोक से हीन हो गया ॥ ३६ ॥ जैसे वह रात को लोगों के सोते हुए ही डेरों में प्रविष्ट हुआ था, वैसे ही चुपचाप उन को मार कर निकल गया ॥ ३७ ॥ शिबिर से निकल कर उन दोनों से आ मिला, और प्रसन्न हो कर उन को प्रसन्न करते हुए वह सारा काम कह सुनाया ॥ ३८ ॥ उन्हों ने भी उसे वह प्रिय सुनाया, जो उन्हों ने किया था ॥३९ ॥ इस प्रकार सोए और प्रमत्त हुए सोमकों को वह रात बड़ी दारुण आई ॥४० ॥ निःसंदेह काल की बारी को कोई नहीं टाल सकता, जब कि ऐसे वीर हमारी सेना का नाश कर के भी मारे गए ॥ ४१ ॥ अश्वत्थामा ने पाण्डव कृष्ण और सात्यकि के पास न होने के समय यह कार्य सिद्ध किया ॥ ४२ ॥ यह इस प्रकार की घटना है राजन् लोगों के सोते हुए हुई ॥ ४३ ॥

मूल—ते हत्वा सर्वपञ्चालान् द्रौपदेयांश्च सर्वशः । आगच्छन् सहितास्तत्र यत्र दुर्योधनो हतः ॥ ४४ ॥ गत्वा चैनमपश्यन्त किंचित्प्राणं जनाधिपं । ततो रथेभ्यः प्रस्कन्द्य परिवव्रुस्तवा-

त्मजं ॥ ४५ ॥ अश्वत्थामोवाच--दुर्योधन जीवसि त्वं वाक्यं श्रोत्र सुखं शृणु । सप्तपाण्डवतः शेषा धार्तराष्ट्रास्त्रयो वयं ॥ ४६ ॥ ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोऽथ सात्यकिः । अहं च कृतवर्मा च कृपः शारद्वतस्तथा॥ ४७ ॥ द्रौपदेया हताः सर्वे धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः । पञ्चाला निहताः सर्वे मत्स्य शेषं च भारत ॥४८॥ कृते प्रतिकृतं पश्य हतपुत्रा हि पाण्डवाः । सौप्तिके शिबिरं तेषां हतं सनरवाहनं ॥ ४९ ॥ मया च पाप कर्मासौ धृष्टद्युम्नो महीपते । प्रविश्य शिबिरं रात्रौ पशुमारेण मारितः ॥ ५० ॥ दुर्योधनस्तु तां वाचं निशम्य मनसः प्रियां । प्रतिलभ्य पुनश्चेत इदं वचन मब्रवीत् ॥ ५१ ॥ न मेऽकरोत्तद् गांगेयो न कर्णो न च ते पिता । तत्त्वया कृपभोजाभ्यां सहितेनाद्य मे कृतं ॥ ५२ ॥ स च सेनापतिः क्षुद्रो हतः सार्धं शिखण्डिना । तेन मन्ये मघवता सममात्मान मद्यवै ॥ ५३ ॥ स्वस्ति प्राप्नुत भद्रं वः स्वर्गे नः संगमः पुनः । इत्येवमुक्त्वा तूर्ष्णीं स कुरुराजो महामनाः ॥ ५४ ॥ प्राणानुपासृजद्वीरः सुहृदां दुःखमुत्सृजन् । अपाक्रमद्दिवं पुण्यां शरीरं क्षिति माविशत् ॥ ५५ ॥ इति श्रुत्वा स नृपतिः पुत्रस्य निधनं तदा। निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च ततश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—अब वे तीनों वीर पञ्चालों और द्रौपदी के पुत्रों को मार कर मिल कर वहां गए, जहां राजा दुर्योधन पड़े थे॥४६॥ जा कर राजा को मरने के निकट देखा, वे रथों से उतर कर उस के चारों ओर बैठ गए ॥ ४५ ॥ अश्वत्थामा बोले--महाराज दुर्योधन तुम जीते हो, कानों को सुखदायक वचन सुनो, पाण्डवों के सात शेष रहे हैं और तुम्हारे हम तीनों॥४६॥इधर वे पांचों भाई, कृष्ण और सात्यकि । इधर मैं कृतवर्मा और कृपाचार्य ॥ ४७ ॥

द्रौपदी के और धृष्टद्युम्न के सारे पुत्र मारे गए हैं, सारे पञ्चाल और मत्स्यों के बचे राजपुत्र मार दिये हैं ॥ ४८ ॥ अदले का बदला देख लो. पाण्डवों के पुत्र मारे गए, सोते हुओं का शिबिर नर और वाहनों समेत मार डाला है ॥ ४९ ॥ हे महाराज शिबिर में प्रवेश कर के उस पापी धृष्टद्युम्न को मैंने पशु के समान मारा है ॥ ५० ॥ दुर्योधन मन की प्यारी इस बात को सुन कर चैतन्य हो कर बोले ॥ ५१ ॥ जो काम भीष्म, तुम्हारे पिता और कर्ण ने नहीं किया था, वह मेरा काम आज तुमने कृप और कृतवर्मा के साथ मिल कर कर दिखलाया है ॥ ५२ ॥ वह क्षुद्र सेनापति शिखण्डी समेत मारा गया, इस से मैं आज अपने को इन्द्र के समान मानता हूं ॥ ५३ ॥ आप का कल्याण हो, अब फिर हमारा समागम स्वर्ग में होगा, यह कह कर मनस्वी कुरुराज ने शान्ति के साथ प्राण छोड़े, और साथियों को अपने वियोग का दुःख दे गए, वे पुण्य द्यौ को चले गए, शरीर पृथिवी पर पड़ा रहा ॥ ५४--५५ ॥ पुत्र की मृत्यु को सुन कर धृतराष्ट्र लंबा गर्म श्वास भर कर चिन्ता में डूब गए ॥ ५६ ॥

अ० ४ (व० १०-११) पाण्डवों का शोक

मूल---तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां धृष्टद्युम्नस्य सारथिः । शशंस धर्मराजाय सौप्तिके कदनं कृतं ॥ १ ॥ द्रौपदेया हता राजन् द्रुपदस्यात्मजैः सह । प्रमत्ता निशिविश्वस्ताः स्वपन्तः शिबिरे स्वके ॥ २ ॥ कृतवर्मणा नृशंसेन गौतमेन कृपेण च । अश्वत्थाम्ना च पापेन हतं वः शिबिरं निशि ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वा वाक्य माशिवं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । पपात मह्यां दुर्धर्षः पुत्रशोक सम-

ज्वितः ॥ ४ ॥ पतन्तं तमतिक्रम्य परिजग्राह सात्यकिः । भीमसेनोऽर्जुनश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ५ ॥ लब्धचेतास्तु कौन्तेयः शोकविह्वलया गिरा । जित्वा शत्रून् जितः पश्चात्पर्यदेवदार्तवत् ॥ ६ ॥ दुर्विदा गतिरर्थानामपि ये दिव्यचक्षुषः । जीयमाना जयन्त्यन्ये जयमाना वयं जिताः ॥ ७ ॥ हत्वा भ्रातॄन्वयस्यांश्च पितॄन् पुत्रान् सुहृद्गणान् । बन्धूनमात्यान् पौत्रांश्च जित्वा सर्वान् जिता वयं॥ ८ ॥ क्रुद्धस्य नरसिंहस्य संग्रामेष्वपलायिनः । ये व्यमुच्यन्त कर्णस्य प्रमादात्त इमे हताः ॥ ९ ॥ न हि प्रमादात्परमस्ति कश्चिद्वधो नराणामिह जीवलोके । प्रमत्तमर्था हि नरं समन्तात् त्यजन्त्यनर्थाश्च समाविशन्ति ॥ १० ॥ नहि प्रमत्तेन नरेण शक्यं विद्यातपः श्रीर्विपुलं यशो वा । तीर्त्वा समुद्रं वणिजः समृद्धा मग्ना कुनद्यामिव हेलमानाः ॥ ११ ॥ कृष्णां तु शोचामि कथं नु साध्वी शोकार्णवं साद्य विनशत भीता । ध्रुवं विसंज्ञा पतिता पृथिव्यां सा शोष्यते शोककृशांगयष्टिः ॥ १२ ॥ तच्छोकजं दुःखमपारयन्ती कथं भविष्यत्युचिता सुखानां । पुत्रक्षय भ्रातृवध प्रणुन्ना प्रदह्यमानेन हुताशनेन ॥ १३ ॥ इत्येवमार्तः परिदेवयन् स राजा कुरूणां नकुलं बभाषे । गच्छानयैनामिह मन्दभाग्यां स मातृपक्षामिति राजपुत्रीं ॥ १४ ॥ माद्रीसुतस्तत्परिगृह्य वाक्यं धर्मेण धर्मप्रतिमस्य राज्ञः । ययौ रथेनालयमाशु देव्याः पञ्चालराजस्य च यत्र दाराः ॥ १५ ॥ प्रस्थाप्य माद्रीसुत माजमीढः शोकार्दितस्तैः सहितः सुहृद्भिः । रोरूयमाणः प्रययौ सुतानामायोधनं भूतगणानुकीर्णं ॥ १६ ॥

अर्थ—रात के प्रभात होने पर धृष्टद्युम्न के सारथि ने रात के समय का विनाश युधिष्ठिर को आ बतलाया ॥ १ ॥(सारथि

बोला) हे राजन! द्रुपद के पुत्रों सहित द्रौपदी के पुत्र मारे गए, वह रात को विश्राम पूर्वक बेपरवाह हो अपने शिबिर में सो रहे थे॥ २ ॥ इसी समय क्रूर कृतवर्मा कृप और पापी अश्वत्थामा ने आ कर आप के शिबिर का नाश किया॥ ३ ॥ इस अभद्र वचन को सुन कर दुर्धर्ष राजा युधिष्ठिर पुत्र शोक से व्याकुल हो भूमि पर गिर पड़े॥ ४ ॥ उन को गिरते देख दौड़ कर सात्यकि भीम अर्जुन और नकुल सहदेव ने पकड़ लिया॥ ५ ॥ शत्रुओं को जीत कर भी जीता गया राजा शोक व्याकुल बाणी से बिलाप करने लगा॥ ६ ॥ कार्यों की गति को दिव्य दृष्टि वाले भी नहीं जान सकते, कई हारे हुए जय पा लेते हैं, हम जीते हुए फिर हार गए॥ ७ ॥ भाई, मित्र, पितर, पुत्र, सुहृद्, बन्धु मन्त्री और पोतों को मार कर जीत कर भी हम फिर हार गए॥ ८ ॥ संग्रामों में पीछे न हटने वाले जो हमारे साथी क्रुद्ध हुए नरसिंह कर्ण से बच रहे थे, वे देखो प्रमाद से मारे गये॥ ९ ॥ देखो जगत में प्रमाद के तुल्य मनुष्यों का और कोई वध नहीं है, प्रमत्त पुरुष के बने काम बिगड़ जाते हैं और अनर्थ आ घेरते हैं॥ १० ॥ प्रमत्त पुरुष विद्या तप यज्ञ और लक्ष्मी को नहीं पा सकता, देखो ये व्यापार में समृद्ध हो कर लौटे बाणियें समुद्र को पार कर जैसे छोटी सी नदी में बेपरवाही से डूब जाएं वैसे डूबे हैं॥ ११ ॥ मुझे द्रौपदी का बड़ा शोक है, वह पतिव्रता कैसे आज शोक समुद्र में डूबेगी। निःसंदेह वह अचेत हो कर पृथिवी पर गिर पड़ेगी, शोक से उस का शरीर सूख जाएगा॥ १२ ॥ सुखों में पली द्रौपदी अब इस शोकज दुःख का पार न पाती हुई भाइयों और पुत्रों के बध से

व्याकुल हुई शोक की आग में जलेगी ॥ १३ ॥ इस प्रकार आर्तविलाप करते हुए कुरुराज नकुल से बोले, जाओ, उस मन्द-भाग्या को अपनी मातृपक्ष की स्त्रियों के साथ ले आओ॥१४॥ माद्रीपुत्र धर्मराज के वाक्य को धर्ममर्यादा से स्वीकार कर के रथ पर चढ़ कर शीघ्र वहां गए, जहां द्रौपदी थी और पञ्चाल-राज की पत्नियें थीं ॥१५॥ नकुल को भेज कर शोक से पीड़ित युधिष्ठिर अपने सुहृदों सहित पुत्रों के रणस्थल को गए॥ १६॥

मूल–स दृष्ट्वा निहतान् संख्ये पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा। महादुःख परीतात्मा बभूव जनमेजय ॥ १७ ॥ ततस्तस्मिन् क्षणे कल्पो रथेनादित्यवर्चसा । नकुलः कृष्णया सार्धं मुपायातपरमार्तया ॥ १८ ॥ उपप्लव्यं गता सा तु श्रुत्वा सुमहदप्रियं । कृष्णा राजानमासाद्य शोकार्ता न्यपतद्भुवि ॥ १९ ॥ बभूव वदनं तस्याः सहसा शोक कर्शितं । फुल्लपद्म पलाशाक्ष्यास्तमोग्रस्त इवांशुमान् ॥ २० ॥ सा समाश्वासिता तेन भीमसेनेन भामिनी । रुदती पाण्डव ज्येष्ठ मिदं वचनमब्रवीत ॥ २१ ॥ प्रसुप्तानां वधं श्रुत्वा द्रौणिना पापकर्मणा । शोकस्तपति मां पार्थ हुताशन इवाश्रयं॥२२॥ तस्य पापकृतो द्रौणेर्नचेदद्य त्वया रणे । ह्रियते सानुबन्धस्य युधि विक्रम्य जीवितं ॥ २३ ॥ इहैव प्रायमासिष्ये तन्निबोधत पाण्डवाः । न चेत्फलमवाप्नोति द्रौणिः पापस्य कर्मणः ॥२४॥ द्रोणपुत्रस्य सहजोमणिः शिरसि मेश्रुतः । निहत्य संख्ये तं पापं पश्येयं मणिमाहृतं ॥ २५ ॥ राजन् शिरसि ते कृत्वा जीवेयमिति मेमतिः। इत्युक्त्वा पाण्डवं कृष्णा भीमसेन मथाब्रवीत् ॥ २६ ॥ त्रातुमर्हसि मां भीम क्षत्रधर्म मनुस्मरन् । जहि तं पापकर्माणं शम्बरं मघवानिव ॥ २७ ॥ तस्या बहुविधं दुःखं निशम्य परिदेवितं । न

चामर्षत कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः ॥ २८ ॥ स काञ्चन वि-
चित्रांगमारुरोह महारथं । नकुलं सारथिं कृत्वा द्रोणपुत्रवधे धृतः
॥ २९ ॥ विस्फार्य सशरं चापं तूर्ण मश्वान चोदयत । शिबिरा-
त्स्वाद् गृहीत्वा स रथस्य पदमच्युतः ॥ ३० ॥

अर्थ--हे जनमेजय रण में अपने पुत्र पोतों और मित्रों को
मरा हुआ देख कर राजा महा दुःख में डूब गये ॥ १७ ॥ उसी
समय वीर नकुल सूर्य तुल्य चमकते हुए रथ से अत्यन्त पीड़ित
हुई द्रौपदी के साथ आ पहुंचा ॥ १८ ॥ द्रौपदी उपप्लव्य नगर
में थी, वह इस बड़े अप्रिय को सुन कर राजा के निकट आकर
शोक में पीड़ित हुई भूमि पर गिर पड़ी ॥१९॥ उस समय फूले
कमल दल के समान नेत्र वाली द्रौपदी का शोक से व्याकुल
मुख ऐसा हो गया, जैसे राहु से ग्रसा हुआ चन्द्रमा ॥ २० ॥
भीमसेन के आश्वासन देने पर वह रोती हुई युधिष्ठिर से यों
बोली ॥ २१ ॥ पापी अश्वत्थामा द्वारा सोए हुओं का मारा जाना
सुन कर मुझे शोक ऐसे तपा रहा है, जैसे अग्नि अपने आधार
को ॥ २२ ॥ उस पापी अश्वत्थामा को यदि युद्ध में पराक्रम
दिखला कर आप नहीं मारेंगे ॥ २३ ॥ यदि अश्वत्थामा अपने
पाप कर्म का फल नहीं पाता है, तो मैं यहीं खाना पीना छोड़
कर मरजाऊंगी ॥ २४ ॥ द्रोणपुत्र के सिर पर मणि है, उस पापी
को मार कर वह मणि ला कर मुझे दिखलाओ ॥ २५ ॥ उस
मणि को हे राजन् आप के सिर पर पहना कर जिऊंगी, यह
मेरा निश्चय है, युधिष्ठिर को यह कह कर फिर भीमसेन से बोली
॥ २६ ॥ हे भीम क्षत्रधर्म पर दृष्टि दे कर मेरी रक्षा करने योग्य
हो, उस पापी को मारो, जैसे इन्द्र ने शम्बर को मारा था॥२७॥

उस के दुःखजनक बहु विध विलाप को सुन कर महाबली भीमसेन क्रोध से भर गया ॥ २८ ॥ वह अश्वत्थामा के मारने का निश्चय करके सुनहरी विचित्र अंगों वाले महारथ पर चढ़ा, नकुल उस का सारथि बना ॥ २९ ॥ शिबिर से अश्वत्थामा के रथ का खोज पकड़ कर उसने धनुष बाण को घुमाते हुए जल्दी घोड़ों को हांका ॥ ३० ॥

अ० ५ (व० १३–) अश्वत्थामा से युद्ध

मूल—अथारोहद्धृषीकेशः केतुः सर्व धनुष्मतां । अर्जुनः सत्यकर्मा च कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ तावुपारोप्य दाशार्हः स्यन्दनं लोकपूजितं । प्रतोदेन जवोपेतान् परमश्वान चोदयत्॥२॥ ते समार्च्छन्नरव्याघ्राः क्षणेन भरतर्षभ । भीमसेनं महेष्वासं समनुद्रुत्यवेगिताः ॥ ३ ॥ ययौ भागीरथी तीरं हरिभिर्भृशवेगितैः । यत्र स्म श्रूयते द्रौणिः पुत्रहन्ता महात्मनां ॥ ४ ॥ स ददर्श महात्मान मुदकान्ते यशस्विनं । कृष्णद्वैपायनं व्यास मासीन मृषिभिः सह ॥ ५ ॥ तं चैव क्रूरकर्माणं घृताक्तं कुशचीरिणं । रजसाध्वस्त मासीनं ददर्श द्रौणि मन्तिके ॥ ६ ॥ तमभ्य धावत् कौन्तेयः प्रगृह्य सशरं धनुः । भीमसेनो महाबाहुस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ७ ॥ स दृष्ट्वा भीमधन्वानंप्रगृहीतशरासनं । भ्रातरौ पृष्ठतश्चास्य जनार्दन रथेस्थितौ ॥ ८ ॥ व्यथितात्माऽभवद् द्रौणिः प्राप्तं चेद ममन्यत ॥ ९ ॥ स तद्दिव्य मदीनात्मा परमास्त्र मचिन्तयत् । जग्राह स चैषीकां द्रौणिः सव्येन पाणिना ॥ १० ॥ ततस्तस्या मिषीकायां पावकः समजायत । प्रधक्ष्यन्निव लोकांस्त्रीन् कालान्तकयमोपमः ॥ ११ ॥ इंगितेनैव दाशार्हस्तमभि-

प्रायमादितः । द्रौणेर्बुध्वा महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ॥ १२ ॥अर्जुनार्जुन यद् दिव्यमस्त्रं ते हृदिवर्तते । द्रोणोपदिष्टं तस्यायं कालः संप्रति पाण्डव ॥ १३ ॥ भ्रातॄणा मात्मनश्चैव परित्राणाय भारत । विसृजैतत्त्वमप्याजावस्त्रं मस्त्रनिवारणं ॥ १४ ॥ ततस्तदस्त्रं महसः सृष्टं गांडीवधन्वना । प्रजज्वाल महार्चिष्मद् युगान्तानल सन्निभं ॥ १५ ॥ नारदः सर्व भूतात्मा भरतानां पितामहः । उभौ शमयितुं वीरौ भारद्वाज धनञ्जयौ॥ १६ ॥ दीप्तयोस्त्रयोर्मध्ये स्थितौ परमतेजसौ ॥ १७ ॥ दृष्ट्वैव नरशार्दूल तावग्निसमतेजसौ । संजहार शरं दिव्यं त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ १८ ॥

अर्थ—अब सब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ कृष्ण सत्यकर्मा अर्जुन और कुरुराज युधिष्ठिर रथ पर चढ़े ॥ १ ॥ दोनों को लोकपूजित रथ पर चढ़ा कर कृष्ण ने वेग वाले घोड़ों को प्रतोद से हांका ॥ २ ॥ वे तीनों नरवर वेग से पीछे दौड़ते हुए झट भीम से जा मिले ॥ ३ ॥ भीम भी वेग वाले घोड़ों से गंगा तट पर गए, जहां उन महात्माओं के पुत्रों का मारने वाला अश्वत्थामा सुना गया था ॥ ४ ॥ भीमने जल तट पर ऋषियों के साथ बैठे व्यास को देखा ॥ ५ ॥ और उन के निकट क्रूरकर्मा अश्वत्थामा को देखा, जो शरीर पर घी मले, कुशा के चीर पहने धूलि लगाए बैठा था ॥ ६ ॥ उस को देख कर महाबाहु भीमसेन धनुष बाण ले कर खड़ा रह खड़ा रह ललकारता हुआ उसकी ओर दौड़ा ॥ ७ ॥ उस ने जब भयंकर धनुष वाले भीमको धनुष बाण लिये और उस के पीछे कृष्ण के रथ पर आते दोनों भाइयों को देखा ॥ ८ ॥ तो अश्वत्थामा बहुत घबराया, और उस समय के उचित निश्चय किया ॥ ९ ॥ उस अदीन स्वभाव वाले

ने दिव्य अस्त्र का ध्यान कर के बाएं हाथ से इषीका उठाई॥१०॥ उस इषीका में ऐसा अग्नि प्रकट हुआ, कि मानों काल और यम बन कर सारे लोकों को दग्ध करने लगा है ॥ ११ ॥ उस के इंगित से कृष्ण उस के अभिप्राय को जान कर अर्जुन से बोले ॥ १२ ॥ अर्जुन ! द्रोण का सिखलाया तुम्हारे पास जो दिव्य अस्त्र है, हे पाण्डव यह उस का समय आया है ॥ १३ ॥हे भारत भाइयों की और अपनी रक्षा के लिए तुम भी रण में इस अस्त्र के हटाने वाले उस अस्त्र को छोड़ो ॥ १४ ॥ तब अर्जुन ने झट पट छोड़ा वह अस्त्र प्रलयाग्नि के समान बड़ी चिंगाड़ियों के सहित चमका ॥ १५ ॥ उसी समय सब मनुष्यों के हितैषी नारद और महर्षि व्यास, उन दोनों वीरों को शान्त करने के लिए, चमकते अस्त्रों के मध्य में जा खड़े हुए ॥ १६–१७ ॥ अग्नि समान उन दोनों परम तेजस्वियों को देखते ही अर्जुन ने शीघ्रता से उस दिव्य अस्त्र का संहार कर लिया ॥ १८ ॥

मूल—व्यास उवाच—अस्त्रमस्त्रेण तु रणे तव संशमयिष्यता । विसृष्टमर्जुनेनेदं पुनश्च प्रतिसंहृतं ॥ १९ ॥ पाण्डवास्त्वं च राष्ट्रं च सदा संरक्ष्यमेव हि । तस्मात्संहर दिव्यं त्वमस्त्र मेतन्महाभुज ॥ २० ॥ मणिंचैव प्रयच्छाद्य यस्ते शिरसि तिष्ठति । एतदादाय ते प्राणान् प्रतिदास्यन्ति पाण्डवाः ॥ २१ ॥ द्रौणिरुवाच—पाण्डवैर्यानि रत्नानि यच्चान्यत् कौरवैर्धृतं । अवाप्तमिह तेभ्योऽयं मणिर्मम विशिष्यते ॥ २२ ॥ न च वाक्यं भगवतो न करिष्ये महामुने ॥२३ ॥ प्रदायाथ मणिं द्रौणिः पाण्डवानां महात्मनां । जगाम विमनास्तेषां सर्वेषां पश्यतां वनं ॥ २४ ॥ पाण्डवाश्चापि गोविन्दं पुरस्कृत्य हतद्विषः । द्रौपदी मभ्यधावन्त प्रायो-

पेतां मनस्विनीं ॥ २५ ॥ अवतीर्य रथेभ्यस्तु त्वरमाणा महारथाः। ददृशुर्द्रौपदीं हृष्टा मार्तामार्ततराः स्वयं ॥ २६ ॥ ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातो भीमसेनो महाबलः । प्रददौ तं मणिं दिव्यं वचनं चेदमब्रवीत् ॥२७ ॥ अयं भद्रे तव मणिः पुत्रहन्ता जितः स ते। उत्तिष्ठ शोकमुत्सृज्य क्षात्रधर्म मनुस्मर ॥ २८ ॥ हतो दुर्योधनः पापो राज्यस्य परिपन्थकः। दुःशासनस्य रुधिरं पीतं विस्फुरतो मया॥२९॥ वैरस्य गतमानृण्यं न स्म वाच्याः विवक्षतां॥ ३० ॥ जित्वामुक्तो द्रोणपुत्रो ब्राह्मण्याद् गौरवेण च । यशोऽस्य पातितं देवि शरीरं त्ववशेषितं ॥ ३१ ॥ वियोजितश्च मणिना भ्रंशितश्चायुधं भुवि ॥ ३२ ॥द्रौपद्युवाच—केवलानृण्यमाप्तास्मि गुरुपुत्रो गुरुर्मम । शिरस्येतं मणिं राजा प्रतिबध्नातु भारत ॥ ३३ ॥ तं गृहीत्वा ततो राजा शिरस्येवाकरोत्तदा । गुरो रुच्छिष्ट मितिव द्रौपद्या वचनादपि ॥ ३४ ॥ ततो दिव्यं मणिवरं शिरसा धारयन् प्रभुः । शुशुभे स तदा राजा स चन्द्र इव पर्वतः ॥ ३५ ॥

अर्थ—व्यास बोले-(हे अश्वत्थामन् !) अस्त्र से तेरे अस्त्र को रण में शान्त करने की इच्छा से अर्जुन ने यह अस्त्र चलाया था, (और हमारा अभिप्राय जान) फिर संहार कर लिया है ॥१९॥ मुझे पाण्डवों की तुम्हारी और देश की रक्षा सदा अभीष्ट है,इस लिए हे महाभुज तुम इस दिव्य अस्त्र का संहार करो ॥ २० ॥ और यह मणि जो तुम्हारे सिर पर है, इसे दे दो, इस को ले कर पाण्डव पलटे में तेरे प्राण तुझे देंगे ॥ २१ ॥ अश्वत्थामा बोले-- जो २ रत्न पाण्डवों को और कौरवों ने धारण किये हैं, यह मेरी मणि उन सब से बढ़ कर है ॥ २२ ॥ पर हे महामुने ! मैं आप की आज्ञा को भी नहीं टाल सकता ॥२३॥ यह कह कर अश्व-

त्थामा ने महात्मा पाण्डवों को मणि दे दी, और स्वयं खिन्न हुआ उन के सामने बन को चला गया ॥ २४ ॥ पाण्डव भी, जिन के शत्रु मारे गए हैं, कृष्ण को आगे कर खाना पीना त्याग कर बैठी द्रौपदी की ओर धाये ॥ २५ ॥ रथों से उतर कर शीघ्र वे महारथ असन्त आर्त हुए आर्त हुई द्रौपदी के पास आए॥२६॥ तब राजा से आज्ञा पा कर महाबली भीमसेन ने उसे दिव्य मणि दे कर यह वचन कहा ॥ २७ ॥ यह है भद्रे तेरे लिए मणि है, वह तेरे पुत्रों का मारने वाला जीता गया, उठ, शोक को त्याग, क्षात्रधर्म का ध्यान कर (क्षत्रियों का रण में मृत्यु शोचनीय नहीं होता) ॥ २८ ॥ राज्य का विघ्नकारी पापी दुर्योधन मारा गया, और फड़कते हुए दुःशासन का रुधिर मैंने पिया ॥ २९ ॥ वैर का बदला चुका लिया, अब हम किसी के आक्षेपणीय नहीं रहे ॥ ३० ॥ द्रोण पुत्र को ब्राह्मण होने के कारण और गुरुपुत्र होने के कारण जीत कर छोड़ दिया है, उस का यश हे देवि गिरा दिया है, शरीर छोड़ दिया है ॥ ३१ ॥ मणि से इसे अलग कर दिया है, और शस्त्र भूमि पर लुढ़वा दिया है ॥ ३२॥ द्रौपदी बोली—मैं अनृणा हुई, गुरुपुत्र मेरा गुरु है, हे भारत ! इस मणि को राजा अपने सिर पर पहरे ॥ ३३ ॥ तब राजा ने उस मणि को ले कर गुरु का उच्छिष्ट जान और द्रौपदी के भी वचन से सिर पर धारण किया ॥ ३४ ॥ उस दिव्य मणि को सिर पर धारण कर के राजा चन्द्र सहित पर्वत की भांति शोभा वाले हुए॥३५॥

सौप्तिकपर्व समाप्त हुआ ॥

———०———

११ स्त्रीपर्व ॥

अ०१ (श्लो०१-११) कुरुस्त्रियों का शोक और युद्धभूमि को प्रस्थान

मूल—हते दुर्योधने चैव हते सैन्ये च सर्वशः । संजयो विगतप्रज्ञो धृतराष्ट्र मुपस्थितः ॥ १ ॥ सं० उ०--आगम्य नानादेशेभ्यो नानाजनपदेश्वराः । पितृलोकं गता राजन् सर्वे तव सुतैः सह ॥ २ ॥ याच्यमानेन सततं तव पुत्रेण भारत । घातिता पृथिवी सर्वा वैरस्यान्तं विधित्सता ॥ ३ ॥ पुत्राणामथ पौत्राणां पितॄणां च महीपते । आनुपूर्व्येण सर्वेषां प्रेतकार्याणि कारय ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं घोरं संजयस्य महीपतिः । गतासुरिव निश्चेष्टो न्यपतत् पृथिवीतले ॥ ५ ॥ तं शयानमुपागम्य पृथिव्यां पृथिवीपतिं । विदुरः सर्व धर्मज्ञ इदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे माशुचो भरतर्षभ । एषा वै सर्व सत्त्वानां लोकेश्वर परागतिः ॥ ७ ॥ एकसार्थं प्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनां । यस्य कालः प्रयात्यग्रे तत्र का परिदेवना ॥ ८ ॥ यांश्चापि निहतान् युद्धे राजंस्त्वमनु शोचसि । न शोच्या हि महात्मानः सर्वे ते त्रिदिवं गताः ॥ ९ ॥ न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया । तथा स्वर्गमुपायान्ति यथा शूरास्तनूत्यजः ॥ १० ॥ सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः । सर्वे चाभिमुखाः क्षीणास्तत्र का परिदेवना ॥ ११ ॥ एवं राजंस्तवाचक्षे स्वर्ग्यं पन्थानमुत्तमं । न युद्धादधिकं किञ्चित् क्षत्रियस्येह विद्यते ॥ १२ ॥ आत्मनात्मानमाश्वास्य माशुचः पुरुषर्षभ । नाद्य शोकाभिभूतस्त्वं कार्यमुत्स्रष्टु मर्हसि ॥ १३ ॥

अर्थ—जब राजा दुर्योधन मारे गए और सारी सेना का

नाश होचुका, तब संजय घबराया हुआ धृतराष्ट्र के पास आया ॥ १ ॥ संजय बोला—हे राजन् नाना देशों से राजे आकर सब आप के पुत्रों समेत मारे गये ॥ २ ॥ (पाण्डवों के) बार २ मांगने पर वैर का अन्त करना चाहते हुए आप के पुत्र ने सारे जगत का नाश कराया ॥ ३ ॥ अब आप क्रम से पुत्र पोते और पितरों का प्रेतकर्म कीजिये ॥ ४ ॥ संजय का ऐसा घोर वचन सुनते ही राजा मरे मनुष्य के समान निश्चेष्ट हो कर भूतल पर गिर पड़े ॥ ५ ॥ राजा को पृथिवी पर गिरा देख, उन के पास आ, सब धर्मों के जानने वाले विदुर यह बोले ॥ ६ ॥ उठो हे राजन् ! क्यों पृथिवी पर पड़े हो, शोक न कीजिये, हे लोक-नाथ सब प्राणियों की यही गति होती है ॥ ७ ॥ सब एक साथ हो कर यात्रा कर रहे हैं, सब ने वहीं जाना है, जिस का काल आता है, वह पहले जाता है, इस में शोक क्या करना ॥ ८ ॥ हे राजन् जिन युद्ध में मरे महात्माओं का आप शोक करते हैं, वे शोक के योग्य नहीं, वे सब स्वर्ग को गए हैं ॥ ९ ॥ दक्षिणाओं वाले यज्ञों, तपों और विद्या से उस गति को नहीं पाते हैं, जैसे शरीर त्यागने वाले शूर॥ १० ॥ वे सब वेद के जानने वाले ब्रह्म-चर्य व्रत को पालन किये हुए शूरवीर सभी सम्मुख हो कर लड़े हैं, इस में शोक का क्या काम ॥ ११ ॥ इस प्रकार हे राजन् मैं तुम्हें बतलाता हूं, कि क्षत्रिय के लिए युद्ध से बढ़ कर स्वर्ग का कोई मार्ग नहीं है ॥ १२ ॥ बुद्धि से धीरज धर कर शोक न कीजिये, शोक से दब कर आप को कार्य नहीं छोड़ देना चाहिये। १३।

मूल—विदुरस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा तु पुरुषर्षभः । युज्यतां यानमित्युक्त्वा पुनर्वचन मब्रवीत् ॥ १४ ॥ शीघ्रमानय गान्धारीं

सर्वाश्च भरतस्त्रियः । वधूं कुन्ती मुपादाय याश्चान्यास्तत्र योषितः ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा स धर्मात्मा विदुरं धर्म वित्तमं । शोकविप्रहत ज्ञानो यानमेवान्वपद्यत ॥ १६ ॥ गान्धारी पुत्र शोकार्ता भर्तुर्वचन नोदिता । सह कुन्त्या यतो राजा सहस्त्रीभिरुपाद्रवत ॥ १७ ॥ ताः समासाद्य राजानं भृशं शोकसमन्विताः । आमन्त्र्यान्योन्य-मीयुः स्म भृशमुच्चुक्रुशुस्ततः ॥ १८ ॥ ताः समाश्वासयतक्षत्ता ताभ्यश्चार्त तरः स्वयं । अश्रुकण्ठीः समारोप्य ततोऽसौ निर्ययौ पुरात ॥ १९ ॥ ततः प्रणादः संजज्ञे सर्वेषु कुरुवेश्मसु । आकु-मारं पुरं सर्व मभवच्छोक कर्शितं॥ २० ॥ प्रकीर्य केशान् सुशुभान् भूषणान्यवमुच्य च । एकवस्त्रधरा नार्यः परिपेतुर नाथवत॥२१॥ प्रगृह्य बाहून् क्रोशन्त्यः पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄनपि । दर्शयन्तीव ता ह स्म युगान्ते लोक संक्षयं ॥ २२ ॥ परस्परं सुसूक्ष्मेषु शोकेष्वा-श्वासयंस्तदा । ताः शोकविह्वला राजन्नवैक्षन्त परस्परं ॥ २३ ॥ ताभिः परिवृतो राजा रुदतीभिः सहस्रशः । निर्ययौ नगरादीन-स्तूर्ण मायोधनं प्रति ॥ २४ ॥

अर्थ—विदुर के वचनों को सुन कर धृतराष्ट्र ने रथ जोड़ो, कह कर फिर कहा ॥ १४ ॥ शीघ्र जा कर गान्धारी और सारी कुरुस्त्रियें, वधू कुन्ती और भी जो वहां स्त्रियें हैं, उन को लेआ ॥ १५ ॥ धर्मज्ञ विदुर को यह आज्ञा दे कर राजा शोक से दूर हुई चेतना वाला रथ पर चढ़ा ॥ १६ ॥ पति की आज्ञा पाय पुत्र शोक से पीड़ित गान्धारी कुन्ती समेत और दूसरी स्त्रियों समेत जहां राजा थे, वहां आई ॥ १७ ॥ वे राजा के निकट आ अत्यन्त शोक से युक्त हुई परस्पर पूछ कर हा हा कार करने लगीं ॥ १८ ॥ विदुरने उन को तसल्ली दी, जो मन में उन से भी

अधिक पीड़ित हो रहा था, और उन रोतियों को ले कर पुर से बाहर निकला॥ १९ ॥ तब सारे कुरु गृहों में हाहाकार मच गया, बच्चों तक सारा पुर शोक से पीड़ित हो रहा था ॥ २०॥ सुन्दर केशों को बिखेर कर, भूषण उतार कर, एक वस्त्र पहने हुई वे स्त्रियें अनाथों के समान गिरीं ॥ २१ ॥ बाहु उठा २ कर पुत्र भाई पितरों को पुकारती हुई मानों वे प्रलयकाल के विनाश को दिखला रही थीं ॥ २२ ॥ परस्पर बढ़े हुए शोकों में एक दूसरी को तसल्ली देती हुई वे शोक से व्याकुली हुई एक दूसरी की ओर देखती थीं ॥ २३ ॥ उन रोती हुई सहस्रों नारियों के साथ राजा दीन हुआ नगर से युद्धभूमि को गया ॥ २४ ॥

अ० २ (व० १२) धृतराष्ट्र का लोहे के भीम को तोड़ना

मूल—हतेषु सर्व सैन्येषु धर्मराजो युधिष्ठिरः । शुश्रुवे पितरं वृद्धं निर्यातं गज साह्वयात ॥ १ ॥ सोऽभ्ययात पुत्रशोकार्तः पुत्रशोक परिप्लुतं । शोचमानं महाराज भ्रातृभिः सहितस्तदा॥२॥ अन्वीयमानो वीरेण दाशार्हेण महात्मना । युयुधानेन च तथा तथैव च युयुत्सुना ॥ ३ ॥ तमन्वगात् सुदुःखार्ता द्रौपदी शोक कर्शिता। सह पञ्चाल योषिद्भिर्यास्तत्रासन् समागताः ॥ ४ ॥ स गंगामनु वृन्दानि स्त्रीणां भरतसत्तम। कुररीणां मिवार्तानां क्रोशन्तीनां दद-र्शह ॥ ५ ॥ क्वनु धर्मज्ञता राज्ञः क्वनु साद्याऽनृशंसता । यच्चा-वधीत पितॄन् भ्रातन् गुरुपुत्रान् सखीनापि ॥ ६ ॥ घातयित्वा कथं द्रोणं भीष्मं चापि पितामहं । मनस्तेऽभून्महाबाहो हत्वा चापि जयद्रथं ॥ ७ ॥ किं नु राज्येन ते कार्यं पितॄन् भ्रातॄनपश्यतः । अभिमन्युं च दुर्धर्षं द्रौपदेयांश्च भारत ॥ ८ ॥ अतीस ता महाबाहुः

क्रोशन्तीः कुररीरिव । ववन्दे पितरं ज्येष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥ ततोऽभिवाद्य पितरं क्रमेणा मित्रकर्शणाः । न्यवेदयन्त नामानि पाण्डवास्तेपि सर्वशः ॥ १० ॥ तमात्मजान्त करणं पिता पुत्र वधार्दितः । अप्रीयमाणः शोकार्तः पाण्डवं परिषस्वजे॥११॥ धर्मराजं परिष्वज्य सान्त्वयित्वा च भारत । दुष्टात्मा भीममन्वैच्छद् दिधक्षुरिव पावकः ॥ १२ ॥ तस्य संकल्पमाज्ञाय भीमंप्रसयुभं हरिः । भीममाक्षिप्य पाणिभ्यां प्रददौ भीममायसं ॥१३॥ तं गृहीत्वैव पाणिभ्यां भीमसेन मयस्मयं । बभंज बलवान् राजा मन्यमानो वृकोदरं ॥ १४ ॥ भंक्त्वा विमथितोरस्कः सुस्राव रुधिरं मुखात् । ततः पपात मेदिन्यां तथैव रुधिरोक्षितः ॥ १५ ॥ स तु कोपं समुत्सृज्य गतमन्युर्महामनाः । हा हा भीमेति चुक्रोश नृपः कोपसमन्वितः ॥ १६ ॥ तं विदित्वा गतक्रोधं भीमसेनवधार्दितं । वासुदेवो वरः पुंसा मिदंवचन मब्रवीत् ॥ १७ ॥ मा शुचो धृतराष्ट्र त्वं नैष भीमस्त्वया हतः । आयसी प्रातिमा ह्येषा त्वया निष्पातिता प्रभो ॥ १८ ॥ त्वां क्रोधवशमापन्नं विदित्वा भरतर्षभ । मयापकृष्टः कौन्तेयो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतः ॥ १९ ॥ यथान्तक मनुप्राप्य जीवन् कश्चिन्न मुच्यते । एवं बाह्वन्तरं प्राप्य तव जीवेन्नकश्चन ॥ २० ॥ तस्मात् पुत्रेण या तेऽसौ प्रातिमाकारितायसी । भीमस्य सेयं कौरव्य तवैवोपहृता मया ॥२१ ॥ पुत्रशोकाभि संतप्तं धर्मादपकृतं मनः । तव राजेन्द्र तेन त्वं भीमसेनं जिघांससि ॥ २२ ॥ न त्वेतत्तेक्षमं राजन् हन्यास्त्वं यद् वृकोदरं । नाहि पुत्रा महाराज जीवेयुस्ते कथञ्चन ॥ २३ ॥ तस्माद्यत्कृत मस्माभिर्मन्यमानैः शमं प्रति । अनुमन्यस्व तत्सर्वं माच शोके मनः कृथाः ॥ २४ ॥

अर्थ--जब सारी सेना मारी गई, तिस पीछे राजा युधिष्ठिर ने सुना, कि हमारे वृद्ध पिता हस्तिनापुर से चले आते हैं ॥ १ ॥ तब पुत्रशोक से पीड़ित युधिष्ठिर भाइयों को संग ले, पुत्रशोक से भरे धृतराष्ट्र की ओर गए ॥ २ ॥ उन के संग वीर कृष्ण सात्यकि और युयुत्सु भी चले ॥ ३ ॥ उन के पीछे वहां आई पञ्चाल नारियों के संग शोक और दुःख से पीड़ित द्रौपदी भी चली ॥ ४ ॥ राजा युधिष्ठिर ने कुररियों के समान रोती-हुई स्त्रियों के झुंड देखे ॥ ५ ॥ (जो विलपती हुई कह रही थीं) कहां गई राजा की धर्मज्ञता, कहां वह अब उस की दया है, जो उसने पितर भाई गुरुपुत्रों और मित्रों को मारा है ॥ ६ ॥ (गुरु) द्रोण को, पितामह भीष्म को और (बहनोई) जयद्रथ को मरवा कर हे महाबाहो आप का मन कैसा हुआ ॥ ७ ॥ हे महाराज पितर भाई वीर अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्रों को न देखते हुए राज्य से क्या लोगे ॥ ८ ॥ इस प्रकार कुररियों के समान पुकारती स्त्रियों को लंघ कर धर्मराज युधिष्ठिर ने ताउ के पाद-वन्दन किये ॥९॥ पीछे शत्रुनाशक सब पाण्डवों ने क्रम से अभिवादन करते हुए अपने २ नाम सुनाए ॥ १० ॥ पुत्रों के मरने से पीड़ित पिता ने अपने पुत्रों के नाश के हेतु युधिष्ठिर को खिन्न मन से गले लगाया ॥ ११ ॥ धर्मराज को आलिंगन कर और धीरज दे कर जलाना चाहते हुए अग्नि के समान दुष्ट अभिप्राय से भीम को ढूंढने लगे ॥ १२ ॥ भीम के प्रति उस के अशुभ संकल्प को जान कर श्रीकृष्ण ने भीम को खींच कर एक लोहे का भीम उन के आगे कर दिया ॥ १३ ॥ उस लोहे के भीम को भीम समझ कर बलवान् धृतराष्ट्र ने दोनों भुजाओं में दबा कर

तोड़ डाला ॥ १४ ॥ तोड़ने के अनन्तर छाती के मथा जाने से उन के मुंह में लहू आ गया, और उसी प्रकार रुधिर से लिथड़ा हुआ पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ १५ ॥ कोप को बाहर निकाल देने से क्रोध जब शान्त हुआ, तो वह मनस्वी हा भीम हा भीम कह कर रोने लगा ॥ १६ ॥ जब कृष्ण ने देखा, कि अब इस का क्रोध शान्त हो गया, और भीम के वध से अब पीड़ित भी है, तब वे यह बचन बोले ॥ १७ ॥ हे धृतराष्ट्र ! शोक मत कीजिये, यह आपने भीम नहीं मारा है, यह हे प्रभो आपने लोहे की मूर्ति तोड़ी है ॥ १८ ॥ आप को क्रोध वश पड़ा जान कर मैंने मृत्यु की दाढ़ से भीम को खींच लिया ॥ १९ ॥ जैसे यम के वश में आकर कोई जीता नहीं बचता है, इस प्रकार आप की भुजाओं के अन्दर आ कर कोई जीता नहीं रहसकता है ॥ २० ॥ इस लिए, मैंने लोहे की वह मूर्ति आप के आगे कर दी, जो आप के पुत्र ने अभ्यास के लिए बनवाई थी ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र आप का मन पुत्रों के शोक से संतप्त हो कर धर्म से गिर गया है, इस से तुम भीम को मारने की इच्छा रखते हो ॥ २२ ॥ किन्तु हे महाराज ! यह उचित नहीं, कि आप भीम को मारें, हे राजन् ! आप के पुत्र कभी जीते रह नहीं सकते थे ॥ २३ ॥ इस लिए शान्ति के लिए जो २ हमने किया है, उस सब को स्वीकार कीजिये, और शोक में मन न दीजिये ॥ २४ ॥

अ० ३ (व० १३-१५) शोकप्रकाशन और धैर्यदान

मूल—तत एनमुपातिष्ठन् शौचार्थं परिचारकाः । कृतशौचं पुनश्चैनं प्रोवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥ राजन्नधीता वेदास्ते शास्त्राणि

विविधानि च । श्रुतानि च पुराणानि राजधर्माश्च केवलाः ॥२॥ एवं विद्वान् महाप्राज्ञः समर्थः सन् बलाबले । आत्मापराधात् कस्मात्त्वं कुरुषे कोपमीदृशम्॥३॥उक्तवांस्त्वां तदैवाहं भीष्मद्रोणौ च भारत । विदुरः संजयश्चैव वाक्यं राजन् तत्कृथाः ॥ ४ ॥ स वार्यमाणो नास्माक मकार्षीर्वचनं तदा । आत्मापराधादापन्नस्तत्किं भीमं जिघांससि ॥ ५ ॥ यस्तु तां स्पर्धया क्षुद्रः पाञ्चालीमानयत्सभां । स हतो भीमसेनेन वैरं प्रतिजिहीर्षता ॥ ६ ॥ एवमुक्तः स कृष्णेन सर्वं सत्यं जनाधिप । उवाच देवकीपुत्रं धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ ७ ॥ एव मेतन्महाबाहो यथावदसि माधव । पुत्रस्नेहस्तु बलवान् धैर्यान्मां समचालयत् ॥ ८ ॥ दिष्ट्या तु पुरुषव्याघ्रो बलवान् सत्यविक्रमः । त्वद्गुप्तो नागमत् कृष्ण भीमो बाह्वन्तरं मम ॥ ९ ॥ इदानीं त्वहमव्यग्रो गतमन्युर्गतज्वरः । मध्यमं पाण्डवं वीरं द्रष्टु मिच्छामि माधव ॥ १० ॥ ततः स भीमं च धनंजयं च माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ । पस्पर्श गात्रैः प्ररुदन् सुगात्रानाश्वास्य कल्याण मुवाच चैतान् ॥ ११ ॥

अर्थ-इस के पीछे शौच कराने के लिए धृतराष्ट्र के पास सेवक आए, शौच कर चुकने के पीछे श्रीकृष्ण उन से बोले॥१॥ हे राजन् आपने वेद शास्त्र पढ़े और पुराण और राजधर्म सुने हैं॥ २ ॥ इस प्रकार महाप्राज्ञ और बलाबल में समर्थ हो कर अपने दोष को बिन बिचारे आप क्यों ऐसा कोप करते हैं॥३॥ हे राजन् मैंने, तथा भीष्म द्रोण विदुर और संजय ने उसी समय आप से हित की बात कह दी थी, वह आपने न की ॥ ४ ॥ रोकने पर भी जब आपने हमारी बात को न माना, तो अपने अपराध से आपत्ति में पड़ कर अब भीम को क्यों मारना चाहते

हो ॥५॥ जिस क्षुद्र ने स्पर्धा से द्रौपदी को भरी सभा में बुलाया, उस को भीम ने बदला लेते हुए मार डाला ॥ ६ ॥ इस प्रकार जब कृष्ण ने उसे सच कह दिया, तो राजा धृतराष्ट्र कृष्ण से बोले ॥ ७ ॥ ऐसा ही है हे महाबाहो जैसा तुम कहते हो, किन्तु पुत्रस्नेह बड़ा बलवान् है, उस ने मुझे धीरज से गिरा दिया था ॥ ८ ॥ भाग्य से सत्य पराक्रम वाला पुरुष सिंह बलवान् भीम आप से रक्षित हुआ मेरी भुजाओं के बीच नहीं आया ॥ ९ ॥ अब मैं शान्त हूं, मेरा क्रोध और संताप जाता रहा, हे कृष्ण अब भीमसेन को देखना चाहता हूं ॥ १० ॥ तब रोकर धृतराष्ट्र ने भीम अर्जुन नकुल और सहदेव को हाथ से स्पर्श किया और असीस दी ॥ ११ ॥

मूल—धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातास्ततस्ते कुरुपाण्डवाः । अभ्ययुर्भ्रातरः सर्वे गान्धारीं सह केशवाः ॥ १२ ॥ गान्धार्युवाच—युध्यमाना हि कौरव्या कृन्तमानाः परस्परं । सहिता निहताश्चान्यैस्तत्त्वनास्त्यप्रियं मम ॥ १३ ॥ किन्तु कर्माऽकरोद्भीमो गदा युद्धे महामनाः । अयोनाभ्याः प्रहृतवांस्तन्मेकोपम वर्धयत ॥ १४ ॥ भीम उवाच—अधर्मेण जितः पूर्वं तेन चापि युधिष्ठिरः । निकृताश्च सदैव स्म ततो विषममाचरं ॥ १५ ॥ गान्धार्युवाच—अपिबः शोणितं संख्ये दुःशासन शरीरजं । सद्भिर्विगर्हितं घोर मनार्यजन सेवितं ॥ १६ ॥ क्रूरं कर्माऽकृथास्तस्मात्तद् युक्तं वृकोदर ॥ १७ ॥ भीम उवाच—अन्यस्यापि न पातव्यं रुधिरं किं पुनः स्वकं । यथैवात्मा तथा भ्राता विशेषो नास्ति कश्चन ॥ १८ ॥ रुधिरं न व्यतिक्राम दन्तोष्ठादम्ब मा शुचः । वैवस्वतस्तु तद्वेद हस्तौ मे रुधिरोक्षितौ ॥ १९ ॥ केशपक्ष परामर्शे द्रौपद्या द्यूत कारिते ।

क्रोधाद् यद ब्रुवं चाहं तच्च मे हृदि वर्तते ॥ २० ॥ क्षत्रधर्मा-च्च्युतो राज्ञि भवेयं शाश्वतीः समाः । प्रतिज्ञां तामनिस्तीर्य तत-स्तत्कृतवानहं ॥ २१ ॥ गान्धार्युवाच—वृद्धस्यास्य शतं पुत्रान्निघ्नं-स्त्वम पराजितः।कस्मान्न शेषयेः किञ्चिद् येनाल्पमपराधितं ॥२२॥ एवमुक्त्वा तु गान्धारी युधिष्ठिर मपृच्छताक्व स राजेति स क्रोधा पुत्र पौत्र वधार्दिता ॥ २३ ॥ तामभ्य गच्छद् राजेन्द्रो वेपमानः [illegible]ञ्जलिः । युधिष्ठिरस्त्विदं तत्र मधुरं वाक्य मब्रवीत् ॥ २४ ॥ पुत्रहन्ता नृशंसोऽहं तव देवि युधिष्ठिरः । शापार्हः पृथिवीनाशे हेतुभूतः शपस्व मां ॥ २५ ॥ नाहि मे जीवितेनार्थो न राज्येन धनेन वा । [illegible]दृशान् सुहृदो हत्वा मूढस्यास्य सुहृद्द्रुहः ॥ २६ ॥ तमेवं वादिनं भीतं सन्निकर्षगतं तदा । गान्धारी विगतक्रोधा सान्त्वयामास मातृवत् ॥ २७ ॥ तया ते समनुज्ञाता मातरं वीर-मातरं । अभ्यगच्छन्त सहिताः पृथां पृथुलवक्षसः ॥ २८ ॥ चिर-स्य दृष्ट्वा पुत्रान् सा पुत्राधिभिरभिप्लुता । बाष्प माहारयत्तीव्रं वस्त्रेणावृत्य वै मुखं ॥ २९ ॥ ततो बाष्पं समुत्सृज्य सह पुत्रैस्तदा पृथा । अपश्य देतान् शस्त्रौघैर्बहुधा क्षतविक्षतान् ॥ ३० ॥ सा तानेकैकशः पुत्रान् संस्पृशन्ती पुनः पुनः । अन्वशोचत दुःखार्ता द्रौपदीं च हतात्मजां ॥ ३१ ॥ रुदतीमथ पाञ्चालीं ददर्श पतितां भुवि ॥ ३२ ॥द्रौपद्युवाच—आर्ये पुत्राः क्व ते सर्वे सौभद्र सहिता गताः । न त्वां तेऽद्याभि गच्छन्ति चिरं दृष्ट्वा तपस्विनीं ॥ ३३ ॥ किं नु राज्येन वै कार्यं विहीनायाः सुतैर्मम।तां समाश्वासयामास पृथा पृथुललोचना ॥ ३४ ॥ उत्थाप्य याज्ञसेनीं तु रुदतीं शोक कर्शितां । अभ्यगच्छत गान्धारी मार्ता मार्ततरा स्वयं ॥ ३५ ॥ तामुवाचाथ गान्धारी सह वध्वा यशस्विनीं । मैवं पुत्रीति शोका-

तां पश्यमामपि दुःखितां॥ ३६ ॥ माशुचो नहि शोच्यास्ते संग्रामे निधनं गताः। यथैवाहं तथैव त्वं को वा माश्वास यिष्यति ॥३७॥

अर्थ—धृतराष्ट्र से अनुज्ञा ले कर सारे भाई कृष्ण सहित गान्धारी के पास गए ॥ १२ ॥ गान्धारी बोली—अभिमानी कौरव जो युद्ध करते हुए शत्रुओं से मारे गए, इस का मुझे दुःख नहीं ॥ १३ ॥किन्तु गदायुद्ध में जो काम मनस्वी भीमने किया है, कि नाभि से नीचे प्रहार किया, इसने मेरा क्रोध बढ़ाया है ॥ १४ ॥ भीम बोले—उस ने भी पहले युधिष्ठिर को अधर्म से जीता था और सदा हमारा अपमान किया था, इस से मैंने विषम आचरण किया ॥ १५ ॥ गान्धारी बोली—रण में तूने दुःशासन का रुधिर पिया, यह तूने ऐसा घोर कर्म किया, जिस को धर्मात्मा निन्दते हैं, जिस को अनार्य करते हैं, हे भीम यह तूने अयुक्त काम किया ॥ १६—१७ ॥ भीम बोले—रुधिर तो किसी का भी नहीं पीना चाहिये, क्या फिर अपना, और भाई अपना आप ही है, कोई भेद नहीं ॥ १८ ॥ हे मातः ! वह रुधिर मेरे होंठ के सिरे से आगे नहीं गया, अन्तर्यामी जानता है, कि केवल मेरे हाथ ही भरे थे, आप शोक न करें ॥ १९ ॥ जुआ खेलने के पीछे दुःशासन ने जो द्रौपदी के केश खींचे थे, उस समय जो मैंने क्रोध में प्रतिज्ञा की, वह मेरे हृदय में बर्त रही थी ॥ २० ॥ हे राज्ञि ! मैं उस प्रतिज्ञा को पूरा किये बिना सदा के लिए क्षात्रधर्म से गिर जाता, इस लिए वह मैंने किया ॥ २१ ॥ गान्धारी बोली—इस वृद्ध के सौ पुत्रों को मार कर तू अक्षत है, क्यों कोई एक भी न छोड़ा, जिसने कोई थोड़ा अपराध किया था ॥ २२ ॥ यह कह कर पुत्र पोतों के बध से पीड़ित गान्धारी

ने पूछा युधिष्ठिर कहां है ॥ २३ ॥ तब राजा युधिष्ठिर हाथ जोड़ कांपते हुए उस के पास गए, और यह मधुर वचन बोले ॥२४॥ हे मातः! तेरे पुत्रों का मरवाने वाला, पृथिवी के नाश का हेतु क्रूर युधिष्ठिर यह मैं हूं, निश्चय मैं शाप के योग्य हूं, मुझे शाप दीजिये ॥ २५ ॥ मुझे राज्य धन और जीवन से क्या लाभ, जिसने ऐसे मित्रों को मरवा डाला है, सुहृदों को नाश कराया है ॥ २६ ॥ यह सुन गान्धारी का क्रोध शान्त हो गया, और वह इस प्रकार कहते हुए भयभीत हो निकट खड़े युधिष्ठिर को तसल्ली देने लगी ॥ २७ ॥ उस से अनुज्ञा दिये हुए वे वीर सब मिल कर वीरमाता कुन्ती के पास आये ॥ २८ ॥ चिर पीछे पुत्रों को देख कर पुत्रों की पीड़ाओं से पीड़ित कुन्ती के प्रेमाश्रु बह निकले और उस ने मुख को वस्त्र से ढक लिया ॥ २९ ॥ आंसू पोंछ कर शस्त्र समूहों से क्षत विक्षत पुत्रों को देखा॥३०॥ एक २ करके उन की पीठ पर हाथ फेरती हुई बार २ शोक करती भई और हतपुत्रा द्रौपदी का शोक करती भई ॥ ३१ ॥ और रोती हुई द्रौपदी को अपने निकट भूमि पर गिरी हुई देखा ॥ ३२ ॥ द्रौपदी बोली—हे आर्ये! अभिमन्यु समेत तेरे वे पोते कहां गए, चिर पीछे तुझ तपस्विनी को देख कर वह आज तेरे पास नहीं आते हैं ॥ ३३ ॥ पुत्रों से हीन हुई मुझ को राज्य से क्या काम। उस को विशालनेत्रा कुन्ती तसल्ली देती भई॥३४॥ शोक से दुर्बल हुई रोती हुई द्रौपदी को उठा कर बड़ी दुःखित हुई कुन्ती दुःखिया गान्धारी के पास ले गई ॥ ३५ ॥ कुन्ती सहित गान्धारी यशस्विनी द्रौपदी से बोली, हे पुत्रि! इस प्रकार शोकार्त मत हो, मुझ दुःखिया को भी देख॥३६॥ शोक मत कर,

संग्राम में मृत्यु को प्राप्त हुए वे शोक के योग्य नहीं हैं, जैसे तू है, वैसे मैं हूं, कौन दूसरा कोई हम दोनों को तसल्ली देगा॥३७॥

अ० ४ (व० १६-२५) विलाप

मूल—ततोऽव्यासाभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रो महीपतिः। पाण्डुपुत्राश्च ते सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ १ ॥ वासुदेवं पुरस्कृत्य हतबन्धुं च पार्थिवं । कुरुस्त्रियः समासाद्य जग्मुरायोधनं प्रति ॥ २ ॥ समासाद्य कुरुक्षेत्रं ताः स्त्रियो निहतेश्वराः । अपश्यन्त हतांस्तत्र पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄन् पतीन् ॥ ३ ॥ महार्हेभ्योऽथ यानेभ्यो विक्रोशन्त्योऽभिपेदिरे । अदृष्टपूर्वं पश्यन्त्यो दुःखार्ता भरतस्त्रियः ॥ ४ ॥ श्रान्तानां चाप्यनाथानां नासीत्काचन चेतना। पञ्चाल कुरुयोषाणां कृपणं तदभून्महत्॥५॥ दुर्योधनं हतं दृष्ट्वा गान्धारी शोक कर्शिता । सहसा न्यपतद् भूमौ छिन्नेव कदली वने ॥ ६ ॥ सा तु लब्ध्वा पुनः संज्ञां विक्रुश्य च विलप्य च । परिष्वज्य च गान्धारी कृपणं पर्यदेवयत् ॥ ७ ॥ वारिणा नेत्रजेनोरः सिंचन्ती शोकतापिता । समीपस्थं हृषीकेश मिदंवचन मब्रवीत् ॥ ८ ॥ मामयं प्राह वार्ष्णेय प्राञ्जलिर्नृपसत्तमः । अस्मिन् ज्ञाति समुद्धर्षे जयमम्बा ब्रवीतु मे ॥ ९ ॥ इत्युक्ते जानती सर्व मिदं स्वव्यमनागमं। अब्रुवं पुरुषव्याघ्र यतो धर्मस्ततोजयः॥ १०॥ यथा च युध्यमानस्त्वं न वै मुह्यसि पुत्रक । ध्रुवं शस्त्रजितान् लोकान् प्राप्स्यस्यमरवत्प्रभो ॥ ११ ॥ इत्येव मब्रुवं पूर्वं नैवं शोचामि वै प्रभो। धृतराष्ट्रं तु शोचामि कृपणं हतबान्धवं ॥ १२ ॥ इदं दुःखतरं मेऽद्य यदिमा मुक्तमूर्धजाः। हतपुत्रा रणे बाला परिधावन्ति मे स्नुषाः ॥१३॥ एषा विराट् दुहिता स्नुषा गांडीव धन्वनः।

आर्ता बालं पतिवीरं दृष्ट्वा शोचत्यनिन्दिता ॥ १४ ॥ उत्संगे वक्त्र माधाय जीवन्तमिव पृच्छति। कथं त्वां रण मध्यस्थं जघ्नुरेते महारथाः ॥ १५ ॥ न राज्यलाभो विपुलः शत्रूणां च पराभवः। प्रीतिं धास्यति पार्थानां त्वामृते पुष्करेक्षण ॥ १६ ॥ तव शस्त्र जितांल्लोकान् धर्मेण दमेन च। क्षिप्रमन्वा गमिष्यामि तत्र मां प्रतिपालय ॥ १७ ॥ एतावानिह संवासो विहितस्ते मया सह। षण्मासान् सप्तमे मासि त्वं वीर निधनं गतः ॥ १८ ॥ नातिभारोस्ति दैवस्य ध्रुवं माधव कश्चन। यदिमे निहताः शूराः क्षत्रियैः क्षत्रियर्षभाः ॥ १९ ॥

अर्थ—तब व्यास से अनुज्ञा दिये राजा धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर आदि पाण्डव, कृष्ण को आगे कर के, और हत बन्धु धृतराष्ट्र को आगे करके कुरुस्त्रियें युद्ध भूमि में गईं ॥१-२॥ कुरुक्षेत्र में जा मरे पतियों वाली उन स्त्रियों ने वहां मरे पड़े पुत्र भाई पितर और पति देखे ॥३॥ बहुमूल्य यानों से वे रोती हुई उतरीं, पहले कभी न देखे वैसे दृश्य को देख कर वे कुरुस्त्रियें दुःख से पीड़ित हुईं ॥ ४ ॥ थकी हुई उन अनाथ कुरुस्त्रियों और पञ्चाल स्त्रियों को कोई चेतना न रही, वह बड़ा ही करुणामय दृश्य हुआ ॥ ५ ॥ मरे पड़े दुर्योधन को स्पर्श कर शोक से दुर्बल हुई गान्धारी वन में कटी हुई कदली के समान अचानक भूमि पर गिर पड़ी ॥ ६ ॥ फिर चेतना में आ कर रोती विलपती हुई उस को छाती में लगा कर रोने लगी ॥ ७ ॥ नेत्रों से निकले नीर से छाती को भिगोती हुई शोक से तपायी हुई वह पास खड़े कृष्ण से यह वचन बोली ॥ ८ ॥ हे यादव ! इस राजवर ने हाथ जोड़ कर मुझ से कहा, कि इस ज्ञाति संग्राम में माता मेरे विजय की असीस

देवें ॥ ९ ॥ ऐसा कहने पर इस आशीर्वाद से अपने ही ऊपर आने वाली आपत्ति को पूरी तरह जान कर भी मैंने यही कहा, जिधर धर्म है, उधर जय है ॥ १० ॥ हे बेटा ! युद्ध करते हुए घबराहट में न पड़ना, शस्त्र से कमाए लोकों को (स्वर्ग) को निःसंदेह पाओगे, जैसे देवताओं ने पाया है ॥ ११ ॥ जब मैंने पहले ही ऐसा कहा, तो अब मैं शोक नहीं करती हूं, किन्तु बन्धु-रहित हुए दीन पति का शोक करती हूं ॥ १२ ॥ और यह एक और बढ़ कर दुःख है, कि ये मेरी स्नुषाएं जिन के पुत्र मारे गए हैं, बाल खोल कर रणभूमि में दुःखित हुई दौड़ रही हैं ॥ १३ ॥ यह राजा विराट की कन्या अर्जुन की स्नुषा पीड़ित हुई वीरपति को देख कर शोक कर रही है ॥ १४ ॥ गोद में उस के मुख को रख कर जीते हुए की भांति उस से पूछती है, रण मध्य में खड़े आप को इन महारथियों ने कैसे मारा ॥ १५ ॥ हे कमलनेत्र तुम्हारे बिना पाण्डवों को न राज्य का लाभ और न शत्रुओं का पराजय प्रसन्न करेगा ॥ १६ ॥ आपने जो लोक शस्त्र से धर्म से और दमन से जीते हैं, वहीं मैं भी शीघ्र आप के पीछे आऊंगी, वहां मेरी प्रतीक्षा कीजिये ॥ १७ ॥ आप के साथ यहां मेरा संवास इतना ही विधाता ने नियत किया था यह छः महीने, सातवें महीने हे वीर तुम मृत्यु को प्राप्त हुए हो ॥ १८ ॥ (अन्त में गान्धारी बोली-) हे कृष्ण दैव के लिए कुछ भी बड़ा भार नहीं है, जो ये इतने बड़े शूरवीर क्षात्रिय क्षत्रियों से मारे गए ॥ १९ ॥

अ० ५ (व० २६-२७) दाहसंस्कार

मूल—श्रीभगवानुवाच—उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारि माच शोके मनः कृथाः ॥ १ ॥ मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीत मनु शोचति । दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते ॥ २ ॥ धृतराष्ट्रस्तु राजर्षि-

निगृह्याऽबुद्धिजं तमः । पर्यपृच्छत धर्मज्ञो धर्मराजं युधिष्ठिरं ॥ ३ ॥ अनाथानां जनानां च सनाथानां च भारत । कच्चित्तेषां शरीराणि धक्ष्यसे विधिपूर्वकं ॥ ४ ॥ एवमुक्तो महाराज कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । आदिदेश सुधर्माणं धौम्यं सूतं च संजयं ॥ ५ ॥ विदुरं च महाबुद्धिं युयुत्सुं चैव कौरवं । इन्द्रसेन मुखांश्चैव भृत्यान् सूतांश्च सर्वशः ॥ ६ ॥ भवन्तः कारयन्त्वेषां प्रेतकार्याणि शेषतः । यथा चानाथवत् किञ्चिच्छरीरं न विनश्यति ॥ ७ ॥ शासनाद्धर्मराजस्य क्षत्ता सूतश्च संजयः । सुधर्मा धौम्य सहित इन्द्रसेनादयस्तथा ॥ ८ ॥ चन्दनाऽगुरुकाष्ठानि तथा कालीयकान्युत । घृतं तैलं च गन्धांश्च क्षौमाणि वसनानि च ॥ ९ ॥ समाहृत्य महार्हाणि दारूणां चैव संचयान् । रथांश्च मृदितांस्तत्र नाना प्रहरणानि च ॥ १० ॥ चिताः कृत्वा प्रयत्नेन यथा मुख्यान्नराधिपान् । दाहयामासुरव्यग्राः शास्त्र दृष्टेन कर्मणा ॥ ११ ॥ साम्ना मृचां च नादेन स्त्रीणां च रुदितस्वनैः । कश्मलं सर्वभूतानां निशायां समपद्यत ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीकृष्ण बोले—उठो उठो हे गान्धारि ! शोक में मन न लगाओ ॥१॥ मरे वा खोए गए का, जो कोई बात बीत जाने पर शोक करता है, वह दुःख में दुःख पाता है, दुहरे अनर्थ में पड़ता है ॥ २ ॥ उसी समय धर्मज्ञ राजर्षि धृतराष्ट्र अज्ञान जन्य शोक को रोक कर राजा युधिष्ठिर से बोले ॥ ३ ॥ हे भारत ! जिन के नाथ पीछे हैं, और जिन का कोई नाथ नहीं रहा, क्या उन सब के शरीरों को विधिपूर्वक दाह दोगे ॥ ४ ॥ यह सुन कर कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर ने (दुर्योधन के पुरोहित) सुधर्मा (और अपने पुरोहित) धौम्य, संजय, महाबुद्धि विदुर, कौरव युयुत्सु तथा इन्द्रसेन आदि भृत्यों और सूतों को आज्ञा दी, कि आप इन सब

के प्रेतकार्य यथाविधि कराओ, जिस से कि अनाथवत् कोई भी शरीर नष्ट न हो ॥ ५--७ ॥ धर्मराज की आज्ञा से विदुर, संजय, सुधर्मा, धौम्य और इन्द्रसेन आदियों ने चन्दन अगर तगर आदि काष्ठ घृत तैल गन्ध और बहु मूल्य अलसी के वस्त्र और लकड़ियों के ढेर और टूटे हुए रथ तथा शस्त्र इकट्ठे कर करके, विधिपूर्वक चिताएं बना कर, सावधान हो कर शास्त्रोक्त विधि से यथा मुख्य सभी राजाओं का दाह किया ॥ ८–११ ॥ साम और ऋचाओं की ध्वनि से और स्त्रियों के रुदन से रात के समय सब जन्तुओं को भय होने लगा ॥ १२ ॥

मूल—कारयित्वा क्रियास्तेषां कुरुराजो युधिष्ठिरः। धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गंगामभिमुखोऽगमत् ॥ १३ ॥ ते समासाद्य गंगां तु शिवां पुण्यजलोचितां । भूषणान्युत्तरीयाणि वेष्टनान्यवमुच्य च ॥ १४ ॥ ततः पितॄणां भ्रातॄणां पौत्राणां स्वजनस्य च । पुत्राणामार्यकानां च पतीनां च कुरुस्त्रियः॥ १५ ॥ उदकं चक्रिरे सर्वा रुदत्योभृश दुःखिताः ॥ १६ ॥ ततः कुन्ती महाराज सहसा शोक कर्शिता। रुदती मन्दया वाचा पुत्रान् वचन मब्रवीत्॥१७॥ यः स वीरो महेष्वासः रथयूथपयूथपः । अर्जुनेन जितः संख्ये वीरलक्षण लक्षितः ॥ १८ ॥ यं सूतपुत्रं मन्यध्वं राधेय मिति पाण्डवाः । यो व्यराजच्चमू मध्ये दिवाकर इव प्रभुः ॥ १९ ॥ योऽट्टणीत यशः शूरः प्राणैरपि सदाभुवि । कुरुध्वमुदकं तस्य भ्रातुरक्लिष्टकर्मणः ॥ २० ॥ स हि वः पूर्वजो भ्राता भास्करान्मय्य जायत ॥ २१ ॥ श्रुत्वा तु पाण्डवाः सर्वे मातुर्वचन मप्रियं। कर्ण मेवानु शोचन्तो भूयः क्लान्ततरा भवन् ॥ २२ ॥ युधिष्ठिर उवाच—अहो भवत्या मन्त्रस्य गूहनेन वयं हताः । कर्णमेवानु शोचाम दह्याम्यग्ना विवाहितः॥ २३ ॥ व्यरुदच्छनकै राजंश्चका-

रास्योदकं प्रभुः । पापेनासौ मया श्रेष्ठो भ्राता ज्ञातिर्निपातितः ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा स तु गंगाया उत्ततारा कुलेन्द्रियः । भ्रातृभिः सहितः सर्वैर्गंगातीर मुपेयिवान् ॥ २५ ॥

अर्थ—कुरुराज युधिष्ठिर उन सब का दाह करवा कर धृतराष्ट्र को आगे कर के गंगा को चले ॥ १३ ॥ पुण्य जल से भरी सुहावनी गंगा पर पहुंच कर उन्होंने भूषण कपड़े और पगड़ियां उतारीं ॥ १४ ॥ और पितर, भाई, पोते, मित्र, पुत्र और नानों को जलाञ्जलि देने लगे, कुरुस्त्रियें रोती हुईं दुःखित हुईं अपने पतियों को जलाञ्जलि देने लगीं ॥ १५—१६ ॥ उस समय हे महाराज कुन्ती शोक में डूबी रोती हुई धीरे से पुत्रों से बोली ॥ १७ ॥ हे वीरो, वह वीर जो महाधनुर्धारी रथ सेनाओं का सेनापति था, जो सारे वीर लक्षणों से सम्पन्न था, जिस को तुम सूतपुत्र और राधा का पुत्र मानते हो, जो सेनाओं के मध्य में सूर्य के समान चमकता था ॥ १९ ॥ जो सदा प्राणों से भी बढ़ कर यश को प्यार करता था, उस उत्तम कर्मों वाले अपने भाई को भी जलाञ्जलि दो ॥ २० ॥ वह तुम्हारा बड़ा भाई भास्कर से मेरा पुत्र था ॥ २१ ॥ माता के इस अप्रिय वचन को सुन कर सारे पाण्डव कर्ण का शोक करते हुए अधिक दुःखी हुए ॥ २२ ॥ युधिष्ठिर बोले—अहो आप के मन्त्र गुप्त रखने से हम मारे गए, मैं कर्ण का ही शोक करता हूं, और अग्नि में डाले के समान जल रहा हूं ॥ २३ ॥ मन्द २ रोते हुए राजा ने उस को जलाञ्जलि दी । और 'मैं पापी ने अपना ज्ञाति भाई मार डाला, यह कह कर व्याकुल मन हुआ वह सारे भाइयों सहित गंगा से बाहर निकल कर तीर पर आ बैठा ॥ २५ ॥

स्त्रीपर्व समाप्त हुआ ॥

शान्ति पर्व ॥

अ० १ (व० १-४) युधिष्ठिरार्जुनादि का संवाद

मूल—तत्र ते सुमहात्मानो न्यवसन् पाण्डुनन्दनाः। शौचं निर्वर्तयिष्यन्तो मास मात्रं बहिः पुरात् ॥ १ ॥ युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा शोकव्याकुल चेतनः। दृष्ट्वार्जुन मुवाचेदं वचनं शोक कर्षितः ॥ २ ॥ धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषं। धिगस्त्वमर्ष येनेमा मापदं गमिता वयं ॥ ३ ॥ साधु क्षमा दमः शौचं वैराग्यं चाप्यमत्सरः। अहिंसा सत्य वचनं नित्यानि वन चारिणां ॥ ४ ॥ वयं तु लोभान्मोहाच्च दम्भं मानं च संश्रिताः। इमा मवस्था मापन्ना राज्यलेश बुभुक्षया ॥ ५ ॥ दुर्योधन कृते ह्येतत् कुलं नो विनिपातितं। अवध्यानां वधं कृत्वा लोके प्राप्ताः स्म वाच्यतां ॥ ६ ॥ हताः शूराः कृतं पापं विषयः स्वो विनाशितः। हत्वा नो विगतो मन्युः शोको मां रुन्धयत्यसौ ॥ ७ ॥ धनञ्जय कृतं पापं कल्याणेनोप हन्यते। ख्यापनेनानुतापेन दानेन तपसापि वा ॥ ८ ॥ त्यागवांश्च पुनः पापं नालं कर्तु मिति श्रुतिः॥९॥ स धनञ्जय निर्द्वन्द्वो मुनिर्ज्ञान समन्वितः। वन मामन्त्र्य वः सर्वान् गमिष्यामि परंतप ॥ १० ॥ प्रशाधि त्व मिमामुर्वी क्षेमां निहत कण्टकां। न ममार्थोऽस्ति राज्येन भोगैर्वा कुरुसत्तम ॥ ११ ॥

अर्थ--वहां महात्मा पाण्डु पुत्रों ने शौच के निमित्त महीना भर पुर से बाहर निवास किया * ॥ १ ॥ (वहां मरे बान्धवों

---

* महीना भर आशौच शूद्रों को होता है, पाण्डव शूद्र तो थे ही नहीं, कि महीना भर आशौच होता, यह क्षत्रिय हैं, क्षत्रियों को केवल

का स्मरण कर के) धर्मात्मा युधिष्ठिर का मन शोक से बड़ा व्याकुल हुआ, और शोक से अत्यन्त पीड़ित हो कर वह अर्जुन से यह वचन बोले ॥ २ ॥ धिक्कार है क्षात्र आचार को, धिक्कार है बल पौरुष. और धिक्कार है अमर्ष को, जिस ने हमें इस अवस्था में पहुंचाया है ॥ ३ ॥ क्षमा, दम, शौच, वैराग्य, ईर्षा का न होना, किसी को तंग न करना और सत्य बोलना यह भले हैं, जो वनचारियों (मुनियों) के प्रधान कर्म हैं ॥ ४ ॥ हम तो लोभ और मोह के वश हुए राज्य लेश की भूख से दम्भ और मान का सहारा ले कर इस अवस्था को पहुंचे हैं ॥५॥ दुर्योधन के कारण हमने अपना कुल गिरा दिया, अवध्यों का वध कर के इस लोक में निन्दा को प्राप्त हुए हैं ॥ ६ ॥ शूरवीर मार दिये, हमने पाप किया, अपना देश विनाश कर दिया, मार कर हमारा क्रोध अब जाता रहा, और शोक मुझे अब घेर रहा है ॥ ७ ॥ हे धनञ्जय किया हुआ पाप या भले कर्म से दूर होता है, अथवा प्रसिद्ध करने से, पश्चात्ताप से, दान से वा तप से ॥ ८ ॥ जिस ने (परिग्रह का) त्याग कर दिया है, वह फिर पाप नहीं करता है, यह श्रुति है ॥ ९ ॥ सो हे अर्जुन ! मैं अब सारे द्वन्द्वों से पार हो, ज्ञानयुक्त मुनि हो कर तुम सब से अनुमति ले कर वन को जाऊंगा ॥ १० ॥ तुम अब दूर हुए कांटों वाली इस समर्थ पृथिवी का शासन करो, मुझे अब हे कुरुवर न राज्य से न भोगों से प्रयोजन है ॥ ११ ॥

---

१२ दिन होता है, और युद्ध में मरों का अशौच होता ही नहीं, इस लिए यहां शौच से अभिप्राय शोक निवृत्ति का है. शोक निवृत्ति के लिए वे महीना भर बाहर ठहरे रहे ।

मूल–अर्जुन उवाच–अहो दुःखमहो कृच्छमहोवैक्लव्य मुत्तमं। यत्कृत्वाऽमानुषं कर्म त्यजेथाः श्रियमुत्तमां ॥ १२ ॥ क्लीबस्य हि कुतो राज्यं दीर्घसूत्रस्य वा पुनः। किमर्थं च महीपालानवधीः क्रोधमूर्छितः ॥ १३ ॥ अश्वस्तन मृषीणां हि विद्यते वेद तद्भवान् ॥ १४ ॥ यत्विमं धर्म मित्याहुर्धनादेष प्रवर्तते। धर्मं संहरते तस्य धनं हरति यस्य मः ॥ १५ ॥ अध्येतव्या त्रयी नित्यं भवितव्यं विपश्चता। सर्वथा धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि यत्नतः॥१६॥ येषां राजाश्वमेधेन यजते दक्षिणावता। उपेत्य तस्यावभृथे पूताः सर्वे भवन्ति ते ॥ १७ ॥ भीम उवाच–यदीमां भवतो बुद्धिं विद्याम वपमीदृशीं। शस्त्रं नैव ग्रहीष्याम नवधिष्याम कञ्चन ॥१८॥ यथा हि पुरुषः खात्वा कूपमप्राप्य चोदकं। पंकदिग्धो निवर्तेत कर्मेदं नस्तथोपमं ॥ १९ ॥ यथा शत्रून् घातयित्वा पुरुषः कुरुनन्दन। आत्मानं घातयेत् पश्चात् कर्मेदं नस्तथोपमं ॥ २० ॥ वयमेवात्र गर्ह्या हि यद्वयं मन्दचेतसं। त्वां राजन्ननुगच्छामो ज्येष्ठोऽयमिति भारत ॥ २१ ॥ यदि संन्यासतः सिद्धिं राजा कश्चिद् वाप्नुयात। पर्वताश्च द्रुमाश्चैव क्षिप्रं सिद्धिमवाप्नुयुः ॥ २२ ॥ अवेक्षस्व यथा स्वैः स्वैः कर्मभिर्व्यापृतं जगत्। तस्मात् कर्मैव कर्तव्यं नास्ति सिद्धिरकर्मणः ॥ २३ ॥

अर्थ–अर्जुन बोले–अहो दुःख अहो विपत्ति अहो इतनी घबराहट कि मनुष्यों से ऊंचा कर्म कर के प्राप्त हुई लक्ष्मी को त्यागते हो ॥ १२ ॥ नपुंसक को वा दीर्घसूत्री को राज्य कहां, किस लिए आपने क्रोध से मूर्छित हो कर राजाओं का वध किया ॥ १३ ॥ कल की परवाह न करना ऋषियों का धर्म है,

यह आप जानते हैं ॥ १४ ॥ (गृहस्थ के लिए तो) जिस को धर्म कहते हैं, वह धन से पूरा होता है, विधाता उस के धर्म को हरलेता है, जिस के धन को हरता है ॥ १५ ॥ वेद को नित्य पढ़ना चाहिये, विद्वान् बनाना चाहिये, धन सर्वथा कमाना चाहिये और यत्न से यज्ञ करना चाहिये ॥ १६ ॥ जिनका राजा पूरी दक्षिणा वाला अश्वमेध यज्ञ करता है, उस के अवभृथ में उस के ज्ञातिजन साथ मिल कर पवित्र होते हैं ॥ १७ ॥ भीम बोले—यदि हम आप की ऐसी बुद्धि जानते, तो हम कभी शस्त्र न पकड़ते और किसी को न मारते ॥ १८ ॥ जैसे कोई पुरुष कुआं खोद कर जल प्राप्त किये बिना ही कींचड़ से लिबड़ा हुआ लौट आवे, यह हमारा काम वैसा होगा ॥ १९ ॥ जैसे कोई पुरुष शत्रुओं को मार कर पीछे आत्महत्या कर डाले, हे कुरुनन्दन ! यह हमारा कर्म वैसा है ॥ २० ॥ हम ही इस में निन्दार्ह हैं, जो कि ' बड़ा भाई है ' ऐसा जान कर आप के पीछे चलते हैं ॥२१॥ यदि संन्यास से कोई राजा सिद्धि पा सके, तो पर्वत और वृक्ष झट सिद्धि पाजाएं ॥ २२ ॥ देखो कैसे सारा जगत् अपने २ कामों में लगा है, इस लिए कर्म ही कर्तव्य है, कर्महीन को सिद्धि नहीं है ॥ २३ ॥

मूल—अव्याहरति कौन्तेये धर्मराजे युधिष्ठिरे । अभ्यभाषत राजेन्द्र द्रौपदी योषितां वरा ॥ २४ ॥ कथं द्वैतवने राजन् पूर्वमुक्त्वा तथा वचः । भ्रातॄनेतान् स्म सहितान् शीतवातातपार्दितान् ॥ २५ ॥ वयं दुर्योधनं हत्वा मृधे भोक्ष्याम मेदिनीं । संपूर्णां सर्वकामाना माहवे विजयैषिणः ॥ २६ ॥ यजतां विविधैर्यज्ञैः समृद्धै रण दक्षिणैः । वनवास कृतं दुःखं भविष्यति सुखाय वः॥२७॥

इस्वतानेवमुक्त्वा त्वं स्वयं धर्म भृतांवर। कथमद्य पुनर्वीर विनिहंसि मनांसि नः ॥ २८ ॥ मित्रता सर्वभूतेषु दानमध्ययनं तपः। ब्राह्मणस्यैव धर्मः स्यान्नराज्ञो राजसत्तम ॥ २९ ॥ असतां प्रतिषेधश्च सतां च परिपालनं। एष राज्ञां परो धर्मः समरे चापलायनं ॥ ३० ॥ न श्रुतेन न दानेन न सान्त्वेन न चेज्यया। त्वयेयं पृथिवी लब्धा न संकोचेन चाप्युत ॥ ३१ ॥ यत्तद्बल ममित्राणां त्रिभिरंगै रनुत्तमं। तत्त्वया निहतं वीर तस्माद्भुंक्ष्व वसुन्धरां॥३२॥

अर्थ-यह सब सुन कर जब धर्मराज युधिष्ठिर कुछ न बोले, तब उत्तम स्त्री द्रौपदी बोली ॥ २४ ॥ हे राजन्! द्वैतवन में शीत वात से पीड़ित भाइयों को यह कह कर, कि दुर्योधन को युद्ध में मार कर युद्ध में विजयी हो कर सारी कामनाओं से पूर्ण पृथिवी को भोगेंगे ॥२५-२६॥ और पर्याप्त दक्षिणा वाले समृद्ध यज्ञ करेंगे, तब यह वनवास का सारा दुःख आप के सुख के लिए होगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार अपने आप अपने मुख से कह कर हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ कैसे अब फिर हमारे मनों को डिगाते हो ॥ २८ ॥ सभी प्राणधारियों में मित्रता, दान, अध्ययन, और तप, हे राजवर यह ब्राह्मण के ही धर्म हैं, क्षत्रिय के नहीं॥२९॥ क्षत्रियों का परम धर्म है दुष्टों को दण्ड देना, और श्रेष्ठों की रक्षा करना और युद्ध में पीठ न दिखलाना ॥ ३० ॥ आप ने यह पृथिवी न विद्या से, न दान से, न चापलूसी से, न यज्ञ से, न याचना से पाई है ॥ ३१ ॥ किन्तु जो शत्रुओं का बल तीन अंगों (रथ, हाथी और घोड़ों) से बढ़ा चढ़ा हुआ था, उस को आपने मार कर पाई है, इस लिए आप पृथिवी को भोग ने योग्य हैं ॥ ३२ ॥

अ० २ (व० १५) दण्ड की महिमा

मूल–याज्ञसेन्यावचः श्रुत्वा पुनरेवार्जुनोब्रवीत् । अनुमान्य महाबाहुं ज्येष्ठं भ्रातरमच्युतं ॥ १ ॥ दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्डएवाभि रक्षति । दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ २ ॥ राजदण्ड भयादेके परलोक भयादपि । परस्पर भयादेके पापाः पापं न कुर्वते ॥ ३ ॥ दण्डस्यैव भयादेके न खादन्ति परस्परं । अन्धे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्डो न पालयेत् ॥ ४ ॥ यस्माद् दान्तान् दमयस शिष्टान् दण्डयसापि । दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः ॥ ५ ॥ असंमोहाय मर्त्यानामर्थ संरक्षणाय च । मर्यादा स्थापिता लोके दण्डसंज्ञा विशांपते ॥ ६ ॥ यत्रश्यामो लोहिताक्षः दण्डश्चरति सूद्यतः । प्रजास्तत्र न मुह्यन्ते नेता चेत्साधु पश्यति ॥ ७ ॥ ना छित्वा परमर्माणि ना कृत्वा कर्म दुष्करं । ना हत्वा मत्स्य घातीव प्राप्नोति महतीं श्रियं ॥ ८ ॥ न हि पश्यामि जीवन्तं लोके कंचिद हिंसया । सत्त्वैः सत्त्वा हि जीवन्ति दुर्बलैर्बलवत्तराः ॥ ९ ॥ नकुलो मूषिकानत्ति बिडालो नकुलं तथा । बिडालमत्ति श्वा राजन् श्वानं व्याल मृगस्तथा ॥ १० ॥ विधानं दैव विहितं तत्र विद्वान्न मुह्यति । यथा सृष्टोसि राजेन्द्र तथा भवितु मर्हसि ॥ ११ ॥ विनावधं न कुर्वन्ति तापसाः प्राणयापनं ॥ १२ ॥ उदके बहवः प्राणाः पृथिव्यां च फलेषु च । न च कश्चिन्नतान् हन्ति किमन्यत् प्राणयापनात् ॥ १३ ॥ सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित् । पक्ष्मणोपि निपातेन येषां स्यात् स्कन्ध पर्ययः ॥ १४ ॥ दण्डनीत्यां प्रणीतायां सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः । कौन्तेय सर्वभूतानां तत्र मे नास्ति संशयः ॥ १५॥ चातुर्वर्ण्य प्रमो-

दाय सुनीति नयनाय च । दण्डो विधात्रा विहितो धर्मार्थौ भुवि रक्षितुं ॥ १६ ॥ न चोष्ट्रान बलीवर्दा नाश्वाश्वतर गर्दभाः । युक्ता वहेयुर्यानानि यदि दण्डो न पालयेत् ॥ १७ ॥ न प्रेष्या वचनं कुर्युर्न बाला जातु कर्हिचित् । न तिष्ठेद् युवती धर्मे यदि दण्डो न पालयेत् ॥ १८ ॥ न तत्र कूटं पापं वा वञ्चना वापि विद्यते । यत्र दण्डः सुविहितश्चरत्यरि विनाशनः ॥ १९ ॥ लोकयात्रार्थ मेवेह धर्मप्रवचनं कृतं । अहिंसा साधु हिंसेति श्रेयान धर्म परिग्रहः ॥ २० ॥ नात्यन्तं गुणवत् किञ्चिन्नचाप्यत्यन्तनिर्गुणं । उभयं सर्वकार्येषु दृश्यते साध्व साधु वा ॥ २१ ॥ यज देहि प्रजा-रक्ष धर्मं समनुपालय । अमित्रान् जहि कौन्तेय मित्राणि परिपालय ॥ २२ ॥ माच ते निघ्नतः शत्रून मन्युर्भवतु पार्थिव । न तत्र किल्बिषं किञ्चित् कर्तुर्भवति भारत ॥ २३ ॥

अर्थ—द्रौपदी के वचन को सुन कर अर्जुन न फिसलने वाले महाबाहु जेठे भाई का सम्मान कर के फिर बोले ॥१॥ हे महाराज दण्ड ही सारी प्रजाओं पर शासन करता है, दण्ड ही रक्षा करता है, दण्ड सोए हुओं में जागता है, बुधजन दण्ड को धर्म कहते हैं ॥ २ ॥ कई पापी राजदण्ड के भय से, कई परलोक के भय से, कई आपस के (=समाज के) भय से पाप नहीं करते हैं ॥ ३ ॥ कई ऐसे हैं, जो दण्ड के ही भय से एक दूसरे को खा नहीं जाते, सब घोर अन्धकार (घोर अन्याय) में डूब जाएं, यदि दण्ड न बचाता रहे ॥ ४ ॥ दण्ड जिस लिए न सिधे हुओं को सिधाता है, और दुष्टों को सीधा कर देता है, इस सिधाने और सीधा कर देने के हेतु बुधजन इस को दण्ड कहते हैं॥५॥ मनुष्यों को भूलों से बचाने और उन के स्वत्व की रक्षा के लिए लोक

में जो मर्यादा बांधी गई है, उसी का नाम दण्ड है ॥ ६ ॥ जहां श्याम मूर्ति लाल नेत्रों वाला दण्ड तय्यार पर तय्यार रहता है, वहां प्रजाओं में घबराहट नहीं होती, यदि दण्ड नेता ठीक २ देखता है ॥ ७ ॥ वैरियों के मर्म छेदे बिना, दुष्कर कर्म किये बिना, मछुए के समान मार काट किये बिना कोई भी महती श्री को नहीं पाता है (शत्रुओं में दण्ड ही फलता है) ॥ ८ ॥ इस लोक में मैं किसी को भी हिंसा के बिना जीविका करते नहीं देखता हूं। बलवत्तर प्राणी दुर्बल प्राणियों से जीविका करते हैं ॥९॥ (देखिये) नेउला चूहे को खाता है, बिल्ली नेउले को, कुत्ता बिल्ली को और चीता कुत्ते को खा जाता है ॥ १० ॥ यह सारी घटना दैव की ही तो बनाई हुई है, इस लिए विद्वान् इस में संशय विपर्यय में नहीं पड़ता. आप जैसी सृष्टि में हो(क्षत्रिय हो)हे राजेन्द्र तुम्हें वैसा ही होना चाहिये ॥ ११ ॥ तपस्वी भी तो हिंसा के बिना प्राणयात्रा नहीं करसकते ॥ १२ ॥ जल में बहुत से जीव हैं, पृथिवी पर हैं, फलों में हैं, भला कोई ऐसा है, जो इन को नहीं मारता है, तो फिर प्राणयात्रा के सिवाय और क्या कहें ॥ १३ ॥ कई ऐसे सूक्ष्मयोनि जीव हैं, जो केवल तर्क गम्य ही हैं (आंखों से दीख सकते ही नहीं), जो नेत्र की पलक के आघात से भी नष्ट होजाते हैं (फिर उन की हिंसा से कौन बच सकता है, इस लिए स्वभाव सिद्ध कर्म में जो हिंसा है, वह हिंसा नहीं, सो अपने स्वभाव सिद्ध दण्ड धर्म को तुम क्यों कर अधर्म मान सकते हो) ॥ १४ ॥ हे कौन्तेय ! मेरा यह पूर्ण विश्वास है, दण्ड प्रयोग करने पर ही सब लोगों के सारे कार्य सिद्ध होते हैं॥१५॥ चारों वर्ण की प्रजा की सुख वृद्धि के लिए, और सीधे मार्ग

पर चलाने के लिए, विधाता ने दण्ड का विधान किया है, जिस से भूमि पर धर्म अर्थ की रक्षा हो ॥ १६ ॥ यदि दण्ड न होता, तो ऊंट, बैल, घोड़े, खच्चर, गदहे सवारियों में जुत कर कभी वाहन न करते ॥ १७ ॥ यदि दण्ड न हो, तो न नौकर आज्ञा मानें, न कभी बालक आज्ञा मानें, न युवति धर्म में स्थिर रहे ॥ १८ ॥ जहां शत्रुओं का नाश करने वाला दण्ड यथार्थ प्रयुक्त हो कर घूमता है, वहां न झूठ, न पाप, न ठगी रहती है॥ १९ ॥ लोकयात्रा के लिए ही धर्म का प्रपंच किया गया है, (भलों को पीड़ा देने वाले को) न मारना भलों की हिंसा है, वहां धर्म का पक्ष लेना ही (आर्तपरित्राण ही) (हिंसा से बचे रहने की अपेक्षा) बढ़ कर उत्तम है ॥ २० ॥ कोई भी कार्य न निरा गुणों वाला है, न निरा गुण हीन है, सभी कार्यों में गुण अवगुण दोनों ही दीखते हैं ॥ २१ ॥ हे कौन्तेय ! आप यज्ञों का अनुष्ठान करें, दान दें, प्रजा की रक्षा करें, शत्रुओं का नाश करें, मित्रों का पालन करें, इस प्रकार आप धर्मोपार्जन करें ॥ २२ ॥ हे राजन् ! शत्रुओं को मारते हुए आप को मत कभी शोक हो, हे भारत ! इस में मारने वाले को कोई पाप नहीं लगता है ॥२३ ॥

अ० ३ (व० १९-३३) व्यासादि का युधिष्ठिर को उपदेश

मूल—युधिष्ठिर उवाच–भ्रातृसौहृदमास्थाय यदुक्तं वचनं त्वया । न्याय्यं युक्तं च कौन्तेय भीतो हं तेन तेऽर्जुन ॥ १ ॥ अनिर्देश्या गतिः सा तु यां प्रपश्यन्ति मोक्षिणः । तस्माद्योगः प्रधानेष्टः स तु दुःखं प्रवेदितुं ॥ २ ॥ कल्याण गोचरं कृत्वा मनस्तृष्णां निगृह्य च । कर्मसन्तति मुत्सृज्य स्यान्निरालंबनः सुखी।३।

देवस्थान उवाच—अजातशत्रो धर्मेण कृत्स्ना ते वसुधा जिता। तां जित्वा च वृथा राजन्न परित्यक्तु मर्हसि ॥ ४ ॥ चतुष्पदी हि निःश्रेणी ब्रह्मण्येव प्रतिष्ठिता। तां क्रमेण महाबाहो यथावज्जय पार्थिव ॥ ५ ॥ अद्रोहः सत्यवचनं संविभागो दयादमः। प्रजनं स्वेषु दारेषु मार्दवं ह्रीरचापलं ॥ ६ ॥ एवं धर्मं प्रधानेष्टं मनुःस्वायम्भुवोऽब्रवीत्। तस्मात् तत्प्रयत्नेन कौन्तेय प्रतिपालय ॥ ७ ॥ व्यास उवाच—बीभत्सोर्वचनं सौम्य सत्यमेतद् युधिष्ठिर। न हि गार्हस्थ्य मुत्सृज्य तवारण्यं विधीयते ॥ ८ ॥ वेदज्ञाने च ते कृत्स्नं तपश्चाचरितं महत्। पितृपैतामहं राज्यं धुर्यवद्वोढु मर्हसि ॥ ९ ॥ यज्ञो विद्या समुत्थानम संतोषः श्रियं प्रति। दण्डधारण मुग्रत्वं प्रजानां परिपालनं ॥ १० ॥ वेदज्ञानं तथा कृत्स्नं तपः सुचरितं तथा। द्रविणोपार्जनं भूरि पात्रे च प्रतिपादनं ॥ ११ ॥ एतानि राज्ञां कर्माणि सुकृतानि विशांपते। इमं लोक ममुंचैव साधयन्तीति नः श्रुतं ॥ १२ ॥ एषां ज्यायस्तु कौन्तेय दण्डधारण मुच्यते। अपिगाथा मिमां चापि बृहस्पति रगायत ॥ १३ ॥ भूमिरेतौ निगरति सर्पो बिलशयानिव। राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनं ॥ १४ ॥ अरण्ये दुःख वसतिरनुभूता तपस्विभिः। दुःखस्यान्ते नरव्याघ्र सुखान्यनु भवन्तु वै ॥ १५ ॥ धर्म मर्थं च कामं च भ्रातृभिः सह भारत। अनुभूय ततः पश्चात् प्रस्थातासि विशांपते ॥ १६ ॥ अधर्मरूपो धर्मो हि कश्चिदस्ति नराधिप। धर्मश्चा धर्मरूपोस्ति तच्च ज्ञेयं विपश्चिता ॥ १७ ॥ तस्मात्संस्तम्भयात्मानं श्रुतवानसि पाण्डव। देवैः पूर्वगतं मार्गमनुयातोसि भारत ॥१८॥ यो हि पाप समारम्भे कार्ये तद्भाव भावितः। कुर्वन्नपि तथैवस्यात् कृत्वा च निरपत्रपः ॥ १९ ॥ तस्मिंस्तत्कलुषं सर्वं समाप्तमिति

शब्दितं । प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति ह्रासो वा पापकर्मणः ॥२० ॥ त्वं तु शुक्लाभिजातीयः परदोषेण कारितः । अनिच्छमानः कर्मेदं कृत्वा च परितप्यसे ॥ २१ ॥ सेयं त्वामनुसंप्राप्ता विक्रमेण वसुन्धरा । निर्जिताश्च महीपाला विक्रमेण त्वयाऽनघ ॥ २२ ॥ तेषां पुराणि राष्ट्राणि गत्वा राजन् सुहृद्वृतः । भ्रातॄन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च स्वे स्वे राज्येऽभिषेचय ॥ २३ ॥ कुमारो नास्ति येषां च कन्यास्तत्राभिषेचय । कामाशयो हि स्त्रीवर्गः शोकमेवं प्रहास्यति ॥ २४ ॥ अवाप्तः क्षत्रधर्मस्ते राज्यं प्राप्तमकण्टकं । रक्षस्व धर्मं कौन्तेय श्रेयान् यः प्रेत्य भारत ॥ २५ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे अर्जुन भ्रातृप्रेम से जो तुम ने मुझे न्याय्य और युक्तियुक्त वचन कहा है, इस से मैं तुम पर प्रसन्न हूं ॥ १ ॥ किन्तु वह गति, जिस को मोक्ष वाले पाते हैं, वह (इस मार्ग से बहुत ऊंची है) वह कहने में नहीं आसकती, उस के लिए योग ही एक मात्र मुख्य उपाय है, उस का जानना सब के लिए कठिन है ॥ २ ॥ मन को सच्चे कल्याण में लगा कर तृष्णा को रोक कर, और कर्मजाल को त्याग कर,सारे टंटों से अलग हुआ पुरुष ही सुखी होता है ॥ ३ ॥ तब देवस्थान मुनि बोले—हे युधिष्ठिर ! आप ने धर्मानुसार सारी पृथिवी को जीता है, जीत कर अब उस को वृथा त्याग देना उचित नहीं है ॥ ४ ॥ देखो चार डंडों वाली सीढी (चार आश्रम) ब्रह्मलोक में पहुंचाती है, हे राजन् क्रमशः उस पर चढ़ो ॥ ५ ॥ स्वायम्भुव मनु ने यह मुख्य धर्म कहे हैं, किसी से द्रोह न करना, सत्य बोलना, दान, दया, इन्द्रियनिग्रह, अपनी स्त्री से सन्तान उत्पन्न करना, नम्रता, ह्री (गैरत) और धीरज । हे राजन् आप इन्हीं

का यत्न से पालन कीजिये ॥ ६-७ ॥ तब व्यास बोले—हे सौम्य युधिष्ठिर ! अर्जुन का कहना सत्य ही है, तेरे लिए इस समय गृहाश्रम को त्याग कर बन का विधान नहीं है ॥ ८ ॥ आप को वेद का पूरा ज्ञान है, तप भी बहुत किया है, इस समय धुरन्धर पुरुष के समान तुम्हें बाप दादे का राज्यभार ही उठाना उचित है ॥ ९ ॥ यज्ञ करना, विद्या प्राप्त करना, उत्साही होना, राज्य श्री की ओर कभी संतोष न होना (श्री के बढाने में ही लगे रहना), दण्ड धारना, उग्र (तेजस्वी) होना, प्रजाओं का पालन ॥ १० ॥ वेद का पूर्ण ज्ञान, तपश्चर्या, धन का उपार्जन और पात्र में दान ॥ ११ ॥ ये सब क्षत्रियों के पुण्य कर्म कहे हैं, जो इस लोक और परलोक के साधक हैं, यह हमने श्रुति का आशय समझा है ॥ १२ ॥ इनमें से हे राजन् दण्ड धारण सब से बढ कर कहा है, बृहस्पति ने भी इस विषय में यह गाथा गाई है॥ १३ ॥ जैसे सांप चूहों को निगलता है, इस प्रकार भूमि इन दोनों को निगल लेती है, जो राजा हो कर (शत्रुओं से) विरोध करने वाला नहीं, और ब्राह्मण हो कर प्रवासी नहीं ॥ १४ ॥ आप के भाइयों ने तपस्वी बन कर बन में दुःखवास भोगा है, अब वे दुःख के अन्त में हे नरवर सुख का उपभोग करें ॥ १५ ॥ हे भारत ! भाइयों के साथ मिल कर धर्म अर्थ काम का सेवन कर के पीछे प्रस्थान करना ॥ १६ ॥ कोई धर्म भी अधर्म रूप भासता है (जैसे यहां ही युद्ध में गुरुओं का मरवाना) कोई वस्तुतः अधर्म धर्म भासता है (जैसे डाकुओं को बन में से जाते सार्थ का मार्ग बताना) यह मर्म समझदार को समझना चाहिये ॥ १७ ॥ इस लिए धीरज धरो, हे पाण्डव तुमने शास्त्र सुने हैं, देवता जिस मार्ग

पर चले हैं, उसी मार्ग पर तुम चले हो ॥ १८ ॥ जो पाप की वासना से वासित हो कर पापकार्य में प्रवृत्त होता है, करता हुआ भी वैसी ही वासना रखता है, और कर के भी लज्जित नहीं होता ॥ १९ ॥ उस को वह पाप पूरा फल दिखाता है, यह शास्त्र में कहा गया है, उस के पापकर्म का न कोई प्रायश्चित्त है, न उस में कमी होती है ॥ २० ॥ तुम्हारा तो स्वभाव शुद्ध है, दूसरे (दुर्योधन) के दोष से यह तुम से कर्म करवाया गया है, तुम चाहते न थे, और करके भी तुम अनुतप्त हो रहे हो (तुम कैसे पापी हो) ॥ २१ ॥ यह भूमि तुम को (क्षत्रियोचित) पराक्रम से मिली है, और पराक्रम से हे निष्पाप तुम ने राजे जीते हैं ॥ २२ ॥ अब सुहृदों के साथ उन के पुरों और देशों में जाकर, उन के भाइयों, पुत्रों और पोतों को अपने २ राज्य में अभिषेक दो ॥ २३ ॥ जिन का कोई कुमार नहीं, वहां कन्याओं को अभिषेक दो, इस प्रकार पूर्णकाम हो कर स्त्रीवर्ग भी शोक को त्यागेगा ॥ २४ ॥ इस समय तुम ने क्षत्रियों का यथार्थ धर्म और निष्कण्टक राज्य दोनों पाए हैं, हे कौन्तेय अपने धर्म का पालन करो, जो परलोक में तुम्हारा कल्याणकारी हो ॥ २५ ॥

अ० ४ (व० ३७-३८) पाण्डवों का पुर प्रवेश

मूल—युधिष्ठिर उवाच—श्रोतुमिच्छामि भगवन् विस्तरेण महामुने । राजधर्मान् द्विजश्रेष्ठ चातुर्वर्ण्यस्य चाखिलान् ॥ १ ॥ धर्मचर्या च राज्यं च नित्यमेव विरुध्यते । एवं मुह्यति मे चेतश्चिन्तयानस्य नित्यशः ॥ २ ॥ व्यास उवाच—श्रोतुमिच्छसि चेद्धर्मं निखिलेन नराधिप । प्रैहि भीष्मं महाबाहो वृद्धं कुरुपितामहं ॥ ३ ॥

स ते धर्मरहस्येषु संशयान्मनसि स्थितान् । छेत्ता भागीरथी पुत्रः सर्वज्ञः सर्वधर्मवित् ॥ ४ ॥ तमभ्येहि पुरा प्राणान् सविमुञ्चति धर्मवित् ॥ ५ ॥ वासुदेव उवाच—नेदानीमसि निर्बन्धं शोके त्वं कर्तुमर्हसि । यदाह भगवान् व्यासस्तत्कुरुष्व नृपोत्तम ॥ ६ ॥ सुहृदामस्मदादीनां द्रौपद्याश्च परंतप । कुरुप्रिय ममित्रघ्न लोकस्य च हितं कुरु ॥ ७ ॥ एवमुक्तः स कृष्णेन राजा राजीवलोचनः । हितार्थं सर्वलोकस्य समुत्तस्थौ महामनाः ॥ ८ ॥ स तैः परिवृतो राजा नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः । धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य स्वपुरं प्रविवेश ह ॥ ९ ॥ ततो नवं रथं शुभ्रं कम्बलाजिनसंवृतं । युक्तं षोडशभिर्गोभिः पाण्डुरैः शुभलक्षणैः ॥ १० ॥ मन्त्रैरभ्यर्चितं पुण्यैः स्तूयमानश्च बन्दिभिः । आरुरोह यथा देवः सोमोऽमृतमयं रथं ॥११॥ जग्राह रश्मीन् कौन्तेयो भीमो भीमपराक्रमः । अर्जुनः पाण्डुरं छत्रं धारयामास भानुमत् ॥ १२ ॥ चामरव्यजने त्वस्य वीरौ जगृहतुस्तदा । चन्द्ररश्मिप्रभे शुभ्रे माद्रीपुत्रावलंकृते ॥ १३ ॥ रथं हेममयं शुभ्रं शैब्यसुग्रीवयोजितं । सह सात्यकिना कृष्णः समास्थायान्वयात् कुरून् ॥ १४ ॥ नरयानेन तु ज्येष्ठः पिता पार्थस्य भारत । अग्रतो धर्मराजस्य गान्धारी सहितो ययौ ॥ १५ ॥ कुरुस्त्रियश्च ताः सर्वाः कुन्ती कृष्णा तथैव च । यानै रुच्चावचैर्जग्मुर्विदुरेण पुरस्कृताः ॥ १६ ॥ ततो रथाश्च बहुला नागाश्च समलं कृताः । पादाताश्च हयाश्चैव पृष्ठतः समनुव्रजन् ॥ १७ ॥ अभियाने तु पार्थस्य नरैर्नगरवासिभिः । नगरं राजमार्गाश्च यथावत्समलं कृताः ॥ १८ ॥ पाण्डुरेण च माल्येन पताकाभिश्च मेदिनी । संस्कृतो राजमार्गोऽभूद्धूपनैश्च प्रधूपितः ॥ १९ ॥ कुम्भाश्च नगरद्वारि वारिपूर्णा नवा दृढाः । सिताः सुमनसो गौराः स्थापि-

तास्तत्र तत्र ह ॥ २० ॥ प्रवेशने तु पार्थानां जनानां पुरवासिनां। दिदृक्षूणां सहस्राणि समाजग्मुः सहस्रशः ॥ २१ ॥ स राजमार्गः शुशुभे समलंकृत चत्वरः । यथा चन्द्रोदये राजन् वर्धमानो महोदधिः ॥ २२ ॥ गृहाणि राजमार्गेषु रत्नवन्ति महान्ति च । प्राकम्पन्तीव भारेण स्त्रीणां पूर्णानि भारत ॥ २३ ॥ प्रविश्य भवनं राजा देवराजगृहोपमं । श्रद्धाविजयसंयुक्तं रथात् पश्चादवातरत् ॥ २४ ॥ ततः पुण्याह घोषोऽभूद् दिवं स्तब्ध्वेव भारत । सुहृदां प्रीतिजननः पुण्यः श्रुति सुखावहः ॥ २५ ॥ ततो दुन्दुभि निर्घोषः शंखानां च मनोरमः । जयं प्रवदतां तत्र स्वनः प्रादुर भून्नृप ॥ २६ ॥

अर्थ--युधिष्ठिर बोले, भगवन् महामुने ! मैं राजधर्मों और चारों वर्णों के सारे धर्मों को सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥ धर्मचर्या और राज्य परस्पर विरोधी हैं, यही सोचते हुए मेरे चित्त को सदा मोह होता रहता है ॥ २ ॥ व्यास बोले—हे राजन् ! यदि तुम्हें सम्पूर्ण धर्म जानने की इच्छा हुई है, तो तुम कुरुपितामह वृद्ध भीष्म के निकट जाओ ॥ ३ सर्व धर्मवित् भीष्म धर्म के रहस्यों के विषय में आप के मन में जितने संदेह हैं, उन सब को काटेंगे ॥ ४ ॥ परन्तु उस महात्मा के प्राण त्यागने से पहले ही तुम उस के निकट पहुंचो ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे महाराज ! अब बीते शोक के विषय में आप को बहुत आग्रह नहीं करना चाहिये, जो भगवान् व्यास कहते हैं, वह कीजिये ॥ ६ ॥ हे शत्रुनाशन हे परंतप ! अस्मदादि सुहृदों का और द्रौपदी का प्रियकर और सारे जगत् का हितकर कर्म कीजिये ॥७॥ कृष्ण के वचन सुन कमलनेत्र विशाल हृदय राजा सारे लोगों के हित

के लिए उठ खड़ा हुआ ॥ ८ ॥ और तारों से घिरे चन्द्र के समान भाइयों और ऋषियों से घिरा हुआ धृतराष्ट्र को आगे कर के पुर में प्रविष्ट होने को तय्यार हुआ ॥ ९ ॥ तब शुभ लक्षणों वाले सोलह बैलों से जुते हुए, कम्बल और अजिन से युक्त श्वेत वर्ण नए रथ पर युधिष्ठिर पवित्र मन्त्रों की ध्वनि और बन्दियों के स्तोत्र सुनते हुए आरूढ हुए, जैसे चन्द्रदेव आकाश पर आरूढ होते हैं ॥ १०—११ ॥ भीम पराक्रम वाले भीम ने रासें पकड़ीं, अर्जुन मणि रत्नों से भूषित श्वेत छत्र पकड़ कर पीछे खड़े हुए ॥ १२ ॥ वीर नकुल और सहदेव चन्द्ररश्मियों के तुल्य प्रभा वाले दो श्वेत चंवर पकड़ कर दोनों ओर खड़े हो डुलाने लगे ॥ १३ ॥ शैब्य और सुग्रीव घोड़ों को जोड़ कर सुवर्ण भूषित शुभ्र रथ पर श्रीकृष्ण सात्यकि समेत आरूढ़ हो कर पीछे चले ॥ १४ ॥ धृतराष्ट्र और गान्धारी पालकियों पर आरूढ हो युधिष्ठिर के आगे २ चले ॥ १५ ॥ कुरुस्त्रियें सारी तथा कुन्ती और द्रौपदी भिन्न २ यानों से विदुर के साथ गईं ॥ १६ ॥ पीछे बहुत से रथ, सजे हुए हाथी, प्यादे और घोड़े चले॥ १७ ॥ उस समय सारा नगर और राज मार्ग नगरवासियों ने सजा दिये थे ॥१८॥ श्वेत मालाओं और झंडियों से राजमार्ग सजा हुआ धुखते धूपों से महक रहा था ॥ १९ ॥ नगरद्वार में जल से भरे नए दृढ घड़े, और जहां तहां श्वेत पुष्प थे ॥ २० ॥ पाण्डवोंके प्रवेश के समय अनगिनत पुरवासी जन देखने के लिए इकट्ठे हुए ॥ २१ ॥ राजमार्ग और मनुष्यों से भरे उस के चौतरे चन्द्रोदय के समय बढे हुए समुद्र की भांति शोभा पाने लगे ॥ २२ ॥ राजमार्गों पर लटकती रत्नों की झालरों वाले घर स्त्रियों के समूहों से पूर्ण हुए

ऐसे जान पड़ते थे, मानों हिल रहे हैं ॥ २३ ॥ (पूर्वजों का भवन होने के हेतु) श्रद्धा से और (अब) विजय से युक्त, देवराज के भवन के तुल्य भवन में प्रवेश कर के राजा पीछे रथ से उतरे ॥ २४ ॥ तब हे भारत ! सुहृदों को आनन्दित करने वाली कानों को सुख देने वाली पुण्याह वाचन की ध्वनि गूंजने लगी ॥ २५ ॥ अनन्तर दुन्दुभियों की ध्वनि शंखों की ध्वनि और जय २ कार की ध्वनि चारों ओर गूंज गई ॥ २६ ॥

अ० ५ (वृ० ४०-५१) राज्य प्रवन्ध विधान करके भीष्म के निकट गमन

मूल—दाशार्हेणाभ्यनुज्ञातस्तत्र धौम्यः पुरोहितः । जुहाव पावकं धीमान् विधिमन्त्र पुरस्कृतं ॥ १ ॥ तत उत्थाय दाशार्हः शंखमादाय पूजितं । अभ्यषिंचत्पतिं पृथ्व्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरं ॥ २ ॥ ततो निष्कसहस्रेण ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयन् । वेदाध्ययनसंपन्नान् धृतिशील समन्वितान् ॥ ३ ॥ ततः समर्चितः सद्भिर्धर्मराजो युधिष्ठिरः । प्रतिपेदे महद्राज्यं सुहृद्भिः सह भारत ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर उवाच—धृतराष्ट्रो महाराजः पिता मे दैवतं परं । शासनेऽस्य प्रिये चैव स्थेयं मत्प्रिय कांक्षिभिः ॥ ५ ॥ यदि चाहमनुग्राह्यो भवतां सुहृदां तथा । धृतराष्ट्रं यथापूर्वं वृत्तिं वर्तितुमर्हथ ॥ ६ ॥ एष नाथो हि जगतां भवतां च मया सह । अस्यैव पृथिवी कृत्स्ना पाण्डवाः सर्व एव च ॥ ७ ॥ पौरजान पदान् सर्वान् विसृज्य कुरुनन्दनः । यौवराज्येन कौन्तेयं भीमसेन मयोजयत् ॥ ८ ॥ मन्त्रे च निश्चये चैव षाड् गुण्यस्य च चिन्तने । विदुरं बुद्धि संपन्नं प्रीतिमान् स समादिशत् ॥ ९ ॥ कृताकृत परि-

ज्ञाने तथाऽऽयव्यय चिन्तने। संजयं योजयामास वृद्धं सर्वगुणैर्युतं ॥ १० ॥ बलस्य परिमाणे च भक्तवेतनयोस्तथा। नकुलं व्यादिशद्राजा कर्मणां चान्ववेक्षणे ॥ ११ ॥ परचक्रोपरोधे च दुष्टानां चावमर्दने। युधिष्ठिरो महाराज फाल्गुनं व्यादिदेश ह ॥ १२ ॥ द्विजानां देवकार्येषु कार्येष्वन्येषु चैव ह। धौम्यं पुरोधसां श्रेष्ठं नित्यमेव समादिशत् ॥ १३ ॥ सहदेवं समीपस्थं नित्यमेव समादिशत्। तेन गोप्यो हि नृपतिः सर्वावस्थो विशांपते ॥ १४ ॥ सभाः प्रपाश्च विविधास्तटाकानि च पाण्डवाः। सुहृदां कारयामास सर्वेषामौर्ध्व देहिकं ॥ १५ ॥ याश्च तत्रस्त्रियः काश्चिद्धत वीरा हतात्मजाः। सर्वास्ताः कौरवो राजा संपूज्याऽपालयद् घृणी ॥ १६ ॥ दीनान्ध कृपणानां च गृहाच्छादन भोजनैः। आनृशंस्य परो राजा चकारानुग्रहं प्रभुः ॥ १७ ॥

अर्थ—अब श्रीकृष्ण की अनुज्ञा से धौम्य पुरोहित ने विधि पूर्वक मन्त्रों से हवन कराया ॥ १ ॥ अनन्तर श्रीकृष्ण उठे, और पूजित शंख से युधिष्ठिर का राज्याभिषेक किया ॥२॥ और वेदाध्ययन किये हुए धैर्य और शीलवान् ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया और सहस्रों मुहरें दीं ॥ ३ ॥ तब प्रजा के प्रतिष्ठित पुरुषों से पूजा पाकर राजा युधिष्ठिर ने सुहृदों समेत उस बड़े राज्य को स्वीकार किया ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर बोले—मेरे पिता महाराज धृतराष्ट्र मेरे परम देवता हैं, आप को इन के शासन में और हित में रहना चाहिये, यही मेरा प्रिय करना है ॥ ५ ॥ यदि आप सुहृदों का मैं अनुग्राह्य हूं, तो धृतराष्ट्र के विषय में वही पहला बर्ताव आप को रखना चाहिये ॥६॥ यही जगत् के मेरे और आप के नाथ हैं, सारा राज्य इन्हीं का है, और पाण्डव

मारे भी इन्हीं के हैं ॥ ७ ॥ फिर पुर और देश के प्रजाजनों को विदा करके युधिष्ठिर ने भीमसेन को यौवराज्य में अभिषेक दिया ॥ ८॥ मन्त्र में कार्य निश्चय में और छः गुणों के विचार में बुद्धिमान् विदुर को नियत किया ॥ ९ ॥ बन चुके और बनने योग्य के जानने और आय व्यय के चिन्तन में सर्वगुण सम्पन्न वृद्ध संजय को युक्त किया ॥ १० ॥ सेना का परिमाण रखने, उन्हें भक्त (रसद) और वेतन देने और सेना सम्बन्धी अन्य कर्मों के निरीक्षण में नकुल को नियुक्त किया ॥ ११ ॥ शत्रुओं के आक्रमण को रोकने और आक्रमण करने और दुष्टों के दमन करने में अर्जुन को नियत किया ॥ १२ ॥ द्विजों के जो देवकार्य और दूसरे धर्मकार्य हैं, उन के पूरा करने में पुरोहितवर धौम्य को नियुक्त किया ॥ १३ ॥ सहदेव को अपने पास रख कर अंगरक्षक नियत किया ॥ १४ ॥ अब जो युद्ध में सुहृद मरे थे, उन के नाम पर अलग २ धर्मशाले, प्याउ और तालाब लगवाए ॥ १५ ॥ स्त्रियें जिन के पति और पुत्र युद्ध में मारे गए थे, दयालु राजा ने उन सब की जीविका का प्रबन्ध किया॥१६॥ और दयापरायण राजा ने दीन अंधे और अनाथों के गृह भोजन और आच्छादन का प्रबन्ध किया ॥ १७ ॥

मूल—ततः स च हृषीकेशः स च राजा युधिष्ठिरः। कृपादयश्च ते सर्वे चत्वारः पाण्डवाश्च ते ॥ १८॥ रथैस्तैर्नगर प्रख्यैः पताकाध्वज शोभितैः। ययुराशु कुरुक्षेत्रं वाजिभिः शीघ्रगामिभिः ॥ १९ ॥ तेऽवतीर्य कुरुक्षेत्रं केशमज्जास्थि संकुलं। देहन्यासः कृतोयत्र क्षत्रियैस्तैर्महात्मभिः ॥ २० ॥ ततस्ते ददृशुर्भीष्मं शरप्रस्तरशायिनं। स्वरश्मिजाल संवीतं सायं सूर्यसमप्रभं॥२१॥

उपास्यमानं मुनिभिर्देवैरिव शतक्रतुं । देशे परम धर्मिष्ठे नदीमोघवतीं मनु ॥ २२ ॥ दूरादेव तमालोक्य कृष्णो राजा च धर्मजः । चत्वारः पाण्डवाश्चैव ते च शारद्वतादयः ॥ २३ ॥ अवस्कन्द्याथ वाहेभ्यः संयम्य प्रचलं मनः । एकीकृत्येन्द्रियग्राम मुपतस्थुर्महामुनीन् ॥ २४ ॥ परिवार्य ततः सर्वे निषेदुः पुरुषर्षभाः ॥ २५ ॥ ततो निशाम्य गांगेयं शाम्यमान मिवानलं । किञ्चिद्दीन मना भीष्म मितिहोवाच केशवः ॥ २६ ॥ कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि यथापुरा । शराभिघातदुःखार्त्ते कच्चिद्गात्रं न दूयते ॥२७॥ मनुष्येषु मनुष्येन्द्र न दृष्टो न च मे श्रुतः । भवतो वा गुणैर्युक्तः पृथिव्यां पुरुषः क्वचित् ॥ २८ ॥ तदस्य तप्यमानस्य ज्ञातीनां संक्षयेण वै । ज्येष्ठस्य पाण्डुपुत्रस्य शोकं भीष्म व्यपानुद ॥२९॥ ये हि धर्माः समाख्याताश्चातुर्वर्ण्यस्य भारत । चातुराश्रम्य संयुक्ताः सर्वे ते विदितास्तव ॥ ३० ॥ देशजाति कुलानां च जानीषे धर्म लक्षणं । वेदोक्तो यश्च शिष्टोक्तः सदैव विदितस्तव ॥ ३१ ॥ इतिहास पुराणार्थाः कार्त्स्न्येन विदितास्तव । धर्मशास्त्रं च सकलं नित्यं मनसि ते स्थितं ॥ ३२ ॥ ये च केचनलोकेऽस्मिन्नर्थाः संशयकारकाः । तेषां छेत्ता नास्ति लोके त्वदन्यः पुरुषर्षभ ॥ ३३ ॥ तज्ज्ञाति शोकोपहत श्रुताय सत्याभि सन्धाय युधिष्ठिराय । प्रब्रूहि धर्मार्थ समाधियुक्तं सत्यं वचोऽस्यापनुदाशु शोकं ॥ ३४ ॥

अर्थ—अनन्तर श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिर कृपाचार्यादि और चारों पाण्डव, झंडी झंडों से शोभित नगर समान रथों में शीघ्रगामी घोड़े जोड़ कर कुरुक्षेत्र को गए ॥ १८—१९ ॥ वे केश चर्बी और हड्डियों से भरे कुरुक्षेत्र में पहुंचे, जहां महात्मा क्षत्रियों ने देह त्याग किया था ॥ २० ॥ फिर उन्होंने बाण शय्या पर सोए

भीष्म को देखा, जो सायंकालीन सूर्य के समान अपने तेज समूह से भरे थे, ओघवती नदी के निकट परमपुनीत देश में मुनियों से घिरे थे, जैसे इन्द्र देवताओं से ॥ २२ दूर से ही उन को देख कर श्रीकृष्ण युधिष्ठिर उन के चारों भाई और कृप आदि वाहनों से उतर कर इन्द्रिय समूह को रोक मन को एकाग्र कर महा मुनियों के निकट पहुंचे ॥ २४ ॥ और वे पुरुषवर भीष्म के चारों ओर बैठ गए ॥ २५ ॥ अनन्तर धीरे २ ठंडी होने लगी अग्नि के समान भीष्म को देख कर किंचित् दीन मन हो कर भीष्म से बोले ॥ २६ ॥ आप के ज्ञानेन्द्रिय वैसे प्रसन्न हैं, जैसे पूर्व थे, बाणों की चोट से क्या आप का शरीर पीड़ित तो नहीं होरहा ॥ २७ ॥ हे नरेन्द्र मैंने मनुष्यों में आप जैसे गुणों वाला कोई पुरुष न कहीं देखा न सुना है ॥ २८ ॥ आप इस ज्ञातिनाश से संतप्त हुए युधिष्ठिर के शोक को दूर कीजिये ॥ २९ ॥ हे भारत जो धर्म चारों वर्णों और चारों आश्रमों के बतलाए गए हैं, वे सब आप को विदित हैं ॥ ३० ॥ आप देश जाति और कुलों के धर्मों को जानते हैं, वेदों से कहा और वैदिकों से कहा सब धर्म आप को विदित है ॥ ३१ ॥ इतिहास और पुराणों की सब बातें आप को विदित हैं, और धर्मशास्त्र सारा सदा आप के मन में स्थित है ॥ ३२ ॥ इस लोक में जो बातें संशयजनक हैं, उन का काटने वाला आप से भिन्न और कोई नहीं है॥३३॥ जो ज्ञातियों के शोक से धर्म में व्यामोहित हुए सत्यवादी युधिष्ठिर को आप धर्म अर्थ और ज्ञान युक्त सत्य वचन उपदेश कर के इस का शोक दूर कीजिये ॥ ३४ ॥

अ० ६ (व० ५५) राजधर्म

मूल-भीष्म उवाच—हन्त धर्मान् प्रवक्ष्यामि दृढे वाङ्मनसी मम। युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा मां धर्माननुपृच्छतु ॥ १ ॥ एवमुक्तस्तु भीष्मेण धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः। विनीतवदुपागम्य तस्थौ संदर्शनेऽग्रतः ॥ २ ॥ अथास्य पादौ जग्राह भीष्मश्चापि ननन्द तं। मूर्धिन चैन मुपाघ्राय निषीदेत्य ब्रवीत्तदा ॥ ३ ॥ तमुवाचाथ गांगेयो वृषभः सर्व धन्विनां। मां पृच्छ तात विश्रब्धं माभैस्त्वं कुरुसत्तम ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर उवाच—राज्ञां वै परमो धर्म इति धर्म विदोविदुः। महान्तमेनं भारं च मन्ये तद् ब्रूहि पार्थिव ॥ ५ ॥ यथा हि रश्मयोऽश्वस्य द्विरदस्यांकुशो यथा। नरेन्द्र धर्मो लोकस्य तथा प्रग्रहणं स्मृतं ॥ ६ ॥ तत्र चेत्संप्रमुह्येत धर्मे राजर्षि सेविते। लोकस्य संस्था न भवेत्सर्वं च व्याकुली भवेत्॥ ७ ॥ तदग्रे राजधर्मान् हि मदर्थे त्वं पितामह। प्रब्रूहि भरतश्रेष्ठ त्वं हि धर्मभृतांवरः ॥ ८ ॥ भीष्म उवाच—शृणु कार्त्स्न्येन मत्तस्त्वं राजधर्मान् युधिष्ठिर। निरुच्यमानियतो यच्चान्यदपि वाञ्छसि ॥ ९ ॥ आदावेव कुरुश्रेष्ठ राज्ञा रञ्जनकाम्यया। देवतानां द्विजानां च वर्तितव्यं यथा विधि ॥ १० ॥ उत्थानेन सदा पुत्र प्रयतेथा युधिष्ठिर। न ह्युत्थान मृते दैवं राज्ञामर्थं प्रसाधयेत्॥ ११ ॥ विपन्ने च समारम्भे संतापं मास्म वै कृथाः। घटस्वैव सदात्मानं राज्ञामेष परो नयः ॥ १२ ॥ न हि सत्यादृते किञ्चिद्राज्ञां वै सिद्धि कारकं। सत्ये हि राजा निरतः प्रेत्य चेह च नन्दति ॥ १३ ॥ गुणवान् शीलवान् दान्तो मृदुर्धर्म्यो जितेन्द्रियः। सुदर्शः स्थूललक्ष्यश्च न भ्रश्येत सदा श्रियः ॥ १४ ॥ मृदुर्हि राजा सततं लंघ्यो भवति सर्वश। तीक्ष्णाच्चोद्विजते लोकस्तस्माद्धु भय माश्रय ॥ १५ ॥

उद्यम्य शस्त्रमायान्तमपि वेदान्तगं रणे । निगृह्णीयात् स्वधर्मेण धर्मापेक्षी नराधिपः ॥ १६ ॥ यथा हि गर्भिणी हित्वा स्वं प्रियं मनसोनुगं । गर्भस्य हितमाधत्ते तथा राज्ञाप्य संशयं ॥ १७ ॥ वर्तितव्यं कुरुश्रेष्ठ सदा धर्मानुवर्तिना । स्वं प्रियं तु परित्यज्य यद्यल्लोकहितं भवेत् ॥ १८ ॥ न संत्याज्यं च ते धैर्यं कदाचिदपि पाण्डव । धीरस्य स्पष्ट दण्डस्य न भयं विद्यते क्वचित्॥१९॥ अवमन्यन्ति भर्तारं संघर्षादुपजीविनः । स्वे स्थाने न च तिष्ठन्ति लंघयन्ति च तद्वचः ॥ २० ॥ प्रेष्यमाणा विकल्पन्ते गुह्यं चाप्यनुयुञ्जते । उत्कोचैर्वञ्चनाभिश्च कार्याण्यनु विहन्ति च ॥ २१ ॥

अर्थ—अहो मैं धर्म कहूंगा, मेरे मन और वाणी दृढ हैं, पर धर्मात्मा युधिष्ठिर स्वयं मुझ से धर्म पूछे ॥ १ ॥ भीष्म का वचन सुन धर्मराज युधिष्ठिर ने विनीतभाव से भीष्म के संमुख आ चरण छू कर प्रणाम किया, भीष्म ने भी प्रसन्न हो कर उस का सिर चूमा, और बैठने की आज्ञा दी ॥ २—३ ॥ (बैठ जाने पर) धनुर्धारियों में श्रेष्ठ भीष्म उस से बोले, हे तात ! तुम कुछ भी भय न करो, विश्वस्त हो कर मुझ से पूछो ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे पितामह धर्म के जानने वाले राजाओं के धर्म को परम धर्म कहते हैं, मैं इस भार को बड़ा भारी मानता हूं, सो मुझे कहिये ॥ ५ ॥ जैसे घोड़े को लगाम और हाथी को अंकुस स्थित रखता है, वैसे राजधर्म सब लोगों का नियन्ता माना गया है ॥ ६ ॥ सो इस राजर्षियों से सेवित धर्म में यदि भूल हो, तो लोक की कोई संस्था स्थिर नहीं रहती, सब उलट पलट होजाता है ॥ ७ ॥ सो हे पितामह ! पहले आप मेरे लिए राजधर्म ही

कहिये, आप धर्मधारियों में श्रेष्ठ हैं ॥ ८ ॥ भीष्म बोले—हे युधिष्ठिर सम्पूर्ण राजधर्म तथा और भी जो तुम्हारी सुनने की इच्छा हो, सावधान हो कर मुझ से सुनो ॥ ९ ॥ हे कुरुवर राजा को प्रथम प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए देवता और ब्राह्मणों में यथा विधि वर्तना चाहिये (यज्ञ दानादि करने चाहिये) ॥ १० ॥ हे पुत्र युधिष्ठिर सदा पुरुषार्थ से यत्न करना, उद्योग के बिना केवल दैव से राजाओं के काम नहीं सिद्ध हो सकते ॥ ११ ॥ यदि आरम्भ किया कर्म निष्फल जावे, तौ भी मन में दुःखित न हो कर सदा उस में लगा रह (पूरा कर के ही छोड़) यही राजाओं की परम नीति है ॥ १२ ॥ सत्य के अतिरिक्त और कुछ भी राजाओं का कार्यसाधक नहीं है, सत्य में प्रीति वाला राजा यहां और परलोक में आनन्दित होता है ॥ १३ ॥ गुणवान्, शीलयुक्त, संयमी, मृदु, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, प्रसन्न वदन, उदार हृदय कभी श्रीभ्रष्ट नहीं होता है ॥ १४ ॥ राजा निरा मृदु हो, तो लोग उस की परवाह नहीं करते, निरा कठोर हो, तो उस से परे रहते हैं, इस लिए दोनों भावों का सहारा लिये रहो ॥ १५ ॥ शस्त्र उठा कर जो रण में मारने को आ रहा है, चाहे वह वेद के पार पहुंचा हुआ भी हो, धर्म पर दृष्टि रखने वाला राजा उस को अपने धर्म से दण्ड देवे ॥ १६ ॥ जैसे गर्भिणी अपने मन का प्रिय त्याग कर गर्भ का कल्याण चाहती है, वैसे राजा भी सदा धर्मानुसार अपना प्रिय त्याग कर, वह काम करे, जिस में प्रजा का हित हो ॥ १७—१८ ॥ हे पाण्डव तुझे धैर्य कभी नहीं छोड़ना चाहिये, धीर और विजयार्थ दण्ड(सेना आदि)रखने से राजा को कहीं से भय नहीं होता है ॥ १९ ॥

बहुत संघर्ष (हंसी ठट्ठे तक के मेल जोल) से सेवक अपमान करने लग जाते हैं, अपने पद पर नहीं ठहरते, और उस की आज्ञा का लंघन करते हैं ॥ २० ॥ आज्ञा देने पर विकल्प उठाते हैं, गुह्य बातों के पूछने का भी साहस करते हैं । घूस और ठगियों से व्यवहार बिगड़ते हैं ॥ २१ ॥

अ० ७ (व० ५६–५८) राजधर्म

मूल—गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्य मजानतः । उत्पथ प्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शाश्वतः ॥ १ ॥ न हिंस्यात् पर वित्तानि देयं काले च दापयेत् । अभृतानां भवेद् भर्ता भृतानां चान्ववेक्षकः ॥ २ ॥ शूरान् भक्तानसंहार्यान् कुलेजातानरोगिणः । विद्याविदो लोकविदः परलोकान्व वेक्षकान् ॥ ३ ॥ सहायान् सततं कुर्याद्राजा भूतिं परिष्कृतः । तैश्च तुल्यो भवेद्भोगैश्छत्र मात्राज्ञयाधिकः ॥ ४ ॥ सर्वाभिशंकी नृपतिर्यश्च सर्वहरो भवेत्। सक्षिप्र मनृजुर्लुब्धः स्वजनेनैव बध्यते ॥ ५ ॥ शुचिस्तु पृथिवीपालो लोकचित्त ग्रहे रतः । न पतत्यरिभिर्ग्रस्तः परितश्चावतिष्ठते ॥ ६ ॥ पुत्राइव पितुर्गेहे विषये यस्य मानवाः । निर्भया विचरिष्यन्ति स राजा राजसत्तमः ॥ ७ ॥ अगूढविभवा यस्य पौराराष्ट्र निवासिनः । नयापनयवेत्तारः स राजा राजसत्तमः ॥ ८ ॥ वश्या नेया विधेयाश्च न च संघर्षशीलिनः । विषये दानरुचयो नरा यस्य स पार्थिवः ॥ ९ ॥ न यस्य कूटं कपटं न माया न च मत्सरः । विषये भूमिपालस्य तस्य धर्माः सनातनाः ॥ १० ॥ यः सत्करोति ज्ञानानि ज्ञेये परहिते रतः । सतां वर्त्मानुगस्त्यागी स राजा राज्य मर्हति ॥ ११ ॥ चारश्च प्रणिधिश्चैव काले दान ममत्सरात् ।

युक्त्या दानं नचादानमयोगेन युधिष्ठिर ॥ १२ ॥ सतां संग्रहणं शौर्यं दाक्ष्यं सत्यं प्रजाहितं । अनार्जवैरार्जवैश्च शत्रुपक्षस्य भेदनं ॥ १३ ॥ केतनानां च जीर्णानामवेक्षा चैव सीदतां । द्विविधस्य च दण्डस्य प्रयोगः कालचोदितः ॥ १४ ॥ साधूनामपरित्यागः कुलीनानां च धारणं।निचयश्च निचेयानां सेवा बुद्धिमतामपि॥१५॥ बलानां हर्षणं नित्यं प्रजाना मन्ववेक्षणं । कार्येष्वखेदः कोशस्य तथैव च विवर्धनं ॥ १६ ॥ नीतिधर्मानुसरणं नित्यमुत्थान मेव च ॥ १७ ॥ उत्थानवीरः पुरुषो वाग्वीरान धितिष्ठति। उत्थान वी-रान् वाग्वीरा रमयन्त उपासते ॥ १८ ॥ उत्थान हीनो राजा हि बुद्धिमानपि नित्यशः । प्रधर्षणीयः शत्रूणां भुजंग इव निर्विषः ॥ १९ ॥ न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोपि बलीयसा । अल्पोपि हि दहत्यग्निर्विषमल्पं हिनस्ति च ॥ २० ॥ एष ते राजधर्माणां लेशः समनुवर्णितः । भूयस्ते यत्र संदेहस्तद्ब्रूहि कुरुसत्तम ॥ २१ ॥ यु०उ०श्व इदानीं स्वसंदेहं प्रक्ष्यामि त्वां पितामह॥२२॥प्रदक्षिणी कृत्य महानदीसुतं ततो रथानारुरुहुर्मुदान्विताः । उपास्य सन्ध्यां विधिवत्परंतपास्ततः पुरं ते विविशुर्गजाह्वयं ॥ २३ ॥

अर्थ-पूजनीय पुरुष भी जब अभिमानी हो, कार्य अकार्य को न जाने कुमार्ग में चले, तो उस को पूरा दण्ड देना चाहिये ॥ १ ॥ पराये धन का लालच न करे, और देने योग्य (वेतन वा पारितोषिक) समय पर देवे, यदि किसी (सेवक वा पात्र) की पालना नहीं होती है, तो उस की पालना करे, जिन की पालना हो रही है, उन का ध्यान रखे ॥ २ ॥ जो शूर भक्त, न बहकने वाले, कुलीन, अरोगी, विद्वान्, लोकव्यवहार के जानने

वाले, परलोक पर दृष्टि रखने वाले पुरुषों को ही सदा अपने साथी बनाए, भोगों में उन के बराबर केवल छत्र के नीचे बैठ कर आज्ञा देने में उन से अधिक हो ॥ ३—४ ॥ जो राजा सब पर शंका रखने वाला और सब से छीनने वाला हो, वह टेढ़ी चाल वाला लालची अपने ही लोगों से मारा जाता है ॥ ५ ॥ जो राजा शुद्ध चरित्र है, और लोगों के चित्तों को अपनी ओर खींचे हुए है, वह चारों ओर से शत्रुओं से ग्रसा हुआ भी कभी नहीं गिरता है, बराबर खड़ा रहता है ॥ ६ ॥ जिस के देश में प्रजाजन ऐसे निर्भय हो कर विचरते हैं, जैसे पिता के घर में पुत्र हों, वह राजा राजाओं में श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥ जिस के देश में प्रजाजन अपने धनों को छिपाते नहीं, तथा नीति और अपनीति के जानने वाले हैं, वह राजा राजसत्तम है ॥ ८ ॥ जिस की सारी प्रजा अधीन है, नीति पर चलने वाली है, आज्ञा कारी है, लड़ाई झगड़े नहीं उठाती है और दान में रुचि वाली है, वह सच्चा राजा है ॥ ९ ॥ जिस राजा के राज्य में झूठ, कपट छल मत्सर नहीं होते, वह राजाओं के सनातन धर्म पर स्थित है ॥ १० ॥ जो विद्याओं का आदर करता है, ज्ञान के बढ़ाने और प्रजा के हित में तत्पर है, साधुओं के मार्ग पर चलता है, और त्यागी है, वह राजा राज्य के योग्य होता है ॥ ११ ॥ गुप्तचर, दूत, समयानुसार मत्सर रहित हो कर दान देना, युक्ति से देना, और न युक्ति के बिना लेना ॥ १२ ॥ भले पुरुषों का संग्रह, शौर्य, फुर्तीलापन, सत्य, प्रजा का हित, शत्रुपक्ष को टेढ़े वा सरल सभी उपायों से फोड़ देना ॥ १३ ॥ पुराने और टूटे ऐतिहासिक स्थानों की निरीक्षा, शारीरिक दण्ड और अर्थ दण्ड का समयानुसार प्रयोग

॥ १४ ॥ भलों और कुलीनों का त्याग न कर के उन को कार्यों पर लगाना, सब प्रकार के भंडार भरते रहना, बुद्धिमानों की सेवा ॥ १५ ॥ सैनिकों को उत्साहित करते रहना, प्रजाओं की अवस्था को देखते रहना, कार्यों में कभी न थकना, कोश को बढ़ाते रहना ॥ १७ ॥ नीति मार्ग का अनुगामी होना, लगातार उद्योग करना राजा का कर्तव्य है ॥ १७ ॥ उद्योग वीर पुरुष वाग्वीरों पर राज्य किया करते हैं, और वाग्वीर पुरुष उद्योगवीरों को (अपने वचनों से) प्रसन्न करते हुए उन की सेवा किया करते हैं ॥ १८ ॥ उद्योग हीन राजा चाहे बुद्धिमान् भी हो, तो भी निर्विष सर्प की भांति शत्रुओं से दबाया जाता है ॥१९॥ स्वयं बहुत बल वाले हो कर भी दुर्बल शत्रु की भी बेपरवाही नहीं करनी चाहिये, तनिक भी चिंगाड़ी जला देती है और थोड़ा भी विष मार डालता है ॥ २० ॥ यह तुझे राजधर्मों का संक्षेप कहा है, और जिस बात में तुझे संदेह है, वह कहो हे कुरुवर ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे पितामह कल अब मैं आप से अपना संदेह पूछूंगा ॥ २२ ॥ अनन्तर वे भीष्म की प्रदक्षिणा करके प्रसन्नता से रथों पर चढ़े, और यथा विधि नदी पर सन्ध्या उपास कर हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुए ॥ २३ ॥

अ० ८ (त्र० ६०-६५) वर्णों और आश्रमों के धर्म

मूल—ततः पुनः स गांगेय मभिवाद्य पितामहं । प्राञ्जलिर्नियतो भूत्वा पर्य पृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ के धर्माः सर्व वर्णानां चातुर्वर्ण्यस्य के पृथक् । चातुर्वर्ण्याश्रमाणां च राजधर्माश्च के मताः ॥ २ ॥ भीष्म उवाच—अक्रोधः सत्यवचनं संविभागः क्षमा तथा।

प्रजनः स्वेषु दारेषु शौचमद्रोह एव च ॥ ३ ॥ आर्जवं भृत्यभरणं नवैते सार्ववर्णिकाः । ब्राह्मणस्य तु यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि केवलं ॥ ४ ॥ दममेव महाराज धर्ममाहुः पुरातनं । स्वाध्यायाभ्यसनं चैव तत्र कर्म समाप्यते ॥ ५ ॥ तं चेद्धन मुपागच्छेद्वर्तमानं स्वकर्मणि । कुर्वीतापत्य संतान मथोदद्याद्यजेत च ॥ ६ ॥ क्षत्रियस्यापि यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि भारत । दद्याद्राजन् न याचेत यजेत न च याजयेत् ॥ ७ ॥ नाध्यापयेदधीयीत प्रजाश्च परिपालयेत् । नित्योद्युक्तो दस्युवधे रणे कुर्यात्पराक्रमं ॥ ८ ॥ दानमध्ययनं यज्ञः शौचेन धनसंचयः । पितृवत्पालयेद्वैश्यो युक्तः सर्वान् पशूनिति ॥ ९ ॥ शूद्र एतान् परिचरेत् त्रीन् वर्णाननु पूर्वशः । अवश्यं भरणीयो हि वर्णानां शूद्र उच्यते ॥ १० ॥

अर्थ—फिर (दूसरे दिन) युधिष्ठिर भीष्मपितामह को प्रणाम कर हाथ जोड़ विनीत भाव से पूछने लगे ॥ १ ॥ हे पितामह ! चारों वर्णों के सांझे धर्म क्या हैं, और उन के अलग २ धर्म क्या हैं, तथा चारों वर्णों के आश्रमों के और उन की ओर राज धर्म क्या हैं ॥ २ ॥ भीष्म बोले—क्रोध न करना, सत्य बोलना, बांट कर भोगना, (कमाई में से दान दे कर अपने भरण पोषण के योग्यों के साथ भोगना), क्षमा, अपनी धर्मपत्नी से सन्तानोत्पादन, पवित्रता, किसी से द्रोह न करना ॥ ३ ॥ सरलता, जिन के भरण पोषण का भार अपने ऊपर है, उन का भरण पोषण, यह नौ धर्म सब वर्णों के सांझे हैं, अब जो निरा ब्राह्मण का धर्म है, वह तुझे कहूंगा ॥ ४ ॥ हे महाराज इन्द्रियों का निग्रह और वेद का अभ्यास यही उस का मुख्य धर्म कहते हैं, इस में उस का सारा कर्तव्य समाप्त हो जाता है ॥ ५ ॥ इस अपने कर्त-

व्य में स्थित रहने पर यदि स्वयं उस के पास धन आ जावे, तब विवाह करके संतानोत्पादन करे, दान दे और यज्ञ करे ॥६॥ हे भारत जो क्षत्रिय का पृथक् धर्म है, वह भी तुझ से कहता हूं, सुनो हे राजन् क्षत्रिय दान करे, परन्तु किसी से मांगे नहीं, यज्ञ करे, पर याजकता न करे ॥ ७ ॥ अध्ययन करे, पर अध्यापन वृत्ति न करे तथा प्रजाओं का पालन करे, डाकुओं के वध में सदा तत्पर रहे, और रण में पराक्रम प्रकाशित करे ॥ ८ ॥ वैश्य दान, वेदाध्ययन, और नेक कमाई से धन का संचय करे और सावधान हो कर पिता की भांति सब प्रकार के पशुओं का पालन करे ॥ ९ ॥ शूद्र क्रम से इन तीनों वर्णों की सेवा करे, और सब वर्णों को चाहिये कि शूद्र का भरण पोषण अवश्य करें ॥ १० ॥

मूल—वानप्रस्थं भैक्ष्यचर्यं गार्हस्थ्यं च महाश्रमं। ब्रह्मचर्याश्रमं प्राहुश्चतुर्थं ब्राह्मणैर्वृतं ॥ ११ ॥ सदारोवाप्यदारोवा आत्मवान् संयतेन्द्रियः। वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत् कृतकृत्यो गृहाश्रमात् ॥ १२ ॥ तत्रारण्य कशास्त्राणि समधीत्य स धर्मवित् । ऊर्ध्वरेताः प्रव्राजित्वा गच्छत्य क्षरसात्मतां ॥ १३ ॥ चरितब्रह्मचर्यस्य ब्राह्मणस्य विशांपते । भैक्ष्यचर्यास्वधीकारः प्रशस्त इह मोक्षिणः ॥ १४ ॥ सत्यार्जवं चातिथिपूजनं च धर्मस्तथार्थश्च रतिः स्वदारैः । निषेवितव्यानि सुखानि लोके ह्यस्मिन् परे चैव मतं ममैतत् ॥ १५ ॥ भरणं पुत्रदाराणां वेदानां धारणं तथा । वसतामाश्रमं श्रेष्ठं वदन्ति परमर्षयः ॥ १६ ॥ ब्रह्मचारी व्रती नित्यं नित्यं दीक्षापरो वशी । परिचार्य तथा वेदं कृत्यं कुर्वन् वसेत्सदा ॥१७॥ सर्वे धर्मा राजधर्मप्रधानाः सर्वे वर्णाः पाल्यमाना भवन्ति । सर्वस्त्यागो राजधर्मेषु राजंस्त्यागं धर्मं चाहुरग्र्यं पुराणं ॥ १८ ॥

मज्जेत्त्रयी दण्डनीतौ हतायां सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुर्विबुद्धाः। सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे ॥ १९ ॥ नष्टाः धर्माः शतधा शाश्वतास्ते क्षात्रेण धर्मेण पुनः प्रवृद्धाः। युगे युगे ह्यादि धर्माः प्रवृत्ता लोकज्येष्ठं क्षात्रधर्मं वदन्ति ॥ २० ॥ एवं वीर्यः सर्वधर्मोपपन्नः क्षात्रः श्रेष्ठः सर्व धर्मेषु धर्मः। पाल्यो युष्माभिर्लोक हितै रुदारैर्विपर्यये स्यादभवः प्रजानां ॥ २१ ॥ त्यागं श्रेष्ठं मुनयो वै वदन्ति सर्वं श्रेष्ठं यच्छरीरं त्यजन्तः। नित्यं युक्ता राजधर्मेषु सर्वे प्रत्यक्षं ते भूमिपाला यथैव ॥ २२ ॥ एते धर्माः सर्व वर्णेषु लीना उत्कृष्टव्याः क्षत्रियैरेष धर्मः। तस्माज्ज्येष्ठा राज धर्मा न चान्ये वीरज्येष्ठा वीर धर्मा मता मे ॥ २३ ॥

अर्थ—ब्रह्मचर्य, ब्रह्माश्रम गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन में से चौथा ब्राह्मणों से स्वीकार किया गया है ॥ ११ ॥ शुद्ध-हृदय संयमी हो कर पत्नी समेत अकेला गृहाश्रम से कृतकृत्य हो कर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करे ॥ १२ ॥ वहां वह धर्म का जानने वाला आरण्यक शास्त्रों को पढ़ कर ऊर्ध्वरेता बन संन्यास ले कर मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ हे नरेश ! केवल ब्रह्मचर्य कर लेने पर मोक्षकाम ब्राह्मण को संन्यास में अधिकार है ॥ १४ ॥ (गृहस्थ को) सचाई, सरलता, धर्म, अर्थ और अपनी पत्नी से प्रीति, तथा लोक परलोक के सुख साधन सेवनीय हैं, यह मेरा मत है ॥ १५ ॥ पुत्रों का और पत्नी का भरण पोषण और वेदों का धारण, यह श्रेष्ठ आश्रम (गृहाश्रम) में वास कर ने वालों के परमर्षि बतलाते हैं ॥ १६ ॥ ब्रह्मचारी सदा व्रत और दीक्षा को धारण करे वशी हो, सेवा कर के वेद पढ़ता हुआ और धर्म कार्य करता हुआ गुरु के निकट वास करे ॥ १७ ॥

सारे धर्मों में प्रधान राजधर्म है, सारे वर्ण रक्षा करने पर बने रहते हैं, हे राजन् ! राजधर्म में पूरा त्याग है, त्याग को ही सर्व श्रेष्ठ सनातन धर्म कहते हैं ॥ १८ ॥ दण्डनीति के नष्ट होने पर वेद-त्रयी डूब जाए, बढ़े हुए सारे धर्म क्षीण होजाएं, आश्रमों के सब धर्म नष्ट होजाएं, यदि सनातन क्षात्रधर्म का त्याग होजाए ॥१९॥ वे सनातनधर्म सैंकड़ों बार नष्ट होचुके हैं, क्षात्रधर्म से ही उन का फिर २ उद्धार होता रहा है, युग युग में वे ही आदिधर्म फिर प्रवृत्त हुए हैं, क्षात्रधर्म को लोक में सब से बड़ा कहते हैं ॥ २० ॥ ऐसे सामर्थ्य वाला सारे धर्मों का रक्षक क्षात्र धर्म जो सारे धर्मों में श्रेष्ठ है, उस का तुम, लोगों की भलाई चाहते हुए उदार बन कर पालन करो, त्यागने में सारी प्रजाओं का नाश होगा ॥२०॥ मुनिजन त्याग को श्रेष्ठ मानते हैं, और यह प्रत्यक्ष है, कि जैसे राजा राजधर्मों में सावधान हुए सब से श्रेष्ठ शरीर का त्याग करते हैं ॥ २२ ॥ ये धर्म जब सारे वर्णों में लीन हो जाते हैं, तब उन को फिर ऊंचाई पर पहुंचाना क्षत्रियों का धर्म है, इस कारण राजधर्म ज्येष्ठ हैं न कि दूसरे, अतएव वीर धर्मों को ही सब से बड़ा मानता हूं ॥ २३ ॥

अ० ९ (व० ६७-७१) देश रक्षा प्रकार

मूल—युधिष्ठिर उवाच—चातुराश्रम्य मुक्तं ते चातुर्वर्ण्यं तथैव च । राष्ट्रस्य यत्कृत्यतमं ततो ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ भीष्म उवाच—राष्ट्रस्यै तत्कृत्यतमं राज्ञ एवाभिषेचनं । अनिन्द्र-मबलं राष्ट्रं दस्यवोऽभि भवन्त्युत ॥ २ ॥ अराजकेषु राष्ट्रेषु धर्मो न व्यवतिष्ठते । परस्परं च खादन्ति सर्वथाधिगराजकं ॥ ३ ॥

म्रीयते हि हरन् पापः परवित्तमराजके । यदास्य उद्धरन्त्यन्ये तदा राजानमिच्छति ॥ ४ ॥ पापा ह्यपि तदा क्षेमं न लभन्ते कदाचन। एकस्य हि द्वौ हरतो द्वयोश्च बहवोऽपरे ॥ ५ ॥ बधबन्ध परि-क्लेशो नित्यमर्थवतां भवेत् । ममत्वं च न विन्देयुर्यदि राजा न पालयेत् ॥ ६ ॥ अन्ताश्चाकाल एवस्युर्लोकोऽयं दस्यु साद्भवेत्। पतेयुर्नरकं घोरं यदि राजा न पालयेत् ॥ ७ ॥ हस्ताद्धस्तं परि-मुषेद् भिद्येरन् सर्वसेतवः । भयार्त विद्रवेत्सर्वं यदि राजा न पाल-येत् ॥ ८ ॥ विवृत्य हि यथा कामं गृहद्वाराणि शेरते । मनुष्या रक्षिता राज्ञा समन्ताद कुतोभयाः ॥ ९ ॥ युधिष्ठिर उवाच— कथं रक्ष्यो जनपदः कथं जेयाश्च शत्रवः । कथं चारान् प्रयुञ्जीत वर्णान् विश्वासयेत्कथं ॥ १० ॥ भी० उ० आत्माजेयः सदा राज्ञा ततो जयाश्च शत्रवः।जितेन्द्रियो नरपतिर्बाधितुं शक्नुयादरीन्॥११॥ न्यसेत गुल्मान् दुर्गेषु सन्धौ च कुरुनन्दन । नगरोपवने चैव पुरो-द्यानेषु चैव हि ॥ १२ ॥ प्रणिधींश्च ततः कुर्याज्जडान्धबधिरा कृतीन् । पुंसः परीक्षितान् प्राज्ञान् क्षुत्पिपासाश्रमक्षमान् ॥१३॥ यथा न विद्युरन्योन्यं प्रणिधेयास्तथा हि ते । चारांश्च विद्यात् प्रहितान् परेण भरतर्षभ ॥ १४ ॥ गुणवन्तो महोत्साहा धर्मज्ञाः साधवश्चये । संदधीत नृपस्तैश्च राष्ट्रं धर्मेण पालयन् ॥ १५ ॥ आददीत बलिंचापि प्रजाभ्यः कुरुनन्दन । स षड्भागमपि प्राज्ञ-स्तासामेवाभि गुप्तये ॥ १६ ॥ यथा पुत्रास्तथा पौरा द्रष्टव्यास्ते न संशयः । भक्तिश्चैषां न कर्तव्या व्यवहारे प्रदर्शिते ॥ १७ ॥ श्रोतुं चैव न्यसेद्राजा प्राज्ञान् सर्वार्थ दर्शिनः । व्यवहारेषु सततं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितं ॥ १८ ॥ आकरे लवणे शुल्के तरे नागबले तथा । न्यसेदमात्यान्नृपतिः स्वाप्तान्वा पुरुषान् हितान् ॥ १९ ॥

राज्ञा सप्तैव रक्ष्याणि तानि चैव निबोधमे। आत्माऽमात्याश्च कोशाश्च दण्डो मित्राणि चैव हि ॥ २० ॥ तथा जनपदाश्चैव पुरं च कुरुनन्दन ॥ २१ ॥ चातुर्वर्ण्ये स्वकर्मस्थे मर्यादानामसंकरे । दण्डनीति कृते क्षेमे प्रजानाम कुतोभये ॥ २२ ॥ योहि दोग्ध्रीमुपास्ते च स नित्यं विन्दते पयः । एवं राष्ट्र मुपायेन भुञ्जानो लभते फलं ॥ २४ ॥ पर चक्राभियानेन यदि तेस्याद्धनक्षयः । अथ साम्नैव लिप्सेथा धनम ब्राह्मणेषु यत् ॥ २५ ॥

अर्थ--युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! आपने चारों आश्रम और चारों वर्ण कहे हैं, अब जो राष्ट्र का सब से बढ़ कर काम है, वह कहिये ॥ १ ॥ भीष्म बोले—राष्ट्र का सब से बढ़ कर काम राजा का अभिषेक करना है, क्योंकि बिना राजा और बिना बल के राष्ट्र को दस्यु दबा लेते हैं ॥ २ ॥ बिना राजा के राष्ट्रों में धर्म की व्यवस्था नहीं रहती, आपस में एक दूसरे को खाने लग जाते हैं, अराजक देश को सर्वथा धिक्कार है ॥ ३ ॥ अराजक देश में पापी पुरुष पराये धन को छीनता हुआ प्रसन्न होता है, पर जब इस के धन को और छीनते हैं, तब राजा को चाहता है ॥ ४ ॥ तब पापी भी कोई कुशल नहीं पाते, एक का दो छीन सकते हैं, दो का बहुते ॥ ५ ॥ यदि राजा रक्षा न करे, तो धनवानों को नित्य बध बन्ध का कष्ट बना रहे, और अपने धन पर 'मेरा है' किसी को विश्वास न रहे ॥ ६ ॥ बिना काल के मृत्यु हों, यह सारा जगत् दस्युओं के अधीन हो जाए, सब घोर नरक में गिरें, यदि राजा पालन करे ॥ ७ ॥ हाथ से हाथ के धन को छीन लें, सारी मर्यादाएं टूट जाएं,सब भय से पीड़ित होकर भाग निकलें, यदि राजा रक्षा न करे ॥ ८ ॥ राजा से

रक्षा किये पुरुष चारों ओर से निर्भय हो कर घर के द्वार खुले छोड़ कर निःशंक सोते हैं ॥ ९ ॥ युधिष्ठिर बोले—राजा किस प्रकार देश की रक्षा करे, किस प्रकार शत्रुओं को जीते, किस प्रकार गुप्तचरों को काम पर लगाए और किस प्रकार सारे वर्णों को अपने ऊपर विश्वासी बनाए ॥ १० ॥ भीष्म बोले—राजा को सदा पहले अपना आप जीतना चाहिये, पीछे शत्रुओं को जीते, जितेन्द्रिय राजा शत्रुओं को बाध सकता है ॥ ११ ॥ हे कुरुनन्दन दुर्गों में, देश के सन्धि स्थानों में, नगर के उपवनों में और पुर के उद्यानों में गुल्म (चौकियां) स्थापन करे॥१२॥ भूख प्यास और थकावट के सहारने वाले पुरुषों को गुप्तचर बनाए, जो जड़ अन्धे और बहिरे का स्वांग भर सकें ॥ १३ ॥ ऐसी सावधानी से उन को काम पर लगाए, कि वे आपस में एक दूसरे को न जान सकें, और जो शत्रु ने गुप्तचर लगाए हों, उन को जाने ॥ १४ ॥ राष्ट्र का धर्मानुसार पालन करता हुआ राजा गुणी, उत्साही, धर्मज्ञ, भले राजों के साथ सन्धि कर के ॥ १५ ॥ हे कुरुनन्दन ! राजा प्रजा से उन्हीं की रक्षा के लिए (उपज का) छटा भाग कर लेवे ॥ १६ ॥ पुत्रों के समान तुझे सारे पुरवासी देखने चाहियें, इस में संशय नहीं, पर व्यवहार (मुकद्दमों) में इन पर स्नेह न करना (स्नेह से न्याय न त्यागना)॥ १७ ॥ राजा को चाहिये, कि व्यवहारों के सुनने के लिए सर्वदर्शी बुद्धिमानों को नियुक्त करे, ऐसों पर राज्य का का निर्भर है ॥ १८ ॥ (धातों की) कानों में लवण की कानों में मंडियों में नदी से पार उतारने की आमदनी पर, हाथियों के

पकड़ने में राजा अपने अमात्य वा हितैषी आप्त पुरुषों को नियुक्त करे ॥ १९ ॥ राजा को इन सात की रक्षा करनी चाहिये, सावधानता से सुनो, अपनी, मन्त्रियों की, कोशों की, सेनाओं की, मित्रों की, देश की और राजधानी की ॥ २०–२१ ॥ चारों वर्ण अपने २ कर्म में स्थित हों, मर्यादाओं में गडमड न हो, दण्ड नीति ठीक चल रही हो, प्रजाओं को कहीं से भय न हो, तब तीनों वर्ण धन की वृद्धि में यत्न करते हैं ॥ २२–२३॥ जो दुधारूधेनु का सेवन करता है, वह दूध प्राप्त करता है, इस प्रकार उपाय से राष्ट्र का उपभोग करता हुआ फल पाता है ॥ २४ ॥ शत्रु पर चढाई करने से यदि तुझे धन का टोटा आजाए, तो सहते २ कर लगाओ, वह भी ब्राह्मणों पर नहीं ॥२५॥

अ० १० (व० ७३-७५) पुरोहित की आवश्यकता

मूल—राज्ञा पुरोहितः कार्यो भवेद्विद्वान् बहुश्रुतः । उभौ समीक्ष्य धर्मार्थावप्रमेयावनन्तरं ॥ १ ॥ परस्परस्य सुहृदौ विहितौ समचेतसौ । ब्रह्मक्षत्रस्य संमानात् प्रजा सुखमवाप्नुयात् ॥ २ ॥ विमाननात् तयोरेव प्रजा नश्येयुरेवहि । ब्रह्मक्षत्रं हि सर्वेषां वर्णानां मूल मुच्यते ॥ ३ ॥ एतौ हि नित्यं संयुक्ता वितरेतर धारणे । क्षत्रं वै ब्रह्मणो योनिर्योनिः क्षत्रस्य वै द्विजाः ॥ ४ ॥ उभावेतौ नित्यमभिप्रपन्नौ संप्रापतुर्महतीं संप्रतिष्ठां । तयोः सन्धिर्भिद्यते चेत्पुराणस्ततः सर्वं भवति हि संप्रमूढं ॥ ५ ॥ ब्रह्मक्षत्र मिदं सृष्टमेकयोनि स्वयंभुवा । पृथग्बलविधानं तन्न लोकं परिपालयेत् ॥ ६ ॥ तपो मन्त्रबलं नित्यं ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठितं । अस्त्रबाहुबलं नित्यं क्षत्रियेषु प्रतिष्ठितं ॥ ७ ॥ ताभ्यां संभूय कर्तव्यं

प्रजानां परिपालनं ॥ ८ ॥ सर्वाश्चैव प्रजानित्यं राजा धर्मेणपालयन् । उत्थानेन प्रदानेन पूजयेचापि धार्मिकान् ॥ ९ ॥ राज्ञा हि पूजितो धर्मस्ततः सर्वत्र पूज्यते । यद्यदा चरते राजा तत्प्रजानां स्म रोचते ॥ १० ॥ नित्यमुद्यतदण्डश्च भवेन्मृत्युरिवारिषु । निहन्यात् सर्वतो दस्यून्न कामात्कस्यचित् क्षमेत् ॥ ११ ॥ यं हि धर्मं चरन्तीह प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः । चतुर्थं तस्य धर्मस्य राजा भारत विन्दति ॥ १२ ॥ यद्राष्ट्रेऽकुशलं किञ्चिद्राज्ञोऽरक्षयतः प्रजाः । चतुर्थं तस्य पापस्य राजा भारत विन्दति ॥१३॥ प्रत्याहर्तुमशक्यं स्याद्धनं चोरैर्हृतं यदि । तत्स्वकोशात्प्रदेयं स्यादशक्तेनोपजीवितः ॥ १४ ॥ काले धुरि च युक्तानां वहतां भारमाहितं । सीदतामपि कौन्तेय न कीर्तिरवसीदति ॥ १५ ॥

अर्थ—धर्म और अर्थ बड़े गहन हैं, ऐसा जान कर राजा को बहुत शीघ्र बहुश्रुत विद्वान् पुरोहित बनाना चाहिये ॥ १ ॥ वे राजा और पुरोहित दोनों एकचित्त एक दूसरे के सुहृद हों।ब्रह्म और क्षत्र (दोनों प्रकार के बल) के संमान से प्रजा सुख पाती है ॥ २ ॥ इन दोनों बलों का अनादर कर देने से प्रजाएं नष्ट होजाती हैं, ब्रह्म और क्षत्र ही सब वर्णों का मूल कहा जाता है ॥ ३ ॥ ये दोनों साथी हो कर एक दूसरे के धारने में समर्थ होते हैं, क्षत्र ब्रह्म का मूल है, और ब्रह्म क्षत्र का मूल है ॥४॥ ये दोनों सदा एक दूसरे के रक्षक बन कर बड़ी प्रतिष्ठा पाते रहे हैं, उन का यदि पुराना सम्बन्ध टूट जाए, तब सब कुछ उलट पलट होजाता है ॥ ५ ॥ परमात्मा ने ब्रह्म और क्षत्र को एक मूल से बनाया है, ये अपने बल के प्रयोग को एक दूसरे से अलग करके लोक की रक्षा नहीं करसकते ॥ ६ ॥ तप और

वेद का बल सदा ब्राह्मणों में स्थित रहता है, अस्त्र और भुजाओं का बल सदा क्षत्रियों में स्थित रहता है ॥ ७ ॥ उन दोनों को एक होकर प्रजा की रक्षा करनी चाहिये ॥८॥ राजा नित्य धर्म से सारी प्रजाओं का पालन करता हुआ उठने (बढ़ने) से और दान से धार्मिकों का सदा पूजन करे ॥ ९ ॥ राजा से पूजा हुआ धर्म सर्वत्र पूजा जाता है, राजा जो २ आचरण करता है, प्रजाएं उस को पसंद करती हैं ॥ १० ॥ शत्रुओं पर यमराज की भांति सदा दण्ड उग्र रहे, चारों ओर से दस्युओं का हनन करे, कामना से किसी पर क्षमा न करे ॥ ११ ॥ राजा से रक्षा की हुई प्रजाएं जो धर्म करती हैं, उस का चौथा भाग राजा पाता है ॥ १२ ॥ और प्रजा की रक्षा न करने से जो पाप फैलता है, उस के भी चौथे भाग का राजा भागी होता है ॥ १३ ॥ राजा यदि उस धन को जो लुटेरे लूट ले गए हों, लौटा न सके, तब उस को वह अपने कोश में भर देना चाहिये, जब कि असमर्थ हो कर उन से कर लेता है ॥ १४ ॥ हां ठीक समय पर जो धुरा में जुत गए हैं, और डाले भार को उठा लिया है (अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करदी है) ऐसे फिसलने वालों का भी यश नहीं फिसलता है ॥ १५ ॥

अ० ११ (व० ८०-८२) मित्र मन्त्री और ज्ञाति

मूल—चतुर्विधानि मित्राणि राज्ञां राजन् भवन्त्युत । सहार्थो भजमानश्च सहजः कृत्रिमस्तथा ॥ १ ॥ चतुर्णां मध्यमौ श्रेष्ठौ नित्यं शंक्यौ तथापरौ ॥ २ ॥ असाधुः साधुतामेति साधुर्भवति दारुणः । अरिश्च मित्रं भवति मित्रं चापि प्रदुष्यति ॥ ३ ॥

एकान्तेन हि विश्वासः कृत्स्नो धर्मार्थनाशकः । अविश्वासश्च सर्वत्र मृत्युना च विशिष्यते ॥ ४ ॥ तस्माद्विश्वसितव्यं च शंकितव्यं च केषुचित् । एषा नीतिगतिस्तात लक्ष्या चैव सनातनी ॥ ५ ॥ यं मन्येत ममाभावादिममर्थागमं स्पृशेत् । नित्यं तस्माच्छंकितव्य मामित्रं तद्विदुर्बुधाः ॥ ६ ॥ यन्मन्येत ममाभावादस्याभावो भवेदिति । तस्मिन् कुर्वीत विश्वासं यथा पितरि वै तथा ॥ ७ ॥ व्यसनान्नित्यं भीतो यः समृध्या यो न दुष्यति । यत्स्यादेवंविधं मित्रं तदात्मसम मुच्यते ॥ ८ ॥ कीर्तिप्रधानो यस्तु स्याद्यश्च स्यात्समये स्थितः । समर्थान् यश्च न द्वेष्टि नानर्थान् कुरुते च यः ॥ ९ ॥ यो न कामाद् भयाल्लोभात् क्रोधाद्वा धर्म मुत्सृजेत् । दक्षः पर्याप्तवचनः स ते स्यात् प्रत्यनन्तरः॥१०॥ कुलीनः शील संपन्नस्तितिक्षुर विकत्थनः । शूरश्चार्यश्च विद्वांश्च प्रतिपत्ति विशारदः ॥ ११ ॥ एतेह्यमात्याः कर्तव्या सर्वकर्मस्ववस्थिताः । पूजिताः संविभक्ताश्च सुसहायाः स्वनुष्ठिताः ॥ १२॥ कृत्स्नमेते विनिक्षिप्ताः प्रतिरूपेषु कर्मसु । युक्ता महत्सु कार्येषु श्रेयांस्युत्थापयन्त्युत ॥ १३ ॥ एते कर्माणि कुर्वन्ति स्पर्धमाना मिथः सदा । अनुतिष्ठन्ति चैवार्थ माचक्षाणा परस्परं ॥ १४ ॥ निकृतस्य परैरन्यैर्ज्ञातिरेव परायणं । नान्यो निकारं सहते ज्ञातिर्ज्ञातेः कथञ्चन ॥ १५ ॥ संमानयेत्पूजयेच्च वाचा नित्यं च कर्मणा । कुर्याच्च प्रिय मेतेभ्यो नाप्रियं किञ्चिदाचरेत् ॥ १६ ॥ नामहापुरुषः कश्चिन्नानात्मा नासहायवान् । महतीं धुरमाधत्ते तामुद्यम्योरसा वह ॥ १७ ॥

अर्थ—हे राजन् राजाओं के चार प्रकार के मित्र होते हैं एक प्रयोजन वाला, बड़ों से मित्र चला आता, स्वाभाविक

(मसेरा भाई आदि) और कृत्रिम(लालच दे कर बनाया हुआ) ॥ १ ॥ इन में से मध्य के दो श्रेष्ठ हैं,दूसरे दो सदा शंका वाले होते हैं ॥ २ ॥ लोक में असाधु भी साधु हो जाता है, साधु भी कठोर होजाता है, शत्रु भी मित्र हो जाता है, और मित्र भी बिगड़ जाता है ॥ ३ ॥ इस लिए निरा विश्वास भी धर्म अर्थ का नाशक होता है, और सर्वत्र अविश्वास भी मृत्यु से बढ़ कर है ॥ ४ ॥ इस लिए विश्वास भी और कइयों पर शंका भी करनी चाहिये, हे तात ! यह सनातन नीति की गति सदा ध्यान रक्खो ॥ ५ ॥ जिस को समझे, कि मेरे नाश से इस को मेरा अर्थ (राज्य कोष आदि) मिलेगा, उस से सदा शंका करनी चाहिये, उस को बुधजन शत्रु कहते हैं ॥ ६ ॥ और जिस को समझे, कि मेरे नाश से इस का भी नाश हो जाएगा, उस पर सदा विश्वास रक्खे जैसे पिता पर होता है ॥ ७ ॥ जो व्यसन से सदा डरता है, समृद्धि पाकर बिगड़ता नहीं, जो इस प्रकार का मित्र है,उस को आत्मसम कहते हैं ॥ ८ ॥ जो पुरुष कीर्तिप्रधान हो,मर्यादा पर चलने वाला हो, समर्थों से द्वेष न करे, और जो अनर्थ न उठाता रहे ॥ ९ ॥ जो न काम से न लोभ से न भय से न क्रोध से धर्म को त्यागे, दक्ष हो और पूरी तुली हुई बात कहने वाला हो वह तेरा प्रतिनिधि हो ॥ १० ॥ कुलीन शीलवान्, सहिष्णु, अपनी श्लाघा न करने वाला, शूर आर्य विद्वान् झटपट उत्तर देने में निपुण ॥ ११ ॥ सब कर्मों में सावधान उत्तम साथियों वाले अनुभवी मन्त्री बनाने चाहिये उन का मान करे और उन से बांट कर खाए ॥ १२ ॥ ऐसे मन्त्री अपने २ योग्य कर्मों में लगाए हुए बड़े २ कार्यों में बड़े २ फल उत्पन्न करते हैं ॥१३॥

ये काम में एक दूसरे से बढने की चेष्टा करते हैं, और आपस में बत-लाकर हित का अनुष्ठान करते हैं॥१४॥दूसरों से अनादर पाने पर अपनी ज्ञाति ही सहारा हुआ करती है, ज्ञातिजन अपने ज्ञातिजन का दूसरों से अनादर नहीं सह सकता ॥ १५ ॥ इस लिए इनका वाणी से और कर्म से सदा मान करे और पूजा करे, और इन का प्रिय करे, कोई अप्रिय न करे ॥ १६ ॥ जो महापुरुष नहीं, जो जितेन्द्रिय नहीं, जो साथियों वाला नहीं, वह बड़ी धुरा को नहीं उठा सकता,तुम उस धुरा को अपनी छाती के बल से उठा कर ले चलो ॥ १७ ॥

अ० १२ (व० ८३-९४) राज्य प्रबन्ध

मूल—ह्रीनिषेवास्तथा दान्ताः सत्यार्जव समन्विताः।शक्ताः कथयितुं सम्यक्ते तव स्युः सभासदः ॥ १ ॥ अमात्यांश्चाति शूरांश्च ब्राह्मणांश्च परिश्रुतान् । सुसंतुष्टांश्च कौन्तेय महोत्साहांश्च कर्मसु ॥ २ ॥ एतान् सहायाँल्लिप्सेथाः सर्वास्वापत्सु भारत ॥३॥ कुलीना देशजा प्राज्ञा रूपवन्तो बहुश्रुताः । प्रगल्भाश्चानुरक्ताश्च ते तव स्युः परिच्छदाः ॥ ४ ॥ दौष्कुलेयाश्च लुब्धाश्च नृशंसा निरपत्रपाः । ते त्वां तात निषेवेयुर्यावदार्द्रक पाणयः ॥ ५ ॥ यस्तु सर्वमभिप्रेक्ष्य पूर्वमेवाभि भाषते । स्मितपूर्वाभि भाषी च तस्य लोकः प्रसीदति ॥ ६ ॥ दानमेव हि सर्वत्र सान्त्वेनानभिजल्पितं । न प्रीणयति भूतानि निर्व्यञ्जन मिवाशनं ॥ ७ ॥ आदानादपि भूतानां मधुरामीरयन् गिरां । सर्वलोकमिमं शक्र सान्त्वेन कुरुते वशे ॥ ८ ॥ तस्मात्सान्त्वं प्रयोक्तव्यं दण्डमाधित्सतापि हि । फलं च जनयत्येवं न चास्यो द्विजते जनः ॥ ९ ॥ अपराधानु रूपं च

दण्डं पापेषु कारयेत । वियोजयेद्धनैर्ऋद्धान धनानथ बन्धनैः॥१०॥ कामकारेण दण्डस्तु यः कुर्याद विचक्षणः । स इहाकीर्ति संयुक्तो मृतो नरकमृच्छति ॥ ११ ॥ न तु हन्यान्नृपो जातु दूतं कस्यां चिदापदि । दूतस्य हन्ता निरयमाविशेत्ससचिवैः सह ॥ १२ ॥ कुलीनः कुलसंपन्नो वाग्मी दक्षः प्रियंवदः । यथोक्तवादी स्मृतिमान् दूतः स्यात्सप्तभिर्गुणैः ॥ १३ ॥ एतैरेव गुणैर्युक्तः प्रतीहारोऽस्य रक्षिता । शिरोरक्षश्च भवति गुणैरेतैः समन्वितः ॥१४॥ धर्मशास्त्रार्थ तत्त्वज्ञः सन्धिविग्रहिको भवेत । एतैरेव गुणैर्युक्तस्तथा सेनापतिर्भवेत ॥ १५ ॥ व्यूह यन्त्रायुधानां च तत्त्वज्ञो विक्रमान्वितः । वर्षशीतोष्ण वातानां सहिष्णुः पररन्ध्रवित॥१६॥ चारान्मन्त्रं च कोशं च दण्डं चैव विशेषतः । अनुतिष्ठेत्स्वयं राजा सर्वं ह्यत्र प्रतिष्ठितं ॥ १७॥ दुर्बलस्य च यच्चक्षुर्मुनेराशीविषस्य च । अविषह्यतमं मन्ये मास्म दुर्बलमासदः ॥ १८ ॥ यत्राबलो बध्यमानस्त्रातारं नाधिगच्छति । महान दैव कृतस्तत्र दण्डः पतति दारुणः ॥ १९ ॥ युक्ता यत्र जानपदा भिक्षन्ते ब्राह्मणा इव । अभीक्ष्णं भिक्षुरूपेण राजानं घ्नन्ति तादृशाः ॥ २० ॥ राज्ञो यदा जनपदे बहवो राजपूरुषाः । अनयेनोपवर्तन्ते तद्राज्ञः किल्बिषं महत ॥ २१ ॥ संविभज्य यदा भुङ्क्ते नामात्यानवमन्यते। निहन्ति बलिनं दृप्तं स राज्ञो धर्म उच्यते ॥ २२ ॥ संविभज्य यदा भुङ्क्ते नृपतिर्दुर्बलान्नरान् । तदा भवन्ति बलिनः स राज्ञो धर्म उच्यते ॥ २३ ॥ यदा रक्षति राष्ट्राणि यदा दस्यूनपोहति । यदा जयति संग्रामे स राज्ञो धर्म उच्यते ॥ २४ ॥ न कामान्न च संरम्भान्न द्वेषाद्धर्म मुत्सृजेत । नापत्रपेत प्रश्नेषु नाविभाव्यां गिरं सृजेत ॥ २५ ॥

अर्थ--ह्रीमान्, जितेन्द्रिय, सचाई और सरलता से युक्त, बात करने में समर्थ पुरुष तेरे सभासद हों ॥ १ ॥ मन्त्री, बड़े२ सूरमे, बहुश्रुत ब्राह्मण, ये जो पूरे संतोष वाले और अपने कर्मों में बड़े उत्साही हों, हे भारत ! ऐसे साथी सारी आपत्तियों में काम आते हैं ॥ २—३ ॥ कुलीन, अपने देश के, रूप वाले, बहुश्रुत, प्रगल्भ और अनुराग वाले तेरे निज के नौकर हों ॥४॥ जो नीच कुल के हैं, लालची, दुर्जन, और निर्लज्ज हैं, हे तात ! वह तेरी तभी तक सेवा करेंगे, जब तक उन का हाथ तर रहेगा ॥ ५ ॥ जो हरएक को देख कर पहले उस से बोलता है, और हंसता हुआ बात करता है, उस पर सारे लोग प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥ दान भी जब प्रेम वचन से न दिया गया हो, तो लोगों को तृप्त नहीं करता है, जैसे व्यञ्जन से रहित भोजन ॥ ७ ॥ ले कर भी मीठी वाणी बोल कर इस सारे जगत को हे नरेन्द्र वश में करता है ॥ ८ ॥ इस लिए दण्ड देते समय प्रीतिकर वचन बोलना चाहिये, ऐसा वचन फल देता है, और लोग उस से उद्विग्न नहीं होते हैं ॥ ९ ॥ अपराध के अनुरूप दण्ड अपराधियों को देवे, धनाढ्यों को धनों से हीन करे और निर्धनों को कैद करे ॥ १० ॥ जो मूर्ख अपनी इच्छा से दण्ड देता है, वह यहां अपयश पाता है और मर कर नरक को जाता है ॥ ११ ॥ राजा दूत को किसी भी आपदा में न मारे, दूत का मारने वाला अपने मन्त्रियों समेत नरक में पड़ता है ॥ १२ ॥ कुलीन, कुलीनों से सम्बन्ध वाला, उत्तम बोलने वाला, होश्यार, प्रिय बोलने वाला, जैसे कहा हो, वैसा बतलाने वाला, स्मृतिमान् इन सात गुणों से युक्त दूत हो ॥ १३ ॥ इन्हीं गुणों से युक्त द्वारपाल हो,

और इन्हीं गुणों से युक्त सिर का रक्षक हो ॥ १४ ॥ धर्मशास्त्र के तत्त्व का जानने वाला सन्धिविग्रह के अधिकार में हो, इन्हीं गुणों से युक्त सेनापति हो ॥ १५ ॥ पर जो साथ ही व्यूह, यन्त्र और शस्त्रों का तत्त्वज्ञ हो, पराक्रम वाला हो, वर्षा शीत उष्ण और आंधियों का सहिष्णु हो, शत्रु के छिद्र को समझने वाला हो ॥ १६ ॥ गुप्तचर, मन्त्र, कोश और विशेषतः दण्ड, ये राजा स्वयं वर्ते, इन पर राज्य का निर्भर है ॥ १७ ॥ दुर्बल की, मुनि की और सांप की दृष्टि सब से बढ़ कर असह्य होती है, इस लिए दुर्बल को कभी पीड़ा न देना ॥ १८ ॥ जहां मारा जाते दुर्बल का कोई बचाने वाला नहीं है, वहां दैव का भारी दण्ड गिरता है ॥ १९ ॥ जब देश के लोग ब्राह्मणों के समान बार २ भीख मांगने तक तंग आजावें, तो वे राजा को मार डालते हैं ॥ २० ॥ राजा के राष्ट्र में जब बहुत से राजपुरुष अनीति पर चलते हैं, तो वह राजा का भारी पाप है ॥ २१ ॥ जब राजा बांट कर खाता है, मन्त्रियों का अपमान नहीं करता है, ऊंचे आए बली को दबाता है, तब राजा का धर्म कहा जाता है ॥ २२ ॥ जब राजा दुर्बलों में बांट कर खाता है, और इस प्रकार वे बल वाले बन जाते हैं, तब वह राजा का धर्म कहा जाता है ॥ २३ ॥ जब देश की रक्षा करता है, दस्युओं को दूर करता है, और रण में विजय पाता है, तब राजा का धर्म कहा जाता है ॥ २४ ॥ न काम से न क्रोध से न द्वेष से धर्म का त्याग करे, प्रश्नों से लज्जा न करे और न अपमान का शब्द बोले ॥ २५ ॥

अ० १३ (व० ९५-१००) युद्ध धर्म

मूल-यु०उ० अथ यः क्षत्रियो राजा क्षत्रियं प्रत्युपाव्रजेत् । कथं

प्रति योद्धव्यस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ भीष्म उवाच—स चेन्निकृत्या युध्येत निकृत्या प्रतिबोधयेत् । अथ चेद्धर्मतो युध्येद्धर्मेणैव निवारयेत् ॥ २ ॥ भग्नशस्त्रो विपन्नश्च कृतज्यो हतवाहनः । चिकित्स्यः स्यात्स्वविषये प्राप्यो वा स्वगृहे भवेत् ॥ ३ ॥ विशीर्णकवचं चैव तवास्मीति च वादिनं । कृताञ्जलिं न्यस्तशस्त्रं गृहीत्वा न विहिंसयेत् ॥ ४ ॥ नार्वाक् संवत्सरात्कन्या प्रष्टव्या विक्रमाहृता । एवमेव धनं सर्वं यच्चान्यत् सहसा हृतं ॥ ५ ॥ अनीकयोः संहतयोर्यदीयाद् ब्राह्मणोऽन्तरा । शान्तिमिच्छन्नुभयतो न योद्धव्यं तदा भवेत् ॥ ६ ॥ सर्वविद्यातिरेकेण जयमिच्छन्महीपतिः । न मायया न दम्भेन य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥७॥ मा स्म तांस्तादृशांस्तात जनिष्ठाः पुरुषाधमान् । ये सहायान् रणे हित्वा स्वस्तिमन्तो गृहान्ययुः ॥ ८ ॥ न गृहे मरणं तात क्षत्रियाणां प्रशस्यते । शौटीराणामशौटीर्यमधर्मं कृपणं च तत् ॥ ९ ॥ रणेषु कदनं कृत्वा ज्ञातिभिः परिवारितः । तीक्ष्णैः शस्त्रैरभिक्लिष्टः क्षत्रियो मृत्युमर्हति ॥ १० ॥ शूरो हि काममन्युभ्यामाविष्टो युध्यते भृशं । हन्यमानानि गात्राणि परैर्नैवावबुध्यते ॥ ११ ॥ यत्र तत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवारितः । अक्षयाँल्लभते लोकान् यदि दैन्यं न सेवते ॥ १२ ॥ आहवे तु हतं शूरं न शोचेत कथञ्चन । अशोच्यो हि हतः शूरः स्वर्गलोके महीयते ॥ १३ ॥ शूरबाहुषु लोकोऽयं लम्बते पुत्रवत्सदा । न हि शौर्यात्परं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १४ ॥ उभे प्रज्ञे वेदितव्ये ऋज्वी वक्रा च भारत । जानन्वक्रां न सेवेत प्रतिबाधेत चागतां ॥ १५ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! जो क्षत्रिय क्षत्रिय पर चढ़ाई करे, तो कैसे उस के साथ युद्ध करना चाहिये, यह मुझे

बतलाएं ॥ १ ॥ भीष्म बोले—यदि वह छल से युद्ध करे, तो आप भी उस के साथ छल युद्ध करें, पर यदि वह धर्मयुद्ध करे, तो धर्म से उस को रोके ॥ २ ॥ जिस के शस्त्रास्त्र टूट गए, वाहन मारे गए, और क्षत विक्षत हो कर पकड़ा गया है, उस की अपने देश में चिकित्सा करे, वा उसे अपने घर पहुंचा दे ॥ ३ ॥ जिस का कवच टूट गया, 'मैं तेरा हूं' यह कह रहा है, जो हाथ जोड़े है, जो शस्त्र छोड़े हुए है, उस को पकड़ कर मारे नहीं॥४॥ युद्ध में पराक्रम से छीनी कन्या को वर्ष से पहले न पूछे, इसी प्रकार धन वा और भी जो कुछ साहस से लाया गया है॥ ५॥ आपस में जुटी हुई दोनों सेनाओं के मध्य में यदि शान्ति की कामना से ब्राह्मण बीच में आ पड़े, तब युद्ध नहीं करना चाहिये ॥ ६ ॥ जो अपनी वृद्धि चाहता है, उस को चाहिये, कि सारी विद्याओं की उन्नति से जय पाना चाहे, छल और दम्भ से नहीं ॥ ७ ॥ हे तात ! ऐसे नीचों का जन्म न होने देना चाहिये, जो साथियों को रण में छोड़ कर अपना बचाव करके घर में चले जावें ॥ ८ ॥ हे तात ! क्षत्रियों का घर में मरना प्रशंसा योग्य नहीं है, यह अभिमानियों के अभिमान का भंग है अधर्म है और कृपण है ॥ ९ ॥ क्षत्रिय तो ज्ञातियों के साथ रण में विनाश मचा कर तीक्ष्ण शस्त्रों से टुकड़े २ हो कर मरने योग्य है ॥ १० ॥ शूर उच्च आकांक्षा और क्रोध से भरा हुआ अतिशय युद्ध करता है, शत्रुओं से अंगों पर आते आघातों को जानता ही नहीं है ॥ ११ ॥ शूर वीर पुरुष शत्रुओं के घेरे में आ कर जहां २ मारा जाता है, वह अक्षय लोकों को प्राप्त होता है, यदि दीन न हुआ हो ॥ १२ ॥ युद्ध में मारे गए शूर का कोई शोक न करे, युद्ध

में मारा हुआ शूर वीर शोक के योग्य नहीं है, वह स्वर्ग में महिमा पाता है ॥ १३ ॥ यह जगत शूर वीर की भुजाओं में पुत्रवत सहारा पाता है, शौर्य से बढ कर तीनों लोकों में कुछ नहीं है ॥ १४ ॥ हे भारत सरल और टेढ़ी दोनों प्रकार की प्रज्ञा (नीति) जाननी चाहिये, पर जान कर टेढ़ी का स्वयं सेवन न करे,हां(शत्रु से) आई (टेढी नीति) को बाधे ॥ १५ ॥

मूल-यु०उ०यथा गणाः प्रवर्धन्ते सुहृदः प्राप्नुवन्ति चायथा च ते न भिद्येरंस्तच्च मे वद पार्थिव॥१६॥भी०उ०गणानां च कुलानां च राज्ञां भरतसत्तम। वैरसंदीपना वेतौ लोभामर्षौ नराधिप॥१७॥ अर्थाश्चैवाधि गम्यन्ते संघातबल पौरुषैः । बाह्याश्च मैत्रीं कुर्वन्ति तेषु संघात वृत्तिषु ॥ १८ ॥ चारमन्त्रविधानेषु कोशसंनिचयेषु च । नित्ययुक्ता महाबाहो वर्धन्ते सर्वतो गणाः ॥ १९ ॥ द्रव्यवन्तश्च शूराश्च शस्त्रज्ञाः शास्त्रपारगाः । कृच्छ्रास्वापत्सु संमूढान् गणाः संतारयन्ति ते ॥ २० ॥ लोकयात्रा समायत्ता भूयसी तेषु पार्थिव । गणमुख्यैस्तु संभूय कार्यं गणहितं मिथः ॥ २१ ॥ तेषामन्योन्य भिन्नानां स्वशक्तिमनुतिष्ठतां । निग्रहः पण्डितैः कार्यः क्षिप्रमेव प्रधानतः ॥ २२ ॥ कुलेषु कलहा जाता कुलवृद्धै रुपेक्षिताः । गोत्रस्य नाशं कुर्वन्ति गण भेदस्य कारकाः ॥ २३ ॥ आभ्यन्तरं भयं रक्ष्यमसारं बाह्यतो भयं । आभ्यन्तरं भयं राजन् सद्यो मूलानि कृन्तति ॥ २४ ॥

अर्थ–जिस प्रकार गण वृद्धि पावें, सुहृदों को प्राप्त हों और आपस में फूटें नहीं, हे पितामह वह मुझे बतलाइये ॥ १६ ॥ भीष्म बोले—हे राजन् लोभ और क्रोध गणों के, कुलों के, और राजाओं के वैर चमकाने वाले हैं॥ १७ ॥ संघ के बल और पौरुष

से सारे अर्थ प्राप्त होते हैं, मिल कर रहने वालों से बेगाने भी मित्रता करते हैं ॥ १८ ॥ गुप्तचरों के और मन्त्र के प्रयोग में और कोश के संचय में लगाए हुए गण सब ओर से बढ़ते हैं ॥ १९ ॥ दृढ़ता वाले, शूरवीर, शस्त्रों के जानने वाले शास्त्रों के पार पहुंचे हुए गण ही घबराए हुओं को कठिन आपदाओं में तारते हैं ॥ २० ॥ हे राजन् ! बहुत सी लोकयात्रा गणों के अधीन है, गणों के मुखियों के साथ मिल कर सदा गणों का हित सोचना और करना चाहिये ॥ २१ ॥ जब वे आपस में फूट कर अपनी शक्ति एक दूसरे को दिखलाने लगें, तो झट उन के मुखियों के द्वारा उन का निग्रह करे ॥ २२ ॥ कुलों में उत्पन्न हुए कलह, जो गणों को फोड़ देने वाले होते हैं. उन की जो वृद्ध उपेक्षा करते हैं, वे कुल का नाश करते हैं ॥ २३ ॥ अन्दर के भय से बचना चाहिये, बाहर का भय कोई भय नहीं है, अन्दर का भय हे राजन् तुरत जड़ों को उखाड़ देता है ॥ २४ ॥

अ० १४ (व० १०८-१३०) धर्म

मूल—युधिष्ठिर उवाच–किं कार्यं सर्वधर्माणां गरीयो भवतो मतं । यथाहं परमं धर्ममिह च प्रेत्य चाप्नुयां ॥ १ ॥ भीष्म उवाच–मातापित्रोर्गुरूणां च पूजा बहुमता मम । इह युक्तो नरो लोकान् यशश्च महदश्नुते ॥ २ ॥ सर्वे तस्यादृता लोका यस्यैते त्रय आदृताः । अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥ ३ ॥ सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परं । यत्तु लोकेषु विज्ञानं तत्प्रवक्ष्यामि भारत ॥ ४ ॥ भवेत्सत्यं न वक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत् । सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित् ॥ ५ ॥

येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो धनमिच्छन्ति कस्यचित् । तेभ्यस्तु न तदाख्येयं स धर्म इति निश्चयः ॥ ६ ॥ अकूजनेन चेन्मोक्षः शंकेरन्वाप्यकूजनात् । श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं सत्यादिति विचारितं ॥७॥ यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः । मायाचारो मायया बाधितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः॥८॥ युधिष्ठिर उवाच—क्लिश्यमानेषु भूतेषु तैस्तैर्भावैस्ततस्ततः । दुर्गाण्यतितरेद्येन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ९ ॥ आश्रमेषु यथोक्तेषु यथोक्तं ये द्विजातयः । वर्तन्ते संयतात्मानो दुर्गाण्यति तरन्ति ते ॥ १० ॥ स्वेषु दारेषु वर्तन्ते न्याय्यवृत्ति मृतावृतौ । ये वदन्तीह सत्यानि प्राणसंदेहकेष्वपि ॥ ११ ॥ कर्माणि कुरु कार्याणि येषां वाचश्च सूनृताः । येषां श्रियो न तप्यन्ति ये सन्तः पुरुषर्षभाः॥१२॥ ये न मानित्वमिच्छन्ति मानयन्ति च ये परान् । ये क्रोधं संनियच्छन्ति क्रुद्धान् संशमयन्ति च ॥ १३ ॥ यात्रार्थं भोजनं येषां सन्तानार्थं च मैथुनं । वाक् सत्यवचनार्थाय दुर्गाण्यति तरन्ति ते ॥ १४ ॥ ईश्वरं सर्वभूतानां जगतः प्रभवाप्ययं । भक्ता नारायणं देवं दुर्गाण्यति तरन्ति ते ॥ १५ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—इन सारे धर्मों में से कौन धर्म आप को गुरुतर अभिमत है, ताकि मैं लोक परलोक में परम धर्म को प्राप्त होऊं ॥१॥ भीष्म बोले—पिता माता और गुरु की पूजा मुझे बहुमत है, इस कर्म में युक्त पुरुष स्वर्ग को और (लोक में) बड़े यश को पाता है ॥ २ ॥ जिसने इन तीनों का आदर किया, उस ने तीनों लोकों का आदर किया, और जिसने इन तीनों का अनादर किया, उस के सारे कर्म निष्फल जाते हैं ॥ ३ ॥ सत्य कहना ही उत्तम है, सत्य से श्रेष्ठ कुछ नहीं, परलोक में जो बात दुर्ज्ञेय है,

वह कहता हूं, सुनो ॥ ४ ॥ किसी समय सत्य कहना उचित नहीं होता, झूठ कहना उचित होता है, झूठ और सत्य के अवसर का निश्चय करके ही पुरुष धर्म का जानने वाला होता है ॥ ५ ॥ जो अन्याय से किसी का धन हरना चाहते हैं, उन को वह नहीं बतलाना चाहिये, यही धर्म है, यही निश्चय है ॥ ६ ॥ यदि न बतलाने से अपना छुटकारा न हो, वा न बतलाने से शंका करें, तो वहां झूठ कह देना सत्य से बढ़ कर है यह निश्चय है ॥ ७ ॥ जो मनुष्य जिस के साथ जैसा बर्ताव करे, उस के साथ वैसा ही बर्ते, यह धर्म है, छली को छल से मारे, और शुद्ध पुरुष के साथ धर्म बर्ताव ही करे ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर बोले—उन २ स्वभावों से (सब प्रकार के स्वभावों से) लोक में क्लेश आता ही है, जिस से पुरुष कठिनाइयों से पार हो, वह मुझे उपदेश दीजिये॥ ९ ॥ भीष्म बोले—जो द्विज अपने २ आश्रमों में यथाशास्त्र चलते हैं, और मन को वश में रखते हैं, वे कठिनाइयों के पार होजाते हैं ॥ १० ॥ जो ऋतु २ में यथाविधि अपनी ही पत्नी के निकट जाते हैं, और जो प्राणसंकट में भी सत्य ही बोलते हैं ॥ ११ ॥ जिन के कर्म छल से हीन हैं, जिन के वचन सत्य और मधुर हैं, जो दूसरे की लक्ष्मी से तप्त नहीं होते, जो पुरुषवर सत्पुरुष हैं ॥ १२ ॥ जो स्वयं मान के लिए काम नहीं करते और दूसरों का मान करते हैं, जो स्वयं क्रोध को रोकते हैं, और क्रुद्ध हुओं को शान्त करते हैं ॥ १३ ॥ जिन का भोजन शरीर यात्रा के लिए है, मैथुन सन्तान के लिए है, वाणी सत्य बोलने के लिए है, वे कठिनाइयों के पार होजाते हैं ॥ १४ ॥ सब जीवों के स्वामी,

जगत को उत्पन्न और लय करने वाले नारायण देव के जो भक्त हैं, वे कठिनाइयों के पार होजाते हैं ॥ १५ ॥

मूल—युधि० उ० यद्धितं राज्य तन्त्रस्य कुलस्य च सुखोदयं । अन्नपाने शरीरे च हितं यत्तद्ब्रवीहि मे ॥ १६ ॥ भी० उ० यस्य भृत्यजनः सर्वो ज्ञानविज्ञानकोविदः । हितैषी कुलजः स्निग्धः स राज्य फल मश्नुते ॥ १७ ॥ मम दुःख सुखा यस्य सहायाः प्रियकारिणः । अर्थचिन्तापराः सत्याः स राज्य फल मश्नुते ॥ १८ ॥ यस्य नार्तो जनपदः सन्निकर्ष गतः सदा। अक्षुद्रः सत्पथा लम्बी स राजा राज्य भाग्भवेत् ॥ १९ ॥ योधाः समरशौटीराः कृतज्ञाः शस्त्रकोविदाः । इष्वस्त्र कुशला यस्य तस्येयं नृपतेर्मही ॥ २० ॥ कर्मस्विहानुरूपेषु न्यस्या भृत्या यथाविधि । प्रातिलोमं न भृत्यास्ते स्थाप्याः कर्मफलैषिणा ॥ २१ ॥ धर्माणामविरोधेन सर्वेषां प्रिय माचरेत् । ममायमिति राजा यः स पर्वत इवाचलः ॥ २२ ॥ अमोघ क्रोध हर्षस्य स्वयं कृत्यान्ववेक्षितुः । आत्मप्रत्यय कोशस्य वसुदैव वसुन्धरा ॥ २३ ॥ अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा । अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत्प्रशस्यते ॥ २४ ॥ धिक्तस्य जीवितं राज्ञो राष्ट्रं यस्याऽवसीदति । अहृष्यान्य मनुष्योऽपि यो वैदेशिक इत्यपि ॥ २५ ॥ अधनं दुर्बलं प्राहुर्धनेन बलवान् भवेत् । सर्वं धनवता प्राप्यं सर्वं तरति कोशवान् ॥ २६ ॥ कोशेन धर्मः कामश्च परलोकस्तथा ह्ययं । तं च धर्मेण लिप्सेत नाधर्मेण कदाचन ॥ २७ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—जो राज्यतन्त्र के लिए हित कर और कुल के लिए सुखजनक हो, अन्न पान में और शरीर में जो हित कर हो, वह मुझे उपदेश दीजिये ॥ १६ ॥ भीष्म बोले

जिस राजा के भृत्यजन सारे के सारे ज्ञान विज्ञान में निपुण हितैषी कुलीन और स्निग्ध हैं, वह राज्य का फल भोगता है ॥ १७ ॥ जिस के साथी उस के साथ सम दुःख सुख वाले हैं, प्रिय करने वाले, काम संवारने में लगे रहने वाले और सच्चे हैं, वह राज्य का फल भोगता है ॥ १८ ॥ जिस का देश किसी बात से तंग नहीं, सदा अपने साथ सम्बद्ध है, क्षुद्र नहीं और सन्मार्ग में चलता है, वह राजा राज्य भागी होता है ॥ १९ ॥ जिस के योधे रणबांकुरे, कृतज्ञ, शस्त्रास्त्र कुशल हैं, यह पृथिवी उस राजा की है ॥ २० ॥ जो राजा (भृत्यों के) कर्मों का फल चाहता है, उसे चाहिये, कि अपने २ योग्य कर्मों में भृत्यों को लगाए, उलटे पलटे न लगाए ॥ २१ ॥ जो राजा सब धर्मों के अविरोध से, यह मेरी प्रजा है ऐसा मान कर सब लोगों का प्रिय आचरण करता है, वह पर्वत के समान अचल होता है ॥ २२ ॥ जिस का क्रोध और हर्ष वृथा नहीं, जो स्वयं सारे कार्यों को देखता है, और कोश को अपने भरोसे पर रखता है, उस को पृथिवी धन देती है ॥ २३ ॥ मन वाणी और कर्म से किसी के साथ द्रोह न करना, सब पर अनुग्रह करना और दान यह शील उत्तम माना गया है ॥ २४ ॥ उस राजा के जीने को धिक्कार है, जिस का देश अजीविका (बे रोज़गारी) से पीड़ित होता है, चाहे कोई विदेशी भी (वहां रहता) हो ॥ २५ ॥ धन हीन को दुर्बल कहते हैं, धन से बलवान् होता है, धनवान् सब कुछ प्राप्त कर लेता है, कोशवान् सारे संकटों को तर जाता है ॥ २६ ॥ कोश से धर्म, काम, परलोक और यह लोक प्राप्त होता है, पर कोश को धर्म से ही पाना चाहे, अधर्म से कभी नहीं ॥ २७ ॥

अ० १५ (व० १३१-१४०) आपद्धर्म

मूल—युधिष्ठिर उवाच-परचक्राभि जातस्य दुर्बलस्य बलीयसा । आपन्नचेतसो ब्रूहि किं कार्य मवशिष्यते ॥ १ ॥ भी०उ० बाह्यश्चेद्विजिगीषुः स्याद्धर्मार्थ कुशलः शुचिः । जवेन सन्धि कुर्वीत पूर्वभुक्तान्विमोचयेत् ॥ २ ॥ योऽधर्म विजिगीषुः स्याद् बलवान् पाप निश्चयः । आत्मनः सन्निरोधेन सन्धि तेनापि रोचयेत् ॥ ३ ॥ यास्तु कोशबलत्यागाच्छक्यास्तरितु मापदः । कस्तत्राधिक मात्मानं संसजेदर्थ धर्मवित् ॥ ४ ॥ क्षिप्रं वा सन्धिकामः स्यात् क्षिप्रं वा तीक्ष्ण विक्रमः। तदापनयनं क्षिप्र मेतावत्सांपरायिकं ॥ ५ ॥ अनुरक्तेन चेष्टेन हृष्टेन जगतीपतिः । अल्पेनापि हि सैन्येन महीं जयति भूमिपः ॥ ६ ॥ हतो वा दिवमारोहेद्धत्वा वा क्षितिं मावसेत् । युद्धे हि संत्यजन् प्राणान् शक्रस्यैति स लोकतां ॥ ७ ॥ अपचिक्रमिषुः क्षिप्रं साम्ना वा परिसान्त्वयन्। विलंघयित्वा मन्त्रेण ततः स्वयमुपक्रमेत् ॥ ८ ॥ बुभूषेद्बलमेवैतत् सर्वं बलवतो वशे । धूमो वायोरिव वशे बलं धर्मोऽनुवर्तते ॥ ९ ॥ प्रहर्ता मतिमान् शूरः श्रुतवान् सुनृशंसवान् । निषाद्यां क्षत्रियाज्जातः क्षत्रधर्मानुपालकः ॥ १० ॥ कायव्यो नाम नैषादिर्दस्युत्वात्सिद्धि माप्तवान् । अप्यनेकशतां सेना मेकएव जिगाय सः॥११॥ बहूनि च सहस्राणि ग्रामणित्वेऽभि वव्रिरे । निर्मर्यादानि दस्यूनां निरनुक्रोश वर्तिनां ॥ १२ ॥ ग्रामणीर्भव नो मुख्यः सर्वेषामेव संमतः । यथा यथा वक्ष्यसि नः करिष्यामस्तथा तथा ॥ १३ ॥ कायव्य उवाच—मावधीस्त्वं स्त्रियं भीरुं मा शिशुं मा तपस्विनं । नायुध्यमानो हन्तव्यो न च ग्राह्या बलात्स्त्रियः ॥ १४ ॥ ते सर्व-

मेवानुचक्रुः कायव्यस्यानु शासनं । वृद्धिं च लेभिरे सर्वे पापेभ्यश्चाप्युपारमं ॥ १५ ॥ कायव्यः कर्मणा तेन महतीं सिद्धि माप्तवान् । साधूना माचरन् क्षेमं दस्यून् पापान्निवर्तयन् ॥ १६ ॥ अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्न मतिश्चयः । द्वावेव सुखमेधेते दीर्घसूत्री विनश्यति ॥ १७ ॥ नास्ति जातु रिपुर्नाम मित्रं नाम न विद्यते । सामर्थ्ययोगाज्जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ॥१८॥ मित्रं च शत्रुतामेति कस्मिंश्चित् काल पर्यये । शत्रुश्च मित्रतामेति स्वार्थो हि बलवत्तरः ॥ १९ ॥ कारणात् प्रियतामेति द्वेष्यो भवति कारणात् । अर्थार्थी जीवलोकोयं न कश्चित् कस्यचित्प्रियः॥२०॥ शत्रुसाधारणे कृत्ये कृत्वा सन्धि बलीयसा । समागमे चरेद्युक्त्या कृतार्थो न च विश्वसेत् ॥ २१ ॥ ऋणशेष मग्निशेषं शत्रुशेषं तथैव च । पुनः पुनः प्रवर्धन्ते तस्माच्छेषं न धारयेत् ॥ २२ ॥ गृध्रदृष्टिर्बकालीनः श्वचेष्टः सिंहविक्रमः । अनुद्विग्नः काकशंकी भुजंगचरितं चरेत् ॥ २३ ॥ पण्डितेन विरुद्धः सन् दूरस्थोस्मीति नाश्वसेत् । दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः॥ २४॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—बलवान् शत्रुदल से दबाए गए दुर्बल विपद्ग्रस्त को क्या करना चाहिये, यह उपदेश दीजिये ॥ १ ॥ भीष्म बोले—बाहर का जो विजिगीषु है, वह यदि धर्म अर्थ में कुशल और शुचि (वचन का सच्चा) हो, तो जल्दी उस के साथ सन्धि कर ले, और यदि कुछ उस ने पहले दबा लिया हो, तो वह छुड़ा लेवे ॥ २ ॥ जो विजिगीषु बलवान् और पाप निश्चय वाला हो, उस के साथ भी हाथ से कुछ दे कर भी सन्धि ही करे ॥ ३ ॥ जिन विपत्तियों में धन के त्याग से पार हो सकते

हैं, कौन धर्म अर्थ के जानने वाला वहां आत्मा का त्याग करे, जो कि अमूल्य है ॥ ४ ॥ ऐसे पुरुष के साथ झट पट ही सन्धि चाहे, नहीं तो झट पट ही तीव्र पराक्रम दिखलाए, इस में इतना ही रहस्य है, कि उस को झट पट दूर करे ॥ ५ ॥ अनुरक्त, चुनी हुई, हृष्ट पुष्ट थोड़ी भी सेना से राजा पृथिवी को जीतता है ॥ ६ ॥ या मर कर स्वर्ग में जाए, या मार कर पृथिवी पर बसे, युद्ध में प्राणों को त्याग कर इन्द्र की सलोकता को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ अथवा आप भाग जाने की इच्छा से उस को मीठी बातों से तसल्ली देता हुआ बच कर निकल जाए, और फिर सोच समझ कर राज्य को वापिस लेने का उद्योग करे ॥ ८ ॥ बल की ही वृद्धि करना चाहे, सब कुछ बलवान् के बस में है, धूप जैसे वायु के बस में होता है, इस प्रकार धर्म बल के अनुसार होता है ॥ ९ ॥ निषादी में से क्षत्रिय का पुत्र क्षत्रधर्म का पालक शस्त्रधारी मतिमान् शूरवीर शास्त्रज्ञ दयावान् कायव्य नाम हुआ है, जो दस्यु बन कर पीछे सिद्धि को प्राप्त हुआ, उस अकेले ने ही कई सैंकड़ों की सेना को जीता था ॥ १०—११ ॥ तब निर्दय बर्ताव करने वाले मर्यादाहीन सहस्रों दस्युओं ने उस को अपना सरदार बनाने के लिए पसन्द किया ॥१२॥ कि आप हम सब के मुखिया सरदार बन कर हमारे अन्दर रहें, जो २ आप हमें आज्ञा देंगे, सो हम करेंगे ॥ १३ ॥ कायव्य बोला—तुम स्त्री को, भीरु को बच्चे को और तपस्वी को मत मारो, जो सामने लड़ता नहीं है, उस को न मारो, और बलात् स्त्रियों को न ग्रहण करो॥१४॥ उन्होंने कायव्य के अनुशासन को पूर्णतया मान लिया, वे सब

वृद्धि पागए और पापों से बच गए ॥ १५ ॥ कायव्य भी भक्तों को बचाता हुआ और दस्युओं को पाप से बचाता हुआ अपने इस कर्म से महती सिद्धि को प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ जो आनेवाली विपद् का पहले ध्यान कर लेता है, वा जो समय पर उपाय निकाल लेता है, वे दोनों ही सुख से बढ़ते हैं, दीर्घसूत्री नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥ सदा के लिए न कोई किसी का शत्रु है, न कोई मित्र है, शक्ति के सम्बन्ध से मित्र और शत्रु हुआ करते हैं ॥ १८ ॥ किसी काल के पलटे पर मित्र शत्रु बन जाता है, और शत्रु मित्र बन जाता है, स्वार्थ सब से बढ़ कर बलवान् है॥१९॥ कारण से प्यारा बनता है, कारण से द्वेषी बनता है, दुनिया सारी मतलब की यार है, कोई किसी का प्यारा नहीं ॥ २० ॥ जब शत्रु के सांझे प्रयोजन में बलवान् के साथ सन्धि करे(विपदा में पड़ा हुआ प्रबल शत्रु भी जब सन्धि करे) तो उस समागम में बड़ी युक्ति से रहे, और जब उस का काम निकल जाए, तो फिर उस पर विश्वास न करे ॥ २१ ॥ ऋण, अग्नि और शत्रु बार २ बढ़ जाते हैं, इन का शेष न छोड़े ॥ २२ ॥ गिद्ध की दृष्टि वाला, बगले की भांति ध्यानावस्थित, कुत्ते की नन्दि वाला, शेर के पराक्रम वाला, कभी न घबराने वाला, कौए की भांति शंका वाला और सर्प की चाल वाला हो ॥ २३ ॥ विद्वान् के साथ विरोध कर के मैं दूर हूं, यह तसल्ली न करे, बुद्धिमान् की लंबी भुजाएं होती हैं, जिन से वह मारा हुआ मार देता है॥ २४ ॥

अ० १६ (व० १४१-१५८)

मूल—केनस्विद्ब्राह्मणो जीवेज्जघन्ये काल आगते । अ-

तितिक्षुः पुत्रपौत्राननुक्रोशान्नराधिप ॥ १ ॥ भीष्म उवाच—राजमूला महाबाहो योगक्षेम सुवृष्टयः । प्रजासु व्याधयश्चैव मरणं च भयानि च ॥ २ ॥ तस्मिंस्त्वभ्यागते काले प्रजानां दोष कारके । विज्ञान बलमास्थाय जीवितव्यं भवेत्तदा ॥ ३ ॥ येन येन विशेषेण कर्मणा येन केनचित् । अभ्युज्जीवेत् साद्यमानः समर्थो धर्ममाचरेत् ॥ ४ ॥ यथा यथैव जीवद्धि तत्कर्तव्य महेलया । जीवितं मरणाच्छ्रेयो जीवन् धर्म मवाप्नुयात् ॥ ५ ॥ विश्वामित्रो जहारैव कृतबुद्धिः श्वजाघनीं । ततः समारभत्कर्म दैवं पित्र्यं च भारत ॥ ६ ॥ एवं विद्वानदीनात्मा व्यसनस्थो जिजीविषुः । सर्वोपायैरुपायज्ञो दीन मात्मान मुद्धरेत् ॥ ७ ॥ एतांबुद्धिं समास्थाय जीवितव्यं सदा भवेत् । जीवन् पुण्य मवाप्नोति पुरुषो भद्र मश्नुते ॥ ८ ॥ यु० उ० पापस्य यदधिष्ठानंयतः पापं प्रवर्तते । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वेन भरतर्षभ ॥ ९ ॥ भी० उ० एको लोभो महाग्राहो लोभात्पापं प्रवर्तते । लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रवर्तते ॥ १० ॥ यो न पूरयितुं शक्यो लोभः प्राप्त्या कुरूद्वह । नित्यं गम्भीरतोयाभि रापगाभि रिवोदधिः॥११॥ स लोभः सह मोहेन विजेतव्यो जितात्मना ॥ १२ ॥ दम्भो द्रोहश्च निन्दा च पैशुन्यं मत्सरस्तथा । भवन्त्येतानि कौरव्य लुब्धानाम कृतात्मनां ॥ १३ ॥ सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुश्रुताः । छेत्तारः संशयानां च क्लिश्यन्तीहाल्प बुद्धयः ॥ १४ ॥ कामक्रोध व्यपेता ये निर्ममा निरहंकृताः । सुव्रताः स्थिर मर्यादास्तानुपास्व च पृच्छ च ॥ १५ ॥

अर्थ—निकृष्ट समय आने पर ब्राह्मण पुत्र पोतों को त्या-

गना न चाहता हुआ किस से जीविका करे ॥ १ ॥ भीष्म बोले--हे महाबाहो देश में उत्तम वृष्टि का होना, प्रजा का योगक्षेम एवं रोग मरण और भय सब राजमूलक होते हैं ॥ २ ॥ यदि प्रजाओं को पीड़ने वाला दुष्ट काल आजाए, तो विज्ञानबल का आश्रय ले कर जीना चाहिये ॥ ३ ॥ क्षीण हुआ पुरुष जिस किसी भी काम से जीविका करे, समर्थ हो कर फिर धर्म का आचरण करे ॥ ४ ॥ जिस २ तरह जीविका होसके, वह बिना अनादर के करे, जीना मरने से बढ कर है, जीता हुआ धर्म को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ पण्डित विश्वामित्र ने कुत्ते की जांघ हरली थी, और उस से फिर दैव पित्र्य कर्म किया था ॥ ६ ॥ इस प्रकार अदीन स्वभाव जब विपत्ति में पड़े, तो वह उपाय जान कर सभी उपायों से जीवन रक्षा चाहे, दीन हुए अपने को उद्धार करे ॥ ७ ॥ ऐसी बुद्धि का अवलम्बन करके सदा जिये, जीता हुआ पुरुष पुण्य को प्राप्त होता है और कल्याण देखता है ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे भारत ! पाप का घर क्या है, जिस से पाप प्रवृत्त होता है, यह मैं तत्त्व से सुनना चाहता हूं ॥ ९ ॥ भीष्म बोले—एक लोभ ही बड़ा मगर है, लोभ से पाप प्रवृत्त होता है, लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, लोभ से काम उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ हे कुरुवर ! लोभ ऐसा है, जो कि (लोभ की वस्तुओं के) मिलते जाने से भरा नहीं जा सकता, जैसे गम्भीर जल वाली नदियों से समुद्र ॥ ११ ॥ सो बुद्धिमान् को यह लोभ मोह समेत जीतना चाहिये ॥ १२ ॥ दम्भ, द्रोह, निन्दा, चुगली, और मत्सर ये दोष अवश्यात्मा लोभियों को होते हैं ॥ १३ ॥ ऐसे २ बहुश्रुत,

जो कि बड़े २ शास्त्रों को धारण करने वाले हैं, और लोगों के संदेह मिटाने वाले हैं, वे मूढ भी(लोभ में पड़ कर)क्लेश पाते हैं ॥ १४ ॥ सो जो काम क्रोध से अलग हैं, ममता और अहंकार से रहित हैं, उत्तम व्रतों वाले स्थिर मर्यादा वाले हैं, तुम उनके पास बैठो और उन से पूछो ॥ १५ ॥

अ० १७ (व० १७४-१८१) मोक्ष धर्म

मूल—यु० उ०--धर्माः पितामहेनोक्ता राजधर्माश्रिताः शुभाः । धर्ममाश्रमिणां श्रेष्ठं वक्तुमर्हसि पार्थिव ॥ १ ॥ भी० उ० सर्वत्र विहितो धर्मः स्वर्ग्यः सत्यफलोदयः । बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया ॥ २ ॥ नालं सुखाय सुहृदो नालं दुःखाय शत्रवः । न च प्रज्ञालमर्थानां न सुखानामलं धनं ॥ ३ ॥ नबुद्धि-र्धन लाभाय न जाड्यमसमृद्धये । लोकपर्याय वृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः ॥ ४ ॥ बुद्धिमन्तं च शूरं च मूढं भीरुं जडं कविं । दुर्बलं बलवन्तं च भागिनं भजते सुखं ॥ ५ ॥ धेनुर्वत्सस्य गोपस्य स्वामिनस्तस्करस्य च । पयः पिबति यस्तस्या धेनुस्तस्येति निश्चयः ॥ ६ ॥ ये च मूढतमा लोके ये च बुद्धेः परं गताः । ते नराः सुखमेधन्ते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥ ७ ॥ सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदिवाऽप्रियं । प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः॥ ८ ॥पूर्वदेह कृतं कर्म शुभं वा यदिवाऽशुभं । प्राज्ञं मूढं तथा शूरं भजते यादृशं कृतं ॥ ९ ॥ अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मा त्वां कालोऽत्यगादयं । नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य नवा कृतं॥१०॥ युवैव धर्मशीलः स्यादनित्यं खलु जीवितं । कृते धर्मे भवेत्कीर्ति-रिह प्रेत्य च वै सुखं ॥ ११ ॥ मोहेनहि समाविष्टः पुत्रदारार्थमुद्यतः । कृत्वाकार्य मकार्यं वा पुष्टिमेषां प्रयच्छति ॥ १२ ॥ तं

पुत्रपशुसंपन्नं व्यासक्तमनसं नरं । सुप्तं व्याघ्रो मृगमिव मृत्युरादाय गच्छति ॥ १३ ॥ न मृत्युसेनामायान्तीं जातु कश्चित्प्रबाधते । ऋते सत्यमसत् त्याज्यं सत्ये ह्यमृतमाश्रितं ॥ १४ ॥ तस्मात् सत्य व्रताचारः सत्ययोग परायणः । सत्यागमः सदा दान्तः सत्येनैवान्तकं जयेत् ॥ १५ ॥ दुर्भिक्षादेव दुर्भिक्षं क्लेशात् क्लेशं भयाद् भयं । मृतेभ्यः प्रमृतं यान्ति दरिद्राः पाप कारिणः ॥ १६ ॥ उत्सवा दुत्सवं यान्ति स्वर्गात्स्वर्गं सुखात् सुखं । श्रद्दधानाश्च दान्ताश्च धनाढ्याः शुभकारिणः ॥ १७ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! राजधर्म से सम्बन्ध रखने वाले शुभधर्म आप ने कहे हैं, अब हे राजन् आश्रमियों के श्रेष्ठ कर्तव्य कहने की कृपा कीजिये॥१॥ भीष्म बोले-सच्चे फल लाने वाला, स्वर्ग का साधन धर्म सब आश्रमों से विधान किया है, बहुत द्वारों वाले धर्म की कोई भी क्रिया फलहीन नहीं है (अर्थात् धर्म के सभी अंग सुख के साधन हैं)॥२॥ सुख के लिए निरे मित्र ही पर्याप्त नहीं होते, दुःख के लिए निरे शत्रु ही पर्याप्त नहीं होते, अर्थों के लिए निरी प्रज्ञा पर्याप्त नहीं, सुखों के लिए निरा धन पर्याप्त नहीं ॥ ३ ॥ बुद्धि अवश्य धन लाभ के लिए हो, यह नियम नहीं, मूर्खता दारिद्रता के लिए हो यह भी नियत नहीं, लोक में सफलता के वृत्तान्त को प्राज्ञ जानता है, दूसरा नहीं ॥ ४ ॥ बुद्धिमान् और निर्बुद्धि, शूर और भीरु, जड और कवि, दुर्बल और बलवान् को सुख सेवन करता है, जब वह भागी होता है ॥ ५ ॥ धेनु बछड़े की, ग्वाले की, स्वामी की और चोर की है, उस का जो दूध पीता है, धेनु उस की है यह निश्चय है ॥ ६ ॥ लोक में जो मनुष्य मूढतम हैं,

और जो बुद्धि के पार पहुंचे हुए हैं, वे सुख से बढ़ते हैं, इन दोनों के बीच का पुरुष दुःखी रहता है ॥ ७ ॥ सुख वा दुःख प्रिय वा अप्रिय जो २ प्राप्त हो उस का सेवन करे, हृदय से न हारे ॥ ८ ॥ पूर्वदेह में किया शुभ वा अशुभ कर्म प्राज्ञ मूढ और शूरवीर को मिलता है, जैसा उस ने किया है ॥ ९ ॥ आज ही अपनी भलाई में लगो, यह समय तुम्हारे हाथ से न निकल जाए, मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करता, कि इसने किया है, वा नहीं किया है ॥ १० ॥ यौवन में ही धर्मशील बनो, जीवन निःसंदेह अनित्य है, धर्म के करने पर यहां यश और परलोक में सुख होता है ॥ ११ ॥ मोह के वस में हुआ पुत्र कलत्र के लिए उद्योग करता हुआ कार्य अकार्य कर के उन को पालना चाहता है ॥ १२ ॥ उस पुत्र और पशुओं से संपन्न फंसे हुए मन वाले पुरुष को मृत्यु सोए हुए मृग को शेर की भांति ले कर चल देता है ॥ १३ ॥ आती हुई मृत्युसेना को सत्य से अतिरिक्त कोई बाधने वाला नहीं, इस लिए असत्य को त्यागो, सत्य में अमृत है ॥ १४ ॥ इस लिए सत्यव्रत पर चलने वाला, सत्य ब्रह्म के साथ युक्त हुआ, सत्य शास्त्र पर निष्ठा वाला सदा दान्त सत्य से ही मृत्यु को जीतता है ॥ १५ ॥ जो दरिद्र हो कर पाप कारी हैं, वे दुर्भिक्ष से दुर्भिक्ष, क्लेश से क्लेश, भय से भय और मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ पर वे उत्सव से उत्सव को स्वर्ग से स्वर्ग को सुख से सुख को प्राप्त होते हैं, जो धनाढ्य श्रद्धावान् दान्त और शुभकारी हैं ॥ १७ ॥

अ० १८ (व० १८७-२०४) आत्मा का विवेचन

मूल-भारद्वाज उवाच—पञ्चात्मके पञ्चरतौ पञ्चविज्ञान

चेतने । शरीरे प्राणिनां जीवं वेत्तुमिच्छामि यादृशं ॥ १ ॥ मांस शोणितसंघाते मेदः स्नाय्वस्थिसंचये । भिद्यमाने शरीरे तु जीवो नैवोपलभ्यते ॥ २ ॥ हृष्यति क्रुध्यते कोऽत्र शोचत्युद्विजते च कः। इच्छति ध्यायति द्वेष्टि वाचमीरयतेचकः ॥ ३ ॥ भृगुरुवाच–पञ्चात्मके पञ्चगुणप्रदर्शी स सर्वगात्रानुगतोऽन्तरात्मा । स वेत्ति दुःखानि सुखानि चात्र तद्विप्रयोगात्तु न वेत्ति देहः॥ ४ ॥ न जीवनाशोऽस्ति हि देह भेदे मिथ्यैतदाहुर्मृत इत्यबुद्धाः ।जीवस्तु देहान्तरितः प्रयाति दशार्धतैवास्य शरीर भेदः ॥ ५ ॥ एवं सर्वेषु भूतेषु गूढश्चरति संवृतः । दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६ ॥ तं पूर्वापररात्रेषु युञ्जानः सततं बुधः । लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मान मात्मनि॥ ७ ॥ मनु रुवाच-यथा च कश्चित परशुं गृहीत्वा धूमं न पश्येज्ज्वलनं च काष्ठे । तद्वच्छरीरोदरपाणिपादं छित्वा न पश्यन्ति ततो यदन्यत ॥८॥ तान्येव काष्ठानि यथा विमथ्य धूमं च पश्येज्ज्वलनं च योगात । तद्वत स बुद्धिसम मिन्द्रियात्मा बुद्धेः परं पश्यति तं स्वभावं॥९॥ उत्पत्ति वृद्धि व्यय सन्निपातैर्न युज्यतेऽसौ परमः शरीरी । अनेन लिंगेन तु लिंग मन्यद् गच्छत्य दृष्टः फलसन्नियोगात ॥ १० ॥ यथा चन्द्रार्क संयुक्तं तमस्तदुपलभ्यते । तद्वच्छरीर संयुक्तः शारीरीत्युप लभ्यते ॥ ११ ॥ यथा चन्द्रार्क निर्मुक्तः स राहुर्नोप लभ्यते । तद्वच्छरीर निर्मुक्तः शरीरी नोपलभ्यते ॥ १२ ॥ ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात पापस्य कर्मणः । यथादर्शतलप्रख्ये पश्यत्यात्मान मात्मनि ॥ १३ ॥ उद्यन् हि सविता यद्वत्सृजते रश्मि मण्डलं । स एवास्त मुपागच्छंस्तदेवात्मानि यच्छति ॥ १४ ॥ अन्तरात्मा तथा देह माविश्येन्द्रिय रश्मिभिः । प्राप्येन्द्रिय गुणान्

पञ्चसोऽस्तमात्मा गच्छति ॥ १५ ॥ दुःखोप घाते शारीरे मानसे चाप्युपस्थिते । यस्मिन्न शक्यते कर्तुं यत्नस्तं नानुचिन्तयेत् ॥ १६ ॥ भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानु चिन्तयेत् । चिन्त्यमानं हि चाभ्येति भूयश्चापि प्रवर्तते ॥ १७ ॥ प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीर मौषधैः । एतद्विज्ञान सामर्थ्यं न बालैः समतां व्रियात् ॥ १८ ॥ न जानपदिकं दुःख मेकः शोचितु मर्हति । अशोचन् प्रतिकुर्वीत यदि पश्येदुपक्रमं ॥ १९ ॥ परित्यजति योदुःखं सुखं वाप्युभयं नरः । अभ्येति ब्रह्म सोऽत्यन्तं न ते शोचन्ति पण्डिताः ॥ २० ॥

अर्थ—भारद्वाज* बोले—पञ्चभूतमय, पांच विषयों में प्रीति वाला, पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच ज्ञानों वाला जो प्राणियों का शरीर है, उस में जीव का जो स्वरूप है, वह जानना चाहता हूं ॥ १ ॥ यह शरीर जो मांस रुधिर चर्बी स्नायु और अस्थियों का संघात है, इस को चीरने फाड़ने पर जीव कोई नहीं मालूम होता है ॥ २ ॥ कौन इस देह में हर्षित और क्रुद्ध होता है, कौन शोक और भय करता है, कौन राग और द्वेष करता है, कौन चिन्तन करता है और कौन वाणी बोलता है ॥ ३ ॥ भृगु बोले—पञ्चभूतमय शरीर में पांचों विषयों का द्रष्टा सारे शरीर को चैतन्य करता हुआ जो अन्तरात्मा है, वह इस में सुख दुःख को अनुभव करता है, उस के अलग होने पर देह नहीं जानता है ॥ ४ ॥ देह के नाश में जीव का नाश नहीं होता है, मर गया है, यह अज्ञानी जन मिथ्या कहते हैं, जीव

* यहां भारद्वाज और भृगु का संवाद भीष्मने युधिष्ठिर को सुनाया है, ऐसा ही आगे मनु का भी।

तो सूक्ष्म देह में ढपा हुआ निकल जाता है, पांचों तत्त्वों का अलग हो जाना ही शरीर का नाश है ॥ ५ ॥ इस प्रकार आत्मा सब भूतों में छिपा रहता है, हां तत्त्वदर्शियों से सूक्ष्मबुद्धि के द्वारा देखा जाता है ॥ ६ ॥ पहली पिछली रात में लगातार योग साधन द्वारा अल्पाहारी शुद्धात्मा योगी उस आत्मा को अपने अन्दर देखता है ॥ ७ ॥ मनु का उपदेश है—कि जैसे कोई पुरुष कुल्हाड़ा ले कर काठ में धूम और अग्नि नहीं देखता है, इसी प्रकार शरीर के हाथ पाओं पैर आदि को काट कर उस को नहीं देखते हैं, जो उन से अलग है ॥ ८ ॥ उन्हीं काष्ठों को जैसे मथन करके उपाय से धूम और अग्नि को देखता है, इसी प्रकार इन्द्रियों का अन्तरात्मा बुद्धि के साथ बुद्धि से परे वर्तमान अपने स्वरूप को देखता है ॥ ९ ॥ यह जो परे आत्मा है, यह उत्पत्ति वृद्धि ह्रास और नाश से युक्त नहीं होता है, किन्तु फल भोग के लिए बे मालूम उस शरीर से दूसरे शरीर में चला जाता है ॥ १० ॥ जैसे चन्द्र और सूर्य से युक्त तम (ग्रहण के समय चन्द्र और पृथिवी की छाया) उपलब्ध होता है, इस प्रकार शरीर से संयुक्त हुआ जीव उपलब्ध होता है॥११॥ और जैसे चन्द्र और सूर्य से अलग हुआ तम नहीं उपलब्ध होता है, इस प्रकार शरीर से अलग हुआ आत्मा नहीं उपलब्ध होता है ॥ १२ ॥ किन्तु जब पाप के क्षय से पुरुषों को ज्ञान उत्पन्न होता है, तो शीशे के सदृश अपने अन्दर आत्मा को देखता है ॥ १३ ॥ उदय होता हुआ सूर्य जिस प्रकार रश्मिसमूह को फैलाता है, वही अस्त होता हुआ अपने अन्दर समेट लेता है ॥ १४ ॥ इसी प्रकार अन्तरात्मा देह में प्रवेश कर के इन्द्रियों

द्वारा ज्ञान के किरण फैलाता है, और मरने के समय समेट कर साथ ले जाता है ॥ १५ ॥ जब कोई शारीरिक वा मानस दुःख की चोट ऐसी लगे, जिस का कोई प्रतीकार नहीं, तो उस को चिन्तन ही न करे ॥ १६ ॥ दुःख का यह औषध है, कि उस का चिन्तन न करे, चिन्तन करने से वह सामने आता है, और नए सिरे प्रवृत्त होता है ॥ १७ ॥ मानस दुःख को विचार से और शारीर को औषधों से दूर करे, यही जानने (पढ़ने सुनने) का फल है, बालों की समता को न प्राप्त हो (हाय २ न करता रहे) ॥ १८ ॥ देश का जो दुःख है, उस पर अकेले शोक नहीं करना चाहिये (देशवासियों के साथ मिल कर इलाज करे). किन्तु शोक न करता हुआ प्रतीकार करे, यदि कोई इलाज देखे ॥ १९ ॥ जो पुरुष सुख और दुःख दोनों को त्याग देता है, वह ब्रह्म को प्राप्त होता है, ऐसे ज्ञानी पुरुष शोक से पार होजाते हैं ॥ २० ॥

अ० १९ (व० २४२-२४५) आश्रम धर्म

मूल—शुक उवाच—यदिदं वेदवचनं लोकवादे विरुध्यते । प्रमाणे वाऽप्रमाणे वा विरुद्धे शास्त्रता कुतः ॥ १ ॥ व्यास उवाच—ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । यथोक्तचारिणः सर्वे गच्छन्ति परमांगतिं ॥ २ ॥ एको वाप्याश्रमानेतान् योऽनुतिष्ठेद्यथाविधि । अकामद्वेष संयुक्तः स परत्र विधीयते॥३॥ चतुष्पदी हि निःश्रेणी ब्रह्मण्येषा प्रतिष्ठिता । एतामारुह्य निःश्रेणीं ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४ ॥ आयुषस्तु चतुर्भागं ब्रह्मचार्यनसूयकः । गुरौ वा गुरुपुत्रे वा वसेद्धर्मार्थ कोविदः ॥ ५ ॥ कर्मा-

तिशेषेण गुरावध्येतव्यं बभूषता । दक्षिणोऽनपवादीस्यादाहूतो गुरुमाश्रयेव ॥ ६ ॥ ये केचिद्विस्तरेणोक्ता नियमा ब्रह्मचारिणः । तान् सर्वानाचरे न्नित्यं भवेच्चानपगो गुरोः ॥ ७ ॥ वेदव्रतोपवासेन चतुर्थे चायुषोगते । गुरवे दक्षिणां दत्त्वा समावर्तेद्यथाविधि ॥ ८ ॥ द्वितीयमायुषो भागं गृहमेधी गृहे वसेत् । धर्मलब्धैर्युतो दारैरग्नीनाहृत्य सुव्रतः ॥ ९ ॥ गृहमेधि व्रतान्यत्र महान्तीह प्रचक्षते । न दिवा प्रस्वपेज्जातु न पूर्वापररात्रिषु ॥ १० ॥ न भुञ्जीतान्तराकाले नानृतावाह्वयेत् स्त्रियं । नास्यानश्नन् गृहे विप्रो वसेत्कश्चिद पूजितः ॥ ११ ॥ विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं चामृत भोजनः । विघसं भृत्यशेषं तु यज्ञ शेष मथामृतं ॥ १२ ॥ ऋत्विक् पुरोहि चार्यैर्मातुला तिथि संश्रितैः । वृद्धबालातुरैर्वैद्यैर्ज्ञाति सम्बन्धि बान्धवैः ॥ १३ ॥ मातापितृभ्यां जामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया । दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥ १४ ॥ गृहस्थस्तु यदा पश्येद् बलीपलित मात्मनः । अपत्यस्यैव चापत्यं वनमेव तदाश्रयेत् ॥ १५ ॥ अफाल कृष्टं व्रीहि यवं नीवारं विघसानि च । हवींषि संप्रयच्छेत मखेष्वत्रापि पञ्चषु ॥ १६ ॥ चतुर्थे चायुषः शेषे वानप्रस्थाश्रमं त्यजेत् । सद्यस्कारां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणां ॥ १७ ॥ आत्मयाजी सोऽऽत्मरतिरात्म क्रीड्यात्म संश्रयः। आत्मन्यग्नीन् समारोप्य त्यक्त्वा सर्व परिग्रहान् ॥ १८ ॥ अभयं सर्व भूतेभ्यो दत्वा यः प्रव्रजेद् द्विजः । लोकास्तेजोमयास्तस्य प्रेत्य चानन्त्य मश्नुते ॥ १९ ॥ यस्मिन्वाचः प्रविशन्ति कूपं त्रस्ता द्विपाइव । न वक्तारं पुनर्यान्ति स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥ २० ॥ नैव पश्येन्न शृणुयादवाच्यं जातु कस्य-

चित् ।तूष्णीमासीत निन्दायां कुर्वन् भैषज्य मात्मनः ॥ २१ ॥ येन पूर्णमिवाकाशं भवत्येकेन सर्वदा । शून्यं येन जनाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ २२ ॥ येन केन चिदाच्छन्नो येन केन चिदाशितः । यत्र क्वचनशायी च तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥२३॥ न क्रुध्येन्न प्रहृष्येच्च मानितोऽमानितश्च यः । सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ २४ ॥ नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितं । कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा ॥ २५ ॥ अनाभ्याहतचित्तः स्यादनभ्याहतवाग् भवेत । निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो निरमित्रस्य किं भयं ॥ २६ ॥ विमुक्तं सर्वसंगेभ्यो मुनिमाकाशवत् स्थितं । अस्वमेकचरं शान्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ २७ ॥ जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मो हर्यर्थमेव च । निर्मुक्तं बन्धनैः सर्वैस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ २८॥

अर्थ—(अब भीष्म पितामह युधिष्ठिर को शुक व्यास संवाद द्वारा आश्रम धर्मों का उपदेश करते हैं) यह जो वेद का वचन साधारण दृष्टि में विरुद्ध जचता है, प्रमाण हो वा अप्रमाण हो. विरुद्ध में शास्त्रत्व की सिद्धि कैसे ॥ १ ॥ व्यास बोले—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी अपने २ आश्रम धर्म पर चलते हुए सब परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ अथवा एक ही जो यथाविधि इन आश्रमों का अनुष्ठान करे, रागद्वेष से युक्त न हो, वह परलोक में सिद्धि पाता है ॥ ३ ॥ यह चार डंडों वाली सीढ़ी ब्रह्म के निकट पहुंचाती है, इस सीढ़ी पर चढ़ कर ब्रह्मलोक में पूजा जाता है ॥ ४ ॥ आयु के पहले चतुर्थ भाग में धर्म अर्थ का जानने वाला पुरुष ब्रह्मचारी बन कर असूया न करता हुआ गुरु वा गुरुपुत्र के निकट रहे ॥ ५ ॥

वृद्धि चाहने वाले पुरुष को गुरु की सेवा करके पढ़ना चाहिये, सरल हो, निन्दा से रहित हो, बुलाया हुआ गुरु के पास जाए ॥ ६ ॥ ब्रह्मचारी के लिए जो नियम विस्तार से कहे हैं, उन सब का पालन करे, और गुरु से परे न रहे ॥ ७ ॥ इस प्रकार वेदव्रत के अनुष्ठान से आयु का चौथा भाग बीत जाने पर गुरु को दक्षिणा दे कर यथा विधि समावर्तन करे ॥ ८ ॥ आयु के दूसरे भाग में गृहस्थ बन कर धर्म से विवाही स्त्री के साथ अग्न्याधान करके घर में बसे ॥ ९ ॥ गृहस्थ के बहुत बड़े व्रत शास्त्र में कहे हैं, दिन को कभी न सोवे, न पहली पिछली रात में ॥ १० ॥ दोनों भोजनों के मध्य में न भोजन करे, ऋतुकाल के बिना स्त्री के पास न जाए, अतिथि ब्राह्मण इस के घर में सत्कार पाए बिना न रहे ॥ ११ ॥ सदा विघसभोजी हो सदा अमृत भोजी हो, भरण पोषण के योग्यों से बचा हुआ विघस है, यज्ञ से बचा हुआ अमृत है ॥ १२ ॥ ऋत्विज्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, आश्रित, वृद्ध, बाल, रोगी, वैद्य, ज्ञाति सम्बन्धी, बान्धव ॥ १३ ॥ माता पिता बहिन भाई पत्नी पुत्र कन्या और दास वर्ग के साथ विवाद न करे ॥ १४ ॥ गृहस्थ जब त्वचा ढीली और बाल श्वेत देखे, और सन्तान के सन्तान होजाए, तब वन का ही आश्रय ले ॥ १५ ॥ वन में भी जो खेत वाह कर नहीं बोए, ऐसे चावल जौ नीवार की हवि पांच यज्ञों में देवे ॥ १६ ॥ आयु का चौथा भाग शेष रहने पर सर्वस्वदक्षिणा वाली प्राजापत्य इष्टि कर के वानप्रस्थ आश्रम को त्याग देवे ॥ १७ ॥ आत्मयज्ञ में लगा हुआ, आत्मा में आनन्द मनाता हुआ आत्मा में क्रीडा वाला आत्मा का आश्रय

लिए आत्मा में अग्नियों का आरोप कर के सारे परिग्रह त्याग कर ॥ १८ ॥ सारे भूतों को अभय दे कर जो द्विज संन्यास लेता है, मरने के अनन्तर उस के तेजोमय लोक होते हैं, और वह अनन्त फल को पाता है ॥ १९ ॥ लोगों के निन्दा वचन जिस के अन्दर कुएं में फेंके की भांति लीन होजाते हैं, मुड़ कर वक्ता की ओर नहीं जाते,वह संन्यास आश्रम में बसे॥२०॥ न कभी किसी का अनिष्ट देखे, न अवाच्य सुने, अपनी (आत्म रोग की) चिकित्सा करता हुआ निन्दा में चुप रहे ॥ २१ ॥ जिस अकेले से सारा आकाश पूर्णसा हो, और लोगों से भरा हुआ भी स्थान जिस के बिना शून्य प्रतीत हो, उस को देवता ब्राह्मण जानते हैं ॥ २२ ॥ किसी ने पहनाया, तो पहन लिया, किसीने खिलाया, तो खा लिया, और जहां रात आई सो गया, उस को देवता ब्राह्मण जानते हैं ॥ २३ ॥ जो मानित हो कर हर्ष नहीं करता और अपमानित हो कर क्रोध नहीं करता, सब भूतों को अभय देने वाला है, उस को देवता ब्राह्मण जानते हैं ॥ २४ ॥ न मरने की इच्छा रखे न जीने की, काल की ही प्रतीक्षा करे, जैसे नौकर आज्ञा की प्रतीक्षा करता है ॥ २५ ॥ न चित्त में मैल लाए, न कभी वाणी में मैल लाए, सारे पापों से अलग रहे, जिसका कोई शत्रु नहीं, उस को भय किस से॥२६॥ सारे [illegible] से अलग हो कर मुनि बन कर आकाश की नाईं स्थित अपने पास कुछ न रखता हुआ अकेला विचरता हुआ जो शान्त है, उस को देवता ब्राह्मण जानते हैं ॥ २७ ॥ जिस का जीवन धर्म के अर्थ और धर्म ईश्वर प्रीति के लिए है, सारे बन्ध-नों से निर्मुक्त है, उस को देवता ब्राह्मण जानते हैं ॥ २८ ॥

अ०२०(व०२५९)

मुल-यु०उ०कोऽयं धर्मः कुतो धर्मस्तन्मे ब्रूहि पितामह। धर्मस्त्वयमिहार्थः किममुत्रार्थोपिवा भवेत ॥ १ ॥ भी० उ० सदाचारः स्मृतिर्वेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणं । चतुर्थमर्थ मित्याहुः कवयो धर्मलक्षणं ॥ २ ॥ लोकयात्रार्थमेवेह धर्मस्य नियमः कृतः। उभयत्र सुखोदर्क इह चैव परत्र च ॥ ३ ॥ धर्मस्य निष्ठा त्वाचारस्तमेवाश्रित्य भोत्स्यसे ॥ ४ ॥ यथाऽधर्मसमाविष्टो धनं गृह्णाति तस्करः । रमते निर्हरं स्तेनः परवित्तमराजके ॥ ५ ॥ यदाऽस्य तद्धरन्त्यन्ये तदा राजानमृच्छति । तदा तेषां स्पृहयते ये वै तुष्टाः स्वकैर्धनैः ॥ ६ ॥ सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परं । सत्येन विधृतं सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितं ॥ ७ ॥ अपि पापकृतो रौद्राः सत्यं कृत्वा पृथक् पृथक् । अद्रोहमविसंवादं प्रवर्तन्ते तदाश्रयाः ॥ ८ ॥ त चेन्मिथोऽधृतिं कुर्युर्विनश्येयुरसंशयं ॥ ९ ॥ न हर्तव्यं परधनमिति धर्मः सनातनः । मन्यन्ते बलवन्तस्तं दुर्बलैः संप्रवर्तितं ॥ १० ॥ यदा नियतिदौर्बल्यमथैषामेव रोचते । न ह्यत्यन्तबलवन्तो भवन्ति सुखिनोपि वा ॥ ११ ॥ सर्वतः शंकते स्तेनो मृगो ग्राममिवाविशन् । बहुधा चरितं पापमन्यत्रैवानुपश्यति ॥ १२ ॥ दातव्यमित्ययं धर्म उक्तो भूतहिते रतैः । तं मन्यन्ते धनयुताः कृपणैः संप्रवर्तितं ॥ १३ ॥ यदा नियतिकार्पण्यमथैषामेव रोचते । न ह्यत्यन्तं धनवन्तो भवन्ति सुखिनोपि वा ॥ १४ ॥ यदन्यैर्विहितं नेच्छदात्मनः कर्मपूरुषः । न तत्परेषु कर्तव्यं जानन्नप्रियमात्मनः ॥ १५ ॥ धर्मलक्षणमाख्यात मेतत ते कुरुसत्तम । तस्मादनार्जव बुद्धिर्न ते कार्या कदाचन ॥ १६ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—धर्म क्या है, किस से धर्म उत्पन्न हुआ है, धर्म क्या इस लोक के लिए है वा परलोक के लिए भी है, हे पितामह यह बतलाइये ॥ १ ॥ भीष्म बोले—वेद, स्मृति और सदाचार ये तीन धर्म के मूल हैं, चौथा अर्थ को धर्म का मूल कहते हैं ॥ २ ॥ लोकयात्रा के लिए जो धर्म का नियम बांधा गया है, वह लोक परलोक दोनों में सुख जनक होता है ॥ ३ ॥ धर्म की निष्ठा तो आचार है, आचार के आश्रय धर्म को जान लोगे ॥ ४ ॥ जैसे अधर्म में लिप्त चोर दूसरे के धन को ग्रहण करता है, अराजक देश पर धन को छीनता हुआ चोर आनन्द मनाता है ॥ ५ ॥ पर जब दूसरे इस का धन छीनते हैं, तब राजा के पास जाता है, तब उन को अच्छा समझता है, जो अपने धनों से संतुष्ट हैं ॥ ६ ॥ सत्य कहना धर्म है, सत्य से बढ़ कर कुछ नहीं, सत्य से सब कुछ मर्यादा में है, सत्य सब की बुनियाद है ॥ ७ ॥ पाप करने वाले बड़े क्रूर पुरुष भी जो अपना सत्य नियम बांध लेते हैं, उस के आश्रय काम करते हैं, उस में न द्रोह करते हैं, न छलट करते हैं ॥ ८ ॥ वे यदि आपस में मर्यादा को तोड़दें, तो निःसंदेह नष्ट होजाएं ॥ ९ ॥ दूसरे का धन नहीं छीनना चाहिये, यह सनातन धर्म है, बल वाले समझते हैं, कि यह धर्म दुर्बलों ने प्रवृत्त किया ॥ १० ॥ पर जब भाग्य से उन में दुर्बलता आजाए, तो फिर इन्हीं का यह धर्म ठीक जचता है, यह कोई नियम नहीं है, कि जो बल वाले हों, वे सदा सुखी भी हों ॥ ११ ॥ ग्राम में आ निकले वन मृग की भांति चोर सब से शंका करता है, उस ने जैसा स्वयं बहुधा पाप किया है, वैसी दूसरे में भी दृष्टि रखता है॥१२॥

जीवों के हित चाहने वालों ने यह धर्म कहा है. कि दान देना चाहिये, धनी पुरुष कहते हैं, कि यह निर्धनों ने चलाया है॥१३॥ जब भाग्य से उन में निर्धनता आजाए, तो फिर उन को वह धर्म पसन्द आता है, यह नियम नहीं कि धन वाले अवश्य सुखी भी होते हैं ॥ १४ ॥ सो पुरुष दूसरों से किया कर्म जो अपने लिए न चाहे, उस को अपना अप्रिय जान आप भी दूसरों के लिए न करे ॥ १५ ॥ हे कुरुवर यह तुझे धर्म का मूल बतला दिया है, सो तुझे कभी भी कुटिलता में बुद्धि नहीं करनी चाहिये ॥ १६ ॥

अ० २१ (व० २८६-२९३) मिश्रित धर्म

मूल—नारद उवाच—संप्रहृष्टमना नित्यं विशोक इव लक्ष्यसे । नित्यतृप्त इव स्वस्थो बालवच्च विचेष्टसे ॥ १ ॥ समंग उवाच—भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वमेतत्तु मानद । तेषां तत्त्वानि जानामि ततो न विमना ह्यहं ॥ २ ॥ उपक्रमानहं वेद पुनरेव फलोदयान् । लोके फलानि चित्राणि ततो न विमना ह्यहं ॥ ३ ॥ अगाधाश्चाप्रतिष्ठाश्च गतिमन्तश्च नारद । अन्धा जडाश्च जीवन्ति पश्यास्मानपि जीवतः ॥ ४ ॥ सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा । शाकेन चान्ये जीवन्ति पश्यास्मानपि जीवतः ॥ ५ ॥ न ह्येव दुःखानि सदा भवन्ति सुखस्य वा नित्यशो लाभ एव । भवात्मकं संपरिवर्तमानं न मादृशः संज्वरं जातु कुर्यात् ॥ ६ ॥ आत्मोत्कर्षं न मार्गेत परेषां परिनिन्दया । स्वगुणैरेव मार्गेत विप्रकर्षं पृथग्जनात् ॥ ७ ॥ निर्गुणास्त्वेव भूयिष्ठमात्म संभाविता नराः । दोषैरन्यान् गुणवतः क्षिपन्त्यात्मगुणक्षयात्

॥ ८ ॥ अब्रुवन् कस्यचिन्निन्दामात्मपूजामवर्णयन् । विपश्चिद् गुणसम्पन्नः प्राप्नोत्येव महद् यशः ॥ ९ ॥ न लोके दीप्यते मूर्खः केवलात्मप्रशंसया । अपि चापिहितः श्वभ्रे कृतविद्यः प्रकाशते ॥ १० ॥ उत्कर्षार्थं प्रयतेत नरः पुण्येन कर्मणा । अज्ञानाद्धि कृतं पापं तपसैवाभिनिर्णुदेत ॥ ११ ॥ पापं हि कर्म फलति पापमेव स्वयं कृतं । तस्मात् पापं न सेवेत कर्म दुःख फलोदयं ॥ १२ ॥ येऽर्था धर्मेण ते सत्या येऽधर्मेण धिगस्तु तान् । धर्मं वै शाश्वतं लोके न जह्याद्धन कांक्षया ॥ १३ ॥ धर्मादपेतं यत्कर्म यद्यपि स्यान्महाफलं । न तत्सेवेत मेधावी न तद्धितमिहो-च्यते ॥ १४ ॥

अर्थ—(भीष्म पितामह युधिष्ठिर को नारद और समंग का संवाद सुनाते हैं) नारद बोले—हे समंग ! तुम सदा प्रसन्न मन, शोक से रहित प्रतीत होते हो, नित्य तृप्त की भांति स्वस्थ हो, बाल के समान (हर्ष शोक से रहित) काम करते हो॥ १ ॥ समंग ने उत्तर दिया—हे मानद ! मैं हो चुके, होने वाले और होते हुए भावों के तत्त्व जानता हूं, इस से विमन नहीं हूं ॥ २ ॥ मैं कर्मारम्भों को जानता हूं, और उन से जो फल निकलते हैं, उन को जानता हूं, लोक में फल भांति २ के मिल रहे हैं, इस से मैं विमन हूं ॥ ३ ॥ हे नारद ! ओछे लंगड़े, गति वाले, अन्धे और जड़ भी जीते हैं, सो हमें भी जीवन चलाते हुए देख ॥ ४ ॥ सहस्रों वाले भी जीते हैं, सैंकड़ों वाले भी जीते हैं, और कई साग खा कर भी जीते हैं, सो हमें भी जीवन चलाते हुए देख ॥ ५ ॥ न सदा दुःख रहते हैं, न ही सुख की सदा प्राप्ति रहती है, संसार चक्र खाता रहता है, फिर मेरे जैसा क्यों कभी

पीड़ित हो ॥ ६ ॥ (गालव के प्रति नारद वचन-) पुरुष को चाहिये, कि दूसरों की निन्दा से अपनी बड़ाई न ढूंढे, अपने गुणों द्वारा ही साधारण पुरुषों से बढना चाहे ॥ ७ ॥ प्रायः अपने को बड़ा मानने वाले निर्गुण पुरुष ही, अपने में गुण न होने के कारण, गुण वालों को दोष लगाते हैं ॥ ८ ॥ किसी की निन्दा न करता हुआ और अपनी पूजा न कहता हुआ गुण संपन्न ज्ञानी बड़े यश को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ मूर्ख निरी अपनी प्रशंसा से लोक में नहीं चमकता है, और योग्य विद्वान् गढे में छिपाया हुआ भी चमकता है ॥ १० ॥ मनुष्य को चाहिये, कि पुण्य कर्म से ही अपने उत्कर्ष के लिए प्रयत्न करे, अज्ञान से किये पाप को तप से दूर करे ॥ ११ ॥ स्वयं किया पाप कर्म पाप ही फलता है, इस लिए दुःख फल लाने वाले पाप कर्म का कभी सेवन न करे ॥ १२ ॥ जो अर्थ धर्म से होते हैं, वे ही सत्य हैं, जो अधर्म से होते हैं, उन को धिक्कार है, धर्म जो साथ जाने वाला है, उस को धन की कामना से कभी न त्यागे ॥ १३ ॥ धर्म से गिरा हुआ कर्म यद्यपि बड़े फल वाला हो, तौ भी बुद्धिमान् उस का सेवन न करे, वह भला नहीं कहलाता है ॥ १४ ॥

अ० २२ (व० ३२०-) सुलभा जनक संवाद

मूल—युधिष्ठिर उवाच—अपरित्यज्य गार्हस्थ्यं कुरु राजर्षिसत्तम । कः प्राप्तो विनयं बुद्ध्या मोक्षतत्त्वं वदस्व मे ॥ १ ॥ भीष्म उवाच—अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनं । जनकस्य च संवादं सुलभायाश्च भारत ॥ २ ॥ संन्यास फालिकः कश्चिद् बभूव नृपतिः पुरा । मैथिलो जनको नाम धर्मध्वज इति

श्रुतः ॥ ३ ॥ वेदे मोक्षशास्त्रे च स्वे च शास्त्रे कृतश्रमः । इन्द्रियाणि समाधाय शशास वसुधामिमां ॥ ४ ॥ तस्य वेदविदः प्राज्ञाः श्रुत्वा तां साधुवृत्ततां । लोकेषु स्पृहयन्त्यन्ये पुरुषाः पुरुषेश्वर ॥ ५ ॥ अथ धर्मयुगे तस्मिन् योगधर्म मनुष्ठिता । महीमनुचचारैका सुलभा नाम भिक्षुकी ॥ ६ ॥ तया जगदिदं कृत्स्नमटन्त्या मिथिलेश्वरः । तत्र तत्र श्रुतो मोक्षे कथ्यमानस्त्रिदण्डिभिः ॥ ७ ॥ साऽतिसूक्ष्मां कथां श्रुत्वा तथ्यं नेति ससंशया । दर्शने जातसंकल्पा जनकस्य बभूव ह ॥ ८ ॥ सा प्राप्य मिथिलां रम्यां प्रभूतजनसंकुलां । भैक्ष्यचर्यापदेशेन ददर्श मिथिलेश्वरं ॥ ९ ॥ राजा तस्याः परं दृष्ट्वा सौकुमार्यं वपुस्तदा । केयं कस्य कुतो वेति बभूवागतविस्मयः ॥ १० ॥ ततोऽस्याः स्वागतं कृत्वा व्यादिश्य च वरासनं । पूजितां पादशौचेन वरान्नेनाप्यतर्पयत् ॥ ११ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे कुरु राजर्षिवर ! किस पुरुषने गृहस्थ को न त्याग कर शास्त्रीय मोक्षतत्त्व को पाया है, यह मुझे कहिये ॥ १ ॥ भीष्म बोले—इस विषय में सुलभा और जनक के संवादरूप पुराने इतिहास को बतलाते हैं ॥ २ ॥ प्राचीन काल में संन्यास के फल वाला (आत्मदर्शी) मैथिल राजा जनक धर्मध्वज नाम से प्रसिद्ध हुआ है ॥ ३ ॥ उस ने वेद, मोक्ष शास्त्र और दण्डनीति में पूरा श्रम किया, इन्द्रियों को एकाग्र कर के पृथिवी का शासन करने लगा ॥४॥ हे नरेश ! वेदवेत्ता पण्डितजन लोक में उस के साधु चरित्र को सुन कर सभी उस से स्पृहा (रशक) करने लगे ॥ ५ ॥ उस धर्मयुग में योगधर्म का अनुष्ठान करने वाली एक सुलभा नाम भिक्षुकी

(संन्यासिनी) पृथिवी पर घूम रही थी ॥ ६ ॥ उस ने सर्वत्र घूमते हुए वहां २ संन्यासियों से सुना, कि मिथिला का राजा मोक्षधर्म में पूरी निष्ठा वाला है ॥ ७ ॥ उस ने उस की सूक्ष्म बातें सुन कर, यह सत्य है वा नहीं, ऐसा संदेह कर के उसने जनक के दर्शन का संकल्प किया ॥ ८ ॥ अनेक लोगों से भरी सुहावनी मिथिला नगरी में पहुंच कर भैक्ष्यचर्या के बहाने से मिथिलेश के दर्शन किये॥ ९ ॥ राजा उस के अत्यन्त सौन्दर्य युक्त शरीर को देख कर मन ही मन 'यह कौन है, किस की कन्या है, कहां से आई है' ऐसा सोचते हुए विस्मित हुए ॥ १० ॥ तब उस का स्वागत कर के उत्तमासन दे, चरण धो कर पूजा की और उत्तम अन्न से उसे तृप्त किया ॥ ११ ॥

मूल—अथ भुक्तवती प्रीता राजानं मन्त्रिभिर्वृतं । सर्वभाष्यविदां मध्ये चोदयामास भिक्षुकी ॥ १२ ॥ सुलभा त्वस्य धर्मेषु मुक्तो नेति ससंशया । सत्त्वं सत्त्वेन योगज्ञा प्रविवेश महीपतेः ॥ १३ ॥ नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्य रश्मीन् संयम्य रश्मिभिः । सास्म तं चोदयिष्यन्ती योगबन्धैर्बबन्ध ह ॥ १४ ॥ जनकोऽप्युत्स्मयन् राजा भावमस्या विशेषयन् । प्रतिजग्राह भावेन भावमस्या नृपोत्तम ॥ १५ ॥ तदेकस्मिन्नधिष्ठाने संवादः श्रूयतामयं । छत्रादिषु विमुक्तस्य मुक्तायाश्च त्रिदण्डके ॥ १६ ॥ जनक उवाच—भगवत्याः क्व चर्येयं कृता क्व च गमिष्यसि । कस्य च त्वं कुतो वेति पप्रच्छैनां महीपतिः ॥ १७ ॥ छत्रादिषु विशेषेषु मुक्तं मां विद्धि तत्त्वतः । स त्वां संमन्तुमिच्छामि मानार्हासि हि मतासि मे ॥ १८ ॥ यस्माच्चैतन्मया प्राप्तं ज्ञानं वैशेषिकं पुरा । यस्य नान्यः प्रवक्तास्ति मोक्षं तमपि मे शृणु ॥ १९ ॥ पराशर

सगोत्रस्य वृद्धस्य सुमहात्मनः । भिक्षोः पञ्चशिखस्याहं शिष्यः परमसंमतः॥ २० ॥ सांख्यज्ञाने च योगे च महीपालविधौ तथा । त्रिविधे मोक्षधर्मेऽस्मिन् गताध्वा छिन्नसंशयः ॥ २१ ॥ स यथा शास्त्रदृष्टेन मार्गेणेह परिभ्रमन् । वार्षिकांश्चतुरो मासान् पुरा मयि सुखोषितः ॥ २२ ॥ तेनाहं सांख्यमुख्येन सुदृष्टार्थेन तत्त्वतः । श्रावितस्त्रिविधं मोक्षं न च राज्याद्धि चालितः ॥ २३ ॥

अर्थ—भोजन कर के प्रसन्न हुई सुलभा ने 'यह मुक्त है वा नहीं' इस संशय से सब शास्त्रवेत्ताओं के मध्य में मन्त्रियों से युक्त राजा को मोक्षधर्म में कहने की प्रेरणा की, वह इस प्रकार कि नेत्रों की रश्मियों से राजा के नेत्रों की रश्मियों को वश में कर उस योगाभ्यासिनी ने योगद्वारा अपने चित्त को राजा के चित्त में डाला, और उस को परखने की इच्छा से योग बन्धनों द्वारा जकड़ दिया ॥ १२—१४ ॥ जनक भी मुस्कराते हुए इस के भाव को दबाने लगे और इस के भाव को अपने भाव से स्वीकार कर गए ॥ १५ ॥ अब एक ही सूक्ष्म शरीर में स्थित हुए उन दोनों का संवाद सुनो, जहां न राजा के छत्रादि चिन्ह थे, न सुलभा के त्रिदण्ड का चिन्ह था ॥ १६ ॥ जनक बोले—हे भगवति ! यह बाना कैसे धारण किया, तुम किस की कन्या हो, कहां से आई हो, कहां जाओगी, यह राजा ने उससे पूछा ॥ १७ ॥ मुझे आप तत्त्वतः छत्रादि से असंग जानें, मैं आप को जानना चाहता हूं, आप मान के योग्य हैं ॥ १८ ॥ जिससे मैंने यह मोक्ष का विशेष ज्ञान प्राप्त किया है, जिस का बतलाने वाला और कोई नहीं मिला है, उस को भी सुनिये

॥ १९ ॥ पराशर गोत्री वृद्ध पञ्चशिख भिक्षु का मैं प्यारा शिष्य हूं ॥ २० ॥ सांख्ययोग और दण्डनीति इन तीन प्रकार के मोक्षधर्म में उन ने मेरे सारे संशय काट दिये हैं ॥ २१ ॥ वे शास्त्रमर्यादानुसार घूमते हुए वर्षा के चार महीने यहां सुख से ठहरे ॥ २२ ॥ उस सांख्यकुशल तत्त्वद्रष्टा ने मुझे त्रिविध मोक्ष सुनाया है, और राज्य से विचलित नहीं किया ॥ २३ ॥

मूल—यथाचोपतापितं बीजं कपाले यत्र तत्र वा । प्राप्याप्यंकुरहेतुत्व मबीजत्वान्न जायते ॥ २४ ॥ तद्वद्भगवताऽनेन शिखाप्रोक्तेन भिक्षुणा । ज्ञानं कृतमबीजं मे विषयेषु न जायते ॥ २५ ॥ यश्च मे दक्षिणं बाहुं चन्दनेन समुक्षयेत् । सव्यं वास्यापि यस्तक्षेत्समावेतावुभौ मम ॥ २६ ॥ सुखीसोहमवाप्तार्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः । मुक्तसंगः स्थितो राज्ये विशिष्टोऽन्यैस्त्रिदण्डिभिः ॥ २७ ॥ त्रिदण्डादिषु यद्यस्ति मोक्षो ज्ञानेन कस्यचित् । छत्रादिषु कथं न स्यात् तुल्यहेतौ परिग्रहे ॥ २८ ॥ येन येन हि यस्यार्थः कारणेनेह कर्मणि । तत्तदालम्बते सर्वद्रव्य स्वार्थपरिग्रहे ॥ २९ ॥ दोषदर्शी तु गार्हस्थ्ये यो व्रजत्याश्रमान्तरे । उत्सृजन् परिगृह्णंश्च सोपि संगान्न मुच्यते ॥ ३० ॥ आधिपत्ये तथा तुल्ये निग्रहानुग्रहात्मके । राजभिर्भिक्षुकास्तुल्या मुच्यन्ते केन हेतुना ॥ ३१ ॥ अथ सत्ताधिपत्येपि ज्ञानेनैवेह केवलं । मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो देहे परमके स्थिताः ॥ ३२ ॥ काषायधारणं मौण्ड्यं त्रिविष्टब्धं कमण्डलुं । लिंगान्युत्पथ भूतानि न मोक्षायेति मे मतिः ॥ ३३ ॥ यदि सत्यपि लिंगेऽस्मिन् ज्ञानमेवात्र कारणं । निर्मोक्षायेह दुःखस्य लिंगमात्रं निरर्थकं ॥ ३४ ॥ आकिंचन्ये न मोक्षोस्ति किंचन्ये नास्ति बन्धनं । किंचन्ये चेतरे चैव

जन्तुर्ज्ञानेन मुच्यते ॥ ३५ ॥ तस्माद्धर्मार्थकामेषु तथा राज्य परिग्रहे । बन्धनायतनेष्वेषु विद्ध्यबन्धे पदेस्थितं ॥ ३६ ॥ राज्यैश्वर्यमयः पाशः स्नेहायतनबन्धनः । मोक्षाश्मनिशितेनेह छिन्नस्त्यागासिना मया ॥ ३७ ॥ सोहमेवंगतो मुक्तो जातास्थस्त्वयि भिक्षुकि । अयथार्थं हि ते वर्णं वक्ष्यामि शृणु तन्मम॥३८॥

अर्थ—जैसे अंकुर का कारण भी बीज कपाल में भुना हुआ अबीज होजाने से जन्मता नहीं है ॥ २४ ॥ इस प्रकार भगवान् पञ्चशिख भिक्षु ने मेरे ज्ञान को अबीज (वासना रहित) बना दिया है, इस से विषयों में प्रवृत्त नहीं होता है ॥ २५ ॥ जो मेरी दाईं भुजाको चन्दन से सेचन करे, और जो बाईं को वसूले (तैसे) से काटे, वे दोनों मुझे सम हैं ॥ २६ ॥ मैं सुखी हूं, मेरे कार्य सिद्ध हैं, मुझे ढेला पत्थर और सोना बराबर हैं, मैं संग त्याग कर राज्य कर रहा हूं, दूसरे त्रिदण्डियों से मैं अधिक हूं ॥२७॥ त्रिदण्ड आदि के होते हुए भी जब किसी का ज्ञान ही से मोक्ष होता है, तो छत्र आदियों के होते हुए क्यों न हो, इसमें थोड़ा वा बहुत परिग्रह तुल्य है॥२८॥ अपने कर्म के निमित्त जिस २ कारण से प्रयोजन होता है, उस २ को पुरुष रखता है, जितने से स्वार्थ सिद्ध होता हो ॥ २९ ॥ जो गृहाश्रम में दोष देखता हुआ आश्रमान्तर में जाता है, तो वह भी किसी वस्तु को त्यागता और किसी को स्वीकार करता हुआ संग से मुक्त नहीं होता है ॥ ३० ॥ जब निग्रह अनुग्रह रूप स्वामित्व राजाओं के साथ भिक्षुओं का एक समान है, तो (भिक्षु) किस हेतु से मुक्त होते हैं ॥ ३१ ॥ और यदि स्वामित्व के होते हुए भी केवल ज्ञान से सारे पापों से मुक्त होते हैं ॥ ३२ ॥ तो

गेरवे वस्त्र धारना, मूंड मुंडाना, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारना ये चिन्ह मोक्ष के लिए नहीं, हां उलटे भी होसकते हैं, यह मेरा निश्चय है ॥ ३३ ॥ यदि चिन्हों के होते हुए भी मोक्ष के लिए ज्ञान ही कारण है, तो लिंग मात्र निरर्थक है ॥ ३४ ॥ धन न होने से मुक्ति नहीं होजाती, और धन होने से बन्धन नहीं हो जाता, धन हो वा न हो, पुरुष ज्ञान से मुक्त होता है ॥ ३५ ॥ इस लिए धर्म अर्थ काम में और राज्य के प्रबन्ध में, इन सब बन्धन के हेतुओं में मुझ को अबन्ध पद में स्थित जान ॥ ३६ ॥ राज्यैश्वर्य रूपी पाश, जो राग के बन्धन में बांधने वाला है, उस को मोक्ष के साण पर साने हुए त्याग के खड्ग से मैंने काट डाला है ॥ ३७ ॥ सो मैं इस प्रकार मुक्त हुआ तुझे आदर से देखता हूं, किन्तु तुझ में जो अयथार्थ बात दीखती है वह कहूंगा, सुनो ॥ ३८ ॥

मूल—सौकुमार्यं तथा रूपं वपुरग्र्यं तथावयः। तवैतानि समस्तानि नियमश्चेति संशयः ॥ ३९ ॥ मुक्तोऽयंस्यान्नवेतिस्या-द्धर्षितो मत्परिग्रहः। न च कामसमायुक्ते युक्तेप्यस्ति त्रिदण्ड-के ॥ ४० ॥ मत्पक्ष संश्रयाच्चायं शृणु यस्ते व्यतिक्रमः। आश्र-यन्त्याः स्वभावेन मम पूर्वपरिग्रहं ॥ ४१ ॥ वर्ण प्रवर मुख्यासि ब्राह्मणी क्षत्रियस्त्वहं। नावयोरेक योगोऽस्ति मा कृथा वर्णसंकरं ॥ ४२ ॥ वर्तसे मोक्षधर्मेण त्वं गार्हस्थ्येऽद्य माश्रमे। अयं चापि सुकष्टस्ते द्वितीयोऽऽश्रम संकरः ॥ ४३ ॥ स गोत्रां वाऽसगोत्रां वा न वेद त्वां न वेत्थ मां। सगोत्रमाविशन्त्यास्ते तृतीयो गोत्र-संकरः ॥ ४४ ॥ अथ जीवति ते भर्ता प्रोषितोप्यथवा क्वचित्।

अगम्या परभार्येति चतुर्थो धर्म संकरः ॥ ४५ ॥ सा त्वमेतान्य कार्याणि कार्यापेक्षा व्यवस्यसि । अविज्ञानेन वा युक्ता मिथ्या-ज्ञानेन वा पुनः ॥ ४६ ॥ अथवापि स्वतन्त्रासि स्वदोषेणेह कर्हि-चित् । यदि किञ्चिच्छ्रुतं तेऽस्ति सर्वं कृत मनर्थकं ॥४७॥ कृतेयं हि विजिज्ञासा मुक्तो नेति त्वया मम । एतत्सर्वं प्रतिच्छन्नं मयि नार्हसि गूहितुं ॥ ४८ ॥ सा त्वं जातिं श्रुतं वृत्तं भावं प्रकृतिमा-त्मनः । कृत्यमा गमने चैव वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥ ४९ ॥ भीष्म उवाच—इत्येतैरसुखैर्वाक्यैरयुक्तै रसमञ्जसैः । प्रत्यादिष्टा नरेन्द्रेण सुलभा न व्यकम्पत ॥ ५०॥ उक्त वाक्ये तु नृपतौ सुलभा चारु-दर्शना । ततश्चारुतरं वाक्यं प्रचक्रामाथ भाषितुं ॥ ५१ ॥

अर्थ—यह तुम्हारी सुकुमारता, रूप, लावण्य, शरीर का सुगठन और युवावस्था, दूसरी ओर योगानुष्ठान इस से संशय पड़ता है ॥ ३९ ॥ 'यह मुक्त है वा नहीं' ऐसा संशय करके तुम मेरे चित्त को अपने रूप आदि से लुभाती हो । पर काम-युक्त योगी को त्रिदण्ड धारण उचित नहीं ॥ ४० ॥ मेरे शरीर के सहारे अपने चित्त से मेरे चित्त में प्रवेश करने से जो तूने व्यतिक्रम किया है, उसे सुन ॥ ४१ ॥ तू वर्णों में श्रेष्ठ ब्राह्मणी है, मैं क्षत्रिय हूं, हमारा दोनों का एक मेल नहीं, सो वर्णसंकर मत कर ॥ ४२ ॥ तू मोक्षधर्म में स्थित है, मैं गृहाश्रम में हूं, यह बड़ा हानिकारक तेरा दूसरा आश्रम संकर (आरूढ पतित) दोष है ॥ ४३ ॥ तू मेरी सगोत्रा है वा असगोत्रा है, यह न मैं तुझे जानता हूं । न तू मुझे जानती है । पर यदि तूने सगोत्र के शरीर में प्रवेश किया है, तो यह तेरे लिए तीसरा गोत्रसंकर का दोष हुआ है ॥ ४४ ॥ और यदि तेरा पति जीता है । वा

कहीं देशान्तर में गया हुआ है, तो परनारी अगम्या होती है, इस से चौथा तुझे धर्मसंकर दोष हुआ ॥ ४५ ॥ सो तू इतने अकार्य अपनी अर्थ सिद्धि के लिए अज्ञान से वा मिथ्या ज्ञान से करती है ॥ ४६ ॥ अथवा यदि तू अपने किसी दोष से स्वतन्त्रा है, तो जो कुछ तूने पढ़ा सुना है, सब तेरा अनर्थक है ॥ ४७ ॥ 'यह मुक्त है वा नहीं' यह जो तूने मेरी परीक्षा चाही है, यह सारा रहस्य मेरे आगे तू छिपा नहीं सकती॥४८॥ सो तुम जन्म, ज्ञान, चरित्र, अभिप्राय, अपना स्वभाव और आने का प्रयोजन ठीक २ कहो ॥ ४९ ॥ भीष्म बोले-सुलभा राजा द्वारा इन रूखे अयुक्त असमञ्जस वचनों से पूछी जाने पर तनिक भी विचलित न हुई ॥ ५० ॥ और राजा का वचन समाप्त होने पर उस सुन्दरी ने सुचारु वचन कहना आरम्भ किया ॥ ५१ ॥

मूल—सुलभोवाच—आत्मन्येवात्मनाऽऽत्मानं यथा त्वमनुपश्यसि । एवमेवात्मनात्मान मन्यस्मिन् किं न पश्यसि ॥५२॥ इदं मे स्यादिदं नेति द्वन्द्वैर्मुक्तस्य मैथिल । कासि कस्य कुतोवेति वचनैः किं प्रयोजनं ॥ ५३ ॥ रिपौ मित्रेऽथ मध्यस्थे विजये सन्धिविग्रहे । कृतवान् यो महीपालः किं तस्मिन् मुक्तलक्षणं प्रियेवा प्य प्रियेवापि दुर्बले बलवत्यपि । यस्य नास्ति समं चक्षुः किं तस्मिन् मुक्तलक्षणं ॥ ५५ ॥ तदयुक्तस्य ते मोक्षे योऽभिमानो भवेन्नृप । सुहृद्भिः संनिवार्यस्तेऽविरक्तस्येव भेषजं ॥५६॥ परतन्त्रः सदा राजा स्वल्पेष्वपि प्रसज्जते । सन्धिविग्रहयोगे च कुतो राज्ञः स्वतन्त्रता ॥ ५७ ॥ यदाज्ञाज्ञापयत्यन्यांस्तत्रास्योक्ता स्वतन्त्रता । अवशः कार्यते तत्र तस्मिस्तस्मिन् क्षणेस्थितः

॥ ५८ ॥ स्वप्नकामो न लभते स्वप्तुं कार्यार्थिभिर्जनैः । शयने-चाप्यनुज्ञातः सुप्तउत्थाप्यतेऽवशः ॥ ५९ ॥ स्नाह्यालभपिबप्राश जुहुध्यग्नीन् यजेत्यपि । ब्रवीहि शृणुचापीति विवशः कार्यते परैः ॥ ६० ॥ सर्वः स्वे स्वे गृहे राजा सर्वः स्वे स्वे गृहेगृही । निग्रहा-नुग्रहौ कुर्वंस्तुल्यो जनक राजभिः ॥ ६१ ॥ स्वदेहे नाभिषङ्गो मे कुतः परपरिग्रहे । न मामीदृग्विधां मुक्तां पीडयेद्वक्तुमर्हसि ॥६२॥ सत्त्वेनानुप्रवेशो हि योऽयं त्वयि कृतो मया । किं तवापकृतं तत्र यदि मुक्तासि सर्वशः ॥ ६३ ॥ न पाणिभ्यां न बाहुभ्यां पादोरु-भ्यां न चानघ । न गात्रावयवैरन्यैः स्पृशामि त्वां नराधिप॥ ६४ ॥ यथा पुष्करपर्णस्थं जलं तत्पर्णमस्पृशत् । तिष्ठत्यस्पृशती तद्वत् त्वयि वत्स्यामि मैथिल ॥ ६५ ॥ यदि चाहंस्पृशन्त्या मे स्पर्शं जानासि कंचन । ज्ञानं कृतमबीजं ते कथं तेनेह भिक्षुणा ॥ ६६ ॥ स गार्हस्थ्याच्च्युतश्च त्वं मोक्षं चानाप्य दुर्विदं । उभयोरन्तराले वै वर्तसे मोक्षवार्तिकः ॥ ६७ ॥ नास्मि वर्णोत्तमा जाता न वैश्या नावरा तथा । तव राजन् सवर्णास्मि शुद्धयोनिरविप्लुता ॥ ६८ ॥ प्रधानो नाम राजर्षिर्व्यक्तं ते श्रोत्रमागता । कुले तस्य समुत्पन्नां सुलभां नाम विद्धि मां ॥ ६९ ॥ साहं तस्मिन् कुलेजाता भर्तर्य-सति मद्विधे । विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतं ॥ ७० ॥ न धर्मसंकरकरी स्वधर्मेस्मि धृतव्रता । नासमीक्ष्यागता चेह त्वत्स-काशं जनाधिप ॥ ७१ ॥ मोक्षे ते भाविता बुद्धिं श्रुत्वाहं कुशलै-षिणी । तव मोक्षस्य चाप्यस्य जिज्ञासार्थं मिहागता ॥ ७२ ॥ यथा शून्ये पुरागारे भिक्षुरेकां निशां वसेत् । तथाहं त्वच्छरीरेऽ-स्मिन्निमां वत्स्यामि शर्वरीं ॥ ७३ ॥ साहं मानप्रदानेन वागाति-

ध्येन चार्चिता । सुश्रा सुधारणं प्रीताश्वो गमिष्यामि मानद॥७४॥
भीष्म उवाच—इत्येतानि वाक्यानि हेतुमन्त्यर्थवन्ति च । श्रुत्वाना-धिजगौ राजा किञ्चिदन्यदतः परं ॥ ७५ ॥

अर्थ—सुलभा बोली—तुम अपने अन्दर अपने आत्मा से अपने आत्मा को देखते हो, इसी प्रकार दूसरे में अपने आत्मा से आत्मा को क्यों नहीं देखते हो ॥ ५२ ॥ यह मेरे पास हो, यह न हो, इस प्रकार द्वन्द्वों से मुक्त हुए आप को हे मैथिल 'तू कौन है, किस की है, कहां से आई है' इन वचनों से क्या प्रयोजन ॥ ५३ ॥ हां शत्रु मित्र मध्यस्थ में तथा सन्धि विग्रह में जो भूपति समय बिताता है, उस में मुक्त का लक्षण क्या हो सकता है ॥ ५४ ॥ प्रिय और अप्रिय में, दुर्बल और बलवान् में जिस की समान दृष्टि नहीं, उस में मुक्त का लक्षण क्या हो सकता है ॥ ५५ ॥ हे राजन् अपथ्य सेवी रोगी के औषध सेवन की भांति तुम जो बिना योग के मोक्ष का अभिमान करते हो, तुम्हारे मित्रों को उचित है, कि उस अभिमान को छुड़ावें ॥ ५६ ॥ राजा सदा परतन्त्र होता है, उस को छोटी २ बातों में भी आसक्त होना पड़ता है, सन्धि विग्रह के सम्बन्ध में राजा की स्वतन्त्रता कहां ॥ ५७ ॥ जब वह दूसरों को आज्ञा देता है, तब उस की स्वतन्त्रता कही है, पर उस समय में भी वे २ काम उस को विवश किये होते हैं ॥ ५८ ॥ राजा की सोने की इच्छा होती है, तौ भी कार्यार्थी लोग उसे सोने नहीं देते, सोने पर भी (उठने के समय की) अनुज्ञा दे कर सोया हुआ बेबस उठाया जाता है ॥ ५९ ॥ स्नान कीजिये, लीजिये, पीजिये, खाइये, अग्निहोत्र कीजिये, यज्ञ कीजिये, कहिये, सुनिये, इस

प्रकार बेबस दूसरों द्वारा काम में लगाया जाता है ॥ ६० ॥ सब कोई अपने २ घर में राजा है, सब कोई अपने २ घर में घर का मालिक है, घर में निग्रह अनुग्रह करता हुआ सब कोई राजाओं के समान है ॥ ६१ ॥ मेरी तो अपने देह में भी आसक्ति नहीं, क्या फिर दूसरे के देह में, इस प्रकार की योगयुक्त मुझ को आप ऐसा नहीं कह सकते ॥ ६२ ॥ आप यदि सब प्रकार से मुक्त हैं, तो चित्त के द्वारा यह जो मैंने तुझ में अनुप्रवेश किया है, इस से तुम्हारी क्या बुराई की है ॥ ६३ ॥ हे निष्पाप ! मैंने तुझ को हाथ भुजा पाद ऊरु अथवा दूसरे किसी अंग के द्वारा स्पर्श नहीं किया ॥ ६४ ॥ जैसे कमल के पत्ते पर जल स्पर्श नहीं करता है, इसी प्रकार बिना स्पर्श के मैं तुझ में वास करूंगी ॥ ६५ ॥ और यदि मेरे स्पर्श न करने से भी तुम स्पर्श अनुभव करते हो, तो उस भिक्षु ने तेरा ज्ञान निर्बीज कैसे किया ॥ ६६ ॥ तुम गृहस्थ धर्म से च्युत हो कर और दुर्ज्ञेय मोक्ष धर्म को न जान कर दोनों के बीच में अटकते हुए मोक्ष की बातें बनाते हो ॥ ६७ ॥ मैं जन्म से न ब्राह्मणी हूं, न वैश्या, न शूद्रा, हे राजन् मैं तेरी सवर्णा हूं, शुद्ध योनि, अपने धर्म से न फिसली हुई ॥ ६८ ॥ प्रधान नाम राजऋषि का आपने नाम सुना होगा, मैं उसीके कुल में उत्पन्न हुई हूं, मेरा नाम सुलभा है ॥ ६९ ॥ मैंने उस वंश में जन्म ले कर अपने समान पति न पाया, तब मैंने मोक्ष धर्म की शिक्षा लेके संन्यास धारण किया है ॥ ७० ॥ मैं धर्म का संकर करने वाली नहीं हूं, मैं अपने व्रत के अन्दर दृढ हूं, हे राजन् मैं बिन सोचे

तेरे पास नहीं आई हूं ॥ ७१ ॥ मोक्ष में तेरी स्थिर बुद्धि सुन कर तेरा कल्याण चाहती हुई तेरे मोक्ष की जिज्ञासा के लिए यहां आई हूं ॥ ७२ ॥ जैसे सूने घर में भिक्षु एक रात निवास करता है, वैसे मैं तेरे इस शरीर में एक रात वास करूंगी॥७३॥ आपने मान दान और वाणी से मेरा सत्कार किया है, सो मैं रात इस घर में सो कर कल चली जाऊंगी ॥ ७४ ॥ भीष्म बोले—इन युक्ति युक्त और अर्थ वाले वचनों को सुन कर इस से आगे राजा ने कुछ नहीं कहा ॥ ७५ ॥

शान्तिपर्व समाप्त हुआ ॥

१३ अनुशासनपर्व ॥

अ० १ (व०१) धर्मानुशासन

मूल—यु० उ० शमो बहुविधाकारः सूक्ष्मः उक्तः पितामह । स्वकृतात् कानु शान्तिः स्याच्छमाद् बहुविधादपि ॥ १॥ शराचितं शरीरं हि तीव्र व्रणमुदीक्ष्यते । शमं नोपलभे वीर दुष्कृतान्येव चिन्तयन् ॥ २ ॥ रुधिरेणावसिक्तांगं प्रस्रवन्तं यथाऽचलं । त्वां दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्र सीदे वर्षास्विवाम्बुजं॥ ३ ॥ वयं हि धार्तराष्ट्राश्च काममन्युवशंगताः । कृत्वेदं निन्दितं कर्म प्राप्स्यामः कां गतिं नृप ॥ ४ ॥ इदं तु धार्तराष्ट्रस्य श्रेयो मन्ये जनाधिप । इमामवस्थां संप्राप्तं यदसौ त्वां न पश्यति ॥ ५ ॥ अन्यस्मिन्नपि लोके वै यथा मुच्येय किल्बिषात् । तथा प्रशाधि मां राजन् मम चेदिच्छसि प्रियं ॥ ६ ॥ भी० उ० परतन्त्रं कथं हेतु मात्मान मनुपश्यसि । कर्मणां हि महाभाग सूक्ष्मं ह्येतदतीन्द्रियं ॥ ७ ॥ यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुतेयथादिच्छति । एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! (शोक निवृत्ति का साधन जो) शम (है वह) अनेक प्रकार का सूक्ष्म आपने कहा है, पर अनेक प्रकार के शम द्वारा भी मुझे अपने किये से कैसे शान्ति मिले ॥ १ ॥ आप का शरीर बाणों से भरा हुआ और तीव्र घावों से युक्त देख कर हे वीर अपने पापों को सोचते हुए मुझे शान्ति नहीं मिलती है ॥ २ ॥ जल झरते हुए पर्वत की भांति रुधिर से आप के लिबड़े शरीर को देख कर हे पुरुषवर! मैं ऐसा दुःखी हो रहा हूं, जैसा वर्षा में कमल ॥ ३ ॥ हे नृप !

हम और धृतराष्ट्र के पुत्र काम क्रोध के वश हुए ऐसा निन्दित कर्म करके किस गति को प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥ हे राजन् ! मैं दुर्योधन के यह कल्याण की बात देखता हूं, कि इस अवस्था में पड़े आप को वह नहीं देखता है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! यदि आप मेरा प्रिय चाहते हैं, तो ऐसा उपदेश दीजिये, जिस से हम परलोक में पाप से छूट जाएं ॥ ६ ॥ भीष्म बोले—हे युधिष्ठिर तुम जिस काम में परतन्त्र थे, उस में अपने को हेतु क्यों समझते हो, हे महाभाग ! कर्मों का यह अंश सूक्ष्म है, परोक्ष है ॥ ७ ॥ जैसे मिट्टी के गोले से कुम्हार ! जो २ चाहता है, बनाता है, वैसे अपने किये कर्म को मनुष्य प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

मूल—यु० उ० दैवे पुरुषकारे च किंस्वित्श्रेष्ठतरं भवेत् । भी० उ०-नाबीजं जायते किञ्चिन्न बीजेन विनाफलं ॥९॥ यादृशं वपतेबीजं क्षेत्रमासाद्य वापकः । सुकृते दुष्कृते वापि तादृशं लभते फलं ॥ १० ॥ यथा बीजं विनाक्षेत्र मुप्तं भवति निष्फलं । तथा पुरुषकारेण बिना दैवं न सिध्यति ॥ ११ ॥ क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीज मुदाहृतं । क्षेत्रबीज समायोगात्ततः सस्यं समृध्यते ॥ १२ ॥ शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा । कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित् ॥ १३ ॥ अर्थो वा मित्रवर्गो वा ऐश्वर्यं वा कुलान्वितं । श्रीश्चापि दुर्लभा भोक्तुं तथैवाकृत कर्मभिः ॥ १४ ॥ नादातारं भजन्त्यर्था न क्लीबं नापि निष्क्रियं । ना कर्मशीलं नाशूरं तथा नैवातपस्विनं ॥ १५ ॥ आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः । आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्याप्य कृतस्य च ॥ १६ ॥ देवानां शरणं पुण्यं सर्वं पुण्यैरवाप्यते । पुण्यहीनं नरं प्राप्य किं दैवं प्रकरिष्यति ॥ १७ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—दैव और पौरुष में से कौन श्रेष्ठ तर है। भीष्म बोले—बिना बीज के कुछ नहीं उगता, बीज के बिना फल नहीं होता ॥ ९ ॥ बोने वाला शरीर रूपी क्षेत्र को पा कर पुण्य पाप का जैसा बीज बोता है, वैसा फल पाता है ॥ १० ॥ जैसे बीज बिना क्षेत्र के बोया हुआ निष्फल होता है, वैसे पौरुष के बिना दैव सिद्ध नहीं होता ॥ ११ ॥ क्षेत्र पौरुष है, दैव बीज कहा गया है, क्षेत्र और बीज के अच्छे मेल से खेती फलती है ॥ १२ ॥ सुख शुभकर्म से और दुःख पाप से होता है, किया सारे फलता है, न किया कहीं नहीं भोगा जाता ॥ १३ ॥ धन, मित्र वर्ग, ऐश्वर्य, कुल और श्री बिना कर्मों के नहीं भोगने मिलते ॥ १४ ॥ धन उस के पास नहीं आते, जिस ने दान नहीं दिया हुआ, वा नपुंसक है, वा कर्महीन है, वा आलसी है, वा शौर्य रहित है, वा तपोहीन है ॥ १५ ॥ आप ही अपना बन्धु है आप ही अपना शत्रु है, आप ही अपने कृत अकृत का साक्षी है ॥ १६ ॥ देवताओं का रक्षक पुण्य है, पुण्यों से सब कुछ मिलता है, पुण्यहीन नर को पाकर दैव क्या करेगा ॥ १७ ॥

मूल—यु० उ० कर्मणां च समस्तानां फलिना भरतर्षभ। फलानि महतां श्रेष्ठ प्रब्रूहि परिपृच्छतः ॥ १८ ॥ भी०उ० चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्याच्च सूनृतां । अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पञ्चदक्षिणः ॥ १९ ॥ यो दद्यादपरिक्लिष्ट मन्नमध्वनि वर्तते । श्रान्तायादृष्टपूर्वाय तस्य पुण्यफलं महत् ॥ २० ॥ धनं लभेत दानेन मौनेनाज्ञां विशांपते। उपभोगांश्च तपसा ब्रह्मचर्येण जी-

वितं ॥ २१ ॥ अधीत्य सर्वान् वेदान् वै सद्यो दुःखाद्विमुच्यते । मानसं हि चरन् धर्मं स्वर्गलोक मुपाश्नुते ॥ २२ ॥ यथा धेनु सहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरं । एवं पूर्व कृतंकर्म कर्तारमनु गच्छति ॥ २३ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे भरतवर हे महापुरुषवर ! इन सारे जो फल वाले हैं, उन के फल बतलाएं ॥ १८ ॥ भीष्म बोले घर आए अतिथि को प्रेम की दृष्टि से देखे, मन उधर देवे, सत्य मधुर वाणी बोले, पास बैठे, और (जाते समय) पीछे चले,यह पांच दक्षिणाओं वाला यज्ञ है ॥ १९ ॥ जो मार्ग में वर्तमान है, थका हुआ है, पहले कभी देखा नहीं है, उस को जो प्रसन्न हृदय से अन्न देता है, उस को भारी पुण्य फल होता है ॥ २० ॥ हे राजन् ! दान देने से धन पाता है, मुनिव्रत (विचार शीलता) से शासन, तप से उपभोग,और ब्रह्मचर्य से जीवन पाता है॥ २१॥ सारे वेदों को पढ कर शीघ्र दुःख से मुक्त होता है मानस धर्माचरण से स्वर्ग को भोगता है ॥ २२ ॥ जैसे सहस्रों धेनुओं में से बछड़ा अपनी माता को पा लेता है, इस प्रकार पूर्वकृत कर्म कर्ता को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

अ० २ (वृ०-११) लक्ष्मी कैसे स्त्री पुरुषों में रहती है

मूल—यु० उ० कीदृशे पुरुषे तात स्त्रीषु वा भरतर्षभ । श्रीः पद्मा वसते नित्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ भी० उ० श्रीरुवाच—वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने । अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे ॥ २ ॥ नाकर्मशीले पुरुषे वसामि न नास्तिके सांकारिके कृतघ्ने । न भिन्न-

वृत्ते न नृशंसवृत्ते न चाविनीते न गुरुष्वसूयके ॥ ३ ॥ ये चाल्पतेजोबलसत्त्वमानाः क्लिश्यन्ति कुप्यन्ति च यत्रतत्र । न चैव तिष्ठामि तथा विधेषु नरेषु संगुप्तमनोरथेषु ॥ ४ ॥ यश्चात्मनि प्रार्थयते न किञ्चिद् यश्च स्वभावोपहतान्तरात्मा । तेष्वल्पसंतोषपरेषु नित्यं नरेषु नाहं निवसामि सम्यक् ॥ ५ ॥ वसामि धर्मशीलेषु धर्मज्ञेषु महात्मसु । वृद्धसेविषु दान्तेषु सत्वज्ञेषु महात्मसु ॥ ६ ॥ अवन्ध्यकालेषु च सदा दानशौचरतेषु च । ब्रह्मचर्यतपोज्ञानगोद्विजातिप्रियेषु च ॥ ७ ॥ स्त्रीषु कान्तासु शान्तासु देवद्विज परासु च । विशुद्धगृहभाण्डासु गोधान्याभिरतासु च ॥ ८ ॥ प्रकीर्ण भाण्डा मनवेक्ष्य कारिणीं सदा च भर्तुः प्रतिकूल वादिनीं । परस्य वेश्माभिरता मलज्जा मेवं विधां तां परिवर्जयामि ॥ ९ ॥ लोलामदक्षा मवलेपिनीं च व्यपेतशौचां कलहप्रियां च । निद्राभिभूतां सततं शयाना मेवंविधां स्त्रीं परिवर्जयामि ॥ १० ॥ सत्यासु नित्यं प्रियदर्शनासु सौभाग्य युक्तासु गुणान्वितासु । वसामि नारीषु पतिव्रतासु कल्याणशीलासु विभूषितासु ॥ ११ ॥ यानेषु कन्यासु विभूषणेषु यज्ञेषु मेघेषु च वृष्टिमत्सु । वसामि फुल्लासु च पद्मिनीषु नक्षत्र वीथिषु च शारदीषु ॥ १२ ॥ नदीषु हंसस्वननादितासु तपस्विसिद्ध द्विजसेवितासु । मत्ते गजे गोवृषभे नरेन्द्रे सिंहासन सत्पुरुषेषु नित्यं ॥ १३ ॥ स्वाध्यायनित्येषु सदा द्विजेषु क्षत्रे च धर्माभिरते सदैव । वैश्ये च कृष्याभिरते वसामि शूद्रे च शुश्रूषण नित्ययुक्ते ॥ १४ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे तात ! कैसे पुरुषों अथवा कैसी स्त्रियों में पद्मा लक्ष्मी सदा रहती है, यह मुझे कहिये ॥१॥ भीष्म

कहने लगे, लक्ष्मी स्वयं यह कहती है कि-मैं सदा प्रतिभावान्, कार्यदक्ष, निरालसी, क्रोध रहित, ईश्वर परायण, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, और नित्योद्योगी पुरुष में वास करती हूं ॥ २ ॥ और अकर्मण्य, नास्तिक, वर्णसंकर कारक, कृतघ्न, चरित्र से गिरे हुए, दुर्जन, अविनीत, गुरुओं से असूया करने वाले के निकट कभी नहीं रहती हूं ॥३ ॥ जिन का तेज बल पराक्रम और मान जगत् में घट है, जो जहां तहां तंग और कुपित होते रहते हैं, और जिन के मनोरथ गुप्त हैं, उन में वास नहीं करती हूं ॥ ४ ॥ जो अपने लिए उच्च आंकाक्षाएं नहीं रखते, जिन का अन्तरात्मा स्वभावतः दबा हुआ है, उन थोड़े में संतोष वाले पुरुषों के निकट मैं वास नहीं करती हूं ॥ ५ ॥ धर्म में निष्ठा वाले, धर्मज्ञ, वृद्ध-सेवी, दान्त, शुद्ध हृदय महात्माओं में वास करती हूं ॥ ६ ॥ जो समय को व्यर्थ नहीं गंवाते, दान और शौच में प्रीति वाले हैं, ब्रह्मचर्य, तप, ज्ञान के तथा गौ ब्राह्मण के प्यारे हैं ॥ ७ ॥ स्त्रियें जो पति की प्यारी, शान्त हृदया, देव द्विजों की पूजक, घर के बर्तनों को शुद्ध रखने वाली पशु और अनाज के संभालने वाली हैं, उन में सदा वास करती हूं ॥ ८ ॥ जिस के बर्तन इधर उधर बिखरे रहते हैं, जो बिना विचारे कार्य करती है, जो भर्ता के प्रतिकूल बोलती है, जो पराये घर में प्रीति वाली है, जो लज्जा हीन है, ऐसी स्त्री को परित्याग किया करती हूं ॥९ ॥ चञ्चल, अनिपुण, अभिमानिनी, शौचहीन, कलहप्रिया, निद्रालु, सोई रहने वाली स्त्री को परित्याग देती हूं ॥ १० ॥ सत्यवादिनी, प्रिय दर्शना, सौभाग्य वाली, गुणों वाली, पतिव्रता, क-

ल्याण वाली वस्त्र भूषणों को उत्तम रखने वाली स्त्रियों में वास करती हूं ॥ ११ ॥ सब प्रकार की सवारियें, कन्याएं, भूषण, वृष्टि वाले मेघ मण्डल, फूले हुए कमल, शरद् ऋतु के नक्षत्र पुंज में ॥ १२ ॥ हंस की ध्वनियों से गूंजती हुई, और तपस्वियों सिद्धों और ब्राह्मणों से सेवित नदियों में, मत्त हाथी, सांड, राजा, सिंहासन और सत्पुरुषों में सदा वास करती हूं ॥ १३ ॥ स्वाध्याय प्रधान ब्राह्मणों में, धर्मपरायण क्षत्रियों में, खेती प्रिय वैश्यों में और सेवापरायण शूद्रों में सदा वास करती हूं ॥१४॥

अ० ३ (व० २२-२३) शुभाशुभ कर्मों के फल

मूल—अहिंसा सत्यमक्रोध आनृशंस्यं दमस्तथा। आर्जवं चैव राजेन्द्र निश्चितं धर्मलक्षणं ॥ १ ॥ ब्राह्मणांश्चैव मन्येत गुरूंश्चाप्यभिपूजयेत । सर्वभूतानु लोमश्च मृदुशीलः प्रियंवदः ॥ २ ॥ अधिकारे यदनृतं यश्च राजसु पैशुनं। गुरोश्चालीक निर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ३ ॥ प्रहरेन्न नरेन्द्रेषु न हन्याद् गां तथैव च। नाग्निं परित्यजज्जातु न च वेदान् परित्यजेत ॥ ४ ॥ निशाम्य च गुणोपेतं ब्राह्मणं साधुसंमतं । दूरादानाय्य सत्कृत्य सर्व तश्चापि पूजयेत् ॥ ५ ॥ ये परस्वापहर्तारः परस्वानां च नाशकाः । सूचकाश्च परेषां ये ते वै निरयगामिनः ॥ ६ ॥ प्रपाणां च सभानां च संक्रमाणां तथैव च । आगराणां च भेत्तारो नरा निरयगामिनः ॥ ७ ॥ अनाथां प्रमदां बालां वृद्धां भीतां तपस्विनीं । वञ्चयन्ति नरा ये च ते वै निरयगामिनः ॥ ८ ॥ वृत्तिच्छेदं गृहच्छेदं दारच्छेदं च भारत । मित्रच्छेदं तथाऽऽशायास्ते वै निरयगामिनः ॥ ९ ॥ अकृतज्ञाश्च मित्राणां समयाणां च दूषकाः ।

लाभेषु विषमाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ १० ॥ ब्राह्मणानां गवां चैव कन्यानां च युधिष्ठिर । येऽन्तरायान्ति कार्येषु ते वै निरयगामिनः ॥ ११ ॥ क्षान्तान् दान्तास्तथा प्राज्ञान् दीर्घकालं सहोषितान् । त्यजन्ति कृतकृत्या ये ते वै निरयगामिनः ॥ १२ ॥ बालानामथ वृद्धानां दासानां चैव ये नराः । अदत्त्वा भक्षयन्त्यग्रे ते वै निरयगामिनः ॥ १३ ॥ दानेन तपसा चैव सत्येन च युधिष्ठिर । ये धर्म मनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्ग गामिनः ॥ १४ ॥ क्षमावन्तश्च धीराश्च धर्मकार्येषु चोत्थिताः । मंगलाचार संपन्नाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ १५ ॥ वस्त्राभरणदातारो भक्ष्यपानान्नदास्तथा । कुटुम्बानां च भर्तारः पुरुषाः स्वर्ग गामिनः ॥ १६ ॥ सर्वहिंसानिवृत्ता ये नरा सर्व सहाश्च ये । सर्वस्याश्रय भूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ १७ ॥ मातरं पितरं चैव शुश्रूषन्ति जितेन्द्रियाः भ्रातॄणां चैव सस्नेहास्ते नराः स्वर्ग गामिनः ॥ १८ ॥ आढ्याश्च बलवन्तश्च यौवनस्थाश्च भारत । ये वै जितेन्द्रिया धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ १९ ॥ अपराधिषु सस्नेहा मृदवो मृदुवत्सलाः । आराधन सुखाश्चापि पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ २० ॥ सहस्रपरिवेष्टारस्तथैव च सहस्रदाः । त्रातारश्च सहस्राणां ते नराः स्वर्ग गामिनः ॥ २१ ॥ विहारावसथोद्यानकूपारामसभाप्रपाः । वप्राणां चैव कर्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २२ ॥ रसानां चाथ बीजानां धान्यानां च युधिष्ठिर । स्वयमुत्पाद्य दातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ २३ ॥ यस्मिंस्तस्मिन् कुलेजाता बहुपुत्राः शतायुषः । सानुक्रोशा जितक्रोधाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ २४ ॥

अर्थ—अहिंसा, सत्य, क्रोध न करना, दया, दम और

सरलता है राजन् ये निश्चित धर्म के स्वरूप हैं ॥ १ ॥ ब्राह्मणों का मान करे, गुरुओं की पूजा करे, सब के अनुकूल हो, मृदु स्वभाव और प्रियवादी हो ॥ २ ॥ किसी अधिकार के विषय में जो झूठ है, जो राजाओं के विषय में चुगली खाता है, और गुरु पर मिथ्या दोष ये ब्रह्महत्या के तुल्य हैं ॥ ३ ॥ राजाओं पर प्रहार न करे, गौ का हनन न करे, अग्नि का और वेद का कभी त्याग न करे ॥ ४ ॥ भले पुरुषों से आदरणीय गुणी ब्राह्मण को सुन कर दूर से लाकर सत्कार करके सब प्रकार उस की पुजा करे ॥ ५ ॥ जो पुरुष पराये धनों के छीनने वाले, पराये धनों के नाशक, और दूसरों की चुगली खाने वाले हैं, वे नरकगामी होते हैं ॥ ६ ॥ प्याऊ, सभा, पुल, और घरों के तोड़ने वाले नरकगामी होते हैं ॥ ७ ॥ विधवा, बाला, बूढी, डरी हुई, तपस्विनी स्त्री को जो पुरुष धोखा देते हैं, वे नरक-गामी होते हैं ॥ ८ ॥ जो किसी की जीविका, घर, स्त्री, मित्र और आशा को काटते हैं, वे नरकगामी हैं ॥ ९ ॥ जो मित्रों के अकृतज्ञ हैं, कि ये संकेत के विरुद्ध चलते हैं, और कामों में विषम होते हैं, वे पुरुष नरकगामी हैं॥ १० ॥ ब्राह्मणों के गौओं के और कन्याओं के कार्य में जो विघ्न डालते हैं, वे नरकगामी हैं ॥ ११ ॥ क्षमा वाले, दान्त, बुद्धिमान्, देर तक साथ रहे साथियों को जो अपना प्रयोजन पूरा करके त्याग देते हैं, वे नरकगामी हैं ॥ १२ ॥ जो पुरुष बाल वृद्ध और दासों को न देकर पहले आप खाते हैं, वे नरकगामी हैं ॥ १३ ॥ और हे युधिष्ठिर ! जो दान, तप और सचाई से धर्म का अनुसरण

करते हैं, वे पुरुष स्वर्गगामी हैं ॥ १४ ॥ क्षमा वाले और धर्म-कार्यों में तत्पर मंगलाचार से युक्त पुरुष स्वर्ग गामी हैं ॥ १५॥ जो वस्त्रों और भूषणों का दान करने वाले,भक्ष्य, पान और अन्न के देने वाले, कुटम्बों के पालने वाले पुरुष हैं, वे स्वर्गगामी हैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष सब प्रकार की हिंसाओं से हटे हुए हैं, सब कुछ सहने वाले हैं, और सब के आश्रय दाता हैं, वे स्वर्गगामी हैं ॥ १७ ॥ जो माता पिता के सेवक हैं, जितेन्द्रिय हैं, भाइयों से स्नेह रखते हैं, वे नर स्वर्गगामी हैं ॥ १८ ॥ जो धनवान्, बलवान् और युवा हो कर जितेन्द्रिय हैं, वे नर स्वर्गगामी हैं ॥ १९ ॥ अपराधियों पर स्नेह वाले, नर्म, नर्म दिल वालों को प्यार करने वाले हैं, जिन को प्रसन्न करना आसान है, वे नर स्वर्गगामी हैं ॥ २० ॥ सहस्रों के परोसने वाले सहस्रों के देने वाले, और सहस्रों के रक्षक हैं, वे नर स्वर्गगामी हैं ॥ २१ ॥ विहार, घर, उद्यान, कुएं, बाग, सभा, प्याउ और कोटों के बनाने वाले हैं, वे नर स्वर्गगामी हैं ॥ २२ ॥ जो रसों के बीजों के धान्यों के स्वयं उत्पन्न कर के देने वाले हैं, वे नर स्वर्गगामी हैं ॥ २३ ॥ जिस किसी कुल में जन्मे बहुत पुत्रों वाले और सौ वर्ष की आयु वाले हैं, दयावान् हैं और क्रोध को जीते हुए हैं, वे नर स्वर्गगामी हैं ॥ २४ ॥

अ० ४ (व० ४४-४९) धर्म और अधर्म

मूल—यु० उ०--यन्मूलं सर्वधर्माणां स्वजनस्य गृहस्य च । पितृदेवातिथीनां च तन्मेब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ भी० उ०--श्रीकृष्णे समाश्राय विद्यां योनिं च कर्म च । सद्भिरेवं महात्मना क-

न्या गुणयुते वरे ॥ २ ॥ अन्योप्यथ न विक्रेयो मनुष्यः किं पुनः प्रजाः। अधर्ममूलैर्धनैस्तैर्नैव धर्मोथ कश्चन ॥ ३ ॥ पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः श्वशुरैरथ देवरैः। पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याण मीप्सुभिः ॥ ४ ॥ स्त्रियो यत्र च पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ ५ ॥ स्त्रियस्तु मानमर्हन्ति ता मानयत मानवाः। स्त्रीप्रत्ययो हि वै धर्मो रति भोगाश्च केवलाः ॥ ६ ॥ उत्पादन मपत्यस्य जातस्य परिपालनं। प्रीत्यर्थं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनं ॥ ७ ॥ विदेहराज दुहिता चात्रश्लोक मगायत ॥ ८ ॥ नास्ति यज्ञ क्रिया काचिन्न श्राद्धं नोपवासकं। धर्मः स्वभर्तृ शुश्रूषा तया स्वर्गं जयन्त्युत ॥ ९ ॥ श्रिय एताः स्त्रियो नाम सत्कार्या भूति मिच्छता। पालिता निगृहीता च श्रीः स्त्री भवति भारत ॥ १० ॥ माता पितृभ्यां यस्त्यक्तः पथि यस्तं प्रकल्पयेत। न चास्य मातापितरौ ज्ञायेतां साहि कृत्रिमः ॥ ११ ॥ अस्वामिकस्य स्वामित्वं यस्मिन् संप्रति लक्ष्यते। यो वर्णः पोषयेत् तं च तद्वर्णस्तस्य जायते ॥१२॥ तद्गोत्रबन्धुजं तस्य कुर्यात् संस्कार मच्युत। अथ देया तु कन्या स्यात् तद्वर्णस्य युधिष्ठिर ॥ १३ ॥

अर्थ—यु० बोले—जो सारे धर्मों का, अपने जनों का, घर के सुखों का, पितृदेव और अतिथिपूजा का मूल है, वह कहिये ॥ १ ॥ भीष्म बोले—सत्पुरुषों को चाहिये कि शील, चरित्र, विद्या, योनि और कर्म की परीक्षा करके गुणवान् वर को कन्या देवे ॥ २ ॥ मनुष्य तो कोई भी बेचना नहीं चाहिये, क्या फिर अपनी संतान, अधर्म मूल धनों से कभी कोई धर्म नहीं होता ॥३॥

पिता भाई पति देवर सब को चाहिये, कि स्त्रियों का आदर सत्कार करें और उन को अच्छे वस्त्र भूषण दें, जो बहुत कल्याण चाहते हैं ॥ ४ ॥ जहां स्त्रियें पूजी जाती हैं, वहां देवता रमण करते हैं, और जहां इन की पूजा नहीं होती. वहां सारे कार्य निष्फल होते हैं ॥ ५ ॥ स्त्रियें मान के योग्य हैं हे मनुष्यो उन का मान करो, गृहस्थ धर्म और रति भोग का कारण केवल स्त्रियें हैं ॥ ६ ॥ सन्तान का उत्पादन और उत्पन्न हुए का पालन, लोकयात्रा का प्रीति का स्त्री प्रत्यक्ष मूल है ॥ ७ ॥ इस विषय में विदेह राज की कन्या ने श्लोक गाया है ॥ ८ ॥ स्त्रियों के लिए न यज्ञ क्रिया है, न श्राद्ध है, न उपवास है, अपनी पति की सेवा उन का धर्म है, इस से वे स्वर्ग को जीतती हैं ॥ ९ ॥ ये जो स्त्रियें हैं, ये साक्षात लक्ष्मियें हैं, वृद्धि चाहने वाले को इन का सत्कार करना चाहिये, रक्षा की हुई और (गुणों से) वश में की हुई स्त्री साक्षात लक्ष्मी होती है ॥ १० ॥ भीष्म बोले—देखो यदि कोई बच्चा किसी माता पिता ने त्याग दिया हो, और उस के माता पिता का पता न लगे, तो जो उसे स्वीकार करे, उस का वह कृत्रिम पुत्र होगा ॥ ११ ॥ जिस का कोई और स्वामी नहीं बनता, उस का वह पूरा स्वामी है, वर्तमान में जिस के पास है, इस लिए जिस वर्ण का पुरुष उसे पाले पोसे उसी के वर्ण का वह हो जाता है ॥ १२ ॥ हे युधिष्ठिर ! वह अपने गोत्र बन्धुओं में उत्पन्न हुए के सदृश उसका विवाह करे, और यदि कन्या हो तो उसी वर्ण में देवे ॥ १३ ॥

अ० ५ (व० ५८-६९) दानधर्म

मूल—यु० उ०—आरामाणां तडागानां यत्फलं कुरुपुंगव ।

तदहं श्रोतु मिच्छामि त्वत्तोऽद्य भरतर्षभ ॥ १ ॥ भीम उवाच—धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः । तडागं सुकृतं देशे क्षेत्रमेकं महाश्रयं ॥ २ ॥ निदाघकाले पानीयं तडागे यस्य तिष्ठति । वाजिमेधफलं तस्य फलं वैमुनयो विदुः ॥ ३ ॥ स कुलं तारयेत सर्वं यस्य खाते जलाशये । गावः पिबन्ति सलिलं साधवश्च नराः सदा ॥ ४ ॥ स्थावराणां च भूतानां जातयः षट्प्रकीर्तिताः । वृक्षगुल्मलतावल्ल्यस्त्वक् सारास्तृणजातयः ॥ ५ ॥ एता जात्यस्तु वृक्षाणां तेषां रोपे गुणास्त्विमे । कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव फलं शुभं ॥ ६ ॥ पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान् । तस्मात्तडागे सद्वृक्षा रोप्या श्रेयोर्थिना सदा ॥ ७ ॥ तडागकृद् वृक्षरोपी इष्टयज्ञश्च यो द्विजः । एते स्वर्गे महीयन्ते ये चान्ये सत्यवादिनः ॥ ८ ॥ तस्मात्तडागं कुर्वीत आरामांश्चैव रोपयेत् । यजेच्च विविधैर्यज्ञैः सत्यं च सततं वदेत्॥९॥ यु० उ०—यानीमानि बहिर्वेद्यां दानानि परिचक्षते । तेभ्यो विशिष्टं किं दानं मतं ते कुरुपुंगव ॥ १० ॥ भी० उ० यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे । तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षय मिच्छता ॥ ११ ॥ प्रियाणि लभते नित्यं प्रियदः प्रियकृत्तथा । प्रियो भवति भूताना मिह चैव परत्र च ॥ १२ ॥ अमित्रमपि चेद्दीनं शरणैषिणमागतं । व्यसने योऽनु गृह्णाति सवै पुरुषसत्तमः ॥ १३ ॥ कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते । अपहन्यात् क्षुधां यस्तु न तेन पुरुषः समः ॥ १४ ॥ विद्यास्नाता व्रतस्नाता धर्ममाश्रित्य जीविनः । गूढस्वाध्याय तपसो ब्राह्मणाः संशितव्रताः ॥ १५ ॥ तेषु शुद्धेषु दान्तेषु स्वदार निरतेषु च । यत् करिष्यसि कल्याणं तत्ते लोके युधांपते ॥ १६ ॥ अति दानानि

सर्वाणि पृथिवीदान मुच्यते। अचलाह्यक्षया भूमिर्दोग्ध्री कामा-
न्निहोत्तमान् ॥ १७ ॥ यथा जनित्रीस्वं पुत्रं क्षीरेण भरते सदा।
अनुगृह्णाति दातारं तथा सर्वरसैर्मही ॥ १८ ॥ यथाचन्द्रमसो वृ-
द्धिरहन्यहनि जायते। तथा भूमि कृतं दानं सस्ये सस्ये विवर्धते
॥ १९ ॥ अन्नदः प्राणदो लोके सर्वदः प्रोच्यते तु सः । त्रिषु-
लोकेषु धर्मार्थ मन्नं देयमतो बुधैः ॥ २० ॥ शीतवातातपसहां
यागभूमिं सुसंस्कृतां। प्रदाय सुरलोकस्थः पुण्यान्तेपि न चाल्यते
॥ २१ ॥ अतः परं तु गोदानं कीर्तयिष्यामि तेऽनघ ॥ २२ ॥
पयसा हविषा दध्ना शकृता चाथ चर्मणा। अस्थिभिश्चोप कुर्वन्ति
शृङ्गैर्वालैश्च भारत ॥ २३ ॥ नासां शीतातपौ स्यातां सदैताः कर्म
कुर्वते। न वर्षविषयं वाऽपि दुःखमासां भवत्युत ॥ २४ ॥ ता
इमा विप्रमुख्येभ्यो यो ददाति महीपते। निस्तरेदापदं कृच्छ्रां
विषमस्थोपि पार्थिव ॥ २५ ॥ अन्नमेव मनुष्याणां प्राणानाहु-
र्मनीषिणः। तच्च सर्वं नरव्याघ्र पानीयात् संप्रवर्तते ॥ २६ ॥
तस्मात्पानीयदानाद्धि न परं विद्यते क्वचित्। धन्यं यशस्य मायु-
ष्यं जलदान मिहोच्यते ॥ २७ ॥ वाससां संप्रदानेन स्वदारानि-
रतो नरः। सुवस्त्रश्च सुवेषश्च भवतीत्यनु शुश्रुम ॥ २८ ॥ तुल्य-
नामानि देयानि त्रीणि तुल्य फलानि च । सर्वकाम फलानीह
गावः पृथ्वी सरस्वती ॥ २९ ॥ यो ब्रूयाच्चापि शिष्याय धर्म्यां
ब्राह्मीं सरस्वतीं। पृथिवीगोप्रदानाभ्यां तुल्यं स फल मश्नुते ३०

अर्थ—युधिष्ठिर बोले-हे कुरुवर! बगीचों और तालाबों
का जो फल है, वह मैं आप से सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥ भीष्म
बोले—पण्डित कहते हैं अच्छे स्थान पर उत्तम बनाया हुआ ता-

लाब धर्म अर्थ और भोग देता है ॥ २ ॥ गर्मी के दिनों में जिस के तालाब में पानी विद्यमान रहता है, मुनिजन उस को अश्वमेध का फल कहते हैं ॥ ३ ॥ वह पुरुष अपनी सारी कुल को तार देता है, जिस के खोदे हुए जलाशय में गौएं और भले पुरुष सदा जल पीते हैं ॥ ४ ॥ स्थावरों की छः जातियां कही हैं, वृक्ष, झाडियें, बेलें, वल्लें, त्वक्सार (जिन के छिलके काम आते हैं) और घास ॥ ५ ॥ ये जातियें वृक्षों की हैं, इन के लगाने में ये गुण हैं, मनुष्य लोक में यश और परलोक में शुभ फल होता है ॥ ६ ॥ फूले फले हुए ये मनुष्यों को तृप्त करते हैं, इस लिए कल्याण चाहने वाले को तालाब पर अच्छे वृक्ष लगाने चाहियें ॥ ७ ॥ तालाब बनवाने वाले, वृक्ष लगवाने वाले और यज्ञ करने वाले और सत्यवादी ये सब पुरुष स्वर्ग में पूजे जाते हैं ॥ ८ ॥ इस लिए पुरुष को चाहिये, कि तालाब बनवाए, वृक्ष रोपे, विविध यज्ञों से यजन करे और सदा सत्य बोले ॥९॥ युधिष्ठिर बोले—जितने ये यज्ञ की दक्षिणा से स्वतन्त्र दान दिये जाते हैं, उन में से किस २ दान को आप विशेष मानते हैं ॥ १० ॥ भीष्म बोले—लोक में जो २ इसे अधिक प्रिय है, वह २ गुण वाले को देना चाहिये, जो उस का अक्षय फल चाहता है ॥ ११ ॥ जो प्रिय देने वाला और प्रिय करने वाला है, वह प्रिय लाभ करता है, और लोक परलोक में सब का प्यारा होता है ॥ १२ ॥ विपद् में दीन हो कर शरणागत हुए शत्रु पर भी जो अनुग्रह करता है, वह पुरुषवर है ॥ १३ ॥ दुर्बल, वृत्ति हीन दुःखित हुए विद्यावान् की जो भूख मिटाता है, उस के समान कोई पुरुष नहीं है ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण विद्यास्नात

व्रत स्नात, धर्मानुसार जीविका करने वाले, गुप्त स्वाध्याय और तप वाले, तीव्र व्रतों वाले हैं, ऐसे शुद्ध दान्त एकनारीव्रती ब्राह्मणों के विषय में जो भलाई करोगे, वह तुम्हें लोक परलोक में अवश्य फलेगी ॥ १५–१६ ॥ पृथिवी दान सब दानों से बढ़ कर है, भूमि जो अचल और अक्षय है, वह उत्तम कामनाओं का दूध देती रहती है ॥ १७ ॥ जैसे जननी दूध से अपने पुत्र का सदा पोषण करती है, वैसे भूमि सब रसों से दाता पर अनुग्रह करती है ॥ १८ ॥ जैसे चन्द्रमा की वृद्धि दिन पर दिन होती रहती है, वैसे भूमि का दान हरएक खेती में बढ़ता रहता है॥१९॥ अन्न का दाता लोक में प्राणदाता कहलाता है, वह सब कुछ देने वाला है, इस लिए बुद्धिमानों को चाहिये, कि तीनों लोकों में धर्मार्थ अन्न देवें ॥ २० ॥ जो शीत वात धूप के सहने वाली सजी हुई याग भूमि देता है, वह स्वर्ग लोक में स्थित हुआ पुण्य की समाप्ति में भी नहीं फिसलता है (अर्थात् यज्ञों के साथ २ उस का पुण्य बढ़ता रहने से वहीं टिका रहता है) ॥ २१ ॥ इस से आगे हे निष्पाप तुझे गौदान के विषय में कहूंगा ॥ २२ ॥ दूध, दही, घृत, गोबर, चर्म, हड्डी, सींग, और बालों से सदा उपकार करती हैं ॥ २३ ॥ न इन को सर्दी गर्मी लगती है, ये सदा काम करती हैं, न ही इनको वृष्टि का दुःख होता है ॥२४॥ हे राजन् ! जो इन का दान श्रेष्ठ ब्राह्मणों को देता है, हे राजन् वह विषम अवस्था में पड़ा हुआ भी दुस्तर विपद् से पार हो जाता है ॥ २५ ॥ बुद्धिमान् पुरुष अन्न को ही मनुष्यों के प्राण कहते हैं, अन्न सब जल से प्रवृत्त होता है ॥ २६ ॥ इस लिए

(खेती के लिए) जल दान से बढ कर दान नहीं है, धन यश और आयु के देने वाला जलदान कहा है ॥ २७ ॥ वह पुरुष जो वस्त्र दान करता है, और अपनी पत्नी से ही प्रीति वाला है, वह सुन्दर वस्त्रों वाला और सुन्दर वेष वाला होता है ॥ २८ ॥ ये तीनों दान तुल्य ही नाम वाले और तुल्य फल वाले हैं, और सारी कामनाओं के पूरने वाले हैं, गौ, भूमि और सरस्वती (गौ, भूमि, और सरस्वती तीनों को गौ कहते हैं)।२९।जो शिष्य को धर्म सिखलाने वाली वेद वाणी की शिक्षा देता है, वह पृथिवी दान और गोदान के तुल्य फल पाता है ॥ ३० ॥

अ० ६ (व० १०४) सदाचार

मूल--शतायुरुक्तः पुरुषः शतवीर्यश्च वैदिके । कस्मान्म्रियन्ते पुरुषा बाला अपि पितामह ॥ १ ॥ आयुष्मान् केन भवति अल्पायुर्वापि मानवः । केन वा लभते कीर्ति केन वा लभते श्रियं ॥ २ ॥ भी० उ० आचाराल्लभते ह्यायु राचाराल्लभते श्रियं । आचारात्कीर्ति माप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥ ३ ॥ आचार लक्षणो धर्मः सन्तश्चारित्र लक्षणाः । साधूनां च यथावृत्तमेतमाचार लक्षणं ॥ ४ ॥ ये नास्तिका निष्क्रियाश्च गुरुशास्त्रातिलंघिनः । अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्तिगतायुषः ॥ ५ ॥ विशीला भिन्नमर्यादा नित्यं संकीर्ण मैथुनाः । अल्पायुषो भवन्तीह नरा निरयगामिनः ॥ ६ ॥ अक्रोधनः सत्यवादी भूतानामविहिंसकः । अनसूयुर जिह्मश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ७ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत । उत्थायचोपतिष्ठेत पूर्वां सन्ध्यां कृताञ्जलिः ॥८॥

एवमेवापरां सन्ध्यां समुपासीत वाग्यतः । ऋषयो नित्यसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुवन् ॥ ९ ॥ ये न पूर्वा मुपासन्ते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमां । सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत् ॥ १० ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे पितामह जब वेदवचन में पुरुष को सौ वर्ष की आयु वाला और बहुत शक्तियों वाला कहा है, तो फिर किस कारण से बाल भी मरजाते हैं ॥ १ ॥ किस से पुरुष दीर्घायु होता है, और किस से अल्पायु होता है, किस से कीर्ति प्राप्त होती है, किस से श्री प्राप्त होती है ॥ २ ॥ भीष्म बोले—आचार से ही आयु बढ़ती है, आचार से ही श्री प्राप्त होती है, आचार से ही पुरुष लोक परलोक में कीर्ति पाता है ॥ ३ ॥ धर्म का बाह्य चिन्ह आचार है, आचार से सत्पुरुष लखे जाते हैं, भले पुरुषों का जो आचरण है, वही आचार का स्वरूप है ॥ ४ ॥ जो नास्तिक, कर्म हीन, गुरु और शास्त्र के वाक्य का उल्लंघन करते हैं, अधर्मी और दुराचारी हैं, वे अल्पायु होते हैं ॥ ५ ॥ जो दुःशील, मर्यादा तोड़ने वाले, व्यभिचारी अनाचारी हैं, वे यहां अल्पायु होकर नरकगामी होते हैं ॥ ६ ॥ जो अक्रोधी सत्यवादी, किसी से द्रोह न करने वाला, असूया रहित और निष्कपट है, वह सौ वर्ष जीता है ॥ ७ ॥ ब्राह्म मुहूर्त में जागे, और उस समय (उपार्जनीय) धर्म अर्थ का विचार करे, और उठ के हाथ जोड़ पूर्वा सन्ध्या उपासे ॥ ८ ॥ इसी प्रकार वाणी को रोक कर सायं सन्ध्या उपासे, ऋषिजन नित्य सन्ध्योपासन से दीर्घ आयु को प्राप्त हुए हैं ॥ ९ ॥ जो

द्विज प्रातः और सायं सन्ध्या नहीं उपासते, धार्मिक राजा उन सब से शूद्रों के कर्म करवाए ॥ १० ॥

मूल—परदारा न गन्तव्याः सर्ववर्णेषु कर्हिचित ॥११॥ नहीदृश मनायुष्य लोके किञ्चन विद्यते । यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनं ॥ १२ ॥ हीनांगानतिरिक्तांगान् विद्याहीनान् वयोऽधिकान् । रूपद्राविण हीनांश्च सत्वहीनांश्च नाक्षिपेत ॥१३ ॥ नित्यमग्नि परिचरेद् भिक्षांदद्याच्च नित्यदा । वाग्यतो दन्तकाष्ठं च नित्यमेव समाचरेत ॥ १४ ॥ न चाभ्युदितशायी स्यात् प्रायश्चित्ती तथा भवेत ॥ १५ ॥ माता पितरमुत्थाय पूर्वमेवाभि वादयेत । आचार्यमथवाप्यन्यं तथायुर्विन्दते महत ॥ १६ ॥ नोदीक्षेत परदारांश्च रहस्येकासनो भवेत । इन्द्रियाणि सदा यच्छेत स्वप्ने शुद्धमना भवेत ॥ १७ ॥ नोत्सृजेत पुरीषं च क्षेत्रे मार्गस्य चान्तिके । उभे मूत्रपुरीषेतु नाप्सु कुर्यात कदाचन ॥ १८ ॥ स्वसृव्यं नैव नग्नेन न चोच्छिष्टोपि संविशेत । न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूये दात्मनः शिरः ॥ १९ ॥ गुरुणा वैर निर्बन्धो न कर्तव्यः कदाचन । अनुमान्यः प्रसाद्यश्च गुरुः क्रुद्धो युधिष्ठिर ॥ २० ॥ दूरादावसथान्मूत्रं दूरात पादावसेचनं । उच्छिष्टोत्सर्जनं चैव दूरेकार्यं हितैषिणा ॥ २१ ॥ विपर्ययं न कुर्वीद्वाससो बुद्धिमान्नरः । तथा नान्यधृतं धार्यं न चातिविकृतं तथा ॥२२॥ सायं प्रातश्च भुञ्जीत नान्तराले समाहितः । भूमौ सदैव नाश्नीयान्नाशौचं न च शब्दवत ॥ २३ ॥ न दिवा मैथुनं गच्छेन्न कन्यां न च बन्धकीं । न चास्नातां स्त्रियं गच्छेत तथायुर्विन्दते महत ॥ २४ ॥ वृद्धो ज्ञातिस्तथा मित्र मनाथा च स्वसा गुरुः । कुलीनः पण्डित इति रक्ष्यानिस्वाः स्वशक्तितः ॥ २५ ॥ वनु-

वेदे च वेदे च यत्नः कार्यो नराधिप । हस्तिपृष्ठेऽश्व पृष्ठे च रथचर्यासु चैव हि ॥ २६॥ पुराण मितिहासाश्च तथाऽऽख्यानानि यानि च । महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव ते ॥ २७ ॥ ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणि पूजनीयानि सर्वशः । यष्टव्यं च यथाशक्ति यज्ञैर्विविध दक्षिणैः ॥ २८ ॥ अत ऊर्ध्वमरण्यं च सेवितव्यं नराधिप ॥ २९ ॥ एषते लक्षणोद्देश आयुष्याणां प्रकीर्तितः। शेषस्त्रै विद्य वृद्धेभ्यः प्रत्यहार्यो युधिष्ठिर ॥ ३० ॥

अर्थ—सभी वर्णों में किसी को भी परस्त्रीगामी नहीं होना चाहिये ॥ ११ ॥ पुरुष के लिए जैसा परस्त्रीगमन आयु का घटाने वाला है, लोक में वैसा अनायुष्य और कुछ भी नहीं है ॥ १२ ॥ हीन अंग वाले, अधिक अंग वाले, बुड्ढे, विद्या, रूप, धन वा बल से हीन पुरुषों को न अनादरे (' ओ लंगड़े ' इत्यादि शब्दों से न पुकारे) ॥ १३ ॥ नित्य अग्निहोत्र करे, नित्य भिक्षा देवे, और चुपचाप हो कर नित्य दातून करे॥१४॥ सूर्य उदय होने पर सोया न रहे, ऐसी अवस्था में प्रायश्चित्ती होता है ॥ १५ ॥ उठ के माता पिता आचार्य और दूसरे माननीयों को प्रणाम करे, इस से दीर्घ आयु पाता है ॥ १६ ॥ परस्त्री को न देखे, एकान्त में अकेला रहे (कोई स्त्री निकट न हो), इन्द्रियों को सदा वश में रक्खे, स्वप्न में भी मन में कोई विकार न आए ॥ १७ ॥ खेती में वा मार्ग के निकट शौच न फिरे, जल में मल मूत्र का त्याग कभी न करे ॥ १८ ॥ न नंगा सोवे, न झूठे मुंह (कुल्ला किये बिना) सोवे, दोनों हाथों से सिर को न खुजावे॥ १९ ॥ गुरु के साथ कभी वैर नहीं बांधना चाहिये, सदा उस का मान करना चाहिये, क्रुद्ध हो, तो प्रसन्न

करना चाहिये ॥ २० ॥ जो अपना हित चाहता है, उसे चा-
हिये, कि घर से दूर पेशाब करे, दूर ही मैला पानी फैंके, और
दूर ही जाके जूठ फैंके ॥ २१ ॥ बुद्धिमान् पुरुष वस्त्र का उलट
फेर न करे (धोती को दुपट्टा और दुपट्टे को धोती न बनाए)
दूसरे के पहरे वस्त्र को न पहरे, और न अत्यन्त विकृत (फटा
पुराना मैला) पहने ॥ २२ ॥ सावधान हो कर सायं प्रातः
भोजन करे, मध्य में नहीं, भूमि पर रख कर न खाए, न (केश
आदि से) अपवित्र खाए, न शब्द सहित (पचाके मार२कर)
खाए ॥ २३ ॥ दिन में मैथुन न करे, न बाला से, न असती से,
न बिना ऋतुस्नाता से, इस से दीर्घ आयु पाता है ॥ २४ ॥
अपनी ज्ञाति का वृद्ध, मित्र, अनाथ बहिन,और कुलीन पण्डित,
ये यदि निर्धन हों, तो अपनी शक्ति अनुसार इन की रक्षा
करनी चाहिये ॥ २५ ॥ हे राजन् ! धनुर्वेद, वेद, घोड़े और
हाथी की सवारी और रथचर्याओं में यत्न करना चाहिये॥२६॥
हे महाराज ! तुझे पुराण, इतिहास, आख्यान और महात्माओं
के चरित्र नित्य सुनने चाहिये ॥ २७ ॥ ज्ञातिजन, सम्बन्धी और
मित्र सब भांति पूजनीय हैं, और शक्ति के अनुसार विविध
दक्षिणा वाले यज्ञों से यजन करना चाहिये ॥ २८ ॥ इस के
अनन्तर हे नरनाथ ! बनवासी होना उचित है ॥ २९ ॥ यह मैंने
तुम्हें आयुष्कर कार्यों का संक्षेप कहा है। सविस्तर हे युधि-
ष्ठिर वेदों के जानने वाले पण्डितों से जानो ॥ ३० ॥

अ० ७ (व० १६६-१६८) युधिष्ठिर का गमनागमन और भीष्म का देह त्याग

मूल—अभून्मुहूर्तं स्तिमितं सर्वं तद्राजमण्डलं। तूष्णींभूते

ततस्तस्मिन् पटे चित्र मिवार्पितं ॥ १ ॥ मुहूर्तमिव च ध्यात्वा व्यासः सत्यवती सुतः । नृपं शयानं गांगेय मिदमाह वचस्तदा ॥ २ ॥ राजन् प्रकृतिमापन्नः कुरुराजो युधिष्ठिरः । सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पार्थिवैश्चानुयायिभिः ॥ ३ ॥ उपास्ते त्वां नरव्याघ्र सह कृष्णेन धीमता । तमिमं पुरयानाय समनुज्ञातु मर्हसि ॥ ४ ॥ एवमुक्तो भगवता व्यासेन पृथिवीपतिः । उवाच चैनं मधुरं नृपं शान्तनवो नृपः ॥ ५ ॥ प्रविशस्व पुरीं राजन् धर्मे च भ्रियतां मनः । यजस्व विविधैर्यज्ञैर्बहन्नैः स्वाप्त दक्षिणैः ॥ ६ ॥ रञ्जयस्व प्रजाः सर्वाः प्रकृतीः परिसान्त्वय । सुहृदः फलसत्कारैरर्चयस्व यथार्हतः ॥ ७ ॥ आगन्तव्यं च भवता समये मम पार्थिव। विनिवृत्ते दिनकरे प्रवृत्ते चोत्तरायणे ॥ ८ ॥ तथेत्युक्त्वा च कौन्तेयः सोऽभिवाद्य पितामहं । प्रययौ सपरिवारो नगरं नागसाह्वयं ॥ ९ ॥

अर्थ—इतना कह कर भीष्म के मौन होजाने पर वह समस्त राजमण्डल पट लिखित चित्र की भांति निश्चल हुआ ॥१॥ अनन्तर थोड़ी देर सोच कर व्यास जी लेटे हुए भीष्म से यह वचन बोले ॥ २ ॥ हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर का चित्त अब ठीक हो गया है, सारे भाइयों और अनुयायी राजाओं तथा श्रीकृष्ण समेत आप के निकट बैठे हैं, अब आप इन्हें नगर जाने की अनुमति दीजिये ॥ ३—४ ॥ भगवान् व्यास के इस वचन को सुन कर राजा भीष्म युधिष्ठिर से यह मधुर वचन बोले॥५॥ हे राजन् ! नगर में प्रवेश करो, अपने कर्तव्य पालने में तुम्हारा मन लगे, और पर्याप्त दक्षिणा वाले यज्ञों से यजन करो ॥ ६ ॥ प्रजाओं को प्रसन्न करो, सारी प्रकृतियों को धीरज दो, और

सुहृदों को यथायोग्य सम्मान दो ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जब सूर्य दक्षिणायन से हट कर उत्तरायण में आएगा, तब मेरे पास आना, वह मेरा अन्त समय होगा ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर 'तथास्तु' कह कर और पितामह को प्रणाम कर परिवार सहित हस्तिनापुर को लौट गया ॥ ९ ॥

मूल—सोऽभिषिक्तो महाप्राज्ञः प्राप्य राज्यं युधिष्ठिरः। अवस्थाप्य नरश्रेष्ठः सर्वाः स्वप्रकृतीस्तथा ॥ १० ॥ उषित्वा शर्वरीः श्रीमान् पञ्चाशन्नगरोत्तमे । समयं कौरव्याग्रयस्य सस्मार पुरुषर्षभः ॥ ११ ॥ स निर्ययौ गजपुराद्याजकैः परिवारितः । घृतं माल्यं गन्धांश्च क्षौमाणि च युधिष्ठिरः ॥ १२ ॥ चन्दनागरु मुख्यानि तथा कालागरूणि च । प्रस्थाप्य पूर्वं कौन्तेयो भीष्म संस्करणाय वै ॥ १३ ॥ धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गान्धारीं च यशस्विनीं । मातरं च पृथां धीमान् भ्रातॄंश्च पुरुषर्षभान् ॥ १४ ॥ जनार्दनेनानुगतो विदुरेण च धीमता । स्तूयमानो महातेजा भीष्मस्याग्नीननुव्रजन् ॥ १५ ॥ आससाद कुरुक्षेत्रे ततः शान्तनवं नृपः ॥ १६ ॥ अभिवाद्य शरतल्पस्थ मृषिभिः परिवारितं । अब्रवीद् भरतश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥ युधिष्ठिरोऽहं नृपते नमस्ते जान्हवीसुत । प्राप्तोस्मि समये राजन्नग्नीनादाय ते विभो ॥ १८ ॥ ततश्च बलवान् भीष्मः प्रगृह्य विपुलं भुजं। उद्यन्मेघस्वरो वाग्मी काले वचन मब्रवीत् ॥ १९ ॥ दिष्ट्या प्राप्तोसि कौन्तेय सहामात्यो युधिष्ठिर । परिवृत्तो हि भगवान् सहस्रांशुर्दिवाकरः ॥ २० ॥ अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः। शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा ॥ २१ ॥ माघोयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर । त्रिभागशेषः पक्षोयं शुक्लो भ-

वितु मर्हति ॥ २२ ॥ धृतराष्ट्र मथामन्त्र्य काले वचन मब्रवीत् । राजन् विदित धर्मोसि सुनिर्णीतार्थसंशयः ॥ २३ ॥ वेदांश्च चतुरः सर्वान्निखिलेनावबुध्यसे । न शोचितव्यं कौरव्य भावितव्यं हि तत्तथा ॥२४॥ यथा पाण्डोः सुताराजंस्तथैव तव धर्मतः। तान् पालय स्थितो धर्मे गुरु शुश्रूषणे रतान् ॥ २५ ॥ धर्मराजो हि शुद्धात्मा निदेशे स्थास्यते तव । आनृशंस्यपरं ह्येनं जानामि गुरुवत्सलं ॥ २६ ॥

अर्थ—अभिषिक्त हुए महाराज युधिष्ठिर ने राज्य पा कर और समस्त प्रकृतियों को नियुक्त किया ॥ १० ॥ और नगर में पचास रात्रि तक निवास कर कौरववर पितामह का समय स्मरण किया ॥ ११ ॥ वह ऋत्विजों समेत हस्तिनापुर से बाहर निकले, और भीष्म के संस्कार के निमित्त घृत माला गन्ध पट्टवस्त्र उत्तम चन्दन अगर तथा कालागर उन्होंने अपने चलने से पहले भिजवा दिये ॥ १२-१३ ॥ धृतराष्ट्र, गान्धारी, माता कुन्ती, सारे भाइयों श्रीकृष्ण और विदुर को साथ ले, स्तुतिवचन सुनता हुआ भीष्म की अग्नियों के पीछे चलने लगा ॥ १४-१५॥ और कुरुक्षेत्र में पितामह के निकट पहुंचे ॥ १६ ॥ शरशय्या पर लेटे हुए ऋषियों से घिरे हुए भीष्म को प्रणाम कर धर्मराज युधिष्ठिर बोले ॥ १७ ॥ हे पितामह ! मैं युधिष्ठिर आप को प्रणाम करता हूं, हे विभो ! मैं आप की आग्नियें ले कर समय पर उपस्थित हुआ हूं ॥ १८ ॥ तब उस की विशाल भुजा को ग्रहण कर बलवान् वाग्मी भीष्म मेघ गम्भीर स्वर से समयोचित वचन बोले ॥ १९ ॥ हे कौन्तेय ! भाग्य से तुम साथियों समेत आ उपस्थित हुए हो, अनन्त किरणों वाला भगवान् सूर्य पलट गया

है ॥ २० ॥ तीखी नोकों वाले बाणों पर लेटे हुए आज मुझ को ५८ रातें बीत गई हैं, मानों जैसे सौ बरस बीते हों ॥ २१ ॥ हे युधिष्ठिर यह चान्द्र माघ मास उपस्थित है, और अब शुक्लपक्ष का तीसरा भाग शेष है ॥ २२ ॥ इतना कह कर फिर धृतराष्ट्र से समयोचित वचन बोले, हे राजन् ! तुम धर्म को जानते हो,सब विषयों में तुम संदेहों को मिटा कर निर्णीत विषय समझ चुके हो ॥ २३ ॥ चारों वेदों को यथावत् जानते हो,सो हे कुरुराज ! कोई शोक न करो, यह ऐसा ही होना था ॥ २४ ॥ हे महाराज ! पाण्डु के पुत्र धर्म से तुम्हारे पुत्र ही हैं, इस लिए तुम धर्मानुसार इन का पालन करो, ये आप की सेवा में तत्पर रहें ॥ २५ ॥ धर्मराज शुद्ध चित्त है, आप की आज्ञा में रहेगा, मैं इसे जानता हूं,कि दयापरायण और गुरुओं का हितैषी है॥२६॥

मूल-एतदुक्त्वा वचनं तु धृतराष्ट्रं मनीषिणं । वासुदेवं महाबाहु मभ्यभाषत कौरव ॥ २७ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम । रक्ष्याश्च ते पाण्डवेया भवान् येषां परायणं॥२८॥ वासुदेव उवाच-पितृभक्तोसि राजर्षे मार्कण्डेय इवापरः । तेन मृत्युस्तव वशे स्थितो भृत्य इवानतः॥ २९ ॥ एवमुक्तस्तु गांगेयः पाण्डवानिद मब्रवीत् । धृतराष्ट्र मुखांश्चापि सर्वांश्च सुहृदस्तथा ॥ ३० ॥ प्राणानुत्स्रष्टु मिच्छामि तत्रानुज्ञातु मर्हथ । सत्येषु यतितव्यं वः सत्यं हि परमं बलं ॥ ३१ ॥ आनृशंस्यपरैर्भाव्यं सदैव नियतात्मभिः । ब्रह्मण्यैर्धर्मशीलैश्च तपोनित्यैश्च भारताः इत्युक्त्वा सुहृदः सर्वान् संपरिष्वज्य चैव ह । तूष्णीं बभूव कौरव्यः समुहूर्तं मरिन्दम ॥ ३३ ॥ धारयामास चात्मानं धारणासु यथाक्रमं । तस्योर्ध्वं मगमन् प्राणाः सन्निरुद्धा महात्मनः ॥ ३४ ॥

सन्निरुद्धस्तु तेनात्मा सर्वेष्वायतनेषु च । जगाम भित्त्वा मूर्धानं दिवमभ्युत्पपात ह ॥ ३५ ॥ एवं स राजशार्दूल नृपः शान्तनवस्तदा । समयुज्यत कालेन भरतानां कुलोद्वहः ॥ ३६ ॥ ततस्त्वादाय दारूणि गन्धांश्च विविधान् बहून् । चितां चक्रुर्महात्मानः पाण्डवा विदुरस्तथा ॥ ३७ ॥ युधिष्ठिरश्च गांगेयं धृतराष्ट्रश्च दुःखितौ । छादयामासतुरुभौ क्षौमैर्माल्यैश्च कौरवं ॥३८॥ ततोऽस्य विधिवच्चक्रुः पितृमेधं महात्मनः । याजका जुहुवुश्चाग्नौ जगुः सामानि सामगाः ॥ ३९ ॥ ततश्चन्दन काष्ठैश्च तथा कालीयकैरपि । कालागुरुप्रभृतिभिर्गन्धैश्चोच्चा वचैस्तथा ॥ ४० ॥ समवच्छाद्य गांगेयं संप्रज्वाल्य हुताशनं । अपसव्यमकुर्वन्त धृतराष्ट्र मुखाश्रितं ॥ ४१ ॥ संस्कृत्य च कुरुश्रेष्ठं गांगेयं कुरुसत्तमाः । जग्मुर्भागीरथीं पुण्यामृषिजुष्टां कुरूद्वहाः ॥ ४२॥ उदकं चक्रिरे सर्वे गांगेयस्य महात्मनः । विधिवत् क्षत्रियश्रेष्ठाः स च सर्वो जनस्तदा ॥ ४३ ॥

अर्थ—बुद्धिमान् धृतराष्ट्र को इतनी बात कह कर भीष्म महाबाहु कृष्ण से बोले ॥ २७ ॥ हे कृष्ण हे पुरुषोत्तम अब मुझे अनुज्ञा दीजिये, पाण्डवों के आप अवलम्बन हैं, उन की सदा रक्षा करते रहिये ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे राजर्षे! तुम पितृभक्त मानो दूसरे मार्कण्डेय हो, इस से मृत्यु आज्ञाकारी नौकर की भांति आप के वश में है ॥ २९ ॥ यह सुन भीष्म पाण्डवों से और धृतराष्ट्र आदि सारे सुहृदों से बोले ॥ ३० ॥ अब मैं प्राण छोड़ने चाहता हूं, मुझे अनुमति दीजिये, तुम सब ने सत्य में यत्नवान् रहना, सत्य असली बल है ॥ ३१ ॥ सदा दयापरायण रहना, सदा अपने आप को वश में रखना, सदा वेदप-

रायण धर्मशील और तप प्रधान रहना ॥ ३२ ॥ इतनी बात सब सुहृदों को कह कर और गले लगा कर मुहूर्त भर चुप हुआ॥३३॥ फिर उस ने यथाक्रम सारी धारणाओं में आत्मा की धारणा की, उस के निरुद्ध हुए प्राण ऊपर को चढ़े।३४।तब सारे स्रोतों से मन को रोक कर मूर्धा में पहुंचा, मूर्धा को फोड़ कर द्यौलोक को उड़ गया ॥ ३५ ॥ इस प्रकार वह भरतकुलभूषण राजसिंह शन्तनु पुत्र कालधर्म से युक्त हुए ॥ ३६ ॥ अनन्तर महात्मा पाण्डवों ने और विदुर ने काष्ठ और भांति २ के गन्ध ले कर चिता बनाई ॥ ३७ ॥ दुःखित युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र दोनों ने पट्ट वस्त्रों और मालाओं से भीष्म को ढांप दिया ॥ ३८ ॥ अनन्तर सब ने मिल कर उस महात्मा का पितृमेध (अन्त्येष्टि) किया, याजकों ने अग्नि में होम किये, सामगों ने साम गाए ॥ ३९ ॥ चन्दन, कालीयक, कालागर, और कई प्रकार के गन्धों से भीष्म को छादन कर अग्नि को प्रज्वलित कर धृतराष्ट्र आदि ने चिता की प्रदक्षिणा की ॥ ४०—४१ ॥ भीष्म का संस्कार कर के वे कुरुवर ऋषियों से सेवित पवित्र गंगा पर गए ॥४२॥ वहां सब क्षत्रियों ने यथाविधि महात्मा भीष्म का उदक कर्म किया ॥ ४३ ॥

अनुशासनपर्व समाप्त हुवा ॥

अश्वमेध पर्व १४

अ० १ (व० १–५२) कृष्ण का द्वारका गमन

मूल–कृतोदकस्तु राजानं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरः । पुरस्कृत्य महाबाहु रुत्तारा कुलेन्द्रियः ॥ १ ॥ उत्तीर्य तु महाबाहुर्बाष्प व्याकुल लोचनः । पपात तीरे गंगाया व्याधविद्ध इव द्विपः॥२॥ राजा तु धृतराष्ट्रश्च पुत्र शोकाभि पीडितः । वाक्यमाह महाबुद्धिः प्रज्ञाचक्षुर्युधिष्ठिरं ॥ ३ ॥ उत्तिष्ठ कुरुशार्दूल कुरुकार्यं मनन्तरं । शोचितव्यं न पश्यामि त्वया धर्मभृतांवर ॥ ४ ॥ शोचितव्यं मया चैव गान्धार्या च महीपते । ययोः पुत्रशतं नष्टं स्वप्नलब्धं यथा धनं ॥ ५ ॥ वासुदेव उवाच—श्रुताश्च राजधर्मास्ते भीष्माद् भागीरथी सुताव । नेमामर्हासि मूढानां वृत्ति त्वमनु वर्तितुं ॥ ६ ॥ पितृपैतामहं वृत्त मास्थाय धुरमुद्वह । न शक्यास्ते पुनर्द्रष्टुं त्वया येऽस्मिन्रणे हताः ॥ ७ ॥ व्यास उवाच–आत्मानं मन्यसे चाथ पाप कर्माण मन्ततः । शृणु तत्र यथा पापमपकृष्येत भारत ॥ ८ ॥ यज्ञेन तपसा चैव दानेन च नराधिपापूयन्ते नरशार्दूल नरा दुष्कृत कारिणः ॥ ९ ॥ यजस्व वाजिमेधेन विधिवद् दक्षिणावता । बहुकामान्नवित्तेन रामो दाशरथिर्यथा ॥ १० ॥ यु० उ० असंशयं वाजिमेधः पावयेत्पृथिवीमपि । अभिप्रयास्तु मे कश्चित् तं त्वं श्रोतु मिहार्हसि ॥ ११ ॥ इमं ज्ञातिवधं कृत्वा सुमहान्तं द्विजोत्तम । दानमल्पं न शक्नोमि दातुं वित्तं च नास्ति मे॥ १२ ॥ न तु बालानिमान् दीनानुत्सहे वसु याचितुं । तथैवार्द्र व्रणान् कृच्छ्रे वर्तमानान्नृपात्मजान् ॥ १३ ॥ स्वयं विनाश्य पृथिवीं यज्ञार्थं द्विजसत्तम । करमाहारयिष्यामि कथं शोकपरायणः ॥ १४ ॥

अर्थ-जलक्रिया कर के राजा धृतराष्ट्र को आगे कर के व्याकुल इन्द्रियों वाले महाबाहु युधिष्ठिर बाहर निकल ॥ १ ॥ बाहर निकल आंसुओं से भरे नेत्रों वाला वह महाबाहु व्याध से विन्धे हुए हाथी की भांति तट भूमि पर गिर पड़ा ॥ २ ॥ पुत्र शोक से पीड़ित महाबुद्धि प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र युधिष्ठिर से बोले ॥ ३ ॥ उठ हे कुरुसिंह अगले कार्य को करो, हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ तेरे लिए शोक का कारण नहीं देखता हूं ॥ ४ ॥ हे राजन् शोक का विषय तो मेरे लिए और गांधारी के लिए है, जिनका कि सौ पुत्र इस तरह नष्ट होगया, जैसे स्वप्न में पाया धन ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण बोले-हे राजन् आपने गंगापुत्र भीष्म से राजधर्म सुने हैं, इस समय मूढों की वृत्ति पर आप को नहीं चलना चाहिये ॥ ६ ॥ पिता पितामह के वृत्त का आश्रय ले कर राज्य भार को उठाओ, उन को अब (शोक कर के) कभी भी देख नहीं सकते हो, जो इस रण में मारे गए हैं ॥ ७ ॥ व्यास बोले-(हे राजन् ! अपने धर्म को पालते हुए अपनों के मारने में भी तुम पापी नहीं हो) पर यदि तुम अपने को पापकर्मा ही मानते हो, तब हे भारत ! सुनिये, जिस प्रकार पाप दूर हो ॥ ८ ॥ हे नरशार्दूल दुष्कर्मकारी जन यज्ञ से, तप से और दान से शुद्ध होते हैं ॥ ९ ॥ सो तुम दशरथसुत राम की भांति बड़ी दक्षिणा वाले यथेष्ट अन्न धन आदि के दान वाले अश्वमेध से यजन करो ॥ १० ॥ युधिष्ठिर बोले-निःसंदेह अश्वमेध पृथिवी को भी पवित्र कर सकता है, किन्तु मेरा एक अभिप्राय है, उस को आप सुन लीजिये ॥ ११ ॥ हे द्विजवर ! यह बहुत बड़ा ज्ञातिवध कर के अब (उस के प्रायश्चित्त में) दान थोड़ा नहीं देसकता हूं, और

धन मेरे पास है नहीं ॥ १२ ॥ और ये जो राजाओं के पुत्र दीन बाल हैं, जिन के घाव (पिता आदि की मृत्यु के घाव) अभी गीले हैं, इन से धन नहीं मांग सकता हूं ॥१३॥ हे द्विजवर स्वयं पृथिवी का नाश कर के अब कैसे शोकपरायण हुआ यज्ञ के लिए उन से कर लाउं ॥ १४ ॥

मूल—व्यास उवाच—विद्यते द्रविणं पार्थ गिरौ हिमवति स्थितं । उत्सृष्टं ब्राह्मणैर्यज्ञे मरुत्तस्य महीपते ॥ ५ ॥ तदानयस्व कौन्तेय पर्याप्तं तद् भविष्यति ॥ १६ ॥ एवं बहुविधैर्वाक्यैर्मुनिभिस्तैस्तपोधनैः । समाश्वास्यत राजर्षिर्हतबन्धुर्युधिष्ठिरः॥१७॥ ततो दत्त्वा बहुधनं विप्रेभ्यः पाण्डवर्षभः । धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विवेश गजसाह्वयं ॥ १८ ॥ स समाश्वास्य पितरं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरं । अन्वशासत धर्मात्मा पृथिवीं भ्रातृभिः सह ॥ १९ ॥ समासाद्य तु राजानं वार्ष्णेयकुरुपुंगवौ । निषीदतुरनुज्ञातौ प्रीयमाणेनतेनतौ ॥ २० ॥ अर्जुन उवाच—अयं चिरोषितो राजन् वासुदेवः प्रतापवान् । भवन्तं समनुज्ञाप्य पितरं द्रष्टुमिच्छति ॥ २१ ॥ यु० उ०–रोचते मे महाबाहो गमनं तव केशव । मातुलश्चिरदृष्टो मे त्वया देवी च देवकी ॥ २२ ॥ समेत्य मातुलं गत्वा बलदेवं च मानद । पूजयेथा महाप्राज्ञ मद्वाक्येन यथार्हतः ॥ २३ ॥ आनर्तानवलोक्य त्वं पितरं च महाभुज । वृष्णींश्च पुनरागच्छेर्हय मेधे ममानघ ॥ २४ ॥ स गच्छ रत्नान्यादाय विविधानि वसूनि च। यच्चाप्यन्यन्मनोज्ञं ते तदप्यादत्स्व सात्वत॥२५॥ इयं च वसुधा कृत्स्ना प्रसादात्तव केशव । अस्मानुपागता वीर निहताश्चापि शत्रवः ॥ २६ ॥ एवं ब्रुवति कौरव्ये धर्मराजे यु-

धिष्ठिरे । वासुदेवो वरः पुंसा मिदं वचनमब्रवीत ॥ २७ ॥ तवैव रत्नानि धनं च केवलं धरा तु कृत्स्ना तु महाभुजाद्यवै । यदस्ति चान्यद् द्रविणं गृहे मम त्वमेव तस्येश्वर नित्यमीश्वरः ॥ २८ ॥ रथे सुभद्रा मधिरोप्य भामिनीं युधिष्ठिरस्यानुमते जनार्दनः। पितृ-ष्वसुश्चापि तथा महाभुजो विनिर्ययौ राजजनाभिसंवृतः ॥ २९ ॥ तमन्वयाद् वानरवर्यकेतनः स सात्यकिर्माद्रवती सुतावपि। अगाध बुद्धिर्विदुरश्च माधवं स्वयं च भीमो गजराजविक्रमः ॥ ३० ॥ निवर्तयित्वा कुरुराष्ट्र वर्धनांस्ततः स सर्वान् विदुरं च वीर्यवान् । ततो ययौ शत्रुगणप्रमर्दनः शिनिप्रवीरानुगतो जनार्दनः ॥३१॥

अर्थ–व्यास बोले–हे युधिष्ठिर ! धन हिमालय पर्वत पर रक्खा हुआ है, जो राजा मरुत्त के यज्ञ में ब्राह्मणों ने छोड़ दिया था ॥ १५ ॥ उस को हे कौन्तेय लाओ, वह पर्याप्त होगा॥१६॥ इसी प्रकार तपोधन मुनियों ने हतबन्धु राजा युधिष्ठिर को भांति॰ के वाक्यों से धीरज बन्धाया ॥ १७ ॥ तब युधिष्ठिर ब्राह्मणों को बहुतसा धन दे कर धृतराष्ट्र को आगे कर हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुआ ॥ १८ ॥ प्रज्ञाचक्षु पिता को धीरज दे कर भाइयों समेत पृथिवी का शासन करने लगा ॥ १९ ॥ फिर कुछ दिनों के पीछे कृष्ण और अर्जुन युधिष्ठिर के पास आए, युधिष्ठिर की प्रसन्नता और आज्ञा पा कर बैठे ॥ २० ॥ तब अर्जुन बोले–हे राजन् ! प्रतापी श्रीकृष्ण यहां बहुत दिन रहे हैं, अब आप से अनुज्ञा ले कर पिता के दर्शन करना चाहते हैं ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर बोले–हे महाबाहो केशव ! आप का गमन अब उचित ही है, मेरे मामाजी को देखे और देवी देवकी को देखे आप को चिर होगया है ॥ २२ ॥ वहां जा कर मामा जी

को और बलदेव को मिल कर मेरे वचन से यथायोग्य पूजना ॥ २३ ॥ और हे महाभुज पिता जी के दर्शन कर, तथा आनर्तों और यादवों को देख कर फिर मेरे अश्वमेधपर आजाना॥२४॥ सो तुम विविध रत्न और धन ले कर जो कुछ आप को प्रिय हो, हम से भेंट ले कर चलो ॥ २५ ॥ हे केशव ! यह सारा पृथिवी आप की कृपा से हमें प्राप्त हुई है और आप की कृपा से शत्रु मारे गए हैं ॥ २६ ॥ राजा युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण बोले ॥ २७ ॥ हे महाभुज आप के ही रत्न धन और पृथिवी है, और भी जो मेरे घर में धन है, उस सब के आप ही ईश्वर हैं ॥ २८ ॥ तब युधिष्ठिर की और फूफी की अनुज्ञा ले सुभद्रा को भी रथ पर चढा कर राजपुरुषों से घिरे हुए श्रीकृष्ण बाहर निकले ॥२९॥ अर्जुन,सात्यकि और माद्रीपुत्र, अगाध बुद्धि विदुर, और महा पराक्रमी भीम उस के पीछे चले ॥ ३० ॥ तब वह शक्तिमान् कृष्ण कुरुवरों और विदुर को लौटा कर यादव वीरों से घिरा हुआ द्वारका को गया ॥ ३१ ॥

अ०२ (व० ६३-७१) परीक्षित का जन्म

मूल--कृत्वा तु पाण्डवाः सर्वे रत्नाहरणनिश्चयं । सेनामाज्ञापयामासुः प्रययुर्मुदिता भृशं ॥ १ ॥ सरांसि सरितश्चैव वनान्युपवनानि च । अत्यक्रामन्महाराजो गिरिं चाप्यन्वपद्यत ॥२॥ तस्मिन् देशे च राजेन्द्र यत्र तद् द्रव्य मुत्तमं।चक्रे निवेशनं राजा पाण्डवः सह सैनिकैः ॥ ३ ॥ प्रीतिमान् स कुरुश्रेष्ठः खानयामास तद्धनं ॥ ४ ॥ ततः पात्रीः सकरका बहुरूपा मनोरमाः । भृंगाराणि कटाहानि कलशान् वर्धमानकान् ॥ ५ ॥ बहूनि च विचित्राणि भाजनानि सहस्रशः । उद्धारयामास तदा धर्मराजो

युधिष्ठिरः ॥ ६ ॥ सा पुराभिमुखा राजन्नुवाह महतीचमूः । कृ-
च्छ्राद् द्रविणभारार्ता हर्षयन्ती कुरूद्वहान् ॥७॥ एतस्मिन्नेव काले
तु वासुदेवोपि वीर्यवान् । उपायाद् वृष्णिभिः सार्धं पुरं वारण
साह्वयं ॥ ८ ॥ समयं वाजिमेधस्य विदित्वा पुरुषर्षभः । बलदेवं
पुरस्कृत्य सुभद्रासहितस्तदा ॥ ९ ॥ वसत्सु वृष्णिवीरेषु तत्राथ
जनमेजय । जज्ञे तव पिता राजन् परीक्षित परवीरहा ॥ १० ॥
स तु राजा महाराज ब्रह्मास्त्रेणावपीडितः । शवो बभूव निश्चेष्टो
हर्षशोकविवर्धनः । ततः सोऽतित्वरः कृष्णो विवेशान्तः पुरं तदा
॥ ११ ॥ ततस्त्वरितमायान्तीं ददर्श स्वां पितृष्वसां । क्रोशन्ती
मभिधावेति वासुदेवं पुनः पुनः ॥ १२ ॥ ततः स प्राविशत् तूर्णं
जन्मवेश्म पितुस्तव । अर्चितं पुरुषव्याघ्र सितैर्माल्यैर्यथाविधि॥१३॥
द्रौपदी त्वरितं गत्वा वैराटिं वाक्य मब्रवीत् । अयमायाति ते भद्रे
श्वशुरो मधुसूदनः ॥ १४ ॥ सापि बाष्पकलां वाचं निगृह्याश्रूणि
चैव ह । दृष्ट्वा गोविन्द मायान्तं कृपणं पर्यदेवयत् ॥ १५ ॥ आ-
सीन्मम मतिः कृष्ण पूर्णोत्संगा जनार्दन । अभिवादयिष्ये त्वां
कृष्ण तदिदं वितथीकृतं ॥ १६ ॥ सैवं विलप्य करुणं सोन्मा-
देव तपस्विनी । उत्तराभ्यपतद् भूमौ कृपणा पुत्रगृद्धिनी ॥१७॥
तां तु दृष्ट्वा निपतितां हतपुत्र परिच्छदां । चुक्रोश कुन्ती दुःखा-
र्ता सर्वाश्च भरतस्त्रियः ॥ १८ ॥ प्रतिलभ्य तु सा संज्ञा मुत्तरा
भरतर्षभ । अंकमारोप्य तं पुत्र मिदं वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ धर्म-
ज्ञस्य सुतः सन्त्वमधर्मं नावबुध्यसे । यस्त्वं वृष्णिप्रवीरस्य कुरुषे-
नाभिवादनं ॥ २० ॥ श्रुत्वा स तस्या विपुलं विलापं पुरुषर्षभः।
उपस्पृश्य ततः कृष्णो ब्रह्मास्त्रं प्रत्यसंहरत् ॥ २१ ॥ पस्पर्श
पुण्डरीकाक्ष आपादतलमस्तकं । शनैः शनैर्महाराज प्रास्पन्दत स
चेतनः ॥ २२ ॥

अर्थ—अब पाण्डव सारे रत्नों के लाने का निश्चय करके सेना को आज्ञा देते भये, और प्रसन्न हो कर स्वयं गए ॥ १ ॥ सरोवर, नदी, वन, उपवनों को लांघ कर महाराज पर्वत पर, उस स्थान में जा पहुंचे, जहां वह उत्तम धन दबा पड़ा था, राजा युधिष्ठिर ने सैनिकों समेत वहां छावनी डाली ॥ २–३ ॥ प्रसन्न हो कर राजा ने उस धन को खुदवाया ॥४॥ तब अनेक प्रकार की मनोरम पात्रियें, करक, भृंगार, कटाह, कलश, वर्धमानक, ऐसे ही और सहस्रों विचित्र भाजन धर्मराज युधिष्ठिर ने निकलवाये ॥ ५—६ ॥ वह बड़ी सेना हे राजन् पाण्डवों को हर्षित करती हुई, धन भार से पीडित हुई बड़ी कठिनाई से लौटी॥७॥ इसी समय अश्वमेध का समय जान कर श्रीकृष्ण भी बलदेव और सुभद्रा को आगे कर के हस्तिनापुर आ पहुंचे ॥ ८–९ ॥ हे जनमेजय ! यादव वीरों के वहां रहते हुए, शत्रुवीरों के मारने वाले आप के पिता परीक्षित् का जन्म हुआ ॥ १० ॥ हे महाराज ! ब्रह्मास्त्र से पीड़ित हुआ वह बाल मुर्दे का सा निश्चेष्ट हो गया, * जिस से हर्ष और शोक दोनों इकट्ठे हुए. उसी समय कृष्ण शीघ्रता से अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए ॥ ११ ॥ आगे से शीघ्रता से आती अपनी फूफी को देखा, जो कृष्ण को बार २ 'जल्दी दौड़ो' कह कर पुकारने लगी ॥१२॥ तब वह आप के पिता के जन्मगृह में प्रविष्ट हुए, जो कि श्वेत मालाओं से यथा विधि सजा हुआ था ॥ १३ ॥ द्रौपदी ने झट जा कर उत्तरा को कहा, हे भद्रे यह तेरे श्वशुर कृष्ण जी आए हैं ॥ १४ ॥ वह

---

*यह उस ब्रह्मास्त्र का प्रभाव बतलाया गया है, जो अश्वत्थामा ने चलाया था, यह सम्भव है वा नहीं, यह बुद्धिमान् स्वयं विचारें।

आते कृष्ण को देख कर आंसुओं को रोक कर गद्गद वाणी से विलाप करने लगी ॥ १५ ॥ हे कृष्ण मेरा विचार था गोदी में बालक को ले कर तुझे अभिवादन कराउंगी, वह मेरा मनोरथ झूठा होगया है ॥ १६ ॥ इस प्रकार करुण विलाप कर के पुत्र की अभिलाषा वाली दीन हुई उत्तरा बेचारी उन्मत्ता की भांति भूमि पर गिर पड़ी ॥ १७॥ मरे पुत्र वाली उत्तरा को इस प्रकार गिरी देख कर दुःख से पीड़ित हुई सभी भरतनारियें रोने लगीं ॥ १८ ॥ हे भरतवर ! उत्तरा होश में आ कर उस बेटे को गोदी में ले कर यह वचन बोली ॥ १९ ॥ धर्मज्ञ का पुत्र हो कर तू इस अधर्म को क्या नहीं जानता है, जो तू यादववीर को अभिवादन नहीं करता है ॥ २० ॥ उस के विपुल विलाप को सुन कर कृष्ण ने उस को हाथ से छूकर ब्रह्मास्त्र का प्रतिसंहार किया ॥ २१ ॥ कृष्ण ने पादतल से ले कर मस्तक पर्यन्त सारे अंगों को स्पर्श किया, तब धीरे २ हे महाराज वह बाल सचेतन हो कर हिलने लगा ॥ २२ ॥

मूल–ब्रह्मास्त्रं तु यदा राजन् कृष्णेन प्रतिसंहृतं । तदा तद्वेश्म ते पित्रा तेजसाभिविदीपितं ॥ २३ ॥ बभूवुर्मुदिता राजंस्ततस्ता भरतस्त्रियः । ब्राह्मणान् वाचयामासुर्गोविन्दस्यैव शासनात ॥ २४ ॥ ततस्ता मुदिताः सर्वाः प्रशशंसुर्जनार्दनं । स्त्रियो भरतसिंहानां नावं लब्ध्वेव पारगाः॥ २५ ॥ उत्थाय तु यथाकाल मुत्तरा यदुनन्दनं । अभ्यवादयत प्रीता सह पुत्रेण भारत ॥ २६ ॥ ततस्तस्यै ददौ प्रीतो बहुरत्नं विशेषतः । तथैव वृष्णिशार्दूलो नाम चास्या करोत प्रभुः ॥ २७ ॥ परिक्षीणे कुले यस्माज्जातोऽयम-

भिमन्युजः । परिक्षिदिति नामास्य भवत्वित्य ब्रवीत्तदा ॥ २८ ॥ मासजातस्तु ते वीर पिता भवति भारत । अथाजग्मुः सुबहुलं रत्नमादाय पाण्डवाः ॥ २९ ॥ तान् समीपगताञ्श्रुत्वा निर्ययुर्वृष्णि पुंगवाः । अलंचक्रुश्च माल्यौघैर्नगरं नागसाह्वयं ॥३०॥ पताकाभिर्विचित्राभिर्ध्वजैश्च विविधैरपि । वेश्मानि समलंचक्रुः पौराश्चापि जनेश्वर ॥ ३१ ॥ राजमार्गाश्च तत्रासन् सुमनोभिरलंकृताः ॥ ३२ ॥ ते समेत्य यथाधर्मं पाण्डवा वृष्णिभिः सह । विविशुः सहिता राजन् पुरं वारणसाह्वयं ॥ ३३ ॥ ते समेत्य यथान्यायं धृतराष्ट्रं जनाधिप । कीर्तयन्तः स्वनामानि तस्य पादौ ववन्दिरे ॥ ३४ ॥ धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञाता गान्धारीं सुबलात्मजां । कुन्तीं च राजशार्दूल तदा भरतसत्तम ॥ ३५ ॥ विदुरं पूजयित्वा तु वैश्यापुत्रं समेत्यच । शुश्रुवुस्ते तदा वीराः पितुस्ते जन्म भारत ॥३६॥ तदुपश्रुत्य तत्कर्म वासुदेवस्य धीमतः । पूजार्हं पूजयामासुः कृष्णं देवकीनन्दनं ॥ ३७॥ ततः कतिपयाहस्य व्यासः सत्यवती सुतः। आजगाम महातेजा नगरं नागसाह्वयं ॥ ३८ ॥ तस्य सर्वे यथान्यायं पूजां चक्रुः कुरूद्वहाः। सह वृष्ण्यन्धक व्याघ्रैरुपासां चक्रिरे तदा ॥ ३९ ॥ यु० उ० भवत्प्रसादाद् भगवन् यदिदं रत्नमाहृतं। उपयोक्तुं तदिच्छामि वाजिमेधे महाक्रतौ ॥ ४० ॥ व्या० उ० अनुजानामि राजंस्त्वां क्रियतां यदनन्तरं । यजस्व वाजिमेधेन विधिवद् दक्षिणावता ॥ ४१ ॥ इत्युक्तः स तु धर्मात्मा कुरुराजो युधिष्ठिरः । वासुदेव मथाभ्येत्य वाग्मी वचन मब्रवीत् ॥ ४२ ॥ देवकी सुप्रजा देवी त्वया पुरुषसत्तम । यद् ब्रूयां त्वां महाबाहो तत्कुथास्त्वमिहाच्युत ॥ ४३ ॥ पराक्रमेण बुद्धया च त्वयेयं नि-

जिता मही । दीक्षयस्व त्वमात्मानं त्वं हि नः परमोगुरुः ॥ ४४ ॥
वा० उ० त्वमेवै तन्महाबाहो कर्तुमर्हस्यरिन्दम । गुणीभूताः स्म ते राजंस्त्वं नो राजन् गुरुर्मतः ॥ ४५ ॥ यजस्व मदनुज्ञातः प्राप्य एष क्रतुस्त्वया । युनक्तु नो भवान् कार्ये यत्र वाञ्छसि भारत ४६

अर्थ—हे राजन् जब श्रीकृष्ण ने ब्रह्मास्त्र का प्रतिसंहार कर दिया, तब वह मन्दिर आप के पिता के तेज से प्रकाशवान् होगया ॥ २३ ॥ तब सब भरतनारियें प्रसन्न हुई, और कृष्ण की आज्ञा से ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाया ॥ २४॥ पार जाने वाले जिस प्रकार नौका को पाकर, इस प्रकार प्रसन्न हुई वे भरतसिंहों की स्त्रियें कृष्ण की प्रशंसा करती भई ॥ २५ ॥ उत्तरा ने यथा समय पुत्र सहित उठ कर श्रीकृष्ण को अभिवादन किया ॥ २६ ॥ यादववर ने प्रसन्न हो कर उस को बहुत से रत्न दिये, और इस का नामकरण किया ॥ २७ ॥ श्रीकृष्ण ने कहा, कि कुल के क्षीण होने पर यतः यह अभिमन्युपुत्र उत्पन्न हुआ है, इस लिए इस का नाम परीक्षित हो ॥ २८ ॥ हे वीर जब आप का पिता महीने का हो गया, तब बहुत से रत्न ले कर पाण्डव आ गए ॥ २९ ॥ उन को निकट आये सुन कर यादववर उन को लेने के लिए आगे गए, और मालाओं से पुर को सजाया ॥ ३० ॥ पुरवासियों ने भी भांति २ के झंडे झंडियों से अपने २ घर सजाए, और सुन्दर फूलों से राजमार्ग सजाए गए ॥ ३१—३२ ॥ पाण्डव यथायोग्य यादवों के साथ मिल कर हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुए॥३३॥फिर उन्होंने यथाविधि धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित हो कर अपने २ नाम कह कर उस के पादवन्दन किये ॥ ३४ ॥ धृतराष्ट्र से अनुज्ञा ले कर

गान्धारी कुन्ती और विदुर की पूजा की, फिर युयुत्सु से मिले। और हे भारत तब उन वीरों ने आप के पिता का जन्म सुना ॥ ३५–३६॥ बुद्धिमान् कृष्ण के कार्य को सुन कर उस पूजार्ह की पूजा की ॥ ३७ ॥ तब कुछ दिनों के पीछे सत्यवतीपुत्र व्यास हस्तिनापुर में आए ॥ ३८ ॥ सब कौरवों ने उन की पूजा की और यादववीरों समेत उन की सेवा में बैठे ॥ ३९ ॥ युधिष्ठिर बोले–हे भगवन्! आप की कृपा से यह जो रत्नसमूह लाया हूं, अब इस को महायज्ञ अश्वमेध में लगाना चाहता हूं ॥ ४० ॥ व्यास बोले–हे राजन् तुझे अनुज्ञा देता हूं, अब अगला कार्य करो, दक्षिणायुक्त अश्वमेध से यथाविधि यजन करो ॥ ४१ ॥ कुरुराज धर्मात्मा युधिष्ठिर यह सुन कर कृष्ण के पास आ कर यह मधुर वचन बोले ॥ ४२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! देवकी आप से सपुत्रा है, हे महाबाहो, जो कुछ मैं आप को कहता हूं, उसे कीजिये ॥ ४३ ॥ आपने ही पराक्रम और बुद्धि से यह भूमि जीती है, सो आप यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करें,आप ही हमारे परमगुरु हैं ॥ ४४ ॥ श्रीकृष्ण बोले–हे महाबाहो!आप ही यह करने योग्य हैं, हे राजन् हम आप के आज्ञाकारी हैं,आप हमारे गुरु हैं॥४५॥ मेरी अनुमति है, यजन कीजिये, यह यज्ञ आप को प्राप्त हुआ है। हे भारत ! आप जिस कार्य में चाहते हैं, हमें लगाइये,सत्य प्रतिज्ञा करता हूं ॥ ४६ ॥

अ० ३ (व० ७२-) अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ

मूल–एवमुक्तस्तु कृष्णेन धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । व्यासमामन्त्र्य मेधावी ततो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ यदा कालं भवान् वेत्ति

हयमेधस्य तत्त्वतः । दीक्षयस्व तदा मां त्वं त्वय्यायत्तो हि मे क्रतुः ॥ २ व्यास उवाच—अहं पैलोथ कौन्तेय याज्ञवल्क्यस्तथैव च । विधानं यद्यथाकालं तत्कर्तारो न संशयः ॥ ३ ॥ चैत्र्यां हि पौर्णमास्यां तु तव दीक्षा भविष्यति । संभाराः संभ्रियन्तां च यज्ञार्थं पुरुषर्षभ ॥ ४ ॥ अश्वविद्याविदश्चैव सूता विप्राश्च तद्विदः । मेध्यमश्वं परीक्षन्तां तव यज्ञार्थं सिद्धये ॥ ५ ॥ तमुत्सृज्य यथाशास्त्रं पृथिवीं सागराम्बरां । स पर्येतु यशो दीप्तं तव पार्थिव दर्शयन् ॥ ६ ॥ इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा पाण्डवः पृथिवीपतिः । चकार सर्वं राजेन्द्र यथोक्तं ब्रह्मवादिना ॥ ७ ॥ स संभारान् समाहृत्य नृपो धर्मसुतस्तदा । न्यवेदयदमेयात्मा कृष्णद्वैपायनाय वै ॥ ८ ॥ ततोऽब्रवीन्महातेजा व्यासो धर्मात्मजं नृपं । यथाकालं यथायोगं सज्जाः स्म तव दीक्षणे ॥ ९ ॥ अश्वश्चोत्सृज्यतामद्य पृथ्व्यामथ यथाक्रमं । सुगुप्तं चरतां चापि यथा शास्त्रं यथाविधि ॥ १० ॥ जिष्णुः सहिष्णुर्धृष्णुश्च स एनं पालयिष्यति । शक्तः स हि महीं जेतुं निवातकवचान्तकः॥ ११ ॥ तत्तु सर्वं यथान्याय मुक्तः कुरुकुलोद्वहः । चकार फाल्गुनं चापि संदिदेश हयं प्रति ॥ १२ ॥ एह्यर्जुन त्वया वीर हयोऽयं परिपाल्यतां । त्वमर्हो रक्षितुं ह्येनं नान्यः कश्चन मानवः ॥ १३ ॥ ये चापि त्वां महाबाहो प्रत्युद्यान्ति नराधिपाः । तैर्विग्रहो यथा न स्यात्तथा कार्यं त्वयाऽनघ ॥ १४ ॥ आख्यातव्यश्च भवता यज्ञोऽयं मम सर्वशः । पार्थिवेभ्यो महाबाहो समये गम्यतामिति ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा स धर्मात्मा भ्रातरं सव्यसाचिनं । भीमं च नकुलं चैव पुरगुप्तौ समादधत ॥ १६ ॥ कुटुम्बतन्त्रे च तदा सहदेवं युधांपतिं । अनुमान्य महीपालं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥

अर्थ-श्रीकृष्ण के इस वचन को सुन कर मेधावी युधिष्ठिर व्यास को सम्बोधित कर यह वचन बोले ॥ १ ॥ अश्वमेध का जो समय आप ठीक २ जानें उस समय मुझे दीक्षा दें, मेरा यज्ञ आप के अधीन है ॥ २ ॥ व्यास बोले-हे कौन्तेय मैं स्वयं तथा पैल और याज्ञवल्क्य हम तीनों मिल कर जिस समय जो कर्तव्य होगा, उस का निश्चय करते रहेंगे, संशय नहीं ॥३॥ चैत्र की पौर्णमासी के दिन आप दीक्षित होंगे, इस लिए हे पुरुष वर यज्ञ के अर्थ सामग्री तय्यार करो ॥ ४ ॥ अश्वविद्या के जानने वाले सूत और ब्राह्मण आप की यज्ञसिद्धि के लिए यज्ञिय अश्व की परीक्षा करें ॥ ५ ॥ उस अश्व को शास्त्रविधि के अनुसार छोड़ें, वह आप के प्रचण्ड यश को प्रकट करता हुआ सागराम्बरा पृथिवी पर घूमे ॥ ६ ॥ यह सुन 'तथास्तु' कह कर राजा युधिष्ठिर ने सब तय्यार करवा दिया, जैसा कि ब्रह्मवादी ने आज्ञा दी थी ॥ ७ ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने सारी सामग्री इकठ्ठी कर के कृष्ण द्वैपायन से सब निवेदन किया ॥ ८ ॥ तब तेजस्वी व्यास राजा युधिष्ठिर से बोले, समय और योग के अनुसार हम अब तुम्हारी दीक्षा के लिए तय्यार हैं ॥ ९ ॥ आज ही यथाक्रम पृथिवी पर अश्व का खुला छोड़ दीजिये, जो शास्त्रविधि के अनुसार सुरक्षित हो कर खुला फिरे ॥ १० ॥ शत्रुओं के सहने वाला और दबाने वाला अर्जुन इस की रक्षा करेगा, वह निवातकवचों का जीतने वाला सारी पृथिवी को जीतने की शक्ति रखता है ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर ने वह सब यथाविधि पूरा किया, और अश्व के विषय में अर्जुन को यह आदेश दिया॥१२॥ आओ हे अर्जुन तुम इस अश्व की रक्षा करो, तुम ही इस की

रक्षा करने के योग्य हो, और कोई नहीं ॥ १३ ॥ हे महाबाहो जो राजे तुम्हारा प्रत्युद्गमन (आगे बढ़ कर स्वीकार करना इसतकबाल) करें, उन के साथ जिस प्रकार युद्ध न हो, वैसे करना ॥ १४ ॥ और मेरे इस यज्ञ की सर्वत्र घोषणा देनी, राजाओं को कहते जाना, कि वे समय पर यहां पहुंच जाएं ॥१५ ॥ अर्जुन को ऐसे कह कर युधिष्ठिर ने राजा धृतराष्ट्र की अनुमति से भीम और नकुल को पुर रक्षा के काम में, और युधपति सहदेव को कुटुम्ब तन्त्र में नियुक्त किया ॥ १६–१७ ॥

अ० ४ (व० ७३-८७) अश्व का पृथिवी भ्रमण

मूल—दीक्षाकाले तु संप्राप्ते ततस्ते सुमहर्त्विजः। विधिवद् दीक्षयामासुरश्वमेधाय पार्थिवं ॥ १ ॥ हयश्च हयमेधार्थं स्वयं स ब्रह्मवादिना । उत्सृष्टः शास्त्रविधिना व्यासेनामिततेजसा ॥ २ ॥ स राजा धर्मराड् राजन् दीक्षितो विबभौ तदा । हेममाली रुक्मकण्ठः प्रदीप्त इव पावकः ॥ ३ ॥ कृष्णाजिनी दण्डपाणिः क्षौमवासाः स धर्मजः । विबभौ द्युतिमान् भूयः प्रजापति रिवाध्वरे॥४॥ तथैवास्यर्त्विजः सर्वे तुल्यवेषा विशांपते । बभूवुरर्जुनश्चापि प्रदीप्त इव पावकः ॥५॥ श्वेताश्वः कृष्णसारं तं ससाराश्वं धनञ्जयः॥६॥ आकुमारं तदा राजन्नागमत् तत्पुरं विभो । द्रष्टुकामं कुरुश्रेष्ठं प्रयास्यन्तं धनञ्जयं ॥ ७ ॥ ततः शब्दो महाराज दिशः खं प्रति पूरयन् । बभूव प्रेक्षतां नृणां कुन्तीपुत्रं धनञ्जयं ॥ ८ ॥ स्वस्ति तेऽस्तु व्रजारिष्टं पुनश्चैहीति भारत ॥ ९ ॥ ब्राह्मणाश्च महीपाल बहवो वेदपारगाः । अनुजग्मुर्महात्मानं क्षत्रियाश्च विशांपते॥१०॥

पाण्डवैः पृथिवी मश्वो निर्जितामस्त्रतेजसा । चचार स महाराज यथादेशं च सत्तम ॥ ११ ॥ अवमृद्नन् स राष्ट्राणि पार्थिवानां हयोत्तमः । शनैस्तदा परिययौ श्वेताश्वश्च महारथः ॥ १२ ॥ किराता यवना राजन् बहवोऽसिधनुर्धराः । म्लेच्छाश्चान्ये बहुविधाः पूर्वं ये निकृता रणे ॥ १३ ॥ आर्याश्च पृथिवीपालाः प्रहृष्टनरवाहनाः । समीयुः पाण्डुपुत्रेण बहवो युद्धदुर्मदाः॥१४॥ एवं वृत्तानि युद्धानि तत्र तत्र महीपते । अर्जुनस्य महीपालैर्नानादेशसमागतैः ॥ १५ ॥

अर्थ—दीक्षा का समय उपस्थित होने पर उन महाऋत्विजों ने अश्वमेध के लिए राजा को यथाविधि दीक्षित किया ॥ १ ॥अमित तेजस्वी ब्रह्मवादी स्वयं व्यास ने शास्त्र और विधि के अनुसार अश्वमेध के लिए वह घोड़ा छोड़ा ॥ २ ॥ धर्मराज युधिष्ठिर दीक्षित होकर गले में सुवर्ण की माला और कण्ठा पहर के उस समय प्रदीप्त अग्नि की भांति प्रकाशित होने लगे ॥ ३ ॥ कृष्ण मृग की छाल धारे हाथ में दण्ड लिए रेशमी वस्त्र पहने हुए वह धर्मपुत्र यज्ञ में प्रजापति की भांति अधिक शोभा वाले हो गए ॥ ४ ॥ उन के ऋत्विज् भी सभी तुल्य वेश वाले शोभायमान हुए । अर्जुन भी (रक्षा के लिए) प्रदीप्त अग्नि की भांति चमक उठा ॥ ५ ॥ श्वेत घोड़ों वाले अर्जुन उस श्यामल कर्णों वाले अश्व के पीछे चले॥ ६ ॥ रक्षा के लिए चढाई करते अर्जुन को देखने के लिए वह सारा पुर बच्चों तक वहां आगया ॥ ७ ॥ तब कुन्तीपुत्र अर्जुन को देखते हुए पुरुषों का शब्द दिशाओं में और आकाश में गूंजने लगा ॥ ८ ॥ उन लोगों ने

कहा-तेरा मंगल हो, निर्विघ्न जाओ, फिर आओ ॥९॥ हे राजन्! बहुत से वेद पारग ब्राह्मण, और योधा क्षत्रिय अर्जुन के साथ गए ॥ १० ॥ पाण्डवों के अस्त्र तेज से जीती हुई पृथिवी पर वह घोड़ा क्रम से घूमने लगा॥ ११ ॥ वह उत्तम घोड़ा राजाओं के राष्ट्रों को मर्दन करता हुआ धीरे २ दूर बढ़ता गया उस के साथ महारथी अर्जुन ॥ १२ ॥ हे राजन् ! तलवार और धनुष के धनी बहुत से किरात और यवन और भी स्थान २ के म्लेच्छ जो रण में पहले हार खाचुके हुए थे, और प्रसन्न वीरों और वाहनों वाले रणबांकुरे कई आर्यराजे भी पाण्डुपुत्र से भिड़े ॥१४॥ हे राजन् ! इस प्रकार वहां २ सामने आए राजाओं के साथ अर्जुन के युद्ध हुए ॥ १५ ॥

मूल—तं निवृत्तं तु शुश्राव चारेणैव युधिष्ठिरः । प्रोवाचेदं वचः काले भीमं प्रहरतां वरं॥ १६ ॥ आयाति भीमसेनासौ सहाश्वेन तवानुजः । तत्प्रस्थाप्यन्तु विद्वांसो ब्राह्मणा वेदपारगाः । वाजिमेधार्थ सिध्यर्थं देशं पश्यन्तु याज्ञियं । इत्युक्तः स तु तच्चक्रे भीमो नृपतिशासनं ॥ १७–१८ ॥ ततः कृत्वा स्थपतयः शिल्पिनोऽन्ये च ये तदा । कृत्स्नं यज्ञविधिं राजन् धर्मराजं न्यवेदयन् ॥ १९ ॥ ददृशुस्तं नृपतयो यज्ञस्य विधिमुत्तमं । देवेन्द्रस्येव विहितं भीमसेनेन भारत ॥ २० ॥ ददृशुस्तोरणान्यत्र शातकुम्भ मयानि ते । शय्यासनविहारांश्च सुबहून् रत्नसंचयान् ॥ २१ ॥ घटान् पात्रीः कटाहानि कलशान् वर्धमानकान् । नाहि किञ्चिद सौवर्ण मपश्यन् वसुधाधिपाः ॥ २२ ॥ एवं प्रमुदितं सर्वं पशुगोधनधान्यतः । यज्ञवाटं नृपा दृष्ट्वा परं विस्मय मागताः ॥ २३ ॥

ब्राह्मणानां विशांचैव बहुमृष्टान्न मृद्धिवत । दुन्दुभिर्मेघनिर्घोषो मुहुर्मुहुरताड्यत ॥ २४ ॥ जम्बूद्वीपो हि सकलो नाना जनपदायुतः । राजन्नदृश्यतैकस्थो राज्ञस्तस्य महामखे ॥ २५ ॥ तेषां कथयतामेव पुरुषोऽर्जुन संकथाः । उपायाद् वचनाद् दूतो विजयस्य महात्मनः ॥ २६ ॥ सोऽभिगम्य कुरुश्रेष्ठं नमस्कृत्य च बुद्धिमान् । उपायातं नरव्याघ्रं फल्गुनं प्रत्यवेदयत् ॥ २७ ॥ तच्छ्रुत्वा नृपतिस्तस्य हर्षबाष्पाकुलेक्षणः । प्रियाख्यान निमित्तं वै ददौ बहुधनं तदा ॥ २८ ॥ ततो द्वितीये दिवसे महाञ्शब्दो व्यवर्धत । आगच्छति नरव्याघ्रे कौरवाणां धुरन्धरे ॥ २९ ॥ तत्र हर्षकरीर्वाचो नराणां शुश्रुवेऽर्जुनः । दिष्ट्या स पार्थः कुशली धन्यो राजा युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥ कोऽन्यो हि पृथिवीं कृत्स्नां जित्वा हि युधि पार्थिवान् । चारयित्वा हयश्रेष्ठ मुपागच्छेदृतेऽर्जुनात ॥ ३१ ॥ ये व्यतीता महात्मानो राजानः सगरादयः । तेषामपीदृशं कर्म न कदाचन शुश्रुम ॥ ३२ ॥ इत्येवं वदतां तेषां पुंसां कर्ण सुखा गिरः। शृण्वन् विवेश धर्मात्मा फाल्गुनो यज्ञ संस्तरं ॥ ३३ ॥ ततो राजा सहामात्यः कृष्णश्च यदुनन्दनः । धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य तं प्रत्युद्ययतुस्तदा ॥ ३४ ॥ सोऽभिवाद्य पितुः पादौ धर्मराजस्य धीमतः । भीमादींश्चापि संपूज्य पर्यष्वजत केशवं ॥ ३५ ॥ तैः समेत्यार्चितस्तांश्च प्रत्यचर्याथ यथाविधि । विशश्राम महाबाहुस्तीरं लब्ध्वेव पारगः ॥ ३६ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर ने गुप्तचर द्वारा जब अर्जुन का लौटना सुना, तो समय पर वीरवर भीम से यह वचन कहा ॥ १६ ॥ हे भीमसेन तेरा छोटा भाई घोड़े समेत आ रहा है, सो अब वेदपारग ब्राह्मणों को भेजिये, कि अश्वमेध की कार्यसिद्धि के लिए

यज्ञस्थान तय्यार कर वाएं, यह सुन कर भीम ने राजा की आज्ञा को पूर्ण कर दिया ॥ १७—१८ ॥ इञ्जनीयर और दूसरे शिल्पियों ने संपूर्ण यज्ञविधान तय्यार कर धर्मराज से निवेदन किया ॥ १९ ॥ राजाओं ने भीमसेन से तय्यार करवाए यज्ञ के उस उत्तम विधान को देखा, जो मानो इन्द्र के यज्ञ के समान था ॥ २० ॥ वहां उन्होंने सोने के तोरण शय्या आसन विहार और बहुत से रत्नसंचय देखे ॥ २१ ॥ घड़े, पात्रियें, कड़ाहे, कलश, वर्धमानक, इत्यादि वहां कुछ भी न सोने का नहीं दीखता था ॥ २२ ॥ इस प्रकार गौओं और दूसरे पशुओं और धन धान्य से भरे यज्ञवाट को देख कर सब राजे परम विस्मय को प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ वह यज्ञवाट ब्राह्मणों और दूसरी प्रजाओं के लिए बहुत स्वच्छ अन्नों से पूर्ण था। वहां मेघ की सी ध्वनि वाली दुन्दुभि बार २ बजाई जाती थी ॥ २४ ॥ हे राजन्! उस राजा के महायज्ञ में नाना देशों से युक्त सारा जम्बूद्वीप एक स्थान में स्थित दीखता था ॥ २५ ॥ उन राजाओं के अर्जुन सम्बन्धी कथाएं कहते हुए, महात्मा अर्जुन की आज्ञा से दूत आ पहुंचा ॥ २६ ॥ बुद्धिमान् दूत ने युधिष्ठिर के निकट जा नमस्कार करके अर्जुन का निकट आ पहुंचना निवेदन किया ॥२७॥ उस के इस वचन को सुन कर हर्ष की आंसुओं से भरे नेत्रों वाले राजा ने उस को इस प्रिय सुनाने के निमित्त बहुतसा धन दिया ॥ २८ ॥ तब दूसरे दिन नरवर कौरवधुरन्धर के आने के समय बड़ा शब्द हुआ, वहां अर्जुन ने प्रसन्नता देने वाली लोगों की वाणियें सुनीं, भाग्य से अर्जुन कुशली है, धन्य राजा युधिष्ठिर

है ॥ २९-३० ॥ अर्जुन के बिना कौन ऐसा है, जो अश्ववर को सारे फिरा कर युद्ध में सारी पृथिवी को जीत कर आए ॥ ३१ ॥ जो महात्मा सगर आदि राजे होचुके हैं, उन का भी ऐसा कर्म हमने कभी नहीं सुना है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार कहते हुए उन पुरुषों के कर्ण सुखदायक वचन सुनता हुआ धर्मात्मा अर्जुन यज्ञसंस्तर में प्रविष्ट हुआ ॥ ३३ ॥ तब मन्त्रियों समेत युधिष्ठिर और यदुनन्दन कृष्ण धृतराष्ट्र को आगे कर के अर्जुन को लेने गए ॥ ३४ ॥ उसने पहले धृतराष्ट्र को प्रणाम किया, फिर युधिष्ठिर के चरण छुए, और भीम आदि का पूजन कर के कृष्ण को गले लगाया ॥ ३५ ॥ उन के साथ मिल उन से पूजित हुए अर्जुन ने यथाविधि उन की पूजा कर के किनारे पर पहुंच कर पार जाने वाले की भांति विश्राम किया ॥ ३६ ॥

अ० ५ (व० ८८-८९) यज्ञ कार्य

मूल—ततस्तृतीये दिवसे सत्यवत्यात्मजो मुनिः । युधिष्ठिरं समभ्येत्य वाग्मी वचन मब्रवीत् ॥ १ ॥ अद्यप्रभृति कौन्तेय यजस्व समयोहि ते । मुहूर्तो याज्ञियः प्राप्तश्चोदयन्तीह याजकाः ॥ २ ॥ अहीनो नाम राजेन्द्र क्रतुस्तेऽयं च कल्पतां । बहुत्वात् काञ्चनाख्यस्य ख्यातो बहुसुवर्णकः ॥ ३ ॥ ततो यज्ञं महाबाहु-र्वाजिमेधं महाक्रतुं । बह्वन्नदक्षिणं राजा सर्वकामगुणान्वितं ॥४॥ तत्र वेदविदो राजंश्चक्रुः कर्माणि याजकाः । परिक्रमन्तः सर्वज्ञा विधिवत्साधु शिक्षितं ॥ ५ ॥ न तेषां स्खलितं किञ्चिदासीच्चा-प्यकृतं तथा । क्रमयुक्तं च युक्तं च चक्रुस्तत्र द्विजर्षभाः ॥६॥ अभिषूय ततो राजन् सोमं सोमपसत्तमाः । सवनान्यानुपूर्व्येण

चक्रुः शास्त्रानुसारिणः ॥ ७ ॥ तत्र कृपणः कश्चिन्न दरिद्रो बभूव ह । क्षुधितो दुःखितो वापि प्राकृतो वापि मानवः ॥ ८ ॥ भोजनं भोजनार्थिभ्यो दापयामास शत्रुहा । भीमसेनो महातेजाः सततं राजशासनात्॥ ९ ॥ ततो यूपोच्छ्रये प्राप्ते षड्बैल्वान् भरतर्षभ । खादिरान् बिल्वसमितांस्तावतः सर्ववर्णिनः ॥ १०॥ देवदारुमयौ द्वौ तु यूपौ कुरुपतेर्मखे । श्लेष्मातकमयं चैकं याजकाः समकल्पयन् ॥ ११ ॥ इष्टिकाः काञ्चनीश्चात्र चयनार्थं कृताभवन् । शुशुभे चयनं तत्र दक्षस्येव प्रजापतेः ॥ १२ ॥ चतुश्चित्यस्य तस्यासीदष्टादश करात्मकः । स रुक्मपक्षो निचितस्त्रिकोणो गरुडाकृतिः ॥ १४ ॥

अर्थ—तब तीसरे दिन वाग्मी व्यासजी युधिष्ठिर के पास आकर यह वचन बोले ॥ १ ॥ आज से लेकर हे कौन्तेय यजन करो, तुम्हारा समय है, यज्ञ का वेला आगया है, याजक अब प्रेरते हैं ॥ २॥ हे राजन् यह पहले अहीन क्रतु आरम्भ कीजिये, जो सुवर्ण की बहुतायत से बहुसुवर्णक है ॥ ३ ॥ पीछे महाबाहु ने बहुत अन्न की दक्षिणा वाला सारी कामनाओं का पूरने वाला अश्वमेध यज्ञ किया ॥ ४ ॥ वहां वेदवेत्ता सारी विधि के जानने वाले याजक ठीक शिक्षा से घूमते हुए यथाविधि कर्म करने लगे ॥ ५ ॥ न स्वर में फिसले न कर्म में भूल की, क्रम से मुक्त और क्रम से युक्त अपने २ अवसर पर कर्म किया॥६॥ तब सोम पीने वालों ने सोम निचोड़ कर शास्त्र के अनुसार क्रमशः तीनों सवन किये ॥ ७ ॥ उन दिनों वहां कोई पुरुष न कृपण न दरिद्र न क्षुधित न दुःखित प्रतीत होता था ॥ ८ ॥ तेजस्वी भीमसेन राजा की आज्ञा से सब भोजनार्थियों को बरा-

कर भोजन देते थे ॥ ९ ॥ तब यूप खड़ा करने का समय आने पर छः यूप बिल्व के और उतने ही खैर के, दो देवदारु के, और एक श्लेष्मातक का याजकों ने बनवाया ॥ ११ ॥ चयन के लिए सोने की ईंटें तय्यार कीगई, वह चयन दक्षप्रजापति के चयन की भांति शोभायमान हुआ ॥ १२ ॥ चतुश्चित्य का मण्डप अठारह हाथ का सोने के पक्षों का गरुडाकृति त्रिकोण चिना गया ॥ १३ ॥

मूल–संस्थाप्यैवं तस्य राज्ञस्तं यज्ञं शक्रतेजसः । व्यासः स शिष्यो भगवान् वर्धयामास तं नृपं ॥ १४ ॥ ततो युधिष्ठिरः प्रादाद् ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि । कोटीः सहस्रं निष्काणां व्यासाय तु वसुन्धरां ॥ १५ ॥ प्रतिगृह्य धरां राजन् व्यासः सत्यवती-सुतः । अब्रवीद् भरतश्रेष्ठं धर्मराजं युधिष्ठिरं ॥ १६ ॥ वसुधा भवतस्त्वेषा संन्यस्ता राजसत्तम । निष्क्रियो दीयतां मह्यं ब्राह्मणा हि धनार्थिनः ॥ १७ ॥ युधिष्ठिरस्तु तान् विप्रान् प्रत्युवाच महामनाः । भ्रातृभिः सहितो धीमान् मध्ये राज्ञां महात्मनां ॥ १८ ॥ अश्वमेधे महायज्ञे पृथिवी दक्षिणा स्मृता अर्जुनेन जिता चेयमृत्विग्भ्यः प्रापिता मया ॥ १९ ॥ वनं प्रवेक्ष्ये विप्राग्र्या विभजध्वं महीमिमां । चतुर्धा पृथिवीं कृत्वा चातुर्होत्रप्रमाणतः ॥ २० ॥ नाहमादातु मिच्छामि ब्रह्मस्वं द्विजसत्तमाः । इदं नित्यं मनो विप्रा भ्रातॄणां चैव मे सदा ॥ २१ ॥ इत्युक्तवति तस्मिंस्तु भ्रातरो द्रौपदी च सा । एवमेतदिति प्राहुस्तद् भूल्लोमहर्षणं ॥ २२ ॥ द्वैपायनस्तथा कृष्णः पुनरेव युधिष्ठिरं । प्रोवाच मध्ये विप्राणामिदं संपूजयन् मुनिः ॥ २३ ॥ दत्तैषा भवता मह्यं तां ते प्रददाम्यहं । हिरण्यं दीयतामेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो धरास्तु ते ॥ २४ ॥ ततोऽब्रवीद् वासुदेवो धर्मराजं युधिष्ठिरं । यथाह भगवान् व्यासस्तथा त्वं

कर्तुमर्हसि ॥ २५ ॥ इत्युक्तः स कुरुश्रेष्ठः प्रीतात्मा भ्रातृभिः सह। कोटी कोटी कृतां प्रादाद् दक्षिणां त्रिगुणां क्रतोः ॥ २६ ॥ प्रतिगृह्यतु तद्रत्नं कृष्णद्वैपायनो मुनिः। ऋत्विग्भ्यः प्रददौ विद्वांश्चतुर्धा व्यभजंश्च ते ॥ २७ ॥ ऋत्विजस्तमपर्यन्तं सुवर्णनिचयं तदा। व्यभजन्त द्विजातिभ्यो यथोत्साहं यथासुखं ॥ २८ ॥ यज्ञवाटे च यत् किञ्चित् हिरण्यं सविभूषणं। युधिष्ठिराभ्यनुज्ञाताः सर्वं तद् व्यभजन् द्विजाः ॥ २९ ॥ ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे मुदिता जग्मुरालयान्। तर्पिता वसुना तेन धर्मराजेन धीमता ॥ ३० ॥ स्वमंशं भगवान् व्यासः कुन्त्यै प्रादाद्धि मानतः। प्रददौ तस्य महतो हिरण्यस्य महाद्युतिः ॥ ३१ ॥ श्वशुरात् प्रीतिदायं तं प्राप्य सा प्रीतमानसा। चकार पुण्यकं तेन सुमहत् संघशः पृथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस प्रकार इन्द्रतुल्य तेज वाले उस राजा के यज्ञ को समाप्त कर के शिष्यों समेत भगवान् व्यास ने राजा को बधाई दी ॥ १४ ॥ तब राजा ने यथाविधि ब्राह्मणों को करोड़ों निष्क (मुहरें) दिये, और व्यास को पृथिवी दी ॥ १५ ॥ पृथिवी को स्वीकार कर सत्यवतीपुत्र व्यास धर्मराज युधिष्ठिर से बोले ॥ १६ ॥ हे राजवर ! यह पृथिवी मैं देता हूं, मुझे इस का निष्क्रय (बदला) दे दीजिये, ब्राह्मण धन के अर्थी हैं (राज्य के नहीं) ॥ १७ ॥ उदार हृदय युधिष्ठिर महात्मा राजाओं के मध्य में भाइयों समेत यह वचन बोले ॥ १८ ॥ अश्वमेध महायज्ञ में पृथिवी दक्षिणा मानी गई है, अर्जुन ने इसे जीता है, मैं इसे ऋत्विजों को देता हूं ॥ १९ ॥ हे ब्राह्मणवरो ! वन में प्रवेश करूंगा, आप इस भूमि को चार भाग कर के बांट लें ॥ १९ ॥

हे ब्राह्मणवरो ! मैं ब्राह्मणों का धन कभी नहीं लेना चाहता हूं, हे ब्राह्मणो यही सदा मेरा विचार है, यही मेरे भाइयों का है ॥ २१ ॥ उस के ऐसा कहने पर उस के भाइयों ने और द्रौपदी ने 'तथास्तु' कहा, यह प्रस्ताव रोंगटे खड़ा करने वाला हुआ ॥ २२ ॥ पर व्यासजी ने फिर भी ब्राह्मणों के मध्य में युधिष्ठिर के वचन का आदर करते हुए यह कहा ॥ २३ ॥ आपने यह मुझे देदी है, अब मैं उसे तुझे देता हूं, इन ब्राह्मणों को सोना दीजिये, पृथिवी आप की हो ॥ २४ ॥ तब श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर से बोले, जैसे भगवान् व्यास जी कहते हैं, वैसे तुम्हें करना चाहिये ॥ २५ ॥ यह सुन कुरुवर ने प्रसन्न हो भाइयों के साथ मिल कर उन को तीन २ करोड़ यज्ञ की दक्षिणा दी॥२६॥ व्यास जी ने वह द्रव्य ले कर ऋत्विजों को दे दिया और उन्होंने चार भागों में बांट लिया ॥ २७ ॥ ऋत्विजों ने उस बड़े सुवर्ण राशि को ले कर अपने उत्साह के अनुसार आनन्द से ब्राह्मणों को बांट दिया ॥ २८ ॥ यज्ञवाट में जो कुछ सुवर्ण के पात्र और भूषण थे, युधिष्ठिर की आज्ञा से वह भी सारा धन ब्राह्मणों ने बांट लिया ॥ २९ ॥ युधिष्ठिर द्वारा धन से तृप्त हो कर वे ब्राह्मण अपने घरों को गए॥ ३० ॥ भगवान् व्यास ने अपना अंश मान से कुन्ती को दे दिया, इस प्रकार उस तेजस्वी ने बहुत सा सुवर्ण उसे दिया ॥ ३१ ॥ श्वशुर से प्रीतिदान ले कर प्रसन्न हुई कुन्ती ने उस के साथ और भी बहुत सा सुवर्ण मिला कर ब्राह्मण संघ को पुण्य कर दिया ॥ ३२ ॥

मूल—गत्वा त्ववभृथे राजा विपाप्मा भ्रातृभिः सह । सभाज्यमानः शुशुभे महेन्द्रस्त्रिदशैरिव ॥ ३३ ॥ पाण्डवाश्च महीपालैः

समेतैरभिसंवृताः । अशोभन्त महाराज ग्रहास्तारा गणैरिव ॥३४॥ नृपतींश्चैव तान् सर्वान् सुविभक्तान् सुपूजितान् । प्रस्थापयामास वशी कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥ गोविन्दं च महात्मानं बलदेवं महाबलं । तथाऽन्यान् वृष्णिवीरांश्च प्रद्युम्नाद्यान् सहस्रशः ॥ ३६ ॥ पूजयित्वा महाराज यथाविधि महाद्युतिः । भ्रातृभिः सहितो राजा प्रास्थापयदरिन्दमः ॥ ३७ ॥ दीयतां भुज्यतां चेष्टं दिवारात्र मवारितं । तं महोत्सव संकाशं हृष्टपुष्टजनाकुलं ॥३८॥ कथयन्ति स्म पुरुषा नाना देश निवासिनः ॥ ३९ ॥ वर्षित्वा धन धाराभिः कामैरत्नै रसैस्तदा । विपाप्मा भरतश्रेष्ठः कृतार्थः प्राविशत् पुरं ॥ ४० ॥

अर्थ—अवभृथ स्नान के स्थान पर जा कर पाप से शून्य हुआ राजा भाइयों समेत ऐसा शोभायमान हुआ जैसे देवताओं समेत इन्द्र हो ॥ ३३ ॥ इकट्ठे हुए राजाओं से घिरे हुए पाण्डव तारागणों से ग्रहों की भांति शोभायमान हुए ॥ ३४ ॥ कुरुराज युधिष्ठिर ने उन सब राजाओं को अलग २ रत्न आदि से पूज कर अपने २ देशों को विदा किया ॥ ३५ ॥ महात्मा कृष्ण और महाबल बलदेव को, तथा प्रद्युम्न आदि अन्य अनेक यादव वीरों को भाइयों सहित यथाविधि पूज कर विदा किया॥३६-३७॥ दो, खाओ, यह बिना रोक जहां दिन रात शब्द होता रहा, हृष्ट पुष्ट जनों से पूर्ण उस महोत्सव का नाना देशवासी जन वर्णन करते थे ॥ ३८-३९ ॥ धन, रत्न और रसों की मूसलाधार वर्षा करके वह भारत निष्पाप और कृतार्थ हो कर पुर में प्रविष्ट हुआ४०

अश्वमेधपर्व समाप्त हुआ ॥

आश्रमवासपर्व ॥

अ० १ (व० १-३) धृतराष्ट्र और गान्धारी का संमान

मूल—प्राप्य राज्यं महात्मानः पाण्डवा हतशत्रवः । धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य पृथिवीं पर्यपालयन् ॥ १ ॥ पाण्डवाः सर्वकार्येषु पर्यपृच्छन्त तं नृपं । चक्रुस्तेनाभ्यनुज्ञाता वर्षाणि दशपञ्च च ॥ २ ॥ कुन्तिभोजसुता चैव गान्धारी मन्ववर्तत ॥ ३ ॥ द्रौपदी च सुभद्रा च याश्चान्याः पाण्डवस्त्रियः । समां वृत्ति मवर्तन्त तयोः श्वश्र्वोर्यथाविधि ॥ ४ ॥ शयनानि महार्हाणि वासांस्याभरणानि च । राजार्हाणि च सर्वाणि भक्ष्यभोज्यान्य नेकशः ॥ ५ ॥ युधिष्ठिरो महाराज धृतराष्ट्रेऽभ्युपाहरत् । तथैव कुन्ती गान्धार्यां गुरुवृत्ति मवर्तत ॥ ६ ॥ एवं संपूजितो राजा पाण्डवै रम्बिकासुतः । विजहार यथा पूर्वं मृषिभिः पर्युपासितः ॥ ७ ॥ ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च प्रददौ स कुरूद्वहः । तच्च कुन्तीसुतो राजा सर्वमेवान्वपद्यत ॥८॥ वर्तमानेषु सद्वृत्तिं पाण्डवेषु महात्मसु । प्रीतिमानभवद्राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ९ ॥ सौबलेयी च गान्धारी पुत्रशोक मपास्य तं । सदैव प्रीतिमत्यासीत्तनयेषु निजेष्विव ॥ १० ॥ यद्यद्ब्रूते च किञ्चित् स धृतराष्ट्रो जनाधिपः । गुरु वा लघु वा कार्यं गान्धारी च तपस्विनी ॥ ११ ॥ तं स राजा महाराज पाण्डवानां धुरन्धरः । पूजयित्वा वचस्तत्तदकार्षीत् परवीरहा ॥ १२ ॥ तेन तस्या भवत् प्रीतो वृत्तेन स नराधिपः । अन्वतप्यत संस्मृत्य पुत्रं तं मन्दचेतसं ॥ १३ ॥ यदा तु कौरवो राजा पुत्रं सस्मार दुर्मतिं । तदा भीमं हृदा राजन्नपध्याति स पार्थिवः ॥ १४ ॥ तथैव भीमसेनोपि धृतराष्ट्रं जनाधिपं । नामर्षयत राजेन्द्रं सदैव दुष्टवद्धृदा ॥१५॥

अथ भीमः सुहृन्मध्ये बाहुशब्दं तथा करोत् । संश्रवे धृतराष्ट्रस्य गान्धार्याश्चाप्य मर्षणः ॥ १६ ॥ इमौ तौ परिघपरिख्यौ भुजौ मम दुरासदौ । ययोरन्तर मासाद्य धार्तराष्ट्राः क्षयंगताः ॥ १७ ॥ एताश्चान्याश्च विविधाः शल्यभूता नराधिपः । वृकोदरस्य ता वाचः श्रुत्वा निर्वेदमागमत् ॥ १८ ॥ सा च बुद्धिमती देवी काळपर्याय वेदिनी ॥ १९ ॥ नाव बुध्यत तद्राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । श्वेताश्वो वाथ कुन्ती वा द्रौपदी वा यशस्विनी ॥ २० ॥

अर्थ—हतशत्रु पाण्डव राज्य को पा कर धृतराष्ट्र को आगे कर के पृथिवी का पालन करने लगे ॥ १ ॥ सारे कार्य पाण्डव उस राजा से पूछ कर उस की अनुमति से करते थे, इस प्रकार उन्हें पन्द्रह वर्ष बीत गए । कुन्ती भी वैसे ही गान्धारी के अनुकूल बर्तती रही ॥ २—३ ॥ द्रौपदी, सुभद्रा और जो दूसरी पाण्डवों की स्त्रियें थीं, वे भी दोनों सासों के साथ यथाविधि एक समान बर्तती थीं ॥ ४ ॥ हे महाराज राजा युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के लिए बहुमूल्य शयन वस्त्र भूषण और राजा के योग्य भक्ष्य भोज्य भेंट करता रहता, वैसे ही कुन्ती गान्धारी के लिए गुरुओं का सा बर्ताव करती ॥ ५-६ ॥ इस प्रकार पाण्डवों से पूजित हुआ राजा धृतराष्ट्र ऋषियों की संगति में यथापूर्व आनन्द से रहा ॥ ७ ॥ ब्राह्मणों को देने योग्य अग्रहार धृतराष्ट्र ने दिये, और वह सब युधिष्ठिर ने स्वीकार किया ॥ ८ ॥ पाण्डवों के इस प्रकार उत्तम बर्ताव से राजा धृतराष्ट्र बड़े प्रसन्न थे ॥९॥ और सुबलपुत्री गान्धारी भी पुत्रशोक को दूर कर सदा अपने पुत्रों के समान उन में प्रीतिमती थी ॥ १० ॥ राजा धृतराष्ट्र

और गान्धारी गुरु लघु जो २ कार्य कहते थे ॥ ११ ॥ उस को राजा युधिष्ठिर आदर पूर्वक पूरा करते थे ॥ १२ ॥ उस के ऐसे बर्ताव से राजा प्रसन्न थे, किन्तु उस मन्दचेता पुत्र का स्मरण कर संतप्त होते थे ॥ १३ ॥ जब राजा धृतराष्ट्र दुर्मति पुत्र का स्मरण करते, तब वह राजा भीम का हृदय से अनिष्ट चिन्तन करते ॥ १४ ॥ वैसे भीमसेन भी दुष्टहृदय से धृतराष्ट्र को नहीं सहारता था ॥ १५ ॥ एक बार भीम ने सुहृदों के मध्य में धृतराष्ट्र और गान्धारी के सुनते हुए ताल ठोंक कर कहा ॥ १६ ॥ यह मेरी परिघ तुल्य भुजाएं हैं, जिन के मध्य में आकर धृतराष्ट्र-सुत क्षय को प्राप्त हुए हैं ॥ १७ ॥ यह और ऐसी ही सल्ल की तरह चुभने वाली भीम की और भी बहुतसी बातें सुन कर धृतराष्ट्र उदास हो गया ॥ १८ ॥ और समय के फेर को समझ ने वाली बुद्धिमती गान्धारी भी उदास हो गई ॥ १९ ॥ कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने इस बात को नहीं जाना, न अर्जुन न कुन्ती न द्रौपदी ने ॥ २० ॥

अ० २ (व०३-४) वन गमन के लिए धृतराष्ट्र युधिष्ठिर संवाद

लमू–ततः समानयामास धृतराष्ट्रः सुहृज्जनं । बाष्पसंदिग्ध मत्यर्थ मिदमाह च तान् भृशं ॥ १ ॥ विदितं भवता मेतद् यथा वृत्तः कुरुक्षयः । ममापराधात् तत्सर्वं मतिज्ञातं च कौरवाः ॥२॥ योहं दुष्टमतिं मन्दं ज्ञातीनां भयवर्धनं । दुर्योधनं कौरवानामाधिपत्येऽभ्यषेचयं ॥ ३ ॥ यच्चाहं वासुदेवस्य नाश्रौषं वाक्य मर्थवत् । बध्यतां साध्वयं पापः सामात्यइति दुर्मतिः ॥ ४ ॥ सोह मेतान्यलीकानि दुर्वृत्तान्यात्मनस्तदा । हृदये शल्यभूतानि धार-

यामि सहस्रशः ॥ ५ ॥ विशेषतस्तु पश्यामि वर्षे पञ्चदशेऽद्य वै। अस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं नियतोस्मि सुदुर्मतिः ॥ ६ ॥ चतुर्थे नियते काले कदाचिदपि चाष्टमे। तृष्णाविनयनं भुञ्जे गान्धारी वेद तन्मम ॥ ७ ॥ करोत्याहार मिति मां सर्वः परिजनः सदा। युधिष्ठिरभयाद्वेत्ति भृशं तप्यति पाण्डवः ॥ ८ ॥ भूमौ शये जप्यपरो दर्भेष्वजिनसंवृतः। नियम व्यपदेशेन गान्धारी च यशस्विनी ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा धर्मराजान मभ्यभाषत कौरवः। भद्रं ते यादवी मातर्वचश्चेदं निबोध मे॥ १० ॥ सुखमस्म्यध्युषितः पुत्र त्वया सुपरिपालितः। मया दानानि दत्तानि पुण्यं चीर्णं यथाबलं ॥ ११ ॥ आत्मनस्तु हितं पुण्यं प्रतिकर्तव्य मद्य वै। गान्धार्याश्चैव राजेन्द्र तदनुज्ञातु मर्हसि ॥ १२ ॥ अनुज्ञातस्त्वया वीर संश्रयेयं वनान्यहं। चीरवल्कल भृद्राजन् गान्धार्या सहितोऽनया ॥ १३ ॥ तवाशिषः प्रयुञ्जानो भविष्यामि वनेचरः ॥ १४ ॥ उचितं नः कुले तात सर्वेषां भरतर्षभ। पुत्रेष्वैश्वर्य माधाय वयसोऽन्ते वनं नृप ॥ १५ ॥ त्वं चापि फलभाक् तात तपसः पार्थिवो ह्यसि। फलभाजो हि राजानः कल्याणस्ये तरस्य वा ॥ १६ ॥

अर्थ—तब धृतराष्ट्र ने अपने सुहृद् जनों को बुलाया, और आंसुओं से भरे कण्ठ से गद्गद वचन बोला ॥ १ ॥ आप को यह विदित है, जैसे कि कुरुओं का क्षय हुआ है, यह सब मेरे अपराध से हुआ है, हे कौरवो ! यह आप जानते हैं ॥२॥ जिस मैंने उस दुष्टमति ज्ञातियों के भय लाने वाले दुर्योधन को कौरवों के राज्य में अभिषिक्त किया ॥ ३ ॥ और जो कि मैंने कृष्ण के इस अर्थ वाले वाक्य को न सुना, कि इस पापी दुर्मति को मन्त्रियों समेत भले ही बांध दो (पर भाइयों का युद्ध रोको)

॥ ५ ॥ सो मैं अपने ये मिथ्याभूत सहस्रों दुर्वृत्त जो मेरे हृदय में शल्य समान हैं, धारण किये हुए हूं ॥ ५ ॥ विशेषतः अब इस पन्द्रहवें वर्ष में इस पाप की शुद्धि के लिए विशेष नियम धारण किये हूं ॥ ६ ॥ चौथे समय और कभी २ आठवें समय पर भूख प्यास मिटाता हूं, गान्धारी मेरे इस व्रत को जानती है ॥ ७ ॥ 'भोजन करता है' इस प्रकार सारे नौकर मुझे युधिष्ठिर के भय से जानते हैं, न हो कि युधिष्ठिर (जान कर) तपे ॥ ८ ॥ नियम धार कर जप परायण हुआ भूमि में कुशा पर मृगान ओढ़े हुए लेटता हूं, और यशस्विनी गान्धारी भी ॥ ९ ॥ यह कह कर धर्मराज से बोले—हे युधिष्ठिर तेरा भला हो, मेरा यह वचन सुन ॥ १० ॥ तेरी सेवा शुश्रूषा में हे पुत्र मैं सुख से रहा हूं, मैंने दान दिये हैं और यथाशक्ति पुण्य कमाया है ॥ ११ ॥ अब मुझे और गान्धारी को अपने परलोक का हित कर्तव्य है, उस के लिए हे राजेन्द्र आप अनुज्ञा देने योग्य हैं ॥ १२ ॥ तेरी अनुमति से हे वीर अब मैं चीर और बकले पहन कर गान्धारी समेत वनों का आश्रय लूंगा ॥ १३ ॥ तुझे असीसें देता हुआ बनवासी बनूंगा ॥ १४ ॥ हे राजन्! हमारे कुल में यह सब को उचित चला आता है, कि पिछली आयु में ऐश्वर्य को पुत्रों पर डाल कर बन में प्रवेश करना ॥ १५ ॥ तुम भी हे तात हमारे तप के फल भागी हो क्योंकि तुम राजा हो, राजा लोग (अपनी रक्षा में होते) पुण्य पाप दोनों के फल भागी होते हैं ॥ १६ ॥

मूल—यु० उ० अहोस्मि वञ्चितो मूढो भवता गूढ बुद्धिना।

विश्वासयित्वा पूर्वं मां यदिदं दुःखमश्नुथाः ॥ १७ ॥ किं मे राज्येन भोगैर्वा किं यज्ञैः किं सुखेन वा । यस्य मे त्वं महीपाल दुःखान्येतान्य वाप्तवान् ॥१८॥ भवान् पिता भवान्माता भवान्नः परमो गुरुः । भवता विप्रहीणा वै क्वनु तिष्ठामहे वयं ॥ १९ ॥ अहं वनं गमिष्यामि भवान् राज्यं प्रशासतु । न मामयशसा दग्धं भूयस्त्वं दग्धुमर्हसि ॥ २० ॥न मन्युर्हृदि नः कश्चित् सुयोधन कृतेऽनघ । भवितव्यं तथा तद्धि वयं चान्ये च मोहिताः ॥२१ ॥ स मां त्वं यदि राजेन्द्र परित्यज्य गमिष्यसि । पृष्ठतस्त्वानु यास्यामि सत्यमात्मान माळभे ॥ २२ ॥ इयं हि वसु सम्पूर्णामही सागर मेखला । भवता विप्रहीणस्य न मे प्रीतिकरी भवेत् ॥ २३ ॥भवदीयमिदं सर्वं शिरसा त्वां प्रसादये । त्वदधीनाः स्म राजेन्द्र व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ २४ ॥ धृ० उ० तापस्ये मे मनस्तात वर्तते कुरुनन्दन । उचितं च कुलेऽस्माक मरण्य गमनं प्रभो॥२५॥ चिरमस्म्युषितः पुत्र चिरं शुश्रूषितस्त्वया । वृद्धं मामप्यनुज्ञातु मर्हसि त्वं नराधिप ॥ २६ ॥ इत्युक्त्वा स धर्मात्मा वृद्धो राजा कुरूद्वहः । गान्धारीं शिश्रिये धीमान् सहसैव गतासुवत् ॥२७॥ तं तु दृष्ट्वा समासीनं विसंज्ञमिव कौरवं । आर्तिं राजा गमत् तीव्रां कौन्तेयः परवीरहा ॥ २८ ॥ ततोऽस्य पाणिना राजजलशीतेन पाण्डवः । उरोमुखं च शनकैः पर्यमार्जत धर्मवित् ॥ २९ ॥ तेन रत्नौषधिमता पुण्येन च सुगन्धिना । पाणिस्पर्शेन राज्ञः स राजा संज्ञामवाप ह ॥ ३० ॥ धृ० उ० अष्टमो ह्यद्य कालोय माहारस्य कृतस्य मे । येनाहंकुरुशार्दूल शक्नोमि न विचेष्टितुं ॥ ३१ ॥ व्यायामश्राय मत्यर्थं कृतस्त्वामभियाचता । ततो ग्लानमनास्तात नष्टसंज्ञ इवाभवं ॥ ३२ ॥उपलभ्य ततः प्राणान् धृतराष्ट्रो मही-

पतिः । बाहुभ्यां संपरिष्वज्य मूर्ध्न्यं जिघ्रत पाण्डवं ॥३३॥ विदुरादयश्च ते सर्वे रुरुदुर्दुःखिता भृशं । अतिदुःखात्तु राजानं नोचुः किञ्चित् पाण्डवं ॥ ३४ ॥ अथाब्रवीत् पुनर्वाक्यं धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरं । अनुजानीहि मां राजंस्तापस्ये भरतर्षभ ॥ ३५ ॥ ग्लायते मे मनस्तात भूयो भूयः प्रजल्पतः । न मामतः परं पुत्र परिक्लेष्टु मिहार्हसि ॥ ३६ ॥ यु० उ० न कामये नरश्रेष्ठ जीवितं पृथिवींतथा । यथा तव प्रियं राजंश्चिकीर्षामि परंतप ॥ ३७ ॥ यदि चाह मनुग्राह्यो भवतो दयितोपि वा । क्रियतां तावदाहारस्ततो वेत्स्याम्यहं परं ॥ ३८ ॥ ततोऽब्रवीन्महातेजा धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरं । अनुज्ञातस्त्वया पुत्र भुञ्जीयामिति कामये ॥ ३९ ॥ इति ब्रुवति राजेन्द्रे धृतराष्ट्रे युधिष्ठिरं । ऋषिः सत्यवतीपुत्रो व्यासोऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत् ॥ ४० ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—अहो आप की गम्भीरता के कारण मैं धोखे में पड़ा रहा, जो मुझे आपने (अपने सुख पूर्वक रहने का) विश्वास दिला कर यह दुःख भोग किया ॥१७॥ हे महीपाल ! मुझे राज्य से भोगों से यज्ञों से और सुख से क्या प्रयोजन, जब कि आप जो मेरे पूजनीय हैं, इतने दुःखों को प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ आप हमारे पिता माता और परमगुरु हैं, आप से हीन हुए हम किस पर भरोसा करें ॥ १९ ॥ मैं वन को जाता हूं, आप राज्यशासन कीजिये, पहले ही अपयश से संदग्ध हुए मुझ को आप और दग्ध करने योग्य नहीं हैं ॥ २० ॥ हे निष्पाप ! सुयोधन की बातों का अब हमारे हृदय में कोई शोक नहीं है, ऐसा ही होना था, जिस से हम और दूसरे सब मोहे गए॥२१॥ सो यदि हे राजेन्द्र मुझे छोड़ कर आप चले जाएंगे, तो मैं आप

के पीछे जाउंगा, सत्य से अपने शरीर पर हाथ धरता हूं ॥ २२ ॥ समुद्र की मेखला वाली, धन से भरी यह सारी भूमि मुझे आप से बिछड़े हुए को सुख नहीं देगी ॥ २३ ॥ यह सब कुछ आप का ही है, शिर झुका कर आप को प्रसन्न करता हूं, हे राजेन्द्र हम आप के अधीन हैं, आप का मानस संताप दूर होना चाहिये ॥ २४ ॥ धृतराष्ट्र बोले—हे तात ! अब मेरा मन तपश्चर्या में लग रहा है, हे प्रभो हमारे कुल में वनगमन उचित ही है ॥ २५ ॥ हे पुत्र मैं बहुत काल यहां ठहरा हूं, बहुत काल तक तुमने सेवा की है, हे राजन्!अब वृद्ध मुझ को आप अनुज्ञा देने योग्य हैं ॥ २६ ॥ यह कह कर वह वृद्ध धर्मात्मा अचानक ही अचेत की भांति गान्धारी की टेक लगा कर बैठ गया॥२७॥ अचेत से होकर बैठे उस कौरव को देख कर शत्रुवीरों के मारने वाला युधिष्ठिर तीव्र पीड़ा को प्राप्त हुआ॥ २८ ॥ तब हे राजन् युधिष्ठिर ने जल से शीतल हाथ से उस की छाती और मुख को धीरे २ मार्जन किया॥ २९ ॥ उस रत्न और औषधियों से युक्त, सुगन्धी वाले पवित्र हस्तस्पर्श से राजा को होश आई ॥ ३० ॥ धृतराष्ट्र बोले—आज आहार किये मुझे यह आठवां काल है, इस से हे कुरुवर मैं कोई चेष्टा नहीं कर सकता हूं ॥ ३१ ॥ आप को बार २ निवेदन करने से मुझे अत्यन्त व्यायाम होगया है, इस से मेरा मन थक गया और मैं अचेतसा होगया ॥ ३२ ॥ फिर कुछ शक्ति पा कर धृतराष्ट्र ने दोनों भुजाओं से युधिष्ठिर को गले लगा कर मस्तक पर चूमा ॥३३॥ विदुर आदि सब दुःखित हुए रोने लगे, अति दुःख के कारण राजा युधिष्ठिर से कुछ न

कह सके ॥ ३४ ॥ अब धृतराष्ट्र फिर युधिष्ठिर से वचन बोले, हे राजन् ! मुझे अब तपश्चर्या में अनुज्ञा दीजिये ॥ ३५ ॥ हे तात बार २ बात करने से मेरा मन क्षीण होता है, हे पुत्र इस से आगे मुझे और क्लेश न होने देवें ॥३६॥युधिष्ठिर बोले—हे नरश्रेष्ठ ! मैं राज्य को वा जीवन को वैसा नहीं चाहता हूं, हे राजन्! जैसा आप का प्रिय करना चाहता हूं ॥ ३७ ॥ यदि आप का मैं अनुग्राह्य हूं और आप का प्यारा हूं, तो पहले आहार कीजिये, तब मैं दूसरी कोई बात सोचूंगा ॥ ३८ ॥ तब महा तेजस्वी धृतराष्ट्र युधिष्ठिर से बोले, हे पुत्र तेरी अनुज्ञा से मैं खाउंगा, यह मैं चाहता हूं ॥ ३९ ॥ जब धृतराष्ट्र युधिष्ठिर को ऐसा कह रहे थे,उसी समय सत्यवती पुत्र व्यास आ कर यह वचन बोले॥४०॥

अ० ३ (श्लो० ५-१७) धृतराष्ट्र आदि का वनगमन

मूल—व्या० उ० राजायं वृद्धतां प्राप्तः प्रमाणे परमे स्थितः ॥ १ ॥ सोऽयं मयाभ्यनुज्ञातस्त्वया च पृथिवीपाते । करोतु स्वमभिप्रायं मास्म विघ्नकरो भव ॥ २ ॥ एष एव परो धर्मो राजर्षीणां युधिष्ठिर । समरे वा भवेन्मृत्युर्वने वा विधिपूर्वकं ॥ ३ ॥ अनुजानीहि पितरं समयोऽस्य तपो विधौ । न मन्युर्विद्यते चास्य सुसूक्ष्मोपि युधिष्ठिर ॥ ४ ॥ ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रः प्रतापवान् । ययौ स्वभवनं राजा गान्धार्यानुगतस्तदा ॥ ५ ॥ मन्दप्राणगतिर्धीमान् कृच्छ्रादिव समुद्वहन् । पदानि स महीपालो जीर्णो गजपतिर्यथा ॥ ६ ॥ स प्रविश्य गृहं राजा कृतपूर्वाह्णिकक्रियः । तर्पयित्वा द्विजश्रेष्ठानाहारमकरोत्तदा ॥ ७ ॥ ततः प्रभाते राजा स धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः । आनाय्य पाण्डवान् वीरान्

वनवासे कृतक्षणः ॥ ८ ॥ गान्धारीसहितो धीमानभ्यनन्दद्यथाविधि । कार्तिक्यां कारयित्वेष्टिं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ९ ॥ अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य वल्कलाजिन संवृतः । बन्धुजनवृतो राजा निर्ययौ भवनात्ततः ॥ १० ॥

अर्थ–व्यास बोले–राजा यह पूरे बुढ़ापे को पहुंच गए हैं, आप के लिए परम प्रमाण हैं ॥ १ ॥ सो यह भूपति अब तुझ से और मुझ से अनुज्ञा पाकर अपने अभिप्राय को पूरा करे, आप इस में विघ्नकारक न बनें ॥ २ ॥ हे युधिष्ठिर राजऋषियों का यही परमधर्म है, कि या तो संग्राम में मृत्यु हो, वा बन में विधिपूर्वक ॥ ३ ॥ पिता को अनुज्ञा दीजिये, अब इस के तपोऽनुष्ठान का ही समय है, हे युधिष्ठिर इस को कोई यत्किञ्चित भी क्रोध नहीं है॥ ४ ॥ तब युधिष्ठिर से अनुज्ञा पाकर प्रतापी धृतराष्ट्र गान्धारी के साथ अपने घर को गया ॥ ५ ॥ थोड़े बल से मन्दगति वह बुद्धिमान् वृद्ध हाथी की भांति बड़े कष्ट से पाओं उठाता हुआ गया ॥ ६ ॥ घर में प्रवेश कर प्रातः कृत्य को पूर्ण कर ब्राह्मणों को भोजन करा कर उस ने स्वयं भोजन किया ॥ ७ ॥ अनन्तर प्रभात के समय राजा धृतराष्ट्र ने वनवास का निश्चय कर पाण्डवों को बुलवाया ॥ ८ ॥ गान्धारीसहित राजा ने यथाविधि उन पर प्रसन्नता प्रकाशित की, कार्तिकी पौर्णमासी के दिन वेदपारग ब्राह्मणों से इष्टि करवा के, अग्निहोत्र को आगे कर, बकले और मृगान पहन कर बन्धुजनों से घिरा हुआ राजा भवन से बाहर निकला ॥ ९–१० ॥

मूल–ततो राजा प्राञ्जलिर्वेपमानो युधिष्ठिरः सस्वरं बाष्पकण्ठः । विमुच्योच्चैर्महानादं हि साधो क्व यास्यसीत्यपतत्तात

भूमौ ॥ ११ ॥ वृकोदरः फल्गुनश्चैव वीरौ माद्रीपुत्रौ विदुरः संजयश्च । वैश्यापुत्रः सहितो गौतमेन धौम्यो विप्राश्चान्वयुर्बाष्पकण्ठाः ॥ १२ ॥ कुन्ती गान्धारीं बद्धनेत्रां व्रजन्तीं स्कन्धासक्तं हस्तमथोद्वहन्ती । राजा गान्धार्याः स्कन्धदेशेऽवसज्य पाणिं ययौ धृतराष्ट्रः प्रतीतः॥१३॥ततो निष्पेतुर्ब्राह्मण क्षत्रियाणां विट्शूद्राणां चैव भार्याः समन्तात् । तन्निर्याणे दुःखितः पौरवर्गो गजाह्वये चैव बभूव राजन् ॥ १४ ॥ स राजा राजमार्गेण नृनारीसंकुलेन च । कथञ्चिन्निर्ययौ धीमान् वेपमानः कृताञ्जलिः ॥१५॥ स वर्धमानद्वारेण निर्ययौ गजसाह्वयात् । विसर्जयामास च तं जनौघं स मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ वनं गन्तुं च विदुरो राज्ञा सह कृतक्षणः । संजयश्च महामात्रः सूतो गावल्गणिस्तथा ॥ १७ ॥ कृपं निवर्तयामास युयुत्सुं च महारथं । धृतराष्ट्रो महीपालः परिदाप्य युधिष्ठिरं ॥ १८ ॥ निवृत्ते पौरवर्गे च राजा सान्तःपुरस्तदा । धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातो निवर्तितुमियेषह ॥ १९ ॥ सोऽब्रवीन्मातरं कुन्तीं वनं तमनुजग्मुषीं । अहं राजानमन्विष्ये भवती विनिवर्त्ततां ॥ २० ॥ वधूपरिवृता राज्ञि नगरं गन्तुमर्हसि ॥ २१ ॥ इत्युक्ता धर्मराजेन बाष्पव्याकुललोचना । जगामैव तदा कुन्ती गान्धारीं परिगृह्य ह ॥ २२ ॥

अर्थ—तब राजा युधिष्ठिर हाथ जोड़े कांपता हुआ आंसुओं से भरे कण्ठ वाला ऊंचे स्वर से रुदन करता हुआ 'हे तात कहां जाते हैं' यह कह कर भूमि पर गिर पड़ा ॥ ११ ॥ भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, विदुर, संजय, युयुत्सु, कृपाचार्य, धौम्य और अन्य ब्राह्मण आंसु बहाते हुए उन के पीछे गए॥१२॥ कुन्ती बन्धे नेत्रों वाली चलती गान्धारी के हाथ को अपने कन्धे

पर रख कर चलने लगी और राजा धृतराष्ट्र गान्धारी के कन्धे पर अपना हाथ रख कर चलने लगा ॥१३॥ उस समय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रों की स्त्रियें चारों ओर से और सारा पौरवर्ग उन के निकलने के समय दुःखित हुआ ॥ १४ ॥ नरनारियों से भरे राजमार्ग से धृतराष्ट्र हाथ जोड़े कांपता हुआ कथंचित बाहर निकला ॥ १५ ॥ वह वर्धमान द्वार से हस्तिनापुर से निकला, और उस जन समुदाय को बार २ उस ने विदा किया ॥ १६ ॥ बन जाने के लिए राजा के साथ विदुर और महामात्र संजय भी तय्यार हो गए ॥ १७ ॥ राजा धृतराष्ट्र ने कृपाचार्य और युयुत्सु को युधिष्ठिर को सौंपना कर के लौटाया ॥ १८ ॥ पौरवर्ग के लौटने पर धृतराष्ट्र से अनुज्ञा पा कर अन्तःपुर समेत युधिष्ठिर लौटने को तय्यार हुआ ॥ १९ ॥ धृतराष्ट्र के पीछे बन जाने को तय्यार हुई कुन्ती से युधिष्ठिर बोले (बन में इन की सेवा अभीष्ट है, तो) मैं राजा के साथ जाऊंगा, आप लौट चलें ॥ २० ॥ बन्धुओं से युक्त हो कर हे मातः तुम्हें नगर चलना चाहिये ॥ २१ ॥ धर्मराज से यह सुन कर आंसुओं से भरे नेत्रों वाली कुन्ती गान्धारी को लेकर जाने के लिए ही निश्चित रही ॥ २२ ॥

मूल—मुहूर्तमिव तु ध्यात्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः । उवाच मातरं दीनश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ २३ ॥ व्यचोदयः पुरास्माक मुत्साहं शुभदर्शने । विदुलायाश्चोभिस्त्वं नास्मान् संत्यक्तु मर्हसि ॥ २४ ॥ निहत्य पृथिवीपालान् राज्यं प्राप्तमिदं मया । तव प्रज्ञा मुपश्रुत्य वासुदेवान्नरर्षभात् ॥ २५ ॥ अस्मानुत्सृज्य राज्यं च स्नुषाहीना यशस्विनि । कथं वत्स्यसि दुर्गेषु वनेष्वम्ब प्रसीद मे

॥ २६ ॥ इति बाष्पकला वाचः कुन्ती पुत्रस्य शृण्वती । जगामै-वाश्रुपूर्णाक्षी भीमस्तामिद मब्रवीत ॥ २७ ॥ किं वयं कारिताः पूर्वं भवत्या पृथिवीक्षयं । कस्य हेतोः परित्यज्य वनं गन्तु मभी-प्ससि ॥ २८ ॥ वनाच्चापि किमानीता भवत्या बालका वयं । दुःख शोकसमाविष्टौ माद्रीपुत्राविमौ तथा ॥ २९ ॥ प्रसीद मा-तर्मागास्त्वं वनमद्य यशस्विनि । श्रियं यौधिष्ठिरं मातुर्भुङ्क्ष्व ता-वद्बलार्जितां ॥ ३० ॥इति सा निश्चितैवाशु वनवासाय भाविनी । लालप्यतां बहुविधं पुत्राणां नाकरोद्वचः ॥ ३१ ॥ द्रौपदी चा-न्वयाच्छ्वश्रूं विषणवदना तदा । वनवासाय गच्छन्तीं रुदतीं भ-द्रया सह ॥ ३२ ॥ सा पुत्रान् रुदतः सर्वान् मुहुर्मुहुरवेक्षती । जगामैव महाप्राज्ञा वनाय कृतनिश्चया ॥ ३३ ॥ अन्वयुः पाण्ड-वास्तां तु सभृत्यान्तः पुरास्तथा । ततः प्रमृज्य साश्रूणि पुत्रान् वचन मब्रवीत ॥ ३४ ॥

अर्थ–थोड़ी देर सोच कर दीन हुआ चिन्ता और शोक में डूबा हुआ राजा युधिष्ठिर माता से बोला ॥ २३ ॥हे मातः! पहले आप विदुला के वचनों से हमें उत्साह दे कर अब हमारा त्याग करने योग्य नहीं हो ॥ २४ ॥ पुरुषोत्तम कृष्ण द्वारा आप की प्रज्ञा को सुन कर राजाओं को मार कर यह राज्य मैंने पाया है ॥ २५ ॥ हे यशस्विनि हमें छोड़ कर स्नुषाओं से बिछड़ कर कैसे अब दुर्गम वनों में वास करोगी, मेरे ऊपर कृपा करो॥२६॥ इस प्रकार आंसुओं से गद्गद पुत्र के वचन सुनती हुई कुन्ती रोती हुई चली ही गई, तब भीम उस से बोला ॥२७॥ हे मातः! आपने हम से किस लिए पृथिवी का क्षय करवाया, किस कारण हमें त्याग कर आप बन जाना चाहती हैं ॥ २८ ॥ वन से ही

हम बालकों को तथा इन माद्री पुत्रों को, जो इस समय दुःख शोक से भरे हैं, आप क्यों लाई थीं ॥२९॥ कृपा करो हे मातः! अब वन को न जाओ, बल से कमाई अपने पुत्र की राज्यश्री को भोगो॥३०॥पर बनवास के लिए निश्चित हुई कुन्ती ने अनेक प्रकार से विलपते हुए पुत्रों की बात को न ही माना ॥ ३१ ॥ तब रोती हुई वन की ओर जाती हुई कुन्ती के पीछे २ उदास हुई द्रौपदी भी सुभद्रा सहित चलने लगी ॥ ३२ ॥ वन के लिए निश्चित हुई कुन्ती रोते हुए सारे पुत्रों को बार २ देखती हुई चली ही गई ॥ ३३ ॥ भृत्यों और स्त्रियों समेत पाण्डव उस के पीछे गए, तब आंसु पोंछ कर वह पुत्रों से यह वचन बोली॥३४॥

अ० ४ (वृ० १८-१९)

मूल—एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव । कृतमुद्धर्षणं पूर्वं मया वः सीदतो नृपाः ॥ १ ॥ द्यूतापहृतराज्यानां पतितानां सुखादपि । ज्ञातिभिः परिभूतानां कृतमुद्धर्षणं मया॥२॥ कथं पाण्डोर्न नश्येत सन्ततिः पुरुषर्षभाः । यशश्च वो न नश्येत इति चोद्धर्षणं कृतं ॥ ३ ॥ यूयमिन्द्र समाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः । मा परेषां मुखप्रेक्षाः स्थेत्येवं तत्कृतं मया ॥ ४ ॥ इयं च बृहती श्यामा तथाह्यायतलोचना । वृथा सभातले क्लिष्टा माभूदिति च तत्कृतं ॥ ५ ॥ प्रेक्षतामेव वो भीम वेपन्तीं कदलीमिव । दुःशासनो यदा मौर्ख्याद् दासीवत् पर्यकर्षत ॥ ६ ॥ तदैव विदितं मह्यं पराभूत मिदं कुलं ॥ ७ ॥ युष्मत्तेजोविवृद्ध्यर्थं मया ह्युद्धरणं कृतं । तदानीं विदुला वाक्यैरिति तद्वित्त पुत्रकाः ॥ ८॥ कथं न राजवंशोऽयं नश्येत प्राप्य सुतान् मम । पाण्डोरिति मया

पुत्रास्तस्मादुद्धरणं कृतं ॥ ९ ॥ भुक्तं राज्य फलं पुत्रा भर्तुर्मे विपुलं पुरा । महादानानि दत्तानि पीतः सोमो यथाविधि ॥१०॥ नाह मात्म फलार्थं वै वासुदेव मचूचुदं । विदुलायाः प्रलापैस्तैः पालनार्थं च तत्कृतं ॥ ११ ॥ नाहं राज्यफलं पुत्राः कामये पुत्र निर्जितं । पतिलोकानहं पुण्यान् कामये तपसा विभो ॥ १२ ॥ श्वश्रूश्वशुरयोः कृत्वा शुश्रूषां वनवासिनोः । तपसा शोषयिष्यामि युधिष्ठिर कलेवरं ॥ १३ ॥ निवर्तस्व कुरुश्रेष्ठ भीमसेनादिभिः सह । धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनस्तु महदस्तु च ॥ १४ ॥

अर्थ—हे महाबाहो युधिष्ठिर ऐसे ही है, जो तुम कहते हो, मैंने तुम को दुःखी देख कर पहले उत्साह दिया है ॥१॥ जुए में तुम्हारा राज्य छिन गया, सुख से भी भ्रष्ट हुए, ज्ञातियों से पराभूत हुए, ऐसे जान कर मैंने तुम्हें प्रोत्साहन किया ॥ २ ॥ पाण्डु की सन्तति और तुम्हारा यश जैसे लुप्त न हो, इस से मैंने तुम्हें प्रोत्साहन किया ॥ ३ ॥ तुम सब इन्द्र के समान, देवताओं के तुल्य पराक्रम वाले, हो कर तुम दूसरों के सुखों की ओर देखने वाले न बनो, इस लिए मैंने तुम्हें प्रोत्साहन किया ॥ ४ ॥ यह विशालाकृति विशाल नेत्रों वाली द्रौपदी फिर कभी सभा के अन्दर व्यर्थ क्लेश न उठाए, इस से मैंने प्रोत्साहन किया ॥५॥ हे भीम जब दुःशासन ने कदली की भांति कांपती हुई द्रौपदी को तुम्हारे सामने ही खींचा था, तभी मैंने जान लिया था, कि अब यह कुल पराजित हुआ ॥ ६–७ ॥ हे पुत्रो उस समय मैंने तुम्हारे तेज की वृद्धि के लिए विदुला के वचनों से तुम्हारा उत्साह बढ़ाया था ॥ ८ ॥ कैसे यह राजवंश पाण्डु से मेरे पुत्रों तक पहुंच कर न नष्ट होजाए, इस से मैंने हे पुत्रो ! तुम्हारा

प्रोत्साहन किया ॥ ९ ॥ हे पुत्रो ! मैंने पूर्वकाल में अपने पति के राज्य का फल भोग लिया है, महादान दिये हैं यथाविधि सोम पिया है ॥ १० ॥ मैंने अपने किसी प्रयोजन के लिए विदुला के वाक्यों से कृष्ण के हाथ संदेश नहीं भेजा था किन्तु तुम्हारी रक्षा के लिए यह सब किया था ॥ ११ ॥ हे पुत्रो ! मैं पुत्रों से जीते राज्यफल को नहीं चाहती, हे समर्थ ! तप से पवित्र लोकों को प्राप्त होना चाहती हूं॥१२॥वन में रहते श्वश्रू और श्वशुर की सेवा करती हुई इस कलेवर को तप से सुखाउंगी ॥१३॥ हे कुरुवर तुम भीम आदि को साथ ले कर लौट जाओ, तेरी बुद्धि धर्म में लगे और तेरा हृदय विशाल हो ॥ १४ ॥

मूल—कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा पाण्डवा राजसत्तम । व्रीडिताः संन्यवर्तन्त पाञ्चाल्या सह भारत ॥ १५ ॥ ततः शब्दो महानेव सर्वेषा मभवत्ततः । अन्तः पुराणां रुदतां दृष्ट्वा कुन्तीं तथागतां ॥ १६ ॥ प्रदक्षिण मथावृत्य राजानं पाण्डवास्तदा । अभिवाद्य न्यवर्तन्त पृथां तामनिवर्त्य वै ॥ १७ ॥ ततोऽब्रवीन्महातेजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः । गान्धारीं विदुरं चैव समाभाष्यावगृह्य च ॥ १८ ॥ युधिष्ठिरस्य जननी देवी साधु निवर्ततां । यथा युधिष्ठिरः प्राह तत्सर्वं सत्यमेव हि ॥ १९ ॥ पुत्रैश्वर्यं महदिदमपास्य च महाफलं । कानुगच्छेद्वनं दुर्गं पुत्रानुत्सृज्य मूढवत् ॥ २० ॥ राज्यस्थया तपस्तप्तुं कर्तुं दानव्रतं महत् । अनया शक्य मेवाद्य श्रूयतां च वचोमम ॥ २१ ॥ गान्धारि परितुष्टोस्मि वध्वाः शुश्रूषणेन वै । तस्मात्त्वमेनां धर्मज्ञे समनुज्ञातु मर्हसि ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वा सौबलेयींतु राजा कुन्ती मुवाच ह । तत्सर्वं राजवचनं स्वं च वाक्यं विशेषवत् ॥ २३ ॥ न च सा वनवासाय देवी कृतमतिं तदा ।

शक्नोत्युपा वर्तयितुं कुन्तीं धर्मपरां सतीं ॥ २४ ॥ तस्यास्तां तु स्थितिं ज्ञात्वा व्यवसायं कुरुस्त्रियः । निवृत्तांश्च कुरुश्रेष्ठान् दृष्ट्वा पुरुरुदुस्तदा ॥ २५ ॥ उपावृत्तेषु पार्थेषु सर्वास्वेव वधूषु च । ययौ राजा महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो वनं तदा ॥ २६ ॥ पाण्डवाश्चाति दीनास्ते दुःखशोक परायणाः । यानैः स्त्री सहिताः सर्वे पुरं प्रविविशुस्तदा ॥ २७ ॥ तदहृष्टमनानन्दं गतोत्सव मिवाभवत् । नगरं हास्तिनपुरं सस्त्री वृद्ध कुमारकं ॥ २८ ॥ धृतराष्ट्रस्तु तेनान्हा गत्वा सुमहदन्तरं । ततो भागीरथी तीरे निवासमकरोत्प्रभुः ॥ २९ ॥ ततो भागीरथी तीरात् कुरुक्षेत्रं जगाम सः । आससादाथ राजर्षिं शतयूपं मनीषिणं ॥ ३० ॥ सहि राजा महानासीत् केकयेषु परंतपः । स्वपुत्रं मनुजैश्वर्ये निवेश्य वनमाविशत् ॥ ३१ ॥ तेनासौ सहितो राजा ययौ व्यासाश्रमं प्रति ॥ ३२ ॥ स दीक्षां तत्र संप्राप्य राजा कौरवनन्दनः । शतयूपाश्रमे तस्मिन्निवास मकरोत् तदा ॥ ३३ ॥ तस्मै सर्वं विधिं राज्ञे राजाचख्यौ महामतिः । आरण्यकं महाराज व्यासस्यानुमते तदा ॥ ३४ ॥ कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषा चैव ते नृप । संनियम्येन्द्रियग्राम मास्थिताः परमं तपः ॥ ३५ ॥

अर्थ—हे राजसत्तम कुन्ती के वचन को सुन कर लज्जित हो कर पाण्डव द्रौपदी सहित लौट आए ॥ १५ ॥ उस समय कुन्ती को ऐसी अवस्था में देख कर रुदन करती हुई अन्तःपुर की स्त्रियों का बड़ा शब्द हुआ ॥ १६ ॥ तब पाण्डव राजा की प्रदक्षिणा कर के और कुन्ती को बिना लौटाए अभिवादन कर के लौटे ॥ १७ ॥ तब महातेजस्वी धृतराष्ट्र गान्धारी और विदुर को संभाषण पूर्वक रोक कर बोले ॥ १८ ॥ युधिष्ठिर की जननी को ठीक लौटाना ही चाहिये, जो युधिष्ठिर ने कहा है, वह सब

सत्य ही है ॥ १९ ॥ पुत्र के महाफल वाले इतने बड़े ऐश्वर्य को छोड़ कर और पुत्रों को छोड़ कर कौन मूढ़ की भांति दुर्गम वन में जाए ॥ २० ॥ यह राज्य में रह कर तप तपती सकती है, और बड़ा दान देसकती है, सो मेरा वचन सुनो ॥ २१ ॥ हे गान्धारि ! मैं बहू (कुन्ती) की अबतक की सेवा से प्रसन्न हूं, इस लिए हे धर्मज्ञे तू अब इस को लौटाने योग्य है ॥ २२ ॥ यह सुन कर गान्धारी ने कुन्ती से राजा का वह सारा वचन कहा, और अपना वाक्य और भी अधिक कर के कहा ॥२३॥ पर वह वन के लिए निश्चय कर चुकी धर्मपरायणा देवी कुन्ती को लौटा न सकी ॥ २४ ॥ उस के ऐसे निश्चय को देख कर लौटे हुए कौरवों को देख कुरुस्त्रियें रोने लगीं ॥ २५ ॥ सब कौरवों के और सब बहुओं के लौट जाने पर महाप्राज्ञ राजा धृतराष्ट्र वन को गया ॥ २६ ॥ पाण्डव अति दीन हुए दुःख और शोक में डूबे हुए स्त्रियों सहित यानों द्वारा पुर में प्रविष्ट हुए ॥ २७ ॥ हस्तिनापुर स्त्री वृद्ध बच्चों समेत बिना हर्ष बिना आनन्द के दूर हुए उत्सव वाले के समान भासता था ॥ २८ ॥ धृतराष्ट्र ने उस दिन बहुत दूर जा कर गंगा के तट पर निवास किया ॥ २९ ॥ फिर गंगातट से वह कुरुक्षेत्र में गया, वहां राज-ऋषि शतयूप के पास गया ॥ ३० ॥ जो केकय देशों का बड़ा राजा राज्य के ऐश्वर्य पर पुत्र को स्थापन कर के वन में आया था ॥ ३१ ॥ वहां धृतराष्ट्र व्यासजी से दीक्षा ले कर शतयूप के आश्रम में रहने लगा ॥ ३२ ॥ उस महामति ने व्यास की अनुमति से राजा धृतराष्ट्र को वानप्रस्थों की सारी विधि सिखलाई ॥ ३४ ॥ हे राजन् वहां वे सारे इन्द्रिय समूह को वश में

कर के मन वाणी नेत्र और कर्म से परम तप में लग गए ॥३५॥

अ०५(व०२३-२६)युधिष्ठिरादि का धृतराष्ट्र के निकट गमन

मूल—पाण्डवाश्चैव ते सर्वे भृशं शोकपरायणाः । शोचन्तो मातरं वृद्धामूषुर्नातिचिरं पुरे ॥ १ ॥ तथैव वृद्धं पितरं हतपुत्रं जनेश्वरं । गान्धारीं च महाभागां विदुरं च महामतिं॥२॥ अचिन्तयंश्च जननीं ततस्ते पाण्डुनन्दनाः । कथं नु वृद्धमिथुनं वहस्यति कृशा पृथा ॥ ३ ॥ कथं च स महीपालो हतपुत्रो निराश्रयः । पत्न्या सहवसत्येको वनेश्वापदसेविते ॥ ४ ॥ सा च देवी महाभागा गान्धारी हतबान्धवा । पतिमन्धं कथं वृद्धमन्वेति विजने वने ॥ ५ ॥एवं तेषां कथयतामौत्सुक्यमभवत्तदा । गमने चाभवद् बुद्धिर्धृतराष्ट्रदिदृक्षया ॥ ६ ॥ सेनाध्यक्षान् समानाय्य सर्वानिदमुवाच ह । निर्यातयत मे सेनां प्रभूतरथकुञ्जरां ॥ ७ ॥ एवमाज्ञाप्य राजा स भ्रातृभिः सह पाण्डवः । श्वोभूते निर्ययौ राजन् सस्त्रीवृद्धपुरःसरः ॥ ८ ॥ नदीतीरेषु रम्येषु सरःसु च विशांपते । वासान् कृत्वा क्रमेणाथ जग्मुस्ते कुरुपुंगवाः ॥९॥ ततो युधिष्ठिरो राजाकुरुक्षेत्रमवातरत् ॥ १० ॥ ततस्ते पाण्डवा दूरादवतीर्य पदातयः । अभिजग्मुर्नरपतेराश्रयं विनयान्विताः ॥११॥स च योधजनः सर्वो ये च राष्ट्रनिवासिनः । स्त्रियश्च कुरुमुख्यानां पद्भिरेवान्वयुस्तदा ॥ १२ ॥

अर्थ—वे पाण्डव सारे अत्यन्त शोकपरायण हुए वृद्धा माता की हतपुत्र वृद्ध पिता की, तथा गान्धारी और विदुर की चिन्ता में बहुत देर पुर में नहीं रहे ॥ १–२ ॥ वे पाण्डुनन्दन सोचते, कि कैसे हमारी दुर्बल माता उन दोनों वृद्धों को ले जाती होगी

॥ ३ ॥ कैसे वह हतपुत्र राजा निराश्रय हुआ अकेला पत्नी के साथ श्वापदों वाले वन में रहता होगा ॥ ४ ॥ कैसे हतबान्धवा देवी गान्धारी विजन वन में वृद्ध अन्ध पति का अनुगमन करती होगी ॥ ५ ॥ इस प्रकार की बातें करते हुए उन की उत्कण्ठा बढ़ी, और उन को धृतराष्ट्र के देखने की बुद्धि उत्पन्न हुई ॥६॥ युधिष्ठिर ने सारे सेनाध्यक्षों को बुला कर यह कहा, बहुत से हाथी घोड़ों समेत मेरी सेना को तय्यार करो॥ ७ ॥ इस प्रकार आज्ञा दे कर भाइयों सहित तथा स्त्रियों और वृद्धों सहित युधिष्ठिर दूसरे दिन निकला ॥ ८ ॥ रमणीय नदी तीरों और सरोवरों पर क्रम से वास करते हुए गए ॥ ९ ॥ तब राजा युधिष्ठिर कुरुक्षेत्र में पहुंचा ॥ १० ॥ तब वे पाण्डव दूर से ही उतर कर विनीतभाव से राजा के आश्रम की ओर गए ॥ ११ ॥ वह सारा योधवर्ग और राष्ट्र निवासी सारे जन और कुरुवरों की स्त्रियें पैदल ही उन के पीछे गईं ॥ १२ ॥

मूल—आश्रमं ते ततो जग्मुर्धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः । शून्यं मृगगणाकीर्णं कदलीवनशोभितं ॥ १३ ॥ ततस्तत्र समाजग्मुस्तापसा नियतव्रताः । पाण्डवानागतान् द्रष्टुं कौतूहलसमन्विताः ॥ १४ ॥ तानपृच्छत् ततो राजा क्वासौ कौरववंशभृत् । पिताज्येष्ठो गतोऽस्माकमिति बाष्पपरिप्लुतः ॥ १५ ॥ ते तमूचुस्ततो वाक्यं यमुनामवगाहितुं ॥ १६ ॥ तैराख्यातेन मार्गेण ततस्ते जग्मुरञ्जसा । ददृशुश्चाविदूरे तान् सर्वानथ पदातयः॥१७॥ सहदेवस्तु वेगेन प्राधावद् यत्र सा पृथा । सुस्वरं रुरुदे धीमान् मातुः पादावुपस्पृशन् ॥ १८ ॥ बाहुभ्यां संपरिष्वज्य समुन्नाम्य

च पुत्रकं । गान्धार्यां कथयामास सहदेवमुपस्थितं ॥ १९ ॥ अनन्तरं च राजानं भीमसेनमथार्जुनं । नकुलं च पृथा दृष्ट्वा त्वरमाणोपचक्रमे ॥ २० ॥ सा ह्यग्रे गच्छति तयोर्दम्पत्योर्हत पुत्रयोः। कर्षन्ती तौ ततस्ते तां दृष्ट्वा संन्यपतन् भुवि ॥ २१ ॥ राजा तान् स्वरयोगेन स्पर्शेन च महामनाः । प्रत्यभिज्ञाय मेधावी समाश्वासयत प्रभुः ॥ २२ ॥ ततस्ते बाष्पमुत्सृज्य गान्धारीसहितं नृपं । उपतस्थुर्महात्मानो मातरं च यथाविधि ॥ २३ ॥ सर्वेषां तोयकलशाञ्जगृहुस्ते स्वयं तदा । पाण्डवा लब्धसंज्ञास्ते मात्रा चाश्वासिताः पुनः ॥ २४ ॥ निवेदयामास तदा जनं तन्नामगोत्रतः । युधिष्ठिरो नरपतिः स चैनं प्रत्यपूजयत् ॥ २५ ॥ स तैः परिवृतो मेने हर्षबाष्पाविलेक्षणः । राजात्मानं गृहगतं पुरेव गजसाह्वये ॥ २६ ॥ अभिवादितो वधूभिश्च कृष्णाद्याभि स पार्थिवः । गान्धार्या सहितो धीमान् कुन्त्या च प्रत्यनन्दत ॥ २७ ॥ ततश्चाश्रममागच्छत् सिद्धचारणसेवितं । दिदृक्षुभिः समाकीर्णं नभस्तारागणैरिव ॥ २८ ॥

अर्थ—तब पाण्डव धृतराष्ट्र के आश्रम में गए, जो मृगगणों से भरा हुआ कदली वनों से शोभित था, उस समय उस में कोई पुरुष नहीं था ॥ १३ ॥ पाण्डवों को आए देख कौतूहल से भरे हुए नियत व्रतों वाले तपस्वी वहां आगए ॥ १४ ॥ आंसुओं से भीगे हुए राजा ने उन से पूछा, कौरववंश धारी हमारे ज्येष्ठ पिता कहां हैं ॥ १५ ॥ उन्होंने उस को उत्तर दिया, यमुना में स्नान करने को गए हैं ॥ १६ ॥ तब उन से बतलाए मार्ग से व सीधे वहीं गए—और पैदल चलते हुए उन्होंने निकट ही उनसब को देख लिया ॥ १७ ॥ सहदेव तो वहां दौड़ कर गया जहां

कुन्ती थी, और माता के पाओं छू कर जोर से रोया ॥ १८ ॥ कुन्ती भी दोनों भुजाओं से पुत्र को उठा कर और गले लगा कर गान्धारी से कहने लगी, सहदेव आया है ॥ १९ ॥ अनन्तर युधिष्ठिर भीम अर्जुन और नकुल को देख कर कुन्ती जल्दी आगे बढ़ी ॥ २० ॥ कुन्ती उस वृद्ध दम्पति को जो कि हतपुत्र हैं, खींचती हुई, उन के आगे जा रही थी, यह देख कर पाण्डव भूमि पर गिर पड़े ॥ २१ ॥ राजा ने स्वर के मेल और स्पर्श से उन को पहचान कर तसल्ली दी ॥ २२ ॥ तब आंसुएं बहाते हुए पाण्डवों ने गान्धारी, राजा और माता का यथाविधि पूजन किया ॥ २३ ॥ पाण्डवों ने उन सब के जल कलश स्वयं उठा लिये, बुद्धि को ठिकाने किया और माता ने भी उन को तसल्ली दी ॥ २४ ॥ तब राजा युधिष्ठिर ने अपने सारे साथियों के नाम गोत्र बतलाए, उन्हों ने धृतराष्ट्र की पूजा की और धृतराष्ट्र ने उन का प्रतिपूजन किया ॥ २५ ॥ उन से घिरे हुए हर्ष की आंसुओं से भरे नेत्रों वाले धृतराष्ट्र ने अपने आप को पूर्ववत् हस्तिनापुर में स्थित समझा ॥ २६ ॥ द्रौपदी आदि स्नुषाओं का प्रणाम स्वीकार कर गान्धारी और कुन्ती के साथ राजा ने स्वागत किया ॥२७॥ तब सिद्ध और चारणों से सेवित आश्रम में आया, जो देखने की इच्छा वाले तपस्वियों से ऐसे भरा हुआ चमक रहा था, जैसे आकाश तारागणों से ॥ २८ ॥

अ० ६ (व० २७-३६) युधिष्ठिर का हस्तिनापुर में प्रत्यागमन

मूल—स तैः सह नरव्याघ्रैर्भ्रातृभिर्भरतर्षभ । राजा रुचिरपद्माक्षैरासांचक्रे तदाश्रमे ॥ १ ॥ तापसैश्च महाभागैर्नानादेश

समागतैः। द्रष्टुं कुरुपतेः पुत्रान् पाण्डवान् पृथुवक्षसः ॥ २ ॥ तेऽब्रुवञ्ज्ञातुमिच्छामः कतमोऽत्र युधिष्ठिरः। भीमार्जुनौ यमौ चैव द्रौपदी च यशस्विनी ॥ ३ ॥ तानाचख्यौ तदा सूतस्तेषां नामप्रधानतः। संजयो द्रौपदीं चैव सर्वाश्चान्याः कुरुस्त्रियः॥४॥ ततस्ते वृक्षमूलेषु कृतवासपरिग्रहाः। तां रात्रिमवसन् सर्वे फलमूल जलाशनाः ॥ ५ ॥ व्यतीतायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियः। भ्रातृभिः सहितो राजा ददर्शाश्रममण्डलं ॥ ६ ॥ मृगयूथैरनुद्विग्नैस्तत्र तत्र समाश्रितैः। अशंकितैः पक्षिगणैः प्रगीतैरिव च प्रभो ॥७॥ केकाभिर्नीलकण्ठानां दात्यूहानां च कूजितैः। कोकिलानां कुहरवैः सुखैः श्रुतिमनोहरैः ॥ ८ ॥ प्राधीतद्विजघोषैश्च क्वचित् क्वचिद्[illegible] । फलमूलसमाहारैर्महद्भिश्चोपशोभितं ॥ ९ ॥ एवं स राजा धर्मात्मा परीत्याश्रममण्डलं। वसु-विश्राण्य तत्सर्वं पुनरायान्महीपतिः ॥ १० ॥ वसत्सु पाण्डुपुत्रेषु सर्वेष्वाश्रममण्डले। द्वैपायनोऽभ्युपागम्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ युधिष्ठिरः स्वयं धीमान् भवन्तमनु रुध्यते। सहितो भ्रातृभिः सर्वैः सदारः ससुहृज्जनः ॥ १२ ॥ विसर्जयैनं यात्वेष स्वराज्यमनुशासतां। मासः समधिकस्तेषामतीतो वसतां वने ॥ १३ ॥ एतद्धि नित्यं यत्नेन पदं रक्ष्यं नराधिप। बहुप्रत्यर्थिकं ह्येतद्राज्यं नाम कुरूद्वह ॥ १४ ॥ इत्युक्तः कौरवो राजा व्यासेनामितबुद्धिना। युधिष्ठिरमथाहूय वाग्मी वचनमब्रवीत्॥१५॥ अजातशत्रो भद्रं ते शृणु मे भ्रातृभिः सह। त्वत्प्रसादान्महीपाल शोको नास्मान् प्रबाधते ॥ १६ ॥ प्राप्तं पुत्रफलं त्वत्तः प्रीतिर्मे परमा त्वयि। न मे मन्युर्महाबाहो गम्यतां मा चिरं कृथाः॥१७॥

ततो युधिष्ठिरो राजा सदारः सहसैनिकः । नगरं हस्तिनपुरं पुनरायात सबान्धवः ॥ १८ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर आश्रम में सुन्दर पद्म तुल्य नेत्रों वाले उन वीरवर भाइयों के और नाना देश से आए उन महाभाग तपस्वियों के साथ बैठे, जो कि विशाल छाती वाले पाण्डवों को देखने के लिए आए थे ॥ १-२ ॥ वे बोले हम जानते हैं, इन में युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल और सहदेव कौनसा है तथा यशस्विनी द्रौपदी कौनसी है ॥३॥ उन को संजय ने बड़े के क्रम से उन के नाम ले २ कर बतलाया, द्रौपदी और अन्य सब कुरुस्त्रियों के नाम भी बतलाए ॥ ४ ॥ तब उन्हों ने वृक्षों के नीचे वास किया, और फल मूल खा कर और जलपान कर के वह रात बिताई ॥ ५ ॥ रात के बीतने पर सवेर का नित्य नियम कर के युधिष्ठिर ने भाइयों समेत आश्रम मण्डल को देखा ॥ ६ ॥ जिन में स्थान २ पर निर्भय हो कर मृगयूथ चर रहे थे, पक्षिगण अशंकित हो कर गीत गा रहे थे ॥ ७ ॥ कहीं मोर केके कर रहे थे, कहीं दात्यूह बोल रहे थे, और कहीं कोइलें कानों को प्यारी लगने वाली कूकू सुना रही थीं ॥ ८ ॥ कहीं मुनियों की वेद-ध्वनि से शोभा पा रहा था, और कहीं फल मूल के ढेरों से शोभायमान था॥ ९ ॥ इस प्रकार वह राजा सारे आश्रममण्डल में घूम कर और अपने साथ लाया धन मुनियों को दे कर फिर आश्रम में आया ॥ १० ॥ आश्रम मण्डल में पाण्डवों के वास करते हुए एक दिन व्यासजी आ कर धृतराष्ट्र से बोले ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर भाइयों स्त्रियों और सुहृज्जनों समेत आप का आज्ञा-

कारी है ॥ १२ ॥ अब इस को विदा कीजिये, यह जा कर राज्य शासन करे, यहां रहते उस को एक मास से अधिक हो गया है ॥ १३ ॥ हे राजन् यह पद सदा यत्न से रक्षा करने योग्य होता है. हे कुरुवर राज्य के सामने बड़े विघ्न होते हैं॥१४॥ अमित बुद्धि व्यास से यह सुन कर युधिष्ठिर को बुला कर धृतराष्ट्र यह वचन बोले॥ १५ ॥ हे अजात शत्रो ! तेरा कल्याण हो, भाइयों सहित मेरा वचन सुनो, तुम्हारी अनुकूलता से हे राजन् ! हम शोकातुर नहीं रहे ॥ १६ ॥ तुझ से हमने पुत्रफल पाया है, मेरी तुझ में परमप्रीति है, हे महाबाहो ! मुझे कोई शोक नहीं, अब तुम जाओ, विलम्ब न करो ॥१७॥ तब राजा युधिष्ठिर स्त्रियों और सेनाओं और बान्धवों समेत फिर हस्तिनापुर में आया ॥ १८ ॥

अ० ७ (व० ३७-)धृतराष्ट्रादि की मृत्यु

मूल—द्विवर्षोपनिवृत्तेषु पाण्डवेषु यदृच्छया । देवर्षिर्नारदो राजन्नाजगाम युधिष्ठिरं ॥ १ ॥ तमभ्यर्च्य महाबाहुः कुरुराजो युधिष्ठिरः । आसीनं परिविश्वस्तं प्रोवाच वदतांवरः ॥ २ ॥ वदन्ति पुरुषा मेऽद्य गंगातीरनिवासिनः । धृतराष्ट्रं महात्मानमास्थितं परमं तपः ॥ ३ ॥ ना० उ० स्थिरीभूय महाराज शृणु वृत्तं यथातथं । यथाश्रुतं च दृष्टं च मया तस्मिंस्तपोवने ॥ ४ ॥ वनवासनिवृत्तेषु भवत्सु कुरुनन्दन । कुरुक्षेत्रात् पिता तुभ्यं गंगाद्वारं ययौ नृप॥ ५ ॥ आतस्थे स तपस्तीव्रं पिता तव तपोधनः। अनिकेतोऽथ राजा स बभूव वनगोचरः ॥ ६ ॥ सञ्जयो नृपतेर्नेता समेषु विषमेषु च। गान्धार्याश्च पृथा राजन् चक्षुरासीदनिन्दिता ॥७॥

ततः कदाचित् गंगायाः कच्छे स नृपसत्तमः। गंगायामाप्लुतो धीमानाश्रमाभिमुखो ययौ ॥ ८ ॥ अथ वायुसमुद्भूतो दावाग्निरभवन्महान्। ददाह तद्वनं सर्वं परिगृह्य समन्ततः ॥ ९ ॥ निराहारतया राजा मन्दप्राणं विचेष्टितः। असमर्थोऽपसरणे सुकृशे मातरौ च ते ॥ १० ॥ ततः स नृपतिर्दृष्ट्वा वन्हिमायान्तमन्तिकात्। इदमाह ततः सूतं संजयं जयतांवरं ॥ ११ ॥ गच्छ संजय यत्राग्निर्न त्वां दहति कर्हिचित् ॥ १२ ॥ तमुवाच किलोद्विग्नः संजयो वदतांवरः। राजन् मृत्युरनिष्टोऽयं भविता ते वृथाग्निना ॥ १३ ॥ न चोपायं प्रपश्यामि मोक्षणे जातवेदसः। यदत्रानन्तरं कार्यं तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ १४ ॥ इत्युक्तः सञ्जयेनेदं पुनराह स पार्थिवः। नैष मृत्युरनिष्टो नः निःसृतानां गृहात्स्वयं ॥ १५ ॥ जलमग्निस्तथा वायुरथवापि विकर्षणं। तापसानां प्रशस्यन्ते गच्छ सञ्जय माचिरं ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा संजयं राजा समाधाय मनस्तथा। प्राङ्मुखः सह गान्धार्या कुन्त्या चोपाविशत्तदा ॥१७॥ सन्निरुध्येन्द्रियग्राममासीत् काष्ठोपमस्तदा ॥ १८॥ गान्धारी च महाभागा जननी च मथा तव। दावाग्निना समायुक्तो स च राजा पिता तव ॥ १९ ॥ संजयस्तु महामात्रस्तस्माद्दावाद् मुच्यत। गंगाकूले मया दृष्टस्तापसैः परिवारितः ॥ २० ॥ स तानामन्त्र्य तेजस्वी निवेद्यैतच्च सर्वशः। प्रययौ संजयो धीमान् हिमवन्तं महीधरं ॥ २१ ॥ एतच्छ्रुत्वा च सर्वेषां पाण्डवानां महात्मनां। निर्याणं धृतराष्ट्रस्य शोकः समभवन्महान् ॥ २२ ॥ अहो धिगिति राजा तु विक्रुश्य भृशदुःखितः। ऊर्ध्वबाहुः स्मरन्मातुः प्ररुरोद युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥ भीमसेन पुरोगाश्च भ्रातरः सर्व एव ते। अन्तःपुरेषु च तदा सुमहान् रुदितस्वनः ॥ २४ ॥

अर्थ—पाण्डवों को लौट कर आए दो वर्ष हो चुके थे, कि एक दिन अचानक देवर्षिनारद युधिष्ठिर के पास आया ॥ १ ॥ बोलने वालों में श्रेष्ठ महाबाहु युधिष्ठिर ने उस की पूजा की, जब वह बैठ कर स्वस्थ हुआ तो युधिष्ठिर उस से बोले॥२॥ गंगातीर वासी पुरुष बतलाते हैं, कि महात्मा धृतराष्ट्र परम तप में लगे हैं ॥ ३ ॥ नारद बोले—स्थिर हो कर हे महाराज यथार्थ वृत्तान्त को सुनिये, जैसा कि मैंने उस तपोवन में देखा और सुना है ॥ ४ ॥ हे कुरुनन्दन जब आप बनवास से लौटे, तो आप के पिता कुरुक्षेत्र से गंगाद्वार पर चले गये ॥ ५ ॥ वहां तपोधनी आप के पिता घोर तप तपने लगे, अब कोई आ-श्रय न ले कर बन में रहने लगे ॥ ६ ॥ संजय सम विषमों में राजा का नेता था, और कुन्ती गान्धारी की पवित्र आंख थी ॥ ७ ॥ वहां एक समय गंगा में स्नान कर के वह राजसत्तम आश्रम के अभिमुख गए ॥ ८ ॥ तब वायु के कारण (वृक्षों की रगड़ से) महान् वनाग्नि उत्पन्न हुआ, जो चारों ओर से बन को घेर कर दग्ध करने लगा ॥ ९ ॥ निराहार होने के कारण दुर्बल शक्ति राजा और दुर्बल तुम्हारी दोनों माताएं भाग निकलने के असमर्थ थीं ॥ १० ॥ तब वह राजा निकट आते अग्नि को देख कर संजय से यह वचन बोला ॥ ११ ॥ हे संजय तुम भाग जाओ, जहां कहीं तुम्हें अग्नि दग्ध न करे ॥ १२ ॥ वाग्मी संजय दुःखित हो कर बोला, हे राजा यह अनिष्ट मृत्यु आप के सामने आया है, वृथा अग्नि से मरना॥ १३ ॥ और इस अग्नि से बचने का कोई उपाय नहीं देखता हूं, अब इस के अनन्तर जो कर्तव्य है, सो बतलाइये ॥ १४ ॥ संजय से यह

सुन राजा फिर कहने लगे, यह मृत्यु हमें अनिष्ट नहीं है, जब कि हम स्वयं घर से निकल आए हैं ॥ १५ ॥ जल अग्नि वायु वा फाड़ा जाना, ये तपस्वियों के लिए उत्तम ही समझे गए हैं (अर्थात उन के लिए ये अपमृत्यु नहीं माने जाते) सो हे संजय तुम देर न लगाओ, निकलजाओ ॥ १६ ॥ संजय को यह कह कर राजा मन को एकाग्र कर गान्धारी और कुन्ती समेत पूर्वाभिमुख हो कर बैठ गया ॥ १७ ॥ इन्द्रिय समूह को रोक कर वह काठ के समान हो गया ॥ १८ ॥ महाभागा गान्धारी और तेरी माता कुन्ती और तेरा पिता वह राजा इस प्रकार वनाग्नि से संयुक्त हुए ॥ १९ ॥ केवल संजय उस वनाग्नि से छूटा हुआ मैंने तपस्वियों से घिरा हुआ गंगा तट पर देखा था ॥ २० ॥ संजय उन तपस्वियों को सारा वृत्तान्त सुना कर और उन से आज्ञा ले कर हिमालय पर चला गया ॥ २१ ॥ धृतराष्ट्र की इस मृत्यु को सुन कर पाण्डवों को बड़ा शोक हुआ ॥ २२ ॥ राजा तो दुःखित हुआ अहो धिक्कार है, कह कर भुजाएं ऊंचे उठा कर माता को स्मरण कर रोने लगा ॥ २३ ॥ भीमसेन आदि सारे भाई भी रोने लगे, और अन्तःपुर में रोने का भारी शब्द हुआ ॥ २४ ॥

अ० ८ (व० ३८-३९) पाण्डवों का शोक

मूल–यु० उ० दुर्विज्ञेया गतिर्ब्रह्मन् पुरुषाणां मतिर्मम । यत्र वैचित्रवीर्योऽसौ दग्ध एवं वनाग्निना ॥ १ ॥ यस्य पुत्रशतं श्रीमदभवद् बाहुशालिनः । नागायुतबलो राजा स दग्धो हि दवाग्निना ॥ २ ॥ न च शोचामि गान्धारीं हतपुत्रां यशस्विनीं । पतिलोकमनुप्राप्तां तथा भर्तृव्रते स्थितां ॥ ३ ॥ पृथामेव च शो-

चामि या पुत्रैश्वार्यमृद्धिमत । उत्सृज्य सुमहद्दीप्तं वनवासमरोचयत ॥ ४ ॥ धिग्राज्यमिदमस्माकं धिग्बलं धिक् पराक्रमं। क्षत्रधर्मं च धिग्यस्मान्मृता जीवामहे वयं ॥ ५ ॥ युधिष्ठिरस्य जननी भीमस्य विजयस्य च । अनाथवत् कथं दग्धा इति मुह्यामि चिन्तयन् ॥ ६ ॥ ततः स पृथिवीपालः पाण्डवानां धुरन्धरः । निर्ययौ सहसोदर्यः सदारश्च नरर्षभः ॥ ७ ॥ पौरजानपदाश्चैव राजभक्तिपुरस्कृताः । गंगां प्रजग्मुरभितो वाससैकेन संवृताः ॥ ८॥ ततोऽवगाह्य सलिलं सर्वे ते कुरुपुंगवाः । युयुत्सुमग्रतः कृत्वा ददुस्तोयं महात्मने ॥ ९ ॥ गान्धार्याश्च पृथायाश्च विधिवन्नामगोत्रतः । शौचं निर्वर्तयन्तस्ते तत्रोषुर्नगराद् बहिः ॥ १० ॥ ततः स पृथिवीपालो दत्त्वा श्राद्धान्यनेकशः । प्रविवेश पुनर्धीमान नगरं वारणाह्वयं ॥ ११ ॥ समाश्वास्य तु राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरं। नारदोऽप्यगमत प्रीतः परमर्षिर्यथेप्सितं ॥ १२ ॥ एवं वर्षाण्यतीतानि धृतराष्ट्रस्य धीमतः । वनवासे तथा त्रीणि नगरे दशपञ्च च ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरस्तु नृपतिर्नातिप्रीतमनास्तदा । धारयामास तद्राज्यं निहतज्ञातिबान्धवः ॥ १४ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे ब्रह्मन् ! पुरुषों की गति दुर्ज्ञेय है, यह मेरा निश्चय है, जब कि राजा धृतराष्ट्र वन की अग्नि से दग्ध हुआ ॥ १ ॥ जिस भुजा वाले का सौ तो अपना पुत्र ही था, वह सहस्रों हाथियों के बल वाला राजा वन की अग्नि से दग्ध हुआ ॥ २ ॥ हतपुत्रा यशस्विनी गान्धारी का तो शोक नहीं, वह पतिव्रत में स्थित हुई पतिलोक को प्राप्त हुई है ॥ ३ ॥ कुन्ती का ही मुझे शोक हो रहा है, जो बढ़े हुए पुत्रों के ऐश्वर्य को छोड़ कर प्रचण्ड वनवास को पसन्द करती भई ॥४ ॥ हमारे

इस राज्य को धिक् है, धिक् बल को, धिक् पराक्रम को, धिक् क्षत्रधर्म को, जिस कारण हम तो मरे हुए जी रहे हैं ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर भीम और अर्जुन की जननी कैसे अनाथ की भांति दग्ध हुई, यह सोचता हुआ हैरान होता हूं ॥ ६ ॥ तब पाण्डवाग्रणी वह राजा भाइयों और स्त्रियों समेत बाहर निकला ॥७॥ पुर और देश के लोग भी राजभक्ति से भरे हुए एक वस्त्र पहने हुए गंगातट पर गए ॥ ८ ॥ तब जल में स्नान कर उन सब कौरवों ने युयुत्सु को आगे कर के धृतराष्ट्र को जलाञ्जलि दी ॥ ९ ॥ तथा गान्धारी और कुन्ती को यथाविधि नाम ले कर जलाञ्जलि दी, वहां वह शौच पूरा करने के लिए नगर से बाहर रहे ॥ १० ॥ तब वह राजा अनेक प्रकार उन के नाम पर दान कर के फिर हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुआ ॥ ११ ॥ नारद भी राजा युधिष्ठिर को आश्वासन दे कर प्रसन्न हुआ यथाऽभीष्ट देश को गया ॥ १२ ॥ इस प्रकार धृतराष्ट्र को ३ वर्ष वन में और १५ नगर में बीते ॥ १३ ॥ युधिष्ठिर भी ज्ञाति और बान्धवों के मरने से अति प्रसन्न मन न हुआ भी राज्य की संभाल पूरी तरह करता रहा ॥ १४ ॥

आश्रमवासपर्व समाप्त हुआ ॥

मौसलपर्व ॥ *

अ० १ (व० १-४) यादवों का परस्पर विनाश

मूल—षट्त्रिंशेऽथ ततो वर्षे वृष्णीनामनयो महान् । अन्योऽन्यं मुसलैस्ते तु निजघ्नुः कालचोदिताः ॥ १ ॥ विश्वामित्रं च कण्वं च नारदं च तपोधनं । सारणप्रमुखावीरा ददृशुर्द्वारिकां गतान् ॥ २ ॥ ते वै साम्बं पुरस्कृत्य भूषयित्वा स्त्रियं यथा । अब्रुवन्नुपसंगम्य दैवदण्डनिपीडिताः ॥ ३ ॥ इयं स्त्री पुत्रकामस्य बभ्रोरमिततेजसः । ऋषयः साधु जानीत किमियं जनयिष्यति ॥ ४ ॥ इत्युक्तास्ते तदा राजन् विप्रलम्भप्रधर्षिताः । प्रत्यब्रुवंस्तान्मुनयो यत्तच्छृणु नराधिप ॥ ५ ॥ वृष्ण्यन्धकविनाशाय मुसलं घोरमायसं । वासुदेवस्य दायादः साम्बोऽयं जनयिष्यति ॥ ६ ॥ येन यूयं सुदुर्वृत्ता नृशंसा जातमन्यवः । उच्छेत्तारः कुलं कृत्स्नमृते रामजनार्दनौ ॥ ७ ॥ श्वोभूतेऽथ ततः साम्बो मुसलं तदसूत वै । विषण्णरूपस्तद्राजा सूक्ष्मं चूर्णं मकारयत ॥ ८ ॥ तच्चूर्णं सागरेचापि प्राक्षिपन् पुरुषा नृप । उत्पेदिरे महावाता दारुणाश्च दिनेदिने ॥ ९ ॥ एवं पश्यन् हृषीकेशः संप्राप्तं कालपर्ययं । त्रयोदश्याममावस्यां तान् दृष्ट्वा प्राब्रवीदिदं ॥ १० ॥ चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः । प्राप्ते वै भारते युद्धे प्राप्ता चाद्य क्षयाय नः ॥ ११ ॥ ततो जिगमिषन्तस्ते वृष्ण्यन्धक महारथाः । सान्तः पुरास्तदा तीर्थयात्रामैच्छन्नरर्षभाः ॥ १२ ॥ ततो

---

* मौसल, महाप्रस्थान, और स्वर्गारोहण इन तीन पर्वों की घटनाएं आश्चर्यमय हैं, किन्तु जैसी है वैसी रखदी हैं, ताकि पाठकों को लिखित कथाओं का यथार्थ ज्ञान होजाए, इन में अलंकारों की वा सत्यासत्य की विवेचना स्वयं अपनी बुद्धि से करें ॥

भक्ष्यं च भोज्यं च पेयं चान्धकवृष्णयः। बहुनानाविधं चक्रुर्मद्यं मांसमनेकशः॥ १३ ॥ निविष्टांस्तान् निशम्याथ समुद्रान्ते स योगवित्। जगामामन्त्र्य तान् वीरानुद्धवोऽर्थविशारदः ॥ १४॥

अर्थ—(युधिष्ठिर को राज्य पाए) छत्तीसवें वर्ष यादव-वंशियों में बड़ी अनीति उपस्थित हुई, वे काल से प्रेरे हुए आपस में ही मूसलों से मार मरे ॥ १ ॥ (और यह ऐसा हुआ कि) एक समय विश्वामित्र, कण्व और नारद द्वारका में आए, तब सारण आदि वीरगण दैवदण्ड से प्रेरित हो कर साम्ब को स्त्री-वत् सुसज्जित कर के उन के निकट ले जाकर बोले ॥ २—३ ॥ हे ऋषियो ! पुत्र कामना वाले तेजस्वी बभ्रु की यह भार्या क्या जनेगी, ठीक २ जानिये ॥ ४ ॥ यह सुन इस उपहास से क्रुद्ध हुए मुनियों ने जो उत्तर दिया, हे राजन् उसे सुनिये ॥ ५ ॥ उन्हों ने कहा, यह कृष्ण का पुत्र साम्ब वृष्णि और अन्धक वंशियों के नाश के निमित्त लोहे का एक घोर मूसल जनेगा ॥ ६ ॥ जिस से तुम जो अभिमान से दुर्वृत्त क्रूर और क्रोधी हो रहे हो, आपस में ही इस सारे कुल को नाश करोगे, सिवाय राम और कृष्ण के ॥ ७ ॥ दूसरे दिन साम्ब ने मूसल को प्रसव किया, यह सुन दुःखित हुए राजा उग्रसेन ने उस का सूक्ष्म चूर्ण करवाया ॥ ८ ॥ और यदुवंशियों ने वह सारा चूर्ण समुद्र में फैंक दिया अब दिन २ दारुण आंधियां चलने लगीं ॥ ९ ॥ इस प्रकार कृष्ण जी ने समय का फेर देखा, और तेरहवें दिन लगी अमावस्या (अर्थात् तेरह दिन के कृष्णपक्ष) को देख कर या-दवों से यह बोले ॥ १० ॥ यह देखो जैसे भारत युद्ध के समय हुआ था, वैसे अब फिर राहु ने हमारे क्षय के लिए तेरहवीं को

ही चौदहवीं और पन्द्रहवीं रात बना दिया है ॥ ११ ॥ तब वृष्णि और अन्धक महारथी अन्तःपुरों समेत तीर्थयात्रा को चले ॥ १२ ॥ अन्धक वृष्णियों ने नाना प्रकार का भक्ष्य भोज्य तथा मद्यमांस तय्यार करवाया ॥ १३ ॥ जब समुद्र के किनारे पर उन्होंने डेरे जा जमाये, उस समय नीतिनिपुण योगी उद्धव उन से अनुज्ञा ले कर चला गया ॥ १४ ॥

मूल—ततस्तूर्यशताकीर्णं नटनर्तकसंकुलं । अवर्तत महापानं प्रभासे तिग्मतेजसां ॥ १५ ॥ कृष्णस्य सन्निधौ रामःसहितः कृतवर्मणा । अपिबद्युयुधानश्च गदो बभ्रुस्तथैव च ॥ १६ ॥ ततः परिषदो मध्ये युयुधानो मदोत्कटः । अब्रवीत् कृतवर्माणमवहस्यावमत्य च ॥ १७ ॥ कः क्षत्रियो हन्यमानः सुप्तान् हन्यान्मृतानिव । तन्नमृष्यन्ति हार्दिक्य यादवा यत्त्वया कृतं ॥ १८ ॥ इत्युक्ते युयुधानेन पूजयामास तद्वचः । प्रद्युम्नो रथिनां श्रेष्ठो हार्दिक्यमवमत्य च ॥ १९ ॥ ततः परमसंक्रुद्धः कृतवर्मा तमब्रवीत् । निर्दिशन्निव सावज्ञं तदा सव्येन पाणिना ॥ २० ॥ भूरिश्रवाश्छिन्नबाहुर्युद्धे प्रायगतस्त्वया । वधेन सुनृशंसेन कथं वीरेण पातितः ॥ २१ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा केशवः परवीरहा । तिर्यक् सरोषया दृष्ट्या वीक्षांचक्रे स मन्युमान् ॥ २२ ॥ मणिः स्यमन्तकश्चैव यः स सत्राजितोऽभवत् । तां कथां श्रावयामास सात्यकिर्मधुसूदनं ॥ २३ ॥ तच्छ्रुत्वा केशवस्यांकमगमद् रुदती तदा । सत्यभामा प्रकुपिता कोपयन्ती जनार्दन ॥ २४ ॥ तत उत्थाय सक्रोधः सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ २५ ॥ पञ्चानां द्रौपदेयानां धृष्टद्युम्न शिखण्डिनोः । एष गच्छामि पदवीं सत्येन च

तथा शपे ॥ २६ ॥ सौप्तिके ये च निहताः सुप्ता येन दुरात्मना । द्रोणपुत्र सहायेन पापेन कृतवर्मणा ॥ २७ ॥ समाप्तमायुरस्याद्य यशश्चैव सुमध्यमे ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्त्वा खड्गेन केशवस्य समीपतः । अभिद्रुत्य शिरः क्रुद्धश्चिच्छेद कृतवर्मणः ॥ २९ ॥

अर्थ—उद्धव के चले जाने पर प्रभास तीर्थ में उग्रवीर्य यादवों का बाजों से और नटनर्तकों के गीतों के साथ महापान आरम्भ हुआ ॥ १५ ॥ राम, कृतवर्मा, सात्यकि गद और बभ्रु कृष्ण के सामने ही मद्य पीने लगे ॥ १६ ॥ अनन्तर सात्यकि मतवाला हो कर सभा के मध्य में कृतवर्मा का अपहास और अपमान कर के बोला ॥ १७ ॥ हे हार्दिक्य कौन क्षत्रिय मार खाया हुआ (सामने न लड़ कर) मृत समान सोए हुए शत्रुओं का वध किया करता है, सो तुमने जो कार्य किया है, यादव उसे बुरा मानते हैं ॥ १८ ॥ सात्यकि ने जब ऐसा कहा, तो रथिवर प्रद्युम्न ने कृतवर्मा का अपमान कर के सात्यकि के वचन की प्रशंसा की ॥ १९ ॥ यह सुन कृतवर्मा अत्यन्त क्रुद्ध हो बायां हाथ दिखा कर अनादर करता हुआ बोला ॥ २० ॥ भुज के कटने पर जब भूरिश्रवा रण में योगयुक्त हो कर बैठा था, तो तुमने अति क्रूरता से कैसे उसे मार गिराया ॥ २१ ॥ उस के इस वचन को सुन कर शत्रुवीरों के नाशक कृष्ण जी क्रुद्ध हुए, और क्रोधपूर्वक तिरछे नेत्र से उसे देखने लगे ॥२२॥ उस समय सात्यकि ने सत्राजित की स्यमन्तक मणि वाली वह पुरानी कथा कृष्ण को सुनाई ॥ २३ ॥ यह सुन कुपित हुई सत्यभामा कृष्ण के अंक में जा कर रोती हुई उन के क्रोध को प्रचण्ड करने लगी ॥ २४ ॥ अनन्तर सात्यकि क्रोधपूर्वक उठ के

बोला ॥ २५ ॥ हे सुमध्यमे यह मैं पांचों द्रौपदी के पुत्रों, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी की पदवी का अनुगामी होता हूं, यह सत्य की शपथ करता हूं ॥ २६ ॥ जिस पापी कृतवर्मा ने द्रोण की सहायता से सौप्तिक में सोए हुए मारे थे ॥ २७ ॥ आज उसकी भी आयु और यश समाप्त होचुके ॥ २८ ॥ यह कह कर क्रुद्ध हुए सात्यकि ने कृष्ण के सामने दौड़ कर कृतवर्मा का सिर काट दिया ॥ २९ ॥

मूल—तथाऽन्यानपि निघ्नन्तं युयुधानं समन्ततः । अभ्यधावद्धृषीकेशो विनिवारयितुं तदा ॥ ३० ॥ एकीभूतास्ततः सर्वे कालपर्याय चोदिताः । भोजान्धका महाराज शैनेयं पर्यवारयन् ॥ ३१ ॥ तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णमभिक्रुद्धाञ्जनार्दनः । न चुक्रोध महातेजा जानन् कालस्य पर्ययं ॥ ३२ ॥ ते तु पानमदाविष्टाश्चोदिता कालधर्मणा । युयुधानमथाभ्यघ्नन्नुच्छिष्टैर्भाजनैस्तदा ॥ ३३ ॥ हन्यमाने तु शैनेये क्रुद्धो रुक्मिणिनन्दनः । तदनन्तरमागच्छन्मोक्षयिष्यञ् शिनेः सुतं॥ ३४ ॥ स भोजैः सह संयुक्तः सात्यकिश्चान्धकैः सह ॥ ३५ ॥ व्यायच्छमानौ तौ बाहुद्रविणशालिनौ । बहुत्वान्निहतौ तत्र उभौ कृष्णस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥ हतं दृष्ट्वा च शैनेयं पुत्रं च यदुनन्दनः । एरकाणां ततो मुष्टिं कोपाज्जग्राह केशवः ॥ ३७ ॥ तदभून्मुसलं घोरं वज्रकल्पमयोमयं । जघांन कृष्णस्तांस्तेन ये ये प्रमुखतोऽभवन् ॥ ३८ ॥ ततोऽन्धकाश्च भोजाश्च शैनेया वृष्णयस्तथा । जघ्नुरन्योऽन्यमाक्रन्दे मुसलैः कालचोदिताः ॥ ३९ ॥ यस्तेषामेरकां कश्चिज्जग्राह कुपितो नृप । तृणं च मुसलीभूतमपि तत्र व्यदृश्यत ॥ ४० ॥ अवधीत पितरं पुत्रः पिता पुत्रं च भारत । मत्ताः परिपतन्तिस्म योधयन्तः

परस्परं ॥ ४१ ॥ साम्बं च निहतं दृष्ट्वा चारुदेष्णं च माधवः । प्रद्युम्नं चानिरुद्धं ततश्चुक्रोध भारत ॥ ४२ ॥ गदं वीक्ष्य शयानं च भृशं कोपसमन्वितः । स निःशेषं तदा चक्रे शार्ङ्गचक्रगदाधरः ॥ ४३ ॥ ततः समासाद्य महानुभावं कृष्णस्तदा दारुकमन्वशासत् । गत्वा कुरून् सर्वमिदं महान्तं पार्थाय शंसस्व वधं यदूनां ॥ ४४ ॥ ततोऽर्जुनः क्षिप्रमिहोपयातु श्रुत्वा मृतान् यादवान् ब्रह्मशापात् । इत्येवमुक्तः स ययौ रथेन कुरूंस्तथा दारुको नष्टचेताः ॥ ४५ ॥ ततो गते दारुके केशवोऽथ दृष्ट्वान्तिके बभ्रुमुवाच वाक्यं । स्त्रियो भवान् रक्षितुं यातु शीघ्रं नैता हिंस्युर्दस्यवो वित्तलोभात् ॥ ४६ ॥ तं वैश्रान्तं सन्निधौ केशवस्य त्वरन्तमेकं सहसैव बभ्रुं । ब्रह्मानुशप्तमवधीन्महद्वै कूटे युक्तं मुसलं लुब्धकस्य ॥ ४७ ॥ ततो दृष्ट्वा निहतं बभ्रुमाह कृष्णोऽग्रजं भ्रातरमुग्रतेजाः। इहैव त्वं मां प्रतीक्षस्व राम यावत् स्त्रियो ज्ञातिवशः करोमि॥४८॥ ततः पुरीं द्वारवतीं प्रविश्य जनार्दनः पितरं प्राह वाक्यं । स्त्रियो भवान् रक्षतु नः समग्रा धनञ्जयस्यागमनं प्रतीक्षन् ॥ ४९ ॥ रामो वनान्ते प्रतिपालयन्मामास्तेऽद्याहं तेन समागमिष्ये।दृष्टं मयेदं निधनं यदूनां राज्ञां च पूर्वं कुरुपुंगवानां ॥ ५० ॥ नाहं विना यदुभिर्यादवानां पुरीमिमामशकं द्रष्टुमद्य । तपश्चरिष्यामि निबोध तन्मे रामेण सार्धं वनमभ्युपेत्य॥ ५१ ॥ इतीदमुक्त्वा शिरसा च पादौ संस्पृश्य कृष्णस्त्वरितो जगाम । ततो महान्निनदः प्रादुरासीत् सस्त्रीकुमारस्य पुरस्य तस्य ॥ ५२ ॥ ततो गत्वा केशवस्तं ददर्श रामं वने स्थितमेकं विविक्ते । अथापश्यद् योगयुक्तस्य तस्य नागं मुखान्निश्चरन्तं महान्तं ॥ ५३ ॥ ततो गते भ्रातरि

वासुदेवो जानन् सर्वा गतयो दिव्यदृष्टिःवने शून्ये विचरंश्चिन्तयानो भूमौ चाथ संविवेशाग्र्यतेजाः ॥ ५४ ॥ संचिन्तयन्नन्धकवृष्णिनाशं कुरुक्षयं चैव महानुभावः । मेने तदा संक्रमणस्य कालं ततश्चकारेन्द्रियसन्निरोधं ॥ ५५ ॥ स सन्निरुध्येन्द्रियवाङ्मनास्तु शिश्ये महायोग मुपेत्य कृष्णः । जरोऽथ तं देश मुपाजगाम लुब्धस्तदानीं मृगलिप्सुरुग्रः ॥ ५६ ॥ स केशवं योगयुक्तं शयानं मृगाशंकी लुब्धकः सायकेन । जरोऽविध्यत् पादतलेत्वरावांस्तं चाभितस्तज्जघृक्षुर्जगाम ॥ ५७ ॥ ततो राजन् भगवानुग्रतेजा नारायणः प्रभवश्चाव्ययश्च । योगाचार्यो रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या स्थानं प्राप स्वं महात्माऽप्रमेयं ॥ ५८ ॥

अर्थ—वैसे औरों को भी मारते हुए सात्यकि को रोकने के लिए श्रीकृष्ण दौड़े ॥ ३० ॥ उस समय काल के फेर से प्रेरे हुए भोज और अन्धकों ने इकट्ठे मिल कर सात्यकि को घेर लिया ॥ ३१ ॥ चारों ओर से क्रुद्ध हो आ पड़ते हुए उन को देख कर महातेजस्वी कृष्ण समय का फेर जान कर क्रुद्ध नहीं हुए॥३२॥ पान से मदमत्त काल से प्रेरे हुए वे वीर झूठे बर्तनों से सात्यकि को चारों ओर से मारने लगे ॥ ३३ ॥ उस समय क्रुद्ध हुआ रुक्मिनन्दन शिनिसुत को छुड़ाने के लिए दौड़ के आया॥३४॥ वह भोजगणों और सात्यकि अन्धकगणों के संग युद्ध में प्रवृत्त हुए ॥ ३५ ॥ बाहुबल शाली वे दोनों वीर बहुत युद्ध कर के भी शत्रुओं की बहुतायत के कारण कृष्ण के सामने ही मारे गए ॥ ३६ ॥ कृष्ण ने सात्यकि को और पुत्र को मरा हुआ देख कर क्रोध से एरकों की मुट्ठी ली ॥ ३७ ॥ वह वज्र तुल्य लोहे का

मूसल हो गया, उस से कृष्ण ने जो २ सामने आए, उन सब को मार गिराया ॥ ३८ ॥ उसे देख कर काल से प्रेरे हुए अन्धक भोज, शिनिवंशी और वृष्णिवंशी उन्हीं (एरकों के) मूसलों को ले कर रण में एक दूसरे का नाश करने लगे ॥ ३९ ॥ उन में से क्रुद्ध हो कर जो कोई एरका उठाता, वह तृण उसी समय मूसल हो कर दीखता था ॥ ४० ॥ वे ऐसे मतवाले हुए कि परस्पर युद्ध में प्रवृत्त हो कर पुत्र पिता को और पिता पुत्र को मार रहा था ॥ ४१ ॥ साम्ब, चारुदेष्ण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को मरे देख कर श्रीकृष्ण क्रोध में आए ॥ ४२ ॥ और गद को पृथिवी पर लेटा देख अत्यन्त कोप से युक्त हुए श्रीकृष्ण ने शंखचक्र गदा धार कर किसी को भी जीता न छोड़ा ॥४३॥ तब कृष्ण जी राम के पास पहुंचे, और वहां दारुक को आज्ञा दी, कि शीघ्रता से कौरवों के पास जा कर युधिष्ठिर को यादवों के इस परस्पर के बध का समाचार दो ॥ ४४ ॥ और ब्रह्मशाप से मरे यादवों को सुन कर अर्जुन यहां शीघ्र आवे यह सुन कर दारुक व्याकुल चित्त से रथ पर चढ़ कर कौरवों की ओर गया ॥ ४५ ॥ दारुक के चले जाने पर श्रीकृष्ण पास खड़े बभ्रु से बोले, आप शीघ्र द्वारका में जा कर स्त्रियों की रक्षा कीजिये, न हो, कि दस्यु उन्हें धन के लोभ से मार डालें ॥ ४६ ॥ वह थका हुआ हो कर भी कृष्ण की आज्ञा से झट जाने को तय्यार हुआ, उसी समय कृष्ण के सामने ही ब्रह्मशाप के कारण किसी लुब्धक के कूटयुक्त मूसल ने उस के सिर पर गिर कर उस के प्राण हर लिये ॥ ४७ ॥ बभ्रु को मरा देख कर उग्रवीर्य श्रीकृ-

ष्ण बड़े भाई से बोले, हे राम ! तुम यहीं मेरी प्रतीक्षा करो, जब तक कि स्त्रियों को ज्ञातियों के अधीन कर आता हूं ॥ ४८ ॥ द्वारका में प्रवेश कर के कृष्ण पिता से यह वचन बोले, आप अर्जुन के आने की प्रतीक्षा करते हुए सब स्त्रियों की रक्षा करें ॥ ४९ ॥ राम वन में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मैं उन के साथ जा मिलूंगा. मैंने यादवों का मृत्यु देखा है, और इस से पहले कौरवों का भी ॥ ५० ॥ यादवों के बिना मैं अब यादवों की इस पुरी को देख नहीं सकता, अब मैं राम के साथ वन में जा कर तप करूंगा ॥ ५१ ॥ यह कह कर सिर से उन के पाओं छू कर श्रीकृष्णजी वहां से चले, तब स्त्री बच्चों समेत सारी पुरी में रोने की महान् ध्वनि हुई ॥ ५२ ॥ अनन्तर कृष्ण ने वन में जा कर देखा, कि राम निर्जन में एकले योगयुक्त होके बैठे हैं, और उन के मुख से एक बड़ा नाग निकल रहा है ॥ ५३ ॥ भाई के चले जाने पर दिव्यदृष्टि कृष्ण काल की यह भारी गतियें जान कर शून्य वन में विचरने लगे और इसी चिन्ता में भूमि पर बैठ गए ॥ ५४ ॥ अन्धक और वृष्णियों के नाश को और कुरुवंशियों के क्षय को चिन्तन करते हुए उस महानुभाव ने निश्चय किया, कि अब जाने का समय है, तब उस ने इन्द्रियों को रोका ॥ ५५ ॥ मनवाणी और इन्द्रियों को रोक कर कृष्ण महायोगयुक्त हो कर लेट गए, उसी समय वहां मृगों को ढूंढता हुआ जर नामी व्याधा आगया ॥ ५६ ॥ योग से युक्त हो कर लेटे हुए कृष्ण को मृग जान कर जर ने उन के पादतल पर बाण मारा, और झट पट पकड़ने के लिए वहां गया ॥ ५७ ॥ उस

समय हे राजन् उग्र तेज वाले योगाचार्य श्रीकृष्ण अपने तेज से द्यौ और पृथिवी को पूर्ण करते हुए ऊपर की ओर गए॥५८॥

अ० २ (व० ५-६) अर्जुन का द्वारका गमन

मूल—दारुकोऽथ कुरून् गत्वा दृष्ट्वा पार्थान् महारथान्। आचष्ट मौसले वृष्णीनन्योऽन्येनोपसंहृतान् ॥ १ ॥ श्रुत्वा विनष्टान् वार्ष्णेयान् सभोजान्धककुकुरान् । पाण्डवाः शोकसंतप्ता वित्रस्तमनसोऽभवन् ॥ २ ॥ ततोऽर्जुनस्तानामन्त्र्य केशवस्य प्रियः सखा । ययौ मातुलं द्रष्टुं नेदमस्तीति चाब्रवीत॥३॥ स वृष्णिनिलयं गत्वा दारुकेन सह प्रभो । ददर्श द्वारकां वीरो मृतनाथामिवस्त्रियं ॥ ४ ॥ याः स्म लोकनाथेन नाथवत्यः पुराऽभवन् । तास्त्वनाथास्तदा नाथं पार्थं दृष्ट्वा विचुक्रुशुः ॥५॥ तां दृष्ट्वा द्वारकां पार्थस्ताश्च कृष्णस्य योषितः। सस्वनं बाष्पमुत्सृज्य निपपात महीतले ॥ ६ ॥ ताश्च तं काञ्चने पीठे समुत्थाप्योपवेश्य च । अब्रुवन्त्यो महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ७ ॥ ततः संस्तूय गोविन्दं कथयित्वा च पाण्डवः । आश्वास्य ताः स्त्रियश्चापि मातुलं द्रष्टुमभ्यगात ॥ ८ ॥ तं शयानं महात्मानं वीरमानक दुन्दुभिं । पुत्रशोकेन संतप्तं ददर्श कुरुपुंगवः ॥ ९ ॥ तस्याश्रुपरिपूर्णाक्षो व्यूढोरस्को महाभुजः । आर्तस्यार्ततरः पार्थः पादौ जग्राह भारत ॥ १० ॥ समालिंग्यार्जुनं वृद्धः स भुजाभ्यां महाभुजः । रुरोदाथ स्मरञ्शौरिं विललाप सुविह्वलः ॥ ११॥ यैर्जिता भूमिपालाश्च दैत्याश्च शतशोऽर्जुन । तान् सर्वानिह पश्यामि जीवाम्यर्जुन दुर्मरः ॥ १२ ॥ यौ तावर्जुनशिष्यौ ते प्रियौ बहुमतौ सदा । तयोरपनयात् पार्थ वृष्णयो निधनं गताः ॥ १३ ॥ ततः

पुत्रांश्च पौत्रांश्च भ्रातॄनथ सर्वांस्तथा । शयानान्निहतान् दृष्ट्वा कृष्णो मामब्रवीदिदं ॥ १४ ॥ संप्राप्तोऽद्यायमस्यान्तः कुलस्य भरतर्षभ । आगमिष्यति बीभत्सुरिमां द्वारवतीं पुरीं ॥ १५ ॥ योहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोहमेव तु । यद् ब्रूयात्तत्तथा कार्यामिति बुध्यस्व भारत ॥ १६ ॥ स स्त्रीषु प्राप्तकालासु पाण्डवो बालकेषु च । प्रतिपत्स्यति बीभत्सुर्भवतश्चौर्ध्वदेहिकं ॥ १७ ॥ इमां च नगरीं सद्यः प्रतियाते धनञ्जये । प्राकाराट्टालकोपेतां समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ १८ ॥ अहं देशे तु कस्मिंश्चित् पुण्ये नियममास्थितः । कालं काङ्क्षे सद्यमेव रामेण सह धीमता ॥ १९ ॥ सोहं तौ च महात्मानौ चिन्तयन् भ्रातरौ तव । घोरं ज्ञातिवधं चैव न भुञ्जे शोककर्शितः ॥ २० ॥ न भोक्ष्ये न च जीविष्ये दिष्ट्या प्राप्तोसि पाण्डव । यदुक्तं पार्थ कृष्णेन तत्सर्वमखिलं कुरु ॥ २१ ॥

अर्थ—इधर दारुक ने कुरुदेशों में जा कर कुन्तीपुत्रों के दर्शन कर उन को परस्पर मूसलयुद्ध में यादवों का मारा जाना बतलाया ॥ १ ॥ पाण्डव वृष्णि भोज अन्ध और कुक्कुरों का विनाश सुन कर शोक संतप्त और व्याकुल चित्त हुए ॥ २ ॥ तब कृष्ण का प्रिय सखा अर्जुन यह असंभावित सी घटना हुई है, ऐसे कह कर उन से पूछ कर मामा के देखने को चले ॥ ३ ॥ उस वीर ने दारुक सहित वृष्णियों के निवासस्थान में जा कर देखा, कि द्वारका नगरी विधवा स्त्री की भांति शोभाहीन हो रही है ॥ ४ ॥ जो स्त्रियें पहले लोकनाथ श्रीकृष्ण से नाथवती थीं, वे अब अनाथ हुई अर्जुन को देख कर रोने लगीं ॥ ५ ॥ अर्जुन उस द्वारका को और कृष्ण की उन स्त्रियों को देख कर महाशब्द से रुदन करते हुए भूमि पर गिर पड़े ॥ ६ ॥ वे स्त्रियें

उस को उठा कर सोने के पीठ पर बिठला कर बिना कुछ बोलने के चारों ओर बैठ गईं ॥ ७ ॥ तब अर्जुन कृष्ण की स्तुति की कथाएं कह कर उन स्त्रियों को धीरज दे कर मामे के दर्शन को गया ॥८॥ पुत्र शोक से तपे हुए उस महात्मा आनक दुन्दुभि को अर्जुन ने लेटे हुए देखा ॥ ९ ॥ आंसुओं से भरे नेत्रों वाले विशाल छाती वाले महाभुज अर्जुन ने उस दुःखित के दुःखित तर हो कर चरण ग्रहण किये ॥ १० ॥ भुजाओं से अर्जुन को आलिंगन कर के वह वृद्ध कृष्ण को स्मरण कर के व्याकुल हो कर विलाप करने लगे ॥ ११ ॥ हे अर्जुन जिन्हों ने सैंकड़ों क्षत्रिय और राक्षस जीते थे, आज उन सब को यहां नहीं देखता हूं, और मैं जीता हूं, मेरी मृत्यु नहीं है ॥ १२ ॥ हे अर्जुन जो तेरे दोनों प्यारे शिष्य (सात्यकि और प्रद्युम्न) थे, उन की अनीति से वृष्णि नष्ट हुए ॥ १३ ॥ तब पुत्र पोते भाई और मित्रों को मरे पड़े देख कर हे भरतवर कृष्ण ने यह मुझे कहा ॥ १४ ॥ आज इस कुल का अन्त हुआ है, अर्जुन द्वारका में आएगा ॥ १५ ॥ जो मैं हूं, वह अर्जुन है, जो अर्जुन है, सो मैं हूं, सो जो वह कहे, वह उसी प्रकार करना ॥ १६ ॥ वह अर्जुन ही स्त्रियों और बच्चों का समयोचित निश्चय करेगा, और आप का और्ध्वदेहिक कर्म करेगा ॥ १७ ॥ अर्जुन के यहां से जाते ही ऊंचे कोट और अटारियों समेत इस नगरी को समुद्र बहा ले जाएगा ॥ १८ ॥ मैं किसी पवित्र स्थान में नियमस्थित हो कर राम के साथ काल की प्रतीक्षा करूंगा ॥ १९ ॥ सो मैं उन तेरे दोनों भाइयों (राम कृष्ण) का और घोर ज्ञातिवध का चिन्तन करता हुआ शोक से दुर्बल हुआ हूं कुछ नहीं खाया है॥२०॥

न ही खाऊंगा, न जिऊंगा, भाग्य से है अर्जुन तुम आगए हो, जो कृष्ण ने कहा, उस सारी बात को करो ॥ २१ ॥

अ० ३ (व० ७) यादव कुमारों और स्त्रियों को संग ले जाना

मूल—अ० उ० नाहं वृष्णिप्रवीरेण बन्धुभिश्चैव मातुल। विहीनां पृथिवीं द्रष्टुं शक्ष्यामीह कथञ्चन ॥ १ ॥ सर्वथा वृष्णि-दारांस्तु बालं वृद्धं तथैव च। नयिष्ये परिगृह्याहमिन्द्रप्रस्थ मरिन्दम ॥ २ ॥ तां रात्रिमवसत्पार्थः केशवस्य निवेशने। महता शोक मोहेन सहसाऽभिपारिप्लुतः ॥ ३ ॥ श्वोभूतेऽथ ततः शौरि-र्वसुदेवः प्रतापवान्। युक्त्वात्मानं महातेजा जगाम गति मुत्तमां ॥ ४ ॥ ततः शब्दो महानासीद्वसुदेव निवेशने। दारुणः क्रोश-तीनां च रुदतीनां च योषितां ॥ ५ ॥ तं च देवकी च भद्रा च रोहिणी मदिरा तथा। अन्वारोढुं व्यवसिता भर्तारं योषितां वराः ॥ ६ ॥ ततः शौरिं नृयुक्तेन बहुमौल्येन भारत। यानेन महता पार्थो बहिर्निष्क्रामयत्तदा ॥ ७ ॥ तस्याश्वमेधिकं छत्रं दीप्यमा-नाश्च पावकाः। पुरस्तात्तस्य यानस्य याजकाश्च ततो ययुः॥८॥ यस्तु देशः प्रियस्तस्य जीवतोऽभून्महात्मनः। तत्रैनमुप संकल्प्य पितृमेधं प्रचक्रिरे ॥ ९ ॥ तं चिताग्निगतं वीरं शूरपुत्रं वरांगनाः। ततोऽन्वारुरुहुः पत्न्यश्चतस्रः पतिलोकगाः ॥ १० ॥ ततः प्रादुर भूच्छब्दः समिद्धस्य विभावसोः। सामगानां च निर्घोषो नराणां रुदतामपि ॥ ११ ॥ ततो वज्रप्रधानास्ते वृष्ण्यन्धक कुमारकाः। सर्वे चैवोदकं चक्रुः स्त्रियश्चैव महात्मनः ॥ १२ ॥

अर्थ—अर्जुन बोले—हे मामा मैं वृष्णिप्रवीर श्रीकृष्ण और दूसरे बन्धुओं से हीन हुई इस पृथिवी को किसी तरह नहीं देख

सकूंगा ॥ १ ॥ इस समय मैं यादवों की स्त्रियों बच्चों और बूढ़ों को ले कर इन्द्रप्रस्थ जाऊंगा ॥ २ ॥ अनन्तर शोक मोह से युक्त हुए अर्जुन ने उस रात कृष्ण के घर में वास किया ॥ ३ ॥ दूसरे दिन प्रभात होते ही प्रतापी वासुदेव योगयुक्त हो कर उत्तम गति को प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ तब वसुदेव के घर में रोती पुकारती स्त्रियों की बड़ी दारुण रोदनध्वनि हुई ॥ ५ ॥ स्त्री-रत्न देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदिरा उस के साथ चिता पर आरूढ होने को तय्यार हुईं ॥ ६ ॥ अनन्तर अर्जुन ने बहुमूल्य विमान पर आरूढ कर के वसुदेव को बाहर निकाला ॥ ७ ॥ अश्वमेध सम्बन्धी छत्र, प्रज्वलित अग्नियें और याजक उस यान के आगे चलने लगे ॥८॥ जो स्थान जीतेजी उस महात्मा को प्रिय था, उस ही स्थान में उन के शव को स्थापन कर के पितृमेध आरम्भ किया॥ ९ ॥ उन के साथ पतिलोक को जाने वाली उन की चारों रानियें उस वीर के साथ चिता पर आरूढ हुईं ॥ १० ॥ तब अग्नि के प्रज्वलित होने पर सामगों की सामध्वनि और रोने वालों का शब्द प्रकट हुआ ॥ ११ ॥ इस के अनन्तर वज्र आदि यादव कुमारों और स्त्रियों ने मिल के उस महात्मा को जलाञ्जलि दी ॥ १२॥

मूल—अलुप्तधर्मस्तं धर्मं कारयित्वा स फाल्गुनः । जगाम वृष्णयो यत्र विनष्टा भरतर्षभ ॥ १३ ॥ स तान् दृष्ट्वा निपतितान् कदने भृशदुःखितः । बभूवातीव कौरव्यः प्राप्तकालं चकार ह ॥ १४ ॥ ततः शरीरं रामस्य वासुदेवस्य चोभयोः।अन्विष्य दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ १५ ॥ स तेषां विधिवत् कृत्वा प्रेतकार्याणि पाण्डवः । सप्तमे दिवसे प्रायाद् रथमारुह्य सत्वरः

॥ १६ ॥ अश्वयुक्तै रथैश्चापि गोखरोष्ट्र युतैरपि । स्त्रियस्ता वृष्णिवीराणां रुदत्यः शोककर्षिताः ॥ १७ ॥ अनुजग्मुर्महात्मानं पाण्डुपुत्रं धनञ्जयं । भृत्यास्त्वन्धक वृष्णीनां सादिनो रथिनश्चये ॥ १८ ॥ वीरहीनां वृद्धबालां पौरजानपदास्तथा । ययुस्ते परिवार्याथ कलत्रं पार्थशासनात् ॥ १९ ॥ निर्याते तु जने तस्मिन् सागरो मकरालयः । द्वारकां रत्न संपूर्णाजलेनाप्लावयत्तदा ॥२०॥ तदद्भुत मभिप्रेक्ष्य द्वारकावासिनो जनाः । तूर्णात्तूर्णतरं जग्मुरहो दैव मितिब्रुवन् ॥ २१ ॥ काननेषु च रम्येषु पर्वतेषु नदीषु च । निवसन्नानयामास वृष्णिदारान् धनञ्जयः ॥ २२ ॥

अर्थ—धर्मात्मा अर्जुन धर्मानुसार उस कार्य को पूरा कर के वहां गया, जहां यादव नष्ट हुए थे ॥ १३ ॥ वहां रण में उन को मरे देख कर अर्जुन अत्यन्त दुःखित हुआ, और समयोचित उन का अन्त्येष्टि कर्म किया ॥ १४ ॥ अनन्तर राम के और कृष्ण के शरीर को ढूंढ कर उन के बन्धुओं से दाह करवाया ॥१५॥ यथाविधि उन के प्रेतकार्य कर के सातवें दिन अर्जुन रथ पर चढ़ कर गया ॥ १६ ॥ घोड़े खच्चर बैल और ऊंटों से युक्त रथों पर यादवों की स्त्रियें रोती हुई चलीं ॥ १७ ॥ अन्धक वृष्णियों के भृत्य हाथी घोड़ों पर सवार हो कर महात्मा अर्जुन के पीछे चले ॥ १८ ॥ वीरों से हीन बालक और वृद्ध पुरवासी अर्जुन की आज्ञा से स्त्रियों की चारों ओर से रखवाली करते हुए चले ॥ १९॥ उस जनसमुदाय के निकलजाने पर समुद्र ने सम्पूर्ण रत्न पूर्ण द्वारका को जल में डुबा दिया ॥ २० ॥ द्वारकावासी जन इस अद्भुत घटना को देख कर 'अहो दैव के खेल' कहते हुए जल्दी २ चलने लगे ॥ २१ ॥ अर्जुन रमणीय वनों पर्वतों और

नदियों पर वास करते हुए यादवों की स्त्रियों को संग२ लाए ॥२२॥

मूल—स पञ्चनदमासाद्य धीमानतिसमृद्धिमत् । देशे गोपशु-धान्याढ्ये निवासमकरोत् प्रभुः ॥ २३ ॥ ततो लोभः समभवद् दस्यूनां निहतेश्वराः । दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमानाः पार्थेनैकेन भारत ॥ २४ ॥ ततो यष्टि प्रहरणा दस्यवस्ते सहस्रशः । अभ्यधावन्त वृष्णीनां तं जनं लोप्त्रहारिणः ॥ २५ ॥ ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गांडीवमजरं महत् । आरोपयितुमारेभे यत्नादिव कथञ्चन ॥२६॥ चकार सज्यं कृच्छ्रेण संभ्रमे तुमुले सति । चिन्तयामास शस्त्राणि न च सस्मार तान्यपि ॥ २७ ॥ वैकृतं तन्महद् दृष्ट्वा भुजवीर्ये तथायुधि । दिव्यानां च महास्त्राणां विनाशाद् व्रीडितोऽभवत् ॥ २८ ॥ वृष्णियोधाश्च ते सर्वे गजाश्वरथयोधिनः । न शेकुरा-वर्तयितुं ह्रियमाणं च तं जनं ॥ २९ ॥ मिषतां सर्वयोधानां तत-स्ताः प्रमदोत्तमाः । समन्ततोऽवकृष्यन्त कामाच्चान्यः प्रवव्रजुः ॥ ३० ॥ ततो गांडीवनिर्मुक्तैः शरैः पार्थो धनञ्जयः । जघान दस्यून् सोद्वेगो वृष्णिभृत्यैः सहस्रशः ॥ ३१ ॥ क्षणेन तस्य ते राजन् क्षयं जग्मुरजिह्मगाः । अक्षया हि पुरा भूत्वा क्षीणाः क्ष-तजभोजनाः ॥ ३२ ॥ स शरक्षयमासाद्य दुःखशोकसमाहतः । धनुष्कोट्या तदा दस्यूनवधीत् पाकशासनिः ॥ ३३ ॥ अस्त्राणां च प्रणाशेन शराणां संक्षयेण च । बभूव विमनाः पार्थो दैवमि-त्यनुचिन्तयन् ॥ ३४ ॥ न्यवर्तत ततो राजन्नेदमस्तीति चाब्रवी-त् ॥ ३५ ॥ ततः स शेषमादाय कलत्रस्य महामतिः । हृतभूयिष्ठ रत्नस्य कुरुक्षेत्र मवातरत् ॥ ३६ ॥ युधिष्ठिरस्यानुमते वंशकर्तॄन् कुमारकान् । न्यवेशयत कौरव्यस्तत्र तत्र धनञ्जयः ॥ ३७ ॥ हा-र्दिक्य तनयं पार्थो नगरं मार्तिकावतं ॥ ३८ ॥ यौयुधानिं सर-

स्वत्यां पुत्रं सात्यकिनः प्रियं । न्यवेशयत धर्मात्मा वृद्धबाल पुरस्कृतं ॥ ३९ ॥ इन्द्रप्रस्थे ददौ राज्यं वज्राय परवीरहा । वज्रेणाक्रूर दारास्तु वार्यमाणाः प्रवव्रजुः ॥ ४० ॥ रुक्मिणीत्वथ गान्धारी शैव्याहैमवतीत्यपि । देवी जाम्बवती चैव विविशुर्जात वेदसं ॥ ४१ ॥ सत्यभामा तथैवान्या देव्यः कृष्णस्य सम्मताः। वनं प्रविविशू राजंस्तापस्ये धृतनिश्चयाः ॥ ४२ ॥ द्वारका वासिनो ये तु पुरुषा पार्थ मभ्ययुः । यथार्हं संविभज्यैनान् वज्रे पर्यद्दञ्जयः ॥ ४३ ॥

अर्थ—जब वे बड़े समृद्धि वाले पञ्चनद पर पहुंचे, तो गौ और अन्य पशुओं तथा खेतियों से समृद्ध स्थान में वास किया ॥ २३ ॥ वहां अकेले अर्जुन को हतनाथा स्त्रियों को ले जाते देख कर डाकुओं को लोभ उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ वे पर धनहारी अनगिनत डाकू लाठियां मारते हुए यादवों की स्त्रियों की ओर दौड़े ॥ २५ ॥ तब अर्जुन अपने बड़े अजर गांडीव धनुष को यत्न से चढ़ाने लगे ॥ २६ ॥ उस भारी घबराहट में कष्ट से धनुष चढा कर अस्त्रों को सोचने लगे, किन्तु वे स्मृतिपथ में न आए ॥ २७ ॥ यह बड़ी विपरीतता देख कर दिव्य अस्त्रों के नाश से युद्ध में भुजवीर्य की विपरीतता देख कर अर्जुन बड़े लज्जित हुए ॥ २८ ॥ इधर हाथी घोड़े और रथों के सवार यादव योद्धा हरी जाती उन स्त्रियों को लौटाने में असमर्थ हुए ॥ २९ ॥ सब योधाओं के देखते २ वे स्त्रियें चारों ओर से खींची गईं, और कई अपनी इच्छा से वनों में भाग गईं ॥ ३० ॥ अर्जुन यादवों के सेवकों के साथ मिल कर गांडीव से छूटे बाणों द्वारा डाकुओं का वध करने लगे ॥ ३१ ॥ किन्तु हे राजन् !

थोड़ी देर में ही उस के वे बाण समाप्त हो गए, जो पहले शत्रुओं का लहू पीने वाले कभी क्षीण न हुआ करते थे॥३२॥ बाणों के न रहने से दुःख शोक से युक्त हुआ अर्जुन धनुष की नोक से डाकुओं को मारने लगा॥ ३३ ॥ अस्त्रों के भूल जाने से और बाणों के न रहने से अर्जुन इस को दैवफल जानते हुए बड़े उदास हुए ॥ ३४ ॥ तब अब कुछ नहीं बनसकता कह कर लौट आए ॥ ३५ ॥ अनन्तर बची हुई यादव स्त्रियों को, जिन के रत्न छीने गए हैं, साथ ले कर कुरुदेश में आए ॥ ३६ ॥ फिर युधिष्ठिर की अनुमति से यादवों के वंशकर्ता कुमारों को वहां२स्थापन किया ॥ ३७ ॥ कृतवर्मा के पुत्र को मार्तिकावत नगर में ॥ ३८ ॥ सात्यकि के प्यारे पुत्र को बाल वृद्धों सहित सरस्वती के तट पर स्थापित किया ॥ ३९ ॥ वज्र (कृष्ण के पोते) को इन्द्रप्रस्थ में राज्य दिया, वज्र ने अक्रूर की स्त्रियों को बार२रोका, तथापि वे तपश्चर्या के लिए वनों को चली गईं ॥४०॥ रुक्मिणी गान्धारी, शैब्या, हैमवती और जाम्बवती ने अग्नि में प्रवेश किया ॥४१॥ सत्यभामा और कृष्ण की दूसरी प्यारी स्त्रियें तपश्चर्या का निश्चय करके वन को चली गईं ॥ ४२ ॥ द्वारकावासी जो पुरुष अर्जुन के साथ आए थे, उन का यथायोग्य विभाग करके शेष सारे लोगों को वज्र के समीप स्थापित किया ॥ ४३ ॥

मौसलपर्व समाप्त हुआ ॥

महाप्रस्थानिकपर्व ॥

अ० १ (व० १) पाण्डवों का महाप्रस्थान

मूल–श्रुत्वैवं कौरवो राजा वृष्णीनां कदनं महत् । प्रस्थाने मतिमाधाय वाक्यमर्जुन मब्रवीत् ॥ १ ॥ कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महामते । कालपाशमहं मन्ये त्वमपि द्रष्टुमर्हसि ॥ २ ॥ इत्युक्तः स तु कौन्तेयः कालः कालइति ब्रुवन् । अन्वपद्यत तद्वाक्यं भ्रातुर्ज्येष्ठस्य धीमतः ॥ ३ ॥ अर्जुनस्य मतं ज्ञात्वा भीमसेनो यमौ तथा ॥ ४ ॥ ततो युयुत्सुमानाय्य प्रव्रजन् धर्मकाम्यया । राज्यं परिददौ सर्व वैश्यापुत्रे युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥ अभिषिच्य स्वराज्ये च राजानं च परिक्षितं । दुःखार्तश्चा ब्रवीद्राजा सुभद्रां पाण्डवाग्रजः ॥ ६ ॥ परिक्षिद्धास्तिनपुरे शक्रप्रस्थे च यादवः । वज्रो राजा त्वया रक्ष्यो माचाधर्मे मनः कृथाः ॥ ७ ॥ ततोऽनुमान्य धर्मात्मा पौरजानपदं जनं । गमनाय मतिंचक्रे भ्रातरश्चास्य ते तदा ॥ ८ ॥ उत्सृज्य्या भरणान्यङ्गाज्जगृहे वल्कलान्युत । भीमार्जुन यमाश्चैव द्रौपदी च यशस्विनी ॥ ९ ॥ विधिवत् कारयित्वेष्टिं नैष्ठिकीं भरतर्षभ । समुत्सृज्याप्सु सर्वेऽग्नीन् प्रतस्थुर्नरपुंगवाः ॥ १० ॥ ततः प्ररुरुदुः सर्वाः स्त्रियो दृष्ट्वा नरोत्तमान् । प्रस्थितान् द्रौपदीषष्ठान् पुरा द्यूतजितान् यथा ॥ ११ ॥ भ्रातरः पञ्च कृष्णा च षष्ठीश्वा चैव सप्तमः । आत्मना सप्तमो राजा निर्ययौ गजसाह्वयात् ॥ १२ ॥ पौरैरनुगतो दूरं सर्वै रन्तः पुरैस्तथा । न चैन मशकत् कश्चिन्निवर्तस्वेति भाषितुं ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरो ययावग्रे भीमस्तु तदनन्तरं । अर्जुनस्तस्य चान्वेव यमौ चापि यथाक्रमं ॥ १४ ॥ पृष्ठतस्तु वरारोहा श्यामा पद्मदलेक्षणा । श्वाचै-

वानु यथावेकः प्रस्थितान् पाण्डवान् वनं ॥ १५ ॥ क्रमेण ते ययुर्वीरा लौहित्यं सलिलार्णवं । ययुश्च पाण्डवा वीरास्ततस्ते दक्षिणामुखाः ॥ १६ ॥ ततस्तेनुत्तरेणैव तीरेण लवणाम्भसः । जग्मुर्भरत शार्दूल दिशं दक्षिण पश्चिमां ॥ १७ ॥ ततः पुनः समावृत्ताः पश्चिमां दिशमेव ते । ददृशुर्द्वारिकां चापि सागरेण परिप्लुतां ॥ १८ ॥ उदीचीं पुनरावृत्य ययुर्भरत सत्तमाः । प्रादक्षिण्यं चिकीर्षन्तः पृथिव्या योगधर्मिणः ॥ १९ ॥

अर्थ—कौरव राजा इस प्रकार यादवों के भारी विनाश को सुन कर प्रस्थान का निश्चय कर के अर्जुन से बोले ॥ १ ॥ हे महामते काल सारे ही प्राणियों को पकाता है, उस कालपाश को मैं अब देख रहा हूं, तुम्हें भी देखना योग्य है ॥ २ ॥ यह सुन अर्जुन ने भी काल काल कहते हुए जेठे भाई के वचन को स्वीकार किया ॥ ३ ॥ अर्जुन को सम्मत जान भीमसेन तथा नकुल और सहदेव ने भी स्वीकार किया ॥ ४ ॥ तब राजा युधिष्ठिर ने वैश्यापुत्र युयुत्सु को बुलवा कर धर्म कामना से जाने का निश्चय बतला कर राज्य उस को सौंपा ॥ ५ ॥ और राज्य में राजा परिक्षित का अभिषेक कर के राजा युधिष्ठिर ने दुःख से पीड़ित हो कर सुभद्रा से कहा ॥ ६ ॥ हस्तिनापुर में कौरवों का राजा परीक्षित, और इन्द्रप्रस्थ में यादवों का राजा वज्र इन दोनों की रक्षा करनी, और कभी कोई अन्याय मन में न आने देना ॥ ७ ॥ तब पुर और देशवासियों की अनुमति लेकर राजा और उस के भाई जाने को तय्यार हुए ॥ ८ ॥ राजा तथा भीम अर्जुन नकुल सहदेव और द्रौपदी ने शरीर से भूषण उतार कर वकले पहने ॥ ९ ॥ यथाविधि सारे समाप्ति का यज्ञ

कर के अग्नियों को जलों में फैंक कर चल पड़े ॥ १०॥ द्रौपदी समेत उन पांचों को उसी तरह प्रस्थित हुए देख कर स्त्रियें रोने लगीं जैसे कि पहले जुए में जीते हुए निकले थे ॥ ११ ॥ पांचों भाई, छटी द्रौपदी और सातवां एक कुत्ता ये सात हस्तिनापुर से निकले ॥ १२ ॥ पुर के और अन्तःपुर के सब लोग दूर तक उन के पीछे गए, परन्तु कोई भी उन्हें 'लौट चलिये' न कह सका ॥ १३ ॥ आगे युधिष्ठिर चले, पीछे भीम, पीछे अर्जुन, पीछे यथाक्रम नकुल और सहदेव ॥ १४ ॥ पीछे पद्मपत्र तुल्य नेत्रों वाली द्रौपदी, इस प्रकार वन को प्रस्थित हुए पाण्डवों का एकमात्र कुत्ता साथी हुआ ॥ १५ ॥ क्रम से वे वीर लाल सागर में पहुंचे, वहां से वे वीर दक्षिणमुख गए ॥ १६ ॥ तिस पीछे वे सागर के उत्तर तट के मार्ग से दक्षिण पश्चिम दिशा को गए ॥ १७ ॥ पीछे वे पश्चिम दिशा की ओर ही लौटे, और सागर में डूबी हुई द्वारका को देखा ॥ १८ ॥ फिर वे भरतवर पृथिवी की प्रदक्षिणा करना चाहते हुए लौट कर उत्तरादिशा को ही गए ॥ १९ ॥

अ० २ (व० २-३)

मूल—ततस्ते नियतात्मान उदीचीं दिशमास्थिताः । ददृशुर्योग युक्ताश्च हिमवन्तं महागिरिं ॥ १ ॥ तं चाप्यतिक्रमन्तस्ते ददृशुर्वालुकार्णवं । अवैक्षन्त महाशैलं मेरुं शिखरिणां वरं ॥ २ ॥ तेषां तु गच्छतां शीघ्रं सर्वेषां योगधर्मिणां । याज्ञसेनी भ्रष्टयोगा निपपात महीतले ॥ ३ ॥ भी० उ०--नाधर्मश्चरितः कश्चिद्राजपुत्र्या परंतप। कारणं किं तु तद् ब्रूहि यत् कृष्णा पतिताभुवि॥४॥

यु० उ० पक्षपातो महानस्या विशेषेण धनञ्जये । तस्यैतत् फल-मद्यैषा भुङ्क्ते पुरुषसत्तम ॥ ५ ॥ एवमुक्त्वाऽनवेक्ष्यैनां ययौ भर-तसत्तमः । समाधाय मनो धीमान् धर्मात्मा पुरुषर्षभः ॥ ६ ॥ सह-देवस्ततो विद्वान् निपपात महीतले । तं चापि पतितं दृष्ट्वा भीमो राजानमब्रवीत् ॥ ७ ॥ योऽयमस्मासु सर्वेषु शुश्रूषुरनहंकृतः । सोऽयं माद्रवतीपुत्रः कस्मान्निपतितो भुवि ॥ ८ ॥ यु० उ० आत्मनः सदृशं प्राज्ञं नैषोऽमन्यत कंचन । तेन दोषेण पतितो विद्वानेष नृपात्मजः ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा तं समुत्सृज्य सहदेवं ययौ तदा । भ्रातृभिः सह कौन्तेयः शुना चैव युधिष्ठिरः॥ १० ॥ कृ-ष्णां निपतितां दृष्ट्वा सहदेवं च पाण्डवं । आर्तो बन्धुप्रियः शूरो नकुलो निपपात ह ॥ ११ ॥ भी० उ० योयमक्षत धर्मात्मा भ्राता वचनकारकः । रूपेणाप्रतिमो लोके नकुलः पतितो भुवि ॥१२॥ यु० उ०—रूपेण मत्समो नास्ति कश्चिदित्यस्य दर्शनं । नकुलः पतितस्तस्मादागच्छ त्वं वृकोदर॥ १३ ॥ तांस्तु प्रपतितान् दृष्ट्वा पाण्डवः श्वेत वाहनः । पपात शोक संतप्तस्ततोऽनु परवीरहा॥१४॥ भी० उ० अनृतं नस्मराम्यस्य स्वैरेष्वपि महात्मनः । अथ कस्य विकारोऽयं येनायं पतितो भुवि ॥ १५॥ यु० उ० अवमेने धनु-र्ग्राहानेष सर्वांश्च फाल्गुनः । इत्युक्त्वा प्रस्थितो राजा भीमोऽथ निपपात ह ॥ १६ ॥ पतितश्चा ब्रवीद् भीमो धर्मराजं युधिष्ठिरं। किं निमित्तं च पतनं ब्रूहि त्वं यदि वेत्थह ॥ १७ ॥ यु० उ० अतिभुक्तं च भवता प्राणेन च विकत्थसे । अनवेक्ष्यपरं पार्थ ते-नासि पतितः क्षितौ ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्जगामानव-लोकयन् । श्वाप्येकोऽनु ययौ यस्ते बहुशः कीर्तितो मया ॥१९॥ ततः संनादयञ्च शक्रो दिवं भूमिं च सर्वशः । रथेनोपययौ पार्थ

मारोहेत्यब्रवीच्चतं ॥ २० ॥ यु० उ० भ्रातरः पतिता मेऽत्र गच्छे युस्ते मया सहान विना भ्रातृभिः स्वर्गमिच्छे गन्तुं सुरेश्वर॥२१॥ सुकुमारी सुखार्हा च राजपुत्री पुरंदर । मास्माभिः सह गच्छेत तद्भवाननु मन्यतां ॥ २२ ॥ इ० उ० भ्रातॄन् द्रक्ष्यसि स्वर्गे त्वमग्रतस्त्रिदिवं गतान् । कृष्णया सहितान् सर्वान् माशुचो भरतर्षभ ॥ २३ ॥ निक्षिप्य मानुषं देहं गतास्ते भरतर्षभ । अनेन त्वं शरीरेण स्वर्गं गन्ता न संशयः ॥ २४ ॥ यु० उ० अयं श्वा भूतभव्येश भक्तो मां नित्यमेव ह । स गच्छेत मया सार्धं मानृशंस्या हि मे मतिः ॥ २५ ॥ इ० उ० स्वर्गेलोके श्ववतां नास्ति धिष्ण्य मिष्टांपूर्तं क्रोधवशा हरन्ति । ततो विचार्य क्रियतां धर्मराज त्यजश्वानं नात्र नृशंसमस्ति ॥ २६ ॥ यु० उ० भक्तत्यागं प्राहुरत्यन्तपापं तुल्यं लोके ब्रह्मवध्याकृतेन । तस्मान्नाहं जातु कथंचनाद्य त्यक्ष्याम्येनं स्वसुखार्थी महेन्द्र ॥ २७ ॥ तद्धर्मराजस्य वचो-निशम्य धर्मस्वरूपी भगवानुवाच । युधिष्ठिरं प्रीतियुक्तो नरेन्द्रं श्लक्ष्णैर्वाक्यैः संस्तव संप्रयुक्तैः ॥ २८ ॥ अभिजातोसि राजेन्द्र पितुर्वृत्तेन मेधया । अनुक्रोशेन चानेन सर्वभूतेषु भारत ॥ २९ ॥ अतस्तवाक्षया लोकाः स्वशरीरेण भारत । प्राप्तोसि भरतश्रेष्ठ दिव्यांगतिं मनुत्तमां ॥ ३० ॥ नतं रथं समास्थाय राजा कुरुकुलोद्वहः । अर्ध्वमाचक्रमे शीघ्रं तेजसावृत्य रोदसी ॥ ३१ ॥

तब उन योगयुक्त संयमियों ने उत्तर की ओर जाके महापर्वत हिमालय को देखा ॥ १ ॥ उस को भी लंघ कर उन्होंने वालुकार्णव को देखा, और फिर महापर्वत मेरु को देखा ॥२॥ वे एकाग्र चित्त हो शीघ्रता से मेरु पर चढ़ रहे थे, कि वहां द्रौ-

पदी योगभ्रष्ट हो कर भूतल पर गिरपड़ी ॥ ३ ॥ भीमसेन बोले-हे परंतप इस राजपुत्री ने कभी कोई अधर्म नहीं किया, तब क्या कारण है, कहिये, जिस से यह भूतल पर गिरी है ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर बोले-अर्जुन पर इस का विशेष कर के पक्षपात था, हे पुरुषवर उस का यह आज फल भोग रही है ॥ ५ ॥ इतना कह उस की ओर फिर के देखे बिना ही धर्मात्मा युधिष्ठिर मन को एकाग्र किये आगे ही चले गए ॥ ६ ॥ तब विद्वान् सहदेव भूतल पर गिर पड़े, उस को भी गिरा देखके भीमसेन राजा से बोले ॥ ७ ॥ जो अहंकार रहित हो कर सदा हम सब की सेवा करता था, वह माद्री का पुत्र क्यों भूमि पर गिरा है॥ ८ ॥युधिष्ठिर बोले-यह राजपुत्र किसी भी पुरुष को अपने समान प्राज्ञ नहीं समझता था, उस दोष से यह इस समय गिरा है ॥ ९ ॥ इतनी बात कह के ही उस को छोड़ कर युधिष्ठिर अपने भाइयों समेत और उस कुत्ते समेत चलने लगे ॥ १० ॥ द्रौपदी और सहदेव को गिरते हुए देख के भ्रातृप्रिय शूर नकुल पीड़ित हो कर गिर पड़े ॥ ११ ॥ भीम बोले-जो कभी धर्म से विचालित नहीं हुए, सदा हमारे आज्ञाकारी रहे, जो रूप में अतुल हैं, वह हमारे भाई नकुल क्यों गिरे ॥ १२ ॥ युधिष्ठिर बोले-इस की ऐसी दृष्टि थी, कि मेरे समान जगत् में कोई रूपवान् नहीं है, इस लिए यह नकुल गिरा है, हे भीम तू चला आ ॥ १३ ॥उन को गिरते देख उन के अनन्तर शोक से संतप्त हुए शत्रुहन्ता अर्जुन भी गिर पड़े॥ १४॥भीम बोले-इस महात्मा ने हंसी में भी कभी कोई मिथ्या वचन कहा हो, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता है, तब

यह किस बात का दोष है, जिस से यह भूतल पर गिरा है॥१५॥ युधिष्ठिर बोले—अर्जुन सभी धनुर्धारियों का अपमान करता था, यह कह कर राजा आगे चले, अब भीम गिर पड़े ॥ १६ ॥ गिरा हुआ भीम राजा युधिष्ठिर से बोला, मेरा पतन किस कारण हुआ है, कहिये, यदि आप जानते हैं ॥ १७ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे भीम तुम बहुत खाते थे और दूसरे के बल को कुछ न गिन कर सदा अपने बल की श्लाघा करते थे, इस से तुम भूतल पर गिरे हो ॥ १८ ॥ यह कह कर वह महाबाहु बिन देखे आगे ही चला गया, उस समय वह एकमात्र कुत्ता ही उन का अनुगामी था, जिस का वर्णन कई बार आचुका है ॥ १९ ॥ अनन्तर इन्द्र द्यौ और भूमि को अपने रथ से गुंजाते हुए वहां आए, और युधिष्ठिर को रथ पर चढने के लिए कहा ॥ २० ॥ युधिष्ठिर बोले—मेरे भाई जो यहां गिरे हैं, वे भी मेरे साथ चलें, हे सुरेश्वर ! मैं भाइयों के बिना स्वर्ग में जाना नहीं चाहता ॥ २१ ॥ और हे पुरन्दर वह सुखों के योग्य सुकुमारी द्रौपदी भी हमारे संग चले, यह आप स्वीकार करें ॥ २२ ॥ इन्द्र बोले—स्वर्ग में तुम अपने भाइयों को देखोगे, वे तुम से पहले द्रौपदी समेत स्वर्ग में गए हैं, हे भरतवर शोक मत कर ॥ २३ ॥ हे भरतवर वे मानुष शरीर को छोड़ कर गए हैं, तुम सशरीर स्वर्ग में जाओगे, इस में संशय नहीं ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे भूत भव्य के स्वामी यह कुत्ता मेरा चिर भक्त है, यह मेरे साथ चलना चाहिये, मेरा हृदय करुणा वाला है ॥ २५ ॥ इन्द्र बोले—स्वर्गलोक में कुत्ते वालों को स्थान नहीं, क्रोधवश देवगण (कुत्ते वालों के) इष्टपूर्त को निष्फल कर देते हैं, इस लिए हे धर्मराज विचार कर

के काम करो, कुत्ते को त्याग, इस में कोई क्रूरता नहीं है॥२६॥ युधिष्ठिर बोले—भक्त के त्याग को अत्यन्त पाप कहते हैं, यह ब्रह्महत्या के तुल्य है, इस लिए मैं अपने सुख के अर्थ कथंचित् भी इस का त्याग नहीं करूंगा ॥ २७ ॥ धर्मराज के इस वचन को सुन कर धर्मस्वरूपी भगवान् प्रसन्न हो कर स्तुतियुक्त मधुर वचनों से बोले ॥ २८ ॥ हे राजेन्द्र तुम पिता की मर्यादा पर चलने से, मेधा से, और सब भूतों पर दया से तुम पुण्यात्मा हो ॥ २९ ॥ इस कारण से हे भारत ! तेरे अक्षय लोक हैं, अपने शरीर से तुम अत्युत्तम दिव्य गति को प्राप्त हुए हो ॥ ३० ॥ कुरुकुल श्रेष्ठ राजा उस रथ पर चढ़ कर अपने तेज से द्यौ और भूमि को प्रकाशित करते हुए ऊपर चढ़ गए ॥ ३१ ॥

महाप्रस्थानिकपर्व समाप्त हुआ ॥

स्वर्गारोहणपर्व ॥

अ० १ (व० ९) स्वर्ग नरक दर्शन

मूल—स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य धर्मराजो युधिष्ठिरः। दुर्योधनं श्रियाजुष्टं ददर्शासीनमासने ॥ १ ॥ भ्राजमानमिवादित्यं वीरलक्ष्म्याभि संवृतं ॥ २ ॥ ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा दुर्योधनममर्षितः। सहसा सन्निवृत्तोऽभूच्छ्रियं दृष्ट्वा सुयोधने ॥ ३ ॥ ब्रुवन्नुच्चैर्वचस्तान्वै नाहं दुर्योधनेन वै। सहितः कामये लोकान् लुब्धेनादीर्घदर्शिना ॥ ४ ॥ अस्ति देवा न मे कामः सुयोधन मुदीक्षितुं। तत्राहं गन्तुमिच्छामि यत्र ते भ्रातरो मम ॥ ५ ॥ नैवमित्य ब्रवीत्तं तु नारदः प्रहसन्निव। स्वर्गोऽयं नेह वैराणि भवन्ति मनुजाधिप ॥ ६ ॥ यु० उ० राजानो राजपुत्राश्च ये मदर्थे हता रणे। क्व ते महारथाः सर्वे शार्दूलसम विक्रमाः ॥ ७ ॥ देवा ऊचुः--यदि वै तत्र ते श्रद्धा गम्यतां तत्र माचिरं। इत्युक्त्वा तं ततो देवा देवदूत मुपादिशन् ॥ ८ ॥ अग्रतो देवदूतश्च य यौ राजा च पृष्ठतः। पन्थानमशुभं दुर्गं सेवितं पाप कर्मभिः ॥ ९ ॥ तमसा संवृतं घोरं केशशैवल शाड्वलं। युक्तं पाप कृतां गन्धैर्मांस शोणित कर्दमं ॥ १० ॥ सततकुणप दुर्गन्धमशिवं लोमहर्षणं। जगाम राजा धर्मात्मा मध्ये बहु विचिन्तयन् ॥ ११ ॥ ददर्शोष्णोदकैः पूर्णां नदीं चापि सुदुर्गमां। असिपत्रवनं चैव निशित-क्षुर संवृतं ॥ १२ ॥ युधिष्ठिरस्तु निर्विण्णस्तेन गन्धेन मूर्छितः। निवर्तने धृतमनाः पर्यावर्तत भारत ॥ १३ ॥ स सन्निवृत्तो धर्मात्मा दुःखशोकसमाहतः। शुश्राव तत्र वदतां दीना वाचः समन्ततः ॥ १४ ॥ भो भो धर्मज राजर्षे पुण्याभिजन पाण्डव। अनु-

ग्रहार्थमस्माकं तिष्ठ तावन्मुहूर्तकं ॥ १५ ॥ आयाति त्वयि दुर्धर्षे वाति पुण्यः समीरणः । तव गन्धानुगस्तात येनास्मान् सुखमागमत् ॥ १६ ॥

अर्थ—स्वर्ग को प्राप्त हो कर धर्मराज युधिष्ठिर ने श्रीसम्पन्न दुर्योधन को चमकते हुए सूर्य की भांति आसन पर बैठे हुए देखा ॥ १-२ ॥ तब युधिष्ठिर दुर्योधन को देख कर और उस की श्री को देख कर क्रोधवश हो कर सहसा लौट पड़े ॥ ३ ॥ देवताओं से यह वचन कहते हुए कि मैं इस लोभी अदीर्घदर्शी दुर्योधन के साथ नहीं रहना चाहता ॥ ४ ॥ हे देवताओ ! मैं सुयोधन को देखना नहीं चाहता, मैं वहां जाना चाहता हूं, जहां मेरे भाई हैं ॥ ५ ॥ उस को नारद हंस कर कहने लगे, हे नरनाथ ! यह स्वर्ग है, यहां वैर नहीं होते हैं ॥ ६ ॥ युधिष्ठिर बोले—राजा और राजपुत्र जो मेरे अर्थ मारे गए हैं, सिंह तुल्य पराक्रमी वे सब महारथ कहां हैं ॥ ७ ॥ देवता बोले-यदि आप की श्रद्धा वहां जाने की है, तो शीघ्र वहां चलिये, यह कह कर देवताओं ने देवदूत को (ले जाने की) आज्ञा दी ॥ ८ ॥ देवदूत आगे और राजा पीछे२ पापकर्म वाले पुरुषों से सेवित उस अशुभ पथ में ही शीघ्र ही जाने लगे ॥ ९ ॥ वह मार्ग अन्धकार से ढका हुआ, भयंकर, केश, सिवाल और तृणों से जटिल, पापियों की गन्ध से युक्त, मांस और रुधिर के कीचड़ से युक्त ॥ १० ॥ मृत शरीरों के दुर्गन्ध से युक्त, अमंगल, रोंगटे खड़ा करने वाले उस मार्ग के बीच राजा युधिष्ठिर बहुविध चिन्ता में पड़े हुए गए ॥ ११ ॥ मार्ग के बीच उष्णजल से भरी हुई बड़ी दुर्गम नदी, और तीखे छुरों से पूर्ण असिपत्र वन देखा ॥ १२ ॥

धर्मात्मा युधिष्ठिर ने उदास तथा गन्ध से मूर्छित हो कर लौटने का निश्चय कर के वहां से लौट पड़े ॥ १३ ॥ दुःख शोक युक्त वह धर्मात्मा जब लौटे, तो उस ने चारों ओर से बोलते हुओं की दीन वाणियां सुनीं ॥ १४ ॥ हे हे पुण्यात्मा राजर्षि पाण्डव हम पर अनुग्रह कर के थोड़ी देर यहां ठहरिये ॥ १५ ॥ आप के आने से तुम्हारे पुण्यगन्ध से युक्त पवित्र वायु बहने लगा है, जिस से हमें सुख मिल रहा है ॥ १६ ॥

मूल—तेषां तु वचनं श्रुत्वा दयावान् दीनभाषिणां । अहो कृच्छ्रमिति प्राह तस्थौ स च युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥ उवाच के भवन्तो वै किमर्थं चेह तिष्ठत । इत्युक्तास्ते ततः सर्वे समन्तादभाषिरे ॥ १८ ॥ कर्णोऽहं भीमसेनोऽहमर्जुनोऽहमिति प्रभो । नकुलः सहदेवोऽहं धृष्टद्युम्नोऽहमित्युत ॥ १९ ॥ द्रौपदी द्रौपदेयाश्च इत्येवं ते विचुक्रुशुः ॥ २० ॥ ततो विममृशे राजा किंत्विदं दैवकारितं । किं तु तत्कलुषं कर्म कृतमेतन्महात्माभिः ॥ २१ ॥ य इमे पापगन्धेऽस्मिन् देशे सन्ति सुदारुणे । नाहं जानामि सर्वेषां दुष्कृतं पुण्यकर्मणां ॥ २२ ॥ किं कृत्वा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो राजा सुयोधनः । तथा श्रिया युतः पापैः सह सर्वैः पदानुगैः ॥ २३ ॥ किं नु सुप्तोस्मि जागर्मि चेतयामि न चेतये । अहो चित्तविकारोयं स्याद्वा मे चित्तविभ्रमः ॥ २४ ॥ एवं बहुविधं राजा विममर्श युधिष्ठिरः । दुःखशोकसमाविष्टश्चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ॥ २५ ॥ क्रोधमाहारयच्चैव तीव्रं धर्मसुतो नृपः । देवांश्च गर्हयामास धर्मं चैव युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥ स तीव्रशोकसंतप्तो देवदूतमुवाच ह । नाहं तत्र यास्यामि स्थितोस्मीति निवेद्यतां ॥ २७ ॥ दूतो ज-

गाम यत्रास्ते देवराजः शतक्रतुः । निवेदयामास च तद्धर्मराजचिकीर्षितं ॥ २८ ॥

अर्थ—दयावान् राजा युधिष्ठिर उन के दीन वचन को सुन कर 'अहो कष्ट' कह कर वहीं खड़े होगए ॥ १७ ॥ और बोले-आप कौन हैं और किस लिए यहां ठहरे हैं, यह सुन कर वे सारे चारों ओर से बोले ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! मैं कर्ण हूं, मैं भीमसेन हूं, मैं अर्जुन हूं, मैं नकुल हूं, मैं सहदेव हूं, मैं धृष्टद्युम्न हूं ॥ १९ ॥ मैं द्रौपदी हूं, हम द्रौपदी के पुत्र हैं, इस प्रकार वे पुकारते भए ॥ २० ॥ तब राजा सोच में पड़ गए, कि क्या यह दैव का काम है, क्या इन महात्माओं ने कोई पाप कर्म किया है ॥ २१ ॥ जो कि ये इस दुर्गन्ध वाले सुदारुण स्थान में पड़े हैं, इन सारे पुण्य कर्मियों का मैं कोई पाप नहीं जानता हूं ॥२२॥ और वह क्या काम है, जिस से धृतराष्ट्र का पुत्र राजा सुयोधन अपने सारे नीच साथियों समेत वैसी श्री से युक्त है॥२३॥ क्या मैं सोया हुआ हूं, वा जागता हूं, होश में हूं, वा नहीं हूं, अहो यह मेरे चित्त की गड़बड़ है वा चित्त का घूमना है॥२४॥ इस प्रकार राजा युधिष्ठिर बहुत सोच में पड़ा, दुःख शोक से युक्त हुआ और चिन्ता से व्याकुल इन्द्रियों वाला धर्मपुत्र युधिष्ठिर तीव्र क्रोध में आ कर देवताओं की और धर्म की निन्दा करने लगे ॥ २५-२६ ॥ तीव्र शोक से तप्त हो कर राजा देवदूत से बोले, मैं वहां नहीं जाऊंगा, मैं यह ठहरा हूं, यह जा कर निवेदन कर दो ॥ २७ ॥ तब दूत वहां गया, जहां देवराज इन्द्र थे, और जा कर धर्मराज का अभिप्राय कह सुनाया ॥ २८ ॥

अ० २ (व० ३) सब की उत्तम गति

मूल—स्थिते मुहूर्ते पार्थे तु धर्मराजे युधिष्ठिरे । आजग्मुस्तत्र कौरव्यदेवाः शक्रपुरोगमाः ॥ १ ॥ तेषु भासुरदेहेषु पुण्याभिजनकर्मसु । समागतेषु देवेषु व्यगमत्तत्तमो नृप ॥ २ ॥ नादृश्यन्त च तास्तत्र यातनाः पापकर्मणाम् । नदी वैतरणी चैव कूटशाल्मलिना सह ॥ ३ ॥ ततः शक्रः सुरपतिः श्रिया परमया युतः । युधिष्ठिरमुवाचेदं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥ ४ ॥ एह्येहि पुरुषव्याघ्र कृतमेतावता विभो । सिद्धिः प्राप्ता महाबाहो लोकाश्चाप्यक्षयास्तव ॥५॥ न च मन्युस्त्वया कार्यः शृणु चेदं वचो मम । अवश्यं नरकस्तात द्रष्टव्यः सर्वराजभिः ॥ ६ ॥शुभानामशुभानां च द्वौराशी पुरुषर्षभ । यः पूर्वं सुकृतं भुङ्क्ते पश्चान्नरकमेति सः ॥ ७ ॥ पूर्वं नरकभाग्यस्तु पश्चात्स्वर्गमुपैति सः । भूयिष्ठं पापकर्मा यः स पूर्वं स्वर्गमश्नुते ॥ ८ ॥ व्याजेन हि त्वया द्रोण उपचीर्णः सुतं प्रति। व्याजेनैव ततो राजन् दर्शितो नरकस्तव॥९॥ यथैव त्वं तथा भीमस्तथा पार्थो यमौ तथा । द्रौपदी च तथा कृष्णा व्याजेन नरकं गताः ॥ १० ॥ आगच्छ नरशार्दूल मुक्तास्ते चैव कल्मषात् ॥ ११ ॥ स्वपक्ष्याश्चैव ये तुभ्यं पार्थिवा निहता रणे । सर्वे स्वर्गमनुप्राप्तास्तान् पश्य भरतर्षभ ॥ १२ ॥ कृच्छ्रं पूर्वं चानुभूय इतः प्रभृति कौरव । विहरस्व मया सार्धं गतशोको निरामयः ॥ १३ ॥ राजसूयजिताँल्लोकानश्वमेधाभि निर्मितान् । प्राप्नुहि त्वं महाबाहो तपसश्च महाफलं ॥ १४ ॥उपर्युपरि राज्ञां हि तव लोका युधिष्ठिर । हरिश्चन्द्र समाः पार्थ येषु त्वं विहरिष्यसि ॥ १५ ॥ एषा देवनदी पुण्या पार्थ त्रैलोक्यपा-

वनी । आकाशगंगा राजेन्द्र तत्राप्लुत्य गमिष्यसि ॥ १६ ॥ अत्र स्नातस्य भावस्ते मानुषो विगमिष्यति । गतशोको निरायासो मुक्तवैरो भविष्यसि ॥ १७ ॥ अवगाह्य ततो राजा तनुं तत्याज मानुषीं । ततो ययौ वृतो देवैः कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥ धर्मेण सहितो धीमान् स्तूयमानो महर्षिभिः । यत्र ते पुरुषव्याघ्रा शूरा विगतमन्यवः ॥ १९ ॥ पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥ २० ॥

अर्थ—धर्मराज युधिष्ठिर के थोड़ी देर ठहरने पर इन्द्र को आगे कर के देवता वहां आगए ॥ १ ॥ हे राजन् उन प्रकाशमान देह वाले पवित्र जन्म कर्म वाले देवताओं के वहां आने पर वह अन्धकार मिट गया ॥ २ ॥ न वहां उन पापकर्मियों की वैसी यातनाएं, न वैतरणी नदी, न कूटशाल्मलि दीख पड़े ॥३॥ अनन्तर परम श्री सम्पन्न देवराज इन्द्र सान्त्वना पूर्वक युधिष्ठिर से यह वचन बोले ॥ ४ ॥ हे पुरुषवर आओ आओ, हे विभो इतना ही बस है, हे महाबाहो तुमने सिद्धि पा ली है, तेरे अक्षय लोक हैं ॥ ५ ॥ तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये, मेरा यह वचन सुनो, हे तात ! सभी राजाओं को नरक देखना होता है ॥ ६ ॥ हे पुरुष वर शुभ और अशुभ की दो राशियें होती हैं, उन में से जो पहले पुण्य को भोग लेता है, वह पीछे नरक को जाता है ॥ ७ ॥ और जो पहले नरक भागी बनता है, वह पीछे स्वर्ग को प्राप्त होता है, वह पीछे नरक को प्राप्त होता है, जो बहुत से पाप कर्मों वाला होता है, वह पहले स्वर्ग भोग लेता है ॥ ८ ॥ तुमने बहाने से द्रोण को पुत्र के सम्बन्ध में धोखा दिया था, सो बहाने से ही हे राजन् तुझे नरक दिखलाया गया है॥९॥

तुम्हारी भांति ही भीम अर्जुन नकुल सहदेव और द्रौपदी भी बनावटी नरक में पड़ी ॥ १० ॥ आओ हे नरशार्दूल, वे भी अब पाप से छूट गए हैं ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जो तुम्हारे पक्ष के राजा रण में मरे थे, वे सब स्वर्ग में चले गए, उन को वहां चल कर देखो ॥ १२ ॥ हे कौरव पहले कष्ट भोग कर के अब शोक और दुःख से रहित हो कर मेरे संग विहार करो ॥ १३ ॥ हे महाबाहो! राजसूय और अश्वमेध से जीते लोकों को और तप के फल को प्राप्त हो ॥ १४ ॥ हे युधिष्ठिर ! तुम्हारे लोक हरिश्चन्द्र के समान अन्य राजाओं के लोकों के ऊपर २ हैं, जिन में तुम विहार करोगे॥ १५ ॥ हे पार्थ यह त्रैलोक्य पावनी पवित्र नदी आकाश गंगा है, इस में स्नान कर के चलो ॥ १६ ॥ यहां स्नान करने से तुम्हारा मानुषभाव छूट जाएगा, तुम शोक कष्ट से रहित और वैर रहित होगे ॥ १७ ॥ तब राजा युधिष्ठिर स्नान कर के मानुष शरीर का त्याग कर देवताओं से घिरे हुए, महर्षियों से स्तुति किये जाते हुए धर्म सहित वहां गए, जहां वे पुरुषवर शूर वीर वैर रहित हो कर पहुंचे हुए थे, पाण्डव और धार्तराष्ट्र सब अपने २ स्थानों में स्थित हुए ॥ १८–२० ॥

अ० ३ (व० ५)

मूल—वै० उ० एतत्ते सर्वमाख्यातं विस्तरेण महाद्युते । कुरूणां चरितं कृत्स्नं पाण्डवानां च भारत ॥ १ ॥ सौतिरुवाच—एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठः स राजा जनमेजयः । विस्मितोऽभवदत्यर्थं यज्ञकर्मान्तरेष्वथ ॥ २ ॥ ततः समापयामासुः कर्मतत्तस्य याजकाः । आस्तिकश्चाभवत् प्रीतः परिमोक्ष्य भुजंगमान् ॥ ३ ॥ ततो द्विजातीन् सर्वांस्तान् दक्षिणाभिरतोषयत् । पूजिताश्चापि ते

राज्ञा ततो जग्मुर्यथागतं ॥ ४ ॥ विसर्जयित्वा विप्रांस्तान् राजापि जनमेजयः । हृष्टस्तक्षशिलायाः स पुनरायाद् गजाह्वयं ॥ ५ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वैशम्पायन कीर्तितं । व्यासाज्ञया समाज्ञातं सर्पसत्रे नृपस्य ह ॥ ६ ॥ धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ । यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित् ॥ ७ ॥ जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता । ब्राह्मणेन च राज्ञा च गर्भिण्या चैव योषिता ॥ ८ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं महार्थं वेदसंमितं । व्यासोक्तं श्रूयते येन कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ॥ ९ ॥ स नरः सर्वकामांश्च कीर्तिं प्राप्येह शौनक । गच्छेत् परमिकां सिद्धिमत्र मे नास्ति संशयः ॥ १० ॥ माता पितृ सहस्राणि पुत्रदार शतानि च । संसारेष्वनु भूतानि यास्यन्ति चापरे ॥ ११ ॥ हर्षस्थान सहस्राणि भयस्थान शतानि च । दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितं ॥ १२ ॥ ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे । धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥ १३ ॥ न जातु कामान्नभयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः । नित्यो धर्मः सुख दुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ १४ ॥ इमां भारत सावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १५ ॥

अर्थ—वैशम्पायन (जनमेजय से) बोले--हे महाद्युते हे भारत यह मैंने तुम्हारे समीप कौरवों और पाण्डवों का चरित्र विस्तार पूर्वक वर्णन कर दिया है । सौति बोले--हे द्विजवरो ! राजा जनमेजय यज्ञकर्म के बीच २ में इसे सुन कर अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २ ॥ अनन्तर यज्ञ कराने वालों ने उस के कर्म को समाप्त किया, और आस्तीक मुनि भी सर्पों को छुड़ा कर प्रस-

न्त प्रसन्न हुए ॥३॥ अन्त में राजा ने उन सारे ऋत्विजों को दक्षिणाएं दे के परितुष्ट किया, वे राजा से पूजित हो कर निज २ स्थान पर गए ॥ ४ ॥ महाराज जनमेजय भी ब्राह्मणों को विदा करके प्रसन्न हुए तक्षशिला से फिर हस्तिनापुर में आए ॥ ५ ॥ (हे शौनक) राजा जनमेजय के सर्पसत्र में व्यास की आज्ञा से जो कुछ वैशम्पायन ने वर्णन किया, वह सब तुम्हारे निकट वर्णन कर दिया है ॥ ६ ॥ धर्म अर्थ काम और मोक्ष के विषय में जो यहां है, वही अन्यत्र है, जो यहां नहीं है, वह कहीं भी नहीं है ॥ ७ ॥ यह जय नाम इतिहास मोक्ष चाहने वाले ब्राह्मण को (विजय चाहने वाले) राजा को और) शूरवीर पुत्र चाहने वाली) गर्भिणी को अवश्य सुनना चाहिये ॥ ८ ॥ हे शौनक जो पुरुष ब्राह्मण को आगे कर के व्यासोक्त इस वेद तुल्य गम्भीर आशय वाले पवित्र इतिहास को सुनता है ॥ ९ ॥ वह पुरुष सारी कामनाओं को और यश को प्राप्त हो कर परम सिद्धि को प्राप्त होता है, इस में मुझे संदेह नहीं है ॥ १० ॥ इस संसार में सहस्रों माता पिता पुत्र और कलत्र अनुभव कर चुके हैं, हैं भी और आगे आएंगे भी ॥ ११ ॥ सहस्रों हर्ष के स्थान और सैंकड़ों भय के स्थान दिन २ में मूढ में आवेश करते हैं, ज्ञानी में नहीं॥१२॥मैं दोनों भुजाएं ऊंची कर के पुकार२ कर रहा हूं, मुझे कोई सुनता नहीं है,प्यारो धर्म से ऐश्वर्य और भोग मिलता है, उस धर्म का क्यों सेवन नहीं करते हो ॥१३॥ मनुष्य को चाहिये,कि काम, भय वा लालच के कारण, हां जीवन के भी कारण धर्म को कभी न छोड़े, धर्म नित्य है, सुख और दुःख अनित्य हैं,जीव नित्य है,किन्तु जीवन का हेतु अनित्य है ॥१४॥इस भारतसावित्री को जो प्रातःकाल उठ कर पढ़े, वह भारत के फल को पाकर परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥१५॥ श्रीमन्महाभारतं सम्पूर्णम्

सूचीपत्र

संस्कृत के अनमोल रत्न

अर्थात् वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, धर्मशास्त्रों और इतिहास ग्रन्थों के शुद्ध, सरल और प्रामाणिक भाषा अनुवाद।

ये भाषानुवाद पं० राजाराम जी प्रोफैसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर के किये ऐसे बढ़िया हैं, कि इन पर गवर्नमैन्ट और यूनीवर्सिटी से पं० जी को बहुत से इनाम मिले हैं। योग्य २ विद्वानों और समाचारपत्रों ने भी इनकी बहुत बड़ी प्रशंसा की है। इन प्राचीन माननीय ग्रन्थों को पढ़ो और जन्म सफल करो ॥

(१) श्री वाल्मीकि रामायण—भाषा टीका समेत। वाल्मीकि कृत मूल श्लोकों के साथ २ श्लोकवार भाषा टीका है। टीका बड़ी सरल है। इस पर ७००) इनाम मिला है। भाषा टीका समेत इतने बड़े ग्रन्थ का मूल्य केवल ६।)

(२) महाभारत—इस की भी टीका रामायण के तुल्य ही है। दो भागों में छपा है। प्रथम भाग ६।।) द्वितीयभाग ६।) दोनों भाग १२)

(३) भगवद्गीता—पद पद का अर्थ, अन्वयार्थ और व्याख्यान समेत। भाषा बड़ी सुपाठ्य और सुबोध। इस पर ३००) इनाम मिला है मूल्य २।), गीता हमें क्या सिखलाती है मूल्य ।-)

(४) गीता गुटका—सरल भाषा टीका समेत ।।)

(५) ११ उपनिषदें—भाषा भाष्य सहित—

१—ईश उपनिषद्	≡)	८—ऐतरेय उपनिषद्	≡)
२—केन उपनिषद्	≡)	९—छान्दोग्य उपनिषद्	२।)
३—कठ उपनिषद्	।≡)	१०—बृहदारण्यक उपनिषद्	२।)
४—प्रश्न उपनिषद्	।-)	११—श्वेताश्वतर उपनिषद्	।-)
५, ६—मुण्डक और माण्डूक्य दोनों इकट्ठी	।=)	उपनिषदों की शिक्षा	२।)
७—तैत्तिरीय उपनिषद्	।।)	उपनिषदों की भूमिका	।-)

(६) मनुस्मृति—मनुस्मृति पर टीकाएं तो बहुत हुई हैं, पर यह

टीका अपने ढंग में सब से बढ़ गई है। क्योंकि एक तो संस्कृत की सारी पुरानी टीकाओं के भिन्न २ अर्थ इस में दे दिये हैं। दूसरा इसका हर एक विषय दूसरी स्मृतियों में जहां २ आया है, सारे पते दे दिये हैं। तिस पर भी मूल्य केवल ३।) है।

(७) **निरुक्त**—इस पर भी २००) इनाम मिला है ४॥)

८—योगदर्शन	१॥)	१७—आर्य पञ्चमहायज्ञपद्धति	।-)
९—वेदान्त दर्शन	४)	१८—स्वाध्याय यज्ञ	१)
१०—वैशेषिक दर्शन	१॥)	१९—वेदोपदेश	१)
११—सांख्य शास्त्र के तीन प्राचीन ग्रन्थ	॥।)	२०—वैदिक स्तुति प्रार्थना	≡)
१२—नवदर्शन संग्रह	१।)	२१—पारस्कर गृह्यसूत्र	१॥।)
१३—आर्य-दर्शन	१॥)	२२—बाल व्याकरण, इस पर २००) इनाम मिला है	॥)
१४—न्याय प्रवेशिका	॥=)	२३—सफल जीवन	॥)
१५—आर्य-जीवन	१॥)	२४—प्रार्थना पुस्तक	-)॥
१६—दिव्य जीवन	१)		

२५—वात्स्यायन भाष्य-सहित न्याय दर्शन भाष्य ४)

२६—नल दमयन्ती—नल और दमयन्ती के अद्वितीय प्रेम, विवाह विपद् तथा दमयन्ती के धैर्य कष्ट और पातिव्रत्य का वर्णन।)

वेद मनु और गीता के उपदेश	-)॥	सामवेद के क्षुद्र सूत्र	॥)
वेद और महाभारतके उपदेश	-)॥	वैदिक आदर्श	)॥
वेद और रामायण के उपदेश	-)॥	पञ्जाबी संस्कृत शब्दशास्त्र	।=)
अथर्ववेद का निघण्टु	॥।=)		

शंकराचार्य का जीवन चरित्र और उनके शास्त्रार्थ तथा कुमारिलभट्ट का जीवन चरित्र ॥।) औशनस धनुर्वेद।) उपदेश सप्तक ॥-) शास्त्र रहस्य प्रथमभाग ॥) शास्त्र रहस्य दूसरा भाग ॥।) शताब्दी शतक ≡) चितसुखी १॥) ऊपर लिखी सब पुस्तकें सुनहरी जिल्दों में भी मिल सकती है। कीमत प्रत्येक जिल्द ॥)

नोट—कार्यालय की इन अपनी पुस्तकों के सिवाय और भी सब प्रकार पुस्तकें रियाअत से भेजी जाती हैं।

मैनेजर—आर्ष-ग्रन्थावलि लाहौर।